

प्रेमचंद रचनावली

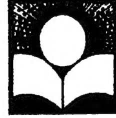
2

प्रेमचंद रचनावली

२

संपादक

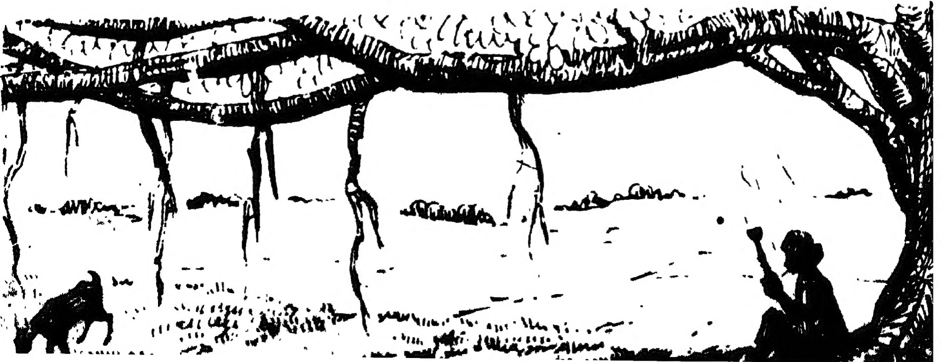
राम आनंद



जनवाणी प्रकाशन प्रा० लि०

पंजीकृत कार्यालय एवं शोरूम

30/22ए, गली नं० 9, विश्वास नगर, दिल्ली-110032



प्रेमचंद रचनावली

खण्ड : दो

भूमिका एवं मार्गदर्शन

डॉ० रामविलास शर्मा



प्रकाशक
जनवाणी प्रकाशन प्रा॰ लि॰
30/22ए, गली न॰ 9, विश्वास नगर
शाहदरा, दिल्ली-110 032

मूल्य
प्रथम सेट (खण्ड 1-10)
द्वितीय सेट (खण्ड 11-20)
सम्पूर्ण सेट (खण्ड 1-20)

कला पक्ष
संदीप पाराशर

प्रोसेस
शर्मा प्रोसेस, दिल्ली-110032

शब्द संयोजक, मुद्रक
भारती आर्ट प्रिंटर्स, दिल्ली-110 032

PREMCHAND
RACHANAVALI
Collected works of
Munshi Premchand

प्रकाशकीय

'प्रेमचंद रचनावली' का प्रकाशन जनवाणी के लिए गौरव की बात है। कॉपीराइट समाप्त होने के बाद प्रेमचंद साहित्य विपुल मात्रा में प्रकाशित-प्रचारित हुआ। पर उनका सम्पूर्ण साहित्य अब तक कहीं भी एक जगह उपलब्ध नहीं था। लगातार यह जरूरत महसूस की जा रही थी कि उनके सम्पूर्ण साहित्य का प्रामाणिक प्रकाशन हो।

श्रेष्ठ और कालजयी साहित्यकारों के समग्र कृतित्व का एकत्र प्रकाशन कई दृष्टियों से उपयोगी होता है। इसी आलोक में **'प्रेमचंद रचनावली'** की कुछ विशेषताओं का संक्षेप में उल्लेख बहुत आवश्यक है। इस रचनावली में पहली बार सम्पूर्ण प्रेमचंद साहित्य सर्वाधिक शुद्ध और प्रामाणिक मूल पाठ के साथ सामने आया है। सम्पूर्ण रचनाओं का विभाजन पहले विधावार तत्पश्चात् कालक्रमानुसार किया गया है। रचनाओं के प्रथम प्रकाशन एवं उनके कालक्रम संबंधी प्रामाणिक जानकारी प्रत्येक रचना के अन्त में दी गई है जिससे प्रेमचंद के कृतित्व के अध्ययन और मूल्यांकन में विशेष सुविधा होगी। इसकी अधिकांश सामग्री प्रथम संस्करणों या काफी पुराने संस्करणों से ली गई है। प्रेमचंद साहित्य के अध्ययन, अध्यापन तथा शोध के लिए इस रचनावली का अपना एक ऐतिहासिक महत्त्व है, क्योंकि इसमें प्रेमचंद की अब तक उपलब्ध सम्पूर्ण तथा अद्यतन सामग्री का समावेश कर लिया गया है। रचनावली के बीस खण्डों का क्रमबद्ध प्रारूप इस प्रकार है—

> **खण्ड 1-6 :** मौलिक उपन्यास; **खण्ड 7-9 :** लेख, भाषण, संस्मरण, संपादकीय, भूमिकाएं, समीक्षाएं; **खण्ड 10 :** मौलिक नाटक; **खण्ड 11-15 :** सम्पूर्ण कहानियां (302); **खण्ड 16-17 :** अनुवाद (उपन्यास, नाटक, कहानी); **खण्ड 18 :** जीवनी एवं बाल साहित्य; **खण्ड 19 :** पत्र (चिट्ठी-पत्री); **खण्ड 20 :** विविध।

रचनावली की विस्तृत भूमिका मूर्धन्य आलोचक डॉ॰ रामविलास शर्मा ने लिखी है, जो इस रचनावली की सबसे बड़ी उपलब्धि है। डॉ॰ शर्मा ने अपनी साहित्य-साधना के व्यस्त क्षणों में भी हर कदम पर हमारा मार्गदर्शन किया। रचनावली का जो यह उत्कृष्ट रूप सामने आया है यह सब उन्हीं के आशीर्वाद का प्रतिफल है। इस कृपा और सहयोग के लिए मैं उनके प्रति नतमस्तक हूं।

बिहार विधान परिषद् के माननीय सभापति, हिन्दी और उर्दू के वरिष्ठ साहित्यकार प्रो॰ जाबिर हुसेन ने प्रेमचंद रचनावली के संपादक-मण्डल का अध्यक्ष होना स्वीकार किया और रचनावली के संपादन कार्य में हमारा उचित मार्गदर्शन किया, इसके लिए मैं उनका आभारी हूं। साथ ही संपादक-मण्डल के विद्वान सदस्यों के प्रति भी हार्दिक आभार प्रकट करता हूं।

श्री केशवदेव शर्मा ने अपनी तमाम व्यस्तताओं के बावजूद सम्पादन कार्य में जिस गहरी लगन, समझदारी और आत्मीयता से सहयोग किया है उसके लिए उनके प्रति अनेकशः धन्यवाद। उनका अहर्निश सानिध्य मुझे स्फूर्ति प्रदान करता रहा। डॉ॰ गीता शर्मा एवं डॉ॰ अशोक कुमार शर्मा, वेद प्रकाश सोनी तथा डॉ॰ विनय के प्रति भी उनके हार्दिक सहयोग के लिए आभारी हूं।

भाई राम आनंद साहित्य क्षेत्र में प्रवेश करते ही प्रेमचंद द्वारा स्थापित प्रकाशन संस्थान **'सरस्वती प्रेस'** से जुड़ गए थे। लगभग बीस वर्षों तक उन्होंने स्व॰ श्रीपत राय (प्रेमचंद के ज्येष्ठ पुत्र) के मार्गदर्शन में अप्राप्य प्रेमचंद साहित्य पर शोध कार्य किया। वे स्व॰ श्रीपत राय के संपादन में प्रकाशित होने वाली विख्यात कथा-पत्रिका **'कहानी'** के सहायक संपादक रहे। श्रीपत राय के देहांत के बाद उन्होंने **'कहानी'** का स्वतंत्र रूप से संपादन किया और उसे नया रूप तथा गरिमा प्रदान की। उन्होंने जिस गहरी सूझ-बूझ, लगन, धैर्य और निष्ठा से इस रचनावली के संपादन कार्य को इतने सुरुचिपूर्ण और वैज्ञानिक ढंग से संपन्न किया, इसके लिए वे हम सबों के साधुवाद के पात्र हैं।

श्री हरीशचन्द्र वार्ष्णेय, श्री प्रेमशंकर शर्मा, श्री उदयकान्त पाठक ने प्रूफ-संशोधन और सम्पूर्ण मुद्रण कार्य में विशेष जागरूकता और मनस्विता का परिचय दिया; इनके साथ विमलसिंह, आर॰ के॰ यादव, सुनील जैन, शिवानंदसिंह तथा संस्था के अन्य सभी सहकर्मियों के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूं क्योंकि इन सबके सहयोग और सद्भाव के बिना यह काम पूरा होना लगभग असंभव था।

मेरी भ्रातृजा रीमा और भ्रातृज संदीप, संजीव, मनीष, विक्रांत, चेतन की लगन और सूझबूझ ने भी मुझे सदैव प्रेरित और उत्साहित किया वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

रचनावली के मुद्रण का कार्य श्री कान्तीप्रसाद शर्मा की देखरेख में हुआ है। उनकी सूझबूझ और श्रमनिष्ठा के लिए वे हमारे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

सर्वश्री विजयदान देथा, यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', रामकुमार कृषक, स्वामी प्रेम जहीर, डॉ॰ कुसुम वियोगी, रामकुमार शर्मा आदि सभी मित्रों के सुझावों के लिए भी आभारी हूं।

इस कार्य में पूज्य माताजी श्रीमती जसवन्ती देवी का आशीर्वाद और पिताश्री प्रेमनाथ शर्मा का दीर्घकालीन प्रकाशन-व्यवसाय का अनुभव और आशीर्वाद मेरे विशेष प्रेरणा स्रोत रहे। इनके साथ मातृतुल्या भाभी श्रीमती ललिता शर्मा, अग्रज़ राजकुमार शर्मा, चमनलाल शर्मा, धर्मपाल शर्मा एवं उनकी धर्मपत्नी इन्दु शर्मा के साथ भाई हरीशकुमार शर्मा एवं सुभाषचन्द्र शर्मा के साथ ही चाचा श्री दीनानाथ शर्मा का भी आभारी हूं जिन्होंने पग-पग पर मेरा मार्ग-दर्शन किया। और सबसे अंत में सहधर्मिणी श्रीमती गीता शर्मा ने जो सहयोग और संबल प्रदान किया उसके लिए आभार अथवा धन्यवाद जैसा शब्द बहुत कम होगा। सारा श्रेय उन्हीं का है।

नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता के सहयोग से दुर्लभ पुस्तक 'महात्मा शेखसादी' लगभग सत्तर वर्ष बाद एक बार फिर इस रचनावली के मार्फत पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की जा रही है। मैं नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूं। उन समस्त संस्थानों, पुस्तकालयों, विभागों, संस्थाओं, लेखकों, संपादकों, अधिकारियों और व्यक्तियों के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूं, जिन्होंने इस रचनावली के आयोजन में सहयोग किया।

अन्त में विद्वान पाठकों से हमारा निवेदन है कि वे इस रचनावली की त्रुटियों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करें ताकि आगामी संस्करणों में उन्हें दूर किया जा सके।

हम आशा करते हैं कि हिन्दी जगत् इस बहु-प्रतीक्षित रचनावली का हार्दिक स्वागत करेगा।

अरुण कुमार
(प्रबंध निदेशक)



1924



शुभ लक्ष्मी : तमिल 'सेवासदन' की सुमन



सेवासदन

रचनाकाल : जनवरी, 1917 – जनवरी, 1918

प्रकाशनकाल : दिसम्बर, 1918

सेवासदन

लेखक

सप्तसरोज, नवनिधि, प्रेमपूर्णिमा आदिके रचयिता—

श्रीयुक्त प्रेमचन्द ।

प्रकाशक

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी,

१२६, हरिसन रोड,

कलकत्ता ।

प्रथम बार } सम्वत् १९७५ { मूल्य २॥)

(प्रथम संस्करण का मुखपृष्ठ)

एक

पश्चात्ताप के कड़वे फल कभी-न-कभी सभी को चखने पड़ते हैं, लेकिन और लोग बुराइयों पर पछताते हैं, दारोगा कृष्णचन्द्र अपनी भलाइयों पर पछता रहे थे। उन्हें थानेदारी करते हुए पच्चीस वर्ष हो गए, लेकिन उन्होंने अपनी नीयत को कभी बिगड़ने न दिया था। यौवनकाल में भी, जब चित्त भोग-विलास के लिए व्याकुल रहता है, उन्होंने निःस्पृह भाव से अपना कर्त्तव्य पालन किया था। लेकिन इतने दिनों के बाद आज वह अपनी सरलता और विवेक पर हाथ मल रहे थे। उनकी पत्नी गंगाजली सती-साध्वी स्त्री थी। उसने सदैव अपने पति को कुमार्ग से बचाया था। पर इस समय वह चिंता में डूबी हुई थी! उसे स्वयं संदेह हो रहा था कि वह जीवन-भर की सच्चरित्रता बिल्कुल व्यर्थ तो नहीं हो गई।

दारोगा कृष्णचन्द्र रसिक, उदार और बड़े सज्जन पुरुष थे। मातहतों के साथ वह भाईचारे का-सा व्यवहार करते थे, किंतु मातहतों की दृष्टि में उनके इस व्यवहार का कुछ मूल्य न था। वह कहा करते थे कि यहां हमारा पेट नहीं भरता, हम उनकी भलमनसी को लेकर क्या करें—चाटें? हमें घुड़की, डांट-डपट, सख्ती सब स्वीकार है, केवल हमारा पेट भरना चाहिए। रूखी रोटियां चांदी के थाल में परोसी जायं, तो भी वे पूरियां न हो जायंगी।

दारोगाजी के अफसर भी उनसे प्रायः प्रसन्न न रहते। वह दूसरे थाने में जाते, तो उनका बड़ा आदर-सत्कार होता था, उनके अहलमद, मुहर्रिर और अरदली खूब दावतें उड़ाते। अहलमद को नजराना मिलता, अरदली इनाम पाता और अफसरों को नित्य डालियां मिलतीं, पर कृष्णचन्द्र के यहां यह आदर-सत्कार कहां? वह न दावतें करते थे, न डालियां ही लगाते थे। जो किसी से लेता नहीं, वह किसी को देगा कहां से? दारोगा कृष्णचन्द्र की इस शुष्कता को लोग अभिमान समझते थे।

लेकिन इतना निर्लोभ होने पर भी दारोगाजी के स्वभाव में किफायत का नाम न था। वह स्वयं तो शौकीन न थे, लेकिन अपने घरवालों को आराम देना अपना कर्त्तव्य समझते थे। उनके सिवा घर में तीन प्राणी और थे, स्त्री और दो लड़कियां। दारोगाजी इन लड़कियों को प्राण से भी अधिक प्यार करते थे। उनके लिए अच्छे-से-अच्छे कपड़े लाते और शहर से नित्य तरह-तरह की चीजें मंगाया करते। बाजार में कोई तरहदार कपड़ा देखकर उनका जी नहीं मानता था, लड़कियों के लिए अवश्य ले आते थे। घर में सामान जमा करने की उन्हें धुन थी। सारा मकान कुर्सियों, मेजों और आल्मारियों से भरा हुआ था। नगीने के कलमदान, झांसी के कालीन, आगरे की दरियां बाजार में नजर आ जातीं, तो उन पर लट्टू हो जाते। कोई लूट के धन पर भी इस भांति न टूटता होगा। लड़कियों को पढ़ाने और सीना-पिरोना सिखाने के लिए उन्होंने एक ईसाई लेडी रख ली थी। कभी-कभी स्वयं उनकी परीक्षा लिया करते थे।

गंगाजली चतुर स्त्री थी। उन्हें समझाया करती कि जरा हाथ रोककर खर्च करो। जीवन में यदि और कुछ नहीं करना है, तो लड़कियों का विवाह तो करना ही पड़ेगा, उस समय किसके सामने हाथ फैलाते फिरोगे? अभी तो उन्हें मखमली जूतियां पहनाते हो, कुछ इसकी भी चिंता है कि आगे क्या होगा? दारोगाजी इन बातों को हंसी में उड़ा देते, कहते, जैसे और सब काम चलते हैं, वैसे ही यह काम भी हो जायगा। कभी झुंझलाकर कहते, ऐसी बात करके मेरे ऊपर चिंता का बोझ मत डालो। इस प्रकार दिन बीतते चले जाते थे। दोनों लड़कियां कमल के समान खिलती जाती थीं। बड़ी लड़की सुमन सुंदर, चंचल और अभिमानी थी, छोटी लड़की शान्ता भोली, गंभीर, सुशील थी। सुमन दूसरों से बढ़कर रहना चाहती थी। यदि बाजार से दोनों बहनों के लिए एक ही प्रकार की साड़ियां आतीं, तो सुमन मुंह फुला लेती थी। शान्ता को जो कुछ मिल जाता, उसी में प्रसन्न रहती।

गंगाजली पुराने विचार के अनुसार लड़कियों के ऋण से शीघ्र मुक्त होना चाहती थी। पर दारोगाजी कहते, यह अभी विवाह योग्य नहीं है। शास्त्रों में लिखा है कि कन्या का विवाह सोलह वर्ष की आयु से पहले करना पाप है। वह इस प्रकार मन को समझाकर टालते रहते थे। समाचार-पत्रों में जब वह दहेज के विरोध में बड़े-बड़े लेख पढ़ते, तो बहुत प्रसन्न होते ! गंगाजली से कहते कि अब एक ही दो साल में यह कुरीति मिटी जाती है। चिंता करने की कोई जरूरत नहीं। यहां तक कि इसी तरह सुमन को सोलहवां वर्ष लग गया।

अब कृष्णचन्द्र अपने को अधिक धोखा न दे सके। उनकी पूर्व निश्चिंतता वैसी न थी, जो अपनी सामर्थ्य के ज्ञान से उत्पन्न होती है। उसका मूल कारण उनकी अकर्मण्यता थी। उस पथिक की भांति, जो दिन-भर किसी वृक्ष के नीचे आराम से सोने के बाद संध्या को उठे और सामने एक ऊंचा पहाड़ देखकर हिम्मत हार बैठे, दारोगाजी भी घबरा गए। वर की खोज में दौड़ने लगे, कई जगहों से टिप्पणियां मंगवाईं। वह शिक्षित परिवार चाहते थे। वह समझते थे कि ऐसे घरों में लेन-देन की चर्चा न होगी, पर उन्हें देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वरों का मोल उनकी शिक्षा के अनुसार है। राशि, वर्ण ठीक हो जाने पर जब लेन-देन की बातें होने लगतीं, तब कृष्णचन्द्र की आंखों के सामने अंधेरा छा जाता था। कोई हजार सुनाता, कोई पांच हजार और कोई इससे भी आगे बढ़ जाता। बेचारे निराश होकर लौट आते। आज छ: महीने से दारोगाजी इसी चिंता में पड़े हैं। बुद्धि काम नहीं करती इसमें संदेह नहीं कि शिक्षित सज्जनों को उनसे सहानुभूति थी; पर वह एक-न-एक ऐसी पख निकाल देते थे कि दारोगाजी को निरुत्तर हो जाना पड़ता। एक सज्जन ने कहा—'महाशय, मैं स्वयं इस कुप्रथा का जानी दुश्मन हूं, लेकिन क्या करूं, अभी पिछले साल लड़की का विवाह किया, दो हजार रुपये केवल दहेज में देने पड़े, दो हजार खाने-पीने में खर्च पड़े, आप ही कहिए, यह कमी कैसे पूरी हो?'

दूसरे महाशय इनसे अधिक नीतिकुशल थे। बोले—दारोगाजी, मैंने लड़के को पाला है, सहस्रों रुपये उसकी पढ़ाई में खर्च किए हैं। आपकी लड़की को इससे उतना ही लाभ होगा, जितना मेरे लड़के को। तो आप ही न्याय कीजिए कि यह सारा भार मैं अकेला कैसे उठा सकता हूं ?

कृष्णचन्द्र को अपनी ईमानदारी और सच्चाई पर पश्चात्ताप होने लगा। अपनी निस्पृहता पर उन्हें जो घमंड था, वह टूट गया। सोच रहे थे कि यदि मैं पाप से न डरता, तो आज मुझे यों ठोकरें न खानी पड़तीं। इस समय दोनों स्त्री-पुरुष चिंता में डूबे बैठे थे। बड़ी देर के बाद

कृष्णचन्द्र बोले–देख लिया, संसार में सन्मार्ग पर चलने का यह फल होता है। यदि आज मैंने लोगों को लूटकर अपना घर भर लिया होता, तो लोग मुझसे संबंध करना अपना सौभाग्य समझते, नहीं तो कोई सीधे मुंह बात नहीं करता है। परमात्मा के दरबार में यह न्याय होता है ! अब दो ही उपाय हैं, या तो सुमन को किसी कंगाल के पल्ले बांध दूं या कोई सोने की चिड़िया फंसाऊं। पहली बात तो होने से रही; बस अब सोने की चिड़िया की खोज में निकलता हूं। धर्म का मजा चख लिया, सुनीति का हाल भी देख चुका। अब लोगों को खूब दबाऊंगा; खूब रिश्वत लूंगा, यही अंतिम उपाय है। संसार यही चाहता है, और कदाचित् ईश्वर भी यही चाहता है। यही सही आज से मैं भी वही करूंगा, जो सब लोग करते हैं।

गंगाजली सिर झुकाए अपने पति की ये बातें सुनकर दुःखित हो रही थी। वह चुप थी। आंखों में आंसू भरे हुए थे।

दो

दारोगाजी के हल्के में एक महंत रामदास रहते थे। वह साधुओं की एक गद्दी के महंत थे। उनके यहां सारा कारोबार 'श्री बांकेबिहारीजी' के नाम पर होता था। 'श्री बांकेबिहारीजी' लेन-देन करते थे और बत्तीस रु० सैकड़े से कम सूद न लेते थे। वही मालगुजारी वसूल करते थे, वही रेहननामे-बैनामे लिखते थे। 'श्री बांकेबिहारीजी' की रकम दबाने का किसी को साहस न होता था और न अपनी रकम के लिए कोई दूसरा आदमी उनसे कड़ाई कर सकता था। 'श्री बांकेबिहारीजी' को रुष्ट करके उस इलाके में रहना कठिन था। महंत रामदास के यहां दस-बीस मोटे-ताजे साधु स्थायी रूप से रहते थे। वह अखाड़े में दंड पेलते, भैंस का ताजा दूध पीते, संध्या को दूधिया भंग छानते और गांजे-चरस की चिलम तो कभी ठंडी न होने पाती थी। ऐसे बलवान् जत्थे के विरुद्ध कौन सिर उठाता?

महंतजी का अधिकारियों में खूब मान था। 'श्री बांकेबिहारीजी' उन्हें खूब मोतीचूर के लड्डू और मोहन-भोग खिलाते थे। उनके प्रसाद से कौन इंकार कर सकता था? ठाकुरजी संसार में आकर संसार की रीति पर चलते थे।

महंत रामदास जब अपने इलाके की निगरानी करने निकलते, तो उनका जुलूस राजसी ठाठ-बाट के साथ चलता था। सबके आगे हाथी पर 'श्रीबांकेबिहारीजी' की सवारी होती थी, उसके पीछे पालकी पर महंतजी चलते थे, उसके बाद साधुओं की सेना घोड़ों पर सवार, राम-नाम के झंडे लिए अपनी विचित्र शोभा दिखाती थी, ऊंटों पर छोलदारियां, डेरे और शामियाने लदे होते थे। यह दल जिस गांव में जा पहुंचता था, उसकी शामत आ जाती थी।

इस साल महंतजी तीर्थयात्रा करने गए थे। वहां से आकर उन्होंने एक बड़ा यज्ञ किया था। एक महीने तक हवनकुंड जलता रहा, महीनों तक कड़ाह न उतरे, पूरे दस हजार महात्माओं को निमंत्रण था। इस यज्ञ के लिए इलाके के प्रत्येक असामी से हल पीछे पांच रुपया चंदा उगाहा गया था। किसी ने खुशी से दिया, किसी ने उधार लेकर और जिनके पास न था, उसे रुक्का

ही लिखना पड़ा। 'श्री बांकेबिहारीजी' की आज्ञा को कौन टाल सकता था? यदि ठाकुरजी को हार माननी पड़ी, तो केवल एक अहीर से, जिसका नाम चेतू था। वह बूढ़ा दरिद्र आदमी था। कई साल से उसकी फसल खराब हो रही थी। थोड़े ही दिन हुए 'श्री बांकेबिहारीजी' ने उस पर इजाफा लगान की नालिश करके उसे ऋण के बोझ से और दबा दिया था। उसने यह चंदा देने से इंकार किया, यहां तक कि रुक्का भी न लिखा। ठाकुरजी ऐसे द्रोही को भला कैसे क्षमा करते? एक दिन कई महात्मा चेतू को पकड़ लाए। ठाकुरद्वारे के सामने उस पर मार पड़ने लगी। चेतू भी बिगड़ा। हाथ तो बंधे हुए थे, मुंह से लात-घूंसों का जवाब देता रहा और जब तक जबान बंद न हो गई, चुप न हुआ। इतना कष्ट देकर भी ठाकुरजी को संतोष न हुआ, उसी रात को उसके प्राण भी हर लिए। प्रातःकाल चौकीदार ने थाने में रिपोर्ट की।

दारोगा कृष्णचन्द्र को मालूम हुआ, मानो ईश्वर ने घर बैठे-बिठाए सोने की चिड़िया उनके पास भेज दी। तहकीकात करने चले।

लेकिन महंतजी की उस इलाके में ऐसी धाक जमी हुई थी कि दारोगाजी को कोई गवाही न मिल सकी। लोग एकांत में आकर उनसे सारा वृत्तांत कह जाते थे, पर कोई अपना बयान नहीं देता था।

इस प्रकार तीन-चार दिन बीत गए। महंत जी पहले तो बहुत अकड़े रहे। उन्हें निश्चय था कि यह भेद न खुल सकेगा। लेकिन जब उन्हें पता चला कि दारोगाजी ने कई आदमियों को फोड़ लिया है, तो कुछ नरम पड़े। अपने मुख्तार को दारोगाजी के पास भेजा। कुबेर की शरण ली। लेन-देन की बातचीत होने लगी। कृष्णचन्द्र ने कहा—मेरा हाल तो आप लोग जानते हैं कि रिश्वत को काला नाग समझता हूं। मुख्तार ने कहा—हां, यह तो मालूम है, किंतु साधु-संतों पर कृपा रखनी ही चाहिए। इसके बाद दोनों सज्जनों में कानाफूसी हुई। मुख्तार ने कहा—नहीं सरकार, पांच हजार बहुत होते हैं। महंतजी को आप जानते हैं, वह अपनी टेक पर आ जाएंगे, तो चाहे फांसी ही हो जाय पर जौ-भर न हटेंगे। ऐसा कीजिए कि उनको कष्ट न हो, आपका भी काम निकल जाय। अंत में तीन हजार पर बात पक्की हो गई।

पर कड़वी दवा को खरीदकर लाने, उसका काढ़ा बनाने और उसे उठाकर पीने में बड़ा अंतर है। मुख्तार तो महंत के पास गया और कृष्णचन्द्र सोचने लगे, यह मैं क्या कर रहा हूं?

एक ओर रुपयों का ढेर था और चिंता-व्याधि से मुक्त होने की आशा, दूसरी ओर आत्मा का सर्वनाश और परिणाम का भय। न हां करते बनता था, न नहीं।

जन्म-भर निर्लोभ रहने के बाद इस समय अपनी आत्मा का बलिदान करने में दारोगाजी को बड़ा दुख होता था। वह सोचते थे, यदि यही करना था तो आज से पच्चीस साल पहले ही क्यों न किया, अब तक सोने की दीवार खड़ी कर दी होती। इलाके ले लिए होते। इतने दिनों तक त्याग का आनंद उठाने के बाद बुढ़ापे में यह कलंक ! पर मन कहता था, इसमें तुम्हारा क्या अपराध? तुमसे जब तक निभ सका, निबाहा। भोग-विलास के पीछे अधर्म नहीं किया, लेकिन जब देश, काल, प्रथा और अपने बंधुओं का लोभ तुम्हें कुमार्ग की ओर ले जा रहे हैं, तो तुम्हारा दोष? तुम्हारी आत्मा अब भी पवित्र है। तुम ईश्वर के सामने अब भी निरपराध हो। इस प्रकार तर्क करके दारोगाजी ने अपनी आत्मा को समझा लिया।

लेकिन परिणाम का भय किसी तरह पीछा न छोड़ता था। उन्होंने कभी रिश्वत नहीं ली थी। हिम्मत न खुली थी। जिसने कभी किसी पर हाथ न उठाया हो, वह सहसा तलवार का

वार नहीं करता। यदि कहीं बात खुल गई, तो जेलखाने के सिवा और कहीं ठिकाना नहीं, सारी नेकनामी धूल में मिल जायगी। आत्मा तर्क से परास्त हो सकती है, पर परिणाम का भय तर्क से दूर नहीं होता। वह पर्दा चाहता है। दारोगाजी ने यथासंभव इस मामले को गुप्त रखा। मुख्तार से ताकीद कर दी कि इस बात की भनक भी किसी के कान में न पड़ने पाए। थाने के कांस्टेबलों और अमलों से भी सारी बातें गुप्त रखी गईं।

रात के नौ बजे थे। दारोगाजी ने अपने तीनों कांस्टेबलों को किसी बहाने से थाने के बाहर भेज दिया। चौकीदारों को भी रसद का सामान जुटाने के लिए इधर-उधर भेज दिया था और आप अकेले मुख्तार की राह देख रहे थे। मुख्तार अभी तक नहीं लौटा, कर क्या रहा है? चौकीदार सब आकर घेर लेंगे तो बड़ी मुश्किल पड़ेगी। इसी से मैंने कह दिया था कि जल्द आना। अच्छा मान लो, जो महंत तीन हजार पर राजी न हुआ तो? नहीं, इससे कम न लूंगा। इससे कम में विवाह हो ही नहीं सकता।

दारोगाजी मन-ही-मन हिसाब लगाने लगे कि कितने रुपये दहेज में दूंगा और कितने खाने-पीने में खर्च करूंगा।

कोई आध घंटे के बाद मुख्तार के आने की आहट मिली। उनकी छाती धड़कने लगी। चारपाई से उठ बैठे, फिर पानदान खोलकर पान लगाने लगे कि इतने में मुख्तार भीतर आया।

कृष्णचन्द्र—कहिए?

मुख्तार—महंतजी....

कृष्णचन्द्र ने दरवाजे की तरफ देखकर कहा—रुपये लाए या नहीं?

मुख्तार—जी हां, लाया हूं पर महंतजी ने....

कृष्णचन्द्र ने फिर चारों तरफ चौकन्नी आंखों से देखकर कहा—मैं एक कौड़ी भी कम न करूंगा।

मुख्तार—अच्छा, मेरा हक तो दीजिएगा न?

कृष्णचन्द्र—अपना हक महंतजी से लेना।

मुख्तार—पांच रुपया सैकड़ा तो हमारा बंधा हुआ है।

कृष्णचन्द्र—इसमें से एक कौड़ी भी न मिलेगी। मैं अपनी आत्मा बेच रहा हूं, कुछ लूट नहीं रहा हूं।

मुख्तार—आपकी जैसी मरजी, पर मेरा हक मारा जाता है।

कृष्णचन्द्र—मेरे साथ चलना पड़ेगा।

तुरंत बहली तैयार हुई और दोनों आदमी उस पर बैठकर चले। बहली के आगे-पीछे चौकीदारों का दल था। कृष्णचन्द्र उड़कर घर पहुंचना चाहते थे। गाड़ीवान को बार-बार हांकने के लिए कहकर कहते—अरे, क्या सो रहा है? हांके चल।

ग्यारह बजते-बजते लोग घर पहुंचे। दारोगाजी मुख्तार को लिए हुए अपने कमरे में गए और किवाड़ बंद कर दिए। मुख्तार ने थैली निकाली। कुछ गिन्नियां थीं, कुछ नोट और कुछ नकद रुपये। कृष्णचन्द्र ने झट थैली ले ली और बिना देखे-सुने उसे अपने संदूक में डालकर ताला लगा दिया।

गंगाजली अभी तक उनकी राह देख रही थी। कृष्णचंद्र मुख्तार को विदा करके घर में गए। गंगाजली ने पूछा—इतनी देर क्यों की?

कृष्णचन्द्र–काम ही ऐसा आ पड़ा और दूर भी बहुत है।

भोजन करके दारोगाजी लेटे, पर नींद न आती थी। स्त्री से रुपये की बात कहते उन्हें संकोच हो रहा था। गंगाजली को भी नींद न आती थी। वह बार-बार पति के मुंह की ओर देखती, मानो पूछ रही थी कि बचे या डूबे।

अंत में कृष्णचन्द्र बोले–यदि तुम नदी के किनारे खड़ी हो और पीछे से एक शेर तुम्हारे ऊपर झपटे तो क्या करोगी?

गंगाजली इस प्रश्न का अभिप्राय समझ गई। बोली–नदी में चली जाऊंगी।

कृष्णचन्द्र–चाहे डूब ही जाओ?

गंगाजली–हां, डूब जाना शेर के मुंह में पड़ने से अच्छा है।

कृष्णचन्द्र–अच्छा, यदि तुम्हारे घर में आग लगी हो और दरवाजों से निकलने का रास्ता न हो, तो क्या करोगी?

गंगाजली–छत पर चढ़ जाऊंगी और नीचे कूद पड़ूंगी।

कृष्णचन्द्र–इन प्रश्नों का मतलब तुम्हारी समझ में आया?

गंगाजली ने दीनभाव से पति की ओर देखकर कहा–तब क्या ऐसी बेसमझ हूं?

कृष्णचन्द्र–मैं कूद पड़ा हूं। बचूंगा या डूब जाऊंगा, यह मालूम नहीं।

तीन

पंडित कृष्णचन्द्र रिश्वत लेकर उसे छिपाने के साधन न जानते थे। इस विषय में अभी नौसिखिए थे। उन्हें मालूम न था कि हराम का माल अकेले मुश्किल से पचता है। मुख्तार ने अपने मन में कहा, हमीं ने सब कुछ किया और हमीं से यह चाल ! हमें क्या पड़ी थी कि इस झगड़े में पड़ते और रात-दिन बैठे तुम्हारी खुशामद करते। महंत फंसते या बचते, मेरी बला से, मुझे तो अपने साथ न ले जाते। तुम खुश होते या नाराज, मेरी बला से, मेरा क्या बिगाड़ते? मैंने जो इतनी दौड़-धूप की, वह कुछ आशा ही रखकर की थी।

वह दारोगाजी के पास से उठकर सीधे थाने में आया और बातों-ही-बातों में सारा भंडा फोड़ हो गया।

थाने के अमलों ने कहा–वाह हमसे यह चाल ! हमसे छिपा-छिपाकर यह रकम उड़ाई जाती है। मानो हम सरकार के नौकर ही नहीं हैं। देखें, यह माल कैसे हजम होता है। यदि इस बगुला-भगत को मजा न चखा दिया तो देखना।

कृष्णचन्द्र तो विवाह की तैयारियों में मग्न थे। वर सुन्दर, सुशील, सुशिक्षित था। कुल ऊंचा और धनी। दोनों ओर से लिखा-पढ़ी हो रही थी। उधर हाकिमों के पास गुप्त चिट्ठियां पहुंच रही थीं। उनमें सारी घटना ऐसी सफाई से बयान की गई थी, आक्षेपों के ऐसे सबल प्रमाण दिए गए थे, व्यवस्था की ऐसी उत्तम विवेचना की गई थी कि हाकिमों के मन में संदेह उत्पन्न हो गया। उन्होंने गुप्त रीति से तहकीकात की। संदेह जाता रहा। सारा रहस्य खुल गया।

एक महीना बीत चुका था। कल तिलक जाने की साइत थी। दारोगाजी संध्या समय थाने

में मसनद लगाए बैठे थे, उस समय सामने से सुपरिंटेंडेंट पुलिस आता हुआ दिखाई दिया। उसके पीछे दो थानेदार और कई कांस्टेबल चले आ रहे थे। कृष्णचन्द्र उन्हें देखते ही घबराकर उठे कि एक थानेदार ने बढ़कर उन्हें गिरफ्तारी का वारंट दिखाया। कृष्णचन्द्र का मुख पीला पड़ गया। वह जड़-मूर्ति की भांति चुपचाप खड़े हो गए और सिर झुका लिया। उनके चेहरे पर भय न था, लज्जा थी। यह वही दोनों थानेदार थे, जिनके सामने वह अभिमान से सिर उठाकर चलते थे, जिन्हें वह नीच समझते थे। पर आज उन्हीं के सामने सिर नीचा किए खड़े थे। जन्म-भर की नेकनामी एक क्षण में धूल में मिल गई। थाने के अमलों ने मन में कहा, और अकेले-अकेले रिश्वत उड़ाओ!

सुपरिंटेंडेंट ने कहा—बेल किशनचन्द, तुम अपने बारे में कुछ कहना चाहटा है?

कृष्णचन्द्र ने सोचा, क्या कहूं? क्या कह दूं कि मैं बिल्कुल निरपराध हूं, यह सब मेरे शत्रुओं की शरारत है, थाने वालों ने मेरी ईमानदारी से तंग आकर मुझे यहां से निकालने के लिए यह चाल खेली है।

पर वह पापाभिनय में ऐसे सिद्धहस्त न थे। उनकी आत्मा स्वयं अपने अपराध के बोझ से दबी जा रही थी। वह अपनी दृष्टि में गिर गए थे।

जिस प्रकार विरले ही दुराचारियों को अपने कुकर्मों का दण्ड मिलता है, उसी प्रकार सज्जनता का दंड पाना अनिवार्य है। उसका चेहरा, उसकी आंखें, उसके आकार-प्रकार, सब जिह्वा बन-बनकर उसके प्रतिकूल साक्षी देते हैं। उसकी आत्मा स्वयं अपना न्यायाधीश बन जाती है। सीधे मार्ग पर चलने वाला मनुष्य पेचीदा गलियों में पड़ जाने पर अवश्य राह भूल जाता है।

कृष्णचन्द्र की आत्मा उन्हें बाणों से छेद रही थी। लो, अपने कर्मों का फल भोगो। मैं कहती थी कि सांप के बिल में हाथ न डालो। तुमने मेरा कहना न माना। यह उसी का फल है।

सुपरिंटेंडेंट ने फिर पूछा—तुम अपने बारे में कुछ कहना चाहटा है?

कृष्णचन्द्र बोले—जी हां, मैं यही कहना चाहता हूं कि मैंने अपराध किया है और उसका कठोर-से-कठोर दंड मुझे दिया जाय। मेरा मुंह काला करके मुझे सारे कस्बे में घुमाया जाय। झूठी मर्यादा बढ़ाने के लिए, अपनी हैसियत को बढ़ाकर दिखाने के लिए, अपनी बड़ाई के लिए एक अनुचित कर्म किया है और अब उसका दंड चाहता हूं। आत्मा और धर्म का बंधन मुझे न रोक सका। इसलिए मैं कानून की बेड़ियों के ही योग्य हूं। मुझे एक क्षण के लिए घर में जाने की आज्ञा दीजिए, वहां से आकर मैं आपके साथ चलने को तैयार हूं।

कृष्णचन्द्र की इन बातों में ग्लानि के साथ अभिमान मिला हुआ था। वह उन दोनों थानेदारों को दिखाना चाहते थे कि यदि मैंने पाप किया है, तो मर्दों की भांति उसका फल भोगने के लिए तैयार हूं। औरों की तरह पाप करके उसे छिपाता नहीं।

दोनों थानेदार ये बातें सुनकर एक-दूसरे का मुंह देख रहे थे, मानो कह रहे थे कि यह आदमी पागल हो गया है क्या? अपने होश में नहीं मालूम होता। यदि ईमानदार ही बनना था, तो ऐसा काम ही क्यों किया? पाप किया, पर करना न जाना!

सुपरिंटेंडेंट ने कृष्णचन्द्र को दया की दृष्टि से देखा और भीतर जाने की आज्ञा दी।

गंगाजली बैठी चांदी के थाल में तिलक की सामग्री सजा रही थी कि कृष्णचन्द्र ने आकर

कहा–गंगा, बात खुल गई। मैं हिरासत में आ गया।

गंगाजली ने उनकी ओर विस्मित भाव से देखा। उसके चेहरे का रंग उड़ गया। आंखों से आंसू बहने लगे।

कृष्णचन्द्र–रोती क्यों हो? मेरे साथ कोई अन्याय नहीं हो रहा है। मैंने जो कुछ किया है, उसी का फल भोग रहा हूं। मुझ पर फौजदारी का मुकदमा चलाया जायगा, तुम कुछ चिंता मत करना। मैं सब कुछ सहने के लिए तैयार हूं। मेरे लिए वकील-मुख्तारों की जरूरत नहीं है। इसमें व्यर्थ रुपये मत फूंकना। मेरे इस प्रायश्चित्त से वह पाप का धन पवित्र हो जायगा। उसे तुम सुमन के विवाह में खर्च करना। उसका एक पैसा भी मुकदमे में मत लगाना, नहीं तो मुझे दु:ख होगा। अपनी आत्मा का, अपनी नेकनीयती का, अपने जीवन का सर्वनाश करने के बाद मुझे संतोष रहेगा कि मैं एक ऋण से मुक्त हो गया, इस लड़की का बेड़ा पार लगा दिया।

गंगाजली ने दोनों हाथों से अपना सिर पीट लिया। उसे अपनी अदूरदर्शिता पर ऐसा क्रोध आ रहा था कि धरती फट जाय और उसमें समा जाय। शोक और आत्मवेदना की एक लहर बादल से निकलने वाली धूप के सदृश उसके हृदय पर आती हुई मालूम हुई। उसने निराशा से आकाश की ओर देखा। हाय ! यदि मैं जानती कि यह नौबत आएगी, तो अपनी लड़की किसी कंगाल से ब्याह देती, या उसे विष देकर मार डालती। फिर वह झटपट उठी, मानो नींद से चौंकी है और कृष्णचन्द्र का हाथ पकड़कर बोली–इन रुपयों में आग लगा दो। उन्हें ले जाकर उसी हत्यारे रामदास के सिर पटक दो। मेरी लड़की बिना ब्याही रहेगी। हाय ईश्वर! मेरी मति क्यों मारी गई। मैं साहब के पास चलती हूं। अब लाज-शरम कैसी?

कृष्णचन्द्र–जो कुछ होना था, हो चुका, अब कुछ नहीं हो सकता।

गंगाजली–मुझे साहब के पास ले चलो। मैं उनके पैरों पर गिरूंगी और कहूंगी, यह आपके रुपये हैं, लीजिए, और जो कुछ दंड देना है, मुझे दीजिए। मैं ही विष की गांठ हूं। यह पाप मैंने बोया है।

कृष्णचन्द्र–इतने जोर से न बोलो, बाहर आवाज जाती होगी।

गंगाजली–मुझे साहब के पास क्यों नहीं ले चलते? उन्हें एक अबला पर अवश्य दया आएगी।

कृष्णचन्द्र–सुनो, यह रोने-धोने का समय नहीं है। मैं कानून के पंजे में फंसा हूं और किसी तरह नहीं बच सकता। धैर्य से काम लो। परमात्मा की इच्छा होगी तो फिर भेंट होगी।

यह कहकर वह बाहर की ओर चले कि दोनों लड़कियां आकर उनके पैरों से चिमट गईं। गंगाजली ने दोनों हाथों से उनकी कमर पकड़ ली और तीनों चिल्लाकर रोने लगीं।

कृष्णचन्द्र भी कातर हो गए। उन्होंने सोचा, इन अबलाओं की क्या गति होगी? परमात्मन्, तुम दीनों के रक्षक हो, इनकी भी रक्षा करना।

एक क्षण में वह अपने को छुड़ाकर बाहर चले गए। गंगाजली ने उन्हें पकड़ने को हाथ फैलाए, पर उसके दोनों हाथ फैले ही रह गए, जैसे गोली खाकर गिरने वाली किसी चिड़िया के दोनों पंख खुले रह जाते हैं !

चार

कृष्णचन्द्र अपने कस्बे में सर्वप्रिय थे। यह खबर फैलते ही सारी बस्ती में हलचल मच गई। कई भले आदमी उनकी जमानत कराने आए, लेकिन साहब ने जमानत नहीं ली।

इसके एक सप्ताह बाद कृष्णचन्द्र पर रिश्वत लेने का अभियोग चलाया गया। महंत रामदास भी गिरफ्तार हुए।

दोनों मुकदमे महीने-भर तक चलते रहे। हाकिम ने उन्हें दौरे सुपुर्द कर दिया।

वहां भी एक महीना लगा। अंत में कृष्णचन्द्र को पांच वर्ष की कैद हुई। महंत जी सात वर्ष के लिए गए और दोनों चेलों को काले पानी का दंड मिला।

गंगाजली के एक सगे भाई पंडित उमानाथ थे। कृष्णचन्द्र की उनसे जरा भी न बनती थी। वह उन्हें धूर्त्त और पाखंडी कहा करते, उनके लंबे तिलक की चुटकी लेते । इसलिए उमानाथ उनके यहां बहुत कम आते थे।

लेकिन इस दुर्घटना का समाचार पाकर उमानाथ से न रहा गया। वह आकर अपनी बहन और भांजियों को अपने घर ले गए। कृष्णचन्द्र के कोई सगा भाई न था। चाचा के दो लड़के थे, पर वह अलग रहते थे। उन्होंने बात तक न पूछी।

कृष्णचन्द्र ने चलते-चलते गंगाजली को मना किया था कि रामदास के रुपयों में से एक कौड़ी भी मुकदमे में न खर्च करना। उन्हें निश्चय था कि मेरी सजा अवश्य होगी। लेकिन गंगाजली का जी न माना, उसने दिल खोलकर रुपये खर्च किए। वकील लोग अंत तक यही कहते रहे कि वे छूट जायंगे।

जज के फैसले की हाईकोर्ट में अपील हुई। महंतजी की सजा में कमी न हुई। पर कृष्णचन्द्र की सजा घट गई। पांच के चार वर्ष रह गए।

गंगाजली आने को तो मैके आई, पर अपनी भूल पर पछताया करती थी। यह वह मैका न था, जहां उसने अपने बालकपन की गुडियां खेली थीं, मिट्टी के घरौंदे बनाए थे, माता-पिता की गोद में पली थी। माता पिता का स्वर्गवास हो चुका था, गांव में पुराने आदमी न दिखाई देते थे। यहां तक कि पेड़ों की जगह खेत और खेतों की जगह पेड़ लगे हुए थे। वह अपना घर मुश्किल से पहचान सकी और सबसे दुख की बात यह थी कि वहां उसका प्रेम या आदर न था, उसकी भावज जाह्नवी उससे मुंह फुलाए रहती। जाह्नवी अब अपने घर बहुत कम रहती। पड़ोसियों के यहां बैठी हुई गंगाजली का दुखड़ा रोया करती। उसके दो लड़कियां थीं। वह भी सुमन और शान्ता से दूर-दूर रहतीं।

गंगाजली के पास रामदास के रुपयों में से कुछ न बचा था। यही चार-पांच सौ रुपये रह गए थे, जो उसने पहले काट-कपटकर जमा किए थे। इसलिए वह उमानाथ से सुमन के विवाह के विषय में कुछ न कहती। यहां तक कि छः महीने बीते गए। कृष्णचन्द्र ने जहां पहला संबंध ठीक किया था, वहां से साफ जवाब आ चुका था।

लेकिन उमानाथ को यह चिंता बराबर लगी रहती थी। उन्हें जब अवकाश मिलता, दो-चार दिन के लिए वर की खोज में निकल जाते। ज्योंही वह किसी गांव में पहुंचते, वहां हलचल मच जाती। युवक गठरियों से वह कपड़े निकालते, जिन्हें वह बारातों में पहना करते थे। अंगूठियां और मोहनमाले मंगनी मांगकर पहन लेते। माताएं अपने बालकों को नहला-

धुलाकर आंखों में काजल लगा देतीं और धुले हुए कपड़े पहनाकर खेलने भेजतीं। विवाह के इच्छुक बूढ़े नाइयों से मोंछ कटवाते और पके हुए बाल चुनवाने लगते। गांव के नाई और कहार खेतों से बुला लिए जाते, कोई अपना बड़प्पन दिखाने के लिए उनसे पैर दबवाता, कोई धोती छंटवाता। जब तक उमानाथ वहां रहते, स्त्रियां घरों से न निकलतीं, कोई अपने हाथ से पानी न भरता, कोई खेत में न जाता। पर उमानाथ की आंखों में यह घर न जंचते थे। सुमन कितनी रूपवती, कितनी गुणशील, कितनी पढ़ी-लिखी लड़की है, इन मूर्खों के घर पड़कर उसका जीवन नष्ट हो जायगा।

अंत में उमानाथ ने निश्चय किया कि शहर में कोई वर ढूंढ़ना चाहिए। सुमन के योग्य वर देहात में नहीं मिल सकता। शहर वालों की लंबी-चौड़ी बातें सुनीं, तो उनके होश उड़ गए। बड़े आदमियों का तो कहना ही क्या, दफ्तरों के मुसद्दी और क्लर्क भी हजारों का राग अलापते थे। लोग उनकी सूरत देखकर भड़क जाते। दो-चार सज्जन उनकी कुल-मर्यादा का हाल सुनकर विवाह करने को उत्सुक हुए, पर कहीं तो कुंडली न मिली और कहीं उमानाथ का मन ही न भरा। वह अपनी कुल-मर्यादा से नीचे न उतरना चाहते थे।

इस प्रकार पूरा एक साल बीत गया। उमानाथ दौड़ते-दौड़ते तंग आ गए, यहां तक कि उनकी दशा औषधियों के विज्ञापन बांटने वाले उस मनुष्य की-सी हो गई, जो दिन-भर बाबू-संप्रदाय का विज्ञापन देने के बाद संध्या को अपने पास विज्ञापनों का भारी पुलिंदा पड़ा हुआ पाता है और उस बोझ से मुक्त होने के लिए उन्हें सर्वसाधारण को देने लगता है ! उन्होंने मान, विद्या, रूप और गुण की ओर से आंखें बंद करके केवल कुलीनता को पकड़ा। इसे वह किसी भांति न छोड़ सकते थे।

माघ का महीना था। उमानाथ स्नान करने गए। घर लौटे तो सीधे गंगाजली के पास जाकर बोले—लो बहन, मनोरथ पूरा हो गया। बनारस में विवाह ठीक हो गया।

गंगाजली—भला, किसी तरह तुम्हारी दौड़-धूप तो ठिकाने लगी। लड़का पढ़ता है न?

उमानाथ—पढ़ता नहीं, नौकर है। एक कारखाने में पंद्रह रुपये का बाबू है।

गंगाजली—घर-द्वार है न?

उमानाथ—शहर में किसके घर होता है। सब किराए के घर में रहते हैं।

गंगाजली—भाई-बंद, मां-बाप हैं?

उमानाथ—मां-बाप दोनों मर चुके हैं और भाई-बंद शहर में किसके होते हैं?

गंगाजली—उमर क्या है?

उमानाथ—[illegible], कोई तीस साल के लगभग होगी।

गंगाजली—देखने-सुनने में कैसा है?

उमानाथ—सौ में एक। शहर में कोई कुरूप तो होता ही नहीं। सुंदर बाल, उजले कपड़े सभी के होते हैं और गुण, शील, बातचीत का तो पूछना ही क्या ! बात करते मुंह से फूल झड़ते हैं। नाम गजाधरप्रसाद है।

गंगाजली—तो दुआह होगा?

उमानाथ—हां, है तो दुआह, पर इससे क्या? शहर में कोई बुड्ढा तो होता ही नहीं। जवान लड़के होते हैं और बुड्ढे जवान, उनकी जवानी सदाबहार होती है। वही हंसी-दिल्लगी, वही तेल-फुलेल का शौक। लोग जवान ही रहते हैं और जवान ही मर जाते हैं।

गंगाजली—कुल कैसा है?

उमानाथ—बहुत ऊंचा। हमसे दो बिस्वे बड़ा है। पसंद है न?

गंगाजली ने उदासीन भाव से कहा—जब तुम्हें पसंद है, तो मुझे भी पसंद ही है।

पांच

फागुन में सुमन का विवाह हो गया। गंगाजली दामाद को देखकर बहुत रोई। उसे ऐसा दुःख हुआ, मानो किसी ने सुमन को कुएं में डाल दिया।

सुमन ससुराल आई तो यहां की अवस्था उससे भी बुरी पाई, जिसकी उसने कल्पना की थी। मकान में केवल दो कोठरियां थीं और एक सायबान। दीवारों में चारों ओर लोनी लगी थी। बाहर से नालियों की दुर्गंध आती रहती थी। धूप और प्रकाश का कहीं गुजर नहीं। इस घर का किराया तीन रुपये महीना देना पड़ता था।

सुमन के दो महीने आराम से कटे। गजाधर की एक बूढ़ी फूआ घर का सारा काम-काज करती थी। लेकिन गर्मियों में शहर में हैजा फैला और बुढ़िया चल बसी। अब वह बड़े फेर में पड़ी। चौका-बर्तन करने के लिए महरियां तीन रुपया से कम पर राजी न होती थीं। दो दिन घर में चूल्हा नहीं जला। गजाधर सुमन से कुछ न कह सकता था। दोनों दिन बाजार से पूरियां लाया, वह सुमन को प्रसन्न रखना चाहता था। उसके रूप-लावण्य पर मुग्ध हो गया था। तीसरे दिन वह घड़ी रात रहे उठा और सारे बर्तन मांज डाले, चौका लगा दिया, नल से पानी भर लाया। सुमन जब सोकर उठी, तो यह कौतुक देखकर दंग रह गई। समझ गई कि इन्होंने सारा काम किया। लज्जा के मारे उसने कुछ न पूछा। संध्या को उसने आप ही सारा काम किया। बर्तन मांजती थी और रोती जाती थी।

पर थोड़े ही दिनों में उस इन कामों की आदत पड़ गई। उसे अपने जीवन में आनंद-सा अनुभव होने लगा। गजाधर को ऐसा मालूम होता था, मानो जग जीत लिया है। अपने मित्रों से सुमन की प्रशंसा करता फिरता। स्त्री नहीं है, देवी है। इतने बड़े घर की लड़की, घर का छोटे-से-छोटा काम भी अपने हाथ से करती है। भोजन तो ऐसा बनाती है कि दाल-रोटी में पकवान का-सा स्वाद आ जाता है। दूसरे महीने में उसने वेतन पाया, तो सब-का-सब सुमन के हाथों में रख दिया। सुमन को आज स्वच्छंदता का आनंद प्राप्त हुआ। अब उसे एक-एक पैसे के लिए किसी के सामने हाथ न फैलाना पड़ेगा। वह इन रुपयों को जैसे चाहे, खर्च कर सकती है। जो चाहे खा-पी सकती है।

पर गृह-प्रबंध में कुशल न होने के कारण वह आवश्यक और अनावश्यक खर्च का ज्ञान न रखती थी। परिणाम यह हुआ कि महीने में दस दिन बाकी थे कि सुमन ने सब रुपये खर्च कर डाले थे। उसने गृहिणी बनने की नहीं, इंद्रियों के आनंद-भोग की शिक्षा पाई थी। गजाधर ने सुना, तो सन्नाटे में आ गया। अब महीना कैसे कटेगा? उसके सिर पर एक पहाड़-सा टूट पड़ा। इसकी शंका उसे कुछ पहले ही हो रही थी। सुमन से तो कुछ न बोला, पर सारे दिन उस पर चिंता सवार रही, अब बीच में रुपये कहां से आवें?

गजाधर ने सुमन को घर की स्वामिनी बना तो दिया था, पर वह स्वभाव से कृपण था। जलपान की जलेबियां उसे विष के समान लगती थीं। दाल में घी देखकर उसके हृदय में शूल होने लगता। वह भोजन करता तो बटुली की ओर देखता कि कहीं अधिक तो नहीं बना है। दरवाजे पर दाल-चावल फेंका देखकर शरीर में ज्वाला-सी लग जाती थी, पर सुमन की मोहिनी सूरत ने उसे वशीभूत कर लिया था। मुंह से कुछ न कह सकता।

पर आज जब कई आदमियों से उधार मांगने पर रुपये न मिले, तो वह अधीर हो गया। घर में आकर बोला-'रुपये तो तुमने खर्च कर दिए, अब बताओ, कहां से आएं?'

सुमन-मैंने कुछ उड़ा तो नहीं दिए।

गजाधर-उड़ाए नहीं, पर यह तो तुम्हें मालूम था कि इसी में महीने भर चलाना है। उसी हिसाब से खर्च करना था।

सुमन-उतने रुपयों में बरकत थोड़े ही हो जायगी।

गजाधर-तो मैं डाका तो नहीं मार सकता।

बातों-बातों में झगड़ा हो गया। गजाधर ने कुछ कठोर बातें कहीं। अंत को सुमन ने अपनी हंसुली गिरवी रखने को दी और गजाधर भुनभुनाता हुआ लेकर चला गया।

लेकिन सुमन का जीवन सुख में कटा था। उसे अच्छा खाने, अच्छा पहिनने की आदत थी। अपने द्वार पर खोमचे वालों की आवाज सुनकर उससे रहा न जाता। अब तक वह गजाधर को भी खिलाती थी। अब से अकेली ही खा जाती। जिह्वा-रस भोगने के लिए पति से कपट करने लगी।

धीरे-धीरे सुमन के सौंदर्य की चर्चा मुहल्ले में फैली। पास-पड़ोस की स्त्रियां आने लगीं। सुमन उन्हें नीच दृष्टि से देखती, उनसे खुलकर न मिलती। पर उसके रीति-व्यवहार में वह गुण था, जो ऊंचे कुलों में स्वाभाविक होता है। पड़ोसियों ने शीघ्र ही उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया। सुमन उनके बीच में रानी मालूम होती थी। उसकी सगर्वा प्रकृति को इसमें अत्यंत आनंद प्राप्त होता था। वह उन स्त्रियों के सामने अपने गुणों को बढ़ाकर दिखाती। वे अपने भाग्य को रोतीं, सुमन अपने भाग्य को सराहती। वे किसी की निंदा करतीं, तो सुमन उन्हें समझाती। वह उनके सामने रेशमी साड़ी पहनकर बैठती, जो वह मैके से लाई थी। रेशमी जाकट खूंटी पर लटका देती। उन पर इस प्रदर्शन का प्रभाव सुमन की बातचीत से कहीं अधिक होता था। वे आभूषण के विषय में उसकी सम्मति को बड़ा महत्त्व देतीं। नए गहने बनवातीं तो सुमन से सलाह लेतीं, साड़ियां लेतीं तो पहले सुमन को अवश्य दिखा लेतीं। सुमन गौर से उन्हें निष्काम भाव से सलाह देती, पर उसे मन में बड़ा दुःख होता। वह सोचती, यह सब नए-नए गहने बनवाती हैं, नए-नए कपड़े लेती हैं और यहां रोटियों के लाले हैं। क्या संसार में मैं ही सबसे अभागिनी हूं? उसने अपने घर यही सीखा था कि मनुष्य को जीवन में सुख-भोग करना चाहिए। उसने कभी वह धर्म-चर्चा न सुनी थी, वह धर्म-शिक्षा न पाई थी, जो मन में संतोष का बीजारोपण करती है। उसका हृदय असंतोष से व्याकुल रहने लगा।

गजाधर इन दिनों बड़ी मेहनत करता। कारखाने से लौटते ही एक दूसरी दूकान पर हिसाब-किताब लिखने चला जाता था। वहां से आठ बजे रात को लौटता। इस काम के लिए उसे पांच रुपये और मिलते थे। पर उसे अपनी आर्थिक दशा में कोई अंतर न दिखाई देता था। उसकी सारी कमाई खाने-पीने में उड़ जाती थी। उसका संचयशील हृदय इस 'खा-पी बराबर'

दशा से बहुत दुःखी रहता था। उस पर सुमन उसके सामने अपने फूटे कर्म का रोना रो-रोकर उसे और भी हताश कर देती थी। उसे स्पष्ट दिखाई देता था कि सुमन का हृदय मेरी ओर से शिथिल होता जाता है। उसे यह न मालूम था कि सुमन मेरी प्रेम-रसपूर्ण बातों से मिठाई के दोनों को अधिक आनंदप्रद समझती है। अतएव वह अपने प्रेम और परिश्रम से फल न पाकर, उसे अपने शासनाधिकार से प्राप्त करने की चेष्टा करने लगा। इस प्रकार रस्सी में दोनों ओर से तनाव होने लगा।

हमारा चरित्र कितना ही दृढ़ हो, पर उस पर संगति का असर अवश्य होता है। सुमन अपने पड़ोसियों को जितनी शिक्षा देती थी, उससे अधिक उनसे ग्रहण करती थी। हम अपने गार्हस्थ्य जीवन की ओर से कितने बेसुध हैं, उसके लिए किसी तैयारी, किसी शिक्षा की जरूरत नहीं समझते। गुड़िया खेलने वाली बालिका, सहेलियों के साथ विहार करने वाली युवती, गृहिणी बनने के योग्य समझी जाती है। अल्हड़ बछड़े के कंधे पर भारी जुआ रख दिया जाता है। ऐसी दशा में यदि हमारा गार्हस्थ्य-जीवन आनंदमय न हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। जिन महिलाओं के साथ सुमन उठती-बैठती थी, वे अपने पतियों को इंद्रियसुख का यंत्र समझती थीं। पति, चाहे जैसे हो, अपनी स्त्री को सुंदर आभूषणों से, उत्तम वस्त्रों से सजाए, उसे स्वादिष्ट पदार्थ खिलाए। यदि उसमें वह सामर्थ्य नहीं है तो वह निखट्टू है, अपाहिज है, उसे विवाह करने का कोई अधिकार नहीं था, वह आदर और प्रेम के योग्य नहीं। सुमन ने भी यही शिक्षा प्राप्त की और गजाधरप्रसाद जब कभी उसके किसी भी काम से नाराज होते, उन्हें पुरुषों के कर्त्तव्य पर एक लंबा उपदेश सुनना पड़ता था।

उस मुहल्ले में रसिक युवकों तथा शोहदों की कमी न थी। स्कूल से आते हुए युवक सुमन के द्वार की ओर टकटकी लगाते हुए चले जाते। शोहदे उधर से निकलते तो राधा और कान्हा के गीत गाने लगते। सुमन कोई काम भी करती हो, पर उन्हें चिक की आड़ से एक झलक दिखा देती। उसके चंचल हृदय को इस ताक-झांक में असीम आनंद प्राप्त होता था। किसी कुवासना से नहीं, केवल अपनी यौवन की छटा दिखाने के लिए, केवल दूसरों के हृदय पर विजय पाने के लिए वह यह खेल खेलती थी।

छः

सुमन के घर के सामने भोली नाम की एक वेश्या का मकान था। भोली नित नए शृंगार करके अपने कोठे के छज्जे पर बैठती। पहर रात तक उसके कमरे से मधुर गान की ध्वनि आया करती। कभी-कभी वह फिटन पर हवा खाने जाया करती। सुमन उसे घृणा की दृष्टि से देखती थी।

सुमन ने सुन रखा था कि वेश्याएं अत्यंत दुश्चरित्र और कुलटा होती हैं। वह अपने कौशल से नवयुवकों को अपने मायाजाल में फंसा लिया करती हैं। कोई भलामानुस उनसे बातचीत नहीं करता, केवल शोहदे रात को छिपकर उनके यहां जाया करते हैं। भोली ने कई बार उसे चिक की आड़ में खड़े देखकर इशारे से बुलाया था, पर सुमन उससे बोलने में अपना अपमान समझती। वह अपने को उससे बहुत श्रेष्ठ समझती थी। मैं दरिद्र सही, दीन सही, पर अपनी

मर्यादा पर दृढ़ हूं, किसी भलेमानुस के घर में मेरी रोक तो नहीं, कोई मुझे नीच तो नहीं समझता! वह कितना ही भोग-विलास करे, पर उसका कहीं आदर तो नहीं होता। बस, अपने कोठे पर बैठी अपनी निर्लज्जता और अधर्म का फल भोगा करे। लेकिन सुमन को शीघ्र ही मालूम हुआ कि मैं इसे जितना नीच समझती हूं, उससे वह कहीं ऊंची है।

आषाढ़ के दिन थे। गर्मी के मारे सुमन का दम फूल रहा था। संध्या को उससे किसी तरह न रहा गया। उसने चिक उठा दी और द्वार पर बैठी पंखा झल रही थी। देखती क्या है कि भोलीबाई के दरवाजे पर किसी उत्सव की तैयारियां हो रही हैं। भिश्ती पानी का छिड़काव कर रहे थे। आंगन में एक शामियाना ताना जा रहा था। उसे सजाने के लिए बहुत-से फूल-पत्ते रखे हुए थे। शीशे के सामान ठेलों पर लदे चले आते थे। फर्श बिछाया जा रहा था। बीसों आदमी इधर-से-उधर दौड़ते-फिरते थे, इतने में भोली की निगाह उस पर गई। सुमन के समीप आकर बोली—आज मेरे यहां मौलूद है। देखना चाहो तो परदा करा दूं?

सुमन ने बेपरवाही से कहा—मैं यहीं बैठे-बैठे देख लूंगी।

भोली—देख तो लोगी, पर सुन न सकोगी। हर्ज क्या है, ऊपर परदा करा दूं?

सुमन—मुझे सुनने की उतनी इच्छा नहीं है।

भोली ने उसकी ओर एक करुणासूचक दृष्टि से देखा और मन में कहा, यह गंवारिन अपने मन में न जाने क्या समझे बैठी है। अच्छा, आज तू देख ले कि मैं कौन हूं? वह बिना कुछ कहे चली गई।

रात हो रही थी। सुमन का चूल्हे के सामने जाने का जी न चाहता था। बदन में यों ही आग लगी हुई है। आंच कैसे सही जायगी, पर सोच-विचारकर उठी। चूल्हा जलाया, खिचड़ी डाली और फिर आकर वहां तमाशा देखने लगी। आठ बजते-बजते शामियाना गैस के प्रकाश से जगमगा उठा। फूल-पत्तों की सजावट उसकी शोभा को और भी बढ़ा रही थी। चारों ओर से दर्शक आने लगे। कोई बाइसिकिल पर आता था, कोई टमटम पर, कोई पैदल। थोड़ी देर में दो-तीन फिटनें भी आ पहुंचीं और उनमें से कई बाबू लोग उतर पड़े। एक घंटे में सारा आंगन भर गया। कई सौ मनुष्यों का जमाव हो गया। फिर मौलाना साहब की सवारी आई। उनके चेहरे से प्रतिभा झलक रही थी। वह सजे हुए सिंहासन पर मसनद लगाकर बैठ गए और मौलूद होने लगा। कई आदमी मेहमानों का स्वागत-सत्कार कर रहे थे। कोई गुलाब छिड़क रहा था, कोई खसदान पेश करता था। सभ्य पुरुषों का ऐसा समूह सुमन ने कभी न देखा था।

नौ बजे गजाधरप्रसाद आए। सुमन ने उन्हें भोजन कराया। भोजन करके गजाधर भी जाकर उसी मंडली में बैठे। सुमन को तो खाने की भी सुध न रही। बारह बजे रात तक वह वहीं बैठी रही—यहां तक कि मौलूद समाप्त हो गया। फिर मिठाई बंटी और बारह बजे सभा विसर्जित हुई। गजाधर घर में आए तो सुमन ने कहा—यह सब कौन लोग बैठे हुए थे?

गजाधर—मैं सबको पहचानता थोड़े ही हूं। पर भले-बुरे सभी थे। शहर के कई रईस भी थे।

सुमन—क्या यह लोग वेश्या के घर आने में अपना अपमान नहीं समझते?

गजाधर—अपमान समझते तो आते ही क्यों?

सुमन—तुम्हें तो वहां जाते हुए संकोच हुआ होगा?

गजाधर–जब इतने भलेमानुस बैठे हुए थे, तो मुझे क्यों संकोच होने लगा। वह सेठजी भी आए हुए थे, जिनके यहां मैं शाम को काम करने जाया करता हूं।

सुमन ने विचारपूर्ण भाव से कहा–मैं समझती थी कि वेश्याओं को लोग बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते हैं।

गजाधर–हां, ऐसे मनुष्य भी हैं, गिने-गिनाए। पर अंग्रेजी शिक्षा ने लोगों को उदार बना दिया है। वेश्याओं का अब उतना तिरस्कार नहीं किया जाता। फिर भोलीबाई का शहर में बड़ा मान है।

आकाश में बादल छा रहे थे। हवा बंद थी। एक पत्ती भी न हिलती थी। गजाधरप्रसाद दिन-भर के थके हुए थे। चारपाई पर जाते ही निद्रा में निमग्न हो गए, पर सुमन को बहुत देर तक नींद न आई।

दूसरे दिन संध्या को जब फिर चिक उठाकर बैठी, तो उसने भोली को छज्जे पर बैठे देखा। उसने बरामदे में निकलकर भोली से कहा–रात तो आपके यहां बड़ी धूम थी।

भोली समझ गई कि मेरी जीत हुई। मुस्कराकर बोली–तुम्हारे लिए शीरीनी भेज दूं? हलवाई की बनाई हुई है। ब्राह्मण लाया है।

सुमन ने संकोच से कहा–भिजवा देना।

सात

सुमन को ससुराल आए डेढ़ साल के लगभग हो चुका था, पर उसे मैके जाने का सौभाग्य न हुआ था। वहां से चिट्ठियां आती थीं। सुमन उत्तर में अपनी मां को समझाया करती, मेरी चिंता मत करना, मैं बहुत आनंद से हूं, पर अब उसके उत्तर अपनी विपत्ति की कथाओं से भरे होते थे। मेरे जीवन के दिन रो-रोकर कट रहे हैं। मैंने आप लोगों का क्या बिगाड़ा था कि मुझे इस अंधे कुएं में धकेल दिया। यहां न रहने को घर है, न पहिनने को वस्त्र, न खाने को अन्न। पशुओं की भांति रहती हूं।

उसने अपनी पड़ोसिनों से मैके का बखान करना छोड़ दिया। कहां तो उनसे अपने पति की सराहना किया करती थी, कहां अब उसकी निंदा करने लगी। मेरा कोई पूछने वाला नहीं है। घर वालों ने समझ लिया कि मर गई। घर में सब कुछ है; पर मेरे किस काम का? वह समझते होंगे, यहां मैं फूलों की सेज पर सो रही हूं, और मेरे ऊपर जो बीत रही है, वह मैं ही जानती हूं।

गजाधरप्रसाद के साथ उसका बर्ताव पहले से कहीं रूखा हो गया। वह उन्हीं को अपनी इस दशा का उत्तरदायी समझती थी। वह देर में सोकर उठती, कई दिन घर में झाड़ू नहीं देती। कभी-कभी गजाधर को बिना भोजन किए काम पर जाना पड़ता। उसकी समझ में न आता कि यह क्या मामला है, यह कायापलट क्यों हो गई है।

सुमन को अपना घर अच्छा न लगता। चित्त हर घड़ी उचटा रहता। दिन-दिन पड़ोसिनों के घर बैठी रहती।

एक दिन गजाधर आठ बजे लौटे, तो घर का दरवाजा बंद पाया। अंधेरा छाया हुआ था। सोचने लगे, रात को वह कहां गई है? अब यहां तक नौबत पहुंच गई? किवाड़ खटखटाने लगे कि कहीं पड़ोस में होगी, तो सुनकर चली आवेगी। मन में निश्चय कर लिया था कि आज उसकी खबर लूंगा। सुमन उस समय भोलीबाई के कोठे पर बैठी हुई बातें कर रही थी। भोली ने आज उसे बहुत आग्रह करके बुलाया था। सुमन इंकार कैसे करती? उसने अपने दरवाजे का खटखटाना सुना, तो घबराकर उठ खड़ी हुई और भागी हुई अपने घर आई। बातों में उसे मालूम ही न हुआ कि कितनी रात चली गई। उसने जल्दी से किवाड़ खोले, चटपट दीया जलाया और चूल्हे में आग जलाने लगी। उसका मन अपना अपराध स्वीकार कर रहा था। एकाएक गजाधर ने क्रुद्ध भाव से कहा—तुम इतनी रात तक वहां बैठी क्या कर रही थीं? क्या लाज-शर्म बिल्कुल घोलकर पी ली है?

सुमन ने दीन भाव से उत्तर दिया—उसने कई बार बुलाया तो चली गई। कपड़े उतारो, अभी खाना तैयार हुआ जाता है। आज तुम और दिनों से जल्दी आए हो।

गजाधर—खाना पीछे बनाना, मैं ऐसा भूखा नहीं हूं। पहले यह बताओ कि तुम वहां मुझसे पूछे बिना गई क्यों? क्या तुमने मुझे बिल्कुल मिट्टी का लोंदा ही समझ लिया है?

सुमन—सारे दिन अकेले इस कुप्पी में बैठे भी तो नहीं रहा जाता।

गजाधर—तो इसलिए अब वेश्याओं से मेल-जोल करोगी? तुम्हें अपनी इज्जत-आबरू का भी कुछ विचार है?

सुमन—क्यों, भोली के घर जाने में कोई हानि है? उसके घर तो बड़े-बड़े लोग आते हैं, मेरी क्या गिनती है।

गजाधर—बड़े-बड़े भले ही आवें, लेकिन तुम्हारा वहां जाना बड़ी लज्जा की बात है। मैं अपनी स्त्री को वेश्या से मेल-जोल करते नहीं देख सकता। तुम क्या जानती हो कि जो बड़े-बड़े लोग उसके घर आते हैं, यह कौन लोग हैं? केवल धन से कोई बड़ा थोड़े ही हो जाता है? धर्म का महत्त्व धन से कहीं बढ़कर है। तुम उस मौलूद के दिन जमाव देखकर धोखे में आ गई होगी, पर यह समझ लो कि उनमें से एक भी सज्जन पुरुष नहीं था। मेरे सेठजी लाख धनी हों, पर उन्हें मैं अपनी चौखट न लांघने दूंगा। यह लोग धन के घमंड में धर्म की परवाह नहीं करते। उनके आने से भोली पवित्र नहीं हो गई है। मैं तुम्हें सचेत कर देता हूं कि आज से फिर कभी उधर मत जाना, नहीं तो अच्छा न होगा।

सुमन के मन में बात आ गई। ठीक ही है, मैं क्या जानती हूं कि वह कौन लोग थे। धनी लोग तो वेश्याओं के दास हुआ ही करते हैं। यह बात रामभोली भी कह रही थी। मुझे बड़ा धोखा हो गया था।

सुमन को इस विचार से बड़ा संतोष हुआ। उसे विश्वास हो गया कि वे लोग प्रकृति के विषय-वासना वाले मनुष्य थे। उसे अपनी दशा अब उतनी दुखदायी न प्रतीत होती थी। उसे भोली से अपने को ऊंचा समझने के लिए एक आधार मिल गया था।

सुमन की धर्मनिष्ठा जागृत हो गई। वह भोली पर अपनी धार्मिकता का सिक्का जमाने के लिए नित्य गंगास्नान करने लगी। एक रामायण मंगवाई और कभी-कभी अपनी सहेलियों को उसकी कथाएं सुनाती। कभी अपने-आप उच्च स्वर में पढ़ती। इससे उसकी आत्मा को तो शांति क्या होती, पर मन को बहुत संतोष होता था। चैत का महीना था। रामनवमी के दिन

सुमन कई सहेलियों के साथ एक बड़े मंदिर में जन्मोत्सव देखने गई। मंदिर खूब सजाया हुआ था। बिजली की बत्तियों से दिन का-सा प्रकाश हो रहा था, बड़ी भीड़ थी। मंदिर के आंगन में तिल धरने की भी जगह न थी। संगीत की मधुर ध्वनि आ रही थी। सुमन ने खिड़की से आंगन में झांका, तो क्या देखती है कि वही पड़ोसिन भोली बैठी हुई गा रही है। सभा में एक-से-एक बड़े आदमी बैठे हुए थे, कोई वैष्णव तिलक लगाए, कोई भस्म रमाए, कोई गले में कंठी-माला डाले और राम-नाम की चादर ओढ़े, कोई गेरुए वस्त्र पहने। उनमें से कितनों ही को सुमन नित्य गंगास्नान करते देखती थी। वह उन्हें धर्मात्मा, विद्वान् समझती थी। वही लोग यहां इस भांति तन्मय हो रहे थे, मानो स्वर्गलोक में पहुंच गए हैं। भोली जिसकी ओर कटाक्षपूर्ण नेत्रों से देखती थी, वह मुग्ध हो जाता था, मानो साक्षात् राधाकृष्ण के दर्शन हो गए। इस दृश्य ने सुमन के हृदय पर व्रज का-सा आघात किया। उसका अभिमान चूर-चूर हो गया। वह आधार जिस पर वह पैर जमाए खड़ी थी, पैरों के नीचे से सरक गया। सुमन वहां एक क्षण भी न खड़ी रह सकी। भोली के सामने केवल धन ही सिर नहीं झुकाता, धर्म भी उसका कृपाकांक्षी है। धर्मात्मा लोग भी उसका आदर करते हैं। वही वेश्या—जिसे मैं अपने धर्म-पाखंड से परास्त करना चाहती हूं—यहां महात्माओं की सभा में, ठाकुरजी के पवित्र निवास-स्थान में आदर और सम्मान का पात्र बनी हुई है और मेरे लिए कहीं खड़े होने की जगह नहीं।

सुमन ने अपने घर आकर रामायण बस्ते में बांधकर रख दी। गंगास्नान तथा व्रत से उसका मन फिर गया। कर्णधार-रहित नौका के समान उसका जोवन फिर डांवाडोल होने लगा।

आठ

गजाधरप्रसाद की दशा उस मनुष्य की-सी थी, जो चोरों के बीच में अशर्फियों की थैली लिए बैठा हो। सुमन का वह मुखकमल, जिस पर वह कभी भौंरे की भांति मंडराया करता था, अब उसकी आंखों में जलती हुई आग के समान था। वह उससे दूर-दूर रहता, उसे भय था कि वह मुझे जला न दे। स्त्रियों का सौंदर्य उनका पति-प्रेम है। इसके बिना उनकी सुंदरता इन्द्रायण का फल है, विषमय और दग्ध करने वाला।

गजाधर ने सुमन को सुख से रखने के लिए, अपने से जो कुछ हो सकता था, सब करके देख लिया और अपनी स्त्री के लिए आकाश के तारे तोड़ लाना उसकी सामर्थ्य से बाहर था।

इन दिनों उसे सबसे बड़ी चिंता अपना घर बदलने की थी। इस घर में आंगन नहीं था, इसलिए जब कभी वह सुमन से कहता कि चिक के पास मत खड़ी हुआ करो, तो वह चट उत्तर देती, क्या इसी काल-कोठरी में पड़े-पड़े मर जायं ! घर में आंगन होगा, तब तो वह यह बहाना न कर सकेगी। इसके अतिरिक्त वह यह भी चाहता था कि सुमन का इन स्त्रियों से साथ छूट जाय। उसे यह निश्चय हो गया था कि उन्हीं की कुसंगति से सुमन का यह हाल हो गया है। वह दूसरे मकान की खोज में चारों ओर जाता, पर किराया सुनते ही निराश होकर लौट आता है।

एक दिन वह सेठजी के यहां से आठ बजे रात को लौटा, तो क्या देखता है कि भोलीबाई उसकी चारपाई पर बैठी सुमन से हंस-हंसकर बात कर रही है। क्रोध के मारे गजाधर के होंठ फड़कने लगे। भोली ने उसे देखा तो जल्दी से बाहर निकल आई और बोली—अगर मुझे मालूम होता कि आप सेठजी के यहां नौकर हैं, तो अब तक कभी आपकी तरक्की हो जाती। यह आज बहूजी से मालूम हुआ। सेठजी मेरे ऊपर बड़ी निगाह रखते हैं।

इन शब्दों ने गजाधर के घाव पर नमक छिड़क दिया। यह मुझे इतना नीच समझती है कि मैं इसकी सिफारिश से अपनी तरक्की कराऊंगा। ऐसी तरक्की पर लात मारता हूं। उसने भोली को कुछ जवाब न दिया।

सुमन ने उसके तेवर देखे, तो समझ गई कि आग भड़का ही चाहती है, पर वह उसके लिए तैयार बैठी हुई थी। गजाधर ने भी अपने क्रोध को छिपाया नहीं। चारपाई पर बैठते हुए बोला—तुमने फिर भोली से नाता जोड़ा? मैंने उस दिन मना नहीं किया था?

सुमन ने सावधान होकर उत्तर दिया—उसमें कोई छूत तो नहीं लगी है। शील-स्वभाव में वह किसी से घटकर नहीं, मान-मर्यादा में किसी से कम नहीं, फिर उससे बातचीत करने में मेरी क्या हेठी हुई जाती है? वह चाहे तो हम जैसों को नौकर रख ले।

गजाधर—फिर तुमने वही बेसिर-पैर की बातें कीं। मान-मर्यादा धन से नहीं होती।

सुमन—पर धर्म से तो होती है?

गजाधर—तो वह बड़ी धर्मात्मा है?

सुमन—यह भगवान् जाने, पर धर्मात्मा लोग उसका आदर करते हैं। अभी रामनवमी के उत्सव में मैंने उसे बड़े-बड़े पंडितों और महात्माओं की मंडली में गाते देखा। कोई उससे घृणा नहीं करता था। सब उसका मुंह देख रहे थे। लोग उसका आदर-सत्कार ही नहीं करते थे, बल्कि उससे बातचीत करने में अपना अहोभाग्य समझते थे। मन में वह उससे घृणा करते थे या नहीं, यह ईश्वर जाने, पर देखने में तो उस समय भोली-ही-भोली दिखाई देती थी। संसार तो व्यवहारों को ही देखता है, मन की बात कौन किसकी जानता है?

गजाधर—तो तुमने उन लोगों के बड़े-बड़े तिलक-छापे देखकर ही उन्हें धर्मात्मा समझ लिया? आजकल धर्म तो धूर्तों का अड्डा बना हुआ है। इस निर्मल सागर में एक-से-एक मगरमच्छ पड़े हुए हैं। भोले-भाले भक्तों को निगल जाना उनका काम है। लंबी-लंबी जटाएं, लंबे-लंबे तिलक छापे और लंबी-लंबी दाढ़ियां देखकर लोग धोखे में आ जाते हैं, पर वह सब-के-सब महापाखंडी, धर्म के उज्ज्वल नाम को कलंकित करने वाले, धर्म के नाम पर टका कमानेवाले, भोग-विलास करने वाले पापी हैं। भोली का आदर-सम्मान उनके यहां न होगा, तो किसके यहां होगा?

सुमन ने सरल भाव से पूछा—फुसला रहे हो या सच कह रहे हो?

गजाधर ने उसकी ओर करुण दृष्टि से देखकर कहा—नहीं सुमन, वास्तव में यही बात है। हमारे देश में सज्जन मनुष्य बहुत कम हैं, पर अभी देश उनसे खाली नहीं है। वह दयावान् होते हैं, सदाचारी होते हैं, सदा परोपकार में तत्पर रहते हैं। भोली यदि अप्सरा बनकर आवे, तो वह उसकी ओर आंख उठाकर भी न देखेंगे।

सुमन चुप हो गई। वह गजाधर की बातों पर विचार कर रही थी।

नौ

दूसरे दिन से सुमन ने चिक के पास खड़ा होना छोड़ दिया। खोंचे वाले आते और पुकार कर चले जाते। छैले गजल गाते हुए निकल जाते। चिक की आड़ में अब उन्हें कोई न दिखाई देता था। भोली ने कई बार बुलाया, लेकिन सुमन ने बहाना कर दिया कि मेरा जी अच्छा नहीं है। दो-तीन बार वह स्वयं आई, पर सुमन उससे खुलकर न मिली।

सुमन को यहां आए अब दो साल हो गए थे। उसकी रेशमी साड़ियां फट चली थीं। रेशमी जाकटें अब तार-तार हो गई थीं। सुमन अब अपनी मंडली की रानी न थी। उसकी बातें उतने आदर से न सुनी जाती थीं। उसका प्रभुत्व मिटा जाता था। उत्तम वस्त्र-विहीन होकर वह अपने उच्चासन से गिर गई थी। इसलिए वह पड़ोसिनों के घर भी न जाती। पड़ोसिनों का आना-जाना भी कम हो गया था। सारे दिन अपनी कोठरी में पड़ी रहती। कभी कुछ पढ़ती, कभी सोती।

बंद कोठरी में पड़े-पड़े उसका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। सिर में पीड़ा हुआ करती। कभी बुखार आ जाता, कभी दिल में धड़कन होने लगती। मंदाग्नि के लक्षण दिखाई देने लगे। साधारण कामों से भी जी घबराता। शरीर क्षीण हो गया और कमल-सा बदन मुरझा गया।

गजाधर को चिंता होने लगी। कभी-कभी वह सुमन पर झुंझलाता और कहता—जब देखो तब पड़ी रहती हो। जब तुम्हारे रहने से मुझे इतना भी सुख नहीं कि ठीक समय पर भोजन मिल जाए तो तुम्हारा रहना न रहना दोनों बराबर हैं। पर शीघ्र ही उसे सुमन पर दया आ जाती। अपनी स्वार्थपरता पर लज्जित होता।

उसे धीरे-धीरे ज्ञान होने लगा कि सुमन के सारे रोग अपवित्र वायु के कारण हैं। कहां तो उसे चिक के पास खड़े होने से मना किया करता था, मेलों में जाने और गंगास्नान करने से रोकता था, कहां अब स्वयं चिक उठा देता और सुमन को गंगास्नान करने के लिए ताकीद करता। उसके आग्रह से सुमन कई दिन लगातार स्नान करने गई और उसे अनुभव हुआ कि उसका जी कुछ हल्का हो रहा ह। फिर तो वह नियमित रूप से नहाने लगी। मुरझाया हुआ पौधा पानी पाकर फिर लहलहाने लगा।

माघ का महीना था। एक दिन सुमन की कई पड़ोसिनें भी उसके साथ नहाने चलीं। मार्ग में बेनी-बाग पड़ता था। उसमें नाना प्रकार के जीव-जन्तु पले हुए थे। पक्षियों के लिए लोहे के पतले तारों से एक विशाल गुंबद बनाया गया था। लौटती बार सबकी सलाह हुई कि बाग की सैर करनी चाहिए। सुमन तत्काल ही लौट आया करती थी, पर आज सहेलियों के आग्रह से उसे भी बाग में जाना पड़ा। सुमन बहुत देर वहां के अद्भुत जीवधारियों को देखती रही। अंत में वह थककर एक बेंच पर बैठ गई। सहसा उसके कान में आवाज आई—अरे यह कौन औरत बेंच पर बैठी है? उठ वहां से। क्या सरकार ने तेरे ही लिए बेंच रख दी है?

सुमन ने पीछे फिरकर कातर नेत्रों से देखा। बाग का रक्षक खड़ा डांट बता रहा था।

सुमन लज्जित होकर बेंच पर से उठ गई और इस अपमान को भुलाने के लिए चिड़ियों को देखने लगी। मन में पछता रही थी कि कहां-से-कहां मैं इस बेंच पर बैठी। इतने में एक किराए की गाड़ी आकर चिड़ियाघर के सामने रुकी। बाग के रक्षक ने दौड़कर गाड़ी के पट खोले। दो महिलाएं उतर पड़ीं। उनमें से एक वही सुमन की पड़ोसिन भोली थी। सुमन एक

पेड़ की आड़ में छिप गई और वह दोनों स्त्रियां बाग की सैर करने लगीं। उन्होंने बंदरों को चने खिलाए, चिड़ियों को दाने चुगाए, कछुए की पीठ पर खड़ी हुईं, फिर सरोवर में मछलियों को देखने चली गईं। रक्षक उनके पीछे-पीछे सेवकों की भांति चल रहा था। वे सरोवर के किनारे मछलियों की क्रीड़ा देख रही थीं, तब तक रक्षक ने दौड़कर दो गुलदस्ते बनाए और उन महिलाओं को भेंट किए। थोड़ी देर बाद वह दोनों आकर उसी बेंच पर बैठ गईं, जिस पर से सुमन उठा दी गई थी। रक्षक एक किनारे अदब से खड़ा था। यह दशा देखकर सुमन की आंखों से क्रोध के मारे चिंगारियां निकलने लगीं। उसके एक-एक रोम से पसीना निकल आया। देह तृण के समान कांपने लगी। हृदय में अग्नि की एक प्रचंड ज्वाला दहक उठी। वह आंचल में मुंह छिपाकर रोने लगी। ज्योंही दोनों वेश्याएं वहां से चली गईं, सुमन सिंहनी की भांति लपककर रक्षक के सम्मुख आ खड़ी हुई और क्रोध से कांपती हुई बोली—क्यों जी, तुमने मुझे तो बेंच पर से उठा दिया, जैसे तुम्हारे बाप ही की है, पर उन दोनों रांडों से कुछ न बोले?

रक्षक ने अपमानसूचक भाव से कहा—वह और तुम बराबर। आग पर घी जो काम करता है, वह इस वाक्य ने सुमन के हृदय पर किया। ओंठ चबाकर बोली—चुप रह मूर्ख ! टके के लिए वेश्याओं की जूतियां उठाता है, उस पर लज्जा नहीं आती। ले देख तेरे सामने फिर इस बेंच पर बैठती हूं, तू मुझे कैसे उठाता है।

रक्षक पहले तो कुछ डरा, किंतु सुमन के बेंच पर बैठते ही वह उसकी ओर लपका कि उसका हाथ पकड़कर उठा दे। सुमन सिंहनी की भांति आग्नेय नेत्रों से ताकती हुई उठ खड़ी हुई। उसकी ऐड़ियां उछल पड़ती थीं। सिसकियों के आवेग को बलपूर्वक रोकने के कारण मुंह से शब्द न निकलते थे। उसकी सहेलियां, जो इस समय चारों ओर से घूमघामकर चिड़ियाघर के पास आ गईं थीं, दूर से खड़ी यह तमाशा देख रही थीं। किसी की बोलने की हिम्मत न पड़ती थी।

इतने में फिर एक गाड़ी सामने से आ पहुंची। रक्षक अभी सुमन से हाथापाई कर ही रहा था कि गाड़ी में से एक भलेमानस उतरकर चौकीदार के पास झपटे हुए आए और उसे जोर से धक्का देकर बोले—क्यों बे, इनका हाथ क्यों पकड़ता है? दूर हट।

चौकीदार हकलाकर पीछे हट गया। चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं। बोला—सरकार, क्या यह आपके घर की हैं?

भद्र पुरुष ने क्रोध में कहा—हमारे घर की हों या न हों, तू इनसे हाथापाई क्यों कर रहा था? अभी रिपोर्ट कर दूं तो नौकरी से हाथ धो बैठेगा।

चौकीदार हाथ-पैर जोड़ने लगा। इतने में गाड़ी में बैठी हुई महिला ने सुमन को इशारे से बुलाया और पूछा—यह तुमसे क्या कह रहा था?

सुमन—कुछ नहीं। मैं इस बेंच पर बैठी थी, वह मुझे उठाना चाहता था। अभी दो वेश्याएं इसी बेंच पर बैठी थीं। क्या मैं ऐसी गई-बीती हूं कि वह मुझे वेश्याओं से भी नीच समझे?

रमणी ने उसे समझाया कि यह छोटे आदमी, जिससे चार पैसे पाते हैं, उसी की गुलामी करते हैं। इनके मुंह लगना अच्छा नहीं।

दोनों स्त्रियों में परिचय हुआ। रमणी का नाम सुभद्रा था। वह भी सुमन के मुहल्ले में, पर उसके मकान से जरा दूर रहती थी। उसके पति वकील थे। स्त्री-पुरुष गंगास्नान करके घर जा रहे थे। यहां पहुंचकर उसके पति ने देखा कि चौकीदार एक भले घर की स्त्री से झगड़ा कर रहा है, तो गाड़ी से उतर पड़े।

सुभद्रा सुमन के रंग-रूप, बातचीत पर ऐसी मोहित हुई कि उसे अपनी गाड़ी में बैठा लिया। वकील साहब कोचबक्स पर जा बैठे। गाड़ी चली। सुमन को ऐसा मालूम हो रहा था कि मैं विमान पर बैठी स्वर्ग को जा रही हूं। सुभद्रा यद्यपि बहुत रूपवती न थी और उसके वस्त्राभूषण भी साधारण ही थे, पर उसका स्वभाव ऐसा नम्र, व्यवहार ऐसा सरल तथा विनयपूर्ण था कि सुमन का हृदय पुलकित हो गया। रास्ते में उसने अपनी सहेलियों को जाते देख, खिड़की खोलकर उनकी ओर गर्व से देखा, मानो कह रही थी, तुम्हें भी कभी यह सौभाग्य प्राप्त हो सकता है? पर इस गर्व के साथ ही उसे यह भय भी था कि कहीं मेरा मकान देखकर सुभद्रा मेरा तिरस्कार न करने लगे। जरूर यही होगा। यह क्या जानती है कि मैं ऐसे फटेहालों रहती हूं। यह कैसी भाग्यवान् स्त्री है! कैसा देवरूप पुरुष है। यह न आ जाते, तो वह निर्दयी चौकीदार न जाने मेरी क्या दुर्गति करता। कितनी सज्जनता है कि मुझे भीतर बिठा दिया और आप कोचवान के साथ जा बैठे। वह इन्हीं विचारों में मग्न थी कि उसका घर आ गया। उसने सकुचाते हुए सुभद्रा से कहा—गाड़ी रुकवा दीजिए, मेरा घर आ गया।

सुभद्रा ने गाड़ी रुकवा दी। सुमन ने एक बार भोलीबाई के मकान की ओर ताका। वह अपने छज्जे पर टहल रही थी। दोनों की आंखें मिलीं, भोली ने मानो कहा, अच्छा ये ठाट हैं! सुमन ने जैसे उत्तर दिया, अच्छी तरह देख लो, यह कौन लोग हैं। तुम मर भी जाओ, तो इस देवी के साथ बैठना नसीब न हो।

सुमन उठ खड़ी हुई और सुभद्रा की ओर सजल नेत्रों से देखती हुई बोली—इतना प्रेम लगाकर बिसार मत देना। मेरा मन लगा रहेगा।

सुभद्रा ने कहा—नहीं बहन, अभी तो तुमसे कुछ बातें भी न करने पाई। मैं तुम्हें कल बुलाऊंगी।

सुमन उतर पड़ी। गाड़ी चली गई। सुमन अपने घर में गई, तो उसे मालूम हुआ, मानो कोई आनंदमय स्वप्न देखकर जागी है।

गजाधर ने पूछा—यह गाड़ी किसकी थी?

सुमन—यहीं के कोई वकील हैं। बेनीबाग में उनकी स्त्री से भेंट हो गई। जिद करके गाड़ी पर बिठा लिया। मानती ही न थीं।

गजाधर—तो क्या तुम वकील के साथ बैठी थीं?

सुमन—कैसी बातें करते हो? वह बेचारे तो कोचवान के साथ बैठे थे।

गजाधर—तभी इतनी देर हुई।

सुमन—दोनों सज्जनता के अवतार हैं।

गजाधर—अच्छा, चल के चूल्हा जलाओ, बहुत बखान हो चुका।

सुमन—तुम वकील साहब को जानते तो होगे?

गजाधर—इस मुहल्ले में तो यही एक पद्मसिंह वकील हैं? वही रहे होंगे?

सुमन—गोरे-गोरे लंबे आदमी हैं। ऐनक लगाते हैं।

गजाधर—हां, हां, वही हैं। यह क्या पूरब की ओर रहते हैं।

सुमन—कोई बड़े वकील हैं?

गजाधर—मैं उनके जमाखर्च थोड़े ही लिखता हूं। आते-जाते कभी-कभी देख लेता हूं। आदमी अच्छे हैं।

सुमन ताड़ गई कि वकील साहब की चर्चा गजाधर को अच्छी नहीं मालूम होती। उसने कपड़े बदले और भोजन बनाने लगी।

दस

दूसरे दिन सुमन नहाने न गई। सबेरे ही से अपनी एक रेशमी साड़ी की मरम्मत करने लगी।

दोपहर को सुभद्रा की एक महरी उसे लेने आई। सुमन ने मन में सोचा था, गाड़ी आवेगी। उसका जी छोटा हो गया। वही हुआ जिसका उसे भय था।

वह महरी के साथ सुभद्रा के घर गई और दो-तीन घंटे तक बैठी रही। उसका वहां से उठने को जी न चाहता था। उसने अपने मैके का रत्ती-रत्ती हाल कह सुनाया पर सुभद्रा अपनी ससुराल की ही बातें करती रही।

दोनों स्त्रियों में मेल-मिलाप बढ़ने लगा। सुभद्रा जब गंगा नहाने जाती, तो सुमन को साथ ले लेती। सुमन को भी नित्य एक बार सुभद्रा के घर गए बिना कल न पड़ती थी। जैसे बालू पर तड़पती हुई मछली जलधारा में पहुंचकर किलोलें करने लगती है, उसी प्रकार सुमन भी सुभद्रा की स्नेहरूपी जलधारा में अपनी विपत्ति को भूलकर आमोद-प्रमोद में मग्न हो गई।

सुभद्रा कोई काम करती होती, तो सुमन स्वयं उसे करने लगती। कभी-कभी पंडित पद्मसिंह के लिए जलपान बना देती, कभी पान लगाकर भेज देती। इन कामों में उसे जरा भी आलस्य न होता था। उसकी दृष्टि में सुभद्रा-सी सुशीला स्त्री और पद्मसिंह सरीखे सज्जन मनुष्य संसार में और न थे।

एक बार सुभद्रा को ज्वर आने लगा। सुमन कभी उसके पास से न टलती। अपने घर एक क्षण के लिए जाती और कच्चा-पक्का खाना बनाकर फिर भाग आती, पर गजाधर उसकी इन बातों से जलता था। उसे सुमन पर विश्वास न था। वह उसे सुभद्रा के यहां जाने से रोकता था, पर सुमन उसका कहना न मानती थी।

फागुन के दिन थे। सुमन को यह चिंता हो रही थी कि होली के लिए कपड़ों का क्या प्रबंध करे? गजाधर को इधर एक महीने से सेठजी ने जवाब दे दिया था। उसे अब केवल पंद्रह रुपयों का ही आधार था। वह एक तंजेब की साड़ी और रेशमी मलमल की जाकेट के लिए गजाधर से कई बार कह चुकी थी, पर गजाधर हूं-हां करके टाल जाता था। वह सोचती, यह पुराने कपड़े पहनकर सुभद्रा के घर होली खेलने कैसे जाऊंगी?

इसी बीच में सुमन को अपनी माता के स्वर्गवास होने का शोक समाचार मिला। सुमन को इसका इतना शोक न हुआ, जितना होना चाहिए था, क्योंकि उसका हृदय अपनी माता की ओर से फट गया था। लेकिन होली के लिए नए और उत्तम वस्त्रों की चिंता से निवृत्त हो गई। उसने सुभद्रा से कहा—बहूजी, अब मैं अनाथ हो गई हूं। अब गहने-कपड़े की तरफ ताकने को जी नहीं चाहता। बहुत पहन चुकी। इस दुख ने सिंगार-पटार की अभिलाषा ही नहीं रहने दी। जी अधम है, शरीर से निकलता नहीं, लेकिन हृदय पर जो कुछ बीत रही है, वह मैं ही जानती हूं। अपनी सहचरियों से भी उसने ऐसी ही शोकपूर्ण बातें कीं। सब-की-सब उसकी मातृभक्ति

की प्रशंसा करने लगीं।

एक दिन वह सुभद्रा के पास बैठी रामायण पढ़ रही थी कि पद्मसिंह प्रसन्नचित्त घर में आकर बोले—आज बाजी मार ली।

सुभद्रा ने उत्सुक होकर कहा—सच?

पद्मसिंह—अरे, क्या अब की भी संदेह था?

सुभद्रा—अच्छा, तो लाइए मेरे रुपये दिलवाइए। वहां आपकी बाजी थी, यहां मेरी बाजी है।

पद्मसिंह—हां-हां, तुम्हारे रुपये मिलेंगे, जरा सब्र करो। मित्र लोग आग्रह कर रहे हैं कि धूमधाम से आनंदोत्सव किया जाए।

सुभद्रा—हां, कुछ-न-कुछ तो करना ही पड़ेगा और यह उचित भी है।

पद्मसिंह—मैंने प्रीतिभोज का प्रस्ताव किया, किंतु इसे कोई स्वीकार नहीं करता। लोग भोलीबाई का मुजरा कराने के लिए अनुरोध कर रहे हैं।

सुभद्रा—अच्छा, तो उन्हीं की मान लो, कौन हजारों का खर्च है। होली भी आ गई है, बस होली के दिन रखो। 'एक पंथ दो काज' हो जाएगा।

पद्मसिंह—खर्च की बात नहीं, सिद्धांत की बात है।

सुभद्रा—भला, अब की बार सिद्धांत के विरुद्ध ही सही।

पद्मसिंह—विट्ठलदास किसी तरह राजी नहीं होते। पीछे पड़ जाएंगे।

पद्मसिंह—उन्हें बकने दो। संसार के सभी आदमी उनकी तरह थोड़े ही हो जाएंगे।

पंडित पद्मसिंह आज कई वर्षों के विफल उद्योग के बाद म्युनिसिपैलिटी के मेंबर बनने में सफल हुए थे, इसी के आनंदोत्सव की तैयारियां हो रही थीं। वे प्रीतिभोज करना चाहते थे, किंतु मित्र लोग मुजरे पर जोर देते थे। यद्यपि वे स्वयं बड़े आचारवान मनुष्य थे, तथापि अपने सिद्धांतों पर स्थिर रहने की सामर्थ्य उनमें नहीं थी। कुछ तो मुरौवत से, कुछ अपने सरल स्वभाव से और कुछ मित्रों की व्यंग्योक्ति के भय से वह अपने पक्ष पर अड़ न सकते थे। बाबू विट्ठलदास उनके परम मित्र थे। वह वेश्याओं के नाच-गाने के कट्टर शत्रु थे। इस कुप्रथा को मिटाने के लिए उन्होंने एक सुधारक संस्था स्थापित की थी। पंडित पद्मसिंह उनके इने-गिने अनुयायियों में थे। पंडितजी इसीलिए विट्ठलदास से डरते थे। लेकिन सुभद्रा के बढ़ावा देने से उनका संकोच दूर हो गया।

वह अपने वेश्याभक्त मित्रों से सहमत हो गए। भोलीबाई का मुजरा होगा, यह बात निश्चित हो गई।

इसके चार दिन पीछे होली आई। उसी रात को पद्मसिंह की बैठक ने नृत्यशाला का रूप धारण किया। सुंदर रंगीन कालीनों पर मित्रवृंद बैठे हुए थे और भोलीबाई अपने समाजियों के साथ मध्य में बैठी हुई भाव बता-बताकर मधुर स्वर में गा रही थी। कमरा बिजली की दिव्य बत्तियों से ज्योतिर्मय हो रहा था। इत्र और गुलाब की सुगंध उड़ रही थी। हास-परिहास, आमोद-प्रमोद का बाजार गर्म था।

सुमन और सुभद्रा दोनों झरोखे में चिक की आड़ से यह जलसा देख रही थीं। सुभद्रा को भोली का गाना नीरस, फीका मालूम होता था। उसको आश्चर्य मालूम होता था कि लोग इतने एकाग्रचित्त होकर क्यों सुन रहे हैं? बहुत देर बाद गीत के शब्द उसकी समझ में आए।

शब्द अलंकारों से दब गए थे। सुमन अधिक रसज्ञा थी। वह गाने को समझती थी और ताल-स्वर का ज्ञान रखती थी। गीत कान में आते ही उसके स्मरण पट पर अंकित हो जाते थे। भोलीबाई ने गाया—

ऐसी होली में आग लगे,
पिया विदेश, मैं द्वारे ठाढ़ी, धीरज कैसे रहे?
ऐसी होली में आग लगे।

सुमन ने भी इस पद को धीरे-धीरे गुनगुनाकर गाया और अपनी सफलता पर मुग्ध हो गई। केवल गिटकिरी न भर सकी। लेकिन उसका सारा ध्यान गाने पर ही था। वह देखती कि सैकड़ों आंखें भोलीबाई की ओर लगी हुई हैं। उन नेत्रों में कितनी तृष्णा थी ! कितनी विनम्रता, कितनी उत्सकुता ! उनकी पुतलियां भोली के एक-एक इशारे पर एक-एक भाव पर नाचती थीं, चमकती थीं। जिस पर उसकी दृष्टि पड़ जाती थी, वह आनंद से गद्‌गद हो जाता और जिससे वह हंसकर दो-एक बातें कर लेती, उसे तो मानो कुबेर का धन मिल जाता था। उस भाग्यशाली पुरुष पर सारी सभा की सम्मान दृष्टि पड़ने लगती। उस सभा में एक-से-एक धनवान्, एक-से-एक विद्वान्, एक-से-एक रूपवान् सज्जन उपस्थित थे, किंतु सब-के-सब इस वेश्या के हाव-भाव पर मिटे जाते थे। प्रत्येक मुख इच्छा और लालसा का चित्र बना हुआ था।

सुमन सोचने लगी, इस स्त्री में कौन-सा जादू है।

सौंदर्य ! हां-हां, वह रूपवती है, इसमें संदेह नहीं। मगर मैं भी तो ऐसी बुरी नहीं हूं। वह सांवली है, मैं गोरी हूं। वह मोटी है, मैं दुबली हूं।

पंडितजी के कमरे में एक शीशा था। सुमन इस शीशे के सामने जाकर खड़ी हो गई और उसमें अपना रूप नख से शिख तक देखा। भोलीबाई के हृदयांकित चित्र से अपने एक-एक अंग की तुलना की। तब उसने सुभद्रा से कहा—बहूजी, एक बात पूछूं, बुरा न मानना। यह इंद्र की परी क्या मुझसे बहुत सुंदर है?

सुभद्रा ने उसकी ओर कौतूहल से देखा और मुस्कराकर पूछा—यह क्यों पूछती हो?

सुमन ने शर्म से सिर झुकाकर कहा—कुछ नहीं, यों ही। बतलाओ?

सुभद्रा ने कहा—उसका सुख का शरीर है, इसलिए कोमल है, लेकिन रंग-रूप में वह तुम्हारे बराबर नहीं।

सुमन ने फिर सोचा, तो क्या उसके बनाव-सिंगार पर, गहने-कपड़े पर लोग इतने रीझे हुए हैं? मैं भी यदि वैसा बनाव-चुनाव करूं, वैसे गहने-कपड़े पहनूं, तो मेरा रंग-रूप और न निखर जाएगा, मेरा यौवन और न चमक जाएगा? लेकिन कहां मिलेंगे?

क्या लोग उसके स्वर-लालित्य पर इतने मुग्ध हो रहे हैं? उसके गले में लोच नहीं, मेरी आवाज उससे बहुत अच्छी है। अगर कोई महीने-भर भी सिखा दे, तो मैं उससे अच्छा गाने लगूं। मैं भी वक्र नेत्रों से देख सकती हूं। मुझे भी लज्जा से आंखें नीची करके मुस्कराना आता है।

सुमन बहुत देर तक वहां बैठी कार्य से कारण का अनुसंधान करती रही। अंत में वह इस परिणाम पर पहुंची कि वह स्वाधीन है, मेरे पैरों में बेड़ियां हैं। उसकी दूकान खुली है, इसलिए ग्राहकों की भीड़ है, मेरी दूकान बंद है, इसलिए कोई खड़ा नहीं होता। वह कुत्तों के भूकने

की परवाह नहीं करती, मैं लोक-निंदा से डरती हूं। वह परदे के बाहर है, मैं परदे के अंदर हूं। वह डालियों पर स्वच्छंदता से चहकती है, मैं उसे पकड़े हुए हूं। इसी लज्जा ने, इसी उपहास के भय ने मुझे दूसरे की चेरी बना रखा है।

आधी रात बीत चुकी थी। सभा विसर्जित हुई। लोग अपने-अपने घर गए। सुमन भी अपने घर की ओर चली। चारों तरफ अंधकार छाया हुआ था। सुमन के हृदय में भी नैराश्य का कुछ ऐसा ही अंधकार था। वह घर जाती तो थी, पर बहुत धीरे-धीरे, जैसे घोड़ा बम की तरफ जाता है। अभिमान जिस प्रकार नीचता से दूर भागता है, उसी प्रकार उसका हृदय उस घर से दूर भागता था।

गजाधर नियमानुसार नौ बजे घर आया। किवाड़ बंद थे। चकराया कि इस समय सुमन कहां गई? पड़ोस में एक विधवा दर्जिन रहती थी, जाकर उससे पूछा। मालूम हुआ कि सुभद्रा के घर किसी काम से गई है। कुंजी मिल गई, आकर किवाड़ खोले, खाना तैयार था। वह द्वार पर बैठकर सुमन की राह देखने लगा। जब दस बज गए तो उसने खाना परसा, लेकिन क्रोध में कुछ खाया न गया। उसने सारी रसोई उठाकर बाहर फेंक दी और भीतर से किवाड़ बंद करके सो रहा। मन में यह निश्चय कर लिया कि आज कितना ही सिर पटके, किवाड़ न खोलूंगा, देखें कहां जाती है। किंतु उसे बहुत देर तक नींद न आई। जरा-सी आहट होती, तो डंडा लिए किवाड़ के पास आ जाता। उस समय यदि सुमन उसे मिल जाती, तो उसकी कुशल न थी। ग्यारह बजने के बाद निद्रा का देव उसे दबा बैठा।

सुमन जब अपने द्वार पर पहुंची, तो उसके कान में एक बजने की आवाज आई। वह आवाज उसकी नस-नस में गूंज उठी। वह अभी तक दस-ग्यारह के धोखे में थी। प्राण सूख गए। उसने किवाड़ की दरारों से झांका, ढिबरी जल रही थी, उमके धुएं से कोठरी भरी हुई थी और गजाधर हाथ में डंडा लिए चित्त पड़ा जोर से खर्राटे ले रहा था। सुमन का हृदय कांप उठा, किवाड़ खटखटाने का साहस न हुआ।

पर इस समय जाऊं कहां? पद्मसिंह के घर का दरवाजा भी बंद हो गया होगा, कहार सो गया होगा। बहुत चीखने-चिल्लाने पर किवाड़ तो खुल जाएंगे, लेकिन वकील साहब अपने मन में न जाने क्या समझें। नहीं, वहां जाना उचित नहीं, क्यों न यहीं बैठी रहूं, एक बज ही गया है, तीन-चार घंटे में सबेरा हो जायगा। यह सोचकर वह बैठ गई, किंतु यह धड़का लगा हुआ था कि कोई मुझे इस तरह यहां बैठे देख ले, तो क्या हो? समझेगा कि चोर है, घात में बैठा है। सुमन वास्तव में अपने ही घर में चोर बनी हुई थी।

फागुन में रात को ठंडी हवा चलती है। सुमन की देह पर एक फटी हुई रेशमी कुरती थी। हवा तीर के समान उसकी हड्डियों में चुभी जाती थी। हाथ-पांव अकड़ रहे थे। उस पर नीचे की नाली से ऐसी दुर्गंध उठ रही थी कि सांस लेना कठिन था। चारों ओर तिमिर मेघ छाया हुआ था, केवल भोलीबाई के कोठे पर से प्रकाश की रेखाएं अंधेरी गली की तरफ दया की स्नेह-रहित दृष्टि से ताक रही थीं।

सुमन ने सोचा, मैं कैसी हतभागिनी हूं, एक वह स्त्रियां हैं, जो आराम से तकिए लगाए सो रही हैं, लौंडियां पैर दबाती हैं। एक मैं हूं कि यहां बैठी हुई अपने नसीब को रो रही हूं। मैं यह सब दुःख क्यों झेलती हूं? एक झोंपड़ी में टूटी खाट पर सोती हूं, रूखी रोटियां खाती हूं, नित्य घुड़कियां सुनती हूं, क्यों? मर्यादा-पालन के लिए ही न? लेकिन संसार मेरे इस मर्यादा-

पालन को क्या समझता है? उसकी दृष्टि में इसका क्या मूल्य है? क्या यह मुझसे छिपा हुआ है? दशहरे के मेले में, मोहर्रम के मेले में, फूल बाग में, मंदिरों में, सभी जगह तो देख रही हूं। आज तक मैं समझती थी कि कुचरित्र लोग ही इन रमणियों पर जान देते हैं, किंतु आज मालूम हुआ कि उनकी पहुंच सुचरित्र और सदाचारशील पुरुषों में भी कम नहीं है। वकील साहब कितने सज्जन आदमी हैं, लेकिन आज वह भोलीबाई पर कैसे लट्टू हो रहे थे।

इस तरह सोचते हुए वह उठी कि किवाड़ खटखटाऊं, जो कुछ होना है, हो जाय। ऐसा कौन-सा सुख भोग रही हूं, जिसके लिए यह आपत्ति सहूं? यह मुझे कौन सोने का कौर खिला देते हैं, कौन फूलों की सेज पर सुला देते हैं? दिन-भर छाती फाड़कर काम करती हूं, तब रोटी खाती हूं। उस पर यह धौंस। लेकिन गजाधर के डंडे को देखते ही फिर छाती दहल गई। पशुबल ने मनुष्य को परास्त कर दिया। अकस्मात् सुमन ने दो कांस्टेबलों को कंधे पर लट्ठ रखे आते देखा। अंधकार में वह बहुत भयंकर देख पड़ते थे। सुमन का रक्त सूख गया, कहीं छिपने की जगह न थी। सोचने लगी कि यदि यहीं बैठी रहूं, तो यह सब अवश्य ही कुछ पूछेंगे, तो क्या उत्तर दूंगी। वह झपटकर उठी और जोर से किवाड़ खटखटाया। चिल्लाकर बोली—दो घड़ी से चिल्ला रही हूं, सुनते ही नहीं।

गजाधर चौंका। पहली नींद पूरी हो चुकी थी। उठकर किवाड़ खोल दिए। आवाज में कुछ भय था, कुछ घबराहट। कृत्रिम क्रोध के स्वर में कहा—वाह रे सोने वाले ! घोड़े बेचकर सोए हो क्या? दो घड़ी से चिल्ला रही हूं, मिनकते ही नहीं, ठंड के मारे हाथ-पांव अकड़ गए।

गजाधर निःशंक होकर बोला—मुझसे उड़ो मत। बताओ, सारी रात कहां रहीं?

सुमन निर्भय होकर बोली—कैसी रात, नौ बजे सुभद्रादेवी के घर गई। दावत थी, बुलावा आया था। दस बजे उनके यहां से लौट आई। दो घंटे से तुम्हारे द्वार पर खड़ी चिल्ला रही हूं। बारह बजे होंगे, तुम्हें अपनी नींद में कुछ सुध भी रहती है।

गजाधर—तुम दस बजे आई थीं?

सुमन ने दृढ़ता से कहा—हां-हां, दस बजे।

गजाधर—बिल्कुल झूठ। बारह का घंटा अपने कानों से सुनकर सोया हूं।

सुमन—सुना होगा, नींद में सिर-पैर की खबर ही नहीं रहती, ये घंटे गिनने बैठे थे।

गजाधर—अब ये धांधली न चलेगी। साफ-साफ बताओ, तुम अब तक कहां रहीं? मैं तुम्हारा रंग आजकल देख रहा हूं। अंधा नहीं हूं। मैंने भी त्रियाचरित्र पढ़ा है। ठीक-ठीक बता दो, नहीं तो आज जो कुछ होना है, हो जायगा।

सुमन—एक बार तो कह दिया कि मैं दस-ग्यारह बजे यहां आ गई। अगर तुम्हें विश्वास नहीं आता, न आवे। जो गहने गढ़ाते हो, मत गढ़ाना। रानी रूठेंगी, अपना सुहाग लेंगी। जब देखो, म्यान से तलवार बाहर ही रहती है, न जाने किस बिरते पर।

यह कहते-कहते सुमन चौंक गई। उसे ज्ञात हुआ कि मैं सीमा से बाहर हुई जाती हूं। अभी द्वार पर बैठी हुई उसने जो-जो बातें सोची थीं और मन में जो बातें स्थिर की थीं, वह सब उसे विस्मृत हो गईं। लोकाचार और हृदय में जमे हुए विचार हमारे जीवन में आकस्मिक परिवर्तन नहीं होने देते।

गजाधर सुमन की यह कठोर बातें सुनकर सन्नाटे में आ गया। यह पहला ही अवसर था कि सुमन यों उसके मुंह आई थी। क्रोधोन्मत्त होकर बोला—क्या तू चाहती है कि जो कुछ

तेरा जी चाहे, किया करे और मैं चूं न करूं? तू सारी रात न जाने कहां रही, अब जो पूछता हूं तो कहती है, मुझे तुम्हारी परवाह नहीं है, तुम मुझे क्या देते हो? मुझे मालूम हो गया है कि शहर का पानी तुझे भी लगा, तूने भी अपनी सहेलियों का रंग पकड़ा। बस, अब मेरे साथ तेरा निबाह न होगा। कितना समझाता रहा कि इन चुड़ैलों के साथ न बैठ, मेले-ठेले मत जा, लेकिन तूने न सुना, न सुना। मुझे तू जब तक बता न देगी कि तू सारी रात कहां रही, तब तक मैं तुझे घर में पैठने न दूंगा। न बतावेगी, तो समझ ले कि आज से तू मेरी कोई नहीं, तेरा जहां जी चाहे जा, जो मन में आवे कर।

सुमन ने कातर भाव से कहा—वकील साहब के घर को छोड़कर मैं और कहीं नहीं गई; तुम्हें विश्वास न हो तो आप जाकर पूछ लो। वहीं चाहे जितनी देर हो। गाना हो रहा था, सुभद्रादेवी ने आने नहीं दिया।

गजाधर ने लांछनायुक्त शब्दों में कहा—अच्छा, तो अब वकील साहब से मन मिला है, यह कहो ! फिर भला, मजूर की परवाह क्यों होने लगी?

इस लांछन ने सुमन के हृदय पर कुठाराघात का काम किया। झूठा इल्जाम कभी नहीं सहा जाता। वह सरोष होकर बोली—कैसी बातें मुंह से निकालते हो? हक-नाहक एक भलेमानस को बदनाम करते हो ! मुझे आज देर हो गई है। मुझे जो चाहो कहो, मारो, पीटो; वकील साहब को क्यों बीच में घसीटते हो? वह बेचारे तो जब तक मैं घर में रहती हूं, अंदर कदम नहीं रखते।

गजाधर बोला—चल छोकरी, मुझे न चरा। ऐसे-ऐसे कितने भले आदमियों को देख चुका हूं। वह देवता हैं, उन्हीं के पास जा। यह झोंपड़ी तेरे रहने योग्य नहीं है। तेरे हौंसले बढ़ रहे हैं। अब तेरा गुजर यहां न होगा।

सुमन देखती थी कि बात बढ़ती जाती है। यदि उसकी बातें किसी तरह लौट सकतीं तो उन्हें लौटा लेती, किंतु निकला हुआ तीर कहां लौटता है? सुमन रोने लगी और बोली—मेरी आंखें फूट जाएं, अगर मैंने उनकी तरफ ताका भी हो। मेरी जीभ गिर जाए, अगर मैंने उनसे एक बात की हो। जरा मन बहलाने सुभद्रा के पास चली जाती हूं। अब मना करते हो, न जाऊंगी।

मन में जब एक बार भ्रम प्रवेश हो जाता है, तो उसका निकलना कठिन हो जाता है। गजाधर ने समझा कि सुमन इस समय केवल मेरा क्रोध शांत करने के लिए यह नम्रता दिखा रही है। कटुतापूर्ण स्वर से बोला—नहीं, जाओगी क्यों नहीं? वहां ऊंची अटारी सैर को मिलेगी, पकवान खाने को मिलेंगे, फूलों की सेज पर सोओगी, नित्य राग-रंग की धूम रहेगी।

व्यंग्य और क्रोध में आग और तेल का संबंध है। व्यंग्य हृदय को इस प्रकार विदीर्ण कर देता है, जैसे छैनी बर्फ के टुकड़े को। सुमन क्रोध से विह्वल होकर बोली—अच्छा तो जबान संभालो, बहुत हो चुका। घंटे-भर से मुंह में जो अनाप-शनाप आता है, बकते जाते हो। मैं तरह देती जाती हूं, उसका यह फल है। मुझे कोई कुलटा समझ लिया है?

गजाधर—मैं तो ऐसा ही समझता हूं।

सुमन—तुम मुझे मिथ्या पाप लगाते हो, ईश्वर तुमसे समझेंगे।

गजाधर—चली जा मेरे घर से रांड, कोसती है !

सुमन—हां, यों कहो कि मुझे रखना नहीं चाहते। मेरे सिर पाप क्यों लगाते हो? क्या तुम्हीं मेरे अन्नदाता हो? जहां मजूरी करूंगी, वहीं पेट पाल लूंगी?

गजाधर--जाती है कि खड़ी गालियां देती है?

सुमन जैसी सगर्वा स्त्री इस अपमान को सह न सकी। घर से निकालने की धमकी भयंकर इरादों को पूरा कर देती है।

सुमन बोली--अच्छा लो, जाती हूं।

यह कहकर उसने दरवाजे की तरफ एक कदम बढ़ाया, किंतु अभी उसने जाने का निश्चय नहीं किया था।

गजाधर एक मिनट तक कुछ सोचता रहा, फिर बोला--अपने गहने-कपड़े लेती जा, यहां कोई काम नहीं है।

इस वाक्य ने टिमटिमाते हुए आशारूपी दीपक को बुझा दिया। सुमन को विश्वास हो गया कि अब यह घर हमसे छूटा। रोती हुई बोली--मैं लेकर क्या करूंगी?

सुमन ने संदूकची उठा ली और द्वार से निकल आई, अभी तक उसकी आस नहीं टूटी थी। वह समझती थी कि गजाधर अब भी मनाने आएगा, इसलिए वह दरवाजे के सामने सड़क पर चुपचाप खड़ी रही। रोते-रोते उसका आंचल भीग गया था। एकाएक गजाधर ने दोनों किवाड़ जोर से बंद कर लिए। वह मानो सुमन की आशा का द्वार था, जो सदैव के लिए उसकी ओर से बंद हो गया। सोचने लगी, कहां जाऊं? उसे अब ग्लानि और पश्चात्ताप के बदले गजाधर पर क्रोध आ रहा था। उसने अपनी समझ में ऐसा कोई काम नहीं किया था, जिसका ऐसा कठोर दंड मिलना चाहिए था। उसे घर आने में देर हो गई थी, इसके लिए दो-चार घुड़कियां बहुत थीं। यह निर्वासन उसे घोर अन्याय प्रतीत होता था। उसने गजाधर को मनाने के लिए क्या नहीं किया? विनती की, खुशामद की, रोई, किंतु उसने सुमन का अपमान ही नहीं किया, उस पर मिथ्या दोषारोपण भी किया। इस समय यदि गजाधर मनाने भी आता, तो सुमन राजी न होती। उसने चलते-चलते कहा था, जाओ अब मुंह मत दिखाना। यह शब्द उसके कलेजे में चुभ गए थे। मैं ऐसी गई-बीती हूं कि अब वह मेरा मुंह भी देखना नहीं चाहते, तो फिर क्यों उन्हें मुंह दिखाऊं? क्या संसार में सब स्त्रियों के पति होते हैं? क्या अनाथाएं नहीं हैं? मैं भी अब अनाथा हूं। वसंत के समीर और ग्रीष्म की लू में कितना अंतर है। एक सुखद और प्राणपोषक, दूसरी अग्निमय और विनाशिनी। प्रेम वसंत-समीर है, द्वेष ग्रीष्म की लू। जिस पुष्प को वसंत-समीर महीनों में खिलाती है, उसे लू का एक झोंका जलाकर राख कर देता है। सुमन के घर से थोड़ी दूर पर एक खाली बरामदा था। वहां जाकर उसने संदूकची सिरहाने रखी और लेट गई। तीन बज चुके थे। दो घंटे उसने यह सोचने में काटे कि कहां जाऊं। उसकी सहचरियों में हिरिया नाम की एक दुष्ट स्त्री थी, वहां आश्रय मिल सकता था, किंतु सुमन उधर नहीं गई। आत्मसम्मान का कुछ अंश अभी बाकी था। अब वह एक प्रकार से स्वच्छंद थी और उन दुष्कामनाओं को पूर्ण कर सकती थी, जिनके लिए उसका मन बरसों से लालायित हो रहा था। अब उस सुखमय जीवन के मार्ग में बाधा न थी। लेकिन जिस प्रकार बालक किसी गाय या बकरी को दूर से देखकर प्रसन्न होता है, पर उसके निकट आते ही भय से मुंह छिपा लेता है, उसी प्रकार सुमन अभिलाषाओं के द्वार पर पहुंचकर भी प्रवेश न कर सकी। लज्जा, खेद, घृणा, अपमान ने मिलकर उसके पैरों में बेड़ी-सी डाल दी। उसने निश्चय किया कि सुभद्रा के घर चलूं, वहीं खाना पका दिया करूंगी, सेवा-टहल करूंगी और पड़ी रहूंगी। आगे ईश्वर मालिक है।

उसने संदूकची आंचल में छिपा ली और पंडित पद्मसिंह के घर आ पहुंची। कई

मुवक्किल हाथ-मुंह धो रहे थे। कोई आसन बिछाए ध्यान करता था और सोचता था, कहीं मेरे गवाह न बिगड़ जायं। कोई माला फेरता था, मगर उसके दानों से उन रुपयों का हिसाब लगा रहा था, जो आज उसे व्यय करने पड़ेंगे। मेहतर रात की पूड़ियां समेट रहा था। सुमन को भीतर जाते हुए कुछ संकोच हुआ, लेकिन जीतन कहार को आते देखकर वह शीघ्रता से अंदर चली गई। सुभद्रा ने आश्चर्य से पूछा-घर से इतने सबेरे कैसे चलीं?

सुमन ने कुंठित स्वर से कहा-घर से निकाल दी गई हूं।

सुभद्रा-अरे ! यह किस बात पर?

सुमन-यही कि रात मुझे यहां से जाने में देर हो गई।

सुभद्रा-इस जरा-सी बात का इतना बतंगड़। देखो, मैं उन्हें बुलवाती हूं। विचित्र मनुष्य हैं।

सुमन-नहीं, नहीं, उन्हें न बुलाना, मैं रो-धोकर हार गई। लेकिन उस निर्दयी को तनिक भी दया न आई। मेरा हाथ पकड़कर घर से निकाल दिया। उसे घमंड है कि मैं ही इसे पालता हूं। मैं उसका यह घमंड तोड़ दूंगी।

सुभद्रा-चलो, ऐसी बातें न करो। मैं उन्हें बुलवाती हूं।

सुमन-मैं अब उसका मुंह नहीं देखना चाहती।

सुभद्रा-तो क्या ऐसा बिगाड़ हो गया है?

सुमन-हां, अब ऐसा ही है। अब उससे मेरा कोई नाता नहीं।

सुभद्रा ने सोचा, अभी क्रोध में कुछ न सूझेगा, दो-एक रोज में शांत हो जायगी। बोली-अच्छा मुंह-हाथ तो धो डालो, आंखें चढ़ी हुई हैं। मालूम होता है, रात-भर सोई नहीं हो। कुछ देर सो लो, फिर बातें होंगी।

सुमन-आराम से सोना ही लिखा होता, तो क्या ऐसे कुपात्र से पाला पड़ता। अब तो तुम्हारी शरण आई हूं। शरण दोगी तो रहूंगी, नहीं कहीं मुंह में कालिख लगाकर डूब मरूंगी। मुझे एक कोने में थोड़ी-सी जगह दे दो, वहीं पड़ी रहूंगी, अपने से जो कुछ हो सकेगा, तुम्हारी सेवा-टहल कर दिया करूंगी।

जब पंडितजी भीतर आए, तो सुभद्रा ने सारी कथा उनसे कही। पंडितजी बड़ी चिंता में पड़े। एक अपरिचित स्त्री को उसके पति से पूछे बिना अपने घर में रखना अनुचित मालूम हुआ। निश्चय किया कि चलकर गजाधर को बुलवाऊं और समझाकर उसका क्रोध शांत कर दूं। इस स्त्री का यहां से चला जाना ही अच्छा है।

उन्होंने बाहर आकर तुरंत गजाधर को बुलाने को आदमी भेजा, लेकिन वह घर पर न मिला। कचहरी से आकर पंडितजी ने फिर गजाधर को बुलवाया, लेकिन फिर वही हाल हुआ।

उधर गजाधर को ज्योंही मालूम हुआ कि सुमन पद्मसिंह के घर गई है, उसका संदेह पूरा हो गया है। वह घूम-घूमकर शर्माजी को बदनाम करने लगा। पहले विट्ठलदास के पास गया। उन्होंने उसकी कथा को वेद-वाक्य समझा। यह देश का सेवक और सामाजिक अत्याचारों का शत्रु-उदारता और अनुदारता का विलक्षण संयोग था। उसके विश्वासी हृदय में सारे जगत् के प्रति सहानुभूति थी, किंतु अपने वादी के प्रति लेशमात्र भी सहानुभूति न थी। वैमनस्य में अंधविश्वास की चेष्टा होती है। जब से पद्मसिंह ने मुजरे का प्रस्ताव किया था, विट्ठलदास

को उनसे द्वेष हो गया था। वे यह समाचार सुनते ही फूले न समाए। शर्माजी के मित्र और सहयोगियों के पास जा-जाकर इसकी सूचना दे आए। लोगों को कहते, देखा आपने ! मैं कहता न था कि यह जलसा अवश्य रंग लाएगा। एक ब्राह्मणी को उसके घर से निकालकर अपने घर में रख लिया। बेचारा पति चारों ओर रोता फिरता है। यह है उच्च शिक्षा का आदर्श ! मैं तो ब्राह्मणी को उनके यहां देखते ही भांप गया था कि दाल में कुछ काला है। लेकिन यह न समझता था कि अंदर-ही-अंदर यह खिचड़ी पक रही है।

आश्चर्य तो यह था कि जो लोग शर्माजी के स्वभाव से भली-भांति परिचित थे, उन्होंने भी इस पर विश्वास कर लिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल जीतन किसी काम से बाहर गया। चारों तरफ यही चर्चा सुनी। दूकानदार पूछते थे, 'क्यों जीतन, नई मालकिन के क्या रंग-ढंग हैं?' जीतन यह आलोचनापूर्ण बातें सुनकर घबराया हुआ घर आया और बोला—भैया, बहूजी ने जो गजाधर की दुल्हिन को घर में ठहरा लिया है, इस पर बाजार में बदनामी हो रही है। ऐसा मालूम होता है कि यह गजाधर से लड़कर आई है।

वकील साहब ने यह हाल सुना तो सन्नाटे में आ गए। कचहरी जाने के लिए अचकन पहन रहे थे, एक हाथ आस्तीन में था, दूसरा बाहर। कपड़े पहनने की भी सुधि न रही। उन्हें जिस बात का भय था, वह हो ही गई। अब उन्हें गजाधर की लापरवाही का मर्म ज्ञात हुआ। मूर्तिवत् खड़े सोचते रहे कि क्या करूं? इसके सिवा और कौन-सा उपाय है कि उसे घर से निकाल दूं। उस पर जो बीतनी हो बीते, मेरा क्या वश है? किसी तरह बदनामी से तो बचूं। सुभद्रा पर जी में झुंझलाए। इसे क्या पड़ी थी कि उसे अपने घर में ठहराया? मुझसे पूछा तक नहीं। उसे तो घर में बैठे रहना है, दूसरों के सामने आंखें तो मेरी नीची होंगी। मगर यहां से निकाल दूंगा तो बेचारी जायगी कहां? वहां तो उसका कोई ठिकाना नहीं मालूम होता। गजाधर अब उसे शायद अपने घर में न रखेगा। आज दूसरा दिन है, उसने खबर तक नहीं ली। इससे तो यह विदित होता है कि उसने उसे छोड़ने का निश्चय कर लिया। दिल में मुझे दयाहीन और क्रूर समझेगी। लेकिन बदनामी से बचने का यही एकमात्र उपाय है। इसके सिवा और कुछ नहीं हो सकता। यह विवेचना करके वह जीतन से बोले—तुमने अब तक मुझसे क्यों न कहा?

जीतन—सरकार, मुझे आज ही तो मालूम हुआ है, नहीं तो जान लो भैया, मैं बिना कहे नहीं रहता।

शर्माजी—अच्छा, तो घर में जाओ और सुमन से कहो कि तुम्हारे यहां रहने से उनकी बदनामी हो रही है। जिस तरह बन पड़े, आज ही यहां से चली जाय। जरा आदमी की तरह बोलना, लाठी मत मारना। खूब समझाकर कहना कि उनका कोई वश नहीं है।

जीतन बहुत प्रसन्न हुआ। उसे सुमन से बड़ी चिढ़ थी, जो नौकरों को उन छोटे मनुष्यों से होती है, जो उनके स्वामी के मुंहलगे होते हैं। सुमन की चाल उसे अच्छी नहीं लगती थी। बुड्ढे लोग साधारण बनाव-सिंगार को भी संदेह की दृष्टि से देखते हैं। वह गंवार था। काले को काला कहता था, उजले को उजला; काले को उजला कहने का ढंग उसे न आता था। यद्यपि शर्माजी ने समझा दिया था कि सावधानी से बातचीत करना, किंतु उसने जाते-ही-जाते सुमन का नाम लेकर जोर से पुकारा। सुमन शर्माजी के लिए पान लगा रही थी। जीतन की आवाज सुनकर चौंक पड़ी और कातर नेत्रों से उसकी ओर ताकने लगी।

जीतन ने कहा—ताकती क्या हो, वकील साहब का हुक्म है कि आज ही यहां से चली जाओ। सारे देश-भर में बदनाम कर दिया। तुमको लाज नहीं है, उनको तो नाम की लाज है। बांड़ा आप गए, चार हाथ की पगहिया भी लेते गए।

सुभद्रा के कान में भनक पड़ी, आकर बोली—क्या है जीतन, क्या कह रहे हो?

जीतन—कुछ नहीं, सरकार का हुक्म है कि यह अभी यहां से चली जाएं। देश-भर में बदनामी हो रही है।

सुभद्रा—तुम जाकर जरा उन्हीं को यहां भेज दो।

सुमन की आंखों में आंसू भरे थे। खड़ी होकर बोली—नहीं बहूजी, उन्हें क्यों बुलाती हो? कोई किसी के घर में जबरदस्ती थोड़े ही रहता है। मैं अभी चली जाती हूं। अब इस चौखट के भीतर फिर पांव न रखूंगी। विपत्ति में हमारी मनोवृत्तियां बड़ी प्रबल हो जाती हैं। उस समय बेमुरौवती घोर अन्याय प्रतीत होती है और सहानुभूति असीम कृपा। सुमन को शर्माजी से ऐसी आशा न थी। उस स्वाधीनता के साथ जो आपत्तिकाल में हृदय पर अधिकार पा जाती है, उसने शर्माजी को दुरात्मा, भीरु, दयाशून्य तथा नीच ठहराया। तुम आज अपनी बदनामी को डरते हो, तुमको इज्जत बड़ी प्यारी है। अभी कल तक एक वेश्या के साथ बैठे हुए फूले न समाते थे, उसके पैरों तले आंख बिछाते थे, तब इज्जत न जाती थी। आज तुम्हारी इज्जत में बट्टा लग गया है।

उसने सावधानी से संदूकची उठा ली और सुभद्रा को प्रणाम करके घर से चली गई।

ग्यारह

दरवाजे पर आकर सुमन सोचने लगी कि अब कहां जाऊं। गजाधर की निर्दयता से भी उसे इतना दु:ख न हुआ था, जितना इस समय हो रहा था। उसे अब मालूम हुआ कि मैंने अपने घर से निकलकर बड़ी भूल की। मैं सुभद्रा के बल पर कूद रही थी। मैं इन पंडितजी को कितना भला आदमी समझती थी। पर अब मालूम हुआ कि यह भी रंगे हुए सियार हैं। अपने घर के सिवा अब मेरा कोई ठिकाना नहीं है। मुझे दूसरों की चिरौरी करने की जरूरत ही क्या? क्या मेरा कोई घर नहीं था? क्या मैं इनके घर जन्म काटने आई थी। दो-चार दिन में जब उनका क्रोध शांत हो जाता, आप ही चली जाती। ओह ! नारायण, क्रोध में बुद्धि कैसी भ्रष्ट हो जाती है। मुझे इनके घर में भूलकर भी न आना चाहिए था, मैंने अपने पांव में आप ही कुल्हाड़ी मारी। वह अपने मन में न जाने क्या समझते होंगे।

यह सोचते हुए सुमन आगे चली, पर थोड़ी दूर चलकर उसके विचारों ने फिर पलटा खाया। मैं कहां जा रही हूं? वह अब मुझे कदापि घर में न घुसने देंगे। मैंने कितनी विनती की, पर उन्होंने एक न सुनी। जब केवल रात को कई घंटे की देर हो जाने से उन्हें इतना संदेह हो गया, तो अब मुझे पूरे चौबीस घंटे हो चुके हैं और मैं शामत की मारी वहीं आई, जहां मुझे न आना चाहिए था। वह तो अब मुझे दूर से ही दुत्कार देंगे। यह दुत्कार क्यों सहूं? मुझे कहीं रहने का स्थान चाहिए। खाने भर को किसी-न-किसी तरह कमा लूंगी। कपड़े भी सीऊंगी तो

खाने-भर को मिल जायगा, फिर किसी की धौंस क्यों सहूं? इनके यहां मुझे कौन-सा सुख था? व्यर्थ में एक बेड़ी पैरों में पड़ी हुई थी और लोक-लाज से मुझे वह रख भी लें, तो उठते-बैठते ताने दिया करेंगे। बस, चलकर एक मकान ठीक कर लूं। भोली क्या मेरे साथ इतना भी सलूक न करेगी? वह मुझे अपने घर बार-बार बुलाती थी, क्या इतनी दया भी न करेगी?

अमोला चली जाऊं तो कैसा हो? लेकिन वहां पर कौन बैठा हुआ है। अम्मां मर गईं। शान्ता है। उसी का निर्वाह होना कठिन है, मुझे कौन पूछने वाला है? मामी जीने न देंगी। छेद-छेदकर मार डालेंगी। चलूं भोली से कहूं, देखूं क्या कहती है। कुछ न हुआ तो गंगा तो कहीं नहीं गई है? यह निश्चय करके सुमन भोली के घर चली। इधर-उधर ताकती थी कि कहीं गजाधर न आता हो।

भोली के द्वार पर पहुंचकर सुमन ने सोचा, इसके यहां क्यों जाऊं? किसी पड़ोसिन के घर जाने से काम न चलेगा? इतने में भोली ने उसे देखा और इशारे से ऊपर बुलाया। सुमन ऊपर चली गई।

भोली का कमरा देखकर सुमन की आंखें खुल गईं। एक बार वह पहले भी आई थी, लेकिन नीचे के आंगन से ही लौट गई थी। कमरा फर्श, मसनद, चित्रों और शीशे के सामानों से सजा हुआ था। एक छोटी-सी चौकी पर चांदी का पानदान रखा हुआ था। दूसरी चौकी पर चांदी की तश्तरी और चांदी का एक ग्लास रखा हुआ था। सुमन यह सामान देखकर दंग रह गई।

भोली ने पूछा—आज यह संदूकची लिए इधर कहां से आ रही थीं?

सुमन—यह राम-कहानी फिर कहूंगी; इस समय तुम मेरे ऊपर कृपा करो कि मेरे लिए कहीं अलग एक छोटा-सा मकान ठीक करा दो। मैं उसमें रहना चाहती हूं।

भोली ने विस्मित होकर कहा—यह क्यों, क्या शौहर से लड़ाई हो गई है?

सुमन—नहीं, लड़ाई की क्या बात है? अपना जी ही तो है।

भोली—जरा मेरे सामने ताको। हां, चेहरा साफ कह रहा है। क्या बात हुई?

सुमन—सच कहती हूं, कोई बात नहीं है। अगर अपने रहने से किसी को कोई तकलीफ हो तो क्यों रहे?

भोली—अरे, तो मुझसे साफ-साफ कहती क्यों नहीं, किस बात पर बिगड़े हैं?

सुमन—बिगड़ने की कोई बात नहीं है। जब बिगड़ ही गए तो क्या रह गया?

भोली—तुम लाख छिपाओ, मैं ताड़ गई सुमन, बुरा न मानो तो कह दूं। मैं जानती थी कि कभी-न-कभी तुमसे खटकेगी जरूर। एक गाड़ी में कहीं अरबी घोड़ी और कहीं लद्दू, टट्टू जुत सकते हैं? तुम्हें तो किसी बड़े घर की रानी बनना चाहिए था। मगर पाले पड़ी एक खूसट के, जो तुम्हारा पैर धोने लायक भी नहीं। तुम्हीं हो कि यों निबाह रही हो, दूसरी होती तो मियां पर लात मारकर कभी की चली गई होती। अगर अल्लाहताला ने तुम्हारी शक्ल-सूरत मुझे दी होती, तो मैंने अब तक सोने की दीवार खड़ी कर ली होती। मगर मालूम नहीं, तुम्हारी तबीयत कैसी है। तुमने शायद अच्छी तालीम नहीं पाई।

सुमन—मैं दो साल तक एक ईसाई लेडी से पढ़ चुकी हूं।

भोली—दो-तीन साल की और कसर रह गई। इतने दिन और पढ़ लेती, तो फिर यह

ताक न लगी रहती। मालूम हो जाता कि हमारी जिंदगी का क्या मकसद है, हमें जिंदगी का लुत्फ कैसे उठाना चाहिए। हम कोई भेड़-बकरी तो नहीं कि मां-बाप जिसके गले मढ़ दें, बस उसी की हो रहें। अगर अल्लाह को मंजूर होता कि तुम मुसीबतें झेलो, तो तुम्हें परियों की सूरत क्यों देता? यह बेहूदा रिवाज यहीं के लोगों में है कि औरत को इतना जलील समझते हैं; नहीं तो और सब मुल्कों में औरतें आजाद हैं, अपनी पसंद से शादी करती हैं और जब उससे रास नहीं आती, तो तलाक दे देती हैं। लेकिन हम सब वही पुरानी लकीर पीटे जा रही हैं।

सुमन ने सोचकर कहा—क्या करूं बहन, लोक-लाज का डर है, नहीं तो आराम से रहना किसे बुरा मालूम होता है?

भोली—यह सब उसी जिहालत का नतीजा है। मेरे मां-बाप ने मुझे एक बूढ़े मियां के गले बांध दिया था। उसके यहां दौलत थी और सब तरह का आराम था, लेकिन उसकी सूरत से मुझे नफरत थी। मैंने किसी तरह छः महीने तो काटे, आखिर निकल खड़ी हुई। जिंदगी जैसी नियामत रो-रोकर दिन काटने के लिए नहीं दी गई है। जिंदगी का कुछ मजा ही न मिला, तो उससे फायदा ही क्या? पहले मुझे भी डर लगता था कि बड़ी बदनामी होगी, लोग मुझे जलील समझेंगे; लेकिन घर से निकलने की देरी थी, फिर तो मेरा वह रंग जमा कि अच्छे-अच्छे खुशामदें करने लगे। गाना मैंने घर पर ही सीखा था, कुछ और सीख लिया, बस सारे शहर में धूम मच गई। आज यहां कौन रईस, कौन महाजन, कौन मौलवी, कौन पंडित ऐसा है, जो मेरे तलुवे सहलाने में अपनी इज्जत न समझे? मंदिरों में, ठाकुरद्वारों में मेरे मुजरे होते हैं। लोग मिन्नतें करके ले जाते हैं। इसे मैं अपनी बेइज्जती कैसे समझूं? अभी एक आदमी भेज दूं, तो तुम्हारे कृष्ण-मंदिर के महंतजी दौड़े चले आवें। अगर कोई इसे बेइज्जती समझे, तो समझा करे।

सुमन—भला यह गाना कितने दिन में आ जायगा?

भोली—तुम्हें छः महीने में आ जाएगा; यहां गाने को कौन पूछता है, ध्रुपद और तिल्लाने की जरूरत ही नहीं। बस, चलती हुई गजलों की धूम है। दो-चार ठुमरियां और कुछ थियेटर के गाने आ जायं और बस, फिर तुम्हीं तुम हो। यहां तो अच्छी सूरत और मजेदार बातें चाहिए, तो खुदा ने यह दोनों बातें तुममें कूट-कूटकर भर दी हैं। मैं कसम खाकर कहती हूं सुमन, तुम एक बार इस लोहे की जंजीर को तोड़ दो; फिर देखो, लोग कैसे दीवानों की तरह दौड़ते हैं।

सुमन ने चिंतित भाव से कहा—यही बुरा मालूम होता है कि....

भोली—हां हां, कहो, यही कहना चाहती हो न कि ऐरे-गैरे सबसे बेशरमी करनी पड़ती है। शुरू में मुझे भी यही झिझक होती थी। मगर बाद को मालूम हुआ कि यह खयाल-ही-खयाल है। यहां ऐरे-गैरे के आने की हिम्मत ही नहीं होती। यहां तो सिर्फ रईस लोग आते हैं। बस, उन्हें फंसाए रखना चाहिए। अगर शरीफ है, तब तो तबीयत आप-ही-आप उससे मिल जाती है और बेशरमी का ध्यान भी नहीं होता, लेकिन अगर उससे अपनी तबीयत न मिले, तो उसे बातों में लगाए रहो, जहां तक उसे नोचते-खसोटते बने, नोचो-खसोटो। आखिर को वह परेशान होकर खुद ही चला जायगा, उसके दूसरे भाई और आ फंसेंगे। फिर पहले-पहल तो झिझक होती ही है, क्या शौहर से नहीं होती? जिस तरह धीरे-धीरे उसके साथ झिझक दूर होती है, उसी तरह यहां होती है।

सुमन ने मुस्कराकर कहा—तुम मेरे लिए एक मकान तो ठीक कर दो।

भोली ने ताड़ लिया कि मछली चारा कुतरने लगी, अब शिस्त को कड़ा करने की जरूरत है। बोली—तुम्हारे लिए यही घर हाजिर है। आराम से रहो।

सुमन—तुम्हारे साथ न रहूंगी।

भोली—बदनाम हो जाओगी, क्यों?

सुमन—(झेंपकर) नहीं, यह बात नहीं।

भोली—खानदान की नाक कट जाएगी?

सुमन—तुम तो हंसी उड़ाती हो।

भोली—फिर क्या, पंडित गजाधरप्रसाद पांडे नाराज हो जायंगे?

सुमन—अब मैं तुमसे क्या कहूं?

सुमन के पास यद्यपि भोली को जवाब देने के लिए कोई दलील न थी। भोली ने उसकी शंकाओं का मजाक उड़ाकर उन्हें पहले से ही निर्बल कर दिया था। यद्यपि अधर्म और दुराचार से मनुष्य को जो स्वाभाविक घृणा होती है, वह उसके हृदय को डावांडोल कर रही थी। वह इस समय अपने भावों को शब्दों में न कह सकती थी। उसकी दशा उस मनुष्य की-सी थी, जो किसी बाग में पके फल को देखकर ललचाता है, पर माली के न रहते हुए भी उन्हें तोड़ नहीं सकता।

इतने में भोली ने कहा—तो कितने किराए तक का मकान चाहती हो, मैं अभी अपने मामा को बुलाकर ताकीद कर दूं।

सुमन—यही दो-तीन रुपये।

भोली—और क्या करोगी?

सुमन—सिलाई का काम कर सकती हूं।

भोली—और अकेली ही रहोगी?

सुमन—हां और कौन है?

भोली—कैसी बच्चों की-सी बातें कर रही हो। अरी पगली ! आंखों से देखकर अंधी बनती है। भला, अकेले घर में एक दिन तेरा निबाह होगा? दिन-दहाड़े आबरू लुट जायगी। इससे तो हजार दर्जे यही अच्छा है कि अपने शौहर ही के पास चली जाओ।

सुमन—उसकी तो सूरत देखने को जी नहीं चाहता। अब तुमसे क्या छिपाऊं, अभी परसों वकील साहब के यहां तुम्हारा मुजरा हुआ था। उसकी स्त्री मुझसे प्रेम रखती है। उन्होंने मुझे मुजरा देखने को बुलाया और बारह-एक बजे तक मुझे आने न दिया। जब तुम्हारा गाना खत्म हो चुका तो मैं घर आई । बस, इतनी-सी बात पर वह इतने बिगड़े कि जो मुंह में आया बकते रहे। यहां तक कि वकील साहब से भी पाप लगा दिया। कहने लगे, चली जा, अब सूरत न दिखाना। बहन, मैं ईश्वर को बीच देकर कहती हूं, मैंने उन्हें मनाने का बड़ा यत्न किया। रोई, पैर पड़ी, पर उन्होंने घर से निकाल ही दिया। अपने घर में कोई नहीं रखता, तो क्या जबर्दस्ती है। वकील साहब के घर गई कि दस-पांच दिन रहूंगी, फिर जैसा होगा देखा जायगा, पर इस निर्दयी ने वकील साहब को बदनाम कर डाला। उन्होंने मुझे कहला भेजा कि यहां से चली जाओ। बहन, और सब दुख था, पर यह संतोष तो था कि नारायण इज्जत से निबाहे जाते हैं; पर कलंक की कालिख मुंह में लग गई। अब चाहे सिर पर जो कुछ पड़े, मगर उस घर में न जाऊंगी।

यह कहते-कहते सुमन की आंखें भर आईं। भोली ने दिलासा देकर कहा—अच्छा, पहले हाथ-मुंह तो धो डालो, कुछ नाश्ता कर लो, फिर सलाह होगी। मालूम होता है कि तुम्हें रात-भर नींद नहीं आई।

सुमन—यहां पानी मिल जाएगा?

भोली ने मुस्कराकर कहा—सब इंतजाम हो जाएगा। मेरा कहार हिन्दू है। यहां कितने ही हिन्दू आया करते हैं। उनके लिए एक हिन्दू कहार रख लिया है।

भोली की बूढ़ी मामी सुमन को गुसलखाने में ले गई। वहां उसने साबुन से स्नान किया। तब मामी ने उसके बाल गूंथे। एक नई रेशमी साड़ी पहनने के लिए लाई। सुमन जब ऊपर आई और भोली ने उसे देखा, तो मुस्कराकर बोली—जरा जाकर आईने में मुंह देख लो।

सुमन शीशे के सामने गई। उसे मालूम हुआ कि सौंदर्य की मूर्ति सामने खड़ी है। सुमन अपने को कभी इतना सुंदर न समझती थी। लज्जायुक्त अभिमान से मुख-कमल खिल उठा और आंखों में नशा छा गया। वह एक कोच पर लेट गई।

भोली ने अपनी मामी से कहा—क्यों जहूरन, अब तो सेठजी आ जाएंगे पंजे में?

जहूरन बोली—तलुवे सहलाएंगे—तलुवे।

थोड़ी देर में कहार मिठाइयां लाया। सुमन ने जलपान किया। पान खाया और फिर आईने के सामने खड़ी हो गई। उसने अपने मन में कहा, यह सुख छोड़कर उस अंधेरी कोठरी में क्यों रहूं?

भोली ने पूछा—गजाधर शायद मुझसे तुम्हारे बारे में कुछ पूछे, तो क्या कह दूंगी?

सुमन ने कहा—कहला देना कि यहां नहीं है।

भोली का मनोरथ पूरा हो गया। उसे निश्चय हो गया कि सेठ बलभद्रदास जो अब तक मुझसे कन्नी काटते फिरते थे, इस लावण्यमयी सुंदरी पर भ्रमर की भांति मंडराएंगे।

सुमन की दशा उस लोभी डॉक्टर की-सी थी, जो अपने किसी रोगी मित्र को देखने जाता है और फीस के रुपये अपने हाथों से नहीं लेता। संकोचवश कहता है, इसकी क्या जरूरत है, लेकिन जब रुपये उसकी जेब में डाल दिए जाते हैं, तो हर्ष से मुस्कराता हुआ घर की राह लेता है।

बारह

पद्मसिंह के एक बड़े भाई मदनसिंह थे। वह घर का कामकाज देखते थे। थोड़ी-सी जमींदारी थी, कुछ लेन-देन करते थे। उनके एक ही लड़का था, जिसका नाम सदनसिंह था। स्त्री का नाम भामा था।

मां-बाप का इकलौता लड़का बड़ा भाग्यशाली होता है। उसे मीठे पदार्थ खूब खाने को मिलते हैं, किंतु कड़वी ताड़ना कभी नहीं मिलती। सदन बाल्यकाल में ढीठ, हठी और लड़ाका था। वयस्क होने पर वह आलसी, क्रोधी और बड़ा उद्दंड हो गया। मां-बाप को यह सब मंजूर

था। वह चाहे कितना ही बिगड़ जाए, पर आंख के सामने से न टले। उससे एक दिन का बिछोह भी न सह सकते थे। पद्मसिंह ने कितनी बार अनुरोध किया कि इसे मेरे साथ जाने दीजिए; मैं इसका नाम अंग्रेजी मदरसे में लिखा दूंगा, किंतु मां-बाप ने कभी स्वीकार नहीं किया। सदन ने अपने कस्बे ही के मदरसे में उर्दू और हिंदी पढ़ी थी। भामा के विचार में उसे इससे अधिक विद्या की जरूरत ही नहीं थी। घर में खाने को बहुत है, वन-वन की पत्ती कौन तोड़वाए? बला से न पढ़ेगा, आंखों से देखते तो रहेंगे।

सदन अपने चाचा के साथ जाने के लिए बहुत उत्सुक रहता था। उनके साबुन, तौलिए, जूते, स्लीपर, घड़ी और कालर को देखकर उसका जी बहुत लहराता । घर में सब कुछ था; पर यह फैशन की सामग्रियां कहां? उसका जी चाहता, मैं भी चचा की तरह कपड़ों से सुसज्जित होकर टमटम पर हवा खाने निकलूं। वह अपने चचा का बड़ा सम्मान करता था। उनकी कोई बात न टालता। मां-बाप की बातों पर कान न धरता, प्राय: सम्मुख विवाद करता। लेकिन चचा के सामने वह शराफत का पुतला बन जाता था। उनके ठाट-बाट ने उसे वशीभूत कर लिया था। पद्मसिंह घर आते तो सदन के लिए अच्छे-अच्छे कपड़े और जूते लाते। सदन इन चीजों पर लहालोट हो जाता।

होली के दिन पद्मसिंह अवश्य घर आया करते थे। अब की भी एक सप्ताह पहले उनका पत्र आया था कि हम आएंगे। सदन रेशमी अचकन और वार्निशदार जूते के स्वप्न देख रहा था। होली के एक दिन पहले मदनसिंह ने स्टेशन पर पालकी भेजी। प्रात:काल भी, संध्या भी। दूसरे दिन भी दोनों जून सवारी गई, लेकिन वहां तो भोलीबाई के मुजरे की ठहर चुकी थी, घर कौन आता? यह पहली ही होली थी कि पद्मसिंह घर नहीं आए। भामा रोने लगीं। सदन के नैराश्य की तो कोई सीमा ही न थी, न कपड़े, न लत्ते, होली कैसे खेले! मदनसिंह भी मन मारे बैठे थे। एक उदासी-सी छाई हुई थी। गांव की रमणियां होली खेलने आईं। भामा को उदास देख तसल्ली देने लगीं, 'बहन, पराया कभी अपना नहीं होता। वहां दोनों जने शहर की बहार देखते होंगे, गांव में क्या करने आते?' गाना-बजाना हुआ, पर भामा का मन न लगा। मदनसिंह होली के दिन खूब भांग पिया करते थे। आज भांग छुई तक नहीं। सदन सारे दिन नंगे बदन मुंह लटकाये बैठा था। संध्या को जाकर मां से बोला-मैं चचा के पास जाऊंगा।

भामा-वहां तेरा कौन बैठा हुआ है?

सदन-क्यों, चचा नहीं हैं?

भामा-अब वह चचा नहीं हैं, वहां कोई तुम्हारी बात भी न पूछेगा।

सदन-मैं तो जाऊंगा।

भामा-एक बार कह दिया, मुझे दिक मत करो, वहां जाने को मैं न कहूंगी। ज्यों-ज्यों भामा मना करती थी, सदन जिद पकड़ता था। अंत में वह झुंझलाकर वहां से उठ गई। सदन भी बाहर चला आया। जिद सामने की चोट नहीं सह सकती, उस पर बगली वार करना चाहिए।

सदन ने मन में निश्चय किया कि चचा के पास भाग चलना चाहिए। न जाऊं तो यह लोग कौन मुझे रेशमी अचकन बनवा देंगे। बहुत प्रसन्न होंगे तो एक नैनसुख का कुरता सिलवा देंगे। एक मोहनमाला बनवाई है, तो जानते होंगे, जग जीत लिया। एक जोशन बनवाया है, तो सारे गांव में दिखाते फिरते हैं। मानो अब मैं जोशन पहनकर बैठूंगा। मैं तो जाऊंगा, देखूं कौन रोकता है?

यह निश्चय करके वह अवसर ढूंढ़ने लगा। रात को जब सब लोग सो गए, तो चुपके से उठकर घर से निकल खड़ा हुआ। स्टेशन वहां से तीन मील के लगभग था। चौथ का चांद डूब चुका था, अंधेरा छाया हुआ था। गांव के निकास पर बांस की एक कोठी थी। सदन वहां पहुंचा तो कुछ चूं-चूं सी आवाज सुनाई दी। उसका कलेजा सन्न रह गया। लेकिन शीघ्र ही मालूम हो गया कि बांस आपस में रगड़ खा रहे हैं। जरा और आगे एक आम का पेड़ था। बहुत दिन हुए इस पर से एक कुर्मी का लड़का गिरकर मर गया था। सदन यहां पहुंचा तो उसे शंका हुई, जैसे कोई खड़ा है। उसके रोंगटे खड़े हो गए, सिर में चक्कर-सा आने लगा। लेकिन मन को संभालकर जरा ध्यान से देखा तो कुछ न था। लपककर आगे बढ़ा। गांव से बाहर निकल गया।

गांव से दो मील पर पीपल का एक वृक्ष था। यह जनश्रुति थी कि वहां भूतों का अड्डा है। सब-के-सब उसी वृक्ष पर रहते हैं। एक कमली वाला भूत उनका सरदार है। वह मुसाफिरों के सामने काली कमली ओढ़े, खड़ाऊं पहने आता है और हाथ फैलाकर कुछ मांगता है। मुसाफिर ज्योंही देने के लिए हाथ बढ़ाता है, वह अदृश्य हो जाता है। मालूम नहीं, इस क्रीड़ा से उसका क्या प्रयोजन था ! रात को कोई मनुष्य उस रास्ते से अकेले न आता और जो कोई साहस करके चला जाता, वह कोई-न-कोई अलौकिक बात अवश्य देखता। कोई कहता, गाना हो रहा था। कोई कहता, पंचायत बैठी हुई थी। सदन को अब यही एक शंका और थी। वह पहले ही से हृदय को स्थिर किए हुए था, लेकिन ज्यों-ज्यों वह स्थान समीप आता था, उसका हियाव बर्फ के समान पिघलता जाता था। जब एक फर्लांग शेष रह गया, तो उसके पग न उठे। वह जमीन पर बैठ गया और सोचने लगा कि क्या करूं। चारों ओर देखा, कहीं कोई मनुष्य न दिखाई दिया। यदि पशु ही नजर आता, तो उसे धैर्य हो जाता। आध घंटे तक वह किसी आने वाले की राह देखता रहा, पर देहात का रास्ता रात को नहीं चलता। उसने सोचा, कब तक बैठा रहूंगा? एक बजे रेल आती है, देर हो जायगी तो सारा खेल ही बिगड़ जायगा। अतएव वह हृदय में बल का संचार करके उठा और रामायण की चौपाइयां उच्च स्वर में गाता हुआ चला। भूत-प्रेत के विचार को किसी बहाने से दूर रखना चाहता था। किंतु ऐसे अवसरों पर गर्मी की मक्खियों की भांति विचार टालने से नहीं टलता। हटा दो, फिर आ पहुंचे। निदान वह सघन वृक्ष सामने दिखाई देने लगा। सदन ने उसकी ओर ध्यान से देखा। रात अधिक जा चुकी थी, तारों का प्रकाश भूमि पर पड़ रहा था। सदन को वहां कोई वस्तु न दिखाई दी, उसने और भी ऊंचे स्वर में गाना शुरू किया। इस समय उसका एक-एक रोम सजग हो रहा था। कभी इधर ताकता, कभी उधर, नाना प्रकार के जीव दिखाई देते, किंतु ध्यान से देखते ही लुप्त हो जाते। अकस्मात् उसे मालूम हुआ कि दाहिनी ओर कोई बंदर बैठा हुआ है। कलेजा सन्न हो गया। किंतु क्षण-मात्र में बंदर मिट्टी का ढेर बन गया। जिस समय सदन वृक्ष के नीचे पहुंचा, उसका गला थरथराने लगा, मुंह से आवाज न निकली। अब विचार को बहलाने की आवश्यकता भी न थी, मन और बुद्धि की सभी शक्तियों का संचय परमावश्यक था। अकस्मात् उसे कोई वस्तु दौड़ती नजर आई। वह उछल पड़ा, ध्यान से देखा तो कुत्ता था। किंतु वह सुन चुका था कि भूत कभी-कभी कुत्तों के रूप में भी हो जाया करते हैं। शंका और भी प्रचंड हुई, सावधान होकर खड़ा हो गया, जैसे कोई वीर पुरुष शत्रु के वार की प्रतीक्षा करता है। कुत्ता सिर झुकाए चुपचाप कतराकर निकल गया। सदन ने जोर से डांटा, धत् ! कुत्ता दुम दबाकर भागा। सदन

कई पग उसके पीछे दौड़ा। भय की चरम सीमा ही साहस है। सदन को विश्वास हो गया, कुत्ता था; भूत होता तो अवश्य कोई-न-कोई लीला करता। भय कम हुआ, किंतु वह वहां से भागा नहीं। वह अपने भीरु हृदय को लज्जित करने के लिए कई मिनट तक पीपल के नीचे खड़ा रहा। इतना ही नहीं, उसने पीपल की परिक्रमा की और उसे दोनों हाथों से बलपूर्वक हिलाने की चेष्टा की। यह विचित्र साहस था। ऊपर पत्थर, नीचे पानी। एक जरा-सी आवाज, एक जरा-सी पत्ती की खड़कन उसके जीवन का निपटारा कर सकती थी। इस परीक्षा से निकलकर सदन अभिमान से सिर उठाए आगे बढ़ा।

तेरह

सुमन के चले जाने के बाद पद्मसिंह के हृदय में एक आत्मग्लानि उत्पन्न हुई। मैंने अच्छा नहीं किया। न मालूम वह कहां गई। अपने घर चली गई तो पूछना ही क्या, किंतु वहां वह कदापि न गई होगी। मरता क्या न करता, कहीं कुली डिपो वाली के जाल में फंस गई, तो फिर छूटना मुश्किल है। यह दुष्ट ऐसे ही अवसर पर अपना बाण चलाते हैं; कौन जाने कहीं उनसे भी घोरतर दुष्टाचारियों के हाथ में न पड़ जाय। साहसी पुरुष को कोई सहारा नहीं होता तो वह चोरी करता है, कायर पुरुष को कोई सहारा नहीं होता तो वह भीख मांगता है, लेकिन स्त्री को कोई सहारा नहीं होता, तो वह लज्जाहीन हो जाती है। युवती का घर से निकलना मुंह से बात का निकलना है। मुझसे बड़ी भूल हुई। अब इस मर्यादा-पालन से काम न चलेगा। वह डूब रही होगी, उसे बचाना चाहिए।

वह गजाधर के घर जाने के लिए कपड़े पहनने लगे। तैयार होकर घर से निकले। किंतु यह संशय लगा हुआ था कि कोई मुझे उसके दरवाजे पर देख न ले। मालूम नहीं, गजाधर अपने मन में क्या समझे। कहीं उलझ पड़ा तो मुश्किल होगी। घर से बाहर निकल चुके थे, लौट पड़े और कपड़े उतार दिए।

जब वह दस बजे भोजन करने गए, तो सुभद्रा ने तेवर बदलकर कहा—यह आज सवेरे सुमन के पीछे क्यों पड़ गए? निकालना ही था तो एक ढंग से निकालते। उस बुड्ढे जीतन को भेज दिया; उसने उल्टी-सीधी जो कुछ मुंह में आई कही। बेचारी ने जीभ तक नहीं हिलाई, चुपचाप चली गई। मारे लाज के मैंने सिर नहीं उठाया। मुझसे आकर कहते, मैं समझा देती। कोई गंवारिन तो थी नहीं, अपना सुभीता करके चली जाती। यह सब तो कुछ न हुआ; बस नादिरशाही हुक्म दे दिया। बदनामी का इतना डर ! वह अगर लौटकर घर न गई, तो क्या कुछ कम बदनामी होगी? कौन जाने कहां जायगी, इसका दोष किस पर होगा?

सुभद्रा भरी बैठी थी, उबल पड़ी। पद्मसिंह अपना अपराध स्वीकार करने वाले अपराधी की भांति सिर झुकाए सुनते रहे। जो विचार उनके मन में थे, वे सुभद्रा की जीभ पर थे। चुपचाप भोजन किया, और कचहरी चले गए। आज उस जलसे के बाद तीसरा दिन था। पहले शर्माजी को कचहरी के लोग एक चरित्रवान् मनुष्य समझते थे और उनका आदर करते थे। किंतु इधर तीन-चार दिनों से जब अन्य वकीलों को अवकाश मिलता, तो वह शर्माजी के

पास आकर बैठ जाते और उनसे राग-रंग की चर्चा करने लगते—शर्माजी, सुना है, आज लखनऊ से कोई बाईजी आई हैं, उनके गाने की बड़ी प्रशंसा है, उनका मुजरा न कराइएगा? अजी शर्माजी, कुछ सुना आपने? आपकी भोलीबाई पर सेठ चिम्मनलाल बेतरह रीझे हुए हैं। कोई कहता, भाई साहब, कल गंगास्नान है, घाट पर बड़ी बहार रहेगी, क्यों न एक पार्टी कर दीजिए? सरस्वती को बुला लीजिएगा, गाती तो बहुत अच्छा नहीं, मगर यौवन में अद्वितीय है। शर्माजी को इन चर्चाओं से घृणा होती। वह सोचते, क्या मैं वेश्याओं का दलाल हूं, जो मुझसे लोग इस प्रकार की बातें करते हैं?

कचहरी के कर्मचारियों के व्यवहार में भी शर्माजी को एक विशेष अंतर दिखाई देता था। उन्हें जब छुट्टी मिलती, सिगरेट पीते हुए आकर शर्माजी के पास बैठ जाते और इसी प्रकार चर्चा करने लगते। यहां तक कि शर्माजी किसी बहाने से उठ जाते और उनसे पीछा छुड़ाने के लिए घंटों किसी वृक्ष के नीचे छिपकर बैठे रहते। वह उस अशुभ मूहूर्त्त को कोसते, जब उन्होंने जलसा किया था।

आज भी वह कचहरी में ज्यादा न ठहर सके। इन्हीं घृणित चर्चाओं से उकता कर दो ही बजे लौट आए। ज्योंही द्वार पर पहुंचे, सदन ने आकर उनके चरण स्पर्श किए।

शर्माजी आश्चर्य से बोले—अरे सदन, तुम कब आए?

सदन—इसी गाड़ी से आया।

पद्मसिंह—घर पर तो सब कुशल है?

सदन—जी हां, सब अच्छी तरह हैं।

पद्मसिंह—कब चले थे? इसी एक बजे वाली गाड़ी से?

सदन—जी नहीं, चला तो था नौ बजे रात को, किंतु गाड़ी में सो गया और मुगलसराय पहुंच गया। उधर से बारह बजे वाली डाक से आया हूं।

पद्मसिंह—वाह अच्छे रहे ! कुछ भोजन किया?

सदन—जी हां, कर चुका'

पद्मसिंह—मैं तो अब की होली में न जा सका। भाभी कुछ कहती थीं?

सदन—आपकी राह लोग दो दिन तक देखते रहे। दादा दो दिन पालकी लेकर गए। अम्मां रोती थीं, मेरा जी न लगता था, रात को उठकर चला आया।

शर्माजी—तो क्या घर पर पूछा नहीं?

सदन—पूछा क्यों नहीं, लेकिन आप तो उन लोगों को जानते हैं, अम्मां राजी न हुईं।

शर्माजी—तब तो वह लोग घबराते होंगे, ऐसा ही था, तो किसी को साथ ले लेते। खैर अच्छा हुआ, मेरा जी भी तुम्हें देखने को लगा था। अब आ गए तो किसी मदरसे में नाम लिखाओ।

सदन—जी हां, यही तो मेरा भी विचार है।

शर्माजी ने मदनसिंह के नाम पर तार दिया, 'घबराइए मत। सदन यहीं आ गया है। उसका नाम किसी स्कूल में लिखा दिया जायगा।'

तार देकर सदन से गांव-घर की बातें करने लगे। कोई कुर्मी, कहार, लोहार, चमार ऐसा न बचा, जिसके संबंध में शर्माजी ने कुछ न कुछ पूछा न हो। ग्रामीण जीवन में एक प्रकार की ममता होती है, जो नागरिक जीवन में नहीं पाई जाती। एक प्रकार का स्नेह-बंधन होता है, जो सब प्राणियों को, चाहे छोटे हों या बड़े, बांधे रहता है।

संध्या हो गई। शर्माजी सदन के साथ सैर को निकले। किंतु बेनीबाग या क्वींस पार्क की ओर न जाकर वह दुर्गाकुंड और कान्हजी की धर्मशाला की ओर गए। उनका चित्त चिंताग्रस्त हो रहा था, आंखें इधर-उधर सुमन को खोजती फिरती थीं। मन में निश्चय कर लिया था कि अबकी वह मिल जाय, तो कदापि न जाने दूं, चाहे कितनी ही बदनामी हो। यही न होगा कि उसका पति मुझ पर दावा करेगा। सुमन की इच्छा होगी, चली जायगी। चलूं गजाधर के पास, संभव है, वह घर आ गई हो। यह विचार आते ही वह घर लौटे। कई मुवक्किल उनकी बाट जोह रहे थे। उनके कागज-पत्र देखे, किंतु मन दूसरी ओर था। ज्योंही इनसे छुट्टी हुई, वह गजाधर के घर चले, किंतु इधर-उधर ताकते जाते थे कि कहीं कोई देख न रहा हो, कोई साथ न आता हो। इस ढंग से जाते हैं मानो कोई प्रयोजन नहीं है। गजाधर के द्वार पर पहुंचे। वह अभी दूकान से लौटा था। आज उसे दोपहर ही को खबर मिली थी कि शर्माजी ने सुमन को घर से निकाल दिया। तिस पर भी उसको यह संदेह हो रहा था कि कहीं इस बहाने उसे छिपा न दिया हो। लेकिन इस समय शर्माजी को अपने द्वार पर देखकर वह उनका सत्कार करने के लिए विवश हो गया। खाट पर से उठकर उन्हें नमस्ते किया। शर्माजी रुक गए और निश्चेष्ट भाव से बोले—क्यों पांडेजी, महराजिन घर आ गईं न?

गजाधर का संदेह कुछ हटा, बोला—जी नहीं, जब से आपके घर से गई, तब से उसका कुछ पता नहीं।

शर्माजी—आपने कुछ इधर-उधर पूछताछ नहीं की? आखिर यह बात क्या हुई जो आप उनसे इतने नाराज हो गए?

गजाधर—महाशय, मेरे निकालने का तो एक बहाना था, असल में वह निकलना चाहती ही थी। पास-पड़ोस की दुष्टाओं ने उसे बिगाड़ दिया था। इधर महीनों से वह अनमनी-सी रहती थी। होली के दिन एक बजे रात को घर आई, मुझे संदेह हुआ। मैंने डांट-डपट की। घर से निकल खड़ी हुई।

शर्माजी—लेकिन आप उसे घर लाना चाहते तो मेरे यहां से ला सकते थे। इसके बदले आपने मुझको बदनाम करना शुरू किया। तो भाई, अपनी बदनामी कौन चाहता है? मैंने उसे अपने घर से अलग कर दिया। बताओ, और मैं क्या करता? अपनी इज्जत तो सभी को प्यारी होती है। इस मुआमले में मेरा इतना ही अपराध था कि वह होली वाले जलसे में मेरे यहां रही। यदि मुझे मालूम होता कि जलसे का यह परिणाम होगा, तो या तो जलसा ही न करता या उसे अपने घर आने न देता। इतने ही अपराध के लिए आपने सारे शहर में मेरा नाम बेच डाला।

गजाधर रोने लगा। उसके मन का भ्रम दूर हो गया। रोते हुए बोला—महाशय, इस अपराध के लिए मुझे जो सजा चाहें दें। मैं गंवार-मूर्ख ठहरा, जिसने जो बात सुझा दी, मान गया। वह जो बैंकघर के बाबू हैं, भला-सा नाम है—विट्ठलदास है, मैं उन्हीं के चकमे में आ गया? होली के एक दिन पहले वह हमारी दूकान पर आए थे, कुछ कपड़ा लिया, और मुझे अलग ले जाकर आपके बारे में....अब क्या कहूं। उनकी बातें सुनकर मुझे भ्रम हो गया। मैं उन्हें भला आदमी समझता था। सारे शहर में दूसरों के साथ भलाई करने के लिए उपदेश करते फिरते हैं। ऐसा धर्मात्मा आदमी कोई बात कहता है, तो उस पर विश्वास आ जाता है। मालूम नहीं उन्हें आपसे क्या बैर था, और मेरा तो उन्होंने घर ही बिगाड़ दिया।

यह कहकर गजाधर फिर रोने लगा। उसके मन का भ्रम दूर हो गया। रोते हुए बोला–सरकार, इस अपराध के लिए मुझे जो सजा चाहें दें।

शर्माजी को ऐसा जान पड़ा, मानो किसी ने लोहे की छड़ लाल करके उनके हृदय में चुभा दी। माथे पर पसीना आ गया। वह सामने से तलवार का वार रोक सकते थे, किंतु पीछे से सुई की नोंक भी उनकी सहन-शक्ति से बाहर थी। विट्ठलदास उनके परम मित्र थे। शर्माजी उनकी इज्जत करते थे। आपस में बहुधा मतभेद होने पर भी वह उनके पवित्र उद्देश्यों का आदर करते थे। ऐसा व्यक्ति जान-बूझकर जब किसी पर कीचड़ फेंके, तो इसके सिवा और क्या कहा जा सकता है कि शुद्ध विचार रखते हुए भी वह क्रूर हैं। शर्माजी समझ गए कि होली के जलसे के प्रस्ताव से नाराज होकर विट्ठलदास ने यह आग लगाई। केवल मेरा अपमान करने के लिए, जनता की दृष्टि से गिराने के लिए मुझ पर यह दोषारोपण किया है। क्रोध से कांपते हुए बोले–तुम उनके मुंह पर कहोगे?

गजाधर–हां, सांच को क्या आंच? चलिए, अभी मैं उनके सामने कह दूं। मजाल है कि वह इंकार कर जायं।

क्रोध के आवेग में शर्माजी चलने को प्रस्तुत हो गए। किंतु इतनी देर में आंधी का वेग कुछ कम हो चला था। संभल गए। इस समय वहां जाने से बात बढ़ जाएगी, यह सोचकर गजाधर से बोले–अच्छी बात है। जब बुलाऊं तो चले आना। मगर निश्चिंत मत बैठो। महराजिन की खोज में रहो, समय बुरा है। जो खर्च की जरूरत हो, वह मुझसे लो।

यह कहकर शर्माजी घर चले गए। विट्ठलदास की गुप्त छुरी के आघात ने उन्हें निस्तेज बना दिया था। वह यही समझते थे कि विट्ठलदास ने केवल द्वेष के कारण यह षड्यंत्र रचा है। यह विचार शर्माजी के ध्यान में भी न आया कि संभव है, उन्होंने जो कुछ कहा हो, वह शुभचिंताओं से प्रेरित होकर कहा हो और उस पर विश्वास करते हों।

चौदह

दूसरे दिन पद्मसिंह सदन को साथ लेकर किसी स्कूल में दाखिल कराने चले। किंतु जहां गए, साफ जवाब मिला 'स्थान नहीं है।' शहर में बारह पाठशालाएं थीं। लेकिन सदन के लिए कहीं स्थान न था।

शर्माजी ने विवश होकर निश्चय किया कि स्वयं पढ़ाऊंगा। प्रातःकाल तो मुवक्किलों के मारे अवकाश नहीं मिलता। कचहरी से आकर पढ़ाते, किंतु एक ही सप्ताह में हिम्मत हार बैठे। कहां कचहरी से आकर पत्र पढ़ते थे, कभी हारमोनियम बजाते, कहां अब एक बूढ़े तोते को रटाना पड़ता था। वह बारंबार झुंझलाते, उन्हें मालूम होता कि सदन मंद-बुद्धि है। यदि वह कोई पढ़ा हुआ शब्द पूछ बैठता तो शर्माजी झल्ला पड़ते। वह स्थान उलट-पलटकर दिखाते, जहां वह शब्द प्रथम आया था। फिर प्रश्न करते और सदन ही से उस शब्द का अर्थ निकलवाते। इस उद्योग में काम कम होता था, किंतु उलझन बहुत थी। सदन भी उनके सामने पुस्तक खोलते हुए डरता। वह पछताता कि कहां-से-कहां यहां आया, इससे तो गांव ही अच्छा था। चार

पंक्तियां पढ़ाएंगे, लेकिन घंटों बिगड़ेंगे। पढ़ा चुकने के बाद शर्माजी कुछ थक-से जाते। सैर करने को भी जी नहीं चाहता। उन्हें विश्वास हो गया कि इस काम की क्षमता मुझमें नहीं है।

मुहल्ले में एक मास्टर साहब रहते थे। उन्होंने बीस रुपये मासिक पर सदन को पढ़ाना स्वीकार किया। अब यह चिंता हुई कि रुपये आएं कहां से? शर्माजी फैशनेबुल मनुष्य थे, खर्च का पल्ला सदा दबा ही रहता था। फैशन का बोझ अखरता तो अवश्य था, किंतु उसके सामने कंधा न डालते थे। बहुत देर तक एकांत में बैठे सोचते रहे, किंतु बुद्धि ने कुछ काम न किया, तब सुभद्रा के पास जाकर बोले—मास्टर बीस रुपये पर राजी है।

सुभद्रा—तो क्या मास्टर ही न मिलते थे। मास्टर तो एक नहीं सौ हैं, रुपये कहां हैं?

शर्माजी—रुपये भी ईश्वर कहीं से देंगे ही।

सुभद्रा—मैं तो कई साल से देख रही हूं, ईश्वर ने कभी विशेष कृपा नहीं की। बस, इतना दे देते हैं कि पेट की रोटियां चल जायं, वही तो ईश्वर हैं !

पद्मसिंह—तो तुम्हीं कोई उपाय निकालो।

सुभद्रा—मुझे जो कुछ देते हो, मत देना बस !

पद्मसिंह—तुम तो जरा-सी बात में चिढ़ जाती हो।

सुभद्रा—चिढ़ने की बात ही करते हो, आय-व्यय तुमसे छिपा नहीं है, मैं और कौन-सी बचत निकाल दूंगी? दूध-घी की तुम्हारे यहां नदी नहीं बहती, मिठाई-मुरब्बे में कभी फफूंदी नहीं लगी, कहारिन के बिना काम चलने ही का नहीं, महराजिन का होना जरूरी है और किस खर्च में कमी करने को कहते हो?

पद्मसिंह—दूध ही बंद कर दो।

सुभद्रा—हां, बंद कर दो। मगर तुम न पीयोगे, सदन के लिए तो लेना ही होगा।

शर्माजी फिर सोचने लगे। पान-तंबाकू का खर्च दस रुपये मासिक से कम न था, और भी कई छोटी-छोटी मदों में कुछ-न-कुछ बचत हो सकती थी। किंतु उनकी चर्चा करने से सुभद्रा की अप्रसन्नता का भय था। सुभद्रा की बातों से उन्हें स्पष्ट विदित हो गया था कि इस विषय में उसे मेरे साथ सहानुभूति नहीं है। मन में बाहर के खर्च का लेखा जोड़ने लगे। अंत में बोले—क्यों, रोशनी और पंखे के खर्च में कुछ किफायत हो सकती है?

सुभद्रा—हां, हो सकती है, रोशनी की क्या आवश्यकता है, सांझ ही से बिछावन पर पड़ रहें। यदि कोई मिलने-मिलाने आयगा, तो आप ही चिल्लाकर चला जायगा या घूमने निकल गए, नौ बजे लौटकर आए, और पंखा तो हाथ से भी झला जा सकता है। क्या जब बिजली नहीं थी तो लोग गर्मी के मारे बावले हो जाते थे?

पद्मसिंह—घोड़े के रातिब में कमी कर दूं?

सुभद्रा—हां, यह दूर की सूझी। घोड़े को रातिब दिया ही क्यों जाय, घास काफी है। यही न होगा कि कूल्हे पर हड्डियां निकल आएंगी। किसी तरह मर-जीकर कचहरी तक ले ही जायगा, यह तो कोई नहीं कहेगा कि वकील साहब के पास सवारी नहीं है।

पद्मसिंह—लड़कियों की पाठशाला को दो रुपये मासिक चंदा देता हूं, दो रुपये क्लब का चंदा है, तीन रुपये मासिक अनाथालय को देता हूं। यह सब चंदे बंद कर दूं तो कैसा हो?

सुभद्रा—बहुत अच्छा होगा। संसार की रीति है कि पहले अपने घर में दीया जलाकर मस्जिद में जलाते हैं।

शर्माजी सुभद्रा की व्यंग्यपूर्ण बातों को सुन-सुनकर मन में झुंझला रहे थे, पर धीरज के साथ बोले—इस तरह कोई पंद्रह रुपये मासिक तो मैं दूंगा, शेष पांच रुपये का बोझ तुम्हारे ऊपर है। मैं हिसाब-किताब नहीं पूछता, किसी तरह संख्या पूरी करो।

सुभद्रा—हां, हो जायगा, कुछ कठिन नहीं है, भोजन एक ही समय बने, दोनों समय बनने की क्या जरूरत है? संसार में करोड़ों मनुष्य एक ही समय खाते हैं, किंतु बीमार या दुबले नहीं होते।

शर्माजी अधीर हो गए। घर की लड़ाई से उनका हृदय कांपता था, पर यह चोट न सही गई। बोले—तुम क्या चाहती हो कि सदन के लिए मास्टर न रखा जाय और वह यों ही अपना जीवन नष्ट करे? चाहिए तो यह था कि तुम मेरी सहायता करतीं, उल्टे और जी जला रही हो। सदन मेरे उसी भाई का लड़का है, जो अपने सिर पर आटे-दाल की गठरी लादकर मुझे स्कूल में दाखिल कराने आए थे। मुझे वह दिन भूले नहीं हैं। उनके उस प्रेम का स्मरण करता हूं, तो जी चाहता है कि उनके चरणों पर गिरकर घंटों रोऊं। तुम्हें अब अपने रोशनी और पंखे के खर्च में, पान-तंबाकू के खर्च में, घोड़े-साईस के खर्च में किफायत करना भारी मालूम होता है, किंतु भैया मुझे वार्निश वाले जूते पहनाकर आप नंगे पांव रहते थे। मैं रेशमी कपड़े पहनता था, वे फटे कुर्ते पर ही काटते थे। उनके उपकारों और भलाइयों का इतना भारी बोझ मेरी गर्दन पर है कि मैं इस जीवन में उससे मुक्त नहीं हो सकता। सदन के लिए मैं प्रत्येक कष्ट सहने को तैयार हूं। उसके लिए यदि मुझे पैदल कचहरी जाना पड़े, उपवास करना पड़े, अपने हाथों से उसके जूते साफ करने पड़ें, तब भी मुझे इंकार न होगा; नहीं तो मुझ जैसा कृतघ्न मनुष्य संसार में न होगा।

ग्लानि से सुभद्रा का मुख-कमल कुम्हला गया। यद्यपि शर्माजी ने वे बातें सच्चे दिल से कही थीं, पर उसने समझा कि यह मुझे लज्जित करने के निमित्त कही गई हैं। सिर नीचा करके बोली—तो मैंने यह कब कहा कि सदन के लिए मास्टर न रखा जाय? जो काम करना ही है, उसे कर डालिए। जो कुछ होगा, देखा जायगा। जब दादाजी ने आपके लिए इतने कष्ट उठाए हैं तो यही उचित है कि आप भी सदन के लिए कोई बात उठा न रखें। मुझसे जो कुछ करने को कहिए, वह करूं। आपने अब तक कभी इस विषय पर जोर नहीं दिया था, इसलिए मुझे भ्रम हुआ कि यह कोई आवश्यक खर्च नहीं है। आपको पहले ही दिन से मास्टर का प्रबंध करना चाहिए था। इतने आगे-पीछे का क्या काम था? अब तक तो वह थोड़ा-बहुत पढ़ भी चुका होता। इतनी उम्र गंवाने के बाद जब पढ़ने का विचार किया है तो उसका एक दिन भी व्यर्थ न जाना चाहिए।

सुभद्रा ने तत्क्षण अपनी लज्जा का बदला ले लिया। पंडितजी को अपनी भूल स्वीकार करनी पड़ी। यदि अपना पुत्र होता, तो उन्होंने कदापि इतना सोच-विचार न किया होता।

सुभद्रा को अपने प्रतिवाद पर खेद हुआ। उसने पान बनाकर शर्माजी को दिया। यह मानो संधिपत्र था। शर्माजी ने पान ले लिया, संधि स्वीकृत हो गई।

जब वह चलने लगे तो सुभद्रा ने पूछा—कुछ सुमन का पता चला?

शर्माजी—कुछ भी नहीं। न जाने कहां गायब हो गई, गजाधर भी नहीं दिखाई दिया। सुनता हूं, घर-बार छोड़कर किसी तरफ निकल गया है।

दूसरे दिन से मास्टर साहब सदन को पढ़ाने लगे। नौ बजे वह पढ़ाकर चले जाते तब

सदन स्नान-भोजन करके सोता। अकेले उसका जी बहुत घबराता, न कोई संगी न साथी, न कोई हंसी न दिल्लगी, कैसे जी लगे। हां, प्रातःकाल थोड़ी-सी कसरत कर लिया करता था। इसका उसे व्यसन था। अपने गांव में उसने एक छोटा-सा अखाड़ा बनवा रखा था। यहां अखाड़ा तो न था, कमरे में डंड कर लेता। शाम को शर्माजी उसके लिए फिटन तैयार करा देते। तब सदन अपना सूट पहनकर गर्व के साथ फिटन पर सैर करने निकलता। शर्माजी पैदल घूमा करते थे। वह पार्क या छावनी की ओर जाते, किंतु सदन उस तरफ न जाता। वायु-सेवन में जो एक प्रकार का दार्शनिक आनंद होता है, उसका उसे क्या ज्ञान। शुद्ध वायु की सुखद शीतलता, हरे-भरे मैदानों की विचारोत्पादक निर्जनता और सुरम्य दृश्यों की आनंदमयी निःस्तब्धता—उसमें इनके रसास्वादन की योग्यता न थी। उसका यौवनकाल था, जब बनाव-सिंगार का भूत सिर पर सवार रहता है। वह अत्यंत रूपवान, सुगठित, बलिष्ठ युवक था। देहात में रहा, न पढ़ना, न लिखना, न मास्टर का भय, न परीक्षा की चिंता, सेरों दूध पीता था। घर की भैंसें थीं, घी के लोंदे-के-लोंदे उठाकर खा जाता। उस पर कसरत का शौक। शरीर बहुत सुडौल निकल आया था। छाती चौड़ी, गर्दन तनी हुई, ऐसा जान पड़ता था, मानो देह में ईंगुर भरा हुआ है। उसके चेहरे पर वह गंभीरता और कोमलता न थी, जो शिक्षा और ज्ञान से उत्पन्न होती है। उसके मुख से वीरता और उद्दंडता झलकती थी। आंखें मतवाली, सतेज और चंचल थीं। वह बाग का कलमी पौधा नहीं, वन का सुदृढ़ वृक्ष था। निर्जन पार्क या मैदान में उस पर किसकी निगाह पड़ती? कौन उसके रूप और यौवन को देखता। इसलिए वह कभी दालमंडी की तरफ जाता, कभी चौक की तरफ। उसके रंग-रूप, ठाट-बाट पर बूढ़े-जवान सबकी आंखें उठ जातीं। युवक उसे ईर्ष्या से देखते, बूढ़े स्नेह से। लोग राह चलते-चलते उसे एक आंख देखने के लिए ठिठक जाते। दूकानदार समझते कि यह किसी रईस का लड़का है।

इन दूकानों के ऊपर सौंदर्य का बाजार था। सदन को देखते ही उस बाजार में एक हलचल मच जाती। वेश्याएं छज्जों पर आकर खड़ी हो जातीं और प्रेम कटाक्ष के बाण उस पर चलातीं। देखें, यह बहका हुआ कबूतर किस छतरी पर उतरता है? यह सोने की चिड़िया किस जाल में फंसती है? सदन में वह विवेक तो था नहीं, जो सदाचरण की रक्षा करता है। उसमें वह आत्मसम्मान भी नहीं था, जो आंखों को ऊपर नहीं उठने देता। उसकी फिटन बाजार में बहुत धीरे-धीरे चलती। सदन की आंखें उन्हीं रमणियों की ओर लगी रहतीं। यौवन के पूर्वकाल में हम अपनी कुवासनाओं के प्रदर्शन पर गर्व करते हैं, उत्तरकाल में अपने सद्गुणों के प्रदर्शन पर। सदन अपने को रसिया दिखाना चाहता था, प्रेम से अधिक बदनामी का आकांक्षी था। इस समय यदि उसका कोई अभिन्न मित्र होता, तो सदन उससे अपने कल्पित दुष्प्रेम की विस्तृत कथाएं वर्णन करता !

धीरे-धीरे सदन के चित्त की चंचलता यहां तक बढ़ी कि पढ़ना-लिखना सब छूट गया। मास्टर आते और पढ़ाकर चले जाते। लेकिन सदन को उनका आना बहुत बुरा मालूम होता। उसका मन हर घड़ी बाजार की ओर लगा रहता, वही दृश्य आंखों में फिरा करते, रमणियों के हाव-भाव और मृदु मुस्कान के स्मरण में मग्न रहता। इस भांति दिन काटने के बाद ज्यों ही शाम होती, यह बन-ठनकर दालमंडी की ओर निकल जाता। अंत में इस कुप्रवृत्ति का वही फल हुआ, जो सदैव हुआ करता है। तीन ही चार मास में उसका संकोच उड़ गया। फिटन पर दो आदमी दूतों की तरह उसके सिर पर सवार रहते। इसलिए वह इस बाग के फूलों में हाथ

लगाने का साहस न कर सकता था। वह सोचने लगा कि किसी भांति इन दूतों से गला छुड़ाऊं। सोचते-सोचते उसे एक उपाय सूझ गया। एक दिन उसने शर्माजी से कहा—चाचा, मुझे एक अच्छा-सा घोड़ा ले दीजिए। फिटन पर अपाहिजों की तरह बैठे रहना कुछ अच्छा नहीं मालूम होता। घोड़े पर सवार होने से कसरत भी हो जाएगी और मुझे सवारी का भी अभ्यास हो जाएगा।

जिस दिन से सुमन गई थी, शर्माजी कुछ चिंतातुर रहा करते थे। मुवक्किल लोग कहते कि आजकल इन्हें न जाने क्या हो गया है। बात-बात पर झुंझला जाते हैं। हमारी बात ही न सुनेंगे तो बहस क्या करेंगे। जब हमको मेहनताना देना है, तो क्या यही एक वकील हैं? गली-गली तो मारे-मारे फिरते हैं। इससे शर्माजी की आमदनी दिन-प्रति-दिन कम होती जाती थी। यह प्रस्ताव सुनकर चिंतित स्वर से बोले—अगर इसी घोड़े पर जीन खिंचा लो तो कैसा हो? दो-चार दिन में निकल जाएगा।

सदन—जी नहीं; बहुत दुर्बल है, सवारी में न ठहरेगा। कोई चाल भी तो नहीं; न कदम, न सरपट। कचहरी से थका-मांदा आएगा तो क्या चलेगा?

शर्माजी—अच्छा, तलाश करूंगा, कोई जानवर मिला तो ले लूंगा। शर्माजी ने चाहा कि इस तरह बात टाल दूं। मामूली घोड़ा भी ढाई-तीन सौ से कम में न मिलेगा, उस पर कम-से-कम पच्चीस रुपये मासिक का खर्च अलग। इस समय वह इतना खर्च उठाने में समर्थ न थे, किंतु सदन कब मानने वाला था? नित्य-प्रति उनसे तकाजा करता, यहां तक कि दिन में कई बार टोकने की नौबत आ पहुंची। शर्माजी उसकी सूरत देखते ही सूख जाते। यदि उससे अपनी आर्थिक दशा साफ-साफ कह देते, तो सदन चुप हो जाता, लेकिन अपनी चिंताओं की रामकहानी सुनाकर वह उसे कष्ट में नहीं डालना चाहते थे।

सदन ने अपने दोनों साइसों से कह रखा था कि कहीं घोड़ा बिकाऊ हो तो हमसे कहना। साइसों ने दलाली के लोभ से दत्तचित्त होकर तलाश की। घोड़ा मिल गया। डिगवी नाम के साहब विलायत जा रहे थे। उनका घोड़ा बिकने वाला था। सदन खुद गया, घोड़े को देखा, उस पर सवार हुआ, चाल देखी। मोहित हो गया। शर्माजी से आकर कहा—चलिए, घोड़ा देख लीजिए, मुझे बहुत पसंद है। शर्माजी को अब भागने का कोई रास्ता न रहा, जाकर घोड़े को देखा, डिगवी साहब से मिले, दाम पूछे। उन्होंने चार सौ रुपये मांगे, इससे कौड़ी कम नहीं।

अब इतने रुपये कहां से आएं? घर में अगर सौ-दो सौ रुपये थे तो वह सुभद्रा के पास थे, और सुभद्रा से इस विषय में शर्माजी को सहानुभूति की लेशमात्र भी आशा न थी। उपकारी बैंक के मैनेजर बाबू चारुचन्द्र से उनकी मित्रता थी। उनसे उधार लेने का विचार किया, लेकिन आज तक शर्माजी को ऋण मांगने का अवसर नहीं पड़ा था। बार-बार इरादा करते और फिर हिम्मत हार जाते। कहीं वह इंकार कर गए तब? इस इंकार का भीषण भय उन्हें सता रहा था। वह यह बिल्कुल न जानते थे कि लोग कैसे महाजनों पर अपना विश्वास जमा लेते हैं। कई बार कलम-दवात लेकर रुक्का लिखने बैठे, किंतु लिखें क्या, यह न सूझा। इसी बीच में सदन डिगवी साहब के यहां से घोड़ा ले आया। जीन-साज का मूल्य पचास रुपये और हो गया। दूसरे दिन रुपये चुका देने का वादा हुआ। केवल रात-भर की मोहलत थी, प्रातःकाल रुपये देना परमावश्यक था। शर्माजी की हैसियत के आदमी के लिए इतने रुपये का प्रबंध करना कोई मुश्किल न था। किंतु उन्हें चारों ओर अंधकार दिखाई देता था। उन्हें आज अपनी क्षुद्रता का ज्ञान हुआ। जो मनुष्य कभी पहाड़ पर नहीं चढ़ा है, उसका सिर एक छोटे से टीले पर भी चक्कर

खाने लगता है। इस दुरावस्था में सुभद्रा के सिवा उन्हें कोई अवलंब न सूझा। उसने उनकी रोनी सूरत देखी तो पूछा—आज इतने उदास क्यों हो? जी तो अच्छा है।

शर्माजी ने सिर झुकाकर उत्तर दिया—हां, जी तो अच्छा है।

सुभद्रा—तो चेहरा क्यों उतरा है?

शर्माजी—क्या बताऊं, कुछ कहा नहीं जाता, सदन के मारे हैरान हूं। कई दिन से घोड़े की रट लगाए हुए था। आज डिगवी साहब के यहां से घोड़ा ले आया, साढ़े चार सौ रुपये के मत्थे डाल दिया।

सुभद्रा ने विस्मित होकर कहा—अच्छा, यह सब हो गया और मुझे खबर ही नहीं।

शर्माजी—तुमसे कहते हुए डर मालूम होता था।

सुभद्रा—डर की कौन बात थी? क्या मैं सदन की दुश्मन थी, जो जल-भुन जाती?... उसके खेलने-खाने के क्या और दिन आवेंगे? कौन बड़ा खर्च है, तुम्हें ईश्वर कुशल से रखें, ऐसे चार-पांच सौ रुपये कहां आवेंगे और कहां जायंगे। लड़के का मन तो रह जायगा। उसी भाई का बेटा है, जिसने आपको पाल-पोसकर आज इस योग्य बनाया।

शर्माजी इस व्यंग्य के लिए तैयार थे। इसलिए उन्होंने सदन की शिकायत करके यह बात छेड़ी थी। किंतु वास्तव में उन्हें सदन का यह व्यसन दु:खजनक नहीं मालूम होता था, जितनी अपनी दारुण धन-हीनता। सुभद्रा की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए उसके हृदय में पैठना जरूरी था। बोले—चाहे जो कुछ हो, मुझे तो तुमसे कहते हुए डर लगता था। मन की बात कहता हूं। लड़कों का खाना-खेलना सबको अच्छा लगता है, पर घर में पूंजी हो तब। दिन-भर से इसी फिक्र में पड़ा हुआ हूं। कुछ बुद्धि काम नहीं करती। सबेरे डिगवी साहब का आदमी आएगा, उसे क्या उत्तर दूंगा? बीमार भी पड़ जाता, तो एक बहाना मिल जाता।

सुभद्रा—तो यह कौन मुश्किल बात है, सबेरे चादर ओढ़कर लेट रहिएगा, मैं कह दूंगी आज तबीयत अच्छी नहीं है।

शर्माजी हंसी को रोक न सके। इस व्यंग्य में कितनी निर्दयता, कितनी विरक्ति थी। बोले—अच्छा मान लिया कि आदमी कल लौट गया, लेकिन परसों तो डिगवी साहब जाने वाले ही हैं। कल कोई-न-कोई फिक्र करनी ही पड़ेगी।

सुभद्रा—तो यही फिक्र आज ही क्यों नहीं कर डालते?

शर्माजी—भाई, चिढ़ाओ मत। अगर मेरी बुद्धि काम करती तो तुम्हारी शरण क्यों आता? चुपचाप काम न कर डालता? जब कुछ नहीं बन पड़ा है, तब तुम्हारे पास आया हूं। बताओ, क्या करूं?

सुभद्रा—मैं क्या बताऊं? आपने तो वकालत पढ़ी है, मैं तो मिडिल तक भी नहीं पढ़ी, मेरी बुद्धि यहां क्या काम देगी? इतना जानती हूं कि घोड़े को द्वार पर हिनहिनाते सुनकर बैरियों की छाती धड़क जाएगी। जिस वक्त आप सदन को उस पर बैठे देखेंगे, तो आंखें तृप्त हो जाएंगी।

शर्माजी—वही तो पूछता हूं कि यह अभिलाषाएं कैसे पूरी हों?

सुभद्रा—ईश्वर पर भरोसा रखिए, वह कोई-न-कोई जुगत निकालेगा ही।

शर्माजी—तुम तो ताने देने लगीं।

सुभद्रा—इसके सिवा मेरे पास और है ही क्या? अगर आप समझते हों कि मेरे पास रुपये होंगे तो यह आपकी भूल है। मुझे हेर-फेर करना नहीं आता, संदूक की चाबी लीजिए, सौ-

सवा सौ रुपये पड़े हुए हैं, निकाल ले जाइए। बाकी के लिए और कोई फिक्र कीजिए। आपके कितने ही मित्र हैं, क्या दो-चार सौ रुपये का प्रबंध नहीं कर देंगे।

यद्यपि पद्मसिंह यही उत्तर पाने की आशा रखते थे, पर इसे कानों से सुनकर वह अधीर हो गए। गांठ जरा भी हल्की न पड़ी। चुपचाप आकाश की ओर ताकने लगे, जैसे कोई अथाह जल में बहा जाता हो।

सुभद्रा संदूक की चाबी देने को तैयार तो थी, लेकिन संदूक में सौ रुपये की जगह पूरे पांच सौ रुपये बटुए में रखे हुए थे। यह सुभद्रा की दो साल की कमाई थी। इन रुपयों को देख-देखकर सुभद्रा फूली न समाती थी। कभी सोचती, अब की घर चलूंगी, तो भाभी के लिए अच्छा-सा कंगन लेती चलूंगी और गांव की सब कन्याओं के लिए एक-एक साड़ी। कभी सोचती, यहीं कोई काम पड़ जाए और शर्माजी रुपये के लिए परेशान हों, तो मैं चट निकालकर दू दूंगी। वह कैसे प्रसन्न होंगे। चकित हो जाएंगे। साधारणत: युवतियों के हृदय में ऐसे उदार भाव नहीं उठा करते। वह रुपये जमा करती हैं अपने गहनों के लिए। लेकिन सुभद्रा बड़े धनी घर की बेटी थी, गहनों से मन भरा हुआ था।

उसे रुपयों का जरा भी लोभ न था। हां, एक ऐसे अनावश्यक कार्य के लिए उन्हें निकालने में कष्ट होता था, पर पंडितजी की रोनी सूरत देखकर उसे दया आ गई, बोली—आपने बैठे-बिठाए यह चिंता अपने सिर ली। सीधी-सी तो बात थी। कह देते, भाई रुपये नहीं हैं, तब तक किसी तरह काम चलाओ। इस तरह मन बढ़ाना कौन-सी अच्छी बात है? आज घोड़े की जिद है, कल मोटरकार की धुन होगी, तब क्या कीजिएगा? माना कि दादाजी ने आपके साथ बड़े अच्छे सलूक किए हैं, लेकिन सब काम अपनी हैसियत देखकर ही किए जाते हैं। दादाजी यह सुनकर आपसे खुश न होंगे।

यह कहकर वह झमककर उठी और संदूक में से रुपयों की पांच पोटलियां निकाल लाई, उन्हें पति के सामने पटक दिया और कहा—यह लीजिए पांच सौ रुपये हैं, जो चाहे कीजिए। रखे रहते तो आप ही के काम आते, पर ले जाइए, किसी भांति आपकी चिंता तो मिटे। अब संदूक में फूटी कौड़ी भी नहीं है।

पंडितजी ने हकबकाकर रुपयों की ओर कातर नेत्रों से देखा, पर उन पर टूटे नहीं। मन का बोझ हल्का अवश्य हुआ, चेहरे से चित्त की शांति झलकने लगी। किंतु वह उल्लास, वह विह्वलता जिसकी सुभद्रा को आशा थी, दिखाई न दी। एक ही क्षण में वह शांति की झलक भी मिट गई। खेद और लज्जा का रंग प्रकट हुआ। इन रुपयों में हाथ लगाना उन्हें अतीव अनुचित प्रतीत हुआ। सोचने लगे, मालूम नहीं, सुभद्रा ने किस नीयत से यह रुपये बचाए थे, मालूम नहीं, इनके लिए कौन-कौन से कष्ट सहे थे।

सुभद्रा ने पूछा—सेंत का धन पाकर भी प्रसन्न नहीं हुए?

शर्माजी ने अनुग्रहपूर्ण दृष्टि से देखकर कहा—क्या प्रसन्न होऊं? तुमने नाहक यह रुपये निकाले। मैं जाता हूं, घोड़े को लौटा देता हूं। कह दूंगा 'सितारा-पेशानी' है या और कोई दोष लगा दूंगा। सदन को बुरा लगेगा, इसके लिए क्या करूं।

यदि रुपये देने के पहले सुभद्रा ने यह प्रस्ताव किया होता, तो शर्माजी बिगड़ जाते। इसे सज्जनता के विरुद्ध समझते और सुभद्रा को आड़े हाथों लेते, पर इस समय सुभद्रा के आत्मोत्सर्ग ने उन्हें वशीभूत कर लिया था। समस्या यह थी कि घर में सज्जनता दिखाएं या बाहर? उन्होंने

निश्चय किया कि घर में इसकी आवश्यकता है, किंतु हम बाहर वालों की दृष्टि में मान-मर्यादा बनाए रखने के लिए घर वालों की कब परवाह करते हैं?

सुभद्रा विस्मित होकर बोली—यह क्या? इतनी जल्दी कायापलट हो गई। जानवर लेकर उसे लौटा दोगे, तो क्या बात रह जायगी? यदि डिगवी साहब फेर भी लें, तो यह उनके साथ कितना अन्याय है? वह बेचारे विलायत जाने के लिए तैयार बैठे हैं। उन्हें यह बात कितनी अखरेगी? नहीं, यह छोटी-सी बात है, रुपये ले जाइए, दे दीजिए। रुपया इन्हीं दिनों के लिए जमा किया जाता है। मुझे इनकी कोई जरूरत नहीं है, मैं सहर्ष दे रही हूं। यदि ऐसा ही है, तो मेरे रुपये फेर दीजिएगा, ऋण समझकर लीजिए।

बात वही थी, पर जरा बदले हुए रूप में। शर्माजी ने प्रसन्न होकर कहा—हां, इस शर्त पर ले सकता हूं, मासिक किस्त बांधकर अदा करूंगा।

पंद्रह

प्राचीन ऋषियों ने इंद्रियों को दमन करने के दो साधन बताए हैं—एक राग, दूसरा वैराग्य। पहला साधन अत्यंत कठिन और दुस्साध्य है। लेकिन हमारे नागरिक समाज ने अपने मुख्य स्थानों पर मीनाबाजार सजाकर इसी कठिन मार्ग को ग्रहण किया है। उसने गृहस्थी को कीचड़ का कमल बनाना चाहा है।

जीवन की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न वासनाओं का प्राबल्य रहता है। बचपन मिठाइयों का समय है, बुढ़ापा लोभ का, यौवन प्रेम और लालसाओं का समय है। इस अवस्था में मीनाबाजार की सैर मन में विप्लव मचा देती है। जो सुदृढ़ हैं, लज्जाशील या भावशून्य—वह संभल जाते हैं। शेष फिसलते हैं और गिर पड़ते हैं।

शराब की दूकानों को हम बस्ती से दूर रखने का यत्न करते हैं, जुएखाने से भी हम घृणा करते हैं, लेकिन वेश्याओं की दूकानों को हम सुसज्जित कोठों पर, चौक बाजारों में ठाट से सजाते हैं। यह पापोत्तेजना नहीं तो और क्या है?

बाजार की साधारण वस्तुओं में कितना आर्कषण! हम उन पर लट्टू हो जाते हैं और कोई आवश्यकता न होने पर भी उन्हें ले लेते हैं। तब वह कौन-सा हृदय है, जो रूप-राशि जैसे अमूल्य रत्न पर मर न मिटेगा? क्या हम इतना भी नहीं जानते?

विपक्षी कहता है, यह व्यर्थ की शंका है। सहस्रों युवक नित्य शहरों में घूमते रहते हैं, किंतु उनमें से बिरला ही कोई बिगड़ता है। वह मानव-पतन का प्रत्यक्ष प्रमाण चाहता है। किंतु उसे मालूम नहीं कि वायु की भांति दुर्बलता भी एक अदृश्य वस्तु है, जिसका ज्ञान उसके कर्म से ही हो सकता है। हम इतने निर्लज्ज, इतने साहस-रहित क्यों हैं? हममें आत्मगौरव का इतना अभाव क्यों है? हमारी निर्जीवता का क्या कारण है? वह मानसिक दुर्बलता के लक्षण हैं।

इसलिए आवश्यक है कि इन विष-भरी नागिनों को आबादी से दूर किसी पृथक् स्थान में रखा जाय। तब उन निंद्य स्थानों की ओर सैर करने को जाते हुए हमें संकोच होगा। यदि वह आबादी से दूर हों और वहां घूमने के लिए किसी बहाने की गुंजाइश न हो, तो ऐसे बहुत कम

बेहया आदमी होंगे, जो इस मीनाबाजार में कदम रखने का साहस कर सकें।

कई महीने बीत गए। वर्षाकाल आ पहुंचा। मेलों-ठेलों की धूम मच गई। सदन बांकी सज-धज बनाए मनचले घोड़े पर चारों ओर घूमा करता। उसके हृदय में प्रेम-लालसा की एक आग-सी जलती रहती थी। अब वह इतना निःशंक हो गया था कि दालमंडी में घोड़े से उतरकर तंबोलियों की दूकानों पर पान खाने बैठ जाता। वह समझते, यह कोई बिगड़ा हुआ रईसजादा है। उससे रूप-हाट की नई-नई घटनाओं का वर्णन करते। गाने में कौन-सी अच्छी है और कौन सुंदरता में अद्वितीय है, इसकी चर्चा छिड़ जाती। इस बाजार में नित्य यह चर्चा रहती। सदन इन बातों को चाव से सुनता। अब तक वह कुछ रसज्ञ हो गया था। पहले जो गजलें निरर्थक मालूम होती थीं, उन्हें सुनकर अब उसके हृदय का एक-एक तार सितार की भांति गूंजने लगता था। संगीत के मधुर स्वर उसे उन्मत्त कर देते, बड़ी कठिनता से वह अपने को कोठों पर चढ़ने से रोक पाता।

पद्मसिंह सदन को फैशनेबुल तो बनाना चाहते थे, लेकिन उसका बांकापन उनकी आंखों में खटकता था। वह नित्य वायु-सेवन करने जाते, पर सदन उन्हें पार्क या मैदान में कभी न मिलता। वह सोचते कि यह रोज कहां घूमने जाता है। कहीं उसे दालमंडी की हवा तो नहीं लगी?

उन्होंने दो-तीन बार सदन को दालमंडी में खड़े देखा। उन्हें देखते ही सदन चट एक दूकान पर बैठ जाता और कुछ-न-कुछ खरीदने लगता। शर्माजी उसे देखते और सिर नीचा किए हुए निकल जाते। बहुत चाहते कि सदन को इधर आने से रोकें, किंतु लज्जावश कुछ न कह सकते।

एक दिन शर्माजी सैर करने जा रहे थे कि रास्ते में दो सज्जनों से भेंट हो गई। यह दोनों म्युनिसिपैलिटी के मेंबर थे। एक का नाम था अबुलवफा, दूसरे का नाम अब्दुललतीफ। ये दोनों फिटन पर सैर करने जा रहे थे। शर्माजी को देखते ही रुक गए।

अबुलवफा बोले-आइए जनाब! आप ही का जिक्र हो रहा था। आइए, कुछ साथ ही चलिए।

शर्माजी ने उत्तर दिया-मैं इस समय घूमा करता हूं, क्षमा कीजिए।

अबुलवफा-अजी आपसे एक खास बात कहनी है। हम तो आपके दौलतखाने पर हाजिर होने वाले थे।

इस आग्रह से विवश होकर शर्माजी फिटन पर बैठे।

अबुलवफा-वह खबर सुनाएं कि रूह फड़क उठे।

शर्माजी-फरमाइए तो।

अबुलवफा-आपकी महराजिन 'सुमन बाई' हो गईं।

अब्दुललतीफ-वल्लाह, हम आपके नजर इंतखाव के कायल हैं। अभी तीन-चार दिनों से ही उसने दालमंडी में बैठना शुरू किया है, लेकिन इतने में ही उसने सबका रंग मात कर दिया है। उसके सामने अब किसी का रंग ही नहीं जमता। उसके बालाखाने के सामने रंगीन मिजाजों का अंबोह जमा रहता है। मुखड़ा गुलाब है और जिस्म तपाया हुआ कुंदन। जनाब, मैं आपसे अजरूये ईमान कहता हूं कि ऐसी दिलफरेबी सूरत मैंने न देखी थी।

अबुलवफा-भाई, उसे देखकर भी कोई पाकबाजी का दावा करे, तो उसका मुरीद हो जाऊं। ऐसे लाले बेबहा को गूदड़ से निकालना आप ही जैसे हुस्नशिनास का काम है।

अब्दुललतीफ–बला की जहीन मालूम होती है। अभी आपके यहां से निकले हुए उसे पांच-छ: महीने से ज्यादा नहीं हुए होंगे, लेकिन कल उसका गाना सुना तो दंग रह गए। इस शहर में उसका सानी नहीं। किसी के गले में वह लोच और नजाकत नहीं है।

अबुलवफा–अजी, जहां जाता हूं, उसी की चर्चा सुनता हूं। लोगों पर जादू-सा हो गया है। सुनता हूं, सेठ बलभद्रदासजी की आमदरफ्त शुरू हो गई। चलिए, आज आप भी पुरानी मुलाकात ताजी कर आइए। आपकी तुफैल में हम भी फैज पा जायंगे।

अब्दुललतीफ–हम आपको खींच ले चलेंगे, इस वक्त आपको हमारी खातिर करनी होगी।

पंडितजी इस समाचार को सुनकर खेद, लज्जा और ग्लानि के बोझ से इतने दब गए कि सिर भी न उठा सके। जिस बात का उन्हें भय था, वह अंत में पूरी होकर ही रही। उनका जी चाहता था कि कहीं एकांत में बैठकर इस दुर्घटना की आलोचना करें और निश्चय करें कि इसका कितना भार उनके सिर पर है। दुराग्रह पर कुछ खिन्न होकर बोले–मुझे क्षमा कीजिए। मैं न चल सकूंगा।

अबुलवफा–क्यों?

शर्माजी–इसलिए कि एक भले घर की स्त्री को इस दशा में देखना मैं सहन नहीं कर सकता। आप लोग मन में चाहे जो समझें, किंतु उसका मुझसे केवल इतना ही संबंध है कि वह मेरी स्त्री के पास आती-जाती थी।

अब्दुललतीफ–जनाब, यह पारसाई की बातें किसी और वक्त के लिए उठा रखिए। हमने इसी कूचे में उम्र काट दी है और इन रूमुज को खूब समझते हैं। चलिए, आपकी सिफारिश से हमारा भला हो जायगा।

पंडितजी से अब सब्र न हो सका। अधीर होकर बोले–मैं कह चुका कि मैं वहां न जाऊंगा। मुझे उतर जाने दीजिए।

अबुलवफा–और हम कह चुके कि जरूर ले चलेंगे। आपको हमारी खातिर से इतनी तकलीफ करनी पड़ेगी।

अब्दुललतीफ ने घोड़े को एक चाबुक और लगाया। वह हवा हो गया। शर्माजी ने क्रोध से कहा–आप मेरा अपमान करना चाहते हैं?

अबुलवफा–जनाब, आखिर वजह भी तो कुछ होनी चाहिए। जरा देर में पहुंच जाते हैं। यह लीजिए, सड़क घूम गई।

शर्माजी समझ गए कि यह लोग इस समय मेरी आरजू-मिन्नत पर ध्यान न देंगे। सुमन के पास जाने के बदले वह कुएं में गिरना अच्छा समझते थे। अतएव उन्होंने अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर लिया। वह उठे और वेग से चलती हुई गाड़ी पर से कूद पड़े। यद्यपि उन्होंने अपने को बहुत संभाला, पर रुक न सके। पैर लड़खड़ा गए और वह उल्टे हुए पचास कदम तक चले गए। कई बार गिरते-गिरते बचे। पर अंत में ठोकर खाकर गिर ही पड़े। हाथ की कुहनियों में कड़ी चोट लगी, हांफते-हांफते बेदम हो गए। शरीर पसीने में डूब गया, सिर चक्कर खाने लगा और आंखें तिलमिला गईं। जमीन पर बैठ गए। अब्दुललतीफ ने घोड़ा रोक दिया, दौड़े हुए दोनों आदमी उनके पास आए और रूमाल निकालकर झलने लगे। कोई पंद्रह मिनट में शर्माजी सचेत हुए। दोनों महाशय पछताने लगे, बहुत लज्जित हुए और शर्माजी से क्षमा मांगने लगे। बहुत आग्रह

किया कि गाड़ी पर बिठाकर आपको घर पहुंचा दें। किंतु शर्माजी राजी न हुए। उन्हें वहीं छोड़कर वह खड़े हो गए और लंगड़ाते हुए घर की तरफ चले। लेकिन सावधान होने पर उन्हें विस्मय होता था कि मैं फिटन से कूद क्यों पड़ा? यदि मैं एक बार झिड़ककर कह देता कि गाड़ी रोको, तो किसकी मजाल थी कि न रोकता और अगर वह इतने पर भी न मानते, तो मैं उनके हाथ से रास छीन सकता था। पर खैर, जो हुआ, वह हुआ। कहीं वह दोनों मुझे बातों में बहलाकर सुमन के दरवाजे पर जा पहुंचते, तो मुश्किल होती। सुमन से मेरी आंखें कैसे मिलतीं? कदाचित् मैं गाड़ी से उतरते ही भागता, पागलों की भांति बाजार में दौड़ता। गऊ का वध होते नो चाहे देख सकूं, पर सुमन को इस दशा में नहीं देख सकता। बड़े-से-बड़ा भय सदैव कल्पित हुआ करता है।

इस समय उनके मन में यह बारंबार प्रश्न उठ रहा था कि इस दुर्घटना का उत्तरदायी कौन है? उनकी विवेचना-शक्ति पिछली बातों की आलोचना कर रही थी। यदि मैंने उसे घर से निकाल न दिया होता, तो इस भांति उसका पतन न होता। मेरे यहां से निकलकर उसे और कोई ठिकाना न रहा और क्रोध और कुछ नैराश्य की अवस्था में यह भीषण अभिनय करने पर बाध्य हुई। इसका सारा अपराध मेरे सिर है।

लेकिन गजाधर सुमन से इतना क्यों बिगड़ा? वह कोई पर्दानशीन स्त्री न थी, मेले-ठेले में आती-जाती थी, केवल एक दिन जरा देर हो जाने से गजाधर उसे कठोर दंड कभी न देता। वह उसे डांटता, संभव है, दो-चार धौल भी लगाता, सुमन रोने लगती, गजाधर का क्रोध ठंडा हो जाता, वह सुमन को मना लेता, बस झगड़ा तय हो जाता। पर ऐसा नहीं हुआ, केवल इसीलिए कि विट्ठलदास ने पहले ही से आग लगा दी थी। निस्संदेह सारा अपराध उन्हीं का है। मैंने भी सुमन को घर से निकाला तो उन्हीं के कारण। उन्होंने सारे शहर में बदनाम करके मुझे निर्दयी बनने पर विवश किया। इस भांति विट्ठलदास पर दोषारोपण करके शर्माजी को बहुत धैर्य हुआ। इस धारणा ने पश्चात्ताप की वह आग ठंडी की, जो महीनों से उनके हृदय में दहक रही थी। उन्हें विट्ठलदास को अपमानित करने का एक मौका मिला। घर पहुंचते ही विट्ठलदास को पत्र लिखने बैठ गए। कपड़े उतारन की भी सुध न रही।

प्रिय महाशय, नमस्ते।

आपको यह जानकर असीम आनंद हागा कि सुमन अब दालमंडी में एक कोठे पर विराजमान है। आपको स्मरण होगा कि होली के दिन वह अपने पति के भय से मेरे घर चली आई थी और मैंने सरल रीति से उसे उतने दिनों तक आश्रय देना उचित समझा, जब तक उसके पति का क्रोध न शांत हो जाय। पर इसी बीच में मेरे कई मित्रों ने, जो मेरे स्वभाव से सर्वथा अपरिचित नहीं थे, मेरी उपेक्षा तथा निंदा करनी आरंभ की। यहां तक कि मैं उस अभागिनी अबला को अपने घर से निकालने पर विवश हुआ और अंत में वह उसी पापकुंड में गिरी जिसका मुझे भय था। अब आपको भली-भांति ज्ञात हो जायगा कि इस दुर्घटना का उत्तरदाता कौन है, और मेरा उसे आश्रय देना उचित था या अनुचित?

भवदीय
पद्मसिंह।

बाबू विट्ठलदास शहर की सभी सार्वजनिक संस्थाओं के प्राण थे। उनकी सहायता के बिना कोई कार्य सिद्ध न होता था। वह पुरुषार्थ का पुतला इस भारी बोझ को प्रसन्नचित्त से

उठाता, दब जाता था, किंतु हिम्मत न हारता था। भोजन करने का अवकाश न मिलता, घर पर बैठना नसीब न होता, स्त्री उनके स्नेह-रहित व्यवहार की शिकायत किया करती। विट्ठलदास जाति-सेवा की धुन में अपने सुख और स्वार्थ को भूल गए थे। कहीं अनाथालय के लिए चंदा जमा करते फिरते हैं, कहीं दीन विद्यार्थियों की छात्रवृत्ति का प्रबंध करने में दत्तचित्त हैं। जब जाति पर कोई संकट आ पड़ता, तो उनका देशप्रेम उमड़ पड़ता था। अकाल के समय सिर पर आटे का गट्ठर लादे गांव-गांव घूमते थे। हैजे और प्लेग के दिनों में उनका आत्म-समर्पण और विलक्षण त्याग देखकर आश्चर्य होता था। अभी पिछले दिनों जब गंगा में बाढ़ आ गई थी, तो महीनों घर की सूरत नहीं देखी, अपनी सारी संपत्ति देश पर अर्पण कर चुके थे, पर इसका तनिक भी अभिमान न था। उन्होंने उच्च शिक्षा नहीं पाई थी। वाक्-शक्ति भी साधारण थी। उनके विचारों में बहुधा प्रौढ़ता तथा दूरदर्शिता का अभाव होता था। वह विशेष नीतिकुशल, चतुर या बुद्धिमान् न थे। पर उनमें देशानुराग का एक ऐसा गुण था, जो उन्हें सारे नगर में सर्वसम्मान्य बनाए हुए था।

उन्होंने शर्माजी का पत्र पढ़ा, तो एक थप्पड़-सा मुंह पर लगा। उस पत्र में कितना व्यंग्य था, इसकी ओर उन्होंने कुछ ध्यान नहीं दिया। अपने एक परम मित्र को भ्रम में पड़कर कितना बदनाम किया, इसका भी उन्हें दु:ख नहीं हुआ। वह बीती हुई बातों पर पछताना नहीं जानते थे। इस समय क्या करना चाहिए, इसका निश्चय करना आवश्यक था और उन्होंने तुरंत यह निश्चय कर लिया। वह दुविधा में पड़ने वाले मनुष्य न थे। कपड़े पहने और दालमंडी जा पहुंचे। सुमनबाई के मकान का पता लगाया, बेधड़क ऊपर गए और जाकर द्वार खटखटाया। हिरिया ने, जो सुमन की नायिका थी, द्वार खोल दिया।

नौ बज गए थे। सुमन का मुजरा अभी समाप्त हुआ था। वह सोने जा रही थी। विट्ठलदास को देखकर चौंक पड़ी। उन्हें उसने कई बार शर्माजी के मकान पर देखा था। झिझककर खड़ी हो गई, सिर झुकाकर बोली—महाशय, आप इधर कैसे भूल पड़े?

विट्ठलदास सावधानी से कालीन पर बैठकर बोले—भूल तो नहीं पड़ा, जान-बूझकर आया हूं, पर जिस बात का किसी तरह विश्वास न आता था, वही देख रहा हूं। आज जब पद्मसिंह का पत्र मिला तो मैंने समझा कि किसी ने उन्हें धोखा दिया है, पर अब अपनी आंखों को कैसे धोखा दूं? जब हमारी पूज्य ब्राह्मण महिलाएं ऐसे कलंकित मार्ग पर चलने लगीं, तो हमारे अध:पतन का अब पारावार नहीं है। सुमन, तुमने हिन्दू जाति का सर नीचा कर दिया।

सुमन ने गंभीर भाव से उत्तर दिया—आप ऐसा समझते होंगे, और तो कोई ऐसा नहीं समझता। अभी कई सज्जन यहां से मुजरा सुनकर गए हैं, सभी हिन्दू थे, लेकिन किसी का सिर नीचा नहीं मालूम होता था। वह मेरे यहां आने से बहुत प्रसन्न थे। फिर इस मंडी में मैं ही एक ब्राह्मणी नहीं हूं, दो-चार का नाम तो मैं अभी ले सकती हूं, जो बहुत ऊंचे कुल की हैं, पर जब बिरादरी में अपना निबाह किसी तरह न देखा, तो विवश होकर यहां चली आईं। जब हिन्दू जाति को खुद ही लाज नहीं है तो फिर हम जैसी अबलाएं उसकी रक्षा कहां तक कर सकती हैं?

विट्ठलदास—सुमन, तुम सच कहती हो, बेशक हिन्दू जाति अधोगति को पहुंच गई, और अब तक वह कभी की नष्ट हो गई होती, पर हिन्दू स्त्रियों ही ने अभी तक उसकी मर्यादा की रक्षा की है। उन्हीं के सत्य और सुकीर्ति ने उसे बचाया है। केवल हिन्दुओं की लाज रखने

के लिए लाखों स्त्रियां आग में भस्म हो गई हैं। यही वह विलक्षण भूमि है, जहां स्त्रियां नाना प्रकार के कष्ट भोगकर, अपमान और निरादर सहकर पुरुषों की अमानुषीय क्रूरताओं को चित्त में न लाकर हिन्दू जाति का मुख उज्ज्वल करती थीं। यह साधारण स्त्रियों का गुण था और ब्राह्मणियों का तो पूछना ही क्या? पर शोक है कि वही देवियां अब इस भांति मर्यादा का त्याग करने लगीं। सुमन, मैं स्वीकार करता हूं कि तुमको घर पर बहुत कष्ट था। माना कि तुम्हारा पति दरिद्र था, क्रोधी था, चरित्रहीन था, माना कि उसने तुम्हें अपने घर से निकाल दिया था, लेकिन ब्राह्मणी अपनी जाति और कुल के नाम पर यह सब दुःख झेलती हैं। आपत्तियों का झेलना और दुरावस्था में स्थिर रहना, यही सच्ची ब्राह्मणियों का धर्म है, पर तुमने वह किया, जो नीच जाति की कुलटाएं किया करती हैं, पति से रूठकर मैके भागती हैं, और मैके में निबाह न हुआ, तो चकले की राह लेती हैं। सोचो तो कितने खेद की बात है कि जिस अवस्था में तुम्हारी लाखों बहनें हंसी-खुशी जीवन व्यतीत कर रही हैं, वही अवस्था तुम्हें इतनी असह्य हुई कि तुमने लोक-लाज, कुल-मर्यादा को लात मारकर कुपथ ग्रहण किया। क्या तुमने ऐसी स्त्रियां नहीं देखीं, जो तुमसे कहीं दीन-हीन, दरिद्र-दुखी हैं? पर ऐसे कुविचार उनके पास नहीं फटकने पाते, नहीं तो आज यह स्वर्गभूमि नरक के समान हो जाती। सुमन, तुम्हारे इस कर्म ने ब्राह्मण जाति ही का नहीं, समस्त हिन्दू जाति का मस्तक नीचा कर दिया।

सुमन की आंखें सजल थीं। लज्जा से सिर न उठा सकी। विट्ठलदास फिर बोले—इसमें संदेह नहीं कि यहां तुम्हें भोग-विलास की सामग्रियां खूब मिलती हैं, तुम एक ऊंचे, सुसज्जित भवन में निवास करती हो, नर्म कालीनों पर बैठती हो, फूलों की सेज पर सोती हो, भांति-भांति के पदार्थ खाती हो! लेकिन सोचो तो तुमने यह सामग्रियां किन दामों मोल ली हैं? अपनी मान-मर्यादा बेचकर। तुम्हारा कितना आदर था, लोग तुम्हारी पद-रज माथे पर चढ़ाते थे, लेकिन आज तुम्हें देखना भी पाप समझा जाता है....

सुमन ने बात काटकर कहा—महाशय, यह आप क्या कहते हैं? मेरा तो यह अनुभव है कि जितना आदर मेरा अब हो रहा है, उसका शतांश भी तब नहीं होता था। एक बार मैं सेठ चिम्मनलाल के ठाकुरद्वारे में झूला देखने गई थी, सारी रात बाहर खड़ी भीगती रही, किसी ने भीतर न जाने दिया, लेकिन कल उसी ठाकुरद्वारे में मेरा गाना हुआ तो ऐसा जान पड़ता था, मानो मेरे चरणों से वह मंदिर पवित्र हो गया।

विट्ठलदास—लेकिन तुमने यह भी सोचा है कि वह किस आचरण के लोग हैं?

सुमन—उनके आचरण चाहे जैसे हों, लेकिन वह काशी के हिन्दू समाज के नेता अवश्य हैं। फिर उन्हीं पर क्या निर्भर है? मैं प्रातःकाल से संध्या तक हजारों मनुष्यों को इसी रास्ते आते-जाते देखती हूं। पढ़े-अनपढ़, मूर्ख-विद्वान्, धनी-गरीब सभी नजर आते हैं, परंतु सबको अपनी तरफ खुली या छिपी दृष्टि से ताकते पाती हूं। उनमें कोई ऐसा नहीं मालूम होता, जो मेरी कृपा-दृष्टि पर हर्ष से मतवाला न हो जाय। इसे आप क्या कहते हैं? संभव है, शहर में दो-चार मनुष्य ऐसे हों, जो मेरा तिरस्कार करते हों। उनमें से एक आप हैं, उन्हीं में आपके मित्र पद्मसिंह हैं, किंतु जब संसार मेरा आदर करता है, तो इने-गिने मनुष्यों के तिरस्कार की मुझे क्या परवाह है? पद्मसिंह को भी जो चिढ़ है, वह मुझसे है, मेरी बिरादरी से नहीं। मैंने इन्हीं आंखों से उन्हें होली के दिन भोली से हंसते देखा था।

विट्ठलदास को कोई उत्तर न सूझता था। बुरे फंसे थे। सुमन ने फिर कहा—आप सोचते

होंगे कि भोग-विलास की लालसा से कुमार्ग में आई हूं, पर वास्तव में ऐसा नहीं है। मैं ऐसी अंधी नहीं कि भले-बुरे की पहचान न कर सकूं। मैं जानती हूं कि मैंने अत्यंत निकृष्ट कर्म किया है। लेकिन मैं विवश थी, इसके सिवा मेरे लिए और कोई रास्ता नहीं था। आप अगर सुन सकें तो मैं अपनी रामकहानी सुनाऊं। इतना तो आप जानते ही हैं कि संसार में सबकी प्रकृति एक-सी नहीं होती। कोई अपना अपमान सह सकता है, कोई नहीं सह सकता। मैं एक ऊंचे कुल की लड़की हूं। पिता की नादानी से मेरा विवाह एक दरिद्र मूर्ख मनुष्य से हुआ, लेकिन दरिद्र होने पर भी मुझसे अपना अपमान नहीं सहा जाता था। जिनका निरादर होना चाहिए, उनका आदर होते देखकर मेरे हृदय में कुवासनाएं उठने लगती थीं। मगर मैं इस आग में मन-ही-मन जलती थी। कभी अपने भावों को किसी से प्रकट नहीं किया। संभव था कि कालांतर में यह अग्नि आप-ही-आप शांत हो जाती, पर पद्मसिंह के जलसे ने इस अग्नि को भड़का दिया। इसके बाद मेरी जो दुर्गति हुई, वह आप जानते ही हैं। पद्मसिंह के घर से निकलकर मैं भोलीबाई की शरण में गई। मगर उस दशा में भी मैं इस कुमार्ग से भागती रही। मैंने चाहा कि कपड़े सीकर अपना निर्वाह करूं, पर दुष्टों ने मुझे ऐसा तंग किया कि अंत में मुझे इस कुएं में कूदना पड़ा। यद्यपि काजल की कोठरी में आकर पवित्र रहना अत्यंत कठिन है, पर मैंने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि अपने सत्य की रक्षा करूंगी। गाऊंगी, नाचूंगी, पर अपने को भ्रष्ट न होने दूंगी।

विट्ठलदास—तुम्हारा यहां बैठना ही तुम्हें भ्रष्ट करने के लिए काफी है।

सुमन—तो फिर मैं और क्या कर सकती हूं, आप ही बताइए? मेरे लिए सुख से जीवन बिताने का और कौन-सा उपाय है?

विट्ठलदास—अगर तुम्हें यह आशा है कि यहां सुख से जीवन कटेगा तो तुम्हारी बड़ी भूल है। यदि अभी नहीं तो थोड़े दिनों में तुम्हें अवश्य मालूम हो जायगा कि यहां सुख नहीं है। सुख संतोष से प्राप्त होता है, विलास से सुख कभी नहीं मिल सकता।

सुमन—सुख न सही, यहां पर मेरा आदर तो है! मैं किसी की गुलाम तो नहीं हूं।

विट्ठलदास—यह भी तुम्हारी भूल है। तुम यहां चाहे और किसी की गुलाम न हो, पर अपनी इंद्रियों की गुलाम तो हो? इंद्रियों की गुलामी उस पराधीनता से कहीं दु:खदायिनी होती है। यहां तुम्हें न सुख मिलेगा, न आदर। हां, कुछ दिनों भोग-विलास कर लोगी, पर अंत में इससे भी हाथ धोना पड़ेगा। सोचो तो, थोड़े दिनों तक इंद्रियों को सुख देने के लिए तुम अपनी आत्मा और समाज पर कितना बड़ा अन्याय कर रही हो?

सुमन ने आज तक किसी से ऐसी बातें न सुनी थीं। वह इंद्रियों के सुख को, अपने आदर को जीवन का मुख्य उद्देश्य समझती थी। उसे आज मालूम हुआ कि सुख संतोष से प्राप्त होता है और आदर सेवा से।

उसने कहा—मैं सुख और आदर दोनों ही को छोड़ती हूं, जीवन-निर्वाह का तो कुछ उपाय करना पड़ेगा?

विट्ठलदास—अगर ईश्वर तुम्हें सुबुद्धि दें, तो सामान्य रीति से जीवन-निर्वाह करने के लिए तुम्हें दालमंडी में बैठने की जरूरत नहीं है। तुम्हारे जीवन-निर्वाह का केवल यही एक उपाय नहीं है। ऐसे कितने धंधे हैं, जो तुम अपने घर में बैठी हुई कर सकती हो।

सुमन का मन अब कोई बहाना न ढूंढ सका। विट्ठलदास के सदुत्साह ने उसे वशीभूत कर लिया। सच्चे आदमी को हम धोखा नहीं दे सकते। उसकी सच्चाई हमारे हृदय में उच्च भावों

को जागृत कर देती है। उसने कहा—मुझे यहां बैठते स्वत: लज्जा आती है। बताइए, आप मेरे लिए क्या प्रबंध कर सकते हैं? मैं गाने में निपुण हूं, गाना सिखाने का काम कर सकती हूं।

विट्ठलदास—ऐसी तो यहां कोई पाठशाला नहीं है।

सुमन—मैंने कुछ विद्या भी पढ़ी है, कन्याओं को अच्छी तरह पढ़ा सकती हूं।

विट्ठलदास ने चिंतित भाव से उत्तर दिया—कन्या पाठशालाएं तो कई हैं, पर तुम्हें लोग स्वीकार करेंगे, इसमें संदेह है।

सुमन—तो फिर आप मुझसे क्या करने को कहते हैं? कोई ऐसा हिन्दू जाति का प्रेमी है, जो गुजारे के मेरे लिए पचास रुपये मासिक देने पर राजी हो?

विट्ठलदास—यह तो मुश्किल है।

सुमन—तो क्या आप मुझसे चक्की पिसाना चाहते हैं? मैं ऐसी संतोषी नहीं हूं।

विट्ठलदास—(झेंपकर) विधवाश्रम में रहना चाहो, तो उसका प्रबंध कर दिया जाय।

सुमन—(सोचकर) तो मुझे यह भी मंजूर है, पर वहां मैंने स्त्रियों को अपने संबंध में कानाफूसी करते देखा तो पल-भर न ठहरूंगी।

विट्ठलदास—यह टेढ़ी शर्त है, मैं किस-किसकी जबान को रोकूंगा? लेकिन मेरी समझ में सभा वाले तुम्हें लेने पर राजी न होंगे।

सुमन ने ताने से कहा—तो जब आपकी हिन्दू जाति इतनी हृदय-शून्य है, तो मैं उसकी मर्यादा पालने के लिए क्यों कष्ट भोगूं, क्यों जान दू? जब आप मुझे अपनाने के लिए जाति को प्रेरित नहीं कर सकते, जब जाति आप ही लज्जाहीन है, तो मेरा क्या दोष है? मैं आपसे केवल एक प्रस्ताव और करूंगी और यदि आप उसे भी पूरा न कर सकेंगे तो फिर मैं आपको और कष्ट न दूंगी। आप पं० पद्मसिंह को एक घंटे के लिए मेरे पास बुला लाइए, मैं उनसे एकांत में कुछ कहना चाहती हूं। उसी घड़ी मैं यहां से चली जाऊंगी। मैं केवल यह देखना चाहती हूं कि जिन्हें आप जाति के नेता कहते हैं, उनकी दृष्टि में मेरे पश्चात्ताप का कितना मूल्य है।

विट्ठलदास खुश होकर बोले—हां, यह मैं कर सकता हूं। बोलो, किस दिन?

सुमन—जब आपका जी चाहे।

विट्ठलदास—फिर तो न जाओगी?

सुमन—अभी इतनी नीच नहीं हुई हूं।

सोलह

महाशय विट्ठलदास इस समय ऐसे खुश थे मानो उन्हें कोई संपत्ति मिल गई हो। उन्हें विश्वास था कि पद्मसिंह इस जरा से कष्ट से मुंह न मोड़ेंगे, केवल उनके पास जाने की देर है। वह होली के कई दिन पहले से शर्माजी के पास नहीं गए थे। यथाशक्ति उनकी निंदा करने में कोई बात न उठा रखी थी, जिस पर कदाचित् अब वह मन में लज्जित थे, तिस पर भी शर्माजी के पास जाने में उन्हें जरा भी संकोच न हुआ। उनके घर की ओर चले। रात के दस बजे गए थे। आकाश में बादल उमड़े हुए थे, घोर अंधकार छाया हुआ था। लेकिन राग-रंग का बाजार पूरी रौनक

पर था। अट्टालिकाओं से प्रकाश की किरणें छिटक रही थीं। कहीं सुरीली तानें सुनाई देती थीं, कहीं मधुर हास्य की ध्वनि, कहीं आमोद-प्रमोद की बातें। चारों ओर विषय-वासना अपने नग्न रूप में दिखाई दे रही थी। दालमंडी से निकलकर विट्ठलदास को ऐसा जान पड़ा, मानो वह किसी निर्जन स्थान में आ गए। रास्ता अभी बंद न हुआ था। विट्ठलदास को ज्योंही कोई परिचित मनुष्य मिल जाता, वह उसे तुरंत अपनी सफलता की सूचना देते ! आप कुछ समझते हैं, कहां से आ रहा हूं? सुमनबाई की सेवा में गया था। ऐसा मंत्र पढ़ा कि सिर न उठा सकी, विधवाश्रम में जाने पर तैयार है। काम करने वाले यों काम किया करते हैं।

पद्मसिंह चारपाई पर लेटे हुए निद्रा देवी की आराधना कर रहे थे कि इतने में विट्ठलदास ने आकर आवाज दी। जीतन कहार अपनी कोठरी में बैठा हुआ दिन-भर की कमाई का हिसाब लगा रहा था कि यह आवाज कान में आई। बड़ी फुर्ती से पैसे समेटकर कमर में रख लिए और बोला—कौन है?

विट्ठलदास ने कहा—अजी मैं हूं, क्या पंडितजी सो गए? जरा भीतर जाकर जगा तो दो, मेरा नाम लेना, कहना बाहर खड़े हैं, बड़ा जरूरी काम है, जरा चले आएं।

जीतन मन में बहुत झुंझलाया। उसका हिसाब अधूरा रह गया, मालूम नहीं, अभी रुपया पूरा होने में कितनी कसर है। अलसाता हुआ उठा, किवाड़ खोले, पंडितजी को खबर दी। वह समझ गए कि कोई नया समाचार होगा तभी यह इतनी रात को आए हैं। तुरंत बाहर निकल आए।

विट्ठलदास—आइए, मैंने आपको बहुत कष्ट दिया, क्षमा कीजिएगा। कुछ समझे, कहां से आ रहा हूं? सुमनबाई के पास गया था, आपका पत्र पाते ही दौड़ा कि बन पड़े, तो उसे सीधी राह पर लाऊं। इसमें उसी की बदनामी नहीं, सारी जाति की बदनामी है। वहां पहुंचा तो उसके ठाट देखकर दंग रह गया। वह भोली-भाली स्त्री अब दालमंडी की रानी है। मालूम नहीं, इतनी जल्दी वह ऐसी चतुर कैसे हो गई। कुछ देर तक तो चुपचाप मेरी बातें सुनती रही, फिर रोने लगी। मैंने समझा, अभी लोहा लाल है, दो-चार चोटें और लगाईं, बस आ गई पंजे में। पहले विधवाश्रम का नाम सुनकर घबराई। कहने लगी—मुझे पचास रुपये महीना गुजर के लिए दिलवाइए। लेकिन आप जानते हैं, यहां पचास रुपये देने वाला कौन है? मैंने हामी न भरी। अंत में कहते-सुनते एक शर्त पर राजी हुई। उस शर्त को पूरा करना आपका काम है।

पद्मसिंह ने विस्मित होकर विट्ठलदास की ओर देखा।

विट्ठलदास—घबराइए नहीं, बहुत सीधी-सी शर्त है, बस यही कि आप जरा देर के लिए उसके पास चले जायं, वह आपसे कुछ कहना चाहती है। यह मुझे निश्चय था कि आपको इसमें कोई आपत्ति न होगी, यह शर्त मंजूर कर ली। तो बताइए, कब चलने का विचार है? मेरी समझ में सबेरे चलें।

किंतु पद्मसिंह विचारशील मनुष्य थे। वह घंटों सोच-विचार के बिना कोई फैसला न कर सकते थे। सोचने लगे कि इस शर्त का क्या अभिप्राय है? वह मुझसे क्या कहना चाहती है? क्या बात पत्र द्वारा न हो सकती थी? इसमें कोई-न-कोई रहस्य अवश्य है। आज अबुलवफा ने मेरे बग्घी पर से कूद पड़ने का वृत्तांत उससे कहा होगा। उसने सोचा होगा, यह महाशय इस तरह नहीं आते, तो यह चाल चलूं, देखूं कैसे नहीं आते। केवल मुझे नीचा दिखाना चाहती है। अच्छा, अगर मैं जाऊं भी, लेकिन पीछे से वह अपना वचन पूरा न करे तो क्या होगा? यह युक्ति

उन्हें अपना गला छुड़ाने के लिए उपयोगी मालूम हुई। बोले—अच्छा, अगर वह अपने वचन से फिर जाय तो?

विट्ठलदास—फिर क्यों जायगी? कहीं ऐसा हो सकता है?

पद्मसिंह—हां, ऐसा होना असंभव नहीं।

विट्ठलदास—तो क्या आप कोई प्रतिज्ञा-पत्र लिखवाना चाहते हैं?

पद्मसिंह—नहीं, मुझे संदेह यही है कि वह सुख-विलास छोड़कर विधवाश्रम में क्यों जाने लगी और सभा वाले उसे लेना स्वीकार कब करेंगे?

विट्ठलदास—सभा वालों को मनाना तो मेरा काम है। न मानेंगे तो मैं उसके गुजारे का और कोई प्रबंध करूंगा। रही पहली बात। मान लीजिए, वह अपने वचन को मिथ्या ही कर दे, तो इसमें हमारी क्या हानि है? हमारा कर्त्तव्य पूरा हो जायगा।

पद्मसिंह—हां, यह संतोष चाहे हो जाय, लेकिन देख लीजिएगा, वह अवश्य धोखा देगी।

विट्ठलदास अधीर हो गए, झुंझलाकर बोले—अगर धोखा ही दे दिया, तो आपका कौन छप्पन टका खर्च हुआ जाता है।

पद्मसिंह—आपके निकट मेरी कुछ प्रतिष्ठा न हो, लेकिन मैं अपने को इतना तुच्छ नहीं समझता।

विट्ठलदास—सारांश यह कि न जाएंगे?

पद्मसिंह—मेरे जाने से कोई लाभ नहीं है। हां, यदि मेरा मान-मर्दन कराना ही अभीष्ट हो, तो दूसरी बात है।

विट्ठलदास—कितने खेद की बात है कि आप एक जातीय कार्य के लिए इतना मीन-मेख निकाल रहे हैं ! शोक ! आप आंखों से देख रहे हैं कि एक हिन्दू जाति की स्त्री कुएं में गिरी हुई है, और आप उसी जाति के एक विचारवान पुरुष होकर उसे निकालने में इतना आगा-पीछा कर रहे हैं। बस आप इसी काम के हैं कि मूर्ख किसानों और जमींदारों का रक्त चूसें। आपसे और कुछ न होगा।

शर्माजी ने इस तिरस्कार का उत्तर न दिया। वह मन में अपनी अकर्मण्यता पर स्वयं लज्जित थे और अपने को इस तिरस्कार का भागी समझते थे ! लेकिन एक ऐसे पुरुष के मुंह से ये बातें अत्यंत अप्रिय मालूम हुईं, जो इस बुराई का मूल कारण हो। वह बड़ी कठिनाई से प्रत्युत्तर देने के आवेग को रोक सके। यथार्थ में वह सुमन की रक्षा करना चाहते थे, लेकिन गुप्त रीति से, बोले—उसकी और भी तो शर्तें हैं?

विट्ठलदास—जी हां, हैं तो, लेकिन आप में उन्हें पूरा करने का सामर्थ्य है? वह गुजारे के लिए पचास रुपये मासिक मांगती है, आप दे सकते हैं?

शर्माजी—पचास रुपये नहीं, लेकिन बीस रुपये देने को तैयार हूं।

विट्ठलदास—शर्माजी, बातें न बनाइए। एक जरा-सा कष्ट तो आपसे उठाया नहीं जाता, आप बीस रुपये मासिक देंगे?

शर्माजी—मैं आपको वचन देता हूं कि बीस रुपये मासिक दिया करूंगा और अगर मेरी आमदनी कुछ भी बढ़ी तो पूरी रकम दे दूंगा। हां, इस समय विवश हूं। यह बीस रुपये भी घोड़ा-गाड़ी बेचने से बच सकेंगे। मालूम नहीं, क्यों इन दिनों मेरा बाजार गिरा जा रहा है।

विट्ठलदास—अच्छा, आपने बीस रुपये दे ही दिए, तो शेष कहां से आएंगे? औरों का

तो हाल आप जानते ही हैं, विधवाश्रम के चंदे ही कठिनाई से वसूल होते हैं। मैं जाता हूं, यथाशक्ति उद्योग करूंगा, लेकिन यदि कार्य न हुआ, तो उसका दोष आपके सिर पड़ेगा।

सत्रह

संध्या का समय है। सदन अपने घोड़े पर सवार दालमंडी में दोनों तरफ छज्जों और खिड़कियों की ओर ताकता जा रहा है। जब से सुमन वहां आई है, सदन उसके छज्जे के सामने किसी-न-किसी बहाने से जरा देर के लिए अवश्य ठहर जाता है। इस नव-कुसुम ने उसकी प्रेम-लालसा को ऐसा उत्तेजित कर दिया है कि अब उसे एक पल चैन नहीं पड़ता। उसके रूप-लावण्य में एक प्रकार की मनोहारिणी सरलता है, जो उसके हृदय को बलात् अपनी ओर खींचती है। वह इस सरल सौंदर्य मूर्ति को अपना प्रेम अर्पण करने का परम अभिलाषी है, लेकिन उसे इसका कोई सुअवसर नहीं मिलता। सुमन के यहां रसिकों का नित्य जमघट रहता है। सदन को यह भय होता कि इनमें से कोई चचा की जान-पहचान का मनुष्य न हो। इसलिए उसे ऊपर जाने का साहस नहीं होता। अपनी प्रबल आकांक्षा को हृदय में छिपाए वह नित्य इसी तरह निराश होकर लौट जाता है। लेकिन आज उसने मुलाकात करने का निश्चय कर लिया है, चाहे कितनी देर क्यों न हो जाय। विरह का दाह अब उससे नहीं सहा जाता। वह सुमन के कोठे के सामने पहुंचा। श्याम कल्याण की मधुर ध्वनि आ रही थी। आगे बढ़ा और दो घंटे तक पार्क और मैदान में चक्कर लगाकर नौ बजे फिर दालमंडी की ओर चला।

आश्विन के चन्द्र की उज्ज्वल किरणों ने दालमंडी की ऊंची छतों पर रुपहली चादर-सी बिछा दी थी। वह फिर सुमन के कोठे के सामने रुका। संगीत-ध्वनि बंद थी; कुछ बोलचाल न सुनाई दी। निश्चय हो गया कि कोई नहीं है। घोड़े से उतरा, उसे नीचे की दूकान के एक खंभे में बांध दिया और सुमन के द्वार पर खड़ा हो गया। उसकी सांस बड़े वेग से चल रही थी और छाती जोर से धड़क रही थी।

सुमन का मुजरा अभी समाप्त हुआ था, और उसके मन पर वह शिथिलता छाई हुई थी, जो आंधी के पीछे आने वाले सन्नाटे के समान आमोद-प्रमोद का प्रतिफल हुआ करती है। यह एक प्रकार की चेतावनी होती है, जो आत्मा की ओर से भोग-विलास में लिप्त मन को मिलती है। इस दशा में हमारा हृदय पुरानी स्मृतियों का क्रीड़ा-क्षेत्र बन जाया करता है। थोड़ी देर के लिए हमारे ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं। सुमन का ध्यान इस समय सुभद्रा की ओर लगा हुआ था। वह मन में उससे अपनी तुलना कर रही थी। जो शांतिमय सुख उसे प्राप्त है, क्या वह मुझे मिल सकता है? असंभव ! यह तृष्णा-सागर है, यहां शांति-सुख कहां? जब पद्मसिंह के कचहरी से आने का समय होता, तो सुभद्रा कितनी उल्लसित होकर पान के बीड़े लगाती थी, ताजा हलवा पकाती थी। जब वह घर में आते थे तो वह कैसी प्रेम-विह्वल होकर उनसे मिलने दौड़ती थी। आह ! मैंने उसका प्रेमालिंगन भी देखा है, कितना भावमय ! कितना सच्चा ! मुझे वह सुख कहां? यहां या तो अंधे आते हैं, या बातों के वीर। कोई अपने धन का जाल बिछाता है, कोई अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों का। उनके हृदय भावशून्य, शुष्क और ओछेपन से भरे हुए होते

हैं।

इतने में सदन ने कमरे में प्रवेश किया। सुमन चौंक पड़ी। उसने सदन को कई दिन देखा था। उसका चेहरा पद्मसिंह के चेहरे से मिलता हुआ मालूम होता था। हां, गंभीरता की जगह एक उद्दंडता छलकती थी। वह काइयांपन, वह क्षुद्रता, जो इस मायानगर के प्रेमियों का मुख्य लक्षण है, वहां नाम को भी न थी। वह सीधा-सादा, सहज स्वभाव, सरल नवयुवक मालूम होता था। सुमन ने आज उसे कोठों का निरीक्षण करते देखा था। उसने ताड़ लिया था कि कबूतर अब पर तौल रहा है, किसी छतरी पर उतरना चाहता है। आज उसे अपने यहां देखकर उसे वह गर्वपूर्ण आनंद हुआ, जो दंगल में कुश्ती मारकर किसी पहलवान को होता है। वह उठी और मुस्कराकर सदन की ओर हाथ बढ़ाया।

सदन का मुख लज्जा से अरुण-वर्ण हो गया। आंखें झुक गईं। उस पर एक रोब-सा छा गया। मुख से एक शब्द भी न निकला।

जिसने कभी मदिरा का सेवन न किया हो, मद-लालसा होने पर भी उसे मुंह से लगाते हुए वह झिझकता है।

यद्यपि सदन ने सुमनबाई को अपना परिचय ठीक नहीं दिया, उसने अपना नाम कुंवर सदनसिंह बताया, पर उसका भेद बहुत दिनों तक न छिप सका। सुमन ने हिरिया के द्वारा उसका पता भली-भांति लगा लिया और तभी से वह बड़े चक्कर में पड़ी हुई थी। सदन को देखे बिना उसे चैन न पड़ता, उसका हृदय दिनों-दिन उसकी ओर खिंचता जाता था। उसके बैठे सुमन के यहां किसी बड़े-से-बड़े रईस का गुजर होना भी कठिन था। किंतु वह इस प्रेम को अनुचित और निषिद्ध समझती थी, उसे छिपाती थी। उसकी कल्पना किसी अव्यक्त कारण से इस प्रेम-लालसा को भीषण विश्वासघात समझती थी। कहीं पद्मसिंह और सुभद्रा पर यह रहस्य खुल जाय, तो वह मुझे क्या समझेंगे? उन्हें कितना दु:ख होगा? मैं उनकी दृष्टि में कितनी नीच और घृणित हो जाऊंगी? जब कभी सदन प्रेम-रहस्य की बातें करने लगता, तो सुमन बात को पलट देती, जब कभी सदन की अंगुलियां ढिठाई करना चाहतीं, तो वह उसकी ओर लज्जा-युक्त नेत्रों से देखकर धीरे से उसका हाथ हटा देती। साथ ही वह सदन को उलझाए भी रखना चाहती थी। इस प्रेम-कल्पना से उसे जो आनंद मिलता था, उसका त्याग करने में वह असमर्थ थी।

लेकिन सदन उसके भावों से अनभिज्ञ होने के कारण उसकी प्रेम-शिथिलता को अपनी धनहीनता पर अवलंबित समझता था। उसका निष्कपट हृदय प्रगाढ़ प्रेम में मग्न हो गया था। सुमन उसके जीवन का आधार बन गई थी। मगर विचित्रता यह थी कि प्रेम-लालसा के इतने प्रबल होते हुए भी वह अपनी कुवासनाओं को दबाता था। उसका अक्खड़पन लुप्त हो गया था। वह वही करना चाहता था, जो सुमन को पसंद हो। वह कामातुरता जो कलुषित प्रेम में व्याप्त होती है, सच्चे अनुराग के अधीन होकर सहृदयता में परिवर्तित हो गई थी, पर सुमन की अनिच्छा दिनों-दिन बढ़ती देखकर उसने अपने मन में यह निर्धारित किया कि पवित्र प्रेम की कदर यहां नहीं हो सकती। यहां के देवता उपासना से नहीं, भेंट से प्रसन्न होते हैं। लेकिन भेंट के लिए रुपये कहां से आएं? मांगे किससे? निदान उसने पिता को एक पत्र लिखा कि मेरे भोजन का अच्छा प्रबंध नहीं है, लज्जावश चाचा साहब से कुछ कह नहीं सकता, मुझे कुछ रुपये भेज दीजिए।

घर पर यह पत्र पहुंचा, तो भामा ने पति को ताने देने शुरू किए, इसी भाई का तुम्हें इतना

भरोसा था, घमंड से धरती पर पांव नहीं रखते थे। अब घमंड टूटा कि नहीं? वह भी चाचा पर बहुत फूला हुआ था, अब आंखें खुली होंगी। इस काल में नेकी किसी को याद नहीं रहती, अपने दिन भूल जाते हैं। उसके लिए मैंने कौन-कौन-सा यत्न नहीं किया, छाती से दूध-भर नहीं पिलाया। उसी का यह बदला मिल रहा है। उस बेचारे का कुछ दोष नहीं, उसे मैं जानती हूं, यह सारी करतूत उन्हीं महारानी की है। अब की भेंट हुई, तो वह खरी-खरी सुनाऊं कि याद करे।

मदनसिंह को संदेह हुआ कि सदन ने यह पाखंड रचा है। भाई पर उन्हें अखंड विश्वास था, लेकिन अब भामा ने रुपये भेजने पर जोर दिया, तो उन्हें भेजने पड़े। सदन रोज डाकघर जाता, डाकिए से बार-बार पूछता। आखिर चौथे दिन पच्चीस रुपये का मनीआर्डर आया। डाकिया उसे पहचानता था, रुपये मिलने में कोई कठिनाई न हुई। सदन हर्ष से फूला न समाया। संध्या को बाजार से एक उत्तम रेशमी साड़ी मोल ली। लेकिन यह शंका हो रही थी कि कहीं सुमन इसे नापसंद न करे। वह कुंवर बन चुका था, इसीलिए ऐसी तुच्छ भेंट देते हुए झेंपता था। साड़ी जेब में रख, बड़ी देर तक घोड़े पर इधर-उधर टहलता रहा। खाली हाथ वह सुमन के यहां नित्य बेधड़क चला जाया करता था, पर आज यह भेंट लेकर जाने में संकोच होता था। जब खूब अंधेरा हो गया, तो मन को दृढ़ करके सुमन के कोठे पर चढ़ गया और साड़ी चुपके से जेब से निकालकर शृंगारदान पर रख दी। सुमन उसके इस विलंब से चिंतित हो रही थी। उसे देखते ही फूल के समान खिल गई। बोली, यह क्या लाए? सदन ने झेंपते हुए कहा—कुछ नहीं, आज एक साड़ी नजर आ गई, मुझे अच्छी मालूम हुई, ले ली, यह तुम्हारी भेंट है। सुमन ने मुस्कराकर कहा, आज इतनी देर तक राह दिखाई, क्या यह उसी का प्रायश्चित है? यह कहकर उसने साड़ी को देखा। सदन की वास्तविक अवस्था के विचार से वह बहुमूल्य कही जा सकती थी।

सुमन के मन में प्रश्न हुआ कि इतने रुपये इन्हें मिले कहां? कहीं घर से तो नहीं उठा लाए? शर्माजी इतने रुपये क्यों देने लगे? या इन्होंने कोई बहाना करके ठगे होंगे या उठा लाए होंगे। उसने विचार किया कि साड़ी लौटा दूं, लेकिन उससे उसके दुखी हो जाने का भय था। इसके साथ ही साड़ी को रख लेने से उसके दुरुत्साह के बढ़ने की आशंका थी। निदान उसने निश्चय किया कि इसे अब की बार रख लूं, पर भविष्य के लिए चेतावनी दे दूं। बोली—इस अनुग्रह से कृतार्थ हुई, लेकिन आपसे मैं भेंट की भूखी नहीं। आपकी यही कृपा क्या कम है कि आप यहां तक आने का कष्ट करते हैं। मैं केवल आपकी कृपा-दृष्टि चाहती हूं।

लेकिन जब इस पारितोषिक से सदन का मनोरथ न पूरा हुआ और सुमन के बर्ताव में उसे कोई अंतर न दिखाई दिया, तो उसे विश्वास हो गया कि मेरा उद्योग-निष्फल हुआ। वह अपने मन में लज्जित हुआ कि मैं एक तुच्छ भेंट देकर उससे इतने बड़े फल की आशा रखता हूं, जमीन से उचककर आकाश से तारे तोड़ने की चेष्टा करता हूं। अतएव वह कोई मूल्यवान प्रेमोपहार देने की चिंता में लीन हो गया। मगर महीनों तक उसे इसका कोई अवसर न मिला।

एक दिन वह नहाने बैठा, तो साबुन न था। वह भीतर के स्नानालय में साबुन लेने गया। अंदर पैर रखते ही उसकी निगाह ताक पर पड़ी। उस पर एक कंगन रखा हुआ था। सुभद्रा अभी नहाकर गई थी, उसने कंगन उतारकर रख दिया था, लेकिन चलते समय उसकी सुध न रही। कचहरी का समय निकट था, वह रसोई में चली गई। कंगन वहीं धरा रह गया। सदन ने उसे

देखते ही लपककर उठा लिया। इस समय उसके मन में कोई बुरा भाव न था। उसने सोचा, चाची को खूब हैरान करके तब दूंगा, अच्छी दिल्लगी रहेगी। कंगन को छिपाकर बाहर लाया और संदूक में रख दिया। सुभद्रा भोजन से निवृत्त होकर लेट रही, आलस्य आया, सोई तो तीसरे पहर को उठी। इस बीच में पंडितजी कचहरी से आ गए, उनसे बातचीत करने लगी, कंगन का ध्यान ही न रहा। सदन कई बार भीतर गया कि देखूं इसकी कोई चर्चा हो रही है या नहीं, लेकिन उसका कोई जिक्र न सुनाई दिया। संध्या समय जब वह सैर करने के लिए तैयार हुआ, तो एक आकस्मिक विचार से प्रेरित होकर उसने वह कंगन जेब में रख लिया। उसने सोचा, क्यों न वह कंगन सुमनबाई की नजर करूं? यहां तो मुझसे कोई पूछेगा ही नहीं और अगर पूछा भी गया तो कह दूंगा, मैं नहीं जानता। चाची, समझेंगी नौकरों में से कोई उठा ले गया होगा। इस तरह के कुविचारों ने उसका संकल्प दृढ़ कर दिया। उसका जी कहीं सैर करने में न लगा। वह उपहार देने के लिए व्याकुल हो रहा था। नियमित समय से कुछ पहले ही घोड़े को दालमंडी की तरफ फेर दिया। यहां उसने एक छोटा- सा मखमली बक्स लिया, उसमें कंगन को रखकर सुमन के यहां जा पहुंचा। वह इस बहुमूल्य वस्तु को इस प्रकार भेंट करना चाहता था, मानो वह कोई अति सामान्य वस्तु दे रहा हो। आज वह बहुत देर तक बैठा रहा। संध्या का समय उसके लिए निकाल रखा था। किंतु आज प्रेमालाप में भी उसका जी न लगता था। उसे चिंता लगी हुई थी कि यह कंगन कैसे भेंट करूं? जब बहुत देर हो गई, तो वह चुपके से उठा, जेब से बक्स निकाला और उसे पलंग पर रखकर दरवाजे की तरफ चला। सुमन ने देख लिया, पूछा–इस बक्स में क्या है?

सदन–कुछ नहीं, खाली बक्स है।

सुमन–नहीं-नहीं, ठहरिए, मैं देख लूं।

यह कहकर उसने सदन का हाथ पकड़ लिया और संदूकची को खोलकर देखा। इस कंगन को उसने सुभद्रा के हाथ में देखा था। उसकी बनावट बहुत अच्छी थी। पहचान गई, हृदय पर बोझ-सा आ पड़ा। उदास होकर बोली–मैंने आपसे कह दिया था कि मैं इन चीजों की भूखी नहीं हूं। आप व्यर्थ मुझे लज्जित करते हैं।

सदन ने लापरवाही से कहा, मानो वह कोई बड़ा राजा है–गरीब का पानफूल स्वीकार करना चाहिए।

सुमन–मेरे लिए सबसे अमूल्य वस्तु आपकी कृपा है। वही मेरे ऊपर बनी रहे। इस कंगन को आप मेरी तरफ से अपनी नई रानी साहिबा को दे दीजिएगा। मेरे हृदय में आपके प्रति पवित्र प्रेम है। वह इन इच्छाओं से रहित है। आपके व्यवहार से ऐसा मालूम होता है कि अभी आप मुझे बाजारू औरत ही समझे हुए हैं। आप ही एक ऐसे पुरुष हैं, जिस पर मैंने अपना प्रेम, अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है, लेकिन आपने अभी तक उसका कुछ मूल्य न समझा !

सदन की आंखें भर आईं। उसने मन में सोचा, यथार्थ में मेरा ही दोष है। मैं उसके प्रेम जैसी अमूल्य वस्तु को इन तुच्छ उपहारों का इच्छुक समझता हूं। मैं हथेली पर सरसों जमाने की चेष्टा में इस रमणी के साथ अनर्थ करता हूं। आज इस नगर में ऐसा कौन है, जो उसके एक प्रेम-कटाक्ष पर अपना सर्वस्व न लुटा दे? बड़े-बड़े ऐश्वर्यवान् मनुष्य आते हैं और वह किसी की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखती, पर मैं ऐसा भावशून्य नीच हूं कि इस प्रेम-रत्न

को कौड़ियों से मोल लेना चाहता हूं। इस ग्लानिपूर्ण भावों से वह रो पड़ा। सुमन समझी कि मेरे वह वाक्य अखर गए। करुण स्वर में बोली—आप मुझसे नाराज हो गए क्या?

सदन ने आंसू पीकर कहा—हां, नाराज तो हूं।

सुमन—क्यों नाराज हैं?

सदन—इसलिए कि तुम मुझे बाणों से छेदती हो। तुम समझती हो कि मैं ऐसी तुच्छ वस्तुओं से प्रेम मोल लेना चाहता हूं।

सुमन—तो यह चीजें क्यों लाते हैं?

सदन—मेरी इच्छा !

सुमन—नहीं, अब से मुझे क्षमा कीजिएगा।

सदन—खैर, देखा जाएगा।

सुमन—आपकी खातिर मैं इस तोहफे को रख लेती हूं। लेकिन इसे थाती समझती रहूंगी। आप अभी स्वतंत्र नहीं हैं। जब आप अपनी रियासत के मालिक हो जायं, तब मैं आपसे मनमाना कर वसूल करूंगी। लेकिन अभी नहीं।

अठारह

बाबू विट्ठलदास अधूरा काम न करते थे। पद्मसिंह की ओर से निराश होकर उन्हें यह चिंता होने लगी कि सुमनबाई के लिए पचास रुपये मासिक का चंदा कैसे करूं? उनकी स्थापित की हुई संस्थाएं चंदों से चल रही थीं, लेकिन चंदों के वसूल होने में सदैव कठिनाइयों का सामना होता था। विधवाश्रम की इमारत बनाने में हाथ लगाया, लेकिन दो साल से उसकी दीवारें गिरती जाती थीं। उन पर छप्पर डालने के लिए रुपये हाथ न आते थे। फ्री लाइब्रेरी की पुस्तकें दीमकों का आहार बनती जाती थीं। आल्मारियां बनाने के लिए द्रव्य का अभाव था। लेकिन इन बाधाओं के होते हुए भी चंदे के सिवा धन संग्रह का उन्हें और कोई उपाय न सूझा। सेठ बलभद्रदास शहर के प्रधान नेता, आनरेरी मजिस्ट्रेट और म्युनिसिपल बोर्ड के चेयरमैन थे। पहले उनकी सेवा में उपस्थित हुए। सेठजी अपने बंगले में आरामकुर्सी पर लेटे हुए हुक्का पी रहे थे। बहुत ही दुबले-पतले, गोरे-चिट्टे आदमी थे, बड़े रसिक, बड़े शौकीन। वह प्रत्येक काम में बहुत सोच-समझकर हाथ डालते थे। विट्ठलदास का प्रस्ताव सुनकर बोले—प्रस्ताव तो बहुत उत्तम है, लेकिन यह बताइए, सुमन को आप रखना कहां चाहते हैं?

विट्ठलदास—विधवाश्रम में।

बलभद्रदास—आश्रम सारे नगर में बदनाम हो जायगा और संभव है कि अन्य विधवाएं भी छोड़ भागें।

विट्ठलदास—तो अलग मकान लेकर रख दूंगा।

बलभद्रदास—मुहल्ले के नवयुवकों में छुरी चल जायगी।

विट्ठलदास—तो फिर आप ही कोई उपाय बताइए।

बलभद्रदास—मेरी सम्मति तो यह है कि आप इस झगड़े में न पड़ें, जिस स्त्री को

लोक-निंदा की लाज नहीं, उसे कोई शक्ति नहीं सुधार सकती। यह नियम है कि जब हमारा कोई अंग विकृत हो जाता है, तो उसे काट डालते हैं, जिससे उसका विष समस्त शरीर को नष्ट न कर डाले। समाज में भी उसी नियम का पालन करना चाहिए। मैं देखता हूं कि आप मुझसे सहमत नहीं हैं, लेकिन मेरा जो विचार था, वह मैंने स्पष्ट कह दिया। आश्रम की प्रबंधकारिणी सभा का एक मेंबर मैं भी हूं ! मैं किसी तरह इस वेश्या को आश्रम में रखने की सलाह न दूंगा।

विट्ठलदास ने रोष से कहा–सारांश यह कि इस काम में आप मुझे कोई सहायता नहीं दे सकते? जब आप जैसे महापुरुषों का यह हाल है, तो दूसरों से क्या आशा हो सकती है? मैंने आपका बहुत समय नष्ट किया, इसके लिए क्षमा कीजिएगा।

यह कहकर विट्ठलदास उठ खड़े हुए और सेठ चिम्मनलाल की सेवा में पहुंचे। यह सांवले रंग के बेडौल मनुष्य थे। बहुत ही स्थूल, ढीले-ढाले शरीर में हाड़ की जगह मांस और मांस की जगह वायु भरी हुई थी। उनके विचार भी शरीर ही के समान बेडौल थे। वह ऋषि-धर्म-सभा के सभापति, रामलीला कमेटी के चेयरमैन और रामलीला परिषद् के प्रबंध कर्ता थे। राजनीति को विष भरा सांप समझते थे और समाचार-पत्रों को सांप की बांबी। उच्च अधिकारियों से मिलने की धुन थी। अंग्रेजों के समाज में उनका विशेष मान था। वहां उनके सद्‌गुणों की बड़ी प्रशंसा होती थी। वह उदार न थे, न कृपण। इस विषय में चंदे की नामावली उनका मार्ग निश्चय किया करती थी। उनमें एक बड़ा गुण था, जो उनकी दुर्बलताओं को छिपाए रहता था। यह उनकी विनोदशीलता थी।

विट्ठलदास का प्रस्ताव सुनकर बोले–महाशय, आप भी बिल्कुल शुष्क मनुष्य हैं ! आपमें जरा भी रस नहीं। मुद्दत के बाद दालमंडी में एक चीज नजर आई, आप उसे भी गायब करने पर तुले हुए हैं। कम-से-कम अब की रामलीला तो हो जाने दीजिए। राजगद्दी के दिन उसका जलसा होगा, धूम मच जायगी। आखिर तुर्किनें आकर मंदिर को भ्रष्ट करती हैं, ब्राह्मणी रहे तो क्या बुरा है ! खैर, यह तो दिल्लगी हुई। क्षमा कीजिएगा। आपको धन्यवाद है कि ऐसे-ऐसे शुभ कार्य आपके हाथों पूरे होते हैं। कहां है चंदे की फिहरिस्त?

विट्ठलदास ने सिर खुजलाते हुए कहा–अभी तो मैं केवल सेठ बलभद्रदासजी के पास गया था, लेकिन आप जानते ही हैं, वह एक बैठकबाज हैं, इधर-उधर की बातें करके टाल दिया।

अगर बलभद्रदास ने एक लिखा होता, तो यहां दो में संदेह न था। दो लिखते तो चार का निश्चित था। जब गुणक ही शून्य हो, तो गुणनफल शून्य के सिवा और क्या हो सकता था, लेकिन बहाना क्या करते? तुरंत एक आश्रय मिल गया। बोले–महाशय, मुझे आपसे पूरी सहानुभूति है। लेकिन बलभद्रदास ने कुछ समझकर ही टाला होगा। जब मैं भी दूर तक सोचता हूं, तो इस प्रस्ताव में कुछ राजनीति का रंग दिखाई देता है, इसमें जरा भी संदेह नहीं। आप चाहे इसे उस दृष्टि से न देखते हों, लेकिन मुझे तो इसमें गुप्त राजनीति भरी हुई साफ नजर आती है। मुसलमानों को यह बात अवश्य बुरी मालूम होगी, वह जाकर अधिकारियों से इसकी शिकायत करेंगे। अधिकारियों को आप जानते ही हैं, आंखें नहीं, केवल कान होते हैं। उन्हें तुरंत किसी षड्यंत्र का संदेह हो जायगा।

विट्ठलदास ने झुंझलाकर कहा–साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि मैं कुछ नहीं देना चाहता?

चिम्मनलाल—आप ऐसा ही समझ लीजिए। मैंने सारी जाति का कोई ठेका थोड़े ही लिया है?

विट्ठलदास का मनोरथ यहां भी पूरा न हुआ, लेकिन यह उनके लिए कुछ नई बात न थी। ऐसे निराशाजनक अनुभव उन्हें नित्य ही हुआ करते थे। यहां से डॉक्टर श्यामाचरण के पास पहुंचे। डॉक्टर महोदय बड़े समझदार और विद्वान् पुरुष थे। शहर के प्रधान राजनीतिक नेता थे, उनकी वकालत खूब चमकी हुई थी। बहुत तौल-तौल कर मुंह से शब्द निकालते थे। उनकी मौन गंभीरता विचारशीलता का द्योतक समझी जाती थी। शांति के भक्त थे, इसलिए उनके विरोध से न किसी को हानि थी, न उनके योग से किसी को लाभ। सभी तरह के लोग उन्हें अपना मित्र समझते थे, सभी अपना शत्रु। वह अपनी कमिश्नरी की ओर से सूबे की सलाहकारी सभा के सभासद थे। विट्ठलदास की बात सुनकर बोले—मेरे योग्य जो सेवा हो, वह मैं करने को तैयार हूं। लेकिन उद्योग यह होना चाहिए कि उन कुप्रथाओं का सुधार किया जाय, जिनके कारण ऐसी समस्याएं उपस्थित होती हैं। इस समय आप एक की रक्षा कर ही लेंगे, तो इससे क्या होगा? यहां तो नित्य ही ऐसी दुर्घटनाएं होती रहती हैं। मूल कारणों का सुधार होना चाहिए। कहिए तो कौंसिल में कोई प्रश्न करूं?

विट्ठलदास उछलकर बोले—जी हां, यह तो बहुत ही उत्तम होगा।

डॉक्टर साहब ने तुरंत प्रश्नों की एक माला तैयार की—

1. क्या गवर्नमेंट बता सकती है कि गत वर्ष वेश्याओं की संख्या कितनी बढ़ी?

2. क्या गवर्नमेंट ने इस बात का पता लगाया है कि इस वृद्धि के क्या कारण हैं और गवर्नमेंट उसे रोकने के लिए क्या उपाय करना चाहती है?

3. ये कारण कहां तक मनोविकारों से संबंध रखते हैं, कहां तक आर्थिक स्थिति से और कहां तक सामाजिक कुप्रथाओं से?

इसके बाद डॉक्टर साहब अपने मुवक्किलों से बातचीत करने लगे, विट्ठलदास आध घंटे तक बैठे रहे, अंत में अधीर होकर बोले—तो मुझे क्या आज्ञा होती है?

श्यामाचरण—आप इत्मीनान रखें, अब की कौंसिल की बैठक में गवर्नमेंट का ध्यान इस ओर आकर्षित करूंगा।

विट्ठलदास के जी में आया कि डॉक्टर साहब को आड़े हाथों लूं, किंतु कुछ सोचकर चुप रह गए। फिर किसी बड़े आदमी के पास जाने का साहस न हुआ। लेकिन उस कर्मवीर ने उद्योग से मुंह नहीं मोड़ा। नित्य किसी सज्जन के पास जाते और उससे सहायता की याचना करते। यह उद्योग सर्वथा निष्फल तो नहीं हुआ। उन्हें कई सौ रुपये के वचन और कई सौ नगद मिल गए, लेकिन तीस रुपये मासिक की जो कमी थी, वह इतने धन से क्या पूरी होती? तीन महीने की दौड़-धूप के बाद वह बड़े मुश्किल से दस रुपये मासिक का प्रबंध करने में सफल हो सके।

अंत में जब उन्हें अधिक सहायता की कोई आशा न रही तो वह एक दिन प्रातःकाल सुमनबाई के पास गए। वह इन्हें देखते ही कुछ अनमनी-सी होकर बोली—कहिए महाशय, कैसे कृपा की?

विट्ठलदास—तुम्हें अपना वचन याद है?

सुमन—इतने दिनों की बातें अगर मुझे भूल जायं, तो मेरा दोष नहीं।

विट्ठलदास—मैंने तो बहुत चाहा कि शीघ्र ही प्रबंध हो जाय, लेकिन ऐसी जाति से पाला पड़ा है, जिसमें जातीयता का सर्वथा लोप हो गया है। तिस पर भी मेरा उद्योग बिल्कुल व्यर्थ नहीं हुआ। मैंने तीस रुपये मासिक का प्रबंध कर लिया है और आशा है कि और जो कसर है, वह भी पूरी हो जायगी। अब तुमसे मेरी यह प्रार्थना है कि इसे स्वीकार करो और आज ही इस नरककुंड को छोड़ दो।

सुमन—शर्माजी को आप नहीं ला सके क्या?

विट्ठलदास—वह किसी तरह आने पर राजी न हुए। इस तीस रुपये में बीस रुपये मासिक का वचन उन्होंने दिया है।

सुमन ने विस्मित होकर कहा—अच्छा! वह तो बड़े उदार निकले। सेठों से कुछ मदद मिली?

विट्ठलदास—सेठों की बात न पूछो। चिम्मनलाल रामलीला के लिए हजार-दो हजार रुपये खुशी से दे देंगे। बलभद्रदास से अफसरों की बधाई के लिए इससे भी अधिक मिल सकता है, लेकिन इस विषय में उन्होंने कोरा जवाब दिया।

सुमन इस समय सदन के प्रेमजाल में फंसी हुई थी। प्रेम का आनंद उसे कभी नहीं प्राप्त हुआ था, इस दुर्लभ रत्न को पाकर वह उसे हाथ से नहीं जाने देना चाहती थी। यद्यपि वह जानती थी कि इस प्रेम का परिणाम वियोग के सिवा और कुछ नहीं हो सकता, लेकिन उसका मन कहता था कि जब तक वह आनंद मिलता है, तब तक उसे क्यों न भोगूं। आगे चलकर न जाने क्या होगा, जीवन की नाव न जाने किस-किस भंवर में पड़ेगी, न जाने कहां-कहां भटकेगी। भावी चिंताओं को वह अपने पास न आने देती थी, क्योंकि उधर भयंकर अंधकार के सिवा और कुछ नहीं सूझता था। अतएव जीवन के सुधार का उत्साह, जिसके वशीभूत होकर उसने विट्ठलदास से वह प्रस्ताव किए थे, क्षीण हो गया था। इस समय विट्ठलदास सौ रुपये मासिक का लोभ दिखाते तो भी वह खुश न होती, किंतु एक बार जो बात खुद उठाई थी, उससे फिरते हुए शर्म आती थी। बोली—मैं इसका जवाब आपको कल दूंगी। अभी कुछ सोच लेने दीजिए।

विट्ठलदास—इसमें क्या सोचना-समझना है?

सुमन—कुछ नहीं, लेकिन कल ही पर रखिए।

रात के दस बज गए थे। शरद् ऋतु की सुनहरी चांदनी छिटकी हुई थी। सुमन खिड़की से नीलवर्ण आकाश की ओर ताक रही थी। जैसे चांदनी के प्रकाश में तारागण की ज्योति मलिन पड़ गई थी, उसी प्रकार उसके हृदय में चन्द्ररूपी सुविचार ने विचार-रूपी तारागण को ज्योतिहीन कर दिया था।

सुमन के सामने एक कठिन समस्या उपस्थित थी, विट्ठलदास को क्या उत्तर दूं?

आज प्रातःकाल उसने कल जवाब देने का बहाना करके विट्ठलदास को टाला था। लेकिन दिन-भर के सोच-विचार ने उसके विचारों में कुछ संशोधन कर दिया था।

सुमन को यद्यपि यहां भोग-विलास के सभी सामान प्राप्त थे लेकिन बहुधा उसे ऐसे मनुष्यों की आवभगत करनी पड़ती थी, जिनकी सूरत से उसे घृणा होती थी, जिनकी बातों को सुनकर उसका जी मिचलाने लगता था। अभी उसके मन से उत्तम भावों का सर्वथा लोप नहीं हुआ था। वह उस अधोगति को नहीं पहुंची थी, जहां दुर्व्यसन हृदय के समस्त भावों को नष्ट कर देता है। इसमें संदेह नहीं कि वह विलास की सामग्रियों पर जान देती थी, लेकिन इन

सामग्रियों की प्राप्ति के लिए जिस बेहयाई की जरूरत थी, वह उसके लिए असह्य थी और कभी-कभी एकांत में वह अपनी वर्तमान दशा की पूर्वावस्था से तुलना किया करती थी। वहां यह टीमटाम न थी, किंतु वह अपने समाज में आदर की दृष्टि से देखी जाती थी। वह अपनी पड़ोसिनों के सामने अपनी कुलीनता पर गर्व कर सकती थी, अपनी धार्मिकता और भक्तिभाव का रोब जमा सकती थी। किसी के सम्मुख उसका सिर नीचा नहीं होता था। लेकिन यहां उसके सगर्व हृदय को पग-पग पर लज्जा से मुंह छिपाना पड़ता था। उसे ज्ञात होता था कि मैं किसी कुलटा के सामने भी सिर उठाने योग्य नहीं हूं। जो निरादर और अपमान उसे स्वयं सहने पड़ते थे, उनकी अपेक्षा यहां की प्रेमवार्ता और आंखों की सनकियां अधिक दु:खजनक प्रतीत होती थीं और उसके भावपूर्ण हृदय पर कुठाराघात कर देती थीं। तब उसका व्यथित हृदय पद्मसिंह पर दांत पीसकर रह जाता था। यदि उस निर्दय मनुष्य ने अपनी बदनामी के भय से मेरी अवहेलना न की होती, तो मुझे इस पापकुंड में कूदने का साहस न होता। अगर वह मुझे चार दिन भी पड़ा रहने देते, तो कदाचित् मैं अपने घर लौट जाती अथवा वह (गजाधर) ही मुझे मना ले जाते, फिर उसी प्रकार लड़-झगड़कर जीवन के दिन कटने लगते। इसीलिए उसने विट्ठलदास से पद्मसिंह को अपने साथ लाने की शर्त की थी।

लेकिन आज जब विट्ठलदास से उसे ज्ञात हुआ कि शर्माजी मुझे उबारने के लिए कितने उत्सुक हो रहे हैं और कितनी उदारता के साथ मेरी सहायता करने पर तैयार हैं, तो उनके प्रति घृणा के स्थान पर उसके मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई। वह बड़े सज्जन पुरुष हैं। मैं खामखाह अपने दुराचार का दोष उनके सिर रखती हूं। उन्होंने मुझ पर दया की है। मैं जाकर उनके पैरों पर गिर पडूंगी और कहूंगी कि आपने इस अभागिन का उपकार किया है, उसका बदला आपको ईश्वर देंगे। यह कंगन भी लौटा दूं, जिससे उन्हें यह संतोष हो जाय कि जिस आत्मा की मैंने रक्षा की है, वह सर्वथा उसके अयोग्य नहीं है। बस, वहां से आकर इस पाप के मायाजाल से निकल भागूं।

लेकिन सदन को कैसे भुलाऊंगी?

अपने मन की इस चंचलता पर वह झुंझला पड़ी। क्या उस पापमय प्रेम के लिए जीवन-सुधारक इस दुर्लभ अवसर को हाथ से जाने दूं? चार दिन की चांदनी के लिए सदैव पाप के अंधकार में पड़ी रहूं? अपने हाथ से एक सरल हृदय युवक का जीवन नष्ट करूं? जिस सज्जन पुरुष ने मेरे साथ वह सद्व्यवहार किया है, उन्हीं के साथ यह छल ! यह कपट ! नहीं, मैं इस दूषित प्रेम को हृदय से निकाल दूंगी। सदन को भूल जाऊंगी। उससे कहूंगी, तुम भी मुझे इस मायाजाल से निकलने दो।

आह ! मुझे कैसा धोखा हुआ ! यह स्थान दूर से कितना सुहावना, कितना मनोरम, कितना सुखमय दिखाई देता था। मैंने इसे फूलों का बाग समझा, लेकिन है क्या? एक भयंकर वन, मांसाहारी पशुओं और विषैले कीड़ों से भरा हुआ !

यह नदी दूर से चांद की चादर-सी बिछी हुई कैसी भली मालूम होती थी। पर अंदर क्या मिलता है? बड़े-बड़े विकराल जल-जंतुओं का क्रीड़ा-स्थल ! सुमन इसी प्रकार विचार-सागर में मग्न थी। उसे यह उत्कंठा हो रही थी कि किसी तरह सबेरा हो जाय और विट्ठलदास आ जायं, किसी तरह यहां से निकल भागूं। आधी रात बीत गई और उसे नींद न आई। धीरे-धीरे उसे शंका होने लगी कि कहीं सबेरे विट्ठलदास न आए तो क्या होगा? क्या मुझे फिर यहां

प्रात:काल से संध्या तक मीरासियों और धाड़ियों की चापलूसियां सुननी पड़ेंगी। फिर पाप-रजोलिप्त पुतलियों का आदर-सम्मान करना पड़ेगा? सुमन को यहां रहते हुए अभी छ: मास भी नहीं पूरे हुए थे, लेकिन इतने दिनों में उसे यहां का पूरा अनुभव हो गया था। उसके यहां सारे दिन मीरासियों का जमघट रहता था। वह अपने दुराचार, छल और क्षुद्रता की कथाएं बड़े गर्व से कहते। उनमें कोई चतुर गिरहकट था, कोई धूर्त ताश खेलने वाला, कोई टपके की विद्या में निपुण, कोई दीवार फांदने के फन का उस्ताद और सब-के-सब अपने दुस्साहस और दुर्बलता पर फूले हुए। पड़ोस की रमणियां भी नित्य आती थीं, रंगी, बनी-ठनीं, दीपक के समान जगमगाती हुई, किंतु यह स्वर्ण-पात्र थे, हलाहल से भरे हुए पात्र—उनमें कितना छिछोरापन था ! कितना छल ! कितनी कुवासना ! वह अपनी निर्लज्जता और कुकर्मों के वृत्तांत कितने मजे ले-लेकर कहतीं। उनमें लज्जा का अंश भी न रहा था। सदैव ठगने की, छलने की धुन, मन सदैव पाप-तृष्णा में लिप्त। शहर में जो लोग सच्चरित्र थे, उन्हें यहां खूब गालियां दी जाती थीं, उनकी खूब हंसी उड़ाई जाती थी, बुद्धू, गौखा आदि की पदवियां दी जाती थीं। दिन-भर सारे शहर की चोरी और डाके, हत्या और व्यभिचार, गर्भपात और विश्वासघात की घटनाओं की चर्चा रहती। यहां का आदर और प्रेम अब अपने यथार्थ रूप में दिखाई देता था ! वह प्रेम नहीं था, आदर नहीं था, केवल कामलिप्सा थी। अब तक सुमन धैर्य के साथ यह सारी विपत्तियां झेलती थी। उसने समझ लिया था कि जब इसी नरककुंड में जीवन व्यतीत करना है, तो इन बातों से कहां तक भागूं? नरक में पड़कर नारकीय धर्म का पालन करना अनिवार्य था। पहली बार विट्ठलदास जब उसके पास आए थे, तो उसने मन में उनकी उपेक्षा की थी। उस समय तक उसे यहां के रंग-ढंग का ज्ञान न था। लेकिन आज मुक्ति का द्वार सामने खुला देखकर इस कारागार में उसे क्षण-भर भी ठहरना असह्य हो रहा था। जिस तरह अवसर पाकर मनुष्य की पाप-चेष्टा जागृत हो जाती है, उसी प्रकार अवसर पाकर उसकी धर्म-चेष्टा भी जागृत हो जाती है। रात के तीन बजे थे। सुमन अभी तक करवटें बदल रही थी, उसका मन बलात् सदन की ओर खिंचता था। ज्यों-ज्यों प्रभात निकट आता था, उसकी व्यग्रता बढ़ती जाती थी। वह अपने मन को समझा रही थी। तू इस प्रेम पर फूला हुआ है? क्या तुझे मालूम नहीं कि इसका आधार केवल रंग-रूप है ! यह प्रेम नहीं है, प्रेम की लालसा है। यहां कोई सच्चा प्रेम करने नहीं आता। जिस भांति मंदिर में कोई सच्ची उपासना करने नहीं जाता, उसी प्रकार इस मंडी में कोई प्रेम का सौदा करने नहीं आता, सब लोग केवल मन बहलाने के लिए आते हैं। इस प्रेम के भ्रम में मत पड़।

अरुणोदय के समय सुमन को नींद आ गई।

उन्नीस

शाम हो गई। सुमन ने दिन-भर विट्ठलदास की राह देखी, लेकिन वह अब तक नहीं आए। सुमन के मन में जो नाना प्रकार की शंकाएं उठ रही थीं, वह पुष्ट हो गईं। विट्ठलदास अब नहीं आएंगे, अवश्य कोई विघ्न पड़ा। या तो वह किसी दूसरे काम में फंस गए या जिन लोगों

ने सहायता का वचन दिया था, पलट गए। मगर कुछ भी हो, एक बार विट्ठलदास को यहां आना चाहिए था। मुझे मालूम तो हो जाता कि क्या निश्चय हुआ। अगर कोई मेरी सहायता नहीं करता, न करे, मैं अपनी मदद आप कर लूंगी, केवल एक सज्जन पुरुष की आड़ चाहिए। क्या विट्ठलदास से इतना भी नहीं होगा? चलूं, उनसे मिलूं और कह दूं कि मुझे आर्थिक सहायता की इच्छा नहीं है, आप इसके लिए हैरान न हों, केवल मेरे रहने का प्रबंध कर दें और मुझे कोई काम बता दें, जिससे मुझे सूखी रोटियां मिल जाया करें। मैं और कुछ नहीं चाहती। लेकिन मालूम नहीं, वह कहां रहते हैं, बे-पते-ठिकाने कहां-कहां भटकती फिरूंगी?

चलूं पार्क की तरफ, लोग वहां हवा खाने आया करते हैं, संभव है, उनसे भेंट हो जाय। शर्माजी नित्य उधर ही घूमने जाया करते हैं, संभव है, उन्हीं से भेंट हो जाय। उन्हें यह कंगन दे दूंगी और इसी बहाने इस विषय में भी कुछ बातचीत कर लूंगी।

यह निश्चय करके सुमन ने एक किराये की बग्घी मंगवाई और अकेले सैर को निकली। दोनों खिड़कियां बंद कर दीं, लेकिन झंझरियों से झांकती जाती थी। छावनी की तरफ दूर तक इधर-उधर ताकती चली गई, लेकिन दोनों आदमियों में कोई भी न दिखाई पड़ा। वह कोचवान को क्वींस पार्क की तरफ चलने को कहना ही चाहती थी कि सदन घोड़े को दौड़ाता आता दिखाई दिया। सुमन का हृदय उछलने लगा। ऐसा जान पड़ा, मानो इसे बरसों के बाद देखा है। स्थान के बदलने से कदाचित् प्रेम में नया उत्साह आ जाता है। उसका जी चाहा कि उसे आवाज दे, लेकिन जब्त कर गई। जब तक आंखों से ओझल न हुआ, उसे सतृष्ण प्रेम-दृष्टि से देखती रही। सदन के सर्वांगपूर्ण सौंदर्य पर वह कभी इतनी मुग्ध न हुई थी।

बग्घी क्वींस पार्क की ओर चली। यह पार्क शहर से दूर था, बहुत कम लोग इधर जाते थे। लेकिन पद्मसिंह का एकांत-प्रेम उन्हें यहां खींच लाया था। यहां विस्तृत मैदान में एक तकियेदार बेंच पर बैठे हुए वह घंटों विचार में मग्न रहते। ज्योंही बग्घी फाटक के भीतर आई, सुमन को शर्माजी मैदान में अकेले बैठे दिखाई दिए। सुमन का हृदय दीपशिखा की भांति थरथराने लगा। भय की इस दशा का ज्ञान पहले होता, तो वह यहां तक आ न सकती थी। लेकिन इतनी दूर आकर और शर्माजी को सामने बैठे देखकर, निष्काम लौट जाना मूर्खता थी। उसने जरा दूर पर बग्घी रोक दी और गाड़ी से उतरकर शर्माजी की ओर चली, उसी प्रकार जैसे शब्द वायु के प्रतिकूल चलता है।

शर्माजी कौतूहल से बग्घी देख रहे थे। उन्होंने सुमन को पहचाना नहीं। आश्चर्य हो रहा था कि यह कौन महिला इधर चली आती है। विचार किया कि कोई ईसाई लेडी होगी, लेकिन जब सुमन समीप आ गई, तो उन्होंने उसे पहचाना। एक बार उसकी ओर दबी आंखों से देखा, फिर जैसे हाथ-पांव फूल गए हों। जब सुमन सिर झुकाए हुए उनके सामने आकर खड़ी हो गई, तो वह झेंपे हुए दीनतापूर्ण नेत्रों से इधर-उधर देखने लगे, मानो छिपने के लिए कोई बिल ढूंढ़ रहे हों। तब अकस्मात् वह लपककर उठे और पीछे की ओर फिरकर वेग के साथ चलने लगे। सुमन पर जैसे वज्रपात हो गया। वह क्या आशा मन में लेकर आई थी और क्या आंखों से देख रही है। प्रभो ! यह मुझे इतना नीच और अधम समझते हैं कि मेरी परछाईं से भी भागते हैं। वह श्रद्धा जो उसके हृदय में शर्माजी के प्रति उत्पन्न हो गई थी, क्षणमात्र में लुप्त हो गई। बोली—मैं आप ही से कुछ कहने आई हूं। जरा ठहरिए, मुझ पर इतनी कृपा कीजिए।

शर्माजी ने और भी कदम बढ़ाया, जैसे कोई भूत से भागे। सुमन से यह अपमान न सहा

गया। तीव्र स्वर में बोली—मैं आपसे कुछ मांगने नहीं आई हूं कि आप इतना डर रहे हैं। मैं आपको केवल यह कंगन देने आई हूं। यह लीजिए, अब मैं आप ही चली जाती हूं।

यह कहकर उसने कंगन निकालकर शर्माजी की तरफ फेंका।

शर्माजी ठिठक गए, जमीन पर पड़े हुए कंगन को देखा। यह सुभद्रा का कंगन था।

सुमन बग्घी की तरफ कई कदम जा चुकी थी। शर्माजी उसके निकट आकर बोले—तुम्हें यह कंगन कहां मिला?

सुमन—अगर मैं आपकी बातें न सुनूं और मुंह फेरकर चली जाऊं, तो आपको बुरा न मानना चाहिए।

पद्मसिंह—सुमनबाई, मुझे लज्जित न करो। मैं तुम्हारे सामने मुंह दिखाने योग्य नहीं हूं।

सुमन—क्यों?

पद्मसिंह—मुझे बार-बार यह वेदना होती है कि अगर उस अवसर पर मैंने तुम्हें अपने घर से जाने के लिए न कहा होता, तो यह नौबत न आती।

सुमन—तो इसके लिए आपको लज्जित होने की क्या आवश्यकता है? अपने घर से निकालकर आपने मुझ पर बड़ी कृपा की, मेरा जीवन सुधार दिया।

शर्माजी इस ताने से तिलमिला उठे, बोले—अगर यह कृपा है, तो गजाधर पांडे और विट्ठलदास की है। मैं ऐसी कृपा का श्रेय नहीं चाहता।

सुमन—आप 'नेकी कर और दरिया में डाल', वाली कहावत पर चलें, पर मैं तो मन में आपका एहसान मानती हूं। शर्माजी, मेरा मुंह न खुलवाइए, मन की बात मन ही में रहने दीजिए, लेकिन आप जैसे सहृदय मनुष्य से मुझे ऐसी निर्दयता की आशा न थी। आप चाहे समझते हों कि आदर और सम्मान की भूख बड़े आदमियों ही को होती है; किंतु दीन दशा वाले प्राणियों को इसकी भूख और भी अधिक होती है, क्योंकि उनके पास इसके प्राप्त करने का कोई साधन नहीं होता। वे इसके लिए चोरी, छल-कपट सब कुछ कर बैठते हैं। आदर में वह संतोष है, जो धन और भोग-विलास में भी नहीं है। मेरे मन में नित्य यही चिंता रहती थी कि यह आदर कैसे मिले। इसका उत्तर मुझे कितनी ही बार मिला, लेकिन आपके होली वाले जलसे के दिन जो उत्तर मिला, उसने भ्रम दूर कर दिया। मुझे आदर और सम्मान का मार्ग दिखा दिया। यदि मैं उस जलसे में न आती, तो आज मैं अपने झोंपड़े में संतुष्ट होती ! आपको मैं बहुत सच्चरित्र पुरुष समझती थी, इसलिए आपकी रसिकता का मुझ पर और भी प्रभाव पड़ा। भोलीबाई आपके सामने गर्व से बैठी हुई थी, आप उसके सामने आदर और भक्ति की मूर्ति बने हुए थे। आपके मित्र-वृंद उसके इशारों पर कठपुतली की भांति नाचते थे। एक सरल हृदय, आदर की अभिलाषिणी स्त्री पर इस दृश्य का जो फल हो सकता था, वही मुझ पर हुआ, पर अब उन बातों का जिक्र ही क्या? जो हुआ वह हुआ। आपको क्यों दोष दूं? यह सब मेरा अपराध था। मैं....

सुमन और कुछ कहना चाहती थी, लेकिन शर्माजी ने, जो इस कथा को बड़े गंभीर भाव से सुन रहे थे, बात काट दी और पूछा—सुमन, ये बातें तुम मुझे लज्जित करने के लिए कह रही हो या सच्ची हैं?

सुमन—कह तो आपको लज्जित करने ही के लिए रही हूं, लेकिन बातें सच्ची हैं। इन बातों को बहुत दिन हुए मैंने भुला दिया था, लेकिन इस समय आपने मेरी परछाईं से भी दूर

रहने की चेष्टा करके वे सब बातें याद दिला दीं। लेकिन अब मुझे स्वयं पछतावा हो रहा है, मुझे क्षमा कीजिए।

शर्माजी ने सिर न उठाया, फिर विचार में डूब गए। सुमन उन्हें धन्यवाद देने आई थी, लेकिन बातों का कुछ क्रम ऐसा बिगड़ा कि उसे इसका अवसर ही न मिला और अब इतनी अप्रिय बातों के बाद उसे अनुग्रह और कृपा की चर्चा असंगत जान पड़ी। वह अपनी बग्घी की ओर चली। एकाएक शर्माजी ने पूछा—और कंगन?

सुमन—यह मुझे कल सर्राफे में दिखाई दिया। मैंने बहूजी के हाथों में इसे देखा था, पहचान गई, तुरंत वहां से उठा लाई।

शर्माजी—कितना देना पड़ा।

सुमन—कुछ नहीं, उलटे सर्राफ पर और धौंस जमाई।

शर्माजी—सर्राफ का नाम बता सकती हो?

सुमन—नहीं, वचन दे आई हूं—यह कहकर सुमन चली गई। शर्माजी कुछ देर तक तो बैठे रहे, फिर बेंच पर लेट गए। सुमन का एक-एक शब्द उनके कानों में गूंज रहा था। वह ऐसे चिंतामग्न हो रहे थे कि कोई उनके सामने आकर खड़ा हो जाता तो भी उन्हें खबर न होती। उनके विचारों ने उन्हें स्तंभित कर दिया था। ऐसा मालूम होता था, मानो उनके मर्मस्थान पर कड़ी चोट लग गई है, शरीर में एक शिथिलता-सी प्रतीत होती थी। वह एक भावुक मनुष्य थे। सुभद्रा अगर कभी हंसी में भी कोई चुभती हुई बात कह देती, तो कई दिनों तक वह उनके हृदय को मथती रहती थी। उन्हें अपने व्यवहार पर, आचार-विचार पर, अपने कर्त्तव्यपालन पर अभिमान था। आज वह अभिमान चूर-चूर हो गया। जिस अपराध को उन्होंने पहले गजाधर और विट्ठलदास के सिर मढ़कर अपने को संतुष्ट किया था, वही आज सौगुने बोझ के साथ उनके सिर पर लद गया ! सिर हिलाने की भी जगह न थी। वह इस अपराध से दबे जाते थे। विचार तीव्र होकर मूर्तिमान हो जाता है। कहीं बहुत दूर से उनके कान में आवाज आई, वह जलसा न होता तो आज मैं अपने झोंपड़े में मग्न होती। इतने में हवा चली, पत्तियां हिलने लगीं, मानो वृक्ष अपने काले भयंकर सिरों को हिला-हिलाकर कहते थे, सुमन की यह दुर्गति तुमने की है।

शर्माजी घबराकर उठे। देर हो गई थी। सामने गिरजाघर का ऊंचा शिखर था। उसमें घंटा बज रहा था। घंटे की सुरीली ध्वनि कह रही थी, सुमन की यह दुर्गति तुमने की।

शर्माजी ने बलपूर्वक विचारों को समेटकर आगे कदम बढ़ाया। आकाश पर दृष्टि पड़ी। काले पटल पर उज्ज्वल दिव्य अक्षरों में लिखा हुआ था, सुमन की यह दुर्गति तुमने की।

जैसे किसी चटैल मैदान में सामने से उमड़ी हुई काली घटाओं को देखकर मुसाफिर दूर के अकेले वृक्ष की ओर सवेग चलता है, उसी प्रकार शर्माजी लंबे-लंबे पग धरते हुए उस पार्क से आबादी की तरफ चले, किंतु विचार चित्र को कहां छोड़ते? सुमन उनके पीछे-पीछे आती थी, कभी सामने आकर रास्ता रोक लेती और कहती—मेरी यह दुर्गति तुमने की है। कभी इस तरफ से, कभी उस तरफ से निकल आती और यही शब्द दुहराती। शर्माजी ने बड़ी कठिनाई से उतना रास्ता तय किया, घर आए और कमरे में मुंह ढांपकर पड़े रहे। सुभद्रा ने भोजन करने के लिए आग्रह किया, तो उसे सिर-दर्द का बहाना करके टाला। सारी रात सुमन उनके हृदय में बैठी हुई उन्हें कोसती रही, तुम विद्वान् बनते हो, तुमको अपने

बुद्धि-विवेक पर घमंड है, लेकिन तुम फूस के झोंपड़ों के पास बारूद की हवाई फुलझड़ियां छोड़ते हो। अगर तुम अपना धन फूंकना चाहते हो, तो जाकर मैदान में फूंको, गरीब-दुखियों का घर क्यों जलाते हो?

प्रातःकाल शर्माजी विट्ठलदास के घर जा पहुंचे।

बीस

सुभद्रा को संध्या के समय कंगन की याद आई। लपकी हुई स्नान-घर में गई। उसे खूब याद था कि उसने यहीं ताक पर रख दिया था, लेकिन उसका वहां पता न था। इस पर वह घबराई। अपने कमरे के प्रत्येक ताक और आल्मारी को देखा, रसोई के कमरे में चारों ओर ढूंढ़ा, घबराहट और भी बढ़ी। फिर तो उसने एक-एक संदूक, एक-एक कोना छान मारा, मानो कोई सुई ढूंढ़ रही हो, लेकिन कुछ पता न चला। महरी से पूछा तो उसने बेटे की कसम खाकर कहा, मैं नहीं जानती। जीतन को बुलाकर पूछा। वह बोला—मालकिन, बुढ़ापे में यह दाग मत लगाओ। सारी उमिर भले-भले आदमियों की चाकरी में ही कटी है, लेकिन कभी नीयत नहीं बिगड़ी, अब कितने दिन जीना है कि नीयत बद करूंगा। सुभद्रा हताश हो गई, अब किससे पूछे? जी न माना, फिर संदूक, कपड़ों की गठरियां खोल-खोलकर देखीं। आटे-दाल की हांड़ियां भी न छोड़ीं, पानी के मटकों में हाथ डाल-डालकर टटोला। अंत में निराश होकर चारपाई पर लेट गई। उसने सदन को स्नानगृह में जाते देखा था, शंका हुई कि उसी ने हंसी में छिपाकर रखा हो, लेकिन उससे पूछने की हिम्मत न पड़ी। सोचा, शर्माजी घूमकर खाना खाने आएं तो उनसे कहूंगी। ज्योंही शर्माजी घर में आए, सुभद्रा ने उनसे रिपोर्ट की। शर्माजी ने कहा—अच्छी तरह देखो, घर ही में होगा, ले कौन जाएगा?

सुभद्रा—घर की एक-एक अंगुल जमीन छान डाली।

शर्माजी—नौकरों से पूछो।

सुभद्रा—सबसे पूछा, दोनों कसम खाते हैं। मुझे खूब याद है कि मैंने उसे नहाने के कमरे में ताक पर रख दिया था।

शर्माजी—तो क्या उसके पर लगे थे, जो आप-ही-आप उड़ गया?

सुभद्रा—नौकरों पर तो मेरा संदेह नहीं है।

शर्माजी—तो दूसरा कौन ले जायगा?

सुभद्रा—कहो तो सदन से पूछूं? मैंने उसे कमरे में जाते देखा था, शायद दिल्लगी के लिए छिपा रखा हो।

शर्माजी—तुम्हारी भी क्या समझ है ! उसने छिपाया होता तो कह न देता?

सुभद्रा—तो पूछने में हर्ज ही क्या है? सोचता हो कि खूब हैरान करके बताऊंगा।

शर्माजी—हर्ज क्यों नहीं है? कहीं उसने न देखा हो तो समझेगा, मुझे चोरी लगाती हैं?

सुभद्रा—उस कमरे में तो वह गया था। मैंने अपनी आंखों देखा।

शर्माजी—तो क्या वहां तुम्हारा कंगन उठाने गया था? बे बात-की-बात करती हो। उससे

भूलकर भी न पूछना। एक तो वह ले ही न गया होगा, और ले भी गया होगा, तो आज नहीं कल दे देगा, जल्दी क्या है?

सुभद्रा–तुम्हारे जैसा दिल कहां से लाऊं? ढाढस तो हो जायगी?

शर्माजी–चाहे जो कुछ हो, उससे कदापि न पूछना।

सुभद्रा उस समय तो चुप हो गई। लेकिन जब रात को चाचा-भतीजे भोजन करने बैठे तो उससे रहा न गया। सदन से बोली–लाला, मेरा कंगन नहीं मिलता। छिपा रखा हो तो दे दो, क्यों हैरान करते हो?

सदन के मुख का रंग उड़ गया और कलेजा कांपने लगा। चोरी करके सीनाजोरी करने का ढंग न जानता था। उसके मुंह में कौर था, उसे चबाना भूल गया। इस प्रकार मौन हो गया कि मानो कुछ सुना ही नहीं । शर्माजी ने सुभद्रा की ओर ऐसे आग्नेय नेत्रों से देखा कि उसका रक्त सूख गया। फिर जबान खोलने का साहस न हुआ। फिर सदन ने शीघ्रतापूर्वक दो-चार ग्रास खाए और चौके से उठ गया।

शर्माजी बोले–यह तुम्हारी क्या आदत है कि मैं जिस काम को मना करता हूं, वह अदबदा के करती हो।

सुभद्रा–तुमने उसकी सूरत नहीं देखी? वही ले गया है, अगर झूठ निकल जाय तो जो चोर की सजा, वह मेरी।

शर्माजी–यह सामुद्रिक विद्या कब से सीखी?

सुभद्रा–उसकी सूरत से साफ मालूम होता था।

शर्माजी–अच्छा मान लिया, वही ले गया हो तो, कंगन की क्या हस्ती है, मेरा तो यह शरीर ही उसी की पाला है। वह अगर मेरी जान मांगे तो मैं दे दूं ! मेरा सब कुछ उसका है, वह चाहे मांगकर ले जाय, चाहे उठा लें जाय।

सुभद्रा चिढ़कर बोली–तो तुमने गुलामी लिखाई है, गुलामी करो, मेरी चीज कोई उठा ले जायगा, तो मुझसे चुप न रहा जायगा।

दूसरे दिन संध्या को जब शर्माजी सैर करके लौटे, तो सुभद्रा उन्हें भोजन करने के लिए बुलाने गई ! उन्होंने कंगन उसके सामने फेंक दिया। सुभद्रा ने आश्चर्य से दौड़कर उठा लिया और पहचानकर बोली–मैंने कहा था न कि उन्होंने छिपाकर रखा होगा, वही बात निकली न?

शर्माजी–फिर वही बे-सिर-पैर की बातें करती हो ! इसे मैंने बाजार में एक सर्राफे की दूकान पर पाया है। तुमने सदन पर संदेह करके उसे भी दुख पहुंचाया और अपने आपको भी कलुषित किया।

इक्कीस

विट्ठलदास को संदेह हुआ कि सुमन तीस रुपये मासिक स्वीकार नहीं करना चाहती, इसलिए उसने कल उत्तर देने का बहाना करके मुझे टाला है। अतएव वह दूसरे दिन उसके पास नहीं गए, इसी चिंता में पड़े रहे कि शेष रुपयों का कैसे प्रबंध हो? कभी सोचते, दूसरे शहर में डेपुटेशन

ले जाऊं, कभी कोई नाटक खेलने का विचार करते। अगर उनका वश चलता, तो इस शहर के सारे बड़े-बड़े धनाढ्य पुरुषों को जहाज में भरकर काले-पानी भेज देते। शहर में एक कुंवर अनिरुद्धसिंह सज्जन, उदार पुरुष रहते थे। लेकिन विट्ठलदास उनके द्वार तक जाकर केवल इसलिए लौट आए कि उन्हें वहां तबले की गमक सुनाई दी। उन्होंने मन में सोचा, जो मनुष्य राग-रंग में इतना लिप्त है, वह इस काम में मेरी क्या सहायता करेगा? इस समय उनकी सहायता करना उनकी दृष्टि में सबसे बड़ा पुण्य और उनकी उपेक्षा करना सबसे बड़ा पाप था। वह इसी संकल्प-विकल्प में पड़े हुए थे कि सुमन के पास चलूं या न चलूं। इतने में पंडित पद्मसिंह आते हुए दिखाई दिए, आंखें चढ़ी हुईं लाल और बदन मलिन था। ज्ञात होता था कि सारी रात जागे हैं। चिंता और ग्लानि की मूर्ति बने हुए थे ! तीन महीने से विट्ठलदास उनके पास नहीं गए थे, उनकी ओर से हृदय फट गया था। लेकिन शर्माजी की यह दशा देखते ही पिघल गए और प्रेम से हाथ मिलाकर बोले—भाई साहब, उदास दिखाई देते हो, कुशल तो है?

शर्माजी—जी हां, सब कुशल ही है। इधर महीनों से आपसे भेंट नहीं हुई, मिलने को जी चाहता था। सुमन के विषय में क्या निश्चय किया?

विट्ठलदास—उसी चिंता में तो दिन-रात पड़ा रहता हूं। इतना बड़ा शहर है, पर तीस रुपये मासिक का प्रबंध नहीं हो सकता। मुझे ऐसा अनुमान होता है कि मुझे मांगना नहीं आता। कदाचित् मुझमें किसी के हृदय को आकर्षित करने की सामर्थ्य नहीं है। मैं दूसरों को दोष देता हूं, पर वास्तव में दोष मेरा ही है। अभी तक केवल दस रुपये का प्रबंध हो सका है ! जितने रईस हैं, सब-के-सब पाषाण हृदय। अजी, रईसों की बात तो न्यारी रही, मि० प्रभाकर राव ने भी कोरा जवाब दिया। उनके लेखों को पढ़ो, तो मालूम होता है कि देशानुराग और दया के सागर हैं। होली के जलसे के बाद महीनों तक आप पर विष की वर्षा करते रहे, लेकिन कल जो उनकी सेवा में गया तो बोले, क्या जाति का सबसे बड़ा ऋणी मैं ही हूं? मेरे पास लेखनी है, उससे जाति की सेवा करता हूं। जिसके पास धन हो, वह धन से सेवा करे। उनकी बातें सुनकर चकित रह गया। मकान बनवा रहे हैं, कोयले की कंपनी में हिस्से खरीदे हैं, लेकिन इस जातीय काम से साफ निकल गए। अजी और लोग जरा सकुचाते तो हैं, उन्होंने तो उल्टे मुझी को आड़े हाथों लिया।

शर्माजी—आपको निश्चय है कि सुमनबाई पचास रुपये पर विधवाश्रम में चली आएंगी?

विट्ठलदास—हां, मुझे निश्चय है। यह दूसरी बात है कि आश्रम कमेटी उसे लेना पसंद न करे। तब और प्रबंध करूंगा।

शर्माजी—अच्छा, तो लीजिए, आपकी चिंताओं का अंत किए देता हूं, मैं पचास रुपये मासिक देने पर तैयार हूं और ईश्वर ने चाहा तो अंजाम देता रहूंगा।

विट्ठलदास ने विस्मय से शर्माजी की तरफ देखा और कृतज्ञतापूर्वक उनके गले लिपटकर बोले—भाई साहब, तुम धन्य हो ! इस समय तुमने वह काम किया है कि जी चाहता है, तुम्हारे पैरों पर गिरकर रोऊं। तुमने हिन्दू जाति की लाज रख ली और सारे लखपतियों के मुंह पर कालिख लगा दी। लेकिन इतना बोझ कैसे संभालोगे?

शर्माजी—सब हो जायगा, ईश्वर कोई-न-कोई राह अवश्य निकालेंगे ही।

विट्ठलदास—आजकल आमदनी अच्छी हो रही है क्या?

शर्माजी—आमदनी पत्थर हो रही है, घोड़ागाड़ी बेच दूंगा, तीस रुपये बचत यों हो जायगी, बिजली का खर्च तोड़ दूंगा, दस रुपये यों निकल आयंगे, दस रुपये और इधर-उधर से खींच-खांचकर निकाल लूंगा।

विट्ठलदास—तुम्हारे ऊपर अकेले इतना बोझ डालते हुए मुझे कष्ट हो रहा है, पर क्या करूं, शहर के बड़े आदमियों से हारा हुआ हूं। गाड़ी बेच दोगे तो कचहरी कैसे जाओगे? रोज किराये की गाड़ी करनी पड़ेगी?

शर्माजी—जी नहीं, किराए की गाड़ी की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। मेरे भतीजे ने एक सब्जा घोड़ा ले रखा है, उसी पर बैठकर चला जाया करूंगा।

विट्ठलदास—अरे, वही तो नहीं है, जो कभी-कभी शाम को चौक में घूमने निकला करता है?

शर्माजी—संभव है, वही हो।

विट्ठलदास—सूरत आपसे बहुत मिलती है, धारीदार सर्ज का कोट पहनता है, खूब हृष्ट-पुष्ट है, गोरा रंग, बड़ी-बड़ी आंखें, कसरती जवान है।

शर्माजी—जी हां, हुलिया तो आप ठीक बताते हैं। वही है।

विट्ठलदास—आप उसे बाजार में घूमने से रोकते क्यों नहीं?

शर्माजी—मुझे क्या मालूम, कहां घूमने जाता है। संभव है, कभी-कभी बाजार की तरफ चला जाता हो; लेकिन लड़का सच्चरित्र है, इसलिए मैंने कभी चिंता नहीं की।

विट्ठलदास—यह आपसे बड़ी भूल हुई। पहले वह चाहे जितना सच्चरित्र रहा हो, लेकिन आजकल उसके रंग अच्छे नहीं हैं। मैंने उसे एक बार नहीं, कई बार वहां देखा है, जहां न देखना चाहिए था। सुमनबाई के प्रेमजाल में पड़ा हुआ मालूम होता है।

शर्माजी के होश उड़ गए। बोले—यह तो आपने बुरी खबर सुनाई। वह मेरे कुल का दीपक है। अगर वह कुपथ पर चला, तो मेरी जान ही पर बन जाएगी। मैं शरम के मारे भाई साहब को मुंह न दिखा सकूंगा।

यह कहते-कहते शर्माजी की आंखें सजल हो गईं। फिर बोले—महाशय, उसे किसी तरह समझाइए। भाई साहब के कानों में इस बात की भनक भी गई, तो वह मेरा मुंह न देखेंगे।

विट्ठलदास—नहीं, उसे सीधे मार्ग पर लाने के लिए उद्योग किया जायगा। मुझे आज तक मालूम ही न था कि वह आपका भतीजा है। मैं आज ही इस काम पर उतारूं हो जाऊंगा और सुमन कल तक वहां से चली आई, तो वह आप ही संभल जायगा।

शर्माजी—सुमन के चले जाने से बाजार खाली थोड़े ही हो जायगा। किसी दूसरी के पंजे में फंस जायगा। क्या करूं, उसे घर भेज दूं?

विट्ठलदास—वहां अब वह रह चुका, पहले तो जायगा ही नहीं और गया भी तो दूसरे ही दिन भागेगा। यौवनकाल की दुर्वासनाएं बड़ी प्रबल होती हैं। कुछ नहीं, यह सब इसी कुप्रथा की करामात है, जिसने नगर के सार्वजनिक स्थानों को अपना कार्यक्षेत्र बना रखा है। यह कितना बड़ा अत्याचार है कि ऐसे मनोविकार पैदा करने वाले दृश्यों को गुप्त रखने के बदले हम उनकी दूकान सजाते हैं और अपने भोले-भाले सरल बालकों की कुप्रवृत्तियों को जगाते हैं। मालूम नहीं, यह कुप्रथा कैसे चली? मैं तो समझता हूं कि विषयी मुसलमान बादशाहों के समय इसका जन्म हुआ होगा। जहां ग्रंथालय, धर्म-सभाएं और सुधारक संस्थाओं के स्थान होने चाहिए,

वहां हम रूप का बाजार सजाते हैं। यह कुवासनाओं को नेवता देना नहीं तो क्या है? हम जान-बूझकर युवकों को गढ़े में ढकेलते हैं। शोक !

शर्माजी–आपने इस विषय में कुछ आंदोलन तो किया था?

विट्ठलदास–हां, किया तो था, लेकिन जिस प्रकार आप एक बार मौखिक सहानुभूति प्रकट करके मौन साध गए, उसी प्रकार अन्य सहायकों ने भी आनाकानी की, तो भाई, अकेला चना तो भाड़ नहीं फोड़ सकता? मेरे पास न धन है, न ऐश्वर्य है, न उच्च उपाधियां; मेरी कौन सुनता है? लोग समझते हैं, बक्की है? नगर में इतने सुयोग्य, विद्वान् पुरुष चैन से सुख-भोग कर रहे हैं, कोई भूलकर भी मेरी नहीं सुनता।

शर्माजी शिथिल प्रकृति के मनुष्य थे। उन्हें कर्त्तव्य-क्षेत्र में लाने के लिए किसी प्रबल उत्तेजना की आवश्यकता थी। मित्रों की वाह-वाह जो प्राय: मनुष्य की सुप्तावस्था को भंग किया करती है, उनके लिए काफी न थी। वह सोते नहीं थे, जागते थे। केवल आलस्य के कारण पड़े हुए थे। इसलिए उन्हें जगाने के लिए चिल्लाकर पुकारने की इतनी जरूरत नहीं थी, जितनी किसी विशेष बात की। यह कितनी अनोखी लेकिन यथार्थ बात है कि सोए हुए मनुष्य को जगाने की अपेक्षा जागते हुए मनुष्य को जगाना कठिन है। सोता हुआ आदमी अपना नाम सुनते ही चौंककर उठ बैठता है, जागता हुआ मनुष्य सोचता है कि यह किसकी आवाज है? उसे मुझसे क्या काम है? इससे मेरा काम तो न निकल सकेगा? जब इन प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर उसे मिलता है, तो वह उठता है, नहीं तो पड़ा रहता है। पद्मसिंह इन्हीं जागते हुए आलसियों में से थे। कई बार जातीय पुकार की ध्वनि उनके कानों में आई थी, किंतु वे सुनकर भी न उठे। इस समय जो पुकार उनके कानों में पहुंच रही थी, उसने उन्हें बलात् उठा दिया। अपने भतीजे को, जिसे वह पुत्र से भी बढ़कर प्यार करते थे, कुमार्ग से बचाने के लिए, अपने भाई की अप्रसन्नता का निवारण करने के लिए, वे सब कुछ कर सकते थे। जिस कुव्यवस्था का ऐसा भयंकर परिणाम हुआ उसके मूलोच्छेदन पर कटिबद्ध होने के लिए अन्य प्रमाणों की जरूरत न थी। बाल-विधवा-विवाह के घोर शत्रुओं को भी जब-तब उसका समर्थन करते देखा गया है। प्रत्यक्ष उदाहरण से प्रबल और कोई प्रमाण नहीं होता। शर्माजी बोले–यदि मैं आपके किसी काम आ सकूं, तो आपकी सहायता करने को तैयार हूं।

विट्ठलदास उल्लसित होकर बोले–भाई साहब, अगर मेरा हाथ बंटाओ तो मैं धरती और आकाश एक कर दूंगा; लेकिन क्षमा करना, तुम्हारे संकल्प दृढ़ नहीं होते। अभी यों कहते हो, कल ही उदासीन हो जाओगे। ऐसे कामों में धैर्य की बड़ी जरूरत है।

शर्माजी लज्जित होकर बोले–ईश्वर चाहेगा तो अब की आपको इसकी शिकायत न रहेगी।

विट्ठलदास–तब तो हमारा सफल होना निश्चित है।

शर्माजी–यह तो ईश्वर के हाथ है। मुझे न तो बोलना आता है, न लिखना आता है, बस आप जिस राह पर लगा देंगे, उसी पर आंख बंद किए चला जाऊंगा।

विट्ठलदास–अजी, सब आ जायगा, केवल उत्साह चाहिए। दृढ़ संकल्प हवा में किले बना देता है। आपकी वक्तृताओं में तो वह प्रभाव होगा कि लोग सुनकर दंग हो जायंगे। हां, इतना स्मरण रखिएगा कि हिम्मत नहीं हारनी चाहिए।

शर्माजी–आप मुझे संभाले रहिएगा।

विट्ठलदास—अच्छा तो अब मेरे उद्देश्य भी सुन लीजिए। मेरा पहला उद्देश्य है कि वेश्याओं को सार्वजनिक स्थान से हटाना और दूसरा, वेश्याओं के नाचने-गाने की रस्म को मिटाना। आप मुझसे सहमत हैं या नहीं?

शर्माजी—क्या अब भी कोई संदेह है?

विट्ठलदास—नाच के विषय में आपके यह विचार तो नहीं हैं?

शर्माजी—अब क्या एक घर जलाकर भी वही खेल खेलता रहूंगा। उन दिनों मुझे न जाने क्या हो गया था। मुझे अब यह निश्चय हो गया है कि मेरे उसी जलसे ने सुमनबाई को घर से निकाला ! लेकिन यहां मुझे एक शंका होती है। आखिर हम लोगों ने भी तो शहरों ही में इतना जीवन व्यतीत किया है, हम लोग इन दुर्वासनाओं में क्यों नहीं पड़े? नाच भी तो शहर में आए दिन हुआ ही करते हैं, लेकिन उनका ऐसा भीषण परिणाम होते बहुत कम देखा गया है। इससे यही सिद्ध होता है कि इस विषय में मनुष्य का स्वभाव ही प्रधान है। आप इस आंदोलन से स्वभाव तो नहीं बदल सकते।

विट्ठलदास—हमारा यह उद्देश्य ही नहीं, हम तो केवल उन दशाओं का संशोधन करना चाहते हैं, जो दुर्बल स्वभाव के अनुकूल हैं और कुछ नहीं चाहते। कुछ मनुष्य जन्म ही से स्थूल होते हैं, उनके लिए खाने-पीने की किसी विशेष वस्तु की जरूरत नहीं। कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं, जो घी-दूध आदि का इच्छापूर्वक सेवन करने से स्थूल हो जाते हैं और कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो सदैव दुबले रहते हैं, वह चाहे घी-दूध के मटके ही में रख दिए जायं तो भी मोटे नहीं हो सकते। हमारा प्रयोजन केवल दूसरी श्रेणी के मनुष्यों से है। हम और आप जैसे मनुष्य क्या दुर्व्यसन में पड़ेंगे, जिन्हें पेट के धंधों से कभी छुट्टी ही नहीं मिली, जिन्हें कभी यह विश्वास ही नहीं हुआ कि प्रेम की मंडी में उनकी आवभगत होगी। वहां तो वह फंसते हैं, जो धनी हैं, रूपवान हैं, उदार हैं, रसिक हैं। स्त्रियों को अगर ईश्वर सुंदरता दे, तो धन से वंचित न रखे। धन-हीन, सुंदर, चतुर स्त्री पर दुर्व्यसन का मंत्र शीघ्र ही चल जाता है।

बाईस

सुमन पार्क से लौटी तो उसे खेद होने लगा कि मैंने शर्माजी को वे जी दुखाने वाली बातें क्यों कहीं? उन्होंने इतनी उदारता से मेरी सहायता की, जिसका मैंने यह बदला दिया? वास्तव में मैंने अपनी दुर्बलता का अपराध उनके सिर पर मढ़ा। संसार में घर-घर नाच-गाना हुआ ही करता है, छोटे-बड़े, दीन-दुखी सब देखते हैं और आनंद उठाते हैं। यदि मैं कुचेष्टाओं के कारण आग में कूद पड़ी, तो उसमें शर्माजी का या किसी और का क्या दोष? बाबू विट्ठलदास शहर के आदमियों के पास दौड़े, क्या वह उन सेठों के पास न गए होंगे जो यहां आते हैं? लेकिन किसी ने उनकी मदद न की, क्यों? इसीलिए न की, कि वह नहीं चाहते हैं कि मैं यहां से मुक्त हो जाऊं। मेरे चले जाने से उनकी काम-तृष्णा में विघ्न पड़ेगा। वह दयाहीन व्याघ्र के समान मेरे हृदय को घायल करके मेरे तड़पने का आनंद उठाना चाहते हैं। केवल एक ही पुरुष है, जिसने मुझे इस अंधकार से निकालने के लिए हाथ बढ़ाया, उसी का मैंने इतना अपमान किया।

वे मुझे मन में कितना कृतघ्न समझेंगे। वे मुझे देखते ही कैसे भागे? चाहिए तो यह था कि मैं लज्जा से वहीं गढ़ जाती, लेकिन मैंने इस पापभय के लिए इतनी निर्लज्जता से उनका तिरस्कार किया ! जो लोग अपने कलुषित भावों से मेरे जीवन को नष्ट कर रहे हैं, उनका मैं कितना आदर करती हूं ! लेकिन जब व्याध पक्षी को अपने जाल में फंसते नहीं देखता, तो उसे उस पर कितना क्रोध आता है ! बालक जब कोई अशुद्ध वस्तु छू लेता है, तो वह अन्य बालकों को दौड़-दौड़कर छूना चाहता है, जिसमें वह भी अपवित्र हो जाएं। क्या मैं भी हृदय शून्य व्याध हूं या अबोध बालक?

किसी ग्रंथकार से पूछिए कि वह एक निष्पक्ष समालोचक के कटुवाक्यों के सामने विचारहीन प्रशंसा का क्या मूल्य समझता है। सुमन को शर्माजी की यह घृणा अन्य प्रेमियों की रसिकता से अधिक प्रिय मालूम होती थी।

रात-भर वह इन्हीं विचारों में डूबी रही। मन में निश्चय कर लिया कि प्रातःकाल विट्ठलदास के पास चलूंगी और उनसे कहूंगी कि मुझे आश्रय दीजिए। मैं आपसे कोई सहायता नहीं चाहती, केवल एक सुरक्षित स्थान चाहती हूं। चक्की पीसूंगी, कपड़े सीऊंगी और किसी तरह अपना निर्वाह कर लूंगी।

सबेरा हुआ। वह उठी और विट्ठलदास के घर चलने की तैयारी करने लगी कि इतने में वह स्वयं आ पहुंचे। सुमन को ऐसा आनंद हुआ, जैसे किसी भक्त को आराध्यदेव के दर्शन से होता है। बोली—आइए महाशय ! कलुषित किया। मैं तो कल दिन-भर आपकी राह देखती रही। इस समय आपके यहां जाने का विचार कर रही थी।

विट्ठलदास—कल कई कारणों से नहीं आ सका।

सुमन—तो आपने मेरे रहने का कोई प्रबंध किया?

विट्ठलदास—मुझसे तो कुछ नहीं हो सका, लेकिन पद्मसिंह ने लाज रख ली। उन्होंने तुम्हारा प्रण पूरा कर दिया। वह अभी मेरे पास आए थे और वचन दे गए हैं कि तुम्हें पचास रुपये मासिक आजन्म देते रहेंगे।

सुमन के विस्मयपूर्ण नेत्र सजल हो गए। शर्माजी की इस महती उदारता ने उसके अंतःकरण को भक्ति, श्रद्धा और विमल प्रेम से प्लावित कर दिया। उसे अपने कटु वाक्यों पर अत्यंत क्षोभ हुआ। बोली—शर्माजी दया और धर्म के सागर हैं। इस जीवन में उनसे उऋण नहीं हो सकती। ईश्वर उन्हें सदैव सुखी रखें। लेकिन मैंने उस समय जो कुछ कहा था, वह केवल परीक्षा के लिए था। मैं देखना चाहती थी कि सचमुच मुझे उबारना चाहते हैं या केवल धर्म का शिष्टाचार कर रहे हैं। अब मुझे विदित हो गया कि आप दोनों सज्जन देवरूप हैं। आप लोगों को वृथा कष्ट नहीं देना चाहती। मैं सहानुभूति की भूखी थी, वह मुझे मिल गई। अब मैं अपने जीवन का भार आप लोगों पर नहीं डालूंगी। आप केवल मेरे रहने का कोई प्रबंध कर दें, जहां मैं विघ्न-बाधा से बची रह सकूं।

विट्ठलदास चकित हो गए। जातीय गौरव से आंखें चमक उठीं। उन्होंने सोचा, हमारे देश की पतित स्त्रियों के विचार भी ऐसे उच्च होते हैं। बोले—सुमन, तुम्हारे मुंह से ऐसे पवित्र शब्द सुनकर मुझे इस समय जो आनंद हो रहा है, उसका वर्णन नहीं कर सकता। लेकिन रुपयों के बिना तुम्हारा निर्वाह कैसे होगा?

सुमन—मैं परिश्रम करूंगी। देश में लाखों दुखियाएं हैं, उनको ईश्वर के सिवा और कौन

सहायक है? अपनी निर्लज्जता का कर आपसे न लूंगी।

विट्ठलदास—वे कष्ट तुमसे सहे जायंगे?

सुमन—पहले नहीं सहे जाते थे, लेकिन अब सब कुछ सह लूंगी। यहां आकर मुझे मालूम हो गया कि निर्लज्जता सब कष्टों से दुस्सह है। और कष्टों से शरीर को दु:ख होता है, इस कष्ट से आत्मा का संहार हो जाता है। मैं ईश्वर को धन्यवाद देती हूं कि उसने आप लोगों को मेरी रक्षा के लिए भेज दिया।

विट्ठलदास—सुमन, तुम वास्तव में विदुषी हो।

सुमन—तो मैं यहां से कब चलूं?

विट्ठलदास—आज ही। अभी मैंने आश्रम की कमेटी में तुम्हारे रहने का प्रस्ताव नहीं किया है, लेकिन कोई हरज नहीं है, तुम वहां चलो, ठहरो। अगर कमेटी ने कुछ आपत्ति की तो देखा जायगा। हां, इतना याद रखना कि अपने विषय में किसी से कुछ मत कहना, नहीं तो विधवाओं में हलचल मच जायगी।

सुमन—आप जैसा उचित समझें करें, मैं तैयार हूं।

विट्ठलदास—संध्या समय चलना होगा।

विट्ठलदास के जाने के थोड़ी ही देर बाद दो वेश्याएं सुमन से मिलने आईं। सुमन ने कह दिया—मेरे सिर में दर्द है। सुमन अपने ही हाथ से भोजन बनाती थी। पतित होकर भी वह खान-पान में विचार करती थी। आज उसने व्रत करने का निश्चय किया था। मुक्ति के दिन कैदियों को भी भोजन अच्छा नहीं लगता।

दोपहर दो धाड़ियों का गोल आ पहुंचा। सुमन ने उन्हें भी बहाना करके टाला। उसे अब उनकी सूरत से घृणा होती थी। सेठ बलभद्रदास के यहां से नागपुरी संतरे की एक टोकरी आई, उसे सुमन ने तुरंत लौटा दिया। चिम्मनलाल ने चार बजे अपनी फिटन सैर करने को भेजी। उसने उसको भी लौटा दिया।

जिस प्रकार अंधकार के बाद अरुण का उदय होते ही पक्षी कलरव करने लगते हैं और बछड़े किलोलों में मग्न हो जाते हैं, उसी प्रकार सुमन के मन में भी क्रीड़ा करने की प्रबल इच्छा हुई। उसने सिगरेट की एक डिबिया मंगवाई और वार्निश की एक बोतल मंगवाकर ताक पर रख दी और एक कुर्सी का एक पाया तोड़कर कुर्सी छज्जे पर दीवार के सहारे रख दी। पांच बजते-बजते मुंशी अबुलवफा का आगमन हुआ। यह हजरत सिगरेट बहुत पीते थे। सुमन ने आज असाधारण रीति से उनकी आवभगत की और इधर-उधर की बातें करने के बाद बोली—आइए, आज आपको वह सिगरेट पिलाऊं कि आप भी याद करें।

अबुलवफा—नेकी और पूछ-पूछ !

सुमन—देखिए, एक अंग्रेजी दूकान से खास आपकी खातिर मंगवाया है। यह लीजिए।

अबुलवफा—तब तो मैं भी अपना शुमार खुशनसीबों में करूंगा। वाह रे मैं, वाह रे मेरे साजे जिगर की तासीर।

अबुलवफा ने सिगरेट मुंह में दबाया। सुमन ने दियासलाई की डिबिया निकालकर एक सलाई रगड़ी। अबुलवफा ने सिगरेट को जलाने के लिए मुंह आगे बढ़ाया, लेकिन न मालूम कैसे आग सिगरेट में न लगकर उनकी दाढ़ी में लग गई ! जैसे पुआल जलता है, उसी तरह

एक क्षण में दाढ़ी आधी से ज्यादा जल गई ! उन्होंने सिगरेट फेंककर दोनों हाथों से दाढ़ी मलना शुरू किया। आग बुझ गई, मगर दाढ़ी का सर्वनाश हो चुका था। आइने में लपककर मुंह देखा। दाढ़ी का भस्मावशेष उबाली हुई सुतली के रेशे की तरह मालूम हुआ। सुमन ने लज्जित होकर कहा–मेरे हाथों में आग लगे ! कहां-से-कहां मैंने दियासलाई जलाई।

उसने बहुत रोका, पर हंसी होंठ पर आ गई। अबुलवफा ऐसे खिसियाए हुए थे, मानो अब वह अनाथ हो गए। सुमन की हंसी अखर गई। उस भोंड़ी सूरत पर खेद और खिसियाहट का अपूर्व दृश्य था। बोले–यह कब की कसर निकाली?

सुमन–मुंशीजी, मैं सच कहती हूं, यह दोनों आंखें फूट जायं अगर मैंने जान-बूझकर आग लगाई हो। आपसे बैर भी होता, तो दाढ़ी बेचारी ने मेरा क्या बिगाड़ा था?

अबुलवफा–माशूकों की शोखी और शरारत अच्छी मालूम होती है, लेकिन इतनी नहीं कि मुंह जला दें। अगर तुमने आग से कहीं दाग दिया होता, तो इससे अच्छा था। अब यह भुन्नास की-सी सूरत लेकर मैं किसे मुंह दिखाऊंगा ! वल्लाह ! आज तुमने मटियामेट कर दिया।

सुमन–क्या करूं, खुद पछता रही हूं। अगर मेरे दाढ़ी होती तो आपको दे देती। क्यों, नकली दाढ़ियां भी तो मिलती हैं?

अबुलवफा–सुमन, जख्म पर नमक ना छिड़को। अगर दूसरे ने यह हरकत की होती, तो आज उसका खून पी जाता।

सुमन–अरे, तो थोड़े-से बाल ही तो जल गए न या और कुछ। महीने-दो-महीने में फिर निकल आएंगे। जरा-सी बात के लिए आप इतनी हाय-हाय मचा रहे हैं।

अबुलवफा–सुमन, जलाओ मत, नहीं तो मेरी जबान से भी कुछ निकल जायगा। मैं इस वक्त आपे में नहीं हूं।

सुमन–नारायण, नारायण, जरा-सी दाढ़ी पर इतना जामे के बाहर हो गए। मान लीजिए, मैंने जानकर ही दाढ़ी जला दी तो? आप मेरी आत्मा को, मेरे धर्म को, मेरे हृदय को रोज जलाते हैं, क्या उनका मूल्य आपकी दाढ़ी से भी कम है? मियां आशिक बनना मुंह का नेवाला नहीं है। जाइए, अपने घर की राह लीजिए, अब कभी यहां न आइएगा। मुझे छिछोरे आदमियों की जरूरत नहीं है।

अबुलवफा ने क्रोध से सुमन की ओर देखा, तब जेब से रूमाल निकाला और जली हुई दाढ़ी को उसकी आड़ में छिपाकर चुपके से चले गए। यह वही मनुष्य है, जिसे खुले बाजार एक वेश्या के साथ आमोद-प्रमोद में लज्जा नहीं आती थी।

अब सदन के आने का समय हुआ। सुमन आज उससे मिलने के लिए बहुत उत्कंठित थी। आज यह अंतिम मिलाप होगा। आज यह प्रेमाभिनय समाप्त हो जायगा। वह मोहिनी-मूर्ति फिर देखने को न मिलेगी। उसके दर्शनों को नेत्र तरस-तरस रहेंगे। वह सरल प्रेम से भरी हुई मधुर बातें सुनने में न आएंगी। जीवन फिर प्रेमविहीन और नीरस हो जायगा। कलुषित सही, पर यह प्रेम सच्चा था। भगवान्, मुझे यह वियोग सहने की शक्ति दीजिए। नहीं, इस समय सदन न आए तो अच्छा है, उससे न मिलने में ही कल्याण है। कौन जाने उसके सामने मेरा संकल्प स्थिर रह सकेगा या नहीं। पर वह आ जाता तो एक बार दिल खोलकर उससे बातें कर लेती, उसे इस कपट सागर में डूबने से बचाने की चेष्टा करती।

इतने में सुमन ने विट्ठलदास को एक किराए की गाड़ी में से उतरते देखा। उसका हृदय

वेग से धड़कने लगा।

एक क्षण में विट्ठलदास ऊपर आए और बोले—अरे, अभी तुमने कुछ तैयारी नहीं की।

सुमन—मैं तैयार हूं।

विट्ठलदास—अभी बिस्तरे तक नहीं बंधे?

सुमन—यहां की कोई वस्तु साथ न ले जाऊंगी, यह वास्तव में मेरा पुनर्जन्म हो रहा है।

विट्ठलदास—यह सामान क्या होंगे?

सुमन—आप इसे बेचकर किसी शुभ कार्य में लगा दीजिएगा।

विट्ठलदास—अच्छी बात है, मैं यहां ताला डाल दूंगा। तो अब उठो, गाड़ी मौजूद है।

सुमन—दस बजे से पहले नहीं चल सकती। आज मुझे अपने प्रेमियों से विदा होना है। कुछ उनकी सुननी है, कुछ अपनी कहनी है। आप तब तक छत पर जाकर बैठिए, मुझे तैयार ही समझिए।

विट्ठलदास को बुरा मालूम हुआ, पर धैर्य से काम लिया। ऊपर जाकर खुली हुई छत पर टहलने लगे।

सात बज गए, लेकिन सदन न आया। आठ बजे तक सुमन उसकी राह देखती रही, अंत में वह निराश हो गई। जब से वह यहां आने लगा, आज ही उसने नागा किया। सुमन को ऐसा मालूम होता था, मानो वह किसी निर्जन स्थान में खो गई है। हृदय में एक अत्यंत तीव्र किंतु सरल, वेदनापूर्ण किंतु मनोहारी आकांक्षा का उद्वेग हो रहा था। मन पूछता था, उसके न आने का क्या कारण है? किसी अनिष्ट की आशंका ने उसे बेचैन कर दिया।

आठ बजे सेठ चिम्मनलाल आए। सुमन उनकी गाड़ी देखते ही छज्जे पर जा बैठी। सेठजी बहुत कठिनाई से ऊपर आए और हांफते हुए बोले—कहां हो देवी, आज बग्घी क्यों लौटा दी? क्या मुझसे कोई खता हुई?

सुमन—यहीं छज्जे पर चले आइए, भीतर कुछ गर्मी मालूम होती है। आज सिर में दर्द था, सैर करने को जी नहीं चाहता था।

चिम्मनलाल—हिरिया को मेरे यहां क्यों नहीं भेज दिया, हकीम साहब से कोई नुस्खा तैयार करा देता। उनके पास तेलों के अच्छे-अच्छे नुस्खे हैं।

यह कहते हुए सेठजी कुर्सी पर बैठे, लेकिन तीन टांग की कुर्सी उलट गई, सेठजी का सिर नीचे हुआ और पैर ऊपर और वह एक कपड़े की गांठ के समान औंधे मुंह लेट गए। केवल एक बार मुंह से 'अरे' निकला और वह फिर कुछ न बोले। जड़ ने चैतन्य को परास्त कर दिया।

सुमन डरी कि चोट ज्यादा आ गई। लालटेन लाकर देखा, तो हंसी न रुक सकी। सेठजी ऐसे असाध्य पड़े थे, मानो पहाड़ से गिर पड़े हैं। पड़े-पड़े बोले—हाय राम, कमर टूट गई। जरा मेरे साईस को बुलवा दो, घर जाऊंगा।

सुमन—चोट बहुत आ गई क्या? आपने भी तो कुर्सी खींच ली, दीवार से टिककर बैठते तो कभी न गिरते। अच्छा, क्षमा कीजिएगा, मुझी से भूल हुई कि आपको सचेत न कर दिया। लेकिन आप जरा भी न संभले, बस गिर ही पड़े।

चिम्मनलाल—मेरी तो कमर टूट गई और तुम्हें मसखरी सूझ रही है।

सुमन—तो अब इसमें मेरा क्या वश है? अगर आप हल्के होते, तो उठाकर बैठा देती।

जरा खुद ही जोर लगाइए, अभी उठ बैठिएगा।

चिम्मनलाल–अब मेरा घर पहुंचना मुश्किल है। हाय! किस बुरी साइत से चले थे, जीने पर से उतरने में पूरी सांसत हो जाएगी। बाईजी, तुमने यह कब का बैर निकाला?

सुमन–सेठजी, मैं बहुत लज्जित हूं।

चिम्मनलाल–अजी रहने भी दो, झूठ-मूठ की बातें बनाती हो। तुमने मुझे जानकर गिराया।

सुमन–क्या आपसे मुझे कोई बैर था? कलुषित किया। और आपसे बैर हो भी, तो आपकी बेचारी कमर ने मेरा क्या बिगाड़ा था?

चिम्मनलाल–अब यहां आनेवाले पर लानत है।

सुमन–सेठजी, आप इतनी जल्दी नाराज हो गए। मान लीजिए, मैंने जानबूझकर ही आपको गिरा दिया, तो क्या हुआ?

इतने में विट्‌ठलदास ऊपर से उतर आए। उन्हें देखते ही सेठजी चौंक पड़े। घड़ों पानी पड़ गया।

विट्‌ठलदास ने हंसी को रोककर पूछा–कहिए सेठजी, आप यहां कैसे आ फंसे? मुझे आपको यहां देखकर बड़ा आश्चर्य होता है।

चिम्मनलाल–इस घड़ी कुछ न पूछिए। फिर यहां आऊं तो मुझ पर लानत है। मुझे किसी तरह यहां से नीचे पहुंचाइए।

विट्‌ठलदास ने एक हाथ थामा, साईस ने आकर कमर पकड़ी। इस तरह लोगों ने उन्हें किसी तरह जीने से उतारा और लाकर गाड़ी में लिटा दिया।

ऊपर आकर विट्‌ठलदास ने कहा–गाड़ी वाला अभी तक खड़ा है, दस बज गए। अब विलंब न करो।

सुमन ने कहा–अभी एक काम और करना है। पंडित दीनानाथ आते होंगे। बस, उनसे निपट लूं तो चलूं। आप थोड़ा-सा कष्ट और कीजिए।

विट्‌ठलदास ऊपर जाकर बैठे ही थे कि पंडित दीनानाथ आ पहुंचे। बनारसी साफा सिर पर था, बदन पर रेशमी अचकन शोभायमान थी। काले किनारे की महीन धोती और काली वार्निश के पंप जूते उनके शरीर पर खूब फबते थे।

सुमन ने कहा–आइए महाराज ! चरण छूती हूं।

दीनानाथ–आशीर्वाद, जवानी बढ़े, आंख के अंधे गांठ के पूरे फंसे, सदा बढ़ती रहो।

सुमन–कल आप कैसे नहीं आए, समाजियों को लिए रात तक आपकी राह देखती रही।

दीनानाथ–कुछ न पूछो, कल एक रमझल्ले में फंस गया था। डॉक्टर श्यामाचरण और प्रभाकर राव स्वराज्य की सभा में घसीट ले गए। वहां बकबक-झकझक होती रही। मुझसे सबने व्याख्यान देने को कहा। मैंने कहा, मुझे कोई उल्लू समझा है क्या? पीछा छुड़ाकर भागा। इसी में देरी हो गई।

सुमन–कई दिन हुए, मैंने आपसे कहा था कि किवाड़ों में वार्निश लगवा दीजिए। आपने कहा, वार्निश कहीं मिलती ही नहीं। यह देखिए, आज मैंने एक बोतल वार्निश मंगा रखी है। कल जरूर लगवा दीजिए।

पंडित दीनानाथ मसनद लगाए बैठे थे। उनके सिर ही पर वह ताक था, जिस पर वार्निश

रखी हुई थी। सुमन ने बोतल उठाई, लेकिन मालूम नहीं, कैसे बोतल की पेंदी अलग हो गई और पंडितजी वार्निश से नहा उठे। ऐसा मालूम होता था, मानो शीरे की नांद में फिसल पड़े हों। वह चौंककर उठ खड़े हुए। साफा उतारकर रूमाल से पोंछने लगे।

सुमन ने कहा—मालूम नहीं, बोतल टूटी थी क्या—सारी वार्निश खराब हो गई।

दीनानाथ—तुम्हें अपनी वार्निश की पड़ी है, यहां सारे कपड़े तर हो गए। अब घर तक पहुंचना मुश्किल है।

सुमन—रात को कौन देखता है, चुपके से निकल जाइएगा।

दीनानाथ—अजी, रहने भी दो, सारे कपड़े सत्यानाश कर दिए, अब उपाय बता रही हो। अब यह धुल भी नहीं सकते।

सुमन—तो क्या मैंने जान-बूझकर गिरा दिया।

दीनानाथ—तुम्हारे मन का हाल कौन जाने?

सुमन—अच्छा जाइए, जानकर ही गिरा दिया।

दीनानाथ—अरे, तो मैं कुछ कहता हूं, जी चाहे और गिरा दो।

सुमन—बहुत होगा अपने कपड़ों की कीमत ले लीजिएगा।

दीनानाथ—खफा क्यों होती हो सरकार? मैं तो कह रहा हूं, गिरा दिया, अच्छा किया।

सुमन—इस तरह कह रहे हैं, मानो मेरे साथ बड़ी रिआयत कर रहे हैं।

दीनानाथ—सुमन, क्यों लज्जित करती हो?

सुमन—जरा-सा कपड़े खराब हो गए, उस पर ऐसे जामे से बाहर हो गए, यही आपकी मुहब्बत है, जिसकी कथा सुनते-सुनते मेरे कान पक गए। आज उसकी कलई खुल गई। जादू सिर पर चढ़के बोला। आपने अच्छे समय पर मुझे सचेत कर दिया। अब कृपा करके घर जाइए। यहां फिर न आइएगा। मुझे आप जैसे मियां मिट्ठुओं की जरूरत नहीं।

विट्ठलदास ऊपर बैठे हुए यह कौतुक देख रहे थे। समझ लिया कि अब अभिनय समाप्त हो गया। नीचे उतर आए। दीनानाथ ने एक बार चौंककर उन्हें देखा और छड़ी उठाकर शीघ्रतापूर्वक नीचे चले आए।

थोड़ी देर बाद सुमन ऊपर से उतरी। वह केवल एक उजल साड़ी पहने थी, हाथों में चूड़ियां तक न थीं। उसका भुख उदास था, लेकिन इसलिए नहीं कि यह भोग-विलास अब उससे छूट रहा है, वरन् इसलिए कि वह अग्निकुंड में गिरी क्यों थी। इस उदासीनता में मलिनता न थी, वरन् एक प्रकार का संयम था। यह किसी मदिरा-सेवी मुख पर छाने वाली उदासी नहीं थी, बल्कि उसमें त्याग और विचार आभासित हो रहा था।

विट्ठलदास ने मकान में ताला डाल दिया और गाड़ी के कोच-बक्स पर जा बैठे। गाड़ी चली।

बाजारों की दूकानें बंद थीं, लेकिन रास्ता चल रहा था। सुमन ने खिड़की से झांककर देखा। उसे आगे लालटेनों की एक सुंदर माला दिखाई दी। लेकिन ज्यों-ज्यों गाड़ी बढ़ती थी, त्यों-त्यों वह प्रकाशमाला भी आगे बढ़ती जाती थी। थोड़ी दूर पर लालटेनें मिलती थीं पर वह ज्योतिर्माला अभिलाषाओं के सदृश दूर भागती जाती थी।

गाड़ी वेग से जा रही थी। सुमन का भावी जीवन-यान भी विचार-सागर में वेग के साथ हिलता, डगमगाता, तारों के ज्योतिर्जाल में उलझता चला जाता था।

तेईस

सदन प्रातःकाल घर गया तो अपनी चाची के हाथ में कंगन देखा। लज्जा से उसकी आंखें जमीन में गड़ गईं। नाश्ता करके जल्दी से बाहर निकल आया और सोचने लगा, यह कंगन इन्हें कैसे मिल गया?

क्या यह संभव है कि सुमन ने उसे यहां भेज दिया हो? वह क्या जानती है कि कंगन किसका है? मैंने तो उसे अपना पता भी नहीं बताया। यह हो सकता है कि यह उसी नमूने का दूसरा कंगन हो, लेकिन इतनी जल्दी वह तैयार नहीं हो सकता। सुमन ने अवश्य ही मेरा पता लगा लिया है और चाची के पास यह कंगन भेज दिया है।

सदन ने बहुत विचार किया। किंतु हर प्रकार से वह इसी परिणाम पर पहुंचता था। उसने फिर सोचा। अच्छा, मान लिया जाय कि उसे मेरा पता मालूम हो गया, तो क्या यह उचित था कि वह मेरी दी हुई चीज को यहां भेज देती? यह तो एक प्रकार का विश्वासघात है?

अगर सुमन ने मेरा पता लगा लिया है, तब तो वह मुझे मन में धूर्त, पाखंडी, जालिया समझती होगी? कंगन को चाची के पास भेजकर उसने यह भी साबित कर दिया कि वह मुझे चोर भी समझती है।

आज संध्या समय सदन को सुमन के पास जाने का साहस न हुआ। चोर, दगाबाज बनकर उसके पास कैसे जाय? उसका चित्त खिन्न था, घर पर बैठना बुरा मालूम होता था। उसने यह सब सहा, पर सुमन के पास न जा सका।

इस भांति एक सप्ताह बीत गया। सुमन से मिलने की उत्कंठा नित्य प्रबल होती जाती थी और शंकाएं इस उत्कंठा के नीचे दबती जाती थीं। संध्या समय उसकी दशा उन्मत्तों की-सी हो जाती। जैसे बीमारी के बाद मनुष्य का चित्त उदास रहता है, किसी से बातें करने को जी नहीं चाहता, उठना-बैठना पहाड़ हो जाता है. जहां बैठता है, वहीं का हो जाता है, वही दशा इस समय सदन की थी।

अंत को वह अधीर हो गया। आठवें दिन उसने घोड़ा कसाया और सुमन से मिलने चला; उसने निश्चय कर लिया था कि आज चलकर उससे अपना सारा कच्चा चिट्ठा बयान कर दूंगा। जिससे प्रेम हो गया, उससे अब छिपाना कैसा ! हाथ जोड़कर कहूंगा, सरकार बुरा हूं तो, भला हूं तो अब आपका सेवक हूं। चाहे जो दंड दो, सिर तुम्हारे सामने झुका हुआ है। चोरी की, चाहे दगा किया, सब तुम्हारे प्रेम के निमित्त किया, अब क्षमा करो।

विषय-वासना, नीति, ज्ञान और संकोच किसी के रोके नहीं रुकती। उसके नशे में हम सब बेसुध हो जाते हैं।

वह व्याकुल होकर पांच ही बजे निकल पड़ा और घूमता हुआ नदी के तट पर आ पहुंचा। शीतल, मंद वायु उसके तपते हुए शरीर को अत्यंत सुखद मालूम होती थी और जल की निर्मल, श्याम, सुवर्ण धारा में रह-रहकर उछलती हुई मछलियां ऐसी मालूम होती थीं, मानो किसी सुंदरी के चंचल नयन महीन घूंघट से चमकते हों।

सदन घोड़े से उतरकर कगार पर बैठ गया और इस मनोहर दृश्य को देखने में मग्न हो गया। अकस्मात् उसने एक जटाधारी साधु को, पेड़ों की आड़ से, अपनी तरफ आते देखा। उसके गले में रुद्राक्ष की माला थी और नेत्र लाल थे। ज्ञान और योग की प्रतिभा की जगह उसके मुख

से एक प्रकार की सरलता और दया प्रकट होती थी। उसे अपने निकट देखकर सदन ने उठकर सत्कार किया।

साधु ने इस ढंग से उसका हाथ पकड़ लिया, मानो उससे परिचय है और बोला—सदन, मैं कई दिन से तुमसे मिलना चाहता था। तुम्हारे हित की एक बात कहना चाहता हूं। तुम सुमनबाई के पास जाना छोड़ दो, नहीं तो तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा। तुम नहीं जानते, वह कौन है? प्रेम के नशे में तुम्हें उसके दूषण नहीं दिखाई देते। तुम समझते हो कि वह तुमसे प्रेम करती है। किंतु यह तुम्हारी भूल है। जिसने अपने पति को त्याग दिया वह दूसरों से क्या प्रेम निभा सकती है? तुम इस समय वहीं जा रहे हो। साधु का वचन मानो, घर लौट जाओ, इसी में तुम्हारा कल्याण है।

यह कहकर वह महात्मा जिधर से आए थे, उधर ही चल दिए और इससे पूर्व कि सदन उनसे कुछ जिज्ञासा करने के लिए सावधान हो सके, वह आंखों से ओझल हो गए।

सदन सोचने लगा, यह महात्मा कौन हैं? यह मुझे कैसे जानते हैं? मेरे गुप्त रहस्यों का इन्हें कैसे ज्ञान हुआ? कुछ उस स्थान की नीरवता, कुछ अपने चित्त की स्थिति, कुछ महात्मा के आकस्मिक आगमन और उनकी अंतर्दृष्टि ने उनकी बातों को आकाशवाणी के तुल्य बना दिया। सदन के मन में किसी भावी अमंगल की आशंका उत्पन्न हो गई। उसे सुमन के पास जाने का साहस न हुआ। वह घोड़े पर बैठा और इस आश्चर्यजनक घटना की विवेचना करता घर की तरफ चल दिया।

जब से सुभद्रा ने सदन पर अपने कंगन के विषय में संदेह किया था, तब से पद्मसिंह उससे रुष्ट हो गए थे। इसलिए सुभद्रा का यहां अब जी न लगता था। शर्माजी भी इसी फिक्र में थे कि सदन को किसी तरह यहां से घर भेज दूं। अब सदन का चित्त भी यहां से उचाट हो रहा था। वह भी घर जाना चाहता था, लेकिन कोई इस विषय में मुंह न खोल सकता था। पर दूसरे ही दिन पंडित मदनसिंह के एक पत्र ने उन सबकी इच्छाएं पूरी कर दीं। उसमें लिखा था, सदन के विवाह की बातचीत हो रही है। सदन को बहू के साथ तुरंत भेज दो।

सुभद्रा यह सूचना पाकर बहुत प्रसन्न हुई। सोचने लगी, महीने-दो महीने चहल-पहल रहेगी, गाना-बजाना होगा, चैन से दिन कटेंगे। इस उल्लास को मन में छिपा न सकी। शर्माजी उसकी निष्ठुरता देखकर और भी उदास हो गए। मन में कहा, इसे अपने आनंद के आगे कुछ भी ध्यान नहीं है। एक या दो महीनों में फिर मिलाप होगा, लेकिन यह कैसी खुश है?

सदन ने भी चलने की तैयारी कर दी। शर्माजी ने सोचा था कि वह अवश्य हीला-हवाला करेगा, लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

इस समय आठ बजे थे। दो बजे दिन को गाड़ी जाती थी। इसलिए शर्माजी कचहरी न गए। कई बार प्रेम से विवश होकर घर में गए। लेकिन सुभद्रा को उनसे बातचीत करने की फुर्सत कहां? वह अपने गहने-कपड़े और मांग-चोटी में मग्न थी। कुछ गहने खटाई में पड़े थे, कुछ महरी साफ कर रही थी। पानदान मांजा जा रहा था। पड़ोस की कई स्त्रियां बैठी हुई थीं। सुभद्रा ने आज खुशी में खाना नहीं खाया। पूड़ियां बनाकर शर्माजी और सदन के लिए बाहर ही भेज दीं।

यहां तक कि एक बज गया। जीतन ने गाड़ी लाकर द्वार पर खड़ी कर दी। सदन ने अपने ट्रंक और बिस्तर आदि रख दिए। उस समय सुभद्रा को शर्माजी की याद आई, महरी से

बोली—जरा देख तो कहां हैं? बुला ला। उसने आकर बाहर देखा। कमरे में झांका, नीचे जाकर देखा, शर्माजी का पता न था। सुभद्रा ताड़ गई। बोली—जब तक वह न आएंगे, मैं न जाऊंगी। शर्माजी कहीं बाहर न गए थे। ऊपर छत पर जाकर बैठे थे। जब एक बज गया और सुभद्रा न निकली, तब वह झुंझलाकर घर में गए और सुभद्रा से बोले—अभी तक तुम यहीं हो? एक बज गया।

सुभद्रा की आंखों में आंसू भर आए। चलते-चलते शर्माजी की यह रुखाई अखर गई। शर्माजी अपनी निष्ठुरता पर पछताए। सुभद्रा के आंसू पोंछे, गले से गला लगाया और लाकर गाड़ी में बैठा दिया।

स्टेशन पर पहुंचे, गाड़ी छूटने ही वाली थी। सदन दौड़कर गाड़ी में जा बैठा। सुभद्रा बैठने भी न पाई थी कि गाड़ी छूट गई। वह खिड़की पर खड़ी शर्माजी को ताकती रही और जब तक वह आंखों से ओझल न हुए, वह खिड़की पर से न हटी।

संध्या समय गाड़ी ठिकाने पर पहुंची। मदनसिंह पालकी और घोड़ा लिए स्टेशन पर मौजूद थे। सदन ने दौड़कर पिता के चरण-स्पर्श किए।

ज्यों-ज्यों गांव निकट आता था, सदन की व्यग्रता बढ़ती जाती थी; जब गांव आध मील दूर रह गया और धान के खेतों की मेड़ों पर घोड़े को दौड़ाना कठिन जान पड़ा तो वह उतर पड़ा और वेग के साथ गांव की तरफ चला। आज उसे अपना गांव बहुत सुनसान मालूम होता था। सूर्यास्त हो गया था। किसान बैलों को हांकते खेतों से चले आते थे। सदन किसी से कुछ न बोला—सीधे अपने घर में चला गया और माता के चरण छुए। माता ने छाती से लगाकर आशीर्वाद दिया।

भामा—वे कहां रह गईं?

सदन—आती हैं, मैं सीधे खेतों में से चला आया।

भामा—चाचा-चाची से जी भर गया न?

सदन—क्यों?

भामा—वह तो चेहरा ही कहे देता है।

सदन—वाह, मैं तो मोटा हो गया हूं।

भामा—झूठे, चाची ने दानों को तरसा दिया होगा।

सदन—चाची ऐसी नहीं हैं। यहां से मुझे बहुत आराम था। वहां दूध अच्छा मिलता था।

भामा—तो रुपये क्यों मांगते थे?

सदन—तुम्हारे प्रेम की थाह ले रहा था। इतने दिन में तुमसे पच्चीस रुपये ही लिए न! चाचा से सात सौ ले चुका। चार सौ का तो एक घोड़ा ही लिया। रेशमी कपड़े बनवाए, शहर में रईस बना घूमता था। सबेरे चाची ताजा हलवा बना देती थीं। उस पर सेर-भर दूध, तीसरे पहर मेवे और मिठाइयां। मैंने वहां जो चैन किया, वह कभी न भूलूंगा। मैंने भी सोचा कि अपनी कमाई में तो चैन कर चुका, इस अवसर पर क्यों चूकूं, सभी शौक पूरे कर लिए।

भामा को ऐसा अनुमान हुआ कि सदन की बातों में कुछ निरालापन आ गया है। उनमें कुछ शहरीपन आ गया है।

सदन ने अपने नागरिक जीवन का उस उत्साह से वर्णन किया, जो युवाकाल का गुण है।

सरल भामा का हृदय सुभद्रा की ओर से निर्मल हो गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल गांव के मान्य पुरुष निमंत्रित हुए और उनके सामने सदन का फलदान चढ़ गया।

सदन की प्रेम-लालसा इस समय ऐसी प्रबल हो रही थी कि विवाह की कड़ी धर्म-बेड़ी को सामने लखकर भी वह चिंतित न हुआ। उसे सुमन से जो प्रेम था, उसमें तृष्णा ही का आधिक्य था। सुमन उसके हृदय में रहकर भी उसके जीवन का आधार न बन सकती थी। सदन के पास यदि कुबेर का धन होता, तो वह सुमन को अर्पण कर देता। वह अपने जीवन के संपूर्ण सुख उसकी भेंट कर सकता था, किंतु अपने दुःख से, विपत्ति से, कठिनाइयों से, नैराश्य से वह उसे दूर रखता था। उसके साथ वह सुख का आनंद उठा सकता था, लेकिन दुःख का आनंद नहीं उठा सकता था। सुमन पर उसे वह विश्वास कहां था, जो प्रेम का प्राण है ! अब वह कपट प्रेम के मायाजाल से मुक्त हो जायगा। अब उसे बहु रूप धरने की आवश्यकता नहीं। अब वह प्रेम को यथार्थ रूप में देखेगा और यथार्थ रूप में दिखाएगा। यहां उसे वह अमूल्य वस्तु मिलेगी, जो सुमन के यहां किसी प्रकार नहीं मिल सकती थी। इन विचारों ने सदन को इस नए प्रेम के लिए लालायित कर दिया। अब उसे केवल यही संशय था कि कहीं वधू रूपवती न हुई तो? रूप-लावण्य प्राकृतिक गुण है, जिसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। स्वभाव एक उपार्जित गुण है; उसमें शिक्षा और सत्संग से सुधार हो सकता है। सदन ने इस विषय में ससुराल के नाई से पूछ-ताछ करने की ठानी; उसे खूब भंग पिलाई, खूब मिठाइयां खिलाईं। अपनी एक धोती उसको भेंट की। नाई ने नशे में आकर वधू की ऐसी लंबी प्रशंसा की; उसके नख-शिख का ऐसा चित्र खींचा कि सदन को इस विषय में कोई संदेह न रहा। यह नख-शिख सुमन से बहुत कुछ मिलता था। अतएव सदन नवेली दुल्हिन का स्वागत करने के लिए और भी उत्सुक हो गया।

चौबीस

यह बात बिल्कुल तो असत्य नहीं है कि ईश्वर सबको किसी-न-किसी हीले से अन्न-वस्त्र देता है। पंडित उमानाथ बिना किसी हीले ही के संसार का सुख-भोग करते थे। उनकी आकाशी वृत्ति थी। उनके भैंस और गाएं न थीं, लेकिन घर में घी-दूध की नदी बहती थी; वह खेती-बारी न करते थे, लेकिन घर में अनाज की खत्तियां भरी रहती थीं। गांव में कहीं मछली मरे, कहीं बकरा कटे, कहीं आम टूटे, कहीं भोज हो, उमानाथ का हिस्सा बिना मांगे आप-ही-आप पहुंच जाता। अमोला बड़ा गांव था। ढाई-तीन हजार जनसंख्या थी लेकिन समस्त गांव में उनकी सम्मत्ति के बिना कोई काम न होता था। स्त्रियों को यदि गहने बनवाने होते तो वह उमानाथ से कहतीं। लड़के-लड़कियों के विवाह उमानाथ की मार्फत तय होते। रेहननामे, बैनामे, दस्तावेज उमानाथ ही के परामर्श से लिखे जाते। मुआमिले-मुकदमे उन्हीं के द्वारा दायर होते और मजा यह था कि उनका यह दबाव और सम्मान उनकी सज्जनता के कारण नहीं था। गांव वालों के साथ उनका व्यवहार शुष्क और रूखा होता था। वह बेलाग बात करते थे, लल्लो-

चप्पो करना न जानते थे, लेकिन उनके कटु वाक्यों को लोग दूध के समान पीते थे। मालूम नहीं, उनके स्वभाव में क्या जादू था। कोई कहता था, यह उनका इकबाल है, कोई कहता था इन्हें महावीर का इष्ट है लेकिन हमारे विचार में यह उनके मानव-स्वभाव के ज्ञान का फल था। जानते थे कि कहां झुकना और कहां तनना चाहिए। गांव वालों से तनने में अपना काम सिद्ध होता था, अधिकारियों से झुकने में। थाने और तहसील के अमले, चपरासी ने लेकर तहसीलदार तक, सभी उन पर कृपा-दृष्टि रखते थे। तहसीलदार साहब के लिए वह वर्षफल बनाते, डिप्टी साहब को भावी उन्नति की सूचना देते। कानूनगो और कुर्क-अमीन उनके द्वार पर बिना बुलाए मेहमान बने रहते। किसी को यंत्र देते, किसी को भगवद्गीता सुनाते और जिन लोगों की श्रद्धा इन बातों पर न थी, उन्हें मीठे आचार और नवरत्न की चटनी खिलाकर प्रसन्न रखते। थानेदार साहब उन्हें अपना दाहिना हाथ समझते थे। जहां ऐसे उनकी दाल न गलती, वहां पंडितजी की बदौलत पांचों उंगलियां घी में हो जातीं। भला, ऐसे पुरुष की गांव वाले क्यों न पूजा करते?

उमानाथ को अपनी बहन गंगाजली से प्रेम था, लेकिन गंगाजली को मैके जाने के थोड़े ही दिनों पीछे ज्ञात हुआ कि भाई का प्रेम भावज की अवज्ञा के सामने नहीं ठहर सकता। उमानाथ बहन को अपने घर लाने पर मन में बहुत पछताते। वे अपनी स्त्री को प्रसन्न रखने के लिए ऊपरी मन से उसकी हां-में-हां मिला दिया करते। गंगाजली को साफ कपड़े पहनने का क्या अधिकार है? शान्ता का पालन पहले चाहे कितने ही लाड़-प्यार से हुआ हो, अब उसे उमानाथ की लड़कियों से बराबरी करने का क्या अधिकार है? उमानाथ स्त्री की इन द्वेषपूर्ण बातों को सुनते और उनका अनुमोदन करते। गंगाजली को जब क्रोध आता, तो वह उसे अपने भाई ही पर उतारती। वह समझती थी कि वे अपनी स्त्री को बढ़ावा देकर मेरी दुर्गति करा रहे हैं। ये अगर उसे डांट देते तो मजाल थी कि वह यों मेरे पीछे पड़ जाती? उमानाथ को जब अवसर मिलता, तो वह गंगाजली को एकांत में समझा दिया करते। किंतु एक तो जाह्नवी उन्हें ऐसे अवसर मिलने ही न देती, दूसरे गंगाजली को भी सहानुभूति पर विश्वास न आता।

इस प्रकार एक वर्ष बीत गया ! गंगाजली चिंता, शोक और निराशा से बीमार पड़ गई। उसे बुखार आने लगा। उमानाथ ने पहले तो साधारण औषधियां सेवन कराईं, लेकिन जब कुछ न हुआ, तो उन्हें चिंता हुई। एक रोज उनकी स्त्री किसी पड़ोसी के घर गई हुई थी, उमानाथ बहन के कमरे में गए। वह बेसुध पड़ी हुई थी, बिछावन चिथड़ा हो रहा था, साड़ी फटकर तार-तार हो गई थी। शान्ता उसके पास बैठी हुई पंखा झल रही थी। यह करुणाजनक दृश्य देखकर उमानाथ रो पड़े। यही बहन है, जिसकी सेवा के लिए दो दासियां लगी हुई थीं, आज उसकी यह दशा हो रही है? उन्हें अपनी दुर्बलता पर अत्यंत ग्लानि उत्पन्न हुई। गंगाजली के सिरहाने बैठकर रोते हुए बोले—बहन, यहां लाकर मैंने तुम्हें बड़ा कष्ट दिया है। नहीं जानता था कि उसका यह परिणाम होगा। मैं आज किसी वैद्य को ले आता हूं। ईश्वर चाहेंगे तो तुम शीघ्र ही अच्छी हो जाओगी।

इतने में जाह्नवी भी आ गई, ये बातें उसके कान में पड़ीं। बोली—हां-हां, दौड़ो, वैद्य को बुलाओ, नहीं तो अनर्थ हो जायगा। अभी पिछले दिनों मुझे महीनों ज्वर आता रहा, तब वैद्य के पास न दौड़े। मैं भी ओढ़कर पड़ रहती, तो तुम्हें मालूम होता कि इसे कुछ हुआ है, लेकिन मैं कैसे पड़ रहती? घर की चक्की कौन पीसता? मेरे कर्म में क्या सुख भोगना बदा है?

उमानाथ का उत्साह शांत हो गया। वैद्य को बुलाने की हिम्मत न पड़ी। वे जानते थे कि वैद्य बुलाया, तो गंगाजली को जो दो-चार महीने जीने हैं, वह भी न जी सकेगी।

गंगाजली की अवस्था दिनों-दिन बिगड़ने लगी। यहां तक कि उसे ज्वरतिसार हो गया। जीने की आशा न रही। जिस उदर में सागू के पचाने की भी शक्ति न थी, वह जौ की रोटियां कैसे पचाता? निदान उसका जर्जर शरीर इन कष्टों को और अधिक न सह सका। छः मास बीमार रहकर वह दुखिया अकाल मृत्यु का ग्रास बन गई।

शान्ता का अब इस संसार में कोई न था। सुमन के पास उसने दो पत्र लिखे, लेकिन वहां से कोई जवाब न आया। शान्ता ने समझा, बहन ने भी नाता तोड़ दिया। विपत्ति में कौन साथी होता है? जब तक गंगाजली जीती थी, शान्ता उसके अंचल में मुंह छिपाकर रो लिया करती थी। अब यह अवलंब भी न रहा। अंधे के हाथ से लकड़ी जाती रही। शान्ता जब-तब अपनी कोठरी के कोने में मुंह छिपाकर रोती; लेकिन घर के कोने और माता के अंचल में बड़ा अंतर है। एक शीतल जल का सागर है, दूसरा मरुभूमि।

शान्ता को अब शांति नहीं मिलती। उसका हृदय अग्नि के सदृश दहकता रहता है, वह अपनी मामी और मामा को अपनी माता का घातक समझती है। जब गंगाजली जीती थी, तब शान्ता उसे कटु वाक्यों से बचाने के लिए यत्न करती रहती थी, वह अपनी मामी के इशारों पर दौड़ती थी, जिससे वह माता को कुछ कह न बैठे। एक बार गंगाजली के हाथ से घी की हांडी गिर पड़ी थी। शान्ता ने मामी से कहा था, यह मेरे हाथ से छूट पड़ी। इस पर उसने खूब गालियां खाईं। वह जानती थी कि माता का हृदय व्यंग्य की चोटें नहीं सह सकता।

लेकिन अब शान्ता को इसका भय नहीं है। वह निराधार होकर बलवती हो गई है। अब वह उतनी सहनशील नहीं है; उसे जल्द क्रोध आ जाता है। वह जली-कटी बातों का बहुधा उत्तर भी दे देती है। उसने अपने हृदय को कड़ी-से-कड़ी यंत्रणा के लिए तैयार कर लिया है। मामा से वह दबती है, लेकिन मामी से नहीं दबती और ममेरी बहनों को तो वह तुरकी-बतुरकी जवाब देती है। अब शान्ता वह गाय है जो हत्या-भय के बल पर दूसरे का खेत चरती है।

इस तरह एक वर्ष और बीत गया, उमानाथ ने बहुत दौड़-धूप की कि उसका विवाह कर दूं, लेकिन जैसा सस्ता सौदा वह करना चाहते थे, वह कहीं ठीक न हुआ। उन्होंने थाने-तहसील में जोड़-तोड़ लगाकर दो सौ रुपये का चंदा कर लिया था। मगर इतने सस्ते वर कहां? जाह्नवी का वश चलता, तो वह शान्ता को किसी भिखारी के यहां बांधकर अपना पिंड छुड़ा लेती, लेकिन उमानाथ ने अब की पहली बार उसका विरोध किया और सुयोग्य वर ढूंढ़ते रहे। गंगाजली के बलिदान ने उनकी आत्मा को बलवान बना दिया।

पच्चीस

सार्वजनिक संस्थाएं भी प्रतिभाशाली मनुष्य की मुहताज होती हैं। यद्यपि विट्ठलदास के अनुयायियों की कमी न थी, लेकिन उनमें प्रायः सामान्य अवस्था के लोग थे। ऊंची श्रेणी के लोग उनसे दूर भागते थे। पद्मसिंह के सम्मिलित होते ही इस संस्था में जान पड़ गई। नदी की

पतली धार उमड़ पड़ी। बड़े आदमियों में उनकी चर्चा होने लगी। लोग उन पर कुछ-कुछ विश्वास करने लगे।

पद्मसिंह अकेले न आए। बहुधा किसी काम को अच्छा समझकर भी हम उसमें हाथ लगाते हुए डरते हैं, नक्कू बन जाने का भय लगा रहता है, हम बड़े आदमियों के आ मिलने की राह देखा करते हैं। ज्योंही किसी ने रास्ता खोला, हमारी हिम्मत बंध जाती है, हमको हंसी का डर नहीं रहता। अकेले हम अपने घर में भी डरते हैं, दो होकर जंगलों में भी निर्भय रहते हैं। प्रोफेसर रमेशदत्त, लाला भगतराम और मिस्टर रुस्तम भाई गुप्त रूप से विट्ठलदास की सहायता करते रहते थे। अब वह खुल पड़े। सहायकों की संख्या दिनों-दिन बढ़ने लगी।

विट्ठलदास सुधार के विषय में मृदुभाषी बनना अनुचित समझते थे, इसलिए उनकी बातें रुचिकर न होती थीं। मीठी नींद सोने वालों को उनका कठोर नाद अप्रिय लगता था। विट्ठलदास को इसकी चिंता न थी।

पद्मसिंह धनी मनुष्य थे। उन्होंने बड़े उत्साह से वेश्याओं को शहर के मुख्य स्थानों से निकालने के लिए आंदोलन करना शुरू किया। म्युनिसिपैलिटी के अधिकारियों में दो-चार सज्जन विट्ठलदास के भक्त भी थे। किंतु वे इस प्रस्ताव को कार्यरूप में लाने के लिए यथेष्ट साहस न रखते थे। समस्या इतनी जटिल थी, उसकी कल्पना ही लोगों को भयभीत कर देती थी। वे सोचते थे कि इस प्रस्ताव को उठाने से न मालूम शहर में क्या हलचल मचे। शहर के कितने ही रईस, कितने ही राज्य-पदाधिकारी, कितने ही सौदागर इस प्रेम-मंडी से संबंध रखते थे। कोई ग्राहक था, कोई पारखी, उन सबसे बैर मोल लेने का कौन साहस करता? म्युनिसिपैलिटी के अधिकारी उनके हाथों में कठपुतली के समान थे।

पद्मसिंह ने मेंबरों से मिल-मिलाकर उनका ध्यान इस प्रस्ताव की ओर आकर्षित किया। प्रभाकर राव की तीव्र लेखनी ने उनकी बड़ी सहायता की। पैंफलेट निकाले गए और जनता को जागृत करने के लिए व्याख्यानों का क्रम बांधा गया। रमेशदत्त और पद्मसिंह इस विषय में निपुण थे। इसका भार उन्होंने अपने सिर ले लिया। अब आंदोलन ने एक नियमित रूप धारण किया।

पद्मसिंह ने यह प्रस्ताव उठा तो दिया, लेकिन वह इस पर जितना विचार करते थे, उतने ही अंधकार में पड़ जाते थे। उन्हें यह विश्वास न होता था कि वेश्याओं के निर्वासन से आशातीत उपकार हो सकेगा। संभव है, उपकार के बदले अपकार हो। बुराइयों का मुख्य उपचार मनुष्य का सद्ज्ञान है। इसके बिना कोई उपाय सफल नहीं हो सकता। कभी-कभी वह सोचते-सोचते हताश हो जाते। लेकिन इस पक्ष के एक समर्थक बनकर वे आप संदेह रखते हुए भी दूसरों पर इसे प्रकट न करते थे। जनता के सामने तो उन्हें सुधारक बनते हुए संकोच न होता था, लेकिन अपने मित्रों और सज्जनों के सामने वह दृढ़ न रह सकते थे। उनके सामने आना शर्माजी के लिए बड़ी कठिन परीक्षा थी। कोई कहता, किस फेर में पड़ गए हो, विट्ठलदास के चक्कर में तुम भी आ गए? चैन से जीवन व्यतीत करो। इन सब झमेलों में क्यों व्यर्थ पड़ते हो? कोई कहता, यार मालूम होता है, तुम्हें किसी औरत ने चरका दिया है, तभी तुम वेश्याओं के पीछे इस तरह से पड़े हो। ऐसे मित्रों के सामने आदर्श और उपकार की बातचीत करना अपने को बेवकूफ बनाना था।

व्याख्यान देते हुए भी जब शर्माजी कोई भावपूर्ण बात कहते, करुणात्मक दृश्य दिखाने

की चेष्टा करते, तो उन्हें शब्द नहीं मिलते थे और शब्द मिलते तो उन्हें निकालते हुए शर्माजी को बड़ी लज्जा आती थी। यथार्थ में वह इस रस में पगे नहीं थे। वह जब अपने भाव-शैथिल्य की विवेचना करते तो उन्हें ज्ञान होता था कि मेरा हृदय प्रेम और अनुराग से खाली है।

कोई व्याख्यान समाप्त कर चुकने पर शर्माजी को यह जानने की उतनी इच्छा नहीं होती थी कि श्रोताओं पर इसका क्या प्रभाव पड़ा; जितनी इसकी कि व्याख्यान सुंदर, सप्रमाण और ओजपूर्ण था या नहीं।

लेकिन इन समस्याओं के होते हुए भी यह आंदोलन दिनों-दिन बढ़ता जाता था। यह सफलता शर्माजी के अनुराग और विश्वास से कुछ कम उत्साहवर्धक न थी।

सदनसिंह के विवाह को अभी दो मास थे। घर की चिंताओं से मुक्त होकर शर्माजी अपनी पूरी शक्ति से इस आंदोलन में प्रवृत्त हो गए। कचहरी के काम में उनका जी न लगता। वहां भी वे प्रायः इन्हीं चिंताओं में पड़े रहते। एक ही विषय पर लगातार सोचते-विचारते रहने से उस विषय से प्रेम हो जाया करता है। धीरे-धीरे शर्माजी के हृदय में प्रेम का उदय होने लगा।

लेकिन जब यह विवाह निकट आ गया, तो शर्माजी का उत्साह कुछ क्षीण होने लगा। मन में यह समस्या उठी कि भैया यहां वेश्याओं के लिए अवश्य ही मुझे लिखेंगे, उस समय मैं क्या करूंगा? नाच के बिना सभा सूनी रहेगी, दूर-दूर के गांवों से लोग नाच देखने आएंगे, नाच न देखकर उन्हें निराशा होगी, भाई साहब बुरा मानेंगे, ऐसी अवस्था में मेरा क्या कर्त्तव्य है? भाई साहब को इस कुप्रथा से रोकना चाहिए ! लेकिन क्या मैं इस दुष्कर कार्य में सफल हो सकूंगा? बड़ों के सामने न्याय और सिद्धांत की बातचीत असंगत-सी जान पड़ती है। भाई साहब के मन में बड़े-बड़े हौसले हैं, इन हौसलों के पूरे होने में कुछ भी कसर रही तो उन्हें दुख होगा। लेकिन कुछ भी हो, मेरा कर्त्तव्य है कि अपने सिद्धांत का पालन करूं।

यद्यपि उनके इस सिद्धांत-पालन से प्रसन्न होने वालों की संख्या बहुत कम थी और अप्रसन्न होने वाले बहुत थे, तथापि शर्माजी ने इन्हीं गिने-गिनाए मनुष्यों को प्रसन्न रखना उत्तम समझा। उन्होंने निश्चय कर लिया कि नाच न ठीक करूंगा। अपने घर में ही सुधार न कर सका, तो दूसरों को सुधारने की चेष्टा करना बड़ी भारी धूर्तता है।

यह निश्चय करके शर्माजी बारात की सजावट के सामान जुटाने लगे। वह ऐसे आनंदोत्सवों में किफायत करना अनुचित समझते थे। इसके साथ ही वह अन्य सामग्रियों के बाहुल्य से नाच की कसर पूरी करना चाहते थे, जिससे उन पर किफायत का अपराध न लगे।

एक दिन विट्ठलदास ने कहा—इन तैयारियों में आपने कितना खर्च किया?

शर्माजी—इसका हिसाब लौटने पर होगा।

विट्ठलदास—तब भी दो हजार से कम तो न होगा।

शर्माजी—हां, शायद कुछ इससे अधिक ही हो।

विट्ठलदास—इतने रुपये आपने पानी में डाल दिए। किसी शुभ कार्य में लगा देते, तो कितना उपकार होता? अब आप सरीखे विचारशील पुरुष धन को यों नष्ट करते हैं, तो दूसरों से क्या आशा की जा सकती है?

शर्माजी—इस विषय में मैं आपसे सहमत नहीं हूं। जिसे ईश्वर ने दिया हो, उसे आनंदोत्सव में दिल खोलकर व्यय करना चाहिए। हां, ऋण लेकर नहीं, घर बेचकर नहीं, अपनी हैसियत

देखकर। हृदय की उमंग ऐसे ही अवसर पर निकलती है।

विट्ठलदास–आपकी समझ में डॉक्टर श्यामाचरण की हैसियत दस-पांच हजार रुपये खर्च करने की है या नहीं?

शर्माजी–इससे बहुत अधिक है।

विट्ठलदास–मगर अभी अपने लड़के के विवाह में उन्होंने बाजे-गाजे, नाच-तमाशे में बहुत कम खर्च किया।

शर्माजी–हां, नाच-तमाशे में अवश्य कम खर्च किया, लेकिन इसकी कसर डिनर पार्टी में निकल गई; बल्कि अधिक। उनकी किफायत का क्या फल हुआ? जो धन गरीब बाजे वाले, फुलवारी बनाने वाले, आतिशबाजी वाले पाते, वह 'मुरे-कंपनी' और 'ह्वाइट वे कंपनी' के हाथों में पहुंच गया। मैं इसे किफायत नहीं कहता, यह अन्याय है।

छब्बीस

रात के नौ बजे थे। पद्मसिंह भाई के साथ बैठे हुए विवाह के संबंध में बातचीत कर रहे थे। कल बारात जाएगी। दरवाजे पर शहनाई बज रही थी और भीतर गाना हो रहा था।

मदनसिंह–तुमने जो गाड़ियां भेजी हैं; वह कल शाम तक अमोला पहुंच जाएंगी?

पद्मसिंह–जी नहीं, दोपहरी तक पहुंच जानी चाहिए। अमोला विंध्याचल के निकट है। आज मैंने दोपहर से पहले ही उन्हें रवाना कर दिया।

मदनसिंह–तो यहां से क्या-क्या ले चलने की आवश्यकता होगी?

पद्मसिंह–थोड़ा-सा खाने-पीने का सामान ले चलिए और सब कुछ मैंने ठीक कर दिया है।

मदनसिंह–नाच कितने पर ठीक हुआ? दो ही गिरोह हैं न?

पद्मसिंह डर रहे थे कि अब नाच की बात आया ही चाहती है। यह प्रश्न सुनकर लज्जा से उनका सिर झुक गया। कुछ दबकर बोले–नाच तो मैंने नहीं ठीक किया।

मदनसिंह चौंक पड़े, जैसे किसी ने चुटकी काट ली हो, बोले–धन्य हो महाराज! तुमने तो डोंगा ही डुबा दिया। फिर तुमने जनवासे का क्या सामान किया है? क्यों, फुर्सत ही नहीं मिली या खर्च से हिचक गए? मैंने तो इसीलिए चार दिन पहले ही तुम्हें लिख दिया था। जो मनुष्य ब्राह्मण को नेवता देता है, वह उसे दक्षिणा देने की भी सामर्थ्य रखता है। अगर तुमको खर्च का डर था तो मुझे साफ-साफ लिखते, मैं यहां से भेज देता। अभी नारायण की दया से किसी का मोहताज नहीं हूं। अब भला बताओ तो क्या प्रबंध हो सकता है? मुंह में कालिख लगी कि नहीं? एक भलेमानस के दरवाजे पर जा रहे हो, वह अपने मन में क्या कहेगा? दूर-दूर से उसके संबंधी आए होंगे; दूर-दूर के गांवों के लोग बारात में आएंगे, वह अपने मन में क्या कहेंगे? राम-राम !

मुंशी बैजनाथ गांव के आठ आने के हिस्सेदार थे। मदनसिंह की ओर मार्मिक दृष्टि से देखकर बोले–मन में नहीं जनाब, खोल-खोलकर कहेंगे, गालियां देंगे। कहेंगे कि नाम बड़े

दर्शन थोड़े, और संसार में निंदा होने लगेगी। नाच के बिना जनवासा ही क्या? कम-से-कम मैंने तो कभी नहीं देखा। शायद भैया को ख्याल ही नहीं रहा, या मुमकिन है, लगन की तेजी से इंतजाम न हो सका हो?

पद्मसिंह ने डरते हुए कहा—यह बात नहीं है....

मदनसिंह—तो फिर क्या है? तुमने अपने मन में यही सोचा होगा कि सारा बोझ मेरे ही सिर पर पड़ेगा, पर मैं तुमसे सत्य कहता हूं, मैंने इस विचार से तुम्हें नहीं लिखा था। मैं दूसरों के माथे फुलौड़ियां खाने को नहीं दौड़ता।

पद्मसिंह अपने भाई की यह कर्ण कटु बातें न सह सके। आंखें भर आईं। बोले—भैया, ईश्वर के लिए आप मेरे संबंध में ऐसा विचार न करें। यदि मेरे प्राण भी आपके काम में आ सकें, तो मुझे आपत्ति न होगी। मुझे यह हार्दिक अभिलाषा रहती है कि आपकी कोई सेवा कर सकूं। यह अपराध मुझसे केवल इस कारण हुआ कि आजकल शहर में लोग नाच की प्रथा बुरी समझने लगे हैं। शिक्षित समाज में इस प्रथा का विरोध किया जा रहा है और मैं भी उसी में सम्मिलित हो गया हूं। अपने सिद्धांत को तोड़ने का मुझे साहस न हुआ।

मदनसिंह—अच्छा, यह बात है। भला किसी तरह लोगों की आंखें तो खुलीं। मैं भी इस प्रथा को निंद्य समझता हूं, लेकिन नक्कू नहीं बनना चाहता। जब सब लोग छोड़ देंगे तो मैं छोड़ दूंगा। मुझको ऐसी क्या पड़ी है कि सबके आगे-आगे चलूं। मेरे एक ही लड़का है, उसके विवाह में मन के सब हौसले पूरे करना चाहता हूं। विवाह के बाद मैं भी तुम्हारा मत स्वीकार कर लूंगा। इस समय मुझे अपने पुराने ढंग पर चलने दो और यदि बहुत कष्ट न हो, तो सबेरे गाड़ी पर चले जाओ और बीड़ा देकर उधर से ही अमोला चले जाना। तुमसे इसलिए कहता हूं कि तुम्हें वहां लोग जानते हैं। दूसरे जाएंगे तो लुट जाएंगे।

पद्मसिंह ने सिर झुका लिया और सोचने लगे। उन्हें चुप देखकर मदनसिंह ने तेवर बदलकर कहा—चुप क्यों हो, क्या जाना नहीं चाहते?

पद्मसिंह ने अत्यंत दीनभाव से कहा—भैया, आप यदि क्षमा करें तो....

मदनसिंह—नहीं-नहीं, मैं तुम्हें मजबूर नहीं करता, नहीं जाना चाहते, तो मत जाओ। मुंशी बैजनाथ, आपको कष्ट तो होगा, पर मेरी खातिर से आप ही जाइए।

बैजनाथ—मुझे कोई उज्र नहीं है।

मदनसिंह—उधर से ही अमोला चले जाइएगा। आपका अनुग्रह होगा।

बैजनाथ—आप इत्मीनान रखें, मैं चला जाऊंगा।

कुछ देर तीनों आदमी चुप बैठे रहे। मदनसिंह अपने भाई को कृतघ्न समझ रहे थे। बैजनाथ को चिंता हो रही थी कि मदनसिंह का पक्ष ग्रहण करने में पद्मसिंह बुरा तो न मान जाएंगे और पद्मसिंह अपने बड़े भाई की अप्रसन्नता के भय से दबे हुए थे। सिर उठाने का साहस नहीं होता था। एक ओर भाई की अप्रसन्नता थी, दूसरी ओर सिद्धांत और न्याय का बलिदान। एक ओर अंधेरी घाटी थी, दूसरी ओर सीधी चट्टान, निकलने का कोई मार्ग न था। अंत में उन्होंने डरते-डरते कहा—भाई साहब, आपने मेरी भूलें कितनी बार क्षमा की हैं। मेरी एक ढिठाई और क्षमा कीजिए। आप जब नाच के रिवाज को दूषित समझते हैं, तो उस पर इतना जोर क्यों देते हैं?

मदनसिंह झुंझलाकर बोले—तुम तो ऐसी बातें करते हो, मानो इस देश में पैदा ही नहीं

हुए, जैसे किसी अन्य देश से आए हो ! एक यही क्या, कितनी कुप्रथाएं हैं, जिन्हें दूषित समझते हुए भी उनका पालन करना पड़ता है। गाली गाना कौन-सी अच्छी बात है? दहेज लेना कौन-सी अच्छी बात है? पर लोक-नीति पर न चलें, तो लोग उंगलियां उठाते हैं। नाच न ले जाऊं तो लोग यही कहेंगे कि कंजूसी के मारे नहीं लाए। मर्यादा में बट्टा लगेगा। मेरे सिद्धांत को कौन देखता है?

पद्मसिंह बोले–अच्छा, अगर इसी रुपये को किसी दूसरी उचित रीति से खर्च कर दीजिए, तब तो किसी को कंजूसी की शिकायत न रहेगी? आप दो डेरे ले जाना चाहते हैं। आजकल लग्न तेज हैं; तीन सौ से कम खर्च न पड़ेगा। आप तीन सौ की जगह पांच सौ रुपये के कंबल लेकर अमोला के दीन-दरिद्रों में बांट दीजिए तो कैसा हो? कम-से-कम दो सौ मनुष्य आपको आशीर्वाद देंगे और जब तक कंबल का एक-एक धागा भी रहेगा, आपका यश गाते रहेंगे। यदि यह स्वीकार न हो तो अमोला में दो सौ रुपये की लागत से एक पक्का कुआं बनवा दीजिए। इसी से चिरकाल तक आपकी कीर्ति बनी रहेगी। रुपयों का प्रबंध मैं कर दूंगा।

मदनसिंह ने बदनामी का जो सहारा लिया था, वह इन प्रस्तावों के सामने न ठहर सका। वह कोई उत्तर सोच ही रहे थे कि इतने में बैजनाथ–यद्यपि उन्हें पद्मसिंह के बिगड़ जाने का भय था, तथापि इस बात में अपनी बुद्धि की प्रकांडता दिखाने की इच्छा उस भय से अधिक बलवती थी, इसलिए बोले–भैया, हर काम के लिए एक अवसर होता है। दान के अवसर पर दान देना चाहिए, नाच के अवसर पर नाच। बेजोड़ बात कभी भली नहीं लगती और फिर शहर के जानकार आदमी हों तो भी एक बात भी है। देहात के उजड्ड जमींदारों के सामने आप कंबल बांटने लगेंगे, तो वह आपका मुंह देखेंगे और हंसेंगे।

मदनसिंह निरुत्तर-से हो गए थे। मुंशी बैजनाथ के इस कथन से खिल उठे। उनकी ओर कृतज्ञता से देखकर बोले–हां, और क्या होगा? बसंत में मल्हार गाने वाले को कौन अच्छा कहेगा? कुसमय की कोई बात अच्छी नहीं होती। इसी से तो मैं कहता हूं कि आप सवेरे चले जाइए और दोनों डेरे ठीक कर आइए।

पद्मसिंह ने सोचा, यह लोग तो अपने मन की करेंगे ही, पर देखूं किन युक्तियों से अपना पक्ष सिद्ध करते हैं। भैया को मुंशी वैद्यनाथ पर अधिक विश्वास है, बात से भी उन्हें बहुत दुख हुआ। अतएव वह निःसंकोच होकर बोले–तो यह कैसे मान लिया जाय कि विवाह आनंदोत्सव ही का समय है? मैं तो समझता हूं, दान और उपकार के लिए इससे उत्तम और कोई अवसर न होगा। विवाह एक धार्मिक व्रत है, एक आत्मिक प्रतिज्ञा है। जब हम गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करते हैं, जब हमारे पैरों में धर्म की बेड़ी पड़ती है, जब हम सांसारिक कर्त्तव्य के सामने अपने सिर को झुका देते हैं, जब जीवन का भार और उसकी चिंताएं हमारे सिर पर पड़ती हैं, तो ऐसे पवित्र संस्कार पर हमको गांभीर्य से काम लेना चाहिए। यह कितनी निर्दयता है कि जिस समय हमारा आत्मीय युवक ऐसा कठिन व्रत धारण कर रहा हो, उस समय हम आनंदोत्सव मनाने बैठें। वह इस गुरुतर भार से दबा जाता हो और हम नाच-रंग में मस्त हों। अगर दुर्भाग्य से आजकल यही उल्टी प्रथा चल पड़ी है, तो क्या यह आवश्यक है कि हम भी उसी लकीर पर चलें? शिक्षा का कम-से-कम इतना प्रभाव तो होना चाहिए कि धार्मिक विषयों में हम मूर्खों की प्रसन्नता को प्रधान न समझें।

मदनसिंह फिर चिंता-सागर में डूबे। पद्मसिंह का कथन उन्हें सर्वथा सत्य प्रतीत होता

था; पर रिवाज के सामने न्याय, सत्य और सिद्धांत सभी को सिर झुकाना पड़ता है। उन्हें संशय था कि बैजनाथ अब कुछ उत्तर न दे सकेंगे। लेकिन मुंशीजी अभी हार नहीं मानना चाहते थे। वह बोले—भैया, तुम वकील हो, तुमसे बहस करने की लियाकत हममें कहां है? लेकिन जो बात सनातन से होती चली आई है, चाहे वह उचित हो या अनुचित, उसके मिटाने से बदनामी अवश्य होती है। आखिर हमारे पूर्वज निरे जाहिल-जपट तो थे नहीं, उन्होंने कुछ समझकर ही तो इस रस्म का प्रचार किया होगा।

मदनसिंह को यह युक्ति न सूझी थी। बहुत प्रसन्न हुए। बैजनाथ की ओर सम्मानपूर्ण भाव से देखकर बोले—अवश्य। जो प्रथाएं चलाईं हैं, उन सबमें कोई-न-कोई बात छिपी रहती है, चाहे वह आजकल हमारी समझ में न आए। आजकल के नए विचार वाले लोग प्रथाओं के मिटाने में ही अपना गौरव समझते हैं। अपने सामने उन्हें कुछ समझते ही नहीं। वह नहीं देखते कि हमारे पास तो विद्या, ज्ञान, विचार और आचरण है, वह सब उन्हीं पूर्वजों की कमाई है। कोई कहता है, यज्ञोपवीत से क्या लाभ? कोई शिक्षा की जड़ काटने पर तुला हुआ है, कोई इसी धुन में है कि शूद्र और चांडाल सब क्षत्रिय हो जायं, कोई विधवाओं के विवाह का राग अलापता फिरता है और तो और कुछ ऐसे महाशय भी हैं, जो जाति और वर्ण को भी मिटा देना चाहते हैं। तो भाई, यह सब बातें हमारे मान की नहीं हैं। जो उन्हें मानता हो माने, हमको तो अपनी वही पुरानी चाल पसंद है। अगर जिंदा रहा, तो देखूंगा कि यूरोप का पौधा यहां कैसे-कैसे फल लाता है। हमारे पूर्वजों ने खेती को सबसे उत्तम कहा है, लेकिन आजकल यूरोप की देखादेखी लोग मिल और मशीनों के पीछे पड़े हुए हैं। मगर देख लेना, ऐसा कोई समय आएगा कि यूरोप वाले स्वयं चेतेंगे और मिलों को खोद-खोदकर खेत बनाएंगे। स्वाधीन कृषक के सामने मिल के मजदूरों की क्या हस्ती? वह भी कोई देश है, जहां बाहर से खाने की वस्तु न आएं, तो लोग भूखों मरें। जिन देशों में जीवन ऐसे उल्टे नियमों पर चलाया जाता है, वह हमारे लिए आदर्श नहीं बन सकते। शिल्प और कला-कौशल का यह महल उसी समय तक है, जब तक संसार में निर्बल, असमर्थ जातियां वर्तमान हैं। उनके गले सस्ता माल मढ़कर यूरोप वाले चैन करते हैं। पर ज्योंही ये जातियां चौंकेंगी, यूरोप की प्रभुता नष्ट हो जाएगी। हम नहीं कहते कि यूरोप वालों से कुछ मत सीखो। नहीं, वह आज संसार के स्वामी हैं और उनमें बहुत से दिव्य गुण हैं। उनके गुणों को ले लो, दुर्गुणों को छोड़ दो। हमारे अपने रीति-रिवाज हमारी अवस्था के अनुकूल हैं। उनमें काट-छांट करने की जरूरत नहीं।

मदनसिंह ने ये बातें कुछ गर्व से कीं, मानो कोई विद्वान् पुरुष अपने निज के अनुभव प्रकट कर रहा है, पर यथार्थ में ये सुनी-सुनाई बातें थीं, जिनका मर्म वह खुद भी न समझते थे। पद्मसिंह ने इन बातों को बड़ी धीरता के साथ सुना, पर उनका कुछ उत्तर न दिया। उत्तर देने से बात बढ़ जाने का भय था। कोई वाद जब विवाद का रूप धारण कर लेता है, तो वह अपने लक्ष्य से दूर हो जाता है। बाद में नम्रता और विनय प्रबल युक्तियों से भी अधिक प्रभाव डालती है। अतएव वह बोले—तो मैं ही चला जाऊंगा, मुंशी बैजनाथ को क्यों कष्ट दीजिएगा। यह चले जाएंगे तो यहां बहुत-सा काम पड़ा रह जायगा। आइए मुंशीजी, हम दोनों आदमी बाहर चलें, मुझे आपसे अभी कुछ बातें करनी हैं।

मदनसिंह—तो यहीं क्यों नहीं करते? कहो तो मैं ही हट जाऊं?

पद्मसिंह—जी नहीं, कोई ऐसी बात नहीं है, पर ये बातें मैं मुंशीजी से अपनी शंका-समाधान करने के लिए कर रहा हूं। हां, भाई साहब, बतलाइए अमोला के दर्शकों की संख्या क्या होगी? कोई एक हजार। अच्छा, आपके विचार में कितने इनमें दरिद्र किसान होंगे, कितने जमींदार?

बैजनाथ—ज्यादा किसान ही होंगे, लेकिन जमींदार भी दो-तीन सौ से कम न होंगे।

पद्मसिंह—अच्छा, आप यह मानते हैं कि दीन किसान नाच देखकर उतने प्रसन्न न होंगे, जितने धोती या कंबल पाकर?

बैजनाथ भी सशस्त्र थे। बोले—नहीं, मैं यह नहीं मानता। अधिकतर ऐसे किसान होते हैं, जो दान लेना कभी स्वीकार नहीं करेंगे। वह जलसा देखने आएंगे और जलसा अच्छा न होगा, तो निराश होकर लौट जाएंगे।

पद्मसिंह चकराए। सुकराती प्रश्नों का जो क्रम उन्होंने मन में बांध रखा था, वह बिगड़ गया। समझ गए कि मुंशीजी सावधान हैं। अब कोई दूसरा दांव निकालना चाहिए। बोले—आप यह मानते हैं कि बाजार में वही वस्तु दिखाई देती है जिसके कि ग्राहक होते हैं और ग्राहकों के न्यूनाधिक होने पर वस्तु का न्यूनाधिक होना निर्भर है।

बैजनाथ—जी हां, इसमें कोई संदेह नहीं।

पद्मसिंह—इस विचार से किसी वस्तु के ग्राहक ही मानो उसके बाजार में आने के कारण होते हैं। यदि कोई मांस न खाय, तो बकरे की गर्दन पर छुरी क्यों चले?

बैजनाथ समझ रहे थे कि यह मुझे किसी दूसरे पेंच में ला रहे हैं, लेकिन उन्होंने अभी तक उसका मर्म न समझा था। डरते हुए बोले—हां, बात तो यही है।

पद्मसिंह—जब आप यह मानते हैं तो आपको यह भी मानना पड़ेगा कि जो लोग वेश्याओं को बुलाते हैं, उन्हें धन देकर उनके लिए सुख-विलास की सामग्री जुटाने और उन्हें ठाट-बाट से जीवन व्यतीत करने के योग्य बनाते हैं, वे उस कसाई से कम पाप के भागी नहीं हैं, जो बकरे की गर्दन पर छुरी चलाता है। यदि मैं वकीलों को ठाट के साथ टमटम दौड़ाते हुए न देखता, तो क्या आज मैं वकील होता?

बैजनाथ ने हंसकर कहा—भैया, तुम घुमा-फिराकर अपनी बात मनवा लेते हो? लेकिन बात जो कहते हो, वह सच्ची है।

पद्मसिंह—ऐसी अवस्था में क्या समझना कठिन है कि सैकड़ों स्त्रियां, जो हर रोज बाजार में झरोखों में बैठी दिखाई देती हैं, जिन्होंने अपनी लज्जा और सतीत्व को भ्रष्ट कर दिया है, उनके जीवन का सर्वनाश करने वाले हमीं लोग हैं। वह हजारों परिवार जो आए दिन इस कुवासना की भंवर में पड़कर लुप्त हो जाते हैं, ईश्वर के दरबार में हमारा ही दामन पकड़ेंगे। जिस प्रथा से इतनी बुराइयां उत्पन्न हों, उसका त्याग करना क्या अनुचित है?

मदनसिंह बहुत ध्यान से ये बातें सुन रहे थे। उन्होंने इतनी उच्च शिक्षा नहीं पाई थी, जिससे मनुष्य विचार-स्वातंत्र्य की धुन में सामाजिक बंधनों और नैतिक सिद्धांतों का शत्रु हो जाता है। नहीं, वह साधारण बुद्धि के मनुष्य थे। कायल होकर बतबढ़ाव करते रहना उनकी सामर्थ्य से बाहर था। मुस्कराकर मुंशी बैजनाथ से बोले—कहिए मुंशीजी, अब क्या कहते हो? है कोई निकलने का उपाय?

बैजनाथ ने हंसकर कहा—मुझे तो कोई रास्ता नहीं सूझता।

मदनसिंह—अभी कुछ कठहुज्जती ही करो।

बैजनाथ—कुछ दिनों वकालत पढ़ ली होती तो यह भी करता। यहां अब कोई जवाब ही नहीं सूझता। क्यों भैया पद्मसिंह, मान लो तुम मेरी जगह होते, तो इस समय क्या जवाब देते?

पद्मसिंह—(हंसकर) जवाब तो कुछ-न-कुछ जरूर ही देता, चाहे तुक मिलती या न मिलती।

मदनसिंह—इतना तो मैं भी कहूंगा कि ऐसे जलसों से मन अवश्य चंचल हो जाता है। जवानी में जब मैं किसी जलसे से लौटता तो महीनों तक उसी वेश्या के रंग-रूप, हाव-भाव की चर्चा किया करता।

बैजनाथ—भैया, पद्मसिंह के ही मन की होने दीजिए; लेकिन कंबल अवश्य बंटवाइए।

मदनसिंह—एक कुआं बनवा दिया जाय, तो सदा के लिए नाम हो जायगा। इधर भांवर पड़ी, उधर मैंने कुएं की नींव डाली।

सत्ताईस

बरसात के दिन थे, घटा छाई हुई थी। पंडित उमानाथ चुनारगढ़ के निकट गंगा के तट पर खड़े नाव की बाट जोह रहे थे। वह कई गांवों का चक्कर लगाते हुए आ रहे थे और संध्या होने से पहले चुनार के पास एक गांव में जाना चाहते थे। उन्हें पता मिला था कि उस गांव में एक सुयोग्य वर है। उमानाथ आज ही अमोला लौट जाना चाहते थे, क्योंकि उनके गांव में एक छोटी-सी फौजदारी हो गई थी और थानेदार साहब कल तहकीकात करने वाले थे। मगर अभी तक नाव उसी पार खड़ी थी। उमानाथ को मल्लाहों पर क्रोध आ रहा था। इससे अधिक क्रोध उन मुसाफिरों पर आ रहा था, जो उस पार धीरे-धीरे नाव में बैठने आ रहे थे। उन्हें दौड़ते हुए आना चाहिए था, जिससे उमानाथ को जल्द नाव मिल जाय। जब खड़े-खड़े बहुत देर हो गई तो उमानाथ ने जोर से चिल्लाकर मल्लाहों को पुकारा। लेकिन उनकी कंठध्वनि को मल्लाहों के कान में पहुंचने की प्रबल आकांक्षा न थी। वह लहरों से खेलती हुई उन्हीं में समा गई।

इतने में उमानाथ ने एक साधु को अपनी ओर आते देखा। सिर पर जटा, गले में रुद्राक्ष की माला, एक हाथ में सुलफे की लंबी चिलम, दूसरे हाथ में लोहे की छड़ी, पीठ पर मृगछाला लपेटे हुए आकर नदी के तट पर खड़ा हो गया। वह भी उस पार जाना चाहता था।

उमानाथ को ऐसी भावना हुई कि मैंने इस साधु को कहीं देखा है, पर याद नहीं पड़ता कि कहां? स्मृति पर परदा-सा पड़ा हुआ था।

अकस्मात् साधु ने उमानाथ की ओर ताका और तुरंत उन्हें प्रणाम करके बोला—महाराज ! घर पर कुशल है, यहां कैसे आना हुआ?

उमानाथ के नेत्र पर से परदा हट गया। स्मृति जागृत हो गई। हम रूप बदल सकते हैं, शब्द को नहीं बदल सकते। यह गजाधर पांडे थे।

जब से सुमन का विवाह हुआ था, उमानाथ कभी उसके पास नहीं गए थे। उसे मुंह दिखाने का साहस नहीं होता था। इस समय गजाधर को इस भेष में देखकर उमानाथ को आश्चर्य हुआ।

उन्होंने समझा, कहीं मुझे फिर न धोखा हुआ हो। डरते हुए पूछा–शुभ नाम?

साधु–पहले तो गजाधर पांडे था, अब गजानन्द हूं।

उमानाथ–ओहो ! तभी तो मैं पहचान न पाता था। मुझे स्मरण होता था कि मैंने कहीं आपको देखा है, पर आपको इस भेष में देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। बाल-बच्चे कहां हैं?

गजानन्द–अब उस मायाजाल से मुक्त हो गया।

उमानाथ–सुमन कहां है?

गजानन्द–दालमंडी के एक कोठे पर।

उमानाथ ने विस्मित होकर गजानन्द की ओर देखा और तब लज्जा से उसका सिर झुक गया। एक क्षण के बाद उन्होंने पूछा–यह कैसे हुआ, कुछ बात समझ में नहीं आती?

गजानन्द–उसी प्रकार जैसे संसार में प्राय: हुआ करता है। मेरी असज्जनता और निर्दयता, सुमन की चंचलता और विलास-लालसा दोनों ने मिलकर हम दोनों का सर्वनाश कर दिया। मैं अब उस समय की बातों को सोचता हूं, तो ऐसा मालूम होता है कि एक बड़े घर की बेटी से ब्याह करने में मैंने बड़ी भूल की और इससे बड़ी भूल यह थी कि ब्याह हो जाने पर उसका उचित आदर-सम्मान नहीं किया। निर्धन था, इसलिए आवश्यक था कि मैं धन के अभाव को अपने प्रेम और भक्ति से पूरा करता। मैंने इसके विपरीत उससे निर्दयता का व्यवहार किया। उसे वस्त्र और भोजन का कष्ट दिया। वह चौका-बर्तन, चक्की में निपुण नहीं थी और न हो सकती थी, पर उससे यह सब काम लेता था और जरा भी देर हो जाती तो बिगड़ता था। अब मुझे मालूम होता है कि मैं ही उसके घर से निकलने का कारण हुआ, मैं उसकी सुंदरता का मान न कर सका, इसलिए सुमन का भी मुझसे प्रेम नहीं हो सका। लेकिन वह मुझ पर भक्ति अवश्य करती थी। पर उस समय मैं अंधा हो रहा था। कंगाल मनुष्य धन पाकर जिस प्रकार फूल उठता है, उसी तरह सुंदर स्त्री पाकर वह संशय और भ्रम में आसक्त हो जाता है। मेरा भी यही हाल था। मुझे सुमन पर अविश्वास रहा करता था और प्रत्यक्ष इस बात को न कहकर मैं अपने कठोर व्यवहार से उसके चित्त को दुखी किया करता था। महाशय, मैंने उसके साथ जो-जो अत्याचार किए, उन्हें स्मरण करके आज मुझे अपनी क्रूरता पर इतना दुख होता है कि जी चाहता है कि विष खा लूं। उसी अत्याचार का अब प्रायश्चित कर रहा हूं। उसके चले जाने के बाद दो-चार दिन तक तो मुझ पर नशा रहा, पर जब नशा ठंडा हुआ, तो मुझे वह घर काटने लगा। मैं फिर उस घर में न गया। एक मंदिर में पुजारी बन गया। अपने हाथ से भोजन बनाने के कष्ट से बचा। मंदिर में दो-चार सज्जन नित्य ही आ जाते थे। उनके साथ रामायण आदि कथाएं पढ़ा करता था। कभी-कभी साधु-महात्मा भी आ जाते थे। उनके पास सत्संग का सुअवसर मिल जाता। उनकी ज्ञान-मर्म की बातें सुनकर मेरा अज्ञान कुछ-कुछ मिटने लगा। मैं आपसे सत्य ही कहता हूं, पुजारी बनते समय मेरे मन में भक्ति का भाव नाम-मात्र को भी न था। मैंने केवल निरुद्यमता का सुख और उत्तम भोजन का स्वाद लूटने के लिए पूजा-वृत्ति ग्रहण की थी, पर धर्म-कथाओं के पढ़ने और सुनने से मन में भक्ति और प्रेम का उदय हुआ और ज्ञानियों के सत्संग से भक्ति ने वैराग्य का रूप धारण कर लिया। अब गांव-गांव घूमता हूं और अपने से जहां तक हो सकता है, दूसरों का कल्याण करता हूं। आप क्या काशी से आ रहे हैं?

उमानाथ–नहीं, मैं भी एक गांव से आ रहा हूं, सुमन की एक छोटी बहन है, उसी के लिए वर खोज रहा हूं।

गजानन्द–लेकिन अब की सुयोग्य वर खोजिएगा।

उमानाथ–सुयोग्य वरों की तो कमी नहीं है, पर उसके लिए मुझमें सामर्थ्य भी तो हो? सुमन के लिए क्या मैंने कुछ कम दौड़-धूप की थी?

गजानन्द–सुयोग्य वर मिलने के लिए आपको कितने रुपयों की आवश्यकता है?

उमानाथ–एक हजार तो दहेज ही मांगते हैं और सब खर्च अलग रहा।

गजानन्द–आप विवाह तय कर लीजिए। एक हजार रुपये का प्रबंध ईश्वर चाहेंगे, तो मैं कर दूंगा। यह भेष धारण करके अब लोगों को आसानी से ठग सकता हूं। मुझे ज्ञान हो रहा है कि मैं प्राणियों का बहुत उपकार कर सकता हूं। दो-चार दिन में आपके ही घर पर आपसे मिलूंगा।

नाव आ गई। दोनों नाव पर बैठे। गजानन्द तो मल्लाहों से बातें करने लगे, लेकिन उमानाथ चिंतासागर में डूबे हुए थे। उनका मन कह रहा था कि सुमन का सर्वनाश मेरे ही कारण हुआ।

अट्ठाईस

पंडित उमानाथ सदनसिंह का फलदान चढ़ा आए हैं। उन्होंने जाह्नवी से गजानन्द की सहायता की चर्चा नहीं की थी। डरते थे कि कहीं यह इन रुपयों को अपनी लड़कियों के विवाह के लिए रख छोड़ने पर जिद्द न करने लगे। जाह्नवी पर उनके उपदेश का कुछ असर न होता था, उसके सामने वह उसकी हां-में-हां मिलाने पर मजबूर हो जाते थे।

उन्होंने एक हजार रुपये के दहेज पर विवाह ठीक किया था। पर अब इस चिंता में पड़े हुए थे कि बारात के लिए खर्च का क्या प्रबंध होगा। कम-से-कम एक हजार रुपये की और जरूरत थी। इसके मिलने का उन्हें कोई उपाय न सूझता था। हां, उन्हें इस विचार से हर्ष होता था कि शान्ता का विवाह अच्छे घर में होगा, वह सुख से रहेगी और गंगाजली की आत्मा मेरे इस काम से प्रसन्न होगी।

अंत में उन्होंने सोचा, अभी विवाह को तीन महीने हैं। मगर उस समय तक रुपयों का प्रबंध हो गया तो भला ही है। नहीं तो बारात का झगड़ा ही तोड़ दूंगा। किसी-न-किसी बात पर बिगड़ जाऊंगा, बारात वाले आप ही नाराज होकर लौट जायंगे। यही न होगा कि मेरी थोड़ी-सी बदनामी होगी, पर विवाह तो हो ही जायगा। लड़की तो आराम से रहेगी। मैं यह झगड़ा ऐसी कुशलता से करूंगा कि सारा दोष बारातियों पर ही आए।

पंडित कृष्णचन्द्र को जेलखाने से छूटकर आए हुए एक सप्ताह बीत गया था, लेकिन अभी तक विवाह के संबंध में उमानाथ को बातचीत का अवसर ही न मिला था। वह कृष्णचन्द्र के सम्मुख जाते हुए लजाते थे। कृष्णचन्द्र के स्वभाव में अब एक बड़ा अंतर दिखाई देता था। उनमें गंभीरता की जगह एक उद्दंडता आ गई थी और संकोच नाम को भी न रहा था। उनका शरीर क्षीण हो गया था, पर उनमें एक अद्भुत शक्ति भरी हुई मालूम होती थी। वे रात को बार-बार दीर्घ निःश्वास लेकर 'हाय ! हाय !' कहते सुनाई देते थे। आधी रात को चारों ओर जब

नीरवता छाई हुई रहती थी, वे अपनी चारपाई पर करवटें बदल-बदलकर यह गीत गाया करते-

अगिया लागी सुन्दर बन जरि गयो।

कभी-कभी यह गीत गाते-

लकड़ी जल कोयला भई और कोयला जल भई राख।
मैं पापिन ऐसी जली कि कोयला भई न राख!

उनके नेत्रों में एक प्रकार की चंचलता दीख पड़ती थी। जाह्नवी उनके सामने खड़ी न हो सकती, उसे उनसे भय लगता था।

जाड़े के दिन में कृषकों की स्त्रियां हार में काम करने जाया करती थीं। कृष्णचन्द्र भी हार की ओर निकल जाते और वहां स्त्रियों से दिल्लगी किया करते। ससुराल के नाते उन्हें स्त्रियों से हंसने-बोलने का पद था, पर कृष्णचन्द्र की बातें ऐसी हास्यपूर्ण और उनकी चितवनें ऐसी कुचेष्टापूर्ण होती थीं कि स्त्रियां लज्जा से मुंह छिपा लेतीं और आकर जाह्नवी को उलाहना देतीं। वास्तव में कृष्णचन्द्र काम-संताप से जले जाते थे।

अमोला में कितने ही सुशिक्षित सज्जन थे। कृष्णचन्द्र उनके समाज में न बैठते। वे नित्य संध्या समय नीच जाति के आदमियों के साथ चरस की दम लगाते दिखाई देते थे। उस समय मंडली में बैठे हुए वह अपने जेल के अनुभव वर्णन किया करते। वहां उनके कंठ से अश्लील बातों की धारा बहने लगती थी।

उमानाथ अपने गांव में सर्वमान्य थे। वे बहनोई के इन दुष्कृत्यों को देख-देखकर कट जाते और ईश्वर से मनाते कि किसी प्रकार यहां से चले जायं।

और तो और; शान्ता को भी अब अपने पिता के सामने आते हुए भय और संकोच होता था। गांव की स्त्रियां जब जाह्नवी से कृष्णचन्द्र की करतूतों की निंदा करने लगतीं, तो शान्ता को अत्यंत दु:ख होता था। उसकी समझ में न आता था कि पिताजी को क्या हो गया है। वह कैसे गंभीर, कैसे विचारशील, कैसे दयाशील, कैसे सच्चरित्र मनुष्य थे। यह कायापलट कैसे हो गई? शरीर तो वही है, पर आत्मा कहां गई?

इस तरह एक मास बीत गया। उमानाथ मन में झुंझलाते कि इन्हीं की लड़की का विवाह होने वाला है और ये ऐसे निश्चिंत बैठे हैं, तो मुझी को क्या पड़ी है कि व्यर्थ हैरानी में पड़ूं। यह तो नहीं होता कि जाकर कहीं चार पैसे कमाने का उपाय करें, उल्टे अपने साथ-साथ मुझे भी खराब कर रहे हैं।

उनतीस

एक रोज उमानाथ ने कृष्णचन्द्र के सहचरों को धमकाकर कहा—अब तुम लोगों को उनके साथ बैठकर चरस पीते देखा तो तुम्हारी कुशल नहीं। एक-एक की बुरी तरह खबर लूंगा। उमानाथ का रोब सारे गांव पर छाया हुआ था। वे सब-के-सब डर गए। दूसरे दिन जब कृष्णचन्द्र उनके पास गए तो उन्होंने कहा—महाराज, आप यहां न आया कीजिए। हमें पंडित उमानाथ के कोप में न डालिए। कहीं कोई मामला खड़ा कर दें, तो हम बिना मारे ही मर जायं।

कृष्णचन्द्र क्रोध में भरे हुए उमानाथ के पास आए और बोले—मालूम होता है, तुम्हें मेरा यहां रहना अखरने लगा।

उमानाथ—आपका घर है, आप जब तक चाहें रहें, पर मैं यह चाहता हूं कि नीच आदमियों के साथ बैठकर आप मेरी और अपनी मर्यादा को भंग न करें।

कृष्णचन्द्र—तो किसके साथ बैठूं? यहां जितने भले आदमी हैं, उनमें कौन मेरे साथ बैठना चाहता है? सब-के-सब मुझे तुच्छ दृष्टि से देखते हैं। यह मेरे लिए असह्य है। तुम इनमें से किसी को बता सकते हो, जो पूर्ण धर्म का अवतार हो? सब-के-सब दगाबाज, दीन किसानों का रक्त चूसने वाले व्यभिचारी हैं। मैं अपने को उनसे नीच नहीं समझता। मैं अपने किए का फल भोग आया हूं, वे अभी तक बचे हुए हैं, मुझमें और उनमें केवल इतना ही फर्क है। वह एक पाप को छिपाने के लिए और भी कितने पाप किया करते हैं। इस विचार से वह मुझसे बड़े पातकी हैं। बगुलाभक्तों के सामने मैं दीन बनकर नहीं जा सकता। मैं उनके साथ बैठता हूं, जो इस अवस्था में भी मेरा आदर करते हैं, जो अपने को मुझसे श्रेष्ठ नहीं समझते, जो कौए होकर हंस बनने की चेष्टा नहीं करते। अगर मेरे इस व्यवहार से तुम्हारी इज्जत को बट्टा लगता है, तो मैं जबर्दस्ती तुम्हारे घर में नहीं रहना चाहता।

उमानाथ—मेरा ईश्वर साक्षी है, मैंने इस नीयत से उन आदमियों को आपके साथ बैठने से नहीं मना किया था। आप जानते हैं कि मेरा सरकारी अधिकारियों से प्राय: संसर्ग रहता है। आपके इस व्यवहार से मुझे उनके सामने आंखें नीची करनी पड़ती हैं।

कृष्णचन्द्र—तो तुम उन अधिकारियों से कह दो कि कृष्णचन्द्र कितना ही गया-गुजरा है, तो भी उनसे अच्छा है। मैं भी कभी अधिकारी रहा हूं और अधिकारियों के आचार-व्यवहार का कुछ ज्ञान रखता हूं। वे सब चोर हैं। कमीने, चोर, पापी और अधर्मियों का उपदेश कृष्णचन्द्र नहीं लेना चाहता।

उमानाथ—आपको अधिकारियों की कोई परवाह न हो, लेकिन मेरी तो जीविका उन्हीं की कृपा-दृष्टि पर निर्भर है। मैं उनकी कैसे उपेक्षा कर सकता हूं? आपने तो थानेदारी की है। क्या आप नहीं जानते कि यहां का थानेदार आपकी निगरानी करता है? वह आपको दुर्जनों के संग देखेगा, तो अवश्य आपकी रिपोर्ट करेगा और आपके साथ मेरा भी सर्वनाश हो जायगा। ये लोग किसके मित्र होते हैं?

कृष्णचन्द्र—यहां का थानेदार कौन है?

उमानाथ—सैयद मसऊद आलम।

कृष्णचन्द्र—अच्छा, वही धूर्त सारे जमाने का बेईमान, छटा हुआ बदमाश ! वह मेरे सामने हेड कांस्टेबिल रह चुका है और एक बार मैंने ही उसे जेल से बचाया था। अब की उसे यहां आने दो, ऐसी खबर लूं कि वह भी याद करे।

उमानाथ—अगर आपको यह उपद्रव करना है, तो कृपा करके मुझे अपने साथ न समेटिए। आपका तो कुछ न बिगड़ेगा, मैं पिस जाऊंगा।

कृष्णचन्द्र—इसीलिए कि तुम इज्जत वाले हो और मेरा कोई ठिकाना नहीं। मित्र, क्यों मुंह खुलवाते हो? धर्म का स्वांग भरकर क्यों डींग मारते हो? थानेदारों की दलाली करके भी तुम्हें इज्जत का घमंड है?

उमानाथ—मैं अधम पापी सही, पर आपके साथ मैंने जो सलूक किए, उन्हें देखते हुए

आपके मुंह से ये बातें न निकलनी चाहिए।

कृष्णचन्द्र–तुमने मेरे साथ वह सलूक किया। मेरा घर चौपट कर दिया। सलूक का नाम लेते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती? तुम्हारे सलूक का बखान यहां अच्छी तरह सुन चुका। तुमने मेरी स्त्री को मारा, मेरी एक लड़की को न जाने किस लंपट के गले बांध दिया और दूसरी लड़की से मजदूरिन की तरह काम ले रहे हो। मूर्ख स्त्री को झांसा देकर मुकदमा लड़ने के बहाने से सब रुपये उड़ा दिए और तब अपने घर लाकर उसकी दुर्गति की। आज अपने सलूक की शेखी बघारते हो।

अभिमानी मनुष्य को कृतघ्नता से जितना दुख होता है, उतना और किसी बात से नहीं होता। वह चाहे अपने उपकारों के लिए कृतज्ञता का भूखा न हो, चाहे उसने नेकी करके दरिया में ही डाल दी हो, पर उपकार का विचार करके उसको अत्यंत गौरव का आनंद प्राप्त होता है। उमानाथ ने सोचा, संसार कितना कुटिल है। मैं इनके लिए महीनों कचहरी, दरबार के चक्कर लगाता रहा, वकीलों की कैसी-कैसी खुशामदें कीं, कर्मचारियों के कैसे-कैसे नखरे सहे, निज का सैकड़ों रुपया फूंक दिया, उसका यह यश मिल रहा है। तीन-तीन प्राणियों का बरसों पालन-पोषण किया, सुमन के विवाह के लिए महीनों खाक छानी और शान्ता के विवाह के लिए महीनों से घर-घाट एक किए हूं, दौड़ते-दौड़ते पैरों में छाले पड़ गए, रुपये-पैसे की चिंता में शरीर घुल गया और उसका यह फल ! हा ! कुटिल संसार ! यहां भलाई करने में भी धब्बा लग जाता है। यह सोचकर उनकी आंखें डबडबा आईं। बोले–भाई साहब, मैंने जो कुछ किया, वह भला ही समझकर किया, पर मेरे हाथों में यश नहीं है। ईश्वर की यही इच्छा है कि मेरा किया-कराया सारा मिट्टी में मिल जाय, तो यही सही। मैंने आपका सर्वस्व लूट लिया, खा-पी डाला, अब जो सजा चाहे दीजिए, और क्या कहूं?

उमानाथ यह कहना चाहते थे कि अब तो जो कुछ हो गया, वह हो गया; अब मेरा पिंड छोड़ो। शान्ता के विवाह का प्रबंध करो, पर डरे कि इस समय क्रोध में कहीं वह सचमुच शान्ता को लेकर चले न जायं। इसलिए गम खा जाना ही उचित समझा। निर्बल क्रोध उदार हृदय में करुणा के भाव उत्पन्न कर देता है। किसी भिक्षुक के मुंह से गाली खाकर सज्जन मनुष्य चुप रहने के सिवा और क्या कर सकता है?

उमानाथ की सहिष्णुता ने कृष्णचन्द्र को भी शांत किया, पर दोनों में बातचीत न हो सकी। दोनों अपनी-अपनी जगह पर विचार में डूबे बैठे थे, जैसे दो कुत्ते लड़ने के बाद आमने-सामने बैठे रहते हैं। उमानाथ सोचते थे कि बहुत अच्छा हुआ; जो मैं चुप साध गया, नहीं तो संसार मुझी को बदनाम करता। कृष्णचन्द्र सोचते थे कि मैंने बुरा किया, जो ये गड़े मुर्दे उखाड़े। अनुचित क्रोध में सोई हुई आत्मा को जगाने का विशेष अनुराग होता है। कृष्णचन्द्र को अपना कर्त्तव्य दिखाई देने लगा। अनुचित क्रोध ने अकर्मण्यता की निद्रा भंग कर दी, संध्या समय कृष्णचन्द्र ने उमानाथ से पूछा–शान्ता का विवाह तो तुमने ठीक किया है न?

उमानाथ–हां, चुनार में पंडित मदनसिंह के लड़के से।

कृष्णचन्द्र–यह तो कोई बड़े आदमी मालूम होते हैं। कितना दहेज ठहरा है?

उमानाथ–एक हजार।

कृष्णचन्द्र –इतना ही और ऊपर से लगेगा?

उमानाथ–हां, और क्या।

कृष्णचन्द्र स्तब्ध हो गए। पूछा—रुपयों का प्रबंध कैसे होगा?

उमानाथ—ईश्वर किसी तरह पार लगाएंगे ही। एक हजार मेरे पास हैं, केवल एक हजार की और चिंता है।

कृष्णचन्द्र ने अत्यंत ग्लानिपूर्वक कहा—मेरी दशा तो तुम देख ही रहे हो। इतना कहते-कहते उनकी आंखों से आंसू टपक पड़े।

उमानाथ—आप निश्चिंत रहिए, मैं सब कुछ कर लूंगा।

कृष्णचन्द्र—परमात्मा तुम्हें इसका शुभ फल देंगे। भैया, मुझसे जो अविनय हुई है, उसका तुम बुरा न मानना। अभी मैं आपे में नहीं हूं, इस कठिन यंत्रणा ने मुझे पागल कर दिया है। उसने मेरी आत्मा को पीस डाला है। मैं आत्माहीन मनुष्य हूं। उस नरक में पड़कर यदि देवता भी राक्षस हो जायं, तो आश्चर्य नहीं। मुझमें इतनी सामर्थ्य कहां थी कि मैं इतने भारी बोझ को संभालता। तुमने मुझे उबार दिया, मेरी नाव पार लगा दी। यह शोभा नहीं देता कि तुम्हारे ऊपर इतने बड़े कार्य का भार रखकर मैं आलसी बना बैठा रहूं। मुझे भी आज्ञा दो कि कहीं चलकर चार पैसे कमाने का उपाय करूं। मैं कल बनारस जाऊंगा। यों मेरे पहले के जान-पहचान के तो कई आदमी हैं, पर उनके यहां नहीं ठहरना चाहता। सुमन का घर किस मुहल्ले में हैं?

उमानाथ का मुख पीला पड़ गया। बोले—विवाह तक तो आप यहीं रहिए। फिर जहां इच्छा हो जाइएगा।

कृष्णचन्द्र—नहीं, कल मुझे जाने दो, विवाह से एक सप्ताह पहले आ जाऊंगा। दो-चार दिन सुमन के यहां ठहरकर कोई नौकरी ढूंढ लूंगा। किस मुहल्ले में रहती है?

उमानाथ—मुझे ठीक से याद नहीं है, इधर बहुत दिनों से मैं उधर नहीं गया। शहर वालों का क्या ठिकाना? रोज घर बदला करते हैं? मालूम नहीं अब किस मुहल्ले में हों।

रात को भोजन के साथ कृष्णचन्द्र ने शान्ता से सुमन का पता पूछा। शान्ता उमानाथ के संकेतों को न देख सकी, उसने पूरा पता बता दिया।

तीस

शहर की म्युनिसिपैलिटी में कुल अठारह सभासद थे। उनमें आठ मुसलमान थे और दस हिन्दू। सुशिक्षित मेंबरों की संख्या अधिक थी, इसलिए शर्माजी को विश्वास था कि म्युनिसिपैलिटी में वेश्याओं को नगर से बाहर निकाल देने का प्रस्ताव स्वीकृत हो जायगा। वे सब सभासदों से मिल चुके थे और इस विषय में उनकी शंकाओं का समाधान कर चुके थे, लेकिन मेंबरों में कुछ ऐसे सज्जन भी थे, जिनकी ओर से घोर विरोध होने का भय था। ये लोग बड़े व्यापारी, धनवान् और प्रभावशाली मनुष्य थे। इसलिए शर्माजी को यह भय भी था कि कहीं शेष मेंबर उनके दबाव में न आ जाएं। हिन्दुओं में विरोधी दल के नेता सेठ बलभद्रदास थे और मुसलमानों में हाजी हाशिम। जब तक विट्ठलदास इस आंदोलन के कर्त्ता-धर्त्ता थे, तब तक इन लोगों ने उसकी ओर कुछ ध्यान न दिया था, लेकिन जब से पद्मसिंह और म्युनिसिपैलिटी के अन्य कई मेंबर इस आंदोलन में सम्मिलित हो गए थे, तब से सेठजी और हाजी साहब के पेट में चूहे दौड़

रहे थे। उन्हें मालूम हो गया था कि शीघ्र ही यह मंतव्य सभा में उपस्थित होगा, इसलिए दोनों महाशय अपने पक्ष को स्थिर करने में तत्पर हो रहे थे। पहले हाजी साहब ने मुसलमान मेंबरों को एकत्र किया। हाजी साहब का जनता पर बड़ा प्रभाव था और वह शहर के सदस्य मुसलमानों के नेता समझे जाते थे। शेष सात मेंबरों में मौलाना तेगअली एक इमामबाड़े के वली थे। मुंशी अबुलवफा इत्र और तेल के कारखाने के मालिक थे। बड़े-बड़े शहरों में उनकी कई दूकानें थीं। मुंशी अब्दुललतीफ एक बड़े जमींदार थे, लेकिन बहुधा शहर में रहते थे। कविता से प्रेम था और स्वयं अच्छे कवि थे। शाकिरबेग और शरीफहसन वकील थे। उनके सामाजिक सिद्धांत बहुत उन्नत थे। सैयद शफकतअली पेंशनर डिप्टी कलेक्टर थे और खां साहब शोहरतखां प्रसिद्ध हकीम थे। ये दोनों महाशय सभा-समाजों से प्राय: पृथक् ही रहते थे, किंतु उनमें उदारता और विचारशीलता की कमी न थी। दोनों धार्मिक प्रवृत्ति के मनुष्य थे। समाज में उनका बड़ा सम्मान था।

हाजी हाशिम बोले—बिरादराने वतन की यह नई चाल आप लोगों ने देखी? वल्लाह इनको सूझती खूब है, बगली घूंसे मारना कोई इनसे सीख ले। मैं तो इनकी रेशादवानियों से इतना बदजन हो गया हूं कि अगर इनकी नेकनीयती पर ईमान लाने में नजात भी होती हो, तो न लाऊं।

अबुलवफा ने फरमाया—मगर अब खुदा के फजल से हमको भी अपने नफे नुकसान का एहसास होने लगा। यह हमारी तादाद को घटाने की सरीह कोशिश है। तवायफें नब्बे फीसदी मुसलमान हैं, जो रोजे रखती हैं, इजादारी करती हैं, मौलूद और उर्स करती हैं। हमको उनके जाती फेलों से कोई बहस नहीं है। नेक व बद की सजा व जजा देना खुदा का काम है। हमको तो सिर्फ उनकी तादाद से गरज है।

तेगअली—मगर उनकी तादाद क्या इतनी ज्यादा है कि उससे हमारे मजमुई वोट पर कोई असर पड़ सकता है?

अबुलवफा—कुछ-न-कुछ तो जरूर पड़ेगा, ख्वाह वह कम हो या ज्यादा। बिरादराने वतन को देखिए, वह डोमड़ों तक को मिलाने की कोशिश करते हैं। उनके साए से परहेज करते हैं, उन्हें जानवरों से भी ज्यादा जलील समझते हैं, मगर महज अपने पोलिटिकल मफाद के लिए उन्हें अपने कौमी जिस्म का एक अजो बनाए हुए हैं। डोमड़ों का शुमार जरायम पेशा अकवाम में है। आलिहाजा, पासी, भर वगैरह भी इसी जैल में आते हैं। सरका, कत्ल, रहजनी, यह उनके पेशे हैं। मगर जब उन्हें हिन्दू जमाअत से अलहदा करने की कोशिश की जाती है, तो बिरादराने वतन कैसे चिरागपा होते हैं। वेद और शासतर की सनदें नकल करते फिरते हैं। हमको इस मुआमिले में उन्हीं से सबक लेना चाहिए।

सैयद शफकतअली ने विचारपूर्ण भाव से कहा—इस जरायमपेशा अकवाम के लिए गवर्नमेंट ने शहरों में खित्ते अलेहदा कर दिए। उन पर पुलिस की निगरानी रहती है। मैं खुद अपने दौराने मुलाजिमत में उनकी नकल और हरकत की रिपोर्ट लिखा करता था। मगर मेरे ख्याल में किसी जिम्मेदार हिन्दू ने गवर्नमेंट के इस तर्जे-अमल की मुखालिफत नहीं की। हालांकि मेरी निगाह में सरका, कत्ल वगैरह इतने मकरूह फेल नहीं हैं, जितनी असमतफरोशी। डोमनी भी जब असमतफरोशी करती है, तो वह अपनी बिरादरी से खारिज कर दी जाती है। अगर किसी डोम या भर के पास काफी दौलत हो, तो वह इस हुस्न के खुले हुए बाजार में मनमाना सौदा खरीद सकता है। खुदा वह दिन न लाए कि हम अपने पोलिटिकल मफाद के लिए इस

हद तक जलील होने पर मजबूर हों। अगर इन तवायफों की दीनदारी के तुफैल में सारे इस्लाम को खुदा जन्नत अता करे, तो मैं दोजख में जाना पसंद करूंगा। अगर उनकी तादाद की बिना पर हमको इस मुल्क की बादशाही भी मिलती हो, तो मैं कबूल न करूं। मेरी राय तो यह है कि इन्हें मरकज शहर ही से नहीं, हदूद शहर से खारिज कर देना चाहिए।

हकीम शोहरत खां बोले—जनाब, मेरा बस चले तो मैं इन्हें हिन्दुस्तान से निकाल दूं, इनसे एक जजीरा अलग आबाद करूं। मुझे इस बाजार के खरीददारों से अक्सर साबिका रहता है। अगर मेरी मजहबी अकायद में फर्क न आए, तो मैं यह कहूंगा कि तवायफें हैजे और ताऊन का औतार हैं। हैजा दो घंटे में काम तमाम कर देता है, प्लेग दो दिन में, लेकिन यह जहन्नुमी हस्तियां रुला—रुलाकर और घुला—घुलाकर जान मारती हैं। मुंशी अबुलवफा साहब उन्हें जन्नती हूर समझते हों, लेकिन वे ये काली नागिनें हैं, जिनकी आंखों में जहर है। वे ये चश्मे हैं, जहां से जरायम के सोते निकलते हैं। कितनी ही नेक बीबियां उनकी बदौलत खून के आंसू रो रही हैं। कितने ही शरीफजादे उनकी बदौलत खस्ता व ख्वार हो रहे हैं। यह हमारी बदकिस्मती है कि बेशतर तवायफें अपने को मुसलमान कहती हैं।

शरीफ हसन बोले—इसमें तो कोई बुराई नहीं कि वह अपने को मुसलमान कहती हैं। बुराई यह है कि इस्लाम भी उन्हें राहे-रास्ते पर लाने की कोई कोशिश नहीं करता। हिन्दुओं की देखा-देखी इस्लाम ने भी उन्हें अपने दायरे से खारिज कर दिया है। जो औरत एक बार किसी वजह से गुमराह हो गई, उसकी तरफ से इस्लाम हमेशा के लिए अपनी आंखें बंद कर लेता है। बेशक हमारे मौलाना साहब सब्ज इमामा बांधे, आंखों में सुरमा लगाए, गेसूं संवारे उनकी मजहबी तस्कीन के लिए जा पहुंचते हैं, उनके दस्तरख्वान से मीठे लुकमे खाते हैं, खुशबूदार खमीरे की कश लगाते हैं और उनके खसदान से मुअत्तर बीड़े उड़ाते हैं। बस, इस्लाम की मजहबी कूबते इस्लाम यहीं तक खत्म हो जाती है। अपने बुरे फेलों पर नादिम होना इंसानी खासा है। ये गुमराह औरतें पेशतर नहीं, तो शराब का नशा उतरने के बाद जरूर अपनी हालत पर अफसोस करती हैं, लेकिन उस वक्त उनका पछताना बेसूद होता है। उनके गुजरानी की इसके सिवा और कोई सूरत नहीं रहती कि वे अपनी लड़कियों से दूसरों को दामे-मुहब्बत में फंसाएं और इस तरह यह सिलसिला हमेशा जारी रहता है। अगर उन लड़कियों की जायज तौर पर शादी हो सके तो और उसके साथ ही उनकी परवरिश की सूरत भी निकल आए तो मेरे ख्याल में ज्यादा नहीं तो पचहत्तर फीसदी तवायफें इसे खुशी से कबूल कर लें। हम चाहे खुद कितने गुनहगार हों, पर अपनी औलाद को हम नेक और रास्तबाज देखने की तमन्ना रखते हैं। तवायफों को शहर से खारिज कर देने से उनकी इस्लाह नहीं हो सकती। इस ख्याल को सामने रखकर तो मैं इखराज की तहरीक पर एतराज करने की जुरअत कर सकता हूं। पर पोलिटिकल मफाद की बिना पर मैं उसकी मुखालिफत नहीं कर सकता। मैं किसी फेल को कौमी ख्याल से पसंदीदा नहीं समझता जो इखलाकी तौर पर पसंदीदा न हो।

तेगअली—बंदानवाज, संभलकर बातें कीजिए। ऐसा न हो कि आप पर कुफ्र का फतवा सादिर हो जाए। आजकल पोलिटिकल मफाद का जोर है, हक और इंसाफ का नाम न लीजिए। अगर आप मुदर्रिस हैं, तो हिन्दू लड़कों को फेल कीजिए। तहसीलदार हैं, तो हिन्दुओं पर टैक्स लगाइए, मजिस्ट्रेट हैं, तो हिन्दुओं को सजाएं दीजिए। सब-इंस्पेक्टर पुलिस हैं तो हिन्दुओं पर झूठे मुकदमे दायर कीजिए, तहकीकात करने जाइए, तो हिन्दुओं के बयान गलत लिखिए। अगर

आप चोर हैं, तो किसी हिन्दू के घर में डाका डालिए, अगर आपको हुस्न या इश्क का खब्त है, तो किसी हिन्दू नाजनीन को उड़ाइए, तब आप कौम के खादिम, कौम के मुहंकिन, कौमी किश्ती के नाखुदा–सब कुछ हैं।

हाजी हाशिम बुड़बुड़ाए, मुंशी अबुलवफा के तेवरों पर बल पड़ गए। तेगअली की तलवार ने उन्हें घायल कर दिया। अबुलवफा कुछ कहना ही चाहते थे कि शाकिर बेग बोल उठे–भाई साहब, यह तान-तंज का मौका नहीं। हम अपने घर में बैठे हुए एक अमल के बारे में दोस्ताना मशविरा कर रहे हैं। जबाने तेज मसलहत के हक में जहरे कातिल है। मैं शाहिदान तन्नाज को निजाम तमद्दुन में बिल्कुल बेकार या मायए शर नहीं समझता। आप जब कोई मकान तामीर करते हैं, तो उसमें बदरौर बनाना जरूर खयाल करते हैं। अगर बदरौर न हो तो चंद दिनों में दीवारों की बुनियादें हिल जाय। इस फिरके को सोसाइटी का बदरौर समझना चाहिए और जिस तरह बदरौर मकान के नुमाया हिस्से में नही होती, बल्कि निगाह से पोशीदा एक गोशे में बनाई जाती है, उसी तरह इस फिरके को शहर के पुरफिजा मुकामात से हटाकर किसी गोशे में आबाद करना चाहिए।

मुंशी अबुलवफा पहले के वाक्य सुनकर खुश हो गए थे, पर नाली की उपमा पर उनका मुंह लटक गया। हाजी हाशिम ने नैराश्य से अब्दुललतीफ की ओर देखा जो अब तक चुपचाप बैठे हुए थे और बोले–जनाब, कुछ आप भी फर्माते हैं? दोस्ती के बहाव में आप भी तो नहीं बह गए?

अब्दुललतीफ बोले–जनाब, बंदा को न इत्तहाद से दोस्ती, न मुखालफत से दुश्मनी। अपना मुशरिब तो सुलहेकुल है। मैं अभी यही तय नहीं कर सका कि आलमो बेदारी में हूं या ख्वाब में। बड़े-बड़े आलिमो को एक बे-सिर-पैर की बात की ताईद में जमीं और आसमान के कुलाबे मिलाते देखता हूं। क्योंकर बावर करूं कि बेदार हूं? साबुन, चमड़े और मिट्टी के तेल की दुकानों से आपको कोई शिकायत नहीं। कपड़े, बरतन आदवियात की दुकानें चौक में हैं, आप उनको मुतलक बेमौका नहीं समझते। क्या आपकी निगाहों में हुस्न की इतनी भी वकअत नहीं? और क्या यह जरूरी है कि इसे किसी तंग तारीक कूचे में बंद कर दिया जाय। क्या वह बाग, बाग कहलाने का मुस्तहक है, जहां सरों की कतारें एक गोशे में हों, बेले और गुलाब के तख्ते दूसरे गोशे में और रविशों के दोनों तरफ नीम और कटहल के दरख्त हों, वस्त में पीपल का ठूंठ और किनारे बबूल की कलमें हों? चील और कौए दोनों तरफ तख्तों पर बैठे अपना राग अलापते हों, और बुलबुलें किसी गोश-ए-तारीक में दर्द के तराने गाती हों? मैं इस तहरीक की सख्त मुखालिफत करता हूं। मैं उसे इस काबिल भी नहीं समझता कि उस पर मतानत के साथ बहस की जाय।

हाजी हाशिम मुस्कराए, अबुलवफा की आंखें खुशी से चमकने लगीं। अन्य महाशयों ने दार्शनिक मुस्कान के साथ यह हास्यपूर्ण वक्तृता सुनी, पर तेगअली इतने सहनशील न थे। तीव्र भाव से बोले–क्यों गरीब-परवर, अब की बोर्ड में यह तजवीज क्यों न पेश की जाय कि म्युनिसिपैलिटी ऐन चौक में खास एहतमाम के साथ मीनाबाजार आरास्ता करे और जो हजरत इस बाजार की सैर को तशरीफ ले जाएं, उन्हें गवर्नमेंट की जानिब से खुशनूदी मिजाज का परवाना अदा किया जाय? मेरे खयाल से इस तजवीज की ताईद करने वाले बहुत निकल आएंगे और इस तजवीज के मुहर्रिर का नाम हमेशा के लिए जिंदा हो जाएगा। उसकी वफात के बाद

उसके मजार पर उर्स होंगे और वह अपने गोश-ए-लहद में पड़ा हुआ हुस्न की बहार लूटेगा और दलपजीर नगमे सुनेगा।

मुंशी अब्दुललतीफ का मुंह लाल हो गया। हाजी हाशिम ने देखा कि बात बढ़ी जाती है, तो बोले—मैं अब तक सुना करता था कि उसूल भी कोई चीज है, मगर आज मालूम हुआ कि वह महज एक वहम है। अभी बहुत नहीं दिन हुए कि आप ही लोग इस्लामी बजाएफ का डेपुटेशन लेकर गए थे, मुसलमान कैदियों के मजहबी तस्कीन की तजवीजें कर रहे थे और अगर मेरा हाफिजा गलती नहीं करता, तो आप ही लोग उन मौकों पर पेश नजर आते थे। मगर आज एकाएक यह इंकलाब नजर आता है। खैर, आपका तलब्बुन आपको मुबारक रहे। बंदा इतना सहलयकीन नहीं है। मैंने जिंदगी का यह उसूल बना लिया है कि बिरादराने वतन की हर एक तजवीज की मुखालिफत करूंगा, क्योंकि मुझे उससे किसी बेहबूदी की तबक्को नहीं है।

अबुलवफा ने कहा—आलिहाजा, मुझे रात को आफताब का यकीन हो सकता है, पर हिन्दुओं की नेकनीयत पर यकीन नहीं हो सकता।

सैयद शफकत अली बोले—हाजी साहब, आपने हम लोगों को जमाना-साज और बेउसूल समझने में मतानत से काम नहीं लिया। हमारा उसूल जो तब था वह अब भी है और हमेशा रहेगा और वह है इस्लामी बकार को कायम करना और हर एक जायज तरीके से बिरादराने मिल्लत की बेहबूदी की कोशिश करना। अगर हमारे फायदे में बिरादराने वतन का नुकसान हो, तो हमको इसकी परवाह नहीं। मगर जिस तजवीज से उनके साथ हमको भी फायदा पहुंचता है और उनसे किसी तरह कम नहीं, उसकी मुखालिफत करना हमारे इमकान से बाँहर है। हम मुखालिफत के लिए मुखालिफत नहीं कर सकते।

रात अधिक जा चुकी थी। सभा समाप्त हो गई। इस वार्तालाप का कोई विशेष फल न निकला। लोग मन में जो पक्ष स्थिर करके घर से आए थे, उसी पक्ष पर डटे रहे। हाजी हाशिम को अपनी विजय का जो पूर्ण विश्वास था, उसमें संदेह पड़ गया।

इकतीस

इस प्रस्ताव के विरोध में हिन्दू मेंबरों को जब मुसलमानों के जलसे का हाल मालूम हुआ तो उनके कान खड़े हुए। उन्हें मुसलमानों से जो आशा थी, वह भंग हो गई। कुल दस हिन्दू थे। सेठ बलभद्रदास चेयरमैन थे। डॉक्टर श्यामाचरण वाइस-चेयरमैन। लाला चिम्मनलाल और दीनानाथ तिवारी व्यापारियों के नेता थे। पद्मसिंह और रुस्तमभाई वकील थे। रमेशदत्त कॉलेज के अध्यापक, लाला भगतराम ठेकेदार, प्रभाकर राव हिन्दी पत्र 'जगत' के संपादक और कुंवर अनिरुद्ध बहादुरसिंह जिले के सबसे बड़े जमींदार थे। चौक की दुकानों में अधिकांश बलभद्रदास और चिम्मनलाल की थीं। दालमंडी में दीनानाथ के कितने ही मकान थे। ये तीनों महाशय इस प्रस्ताव के विपक्षी थे। लाला भगतराम का काम चिम्मनलाल की आर्थिक सहायता से चलता था। इसलिए उनकी सम्मति भी उन्हीं की ओर थी। प्रभाकर राव, रमेशदत्त, रुस्तमभाई और पद्मसिंह इस प्रस्ताव के पक्ष में थे। डॉक्टर श्यामाचरण और कुंवर साहब के विषय में अभी

तक कुछ निश्चय नहीं हो सका था। दोनों पक्ष उनसे सहायता की आशा रखते थे। उन्हीं पर दोनों पक्षों की हार-जीत निर्भर थी। पद्मसिंह अभी बारात से नहीं लौटे थे। सेठ बलभद्रदास ने इस अवसर को अपने पक्ष के समर्थन के लिए उपयुक्त समझा और सब हिन्दू मेंबरों को अपनी सुसज्जित बारहदरी में निमंत्रित किया। इसका मुख्य उद्देश्य यह था कि डॉक्टर साहब और कुंवर महोदय की सहानुभूति अपने पक्ष में कर लें। प्रभाकर राव मुसलमानों के कट्टर विरोधी थे। वे लोग इस प्रस्ताव को हिन्दू-मुस्लिम विवाद का रंग देकर प्रभाकर राव को अपनी तरफ खींचना चाहते थे।

दीनानाथ तिवारी बोले—हमारे मुसलमान भाइयों ने तो इस विषय में बड़ी उदारता दिखाई, पर इसमें एक गूढ़ रहस्य है। उन्होंने 'एक पंथ दो काज' वाली चाल चली है। एक ओर तो समाज-सुधार की नेकनामी हाथ आती है, दूसरी ओर हिन्दुओं को हानि पहुंचाने का एक बहाना मिलता है। ऐसे अवसर से वे कब चूकने-वाले थे?

चिम्मनलाल—मुझे पालिटिक्स से कोई वास्ता नहीं है और न मैं इसके निकट जाता हूं। लेकिन मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि हमारे मुस्लिम भाइयों ने हमारी गर्दन बुरी तरह पकड़ी है। दालमंडी और चौक के अधिकांश मकान हिन्दुओं के हैं। यदि बोर्ड ने यह स्वीकार कर लिया, तो हिन्दुओं का मटियामेट हो जाएगा। छिपे-छिपे चोट करना कोई मुसलमानों से सीखे! अभी बहुत दिन नहीं बीते कि सूद की आड़ में हिन्दुओं पर आक्रमण किया गया था। अब वह चाल पट पड़ गई, तो यह नया उपाय सोचा। खेद है कि हमारे कुछ हिन्दू भाई उनके हाथों की कठपुतली बने हुए हैं। वे नहीं जानते कि अपने दुरुत्साह से अपनी जाति को कितनी हानि पहुंचा रहे हैं।

स्थानीय कौंसिल में जब सूद का प्रस्ताव उपस्थित था, तो प्रभाकर राव ने उसका घोर विरोध किया था। चिम्मनलाल ने उसका उल्लेख करके और वर्तमान विषय को आर्थिक दृष्टिकोण से दिखाकर प्रभाकर राव को नियम विरुद्ध करने की चेष्टा की। प्रभाकर राव ने विवश नेत्रों से रुस्तमभाई की ओर देखा मानो उनसे कह रहे थे कि मुझे ये लोग ब्रह्मफांस में डाल रहे हैं, आप किसी तरह मेरा उद्धार कीजिए। रुस्तमभाई बड़े निर्भीक, स्पष्टवादी पुरुष थे। वे चिम्मनलाल का उत्तर देने के लिए खड़े हो गए और बोले—मुझे यह देखकर शोक हो रहा है कि आप लोग एक सामाजिक प्रश्न को हिन्दू-मुसलमानों के विवाद का स्वरूप दे रहे हैं। सूद के प्रश्न को भी यही रंग देने की चेष्टा की गई थी। ऐसे राष्ट्रीय विषयों को विवादग्रस्त बनाने से कुछ हिन्दू साहूकारों का भला हो जाता है, किंतु इससे राष्ट्रीयता को जो चोट लगती है, उसका अनुमान करना कठिन है। इसमें संदेह नहीं कि इस प्रस्ताव के स्वीकृत होने से हिन्दू साहूकारों को अधिक हानि पहुंचेगी, लेकिन मुसलमानों पर भी इसका प्रभाव अवश्य पड़ेगा। चौक और दालमंडी में मुसलमानों की दूकानें कम नहीं हैं। हमको प्रतिवाद या विरोध की धुन में अपने मुसलमान भाइयों की नीयत की सचाई पर संदेह न करना चाहिए। उन्होंने इस विषय पर जो कुछ निश्चय किया, वह सार्वजनिक उपकार के विचार से किया है; अगर हिन्दुओं की इससे अधिक हानि हो रही है, तो यह दूसरी बात है। मुझे विश्वास है कि मुसलमानों की इससे अधिक हानि होती, तब भी उनका यही फैसला होता। अगर आप सच्चे हृदय से मानते हैं कि यह प्रस्ताव एक सामाजिक कुप्रथा के सुधार के लिए उठाया है, तो आपको उसके स्वीकार करने में कोई बाधा न होनी चाहिए, चाहे धन की कितनी ही हानि हो। आचरण के सामने

धन का कोई महत्त्व न होना चाहिए।

प्रभाकर राव को धैर्य हुआ। बोले—बस, यही मैं भी कहने वाला था। अगर थोड़ी-सी आर्थिक हानि से एक कुप्रथा का सुधार हो रहा है, तो वह हानि प्रसन्नता से उठा लेनी चाहिए। आप लोग जानते हैं कि हमारी गवर्नमेंट का चीन से अफीम का व्यापार करने में कितना लाभ था। अठारह करोड़ से कुछ अधिक ही हो। पर चीन में अफीम खाने की कुप्रथा मिटाने के लिए सरकार ने इतनी भीषण हानि उठाने में जरा भी आगा-पीछा नहीं किया।

कुंवर अनिरुद्धसिंह ने प्रभाकर राव की ओर देखते हुए पूछा—महाशय, आप तो अपनी पत्रिका के संपादन में लीन रहते हैं, आपके पास जीवन के आनंद-लाभ के लिए समय ही कहां है? पर हम जैसे बेफिक्रों को तो दिल बहलाव का कोई सामान चाहिए? संध्या का समय तो पोलो खेलने में कट जाता है, दोपहर का समय सोने में और प्रात:काल अफसरों से भेंट-भांट करने या घोड़े दौड़ाने में व्यतीत हो जाता है। लेकिन संध्या से दस बजे रात तक बैठे-बैठे क्या करेंगे? आप आज यह प्रस्ताव लाए हैं कि वेश्याओं को शहर से निकाल दो, कल को आप कहेंगे कि म्युनिसिपैलिटी के अंदर कोई आज्ञा लिए बिना नाच, गाना, मुजरा न कराने पाए, तो फिर हमारा रहना कठिन हो जाएगा।

प्रभाकर राव मुस्कराकर बोले—क्या पोलो और नाच-गाने के सिवा समय काटने का और कोई उपाय नहीं है? कुछ पढ़ा कीजिए।

कुंवर—पढ़ना हम लोगों को मना है। हमको किताब के कीड़े बनने की जरूरत नहीं। अपने जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए जिन बातों की जरूरत है, उनकी शिक्षा हमको मिल चुकी है। हम फ्रांस और स्पेन का नाच जानते हैं, आपने उनका नाम भी न सुना होगा। प्यानो पर बैठा दीजिए, वह राग अलापूं कि मोजार्ट लज्जित हो जाय। अंग्रेजी रीति-व्यवहार का हमको पूर्ण ज्ञान है। हम जानते हैं कि कौन-सा समय सोला हैट लगाने का है, कौन-सा पगड़ी का। हम किताबें भी पढ़ते हैं। आप हमारे कमरे में कई-कई आल्मारियां पुस्तकों से सजी हुई देखेंगे, मगर उन किताबों में चिमटते नहीं। आपके इस प्रस्ताव से हम तो मर मिटेंगे।

कुंवर साहब की हास्य और व्यंग्य से भरी बातों ने दोनों पक्षों का समाधान कर दिया।

डॉक्टर श्यामाचरण ने कुंवर साहब की ओर देखकर कहा—मैं इस विषय में कौंसिल में प्रश्न करने वाला हूं। जब तक गवर्नमेंट उसका उत्तर न दे, मैं अपना कोई विचार प्रकट नहीं कर सकता।

यह कहकर डॉक्टर महोदय ने अपने प्रश्नों को पढ़कर सुनाया।

रमेशदत्त ने कहा—इन प्रश्नों का कदाचित् गवर्नमेंट कुछ उत्तर न देगी।

डॉक्टर—उत्तर मिले या न मिले, प्रश्न तो हो जाएंगे। इसके सिवा और हम कर ही क्या सकते हैं?

सेठ बलभद्रदास को विश्वास हो गया कि अब अवश्य हमारी विजय होगी। डॉक्टर साहब को छोड़कर सत्रह सम्मतियों में नौ उनके पक्ष में थीं। इसलिए अब वह निरपेक्ष रह सकते थे, जो सभापति का धर्म है। उन्होंने सारगर्भित वक्तृता देते हुए इस प्रस्ताव की मीमांसा की। उन्होंने कहा—सामाजिक विप्लव पर मेरा विश्वास नहीं है। मेरा विचार है कि समाज को जिस सुधार की आवश्यकता होती है, वह स्वयं कर लिया करता है। विदेश-यात्रा, जाति-पांति के भेद, खान-पान के निरर्थक बंधन सब-के-सब समय के प्रवाह के सामने सिर झुकाते चले जाते हैं।

इस विषय में समाज को स्वच्छंद रखना चाहता हूं। जिस समय जनता एक स्वर से कहेगी कि हम वेश्याओं को चौक में नहीं देखना चाहते, तो संसार में ऐसी कौन-सी शक्ति है, जो उसकी बात को अनसुनी कर सके?

अंत में सेठजी ने बड़े भावपूर्ण स्वर में ये शब्द कहे—हमको अपने संगीत पर गर्व है। जो लोग इटली और फ्रांस के संगीत से परिचित हैं, वे भी भारतीय गान के भाव, रस और आनंदमय शांति के कायल हैं, किंतु काल की गति ! वही संस्था जिसकी जड़ खोदने पर हमारे कुछ सुधारक तुले हुए हैं, इस पवित्र—इस स्वर्गीय धन की अध्यक्षिणी बनी हुई हैं। क्या आप इस संस्था का सर्वनाश करके अपने पूर्वजों के अमूल्य धन को इस निर्दयता से धूल में मिला देंगे? क्या आप जानते थे कि हममें आज जो जातीय और धार्मिक भाव शेष रह गए हैं, उनका श्रेय हमारे संगीत को है, नहीं तो आज राम, कृष्ण और शिव का कोई नाम भी न जानता ! हमारा बड़े-से-बड़ा शत्रु भी हमारे हृदय से जातीयता का भाव मिटाने के लिए इससे अच्छी और कोई चाल नहीं सोच सकता। मैं यह नहीं कहता कि वेश्याओं से समाज को हानि नहीं पहुंचती। कोई भी समझदार आदमी ऐसा कहने का साहस नहीं कर सकता। लेकिन रोग का निवारण मौन से नहीं, दवा से होता है। कोई कुप्रथा उपेक्षा या निर्दयता से नहीं मिटती। उसका नाश शिक्षा, ज्ञान और दया से होता है। स्वर्ग में पहुंचने के लिए कोई सीधा रास्ता नहीं है। वैतरणी का सामना अवश्य करना पड़ेगा। जो लोग समझते हैं कि वह किसी महात्मा के आशीर्वाद से कूदकर स्वर्ग में जा बैठेंगे, वह उनसे अधिक हास्यास्पद नहीं हैं, जो समझते हैं कि चौक से वेश्याओं को निकाल देने से भारत के सब दु:ख-दारिद्रय मिट जाएंगे और एक नवीन सूर्य का उदय हो जायगा।

बत्तीस

जिस प्रकार कोई आलसी मनुष्य किसी के पुकारने की आवाज सुनकर जाग जाता है, किंतु इधर-उधर देखकर फिर निद्रा में मग्न हो जाता है, उसी प्रकार पंडित कृष्णचन्द्र क्रोध और ग्लानि का आवेश शांत होने पर अपने कर्त्तव्य को भूल गए। उन्होंने सोचा, मेरे यहां रहने से उमानाथ पर कौन-सा बोझ पड़ रहा है। आधा सेर आटा ही तो खाता हूं या और कुछ। लेकिन उसी दिन से उन्होंने नीच आदमियों के साथ बैठकर चरस पीना छोड़ दिया। इतनी सी बात के लिए चारों ओर मारे-मारे फिरना उन्हें अनुपयुक्त मालूम हुआ। अब वह प्राय: बरामदे ही में बैठे रहते और सामने से आने-जाने वाली रमणियों को घूरते। वह प्रत्येक विषय में उमानाथ की हां-में-हां मिलाते। भोजन करते समय सामने जितना आ जाता खा लेते, इच्छा रहने पर भी कभी कुछ न मांगते। वे उमानाथ से कितनी ही बातें ठकुरसुहाती के लिए करते। उनकी आत्मा निर्बल हो गई थी।

उमानाथ शान्ता के विवाह के संबंध में जब उनसे कुछ कहते, तो वह बड़े सरल भाव से उत्तर देते—भाई, तुम चाहो जो करो, इसके तुम्हीं मालिक हो। वह अपने मन को समझाते, जब रुपये इनके लग रहे हैं, तो सब काम इन्हीं के इच्छानुसार होने चाहिए।

लेकिन उमानाथ अपने बहनोई की कठोर बातें न भूले। छाले पर मक्खन लगाने से एक

क्षण के लिए कष्ट कम हो जाता है, किंतु फिर ताप की वेदना होने लगती है। कृष्णचन्द्र की आत्मग्लानि से भरी हुई बातें उमानाथ को शीघ्र भूल गईं और उनके कृतघ्न शब्द कानों में गूंजने लगे। जब वह सोने गए तो जाह्नवी ने पूछा—आज लालाजी (कृष्णचन्द्र) तुमसे क्यों बिगड़ रहे थे?

उमानाथ ने अन्याय-पीड़ित नेत्रों से कहा—मेरा यश गा रहे थे। कह रहे थे, तुमने मुझे लूट लिया, मेरी स्त्री को मार डाला, मेरी एक लड़की को कुएं में डाल दिया, दूसरी को दुख दे रहे हो।

'तो तुम्हारे मुंह में जीभ न थी? कहा होता, क्या मैं किसी को नेवता देने गया था? कहीं तो ठिकाना न था, दरवाजे-दरवाजे ठोकरें खाती फिरती थीं। बकरा जी से गया, खाने वाले को स्वाद ही न मिला। यहां लाज ढोते-ढोते मर मिटे, उसका यह फल। इतने दिन थानेदारी की, लेकिन गंगाजली ने कभी भूलकर भी एक डिबिया सेंदूर न भेजा। मेरे सामने कहा होता, तो ऐसी-ऐसी सुनाती कि दांत खट्टे हो जाते, दो-दो पहाड़-सी लड़कियां गले पर सवार कर दीं, उस पर बोलने को मरते हैं। इनके पीछे फकीर हो गए, उसका यह यश है? अब से अपना पौरा लेकर क्यों नहीं कहीं जाते? काहे को पैर में मेंहदी लगाए बैठे हैं।'

'अब तो जाने को कहते हैं। सुमन का पता भी पूछा था।'

'तो क्या अब बेटी के सिर पड़ेंगे? वाह रे बेहया।'

'नहीं, ऐसा क्या करेंगे। शायद दो-एक दिन वहां ठहरें।'

'कहां की बात, इनसे अब कुछ न होगा। इनकी आंखों का पानी मर गया, जाके उसी के सिर पड़ेंगे, मगर देख लेना, वहां एक दिन भी निबाह न होगा।'

अब तक उमानाथ ने सुमन के आत्मपतन की बात जाह्नवी से छिपाई थी। वह जानते थे कि स्त्रियों के पेट में बात नहीं पचती। यह किसी-न-किसी से अवश्य ही कह देगी और बात फैल जायगी। जब जाह्नवी के स्नेह व्यवहार से वह प्रसन्न होते, तो उन्हें उससे सुमन की कथा कहने की बड़ी तीव्र आकांक्षा होती। हृदयसागर में तरंगें उठने लगतीं, लेकिन परिणाम को सोचकर रुक जाते थे। आज कृष्णचन्द्र की कृतघ्नता और जाह्नवी की स्नेहपूर्ण बातों ने उमानाथ को निःशंक कर दिया, पेट में बात न रुक सकी। जैसे किसी नाली में रुकी हुई वस्तु भीतर से पानी का बहाव पाकर बाहर निकल पड़े। उन्होंने जाह्नवी को सारी कथा बयान कर दी। जब रात को उनकी नींद खुली तो उन्हें अपनी भूल दिखाई दी, पर तीर कमान से निकल चुका था। जाह्नवी ने अपने पति को वचन दिया तो था कि यह बात किसी से न कहूंगी, पर अपने हृदय पर एक बोझ-सा रखा मालूम होता था। उसका किसी काम में मन न लगता था। वह उमानाथ पर झुंझलाती थी कि कहां से उन्होंने मुझसे यह बात कही। उसे सुमन से घृणा न थी, क्रोध न था, केवल एक कौतूहलजनक बात कहने की, मानव-हृदय की मीमांसा करने की सामग्री मिलती थी। स्त्री-शिक्षा के विरोध में कैसा अच्छा प्रमाण हाथ में आ गया। जाह्नवी इस आनंद से अपने को बहुत दिनों तक वंचित न रख सकी। यह असंभव था। यह उन दो-एक साध्वी स्त्रियों के साथ विश्वासघात था, जो अपने घर का रत्ती-रत्ती समाचार उससे कह दिया करती थीं। इसके अतिरिक्त यह जानने की उत्सुकता भी कुछ कम न थी कि अन्य स्त्रियां इस विषय की कैसी आलोचना करती हैं। जाह्नवी कई दिनों तक अपने मन को रोकती रही। एक दिन कुबेर पंडित की पत्नी सुभागी ने आकर जाह्नवी से कहा—जीजी, आज एकादशी है, गंगा नहाने चलोगी।

सुभागी का जाह्नवी से बहुत मेल था। जाह्नवी बोली—चलती तो, पर यहां तो द्वार पर अजगर बैठा है, उसके मारे कहीं हिलने पाती हूं?

सुभागी—बहन, इनकी बातें तुमसे क्या कहूं, लाज आती है। मेरे घरवाले सुन लें, तो सिर काटने पर उतारू हो जायं। कल मेरी बड़ी लड़की को सुना-सुनाकर न जाने कौन कवित्त पढ़ रहे थे। आज सबेरे मैंने दोनों को कुएं पर हंसते देखा। बहन, तुमसे कौन पर्दा है? कोई बात हो जाएगी तो सारी बिरादरी की नाक कटेगी? यह बूढ़े हुए, इन्हें ऐसा चाहिए? मेरी लड़की सुमन से दो-एक साल बड़ी होगी और क्या? भला साली होती, तो एक बात थी। वह तो उनकी भी बेटी ही होती है। इनको इतना भी विचार नहीं है। कहीं पंडित सुन लें, तो खून-खराबी हो जाय। तुमसे कहती हूं, किसी तरह आड़ में बुलाकर उन्हें समझा दो।

अब जाह्नवी से न रहा गया। उसने सुमन का सारा चरित्र खूब नमक-मिर्च लगाकर सुभागी से बयान किया। जब कोई हमसे अपना भेद खोल देता है, तो हम उससे अपना भेद गुप्त नहीं रख सकते।

दूसरे ही दिन कुबेर पंडित ने अपनी लड़की को सुसराल भेज दिया और मन में निश्चय किया कि इस अपमान का बदला अवश्य लूंगा।

तैंतिस

सदन के विवाह का दिन आ गया। चुनार से बारात अमोला चली। उसकी तैयारियों का वर्णन करना व्यर्थ है। जैसी अन्य बारातें होती हैं, वैसी ही यह भी थी। वैभव और दरिद्रता का अत्यंत करुणात्मक दृश्य था। पालकियों पर कारचोबी के परदे पड़े हुए थे, लेकिन कहारों की वर्दियां फटी हुईं और बेडौल थीं। गंगाजमुनी सोटे और बल्लम फटेहाल मजदूरों के हाथों में बिल्कुल शोभा नहीं देते थे।

अमोला यहां से कोई दस कोस था। रास्ते में एक नदी पड़ती थी। बारात नावों पर उतरी। मल्लाहों से खेवे के लिए घंटों सिरमगजन हुआ, तब कहीं जाकर उन्होंने नावें खोलीं। मदनसिंह ने बिगड़कर कहा—न हुए तुम लोग हमारे गांव में, नहीं तो इतनी बेगार लेता कि याद करते। लेकिन पद्मसिंह मल्लाहों की इस ढिठाई पर मन में प्रसन्न थे। उन्हें इसमें मल्लाहों का सच्चा प्रेम दिखाई देता था।

संध्या समय बारात अमोला पहुंची। पद्मसिंह के मोहर्रिर ने वहां पहले से ही शामियाना खड़ा कर रखा था। छोलदारियां भी लगी हुई थीं। शामियाना झाड़, फानूस और हांडियों से सुसज्जित था। कारचोबी, मसनद, गावतकिए और इत्रदान आदि अपने-अपने स्थान पर रखे हुए थे। धूम थी कि नाच के कई डेरे आए हैं।

द्वार-पूजा हुई, उमानाथ कंधे पर एक अंगोछा डाले हुए बारात का स्वागत करते थे। गांव की स्त्रियां दालान में खड़ी मंगलाचरण गाती थीं। बाराती लोग यह देखने की चेष्टा कर रहे थे कि इनमें से कौन सबसे सुंदर है। स्त्रियां भी मुस्करा-मुस्कराकर उन पर नयनों की कटार चला रही थीं। जाह्नवी उदास थी, वह मन में सोच रही थी कि यह घर मेरी चन्द्रा को मिलता

तो अच्छा होता। सुभागी यह जानने के लिए उत्सुक थी कि समधी कौन हैं। कृष्णचन्द्र सदन के चरणों की पूजा कर रहे थे और मन में शंका कर रहे थे कि यह कौन-सा उल्टा रिवाज है। मदनसिंह ध्यान से देख रहे थे कि थाल में कितने रुपये हैं।

बारात जनवासे को चली। रसद का सामान बंटने लगा। चारों ओर कोलाहल होने लगा। कोई कहता था, मुझे घी कम मिला, कोई गोहार लगाता था कि मुझे उपले नहीं दिए गए। लाला बैजनाथ शराब के लिए जिद कर रहे थे।

सामान बंट चुका, तो लोगों ने उपले जलाए और हांडियां चढ़ाईं। धुएं से गैस का प्रकाश पीला पड़ गया।

सदन मसनद लगाकर बैठा। महफिल सज गई। काशी के संगीत-समाज ने श्याम-कल्याण की धुन छेड़ी।

सहस्रों मनुष्य शामियाने के चारो ओर खड़े थे। कुछ लोग मिर्जई पहने, पगडी बाधे फर्श पर बैठे थे। लोग एक-दूसरे से पूछते थे कि डेरे कहां है? कोई इस छोलदारी मे झाकता था, कोई उस छोलदारी में और कौतूहल से कहता था, कैसी बारात है कि एक डेरा भी नही, कहा के कंगले हैं। यह बड़ा-सा शामियाना काहे को खड़ा कर रखा है। मदनसिह ये बाते सुन-सुनकर मन में पद्मसिंह के ऊपर कुड़बुड़ा रहे थे और पद्मसिंह लज्जा और भय के मारे उनके सामने न आ सकते थे।

इतने में लोगों ने शामियाने पर पत्थर फेकना शुरू किया। लाला बैजनाथ उठकर छोलदारी मे भागे। कुछ लोग उपद्रवकारियों को गाली देने लगे। एक हलचल-सी मच गई। कोई इधर भागता, कोई उधर, कोई गाली बकता था, कोई मार-पीट करने पर उतारू था। अकस्मात् एक दीर्घकाय पुरुष सिर मुड़ाए, भस्म रमाए, हाथ में एक त्रिशूल लिए आकर महफिल मे खड़ा हो गया। उसके लाल नेत्र दीपक के समान जल रहे थे और मुख-मडल मे प्रतिभा की ज्योति स्फुटित हो रही थी। महफिल मे सन्नाटा छा गया। सब लोग आखे फाड-फाड़कर महात्मा की ओर ताकने लगे। यह साधु कौन है? कहां से आ गया?

साधु ने त्रिशूल ऊंचा किया और तिरस्कारपूर्ण स्वर से बोला—हा शोक ! यहा कोइ नाच नहीं, कोई वेश्या नहीं, सब बाबा लोग उदास बैठे हैं। श्याम-कल्याण की धुन कैसी है, पर कोई नहीं सुनता, किसी के कान नहीं, सब लोग वेश्या का नाच देखना चाहते है। या तो उन्हे नाच दिखाओ या अपने सर तुड़वाओ। चलो, मैं नाच दिखाऊं, देवताओं का नाच देखना चाहते हो? देखो, सामने वृक्ष की पत्तियों पर निर्मल चन्द्र की किरणें कैसी नाच रही हैं। देखो, तालाब में कमल के फूल पर पानी की बूंदें कैसी नाच रही हैं। जंगल में जाकर देखो, मोर पर फैलाए कैसा नाच रहा है ! क्यों, यह देवताओं का नाच पसंद नहीं है? अच्छा चलो, पिशाचों का नाच दिखाऊं। तुम्हारा पड़ोसी दरिद्र किसान जमींदार के जूते खाकर कैसा नाच रहा है ! तुम्हारे भाइयो के अनाथ बालक क्षुधा से बावले होकर कैसे नाच रहे हैं ! अपने घर में देखो, विधवा भावज की आखो में शोक और वेदना के आंसू कैसे नाच रहे हैं ! क्या यह नाच देखना पसंद नही? तो अपने मन को देखो, कपट और छल कैसा नाच रहा है ! सारा संसार नृत्यशाला है। उसमे लोग अपना-अपना नाच नाच रहे हैं। क्या यह देखने के लिए तुम्हारी आंखें नहीं हैं? आओ, मैं तुम्हें शंकर का तांडव नृत्य दिखाऊं। किंतु तुम वह नृत्य देखने योग्य नहीं हो। तुम्हारी काम-तृष्णा को इस नाच का क्या आनंद मिलेगा ! हा ! अज्ञान की मूर्तियो ! हा ! विषयभोग के सेवको ! तुम्हें नाच

का नाम लेते लज्जा नहीं आती ! अपना कल्याण चाहते हो तो इस रीति को मिटाओ। कुवासना को तजो, वेश्या-प्रेम का त्याग करो।

सब लोग मूर्तिवत् बैठे महात्मा की उन्मत्त वाणी सुन रहे थे कि इतने में वह अदृश्य हो गए और सामने वाले आम के वृक्षों की आड़ से उनके मधुर गान की ध्वनि सुनाई देने लगी। धीरे-धीरे वह भी अंधकार में विलीन हो गई, जैसे रात्रि में चिंता रूपी नाव निद्रासागर में विलीन हो जाती है। जैसे जुआरियों का जत्था पुलिस के अधिकारी को देखकर सन्नाटे में आ जाता है, कोई रुपये-पैसे समेटने लगता है, कोई कौड़ियों को छिपा लेता है, उसी प्रकार साधु के आकस्मिक आगमन, उनके तेजस्वी स्वरूप और अलौकिक उपदेशों ने लोगों को एक अव्यक्त अनिष्ट के भय से शंकित कर दिया। उपद्रवी दुर्जनों ने चुपके से घर की राह ली और जो लोग महफिल में बैठे अधीर हो रहे थे और मन में पछता रहे थे कि व्यर्थ यहां आए, वह ध्यानूपर्वक गाना सुनने लगे। कुछ सरल हृदय मनुष्य महात्मा के पीछे दौड़े, पर उनका कहीं पता न मिला।

पंडित मदनसिंह अपनी छोलदारी में बैठे हुए गहने-कपड़े सहेज रहे थे कि मुंशी बैजनाथ दौड़े हुए आए और बोले–भैया ! अनर्थ हो गया। आपने यहां नाहक ब्याह किया।

मदनसिंह ने चकित होकर पूछा–क्यों, क्या हुआ, क्या कुछ गड़बड़ है?

'हां, अभी इसी गांव का एक आदमी मुझसे मिला था, उसने इन लोगों की ऐसी कलई खोली कि मेरे होश उड़ गए।'

'क्या यह लोग नीच कुल के हैं?'

'नीच कुल के तो नहीं हैं, लेकिन मामला कुछ गड़बड़ है। कन्या का पिता हाल में जेलखाने से छूटकर आया है और कन्या की एक बहन वेश्या हो गई है। दालमंडी में जो सुमनबाई है, वह इसी कन्या की सगी बहन है।'

मदनसिंह को मालूम हुआ कि वह किसी पेड़ पर से फिसल पड़े। आंखें फाड़कर बोले–वह आदमी इन लोगों का कोई बैरी तो नहीं? विघ्न डालने के लिए लोग बहुधा झूठमूठ कलंक लगा दिया करते हैं।

पद्मसिंह–हां, ऐसी ही बात मालूम होती है।

बैजनाथ–जी नहीं, वह तो कहता था, मैं उन लोगों के मुंह पर कह दूं।

मदनसिंह–तो क्या लड़की उमानाथ की नहीं है?

बैजनाथ–जी नहीं, उनकी भांजी है। वह जो एक बार थानेदार पर मुकदमा चला था, वही थानेदार उमानाथ के बहनोई हैं, कई महीनों से छूटकर आए हैं।

मदनसिंह ने माथा पकड़कर कहा–ईश्वर ! तुमने कहां लाकर फंसाया?

पद्मसिंह–उमानाथ को बुलाना चाहिए।

इतने में पंडित उमानाथ स्वयं एक नाई के साथ आते हुए दिखाई दिए। वधू के लिए गहने-कपड़े की जरूरत थी। ज्योंही वह छोलदारी के द्वार पर आकर खड़े हुए कि मदनसिंह जोर से झपटे और उनके दोनों हाथ पकड़कर झकझोरते हुए बोले–क्योंजी तिलकधारी महाराज, तुम्हें संसार में और कोई न मिलता था कि तुमने अपने मुख की कालिख मेरे मुंह लगाई?

बिल्ली के पंजे में फंसे हुए चूहे की तरह दीन भाव से उमानाथ ने उत्तर दिया–महाराज, मुझसे कौन-सा अपराध हुआ है?

मदनसिंह–तुमने वह कर्म किया है कि अगर तुम्हारा गला काट लूं, तो भी पाप न लगे।

जिस कन्या की बहन पतिता हो जाय, उसके लिए तुम्हें मेरा ही घर ताकना था।

उमानाथ ने दबी हुई आवाज से कहा—महाराज, शत्रु-मित्र सब किसी के होते हैं। अगर किसी ने कुछ कलंक की बात कही हो तो आपको उस पर विश्वास न करना चाहिए। उस आदमी को बुलवाइए। जो कुछ कहना हो, मेरे मुंह पर कहे।

पद्मसिंह—हां, ऐसा होना बहुत संभव है। उस आदमी को बुलाना चाहिए।

मदनसिंह ने भाई की ओर कड़ी निगाह से देखकर कहा—तुम क्यों बोलते हो जी। (उमानाथ से) संभव है, तुम्हारे शत्रु ही ने कहा हो, लेकिन बात सच्ची है या नहीं?

'कौन बात?'

'यही कि सुमन कन्या की सगी बहन है।'

उमानाथ का चेहरा पीला पड़ गया। लज्जा से सिर झुक गया। नेत्र ज्योतिहीन हो गए। बोले—महाराज....और उनके मुख से कुछ न निकला।

मदनसिंह ने गरजकर कहा—स्पष्ट क्यों नहीं बोलते? यह बात सच है या झूठ?

उमानाथ ने फिर उत्तर देना चाहा, किंतु 'महाराज' के सिवा और कुछ न कह सके।

मदनसिंह को अब कोई संदेह न रहा। क्रोध की अग्नि प्रचंड हो गई। आंखों से ज्वाला निकलने लगी। शरीर कांपने लगा। उमानाथ की ओर आग्नेय दृष्टि से ताककर बोले—अब अपना कल्याण चाहते हो, तो मेरे सामने से हट जाओ। धूर्त्त, दगाबाज, पाखंडी कहीं का ! तिलक लगाकर पंडित बना फिरता है, चांडाल ! अब तेरे द्वार पर पानी न पिऊंगा। अपनी लड़की को जंतर बनाकर गले में पहन—यह कहकर मदनसिंह उठे और उस छोलदारी में चले गए जहां सदन पड़ा सो रहा था और जोर से चिल्लाकर कहारों को पुकारा।

उनके जाने पर उमानाथ पद्मसिंह से बोले—महाराज, किसी प्रकार पंडितजी को मनाइए। मुझे कहीं मुंह दिखाने को जगह न रहेगी। सुमन का हाल तो आपने सुना ही होगा। उस अभागिन ने मेरे मुंह में कालिख लगा दी। ईश्वर की यही इच्छा थी, पर अब गड़े हुए मुरदे को उखाड़ने से क्या लाभ होगा? आप ही न्याय कीजिए, मैं इस बात को छिपाने के सिवा और क्या करता? इस कन्या का विवाह तो करना ही था। वह बात छिपाए बिना कैसे बनता? आपसे सत्य कहता हूं कि मुझे यह समाचार संबंध ठीक हो जाने के बाद मिला।

पद्मसिंह ने चिंतित स्वर से कहा—भाई साहब के कान में बात न पड़ी होती, तो यह सब कुछ न होता। देखिए, मैं उनके पास जाता हूं, पर उनका राजी होना कठिन मालूम होता है।

मदनसिंह कहारों से चिल्लाकर कह रहे थे कि जल्द यहां से चलने की तैयारी करो। सदन भी अपने कपड़े समेट रहा था। उसके पिता ने सब हाल उससे कह दिया था।

इतने में पद्मसिंह ने आकर आग्रहपूर्वक कहा—भैया, इतनी जल्दी न कीजिए। जरा सोच-समझकर काम कीजिए। धोखा तो हो ही गया, पर यों लौट चलने में तो और भी जग-हंसाई है।

सदन ने चाचा की ओर अवहेलना की दृष्टि से देखा और मदनसिंह ने आश्चर्य से।

पद्मसिंह—दो-चार आदमियों से पूछ देखिए, क्या राय है?

मदनसिंह—क्या कहते हो, क्या जान-बूझकर जीती मक्खी निगल जाऊं?

पद्मसिंह—इसमें कम-से-कम जगहंसाई तो न होगी।

मदनसिंह—तुम अभी लड़के हो, ये बातें न जानो? जाओ, लौटने का सामान करो। इस वक्त जग-हंसाई अच्छी है। कुल में सदा के लिए कलंक तो न लगेगा।

पद्मसिंह—लेकिन यह तो विचार कीजिए कि कन्या की क्या गति होगी। उसने क्या अपराध किया है?

मदनसिंह ने झिड़ककर कहा—तुम हो निरे मूर्ख। चलकर डेरे लदाओ। कल को कोई बात पड़ जायगी, तो तुम्हीं गालियां दोगे कि रुपये पर फिसल पड़े। संसार के व्यवहार में वकालत से काम नहीं चलता।

पद्मसिंह ने कातर नेत्रों से देखते हुए कहा—मुझे आपकी आज्ञा से इंकार नहीं है, लेकिन शोक है कि इस कन्या का जीवन नष्ट हो जाएगा।

मदनसिंह—तुम खामख्वाह क्रोध दिलाते हो। लड़की का मैंने ठेका लिया है? जो कुछ उसके भाग्य में बदा होगा, वह होगा। मुझे इससे क्या प्रयोजन?

पद्मसिंह ने नैराश्यपूर्ण भाव से कहा—सुमन का आना-जाना बिल्कुल बंद है। इन लोगों ने उसे त्याग दिया है।

मदनसिंह—मैंने तुम्हें कह दिया कि मुझे गुस्सा न दिलाओ। तुम्हें ऐसी बात मुझसे कहते हुए लज्जा नहीं आती? बड़े सुधारक की दुम बने हो। एक हरजाई की बहन से अपने बेटे का ब्याह कर लूं ! छिः-छिः तुम्हारी बुद्धि कैसे भ्रष्ट हो गई ।

पद्मसिंह ने लज्जित होकर सिर झुका लिया। उनका मन कह रहा था कि भैया इस समय जो कुछ कह रहे हैं, वही ऐसी अवस्था में मैं भी करता। लेकिन भयंकर परिणाम का विचार करके उन्होंने एक बार फिर बोलने का साहस किया। जैसे कोई परीक्षार्थी गजट में अपना नाम न पाकर निराश होते हुए भी शोधपत्र की ओर लपकता है, उसी प्रकार अपने को धोखा देकर पद्मसिंह भाई साहब से दबते हुए बोले—सुमनबाई भी अब विधवाश्रम में चली गई है।

पद्मसिंह सिर नीचा किए बातें कर रहे थे। भाई से आंखें मिलाने का हौसला न होता था। यह वाक्य मुंह से निकला ही था कि अकस्मात् मदनसिंह ने एक जोर से धक्का दिया कि वह लड़खड़ाकर गिर पड़े। चौंककर सिर उठाया, मदनसिंह खड़े क्रोध से कांप रहे थे ! तिरस्कार के वे कठोर शब्द जो उनके मुंह से निकलने वाले थे, पद्मसिंह को भूमि पर गिरते देखकर पश्चात्ताप से दब गए थे। मदनसिंह की इस समय वही दशा थी, जब क्रोध में मनुष्य अपना ही मांस काटने लगता है।

यह आज जीवन में पहला अवसर था कि पद्मसिंह ने भाई के हाथों धक्का खाया। सारी बाल्यावस्था बीत गई, बड़े-बड़े उपद्रव किए, पर भाई ने कभी हाथ न उठाया। वह बच्चों के सदृश्य रोने लगे, सिसकते थे, हिचकियां लेते थे, पर हृदय में लेशमात्र भी क्रोध न था। केवल यह दुख था कि जिसने सर्वदा प्यार किया, कभी कड़ी बात नहीं कही, उसे आज मेरे दुराग्रह से ऐसा दुख पहुंचा। यह हृदय में जलती हुई अग्नि की ज्वाला है, यह लज्जा, अपमान और आत्मग्लानि का प्रत्यक्ष स्वरूप है, यह हृदय में उमड़े हुए शोक-सागर का उद्वेग है। सदन ने लपककर पद्मसिंह को उठाया और अपने पिता की ओर क्रोध से देखकर कहा—आप तो जैसे बावले हो गए हैं। !

इतने में कई आदमी आ गए और पूछने लगे—महाराज, क्या बात हुई है? बारात को लौटाने का हुकुम क्यों देते हैं? ऐसा कुछ करो कि दोनों ओर की मर्यादा बनी रहे, अब उनकी और आपकी इज्जत एक है। लेन-देन में कुछ कोर-कसर हो, तो तुम्हीं दब जाओ, नारायण ने तुम्हें क्या नहीं दिया है। इनके धन से थोड़े ही धनी हो जाओगे? मदनसिंह ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

महफिल में खलबली पड़ गई। एक दूसरे से पूछता था, यह क्या बात है? छोलदारी के द्वार पर आदमियों की भीड़ बढ़ती ही जाती थी।

महफिल में कन्या की ओर के भी कितने ही आदमी थे। वह उमानाथ से पूछने लगे—भैया, ये लोग क्यों बारात लौटाने पर उतारू हो रहे हैं? जब उमानाथ ने कोई संतोषजनक उत्तर न दिया, तो वे सब-के-सब आकर मदनसिंह से विनती करने लगे—महाराज, हमसे ऐसा क्या अपराध हुआ है? और जो दंड चाहे दीजिए, पर बारात न लौटाइए, नहीं तो गांव बदनाम हो जायगा। मदनसिंह ने उनसे केवल इतना कहा—इसका कारण उमानाथ से पूछो, वही बतलाएंगे।

पंडित कृष्णचन्द्र ने जब से सदन को देखा था, आनंद से फूले न समाते थे। विवाह का मुहूर्त निकट था। वह वर आने की राह देख रहे थे कि इतने में कई आदमियों ने आकर उन्हें खबर दी। उन्होंने पूछा—क्यों लौटे जाते हैं? क्या उमानाथ से कोई झगड़ा हो गया है?

लोगों ने कहा—हमें यह नहीं मालूम, उमानाथ तो वहीं खड़े मना रहे हैं।

कृष्णचन्द्र झल्लाए हुए बारात की ओर चले। बारात का लौटना क्या लड़कों का खेल है? यह कोई गुड्डे-गुड्डी का ब्याह है क्या? अगर विवाह नहीं करना था, तो यहां बारात क्यों लाए? देखता हूं, कौन बारात को फेर ले जाता है? खून की नदी बहा दूंगा। कृष्णचन्द्र अपने साथियों से ऐसी ही बातें करते, कदम बढ़ाते हुए जनवासे में पहुंचे और ललकारकर बोले—कहां हैं पंडित मदनसिंह? महाराज, जरा बाहर आइए।

मदनसिंह यह ललकार सुनकर बाहर निकल आए और दृढ़ता के साथ बोले—कहिए, क्या कहना है?

कृष्णचन्द्र—आप बारात क्यों लौटाए लिए जाते हैं?

मदनसिंह—अपना मन ! हमें विवाह नहीं करना है।

कृष्णचन्द्र—आपको विवाह करना होगा। यहां आकर आप ऐसे नहीं लौट सकते।

मदनसिंह—आपको जो करना हो, कीजिए। हम विवाह नहीं करेंगे।

कृष्णचन्द्र—कोई कारण?

मदनसिंह—कारण क्या आप नहीं जानते?

कृष्णचन्द्र—जानता तो आपसे क्यों पूछता?

मदनसिंह—तो पंडित उमानाथ से पूछिए।

कृष्णचन्द्र—मैं आपसे पूछता हूं?

मदनसिंह—बात दबी रहने दीजिए। मैं आपको लज्जित नहीं करना चाहता।

कृष्णचन्द्र—अच्छा समझा, मैं जेलखाने हो आया हूं। यह उसका दंड है। धन्य है आपका न्याय।

मदनसिंह—इस बात पर बारात नहीं लौट सकती थी।

कृष्णचन्द्र—तो उमानाथ से विवाह का कर देने में कुछ कसर हुई होगी?

मदनसिंह—हम इतने नीच नहीं हैं।

कृष्णचन्द्र—फिर ऐसी कौन-सी बात है?

मदनसिंह—हम कहते हैं, हमसे न पूछिए।

कृष्णचन्द्र—आपको बतलाना पड़ेगा। दरवाजे पर बारात लाकर उसे लौटा ले जाना क्या आपने लड़कों का खेल समझा है? यहां खून की नदी बह जाएगी। आप इस भरोसे में न रहिएगा।

मदनसिंह—इसकी हमको चिंता नहीं है। हम यहां मर जाएंगे, लेकिन आपकी लड़की

से विवाह न करेंगे। आपके यहां अपनी मर्यादा खोने नहीं आए हैं?

कृष्णचन्द्र–तो क्या हम आपसे नीच हैं?

मदनसिंह–हां, आप हमसे नीच हैं।

कृष्णचन्द्र–इसका कोई प्रमाण?

मदनसिंह–हां, है।

कृष्णचन्द्र–तो उसके बताने में आपको क्यों संकोच होता है?

मदनसिंह–अच्छा, तो सुनिए, मुझे दोष न दीजिएगा। आपकी लड़की सुमन जो इस कन्या की सगी बहन है, पतिता हो गई है। आपका जी चाहे, तो उसे दालमंडी में देख आइए।

कृष्णचन्द्र ने अविश्वास की चेष्टा करके कहा–यह बिल्कुल झूठ है। पर क्षण-मात्र में उन्हें याद आ गया कि जब उन्होंने उमानाथ से सुमन का पता पूछा था, तो उन्होंने टाल दिया था; कितने ही ऐसे कटाक्षों का अर्थ समझ में आ गया, जो जाह्नवी बात-बात में उन पर करती रहती थी। विश्वास हो गया और उनका सिर लज्जा से झुक गया। वह अचेत होकर भूमि पर गिर पड़े। दोनों तरफ के सैकड़ों आदमी वहां खड़े थे, लेकिन सब-के-सब सन्नाटे में आ गए। इस विषय में किसी का मुंह खोलने का साहस नहीं हुआ।

आधी रात होते-होते डेरे-खेमे सब उखड़ गए। उस बगीचे में अंधकार छा गया। गीदड़ों की सभा होने लगी और उल्लू बोलने लगे।

चौंतीस

विट्ठलदास ने सुमन को विधवाश्रम में गुप्त रीति से रखा था। प्रबंधकारिणी सभा के किसी भी सदस्य को इत्तिला न दी थी। आश्रम की विधवाओं से उसे विधवा बताया था। लेकिन अबुलवफा जैसे टोहियों से यह बात बहुत दिनों तक गुप्त न रही। उन्होंने हिरिया को ढूंढ़ निकाला और उससे सुमन का पता पूछ लिया। तब अपने अन्य रसिक मित्रों को भी इसकी सूचना दे दी। इसका परिणाम यह हुआ कि उन सज्जनों की आश्रम पर विशेष रीति से कृपादृष्टि होने लगी। कभी सेठ चिम्मनलाल आते, कभी सेठ बलभद्रदास, कभी पंडित दीनानाथ विराजमान हो जाते। इन महानुभावों को अब आश्रम की सफाई और सजावट, उसकी आर्थिक दशा, उसके प्रबंध आदि विषयों से अद्भुत सहानुभूति हो गई थी। रात-दिन आश्रम की शुभकामना में मग्न रहते थे।

विट्ठलदास बड़े संकट में पड़े हुए थे। कभी विचार करते कि इस पद से इस्तीफा दे दूं। क्या मैंने ही इस आश्रम का जिम्मा लिया है? कमेटी में और कितने ही मनुष्य हैं, जो इस काम को संभाल सकते हैं। वह जैसा उचित समझेंगे, इसका प्रबंध करेंगे, मुझे अपनी आंखों से तो यह अत्याचार न देखना पड़ेगा। कभी सोचते, क्यों न एक दिन इन दुराचारियों को फटकारूं? फिर जो कुछ होगा, देखा जायगा। लेकिन जब शांत चित्त होकर देखते, तो उन्हें सब्र से काम लेने के सिवा और कोई उपाय न सूझता। हां, उन लोगों से बड़ी रुखाई से बातचीत करते, उनके प्रस्तावों की उपेक्षा किया करते और अपने भावों से यह प्रकट करना चाहते थे कि मुझे तुम

लोगों का यहां आना असह्य है। किंतु गरज के बावले मनुष्य देखकर भी अनदेखी कर जाते हैं। दोनों सेठ विनय और शील की साक्षात् मूर्ति बन जाते। तिवारीजी ऐसे सरल बन जाते, मानो उन्हें कभी क्रोध आ ही नहीं सकता। इस कूटनीति के आगे विट्ठलदास की अक्ल कुछ काम न करती !

एक दिन प्रात:काल विट्ठलदास इन्हीं चिंताओं में बैठे हुए थे कि एक फिटन आश्रम के द्वार पर आकर रुकी। उसमें से कौन लोग उतरे? अबुलवफा और अब्दुललतीफ।

विट्ठलदास मन में तिलमिलाकर रह गए। अभी सेठों ही का रोना था कि एक और बला आ पड़ी। जी में तो आया कि दोनों को दुत्कार दूं, पर धैर्य से काम लिया।

अबुलवफा ने कहा—आदाब अर्ज है, बंदानवाज। आज कुछ तबीयत परेशान है क्या? वल्लाह आपका ईसार देखकर रूह को सरूर हो जाता है। खुशनसीब है कौम, जिसमें आप जैसे खादिम मौजूद हैं। एक हमारी खुदगरज, खुशनुमा कौम है, जिसे इन बातों का एहसास ही नहीं। जो लोग बड़े नेकनाम हैं, वह भी गरज से पाक नहीं, क्यों मुंशी अब्दुललतीफ साहब?

अब्दुललतीफ—जनाब, हमारी कौम की कुछ न कहिए ! खुदगरज, खुदफरोश, खुदमतलब, कजफहम, कजरौ, कजबीं जो कहिए, थोड़ा है। बड़ों-बड़ों को देखिए, रंगे हुए सियार हैं, रिया का जामा पहने हुए। आपकी जात मसदरे बरकात है। ऐसा मालूम होता है कि खुदाताला ने मलायक में से इंतखाब करके आपकी इस खुशनसीब कौम पर नाजिल किया है।

अबुलवफा—आपकी पाकनफसी दिलों पर खामख्वाह असर डालती है। क्यों आपके यहां कुछ सोजनकारी और बेलबूटे के काम तो होते ही होंगे? मेरे एक दोस्त ने सोजनकारी की कई दर्जन चादरों की फरमाइश लिख भेजी है। हालांकि शहर में कई जगह यह काम होता है, लेकिन मैंने यह खयाल किया कि आश्रम को प्राइवेट काम करने वालों पर तरजीह होनी चाहिए। आपके यहां कुछ नमूने मौजूद हों, तो दिखाने की तकलीफ कीजिए।

विट्ठलदास—मेरे यहां ये सब काम नहीं होते।

अबुलवफा—मगर होने की जरूरत है। आप दरियाफ्त कीजिए, कुछ मस्तूरात जरूर यह काम जानती होंगी। हमें ऐसी कोई उजलत नहीं है, फिर हाजिर होंगे। एक, दो, चार, दस बार आने में हमको इंकार नहीं है। आप अपना सब कुछ निसार कर रहे हैं, तो क्या मुझसे इतना भी न होगा? मैं इन मुआमलों में कौमी तफरीक मुनासिब नहीं समझता।

विट्ठलदास—मैं इस मेहरबानी के लिए आपका मशकूर हूं। लेकिन कमेटी ने यह फैसला कर दिया है कि यहां इस किस्म का कोई काम न कराया जाय। इस वजह से मजबूर हूं।

यह कहकर विट्ठलदास उठ खड़े हुए। अब दोनों सज्जनों को लौट जाने के सिवा और कोई उपाय न सूझा। मन में विट्ठलदास को गालियां देते हुए फिटन पर सवार हो गए।

लेकिन अभी फिटन की आवाज कान में आ रही थी कि सेठ चिम्मनलाल की मोटरकार आ पहुंची। सेठजी शान से उतरे । विट्ठलदास से हाथ मिलाया और बोले—क्यों बाबू साहब ! नाटक के विषय में आपने क्या राय की? शकुंतला नाटक भर्थरी का सबसे उत्तम ग्रंथ है। इसे अंग्रेज बहुत पसंद करते हैं। जरूर खेलिए। कुछ पार्ट याद कराए हों, तो मैं भी सुनूं।

कभी-कभी कठिनता में हमको ऐसी चालें सूझ जाती हैं, जो सोचने से ध्यान में नहीं आतीं। विट्ठलदास ने सोचा था कि इन सेठजी से कैसे पिंड छुड़ाऊं, लेकिन कोई उपाय न सूझा। इस समय अकस्मात् उन्हें एक बात सूझ गई। बोले—जी नहीं, इस नाटक के खेलने की सलाह

नहीं हुई। मैंने इस मुआमिले में बड़े साहब से राय ली थी। उन्होंने मना कर दिया। समझ में नहीं आता यह लोग पोलिटिक्स का क्या अर्थ लगाते हैं। आज बातों-ही-बातों में मैंने बड़े साहब से आश्रम के लिए कुछ वार्षिक सहायता की प्रार्थना की तो क्या बोले कि मैं पोलिटिकल कार्यों में सहायता नहीं दे सकता। मैं उनकी बात सुनकर चकित हो गया। पूछा, आप आश्रम को किस विचार से पोलिटिकल संस्था समझते हैं। इसका केवल यह उत्तर दिया कि मैं इसका उत्तर नहीं देना चाहता।

चिम्मनलाल के मुख पर हवाइयां उड़ने लगीं। बोले-तो साहब ने आश्रम को भी पोलिटिकल समझ लिया है !

विट्ठलदास-जी हां, साफ कह दिया।

चिम्मनलाल-तो क्यों महाशय, जब उनका यह विचार है, तो यहां आने-जाने वालों की देखभाल भी अवश्य होती होगी?

विट्ठलदास-जी हां, और क्या? लेकिन इससे क्या होता है? जिन्हें जाति से प्रेम है, वे इन बातों से कब डरते हैं?

चिम्मनलाल-जी नहीं, मैं उन जाति-प्रेमियों में से नहीं। अगर मुझे मालूम हो जाय कि यह लोग रामलीला को पोलिटिकल समझते हैं, तो उसे भी बंद कर दूं। पोलिटिकल के नाम से मेरा रोआं थरथराने लगता है। आप मेरे घर में देख आइए, भगवद्गीता की एक कापी भी नहीं है। मैंने अपने आदमियों को कड़ी ताकीद कर दी है कि बाजार से चीजें पत्ते में लाया करें, मैं रद्दी समाचार-पत्रों की पुड़िया तक घर में नहीं आने देता। महाराणा प्रताप की एक पुरानी तस्वीर कमरे में थी, उसे मैंने उतारकर संदूक में बंद कर दिया है। अब मुझे आज्ञा दीजिए। यह कहकर वह तोंद संभलाते हुए मोटर की ओर लपके। विट्ठलदास मन में खूब हंसे। अच्छी चाल सूझी। लेकिन इसका बिल्कुल विचार न किया था कि झूठ कितना बोलना पड़ा और इससे आत्मा का कितना ह्रास हुआ। यह सेवा धर्म का पुतला निज के व्यवहार में झूठ और चालबाजी से कोसों दूर भागता था, लेकिन जातीय कार्यों में अवसर पड़ने पर उनकी सहायता लेने में संकोच न करता था।

चिम्मनलाल के जाने के बाद विट्ठलदास ने चंदे का रजिस्टर उठाया और चंदा वसूल करने को उठे। लेकिन कमरे से बाहर भी न निकले थे कि सेठ बलभद्रदास को पैर-गाड़ी पर आते देखा। क्रोध से शरीर जल उठा। रजिस्टर पटक दिया और लड़ने पर उतारू हो गए।

बलभद्रदास ने आगे बढ़कर कहा-कहिए महाशय, कल मैंने जो पौधे भेजे थे, वह आपने लगवा दिए या नहीं? जरा मैं देखना चाहता हूं। कहिए तो अपना माली भेज दूं?

विट्ठलदास ने उदासीन भाव से कहा- जी नहीं। आपको माली भेजने की आवश्यकता नहीं, और न वह पौधे यहां लग सकते हैं।

बलभद्रदास-क्यों, लग नहीं सकते? मेरा माली आकर सब ठीक कर देगा। आज ही लगवा दीजिए, नहीं तो वे सब सूख जाएंगे।

विट्ठलदास-सूख जाएं चाहे रहें, पर वह यहां नहीं लग सकते।

बलभद्रदास-नहीं लगाने थे, तो पहले ही कह दिया होता। मैंने सहारनपुर से मंगवाए थे।

विट्ठलदास-बरामदे में पड़े हैं, उठवाकर ले जाइए।

सेठ बलभद्रदास अभिमानी स्वभाव के मनुष्य थे। यों वे शील और विनय के पुतले थे,

लेकिन जरा किसी ने अकड़कर बात की, जरा भी निगाह बदली कि वे आग हो जाते थे। अत्यंत निर्भीक राजनीति-कुशल पुरुष थे। इन गुणों के कारण जनता उन पर जान देती थी। उसे उन पर पूरा विश्वास था। उसे निश्चय था कि न्याय और सत्य के विषय में ये कभी कदम पीछे न उठाएंगे, अपने स्वार्थ और सम्मान के लिए जनता का अहित न सोचेंगे। डॉक्टर श्यामाचरण पर जनता का यह विश्वास न था। जनता की दृष्टि में विद्या, बुद्धि और प्रतिभा का उतना मूल्य नहीं होता, जितना चरित्र-बल का।

विट्ठलदास की यह रूखी बातें सुनकर सेठ बलभद्रदास के तेवरों पर बल पड़ गए। तनकर बोले–आज आप इतने अनमने से क्यों हो रहे हैं?

'मुझे मीठी बातें करने का ढंग नहीं आता।'

'मीठी बातें न कीजिए, लेकिन लाठी न मारिए।'

'मै आपसे शिष्टाचार का पाठ नहीं पढ़ना चाहता।'

'आप जानते हैं, मैं भी प्रबंधकारिणी सभा का मेंबर हूं।'

'जी हां, जानता हूं।'

'चाहता तो प्रधान होता।'

'जानता हूं।'

'मेरी सहायता किसी से कम नहीं है।'

'इन पुरानी बातों को याद दिलाने की क्या जरूरत?'

'चाहूं तो आश्रम को मिटा दूं।'

'असंभव।'

'सभा के सब मेंबर मेरे इशारे पर नाच सकते हैं।'

'संभव है।'

'एक दिन में इसका कहीं पता न चले।'

'असंभव।'

'आप किस घमंड में भूले हुए हैं।'

'ईश्वर के भरोसे पर।'

सेठजी आश्रम की ओर कुपित नेत्रों से ताकते हुए पैर-गाड़ी पर सवार हो गए। लेकिन विट्ठलदास पर उनकी धमकियों का कुछ असर न हुआ। उन्हें निश्चय था कि ये सभा के मेंबरों से आश्रम के विषय में कुछ न कहेंगे। उनका अभिमान उन्हें इतना नीचे न गिरने देगा। संभव है, वह इस झेंप को मिटाने के लिए मेंबरों से आश्रम की प्रशंसा करें, लेकिन यह आग कभी-न-कभी भड़केगी अवश्य, इसमें संदेह नहीं था। अभिमान अपने अपमान को नहीं भूलता। इसकी शंका होने पर भी विट्ठलदास को वह क्षोभ नहीं था, जो किसी झगड़े के बाद मेघ के समान हृदयाकाश पर छा जाया करता है। इसके प्रतिकूल उन्हें अपने कर्त्तव्य के पूरा करने का संतोष था, और वह पछता रहे थे कि मैंने इसमें इतना विलंब क्यों किया? इस संतोष से वह ऐसी मौज में आए कि ऊंचे स्वर से गाने लगे–

प्रभुजी मोहि काहे की लाज ।
जन्म-जन्म यों ही भरमायो अभिमानी बेकाज !
प्रभुजी मोहि काहे की लाज ।

इतने में उन्हें पद्मसिंह आते दिखाई दिए। उनके मुख से चिंता और नैराश्य झलक रहा था, मानो अभी रोकर आंसू पोंछे हैं। विट्ठलदास आगे बढ़कर उनसे मिले और पूछा–बीमार थे क्या? बिल्कुल पहचाने नहीं जाते।

पद्मसिंह–जी नहीं, बीमार तो नहीं हूं, हां, परेशान बहुत रहा।

विट्ठलदास–विवाह कुशलतापूर्वक हो गया?

पद्मसिंह ने छत की ओर ताकते हुए कहा–विवाह का कुछ समाचार न पूछिए। विवाह क्या हुआ, एक अबला कन्या का जीवन नष्ट कर आए। वह इसी सुमनबाई की बहन निकली। भैया को ज्योंही मालूम हुआ, वे द्वार से बारात लौटा लाए।

विट्ठलदास ने लंबी सांस लेकर कहा–यह तो बड़ा अन्याय हुआ। आपने अपने भाई साहब को समझाया नहीं?

पद्मसिंह–अपने से जो कुछ बन पड़ा, सब करके हार गया।

विट्ठलदास–देखिए, अब बेचारी लड़की की क्या गति होती है। सुमन सुनेगी तो रोएगी।

पद्मसिंह–कहिए, यहां की क्या खबरें हैं? सुमन के आने से विधवाओं में हलचल तो नहीं मची? वे उससे घृणा तो अवश्य ही करती होंगी?

विट्ठलदास–बात खुल जाए तो आश्रम खाली नजर आए।

पद्मसिंह–और सुमन कैसी रहती है?

विट्ठलदास–ऐसी अच्छी तरह मानो वह सदा आश्रम में ही रही है। मालूम होता है, वह अपने सद्व्यवहार से अपनी कालिमा को धोना चाहती है? सब काम करने को तैयार और प्रसन्नचित्त से। अन्य स्त्रियां सोती ही रहती हैं और वह उनके कमरे में झाड़ू दे जाती है। कई विधवाओं को सीना सिखाती है, कई उससे गाना सीखती हैं। सब प्रत्येक बात में उसी की राय लेती हैं। इस चारदीवारी के भीतर अब उसी का राज्य है। मुझे कदापि ऐसी आशा न थी। यहां उसने कुछ पढ़ना भी शुरू कर दिया है और भाई, मन का हाल तो ईश्वर जानें, देखने में तो अब उसका बिल्कुल कायापलट-सा हो गया है।

पद्मसिंह–नहीं साहब, वह स्वभाव की बुरी स्त्री नहीं है। मेरे यहां महीनों आती रही थी! मेरे घर में उसकी बड़ी प्रशंसा किया करती थीं (यह कहते-कहते झेंप गए)। कुछ ऐसे कुसंस्कार ही हो गए, जिन्होंने उससे यह अभिनय कराए। सच पूछिए तो हमारे पापों का दंड उसे भोगना पड़ा। हां, कुछ उधर का समाचार भी मिला? सेठ बलभद्रदास ने और कोई चाल चली?

विट्ठलदास–हां साहब, वे चुप बैठने वाले आदमी नहीं हैं। आजकल खूब दौड़-धूप हो रही है। दो-तीन दिन हुए हिन्दू मेंबरों की एक सभा भी हुई थी। मैं तो जा न सका, पर विजय उन्हीं लोगों की रही। अब प्रधान के दो वोट मिलाकर उनके पास छः वोट हैं और हमारे पास कुल चार। हां, मुसलमानों के वोट मिलाकर बराबर हो जाएंगे।

पद्मसिंह–तो हमको कम-से-कम एक वोट और मिलना चाहिए। है इसकी कोई आशा?

विट्ठलदास–मुझे तो कोई आशा नहीं मालूम होती।

पद्मसिंह–अवकाश हो तो चलिए, जरा डॉक्टर साहब और लाला भगतराम के पास चलें।

विट्ठलदास–हां, चलिए, मैं तैयार हूं।

पैंतीस

यद्यपि डॉक्टर साहब का बंगला निकट ही था, पर इन दोनों आदमियों ने एक किराए की गाड़ी की। डॉक्टर साहब के यहां पैदल जाना फैशन के विरुद्ध था। रास्ते में विट्ठलदास ने आज के सारे समाचार बढ़ा-चढ़ाकर बयान किए और अपनी चतुराई को खूब दर्शाया।

पद्मसिंह ने यह सुनकर चिंतित भाव से कहा—तो अब हमको और सतर्क होने की जरूरत है। अंत में आश्रम का सारा भार हमीं लोगों पर आ पड़ेगा। बलभद्र अभी चाहे चुप रह जायं, लेकिन इसकी कसर कभी-न-कभी निकालेंगे अवश्य।

विट्ठलदास—मैं क्या करूं? मुझसे यह अत्याचार देखकर रहा नहीं जाता। शरीर में एक ज्वाला-सी उठने लगती है। कहने को ये लोग विद्वान्, बुद्धिमान हैं, नीति-परायण हैं, पर उनके ऐसे कर्म? अगर मुझमें कौशल से काम लेने की सामर्थ्य होती, तो कम-से-कम बलभद्रदास से लड़ने की नौबत न आती।

पद्मसिंह—यह तो एक दिन होना ही था। यह भी मेरे कर्मों का फल है। देखूं, अभी और क्या-क्या गुल खिलते हैं? जब से बारात वापस आई है, मेरी विचित्र दशा हो गई है। न भूख, न प्यास, रात-भर करवटें बदला करता हूं। यही चिंता लगी रहती है कि उस अभागिन कन्या का बेड़ा कैसे पार लगेगा। अगर कहीं आश्रम का भार सिर पर पड़ा, तो जान ही पर बन आएगी। ऐसे अथाह दलदल में फंस गया हूं कि ज्यों-ज्यों ऊपर उठना चाहता हूं और नीचे दबा जाता हूं।

यही बात करते-करते डॉक्टर साहब का बंगला आ गया। दस बजे थे। डॉक्टर साहब अपने सुसज्जित कमरे में बैठे हुए अपनी बड़ी लड़की मिस कान्ति से शतरंज खेल रहे थे। मेज पर दो टेरियर कुत्ते बैठे हुए बड़े ध्यान से शतरंज की चालों को देख रहे थे और कभी-कभी जब उनकी समझ में खिलाड़ियों से कोई भूल हो जाती थी, तो पंजों से मोहरों को उलट-पलट देते थे। मिस कान्ति उनकी इस शरारत पर हंसकर अंग्रेजी में कहती थीं, 'यू नाटी ।'

मेज की बाईं ओर एक आराम-कुर्सी पर सैयद तेगअली साहब विराजमान थे और बीच-बीच में मिस कान्ति को चालें बताते जाते थे।

इतने में हमारे दोनों मित्र जा पहुंचे। डॉक्टर साहब ने उठकर दोनों सज्जनों से हाथ मिलाया। मिस कान्ति ने उनकी ओर दबी निगाह से देखा और मेज पर से एक पत्र उठाकर पढ़ने लगीं।

डॉक्टर साहब ने अंग्रेजी में कहा—मैं आप लोगों से मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ। आइए, आप लोगों को मिस कान्ति से इंट्रोड्यूस करा दूं।

परिचय हो जाने पर मिस कान्ति ने दोनों आदमियों से हाथ मिलाया और हंसती हुई बोली—बाबा अभी आप लोगों का जिक्र कर रहे थे। मैं आपसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुई।

डॉक्टर श्यामाचरण—मिस कान्ति अभी डलहौजी पहाड़ से आई हैं। इनका स्कूल जाड़े में बंद हो जाता है। वहां शिक्षा का बहुत उत्तम प्रबंध है। यह अंग्रेजों की लड़कियों के साथ बोर्डिंग-हाऊस में रहती हैं। लेडी प्रिंसिपल ने अब की इनकी प्रशंसा की है। कान्ति, जरा अपनी लेडी प्रिंसिपल की चिट्ठी इन्हें दिखा दो। मिस्टर शर्मा, आप कान्ति की अंग्रेजी बातें सुनकर दंग रह जाएंगे। (हंसते हुए) यह मुझे कितने ही नए मुहावरे सिखा सकती हैं।

मिस क्रान्ति ने लजाते हुए अपना प्रशंसा-पत्र पद्मसिंह को दिखाया। उन्होंने उसे पढ़कर

कहा—आप लैटिन भी पढ़ती हैं?

डॉक्टर साहब ने कहा—लैटिन में अब की परीक्षा में इन्हें एक पदक मिला है। कल क्लब में कान्ति ने ऐसा अच्छा गेम दिखाया कि अंग्रेज लेडियां दंग रह गईं। हां, अब की बार आप हिन्दू मेंबरों के जलसे में नहीं थे?

पद्मसिंह—जी नहीं, मैं जरा मकान तक चला गया था।

डॉक्टर—आप ही के प्रस्ताव पर विचार किया गया। मैं तो उचित समझता हूं कि अभी उसे बोर्ड में पेश करने की जल्दी न करें। अभी सफलता की बहुत कम आशा है।

तेगअली बोले—जनाब, मुसलमान मेंबरों की तरफ से तो आपको पूरी मदद मिलेगी।

डॉक्टर—हां, लेकिन हिन्दू मेंबरों में तो मतभेद है।

पद्मसिंह—आपकी सहायता हो जाय तो सफलता में कोई संदेह न रहे।

डॉक्टर—मुझे इस प्रस्ताव से पूरी सहानुभूति है, लेकिन आप जानते हैं, मैं गवर्नमेंट का नामजद किया हुआ मेंबर हूं। जब तक यह मालूम न हो जाए कि गवर्नमेंट इस विषय को पसंद करती है या नहीं, तब तक मैं ऐसे सामाजिक प्रश्न पर कोई राय नहीं दे सकता।

विट्ठलदास ने तीव्र स्वर से कहा—जब मेंबर होने से आपके विचार-स्वातंत्र्य में बाधा पड़ती है, तो आपको इस्तीफा दे देना चाहिए।

तीनों आदमियों ने विट्ठलदास को उपेक्षा की दृष्टि से देखा। उनका कथन असंगत था। तेगअली ने व्यंग्य भाव से कहा—इस्तीफा दे दें, तो सम्मान कैसे हो? लाट साहब के बराबर कुर्सी पर कैसे बैठें? आनरेबल कैसे कहलाएं? बड़े-बड़े अंग्रेजों से हाथ मिलाने का सौभाग्य कैसे प्राप्त हो? सरकारी डिनर में बढ़-चढ़कर हाथ मारने का गौरव कैसे मिले? नैनीताल की सैर कैसे करें? अपनी वक्तृता का चमत्कार कैसे दिखाएं? यह भी तो सोचिए।

विट्ठलदास बहुत लज्जित हुए। पद्मसिंह पछताए कि विट्ठलदास के साथ नाहक आए।

डाक्टर साहब गंभीर भाव से बोले—साधारण लोग समझते हैं कि इस लालच से लोग मेंबरी के लिए दौड़ते हैं। वह यह नहीं समझते कि वह कितना जिम्मेदारी का काम है। गरीब मेंबरों को अपना कितना समय, कितना विचार, कितना धन, कितना परिश्रम इसके लिए अर्पण करना पड़ता है। इसके बदले उसे इस संतोष के सिवाय और क्या मिलता है कि मैं देश और जाति की सेवा कर रहा हूं। ऐसा न हो, तो कोई मेंबरी की परवाह न करे।

तेगअली—जी हां, इसमें क्या शक है ! जनाब ठीक फरमाते हैं। जिसके सिर पर यह अजीमुश्शान जिम्मेदारी पड़ती है उसका दिल जानता है।

ग्यारह बज गए थे। श्यामाचरण ने पद्मसिंह से कहा—मेरे भोजन का समय आ गया, अब जाता हूं। आप संध्या समय मुझसे मिलिएगा।

पद्मसिंह ने कहा—हां-हां, शौक से जाइए। उन्होंने सोचा, जब ये भोजन में जरा-सी देर हो जाने से इतने घबराते हैं, तो दूसरों से क्या आशा की जाए? लोग जाति और देश के सेवक तो बनना चाहते हैं, पर जरा-सा भी कष्ट नहीं उठाना चाहते।

लाला भगतराम धूप में तख्ते पर बैठे हुक्का पी रहे थे। उनकी छोटी लड़की गोद में बैठी हुई धुएं को पकड़ने के लिए बार-बार हाथ बढ़ाती थी। सामने जमीन पर कई मिस्त्री और राजगीर बैठे हुए थे। भगतराम पद्मसिंह को देखते ही उठ खड़े हुए और पालागन करके बोले—मैंने शाम ही को सुना था कि आप आ गए। आज प्रातःकाल आने वाला था, लेकिन कुछ ऐसा झंझट आ

पड़ा कि अवकाश ही न मिला। यह ठेकेदारी का काम बड़े झगड़े का है। काम कराइए, अपने रुपये लगाइए, उस पर दूसरों की खुशामद कीजिए। आजकल इंजीनियर साहब किसी बात पर ऐसे नाराज हो गए हैं कि मेरा कोई काम उन्हें पसंद नहीं आता। एक पुल बनवाने का ठेका लिया था। उसे तीन बार गिरवा चुके हैं। कभी कहते हैं, यह नहीं बना, कभी कहते हैं, वह नहीं बना। नफा कहां से होगा, उल्टे नुकसान की संभावना है। कोई सुनने वाला नहीं है। आपने सुना होगा, हिन्दू मेंबरों का जलसा हो गया।

पद्मसिंह—हां, सुना और सुनकर शोक हुआ। आपसे मुझे पूरी आशा थी। क्या आप इस सुधार को उपयोगी नहीं समझते?

भगतराम—इसे केवल उपयोगी ही नहीं समझता, बल्कि हृदय से इसकी सहायता करना चाहता हूं, पर मैं अपनी राय का मालिक नहीं हूं। मैंने अपने को स्वार्थ के हाथों मे बेच दिया है। मुझे आप ग्रामोफोन का रेकार्ड समझिए, जो कुछ भर दिया जाता है, वही कह सकता हूं और कुछ नहीं।

पद्मसिंह—लेकिन आप यह तो जानते हैं कि जाति के हित में स्वार्थ से पार्थक्य होना चाहिए।

भगतराम—जी हां, इसे सिद्धांत रूप से मानता हूं, पर इसे व्यवहार में लाने की शक्ति नहीं रखता। आप जानते होंगे, मेरा सारा कारबार सेठ चिम्मनलाल की मदद से चलता है। अगर उन्हें नाराज कर लूं तो यह सारा ठाठ बिगड़ जाय। समाज में मेरी जो कुछ मान-मर्यादा है, वह इसी ठाठ-बाट के कारण है। विद्या और बुद्धि है ही नहीं, केवल इसी स्वांग का भरोसा है। आज अगर कलई खुल जाय, तो कोई बात भी न पूछे। दूध की मक्खी की तरह समाज से निकाल दिया जाऊं। बतलाइए, शहर में कौन है, जो केवल मेरे विश्वास पर हजारों रुपये बिना सूद के दे देगा, और फिर केवल अपनी ही फिक्र तो नहीं है। कम-से-कम तीन सौ रुपये मासिक गृहस्थी का खर्च है। जाति के लिए मैं स्वयं कष्ट झेलने के लिए तैयार हूं, पर अपने बच्चों को कैसे निरवलंब कर दूं?

जब हम अपने किसी कर्त्तव्य से मुंह मोड़ते हैं, तो दोष से बचने के लिए ऐसी प्रबल युक्तियां निकालते हैं कि कोई मुंह न खोल सके। उस समय हम संकोच को छोड़कर अपने संबंध में ऐसी-ऐसी बातें कह डालते हैं कि जिनके गुप्त रहने ही में हमारा कल्याण है। लाला भगतराम के हृदय में यही भाव काम कर रहा था। पद्मसिंह समझ गए कि इससे कोई आशा नहीं। बोले—ऐसी अवस्था में आप पर कैसे जोर दे सकता हूं? मुझे केवल एक वोट की फिक्र है, कोई उपाय बतलाइए, कैसे मिले?

भगतराम—कुंवर साहब के यहां जाइए। ईश्वर चाहेंगे तो उनका वोट आपको मिल जाएगा। सेठ बलभद्रदास ने उन पर तीन हजार रुपये की नालिश की है? कल उनकी डिगरी भी हो गई। कुंवर साहब इस समय बलभद्रदास से तने हुए हैं। वश चले तो गोली मार दें। फंसाने का एक लटका आपको और बताए देता हूं। उन्हें किसी सभा का प्रधान बना दीजिए। बस, उनकी नकेल आपके हाथ में हो जाएगी।

पद्मसिंह ने हंसकर कहा—अच्छी बात है, उन्हीं के यहां चलता हूं।

दोपहर हो गई थी, लेकिन पद्मसिंह को भूख-प्यास न थी। बग्घी पर बैठकर चले। कुंवर साहब बरुना के किनारे एक बंगले में रहते थे। आध घंटे में जा पहुंचे।

बंगले के हाते में न कोई सजावट थी, न सफाई। फूल-पत्ती का नाम न था। बरामदे में कई कुत्ते जंजीर में बंधे खड़े थे। एक तरफ कई घोड़े बंधे हुए थे। कुंवर साहब को शिकार का बहुत शौक था। कभी-कभी कश्मीर तक चक्कर लगाया करते थे। इस समय वह सामने कमरे में बैठे हुए सितार बजा रहे थे। एक कोने में कई बंदूकें और बर्छियां रखी हुई थीं। दूसरी ओर एक बड़ी मेज पर एक घड़ियाल बैठा था। पद्मसिंह कमरे में आए, तो उसे देखकर एक बार चौंक पड़े। खाल में ऐसी सफाई से भूसा भरा गया था कि उसमें जान-सी पड़ गई थी।

कुंवर साहब ने शर्माजी का बड़े प्रेम से स्वागत किया—आइए महाशय, आपके तो दर्शन दुर्लभ हो गए। घर से कब आए?

पद्मसिंह—कल आया हूं।

कुंवर—चेहरा उतरा हुआ है, बीमार थे क्या?

पद्मसिंह—जी नहीं, बहुत अच्छी तरह से।

कुंवर—कुछ जलपान कीजिएगा?

पद्मसिंह—नहीं क्षमा कीजिए, क्या सितार का अभ्यास हो रहा है?

कुंवर—जी हां, मुझे तो अपना ही सितार पसंद है। हारमोनियम और प्यानो सुनकर मुझे मतली-सी होने लगती है। इन अंग्रेजी बाजों ने हमारे संगीत को चौपट कर दिया, इसकी चर्चा ही उठ गई। जो कुछ कसर रह गई थी, वह थिएटरों ने पूरी कर दी। बस, जिसे देखिए, गजल और कव्वाली की रट लगा रहा है। थोड़े दिनों में धनुर्विद्या की तरह इसका भी लोप हो जायगा। संगीत से हृदय में पवित्र भाव पैदा होते हैं। जब से गाने का प्रचार कम हुआ, हम लोग भाव-शून्य हो गए और इसका सबसे बुरा असर हमारे साहित्य पर पड़ा है। कितने शोक की बात है, जिस देश में रामायण जैसे अमूल्य ग्रंथ की रचना हुई, सूरसागर जैसा आनंदमय काव्य रचा गया, उसी देश में अब साधारण उपन्यासों के लिए हमको अनुवाद का आश्रय लेना पड़ता है। बंगाल और महाराष्ट्र में अभी गाने का कुछ प्रचार है, इसीलिए वहां भावों का ऐसा शैथिल्य नहीं है, वहां रचना और कल्पना-शक्ति का ऐसा अभाव नहीं है। मैंने तो हिन्दी साहित्य को पढ़ना ही छोड़ दिया। अनुवादों को निकाल डालिए, तो नवीन हिन्दी साहित्य में हरिश्चन्द्र के दो-चार नाटकों और चन्द्रकान्ता सन्तति के सिवा और कुछ रहता ही नहीं। संसार का कोई साहित्य इतना दरिद्र न होगा। उस पर तुर्रा यह है कि जिन महानुभावों ने दो-एक अंग्रेजी ग्रंथों के अनुवाद मराठी और बंगला अनुवादों की सहायता से कर लिए, वे अपने को धुरंधर साहित्यज्ञ समझने लगे हैं। एक महाशय ने कालिदास के कई नाटकों के पद्यबद्ध अनुवाद किए हैं, लेकिन वे अपने को हिन्दी का कालिदास समझते हैं। एक महाशय ने 'मिल' के दो ग्रंथों का अनुवाद किया है और वह भी स्वतंत्र नहीं, बल्कि गुजराती, मराठी आदि अनुवादों के सहारे, पर वह अपने मन में ऐसे संतुष्ट हैं, मानो उन्होंने हिन्दी साहित्य का उद्धार कर दिया। मेरा तो यह निश्चय होता जाता है कि अनुवादों से हिन्दी का अपकार हो रहा है। मौलिकता को पनपने का अवसर नहीं मिलने पाता।

पद्मसिंह को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि कुंवर साहब का साहित्य से इतना परिचय है। वह समझते थे कि इन्हें पोलो और शिकार के सिवाय और किसी से प्रेम न होगा। वह स्वयं हिन्दी साहित्य से अपरिचित थे, पर कुंवर साहब के सामने अपनी अनभिज्ञता प्रकट करते संकोच होता था। उन्होंने इस तरह मुस्कराकर देखा, मानो यह सब बातें उन्हें पहले ही से मालूम थीं,

और बोले—आपने तो ऐसा प्रश्न उठाया, जिस पर दोनों पक्षों की ओर से बहुत कुछ कहा जा सकता है। पर इस समय मैं आपकी सेवा में किसी और ही काम से आया हूं। मैंने सुना है कि हिन्दू मेंबरों के जलसे में आपने सेठों का पक्ष ग्रहण किया।

कुंवर साहब ठठाकर हंसे। उनकी हंसी कमरे में गूंज उठी। पीतल की ढाल, जो दीवार से लटक रही थी, इस झंकार से थरथराने लगी। बोले—सच कहिए, आपने किससे सुना?

पद्मसिंह इस कुसमय हंसी का तात्पर्य न समझकर कुछ भौंचक-से हो गए। उन्हें मालूम हुआ कि कुंवर साहब मुझे बनाना चाहते हैं। चिढ़कर बोले—सभी कह रहे हैं, किस-किसका नाम लूं?

कुंवर साहब ने फिर जोर से कहकहा मारा और हंसते हुए पूछा—और आपको विश्वास भी आ गया?

पद्मसिंह को अब इसमें कोई संदेह न रहा कि यह सब मुझे झेंपाने का स्वांग है, जोर देकर बोले—अविश्वास करने के लिए मेरे पास कोई कारण नहीं है।

कुंवर—कारण यही है कि मेरे साथ घोर अन्याय होगा। मैंने अपनी समझ में अपनी संपूर्ण शक्ति आपके प्रस्ताव के समर्थन में खर्च कर दी थी। यहां तक कि मैंने विरोध को गंभीर विचार के लायक भी न सोचा। व्यंग्योक्ति ही से काम लिया। (कुछ याद करके) हां, एक बात हो सकती है। समझ गया। (फिर कहकहा मारकर) अगर यह बात है, तो मैं कहूंगा कि म्युनिसिपैलिटी बिल्कुल बछिया के ताऊ लोगों से ही भरी हुई है। व्यंग्योक्ति तो आप समझते ही होंगे। बस, यह सारा कसूर उसी का है। किसी सज्जन ने उसका भाव न समझा। काशी के सुशिक्षित, सम्मानित म्युनिसिपल कमिश्नरों में किसी ने भी एक साधारण-सी बात न समझी। शोक ! महाशोक !! महाशय, आपको बड़ा कष्ट हुआ। क्षमा कीजिए। मैं इस प्रस्ताव का हृदय से अनुमोदन करता हूं।

पद्मसिंह भी मुस्कराए, कुंवर साहब की बातों पर विश्वास आया। बोले—अगर इन लोगों ने ऐसा धोखा खाया, तो वास्तव में उनकी समझ बड़ी मोटी है। मगर प्रभाकर राव धोखे में आ जायं, यह समझ में नहीं आता, पर ऐसा मालूम होता है कि नित्य अनुवाद करते-करते उनकी बुद्धि भी गायब हो गई है।

पद्मसिंह जब यहां से चले, तो उनका मन ऐसा प्रसन्न था, मानो वह किसी बड़े रमणीक स्थान की सैर करके आए हों। कुंवर साहब के प्रेम और शील ने उन्हें वशीभूत कर लिया था।

छत्तीस

सदन जब घर पर पहुंचा, तो उसके मन की दशा उस मनुष्य की-सी थी, जो बरसों की कमाई लिए, मन में सहस्रों मंसूबे बांधता, हर्ष से उल्लसित घर आए और यहां संदूक खोलने पर उसे मालूम हो कि थैली खाली पड़ी है।

विचारों की स्वतंत्रता विद्या, संगति और अनुभव पर निर्भर होती है। सदन इन सभी गुणों से रहित था। यह उसके जीवन का वह समय था, जब हमको अपने धार्मिक विचारों पर, अपनी

सामाजिक रीतियों पर एक अभिमान-सा होता है। हमें उनमें कोई त्रुटि नहीं दिखाई देती, जब हम अपने धर्म के विरुद्ध कोई प्रमाण या दलील सुनने का साहस नहीं कर सकते, जब हममें क्या और क्यों का विकास नहीं होता। सदन को घर से निकल भागना स्वीकार होता, इसके बदले कि वह घर की स्त्रियों को गंगा नहलाने ले जाय। अगर स्त्रियों की हंसी की आवाज कभी मरदाने में जाती तो वह तेवर बदले घर में आता और अपनी मां को आड़े हाथों लेता। सुभद्रा ने अपनी सास का शासन भी ऐसा कठोर न पाया था। आत्म-पतन को वह दार्शनिक की उदार दृष्टि से नहीं, शुष्क योगी की दृष्टि से देखता था। उसने देखा था कि उसके गांव में एक ठाकुर ने एक बेड़िन बैठा ली थी, तो सारे गांव ने उसके द्वार पर आना-जाना छोड़ दिया था और इस तरह उसके पीछे पड़े कि उसे विवश होकर बेड़िन को घर से निकालना पड़ा। निःसंदेह वह सुमनबाई पर जान देता था, लेकिन उसके लौकिक-शास्त्र में यह प्रेम उतना अक्षम्य न था, जितना सुमन की परछाईं का उसके घर में आ जाना। उसने अब तक सुमन के यहां पान तक न खाया था। वह अपनी कुल-मर्यादा और सामाजिक प्रथा को अपनी आत्मा से कहीं बढ़कर महत्त्व की वस्तु समझता था। उस अपमान और निंदा की कल्पना ही उसके लिए असह्य थी, जो कुलटा स्त्री से संबंध हो जाने के कारण उसके कुल पर आच्छादित हो जाती। वह जनवासे में पंडित पद्मसिंह की बातें सुन-सुनकर अधीर हो रहा था। वह डरता था कि कहीं पिताजी उनकी बातों में न आ जाएं। उसकी समझ में न आता कि चाचा साहब को क्या हो गया है? अगर यही बातें किसी दूसरे मनुष्य ने की होतीं, तो वह अवश्य उसकी जबान पकड़ लेता। लेकिन अपने चाचा से वह बहुत दबता था। उसे उनका प्रतिवाद करने की बड़ी प्रबल इच्छा हो रही थी, उसकी तार्किक शक्ति कभी इतनी सतेज न हुई थी, और वाद-विवाद तर्क ही तक रहता, तो वह जरूर उनसे उलझ पड़ता। लेकिन मदनसिंह की उद्दंडता ने उसके प्रतिवाद की उत्सुकता को सहानुभूति के रूप में परिणत कर दिया।

इधर से निराश होकर सदन का लालसापूर्ण हृदय फिर सुमन की ओर लपका। विषय-वासना का चस्का पड़ जाने के बाद उसकी प्रेम-कल्पना निराधार नहीं रह सकती थी। उसका हृदय एक बार प्रेम-दीपक से आलोकित होकर अब अंधकार में नहीं रहना चाहता था। वह पद्मसिंह के साथ ही काशी चला आया।

किंतु यहां आकर वह एक बड़ी दुविधा में पड़ गया। उसे संशय होने लगा कि कहीं सुमनबाई को ये सब समाचार मालूम न हो गए हों। वह वहां स्वयं तो न रही होगी, लोगों ने उसे अवश्य ही त्याग दिया होगा, लेकिन उसे विवाह की सूचना जरूर दी होगी। ऐसा हुआ होगा तो कदाचित् वह मुझसे सीधे मुंह बात भी न करेगी। संभव है, वह मेरा तिरस्कार भी करे। लेकिन संध्या होते ही उसने कपड़े बदले, घोड़ा कसवाया और दालमंडी की ओर चला। प्रेम-मिलाप की आनंदपूर्ण कल्पना के सामने वे शंकाएं निर्मूल हो गईं। वह सोच रहा था कि सुमन मुझसे पहले क्या कहेगी, और मैं उसका क्या उत्तर दूंगा। कहीं उसे कुछ न मालूम हो और वह जाते ही प्रेम से मेरे गले लिपट जाय और कहे कि तुम बड़े निठुर हो ! इस कल्पना ने उसकी प्रेमाग्नि को और भी भड़काया, उसने घोड़े को एड़ लगाई और एक क्षण में दालमंडी के निकट आ पहुंचा। पर जिस प्रकार एक खिलाड़ी लड़का पाठशाला के द्वार पर भीतर जाते हुए डरता है, उसी प्रकार सदन दालमंडी के सामने आकर ठिठक गया। उसकी प्रेमकांक्षा मंद हो गई। वह धीरे-धीरे एक ऐसे स्थान पर आया, जहां से सुमन की अट्टालिका साफ दिखाई देती थी। यहां से उसने कातर

नेत्रों से उस मकान की ओर देखा। द्वार बंद था, ताला पड़ा हुआ था। सदन के हृदय से एक बोझ-सा उतर गया। उसे कुछ वैसा ही आनंद हुआ, जैसा उस मनुष्य को होता है, जो पैसा न रहने पर भी लड़के की जिद से विवश होकर खिलौने की दूकान पर जाता है और उसे बंद पाता है।

लेकिन घर पहुंचकर सदन अपनी उदासीनता पर बहुत पछताया। वियोगी पीड़ा के साथ-साथ उसकी व्यग्रता बढ़ती जाती थी। उसे किसी प्रकार धैर्य न होता था। रात को जब सब लोग खा-पीकर सोए, तो वह चुपके से उठा और दालमंडी की ओर चला। जाड़े की रात थी, ठंडी हवा चल रही थी, चन्द्रमा कुहरे की आड़ से झांकता था और किसी घबराए हुए मनुष्य के समान सवेग दौड़ता चला जाता था। सदन दालमंडी तक बड़ी तेजी से आया, पर यहां आकर फिर उसके पैर बंध गए। हाथ-पैर की तरह उत्साह भी ठंडा पड़ गया। उसे मालूम हुआ कि इस समय यहां मेरा आना अत्यंत हास्यास्पद है। सुमन के यहां जाऊं तो वह मुझे क्या समझेगी ! उसके नौकर आराम से सो रहे होंगे। वहां कौन मुझे पूछता है ! उसे आश्चर्य होता था कि मैं यहां कैसे चला आया ! मेरी बुद्धि उस समय कहां चली गई। अतएव वह लौट पड़ा।

दूसरे दिन संध्या समय वह फिर चला। मन में निश्चय कर लिया था कि अगर सुमन ने मुझे देख लिया और बुलाया तो जाऊंगा, नहीं तो सीधे अपनी राह चला जाऊंगा। उसका मुझे बुलाना ही बतला देगा कि उसका हृदय मेरी तरफ से साफ है। नहीं तो इस घटना के बाद वह मुझे बुलाने ही क्यों लगी। कुछ और आगे बढ़कर उसने फिर सोचा, क्या वह मुझे बुलाने के लिए झरोखे पर बैठी होगी। उसे क्या मालूम है कि मैं यहां आ गया। यह नहीं, मुझे एक बार स्वयं उसके पास चलना चाहिए। सुमन मुझसे कभी नाराज नहीं हो सकती और जो नाराज भी हो तो क्या मैं उसे मना नहीं सकता? मैं उसके सामने हाथ जोडूंगा, उसके पैर पडूंगा और अपने आंसुओं से उसके मन का मैल धो दूंगा। वह मुझसे कितनी ही रूठे, लेकिन मेरे प्रेम का चिह्न अपने हृदय से नहीं मिटा सकती। आह ! वह अगर अपने कमल नेत्रों में आंसू भरे हुए मेरी ओर ताके, तो मैं उसके लिए क्या न कर डालूंगा? यदि उसे कोई चिंता हो तो मैं उस चिंता को दूर करने के लिए अपने प्राण तक समर्पण कर दूंगा तो क्या वह इस अपराध को क्षमा न करेगी? लेकिन ज्योंही वह दालमंडी के सामने पहुंचा, उसकी यह प्रेम-कामनाएं उसी प्रकार नष्ट हो गईं, जैसे अपने गांव में संध्या समय नीम के नीचे देवी की मूर्ति देखकर उसकी तर्कनाएं नष्ट हो जाती थीं। उसने सोचा, कहीं वह मुझे देखे और अपने मन में कहे, 'वह जा रहे हैं कुंवर साहब, मानो सचमुच किसी रियासत के मालिक हैं ! कैसा कपटी, धूर्त है ।' यह सोचते ही उसके पैर बंध गए। आगे न जा सका।

इसी प्रकार कई दिन बीत गए। रात और दिन में उसकी प्रेम-कल्पनाएं, जो बालू की दीवार खड़ी करतीं, वे संध्या समय दालमंडी के सामने अविश्वास के एक ही झोंके में गिर पड़ती थीं।

एक दिन वह घूमते हुए क्वींस पार्क जा निकला। वहां एक शामियाना तना हुआ था और लोग बैठे हुए प्रोफेसर रमेशदत्त का प्रभावशाली व्याख्यान सुन रहे थे। सदन घोड़े से उतर पड़ा और व्याख्यान सुनने लगा। उसने मन में निश्चय किया कि वास्तव में वेश्याओं से हमारी बड़ी हानि हो रही है। ये समाज के लिए हलाहल के तुल्य हैं। मैं बहुत बचा, नहीं तो कहीं का न रहता। इन्हें अवश्य शहर के बाहर निकाल देना चाहिए। यदि ये बाजार में न होतीं, तो मैं सुमनबाई के जाल में कभी न फंसता।

दूसरे दिन वह फिर क्वींस पार्क की तरफ गया। आज वहां मुंशी अबुलवफा का भावपूर्ण ललित व्याख्यान हो रहा था। सदन ने उसे भी ध्यान से सुना। उसने विचार किया, निःसंदेह वेश्याओं से हमारा उपकार होता है। सच तो है, ये न हों, तो हमारे देवताओं की स्तुति करने वाला भी कोई न रहे। यह भी ठीक ही कहा है कि वेश्यागृह ही वह स्थान है, जहां हिन्दू-मुसलमान दिल खोलकर मिलते हैं, जहां द्वेष का वास नहीं है, जहां हम जीवन-संग्राम से विश्राम लेने के लिए, अपने हृदय के शोक और दुःख भुलाने के लिए शरण लिया करते हैं। अवश्य ही उन्हें शहर से निकाल देना उन्हीं पर नहीं, वरन् सारे समाज पर घोर अत्याचार होगा।

कई दिन के बाद यह विचार फिर पलटा खा गया। यह क्रम बंद न होता था। सदन में स्वच्छंद विचार की योग्यता न थी। वह किसी विषय के दोष और गुण तौलने और परखने की सामर्थ्य न रखता था। अतएव प्रत्येक सबल युक्ति उसके विचारों को उलट-पलट देती थी।

उसने एक दिन पद्मसिंह के व्याख्यान का नोटिस देखा। तीन ही बजे से चलने की तैयारी करने लगा और चार बजे बेनीबाग में जा पहुंचा। अभी वहां कोई आदमी न था। कुछ लोग फर्श बिछा रहे थे। वह घोड़े से उतर पड़ा और फर्श बिछाने में लोगों की मदद करने लगा। पांच बजते-बजते लोग आने लगे और आध घंटे में वहां हजारों मनुष्य एकत्र हो गए। तब उसने एक फिटन पर पद्मसिंह को आते देखा। उसकी छाती धड़कने लगी। पहले रुस्तम भाई ने एक छोटी-सी कविता पढ़ी, जो इस अवसर के लिए सैयद तेगअली ने रची थी। उनके बैठने पर लाला विट्ठलदास खड़े हुए। यद्यपि उनकी वक्तृता रूखी थी, न कहीं भाषण-लालित्य का पता था, न कटाक्षों का, पर लोग उनकी बातों को बड़े ध्यान से सुनते रहे। उनके निःस्वार्थ सार्वजनिक कृत्यों के कारण उन पर जनता की बड़ी श्रद्धा थी। उनकी रूखी बातों को लोग ऐसे चाव से सुनते थे, जैसे प्यासा मनुष्य पानी पीता है। उनके पानी के सामने दूसरों का शर्बत फीका पड़ जाता था। अंत में पद्मसिंह उठे। सदन के हृदय में गुदगुदी-सी होने लगी, मानो कोई असाधारण बात होने वाली है। व्याख्यान अत्यंत रोचक और करुणा से परिपूर्ण था। भाषा की सरलता और सरसता मन को मोहती थी। बीच-बीच में उनके शब्द ऐसे भावपूर्ण हो जाते कि सदन के रोएं खड़े हो जाते थे। वह कह रहे थे कि हमने वेश्याओं को शहर के बाहर रखने का प्रस्ताव इसलिए नहीं किया कि हमें उनसे घृणा है। हमें उनसे घृणा करने का कोई अधिकार नहीं है। यह उनके साथ घोर अन्याय होगा। यह हमारी ही कुवासनाएं, हमारे ही सामाजिक अत्याचार, हमारी ही कुप्रथाएं हैं जिन्होंने वेश्याओं का रूप धारण किया। यह दालमंडी हमारे ही जीवन का कलुषित प्रतिबिंब, हमारे ही पैशाचिक अधर्म का साक्षात् स्वरूप है। हम किस मुंह से उनसे घृणा करें। उनकी अवस्था बहुत शोचनीय है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम उन्हें सुमार्ग पर लाएं, उनके जीवन को सुधारें और यह तभी हो सकता है, जब वे शहर से बाहर दुर्व्यसनों से दूर रहें। हमारे सामाजिक दुराचार अग्नि के समान हैं, और अभागिन रमणियां तृण के समान। अगर अग्नि को शांत करना चाहते हैं तो तृण को उससे दूर कर दीजिए, तब अग्नि आप-ही-आप शांत हो जाएगी।

सदन तन्मय होकर इस व्याख्यान को सुनता रहा। जब उसके पास वाले मनुष्य व्याख्यान की प्रशंसा करते या बीच-बीच में करतल ध्वनि होने लगती, तो सदन का हृदय गद्गद हो जाता था। लेकिन उसे यह देखकर आश्चर्य होता था कि श्रोतागण एक-एक करके उठे चले जाते हैं। उनमें अधिकांश वे लोग थे, जो वेश्याओं की निंदा और वेश्यागामियों पर चुभने वाली चुटकियां सुनने आए थे। उन्हें पद्मसिंह की यह उदारता असंगत-सी जान पड़ती थी।

सैंतीस

सदन को व्याख्यानों की ऐसी चाट पड़ी कि जहां कहीं व्याख्यान की खबर पाता, वहां अवश्य जाता। दोनों पक्षों की बातें महीनों सुनने और उन पर विचार करने से उसमें राय स्थिर करने की योग्यता आने लगी। अब वह किसी युक्ति की नवीनता पर एकाएक मोहित न हो जाता था, वरन् प्रमाणों से सत्यासत्य का निर्णय करने की चेष्टा करता था। अंत में उसे यह अनुभव होने लगा कि व्याख्यानों में अधिकांश केवल शब्दों के आडंबर होते हैं, उनमें कोई मार्मिक तत्त्वपूर्ण बात या तो होती ही नहीं, या वही पुरानी युक्तियां नई बनाकर दोहराई जाती हैं। उसमें समालोचक दृष्टि उत्पन्न हो गई। उसने अपने चाचा का पक्ष ग्रहण कर लिया।

लेकिन अपनी अवस्था के अनुकूल उसकी समालोचना पक्षपात से भरी हुई और तीव्र होती थी। उसमें इतनी उदारता न थी कि विपक्षियों की नेकनीयती को स्वीकार करे। उसे निश्चय था कि जो लोग इस प्रस्ताव का विरोध कर रहे हैं, वह सभी विषय-वासना के गुलाम हैं, इन भावों का उस पर इतना प्रभाव पड़ा कि उसने दालमंडी की ओर जाना छोड़ दिया। वह किसी वेश्या को पार्क में फिटन पर टहलती या बैठी देख लेता, तो उसे ऐसा क्रोध आता कि उसे जाकर उठा दूं। उसका वश चलता तो इस समय वह दालमंडी की ईंट-से-ईंट से बजा देता। इस समय नाच करने वाले और देखने वाले दोनों ही उसकी दृष्टि में संसार के सबसे पतित प्राणी थे। वह उन्हें कहीं अकेले पा जाता, तो कदाचित् उनके साथ कुछ असभ्यता से पेश आता। यद्यपि अभी तक उसके मन में शंकाएं थीं, पर इस प्रस्ताव के उपकारी होने में उसे कोई संदेह न था। इसलिए वह शंकाओं को दबाना ही उचित समझता था कि कहीं उन्हें प्रकट करने से उनका पक्ष निर्बल न हो जाय। सुमन अब भी उसके हृदय में बसी हुई थी। उसकी प्रेम-कल्पनाओं से अब भी उसका हृदय सजग होता रहता था। सुमन का लावण्यमय स्वरूप उसकी आंखों से कभी न उतरता था। इन्हीं चिंताओं से बचने के लिए एकांत में बैठना छोड़ दिया। बड़े सबेरे उठकर गंगा-स्नान करने चला जाता। रात को दस-ग्यारह बजे तक इधर-उधर की किताबें पढ़ता, लेकिन इतने यत्न करने पर भी सुमन उसकी स्मृति से न उतरती थी। वह नाना प्रकार के वेश धारण करके, उसके हृदय नेत्रों के सामने आती और कभी उससे रूठती, कभी मनाती, कभी प्रेम से गले में बांहें डालती, प्रेम से मुस्कराती। एकाएक सदन सचेत हो जाता, जैसे कोई नींद से चौंक पड़े और विघ्नकारी विचारों को हटाकर सोचने लगता, आजकल चाचा इतने उदास क्यों रहते हैं। कभी हंसते नहीं दिखाई देते। जीतन उनके लिए रोज दवा क्यों लाता है? उन्हें क्या हो गया है? इतने में सुमन फिर हृदयसागर में प्रवेश करती और अपने कमलनेत्रों में आंसू भरे हुए कहती–'सदन, तुमसे ऐसी आशा न थी। तुम समझते हो कि यह नीच वेश्या है, पर मैंने तुम्हारे साथ तो वेश्याओं का-सा व्यवहार नहीं किया, तुमको तो मैंने अपनी प्रेम-संपत्ति सौंप दी थी। क्या उसका तुम्हारी दृष्टि में कुछ भी मूल्य नहीं है?' सदन फिर चौंक पड़ता और मन को उधर से हटाने की चेष्टा करता। उसने एक व्याख्यान में सुना था कि मनुष्य का जीवन अपने हाथों में है, वह अपने को जैसा चाहे बना सकता है, इसका मूलमंत्र यही है कि बुरे, क्षुद्र, अश्लील विचार मन में न आने पाएं; वह बलपूर्वक इन विचारों को हटाता रहे और उत्कृष्ट विचारों तथा भावों से हृदय को पवित्र रखे। सदन इस सिद्धांत को कभी न भूलता था। उस व्याख्यान में उसने यह भी सुना था कि जीवन को उच्च बनाने के लिए उच्च शिक्षा की आवश्यकता नहीं, केवल शुद्ध विचारों और

पवित्र भावों की आवश्यकता है। सदन को इस कथन से बड़ा संतोष हुआ था। इसलिए वह अपने विचारों को निर्मल रखने का यत्न करता रहता। हजारों मनुष्यों ने उस व्याख्यान में सुना था कि प्रत्येक कुविचार हमारे इस जीवन को ही नहीं, आने वाले जीवन को भी नीचे गिरा देता है। लेकिन औरों ने, जो कुछ विज्ञ थे, सुना और भूल गए, सरल हृदय सदन ने सुना और गांठ से बांध लिया। जैसे कोई दरिद्र मनुष्य सोने की एक गिरी हुई चीज पा जाय और उसे अपने प्राण से भी प्रिय समझे। सदन इस समय आत्म-सुधार की लहर में बह रहा था। रास्ते में अगर उसकी दृष्टि किसी युवती पर पड़ जाती, तो तुरंत ही अपने को तिरस्कृत करता और मन को समझाता कि इस क्षण-भर के नेत्र-सुख के लिए तू अपने भविष्य जीवन का सर्वनाश किए डालता है। इस चेतावनी से उसके मन को शांति होती थी।

एक दिन सदन को गंगा-स्नान के लिए जाते हुए चौक में वेश्याओं का एक जुलूस दिखाई दिया। नगर की सबसे नामी-गिरामी वेश्या ने एक उर्स (धार्मिक जलसा) किया था। यह वेश्याएं वहां से वापस आ रही थीं। सदन इस दृश्य को देखकर चकित हो गया। सौंदर्य, सुवर्ण और सौरभ का ऐसा चमत्कार उसने कभी न देखा था। रेशम, रंग और रमणीयता का ऐसा अनुभव दृश्य, शृंगार और जगमगाहट की ऐसी अद्भुत छटा उसके लिए बिल्कुल नई थी। उसने मन को बहुत रोका, पर न रोक सका। उसने उन अलौकिक सौंदर्य-मूर्तियों को एक बार आंख भरकर देखा। जैसे कोई विद्यार्थी महीनों से कठिन परिश्रम के बाद परीक्षा से निवृत्त होकर आमोद-प्रमोद में लीन हो जाय। एक निगाह से मन तृप्त न हुआ, तो उसने फिर निगाह दौड़ाई, यहां तक कि उसकी निगाहें उस तरफ जम गईं और वह चलना भूल गया। मूर्ति के समान खड़ा रहा। जब जुलूस निकल गया तो उसे सुधि आई, चौंका, मन को तिरस्कृत करने लगा। तूने महीनों की कमाई एक क्षण में गंवाई? वाह ! मैंने अपनी आत्मा का कितना पतन कर दिया? मुझमें कितनी निर्बलता है? लेकिन अंत में उसने अपने को समझाया कि केवल इन्हें देखने ही से मैं पाप का भागी थोड़े ही हो सकता हूं? मैंने इन्हें पाप-दृष्टि से नहीं देखा। मेरा हृदय कुवासनाओं से पवित्र है। परमात्मा की सौंदर्य सृष्टि से पवित्र आनंद उठाना हमारा कर्त्तव्य है।

यह सोचते हुए आगे वह चला, पर उसकी आत्मा को संतोष न हुआ। मैं अपने ही को धोखा देना चाहता हूं? यह स्वीकार कर लेने में क्या आपत्ति है कि मुझसे गलती हो गई। हां, हुई और अवश्य हुई। मगर मन की वर्तमान अवस्था के अनुसार मैं उसे क्षम्य समझता हूं। मैं योगी नहीं, संन्यासी नहीं, एक बुद्धिमान मनुष्य हूं। इतना ऊंचा आदर्श सामने रखकर मैं उसका पालन नहीं कर सकता। आह ! सौंदर्य भी कैसी वस्तु है ! लोग कहते हैं कि अधर्म से मुख की शोभा जाती रहती है। पर इन रमणियों का अधर्म उनकी शोभा को और भी बढ़ाता है। कहते हैं, मुख हृदय का दर्पण है। पर यह बात भी मिथ्या ही जान पड़ती है।

सदन ने फिर मन को संभाला और उसे इस ओर से विरक्त करने के लिए इस विषय के दूसरे पहलू पर विचार करने लगा। हां, वे स्त्रियां बहुत सुंदर हैं, बहुत ही कोमल हैं, पर उन्होंने अपने स्वर्गीय गुणों का कैसा दुरुपयोग किया है? उन्होंने अपनी आत्मा को कितना गिरा दिया है? हां ! केवल इन रेशमी वस्त्रों के लिए, इन जगमगाते हुए आभूषणों के लिए उन्होंने अपनी आत्माओं का विक्रय कर डाला है। वे आंखें, जिनसे प्रेम की ज्योति निकलनी चाहिए थी, कपट, कटाक्ष और कुचेष्टाओं से भरी हुई हैं। वे हृदय, जिनमें विशुद्ध निर्मल प्रेम का स्रोत बहना चाहिए था, कितनी दुर्गंध और विषाक्त मलिनता से ढंके हुए हैं। कितनी अधोगति है।

इन घृणात्मक विचारों से सदन को कुछ शांति हुई। वह टहलता हुआ गंगा-तट की ओर चला। इसी विचार में आज उसे देर हो गई थी। इसलिए वह उस घाट पर न गया, जहां वह नित्य नहाया करता था। वहां भीड़-भाड़ हो गई होगी, अतएव उस घाट पर गया, जहां विधवाश्रम स्थित था। वहां एकांत रहता था। दूर होने के कारण शहर के लोग वहां कम जाते थे।

घाट के निकट पहुंचने पर सदन ने एक स्त्री को घाट की ओर आते देखा। तुरंत पहचान गया। यह सुमन थी, पर कितनी बदली हुई। न वह लंबे-लंबे केश थे, न वह कोमल गति, न वह हंसते हुए गुलाब के-से होंठ; न वह चंचल ज्योति से चमकती हुई आंखें, न वह बनाव-सिंगार, न वह रत्नजटित आभूषणों की छटा; वह केवल सफ़ेद साड़ी पहने हुए थी। उसकी चाल में गंभीरता और मुख से नैराश्य भाव झलकता था। काव्य वही था, पर अलंकार-विहीन, इसलिए सरल और मार्मिक। उसे देखते ही सदन प्रेम से विह्वल होकर, कई पग बड़े वेग से चला, पर उसका यह रूपांतर देखा तो ठिठक गया, मानो उसे पहचानने में भूल हुई, मानो वह सुमन नहीं कोई और स्त्री थी। उसका प्रेमोत्साह भंग हो गया। समझ में न आया कि यह कायापलट क्यों हो गई? उसने फिर सुमन की ओर देखा। वह उसकी ओर ताक रही थी, पर उसकी दृष्टि में प्रेम की जगह एक प्रकार की चिंता थी, मानो वह उन पिछली बातों को भूल गई है या भूलना चाहती है। मानो वह हृदय की दबी हुई आग को उभारना नहीं चाहती। सदन को ऐसा अनुमान हुआ कि वह मुझे नीच, धोखेबाज और स्वार्थी समझ रही है। उसने एक क्षण के बाद फिर उसकी ओर देखा—यह निश्चय करने के लिए कि मेरा अनुमान भ्रांतिपूर्ण तो नहीं है। फिर दोनों की आंखें मिलीं, पर मिलते ही हट गईं। सदन को अपने अनुमान का निश्चय हो गया। निश्चय के साथ ही अभिमान का उदय हुआ। उसने अपने मन को धिक्कारा। अभी-अभी मैंने अपने को इतना समझाया है और इतनी देर में फिर उन्हीं कुवासनाओं में पड़ गया। उसने फिर सुमन की तरफ नहीं देखा। वह सिर झुकाए उसके सामने से निकल गई। सदन ने देखा, उसके पैर कांप रहे थे, वह जगह से न हिला, कोई इशारा भी न किया। अपने विचार में उसने सुमन पर सिद्ध कर दिया कि अगर तुम मुझसे एक कोस भागोगी, तो मैं तुमसे सौ कोस भागने को प्रस्तुत हूं। पर उसे यह ध्यान न रहा कि मैं अपनी जगह मूर्तिवत् खड़ा हूं। जिन भावों को उसने गुप्त रखना चाहा, स्वयं उन्हीं भावों की मूर्ति बन गया।

जब सुमन कुछ दूर निकल गई, तो वह लौट पड़ा और उसके पीछे अपने को छिपाता हुआ चला। वह देखना चाहता था कि सुमन कहां जाती है। विवेक ने वासना के आगे सिर झुका लिया।

अड़तीस

जिस दिन से बारात लौट गई, उसी दिन से कृष्णचन्द्र फिर घर से बाहर नहीं निकले। मन मारे हुए अपने कमरे में बैठे रहते। उन्हें अब किसी को अपना मुंह दिखाते लज्जा आती थी। दुश्चरित्रा सुमन ने उन्हें संसार की दृष्टि में चाहे कम गिराया हो, पर वह अपनी दृष्टि में कहीं के न रहे। वे अपने अपमान को सहन न कर सकते थे। वे तीन-चार साल कैद रहे, फिर भी अपनी आंखों

में इतने नीचे नहीं गिरे थे। उन्हें इस विचार से संतोष हो गया था कि दंड-भोग मेरे कुकर्म का फल है। लेकिन इस कालिमा ने उनके आत्मगौरव का सर्वनाश कर दिया। वह अब नीच मनुष्यों के पास भी नहीं जाते थे, जिनके साथ बैठकर वह चरस की दम लगाया करते थे। वह जानते थे कि मैं उनसे भी नीचे गिर गया हूं। उन्हें मालूम होता था कि सारे संसार में मेरी ही निंदा हो रही है। लोग कहते होंगे कि इसकी बेटी....यह खयाल आते ही वह लज्जा और विषाद के सागर में निमग्न हो जाते। हाय ! यदि मैं जानता कि वह यों मर्यादा का नाश करेगी, तो मैंने उसका गला घोंट दिया होता। यह मैं जानता हूं कि वह अभागिनी थी, किसी बड़े धनी कुल में रहने योग्य थी, भोग-विलास पर जान देती थी। पर यह मैं नहीं जानता था कि उसकी आत्मा इतनी निर्बल है। संसार में किसके दिन समान होते हैं? विपत्ति सभी पर आती है। बड़े-बड़े धनवानों की स्त्रियां अन्न-वस्त्र को तरसती हैं, पर कोई उनके मुख पर चिंता का चिह्न भी नहीं देख सकता। वे रो-रोकर दिन काटती हैं, कोई उनके आंसू नहीं देखता। वे किसी के सामने अपनी विपत्ति की कथा नहीं कहतीं। वे मर जाती हैं, पर किसी का एहसान सिर पर नहीं लेतीं। वे देवियां हैं। वे कुल-मर्यादा के लिए जीती हैं और उसकी रक्षा करती हुई मरती हैं, पर यह दुष्टा, यह अभागिनी....और उसका पति कैसा कायर है कि उसने उसका सिर नहीं काट डाला! जिस समय उसने घर से बाहर पैर निकाला, उसने क्यों उसका गला नहीं दबा दिया? मालूम होता है, वह भी नीच, दुराचारी, नामर्द है। उसमें अपनी कुल-मर्यादा का अभिमान होता, तो यह नौबत न आती। उसे अपने अपमान की लाज न होगी, पर मुझे है और मैं सुमन को इसका दंड दूंगा। जिन हाथों से उसे पाला, खिलाया, उन्हीं हाथों से उसके गले पर तलवार चलाऊंगा। यही आंखें कभी उसे खेलती देखकर प्रसन्न होती थीं, अब उसे रक्त में लोटती देखकर तृप्त होंगी। मिटी हुई मर्यादा के पुनरुद्धार का इसके सिवा कोई उपाय नहीं। संसार को मालूम हो जायगा कि कुल पर मरने वाले पापाचरण का क्या दंड देते हैं।

यह निश्चय करके कृष्णचन्द्र अपने उद्देश्य को पूरा करने के साधनों पर विचार करने लगे। जेलखाने में उन्होंने अभियुक्तों से हत्याकांड के कितने ही मंत्र सीखे थे। रात-दिन इन्हीं बातों की चर्चाएं रहती थीं। उन्हें सबसे उत्तम साधन यही मालूम हुआ कि चलकर तलवार से उसको मारूं और तब पुलिस में जाकर आप ही इसकी खबर दूं। मजिस्ट्रेट के सामने मेरा जो बयान होगा, उसे सुनकर लोगों की आंखें खुल जाएंगी। मन-ही-मन इस प्रस्ताव से पुलकित होकर वह उस बयान की रचना करने लगे। पहले कुछ सभ्य समाज की विलासिता का उल्लेख करूंगा, तब पुलिस के हथकंडों की कलई खोलूंगा, इसके पश्चात् वैवाहिक अत्याचारों का वर्णन करूंगा। दहेज-प्रथा पर ऐसी चोट करूंगा कि सुनकर लोग दंग रह जायं। पर सबसे महत्त्वशाली वह भाग होगा, जिसमें मैं दिखाऊंगा कि अपनी कुल-मर्यादा के मिटाने वाले हम हैं। हम अपनी कायरता से, प्राण-भय से, लोक-निंदा के डर से, झूठे संतान-प्रेम से, अपनी बेहयाई से, आत्मगौरव की हीनता से, ऐसे पापाचरणों को छिपाते हैं, उन पर पर्दा डाल देते हैं। इसी का यह परिणाम है कि दुर्बल आत्माओं का साहस इतना बढ़ गया है।

कृष्णचन्द्र ने यह संकल्प तो कर लिया, पर अभी तक उन्होंने यह न सोचा कि शान्ता की क्या गति होगी? इस अपमान की लज्जा ने उनके हृदय में और किसी चिंता के लिए स्थान न रखा था। उनकी दशा उस मनुष्य की-सी थी, जो अपने बालक को मृत्यु-शैया पर छोड़कर अपने किसी शत्रु से बैर चुकाने के लिए उद्यत हो जाय, जो डोंगी पर बैठा हुआ पानी में सर्प

देखकर उसे मारने के लिए झपटे और उसे यह सुधि न रहे कि इस झपट से डोंगी डूब जाएगी।

संध्या का समय था। कृष्णचन्द्र ने आज हत्या-मार्ग पर चलने का निश्चय कर लिया था। इस समय उनका चित्त कुछ उदास था। यह वही उदासीनता थी, जो किसी भयंकर काम के पहले चित्त पर आच्छादित हो जाया करती है। कई दिनों तक क्रोध के वेग से उत्तेजित और उन्मत्त रहने के बाद उनका मन इस समय कुछ शिथिल हो गया था। जैसे वायु कुछ समय तक वेग से चलने के बाद शांत हो जाती है। चित्त की ऐसी अवस्था में यह उदासीनता बहुत ही उपयुक्त होती है। उदासीनता वैराग्य का सूक्ष्म स्वरूप है, जो थोड़ी देर के लिए मनुष्य को अपने जीवन पर विचार करने की क्षमता प्रदान कर देती है, उस समय पूर्वस्मृतियां हृदय में क्रीड़ा करने लगती हैं। कृष्णचन्द्र को वे दिन याद आ रहे थे, जब उनका जीवन आनंदमय था, जब वह नित्य संध्या समय अपनी दोनों पुत्रियों को साथ लेकर सैर करने जाया करते थे। कभी सुमन को गोद में उठाते, कभी शान्ता को। जब वे लौटते तो गंगाजली किस तरह प्रेम से दौड़कर दोनों लड़कियों को प्यार करने लगती थी। किसी आनंद का अनुभव इतना सुखद नहीं होता, जितना उसका स्मरण। वही जंगल और पहाड़, जो कभी आपको सुनसान और बीहड़ प्रतीत होते थे, वह नदियां और झीलें जिनके तट पर से आप आंखें बंद किए निकल जाते थे, कुछ समय के पीछे एक अत्यंत मनोरम, शांतिमय रूप धारण करके स्मृतिनेत्रों के सामने आती है और फिर आप उन्हीं दृश्यों को देखने की आकांक्षा करने लगते हैं। कृष्णचन्द्र उस भूतकालिक जीवन का स्मरण करते-करते गद्‌गद हो गए। उनकी आंखों से आंसू की बूंदें टपक पड़ीं। हाय ! उस आनंदमय जीवन का ऐसा विषादमय अंत हो रहा है ! मैं अपने ही हाथों से अपनी ही गोद की खिलाई हुई लड़की का वध करने को प्रस्तुत हो रहा हूं। कृष्णचन्द्र को सुमन पर दया आई। वह बेचारी कुएं में गिर पड़ी है। क्या मैं अपनी ही लड़की पर, जिसे मैं आंखों की पुतली समझता था, जिसे सुख से रहने के लिए मैंने कोई बात उठा नहीं रखी, इतना निर्दय हो जाऊं कि उस पर पत्थर फेंकूं? लेकिन यह दया का भाव कृष्णचन्द्र के हृदय में देर तक न रह सका। सुमन के पापाभिनय का सबसे घृणोत्पादक भाग यह था कि आज उसका दरवाजा सबके लिए खुला हुआ है। हिन्दू, मुसलमान सब वहां प्रवेश कर सकते हैं। यह खयाल आते ही कृष्णचन्द्र का हृदय लज्जा और ग्लानि से भर गया।

इतने में पंडित उमानाथ उनके पास आकर बैठ गए और बोले—मैं वकील के पास गया था। उनकी सलाह है कि मुकदमा दायर करना चाहिए !

कृष्णचन्द्र ने चौंककर पूछा—कैसा मुकदमा?

उमानाथ—उन्हीं लोगों पर, जो द्वार से बारात लौटा ले गए।

कृष्णचन्द्र—इससे क्या होगा?

उमानाथ—इससे यह होगा कि या तो वह फिर कन्या से विवाह करेंगे या हर्जाना देंगे।

कृष्णचन्द्र—पर क्या और बदनामी न होगी?

उमानाथ—बदनामी जो कुछ होनी थी हो चुकी, अब किस बात का डर है? मैंने एक हजार रुपये तिलक में दिए, चार-पांच सौ खिलाने-पिलाने में खर्च किए, यह सब क्यों छोड़ दूंगा? यही रुपये कंगाल- कुलीन को दे दूंगा, तो वह खुशी से विवाह करने पर तैयार हो जाएगा। जरा इन शिक्षित महात्माओं की कलई तो खुलेगी।

कृष्णचन्द्र ने लंबी सांस लेकर कहा—मुझे विष दे दो, तब यह मुकदमा दायर करो।

उमानाथ ने क्रुद्ध होकर कहा–आप क्यों इतना डरते हैं?

कृष्णचन्द्र–मुकदमा दायर करने का निश्चय कर लिया है?

उमानाथ–हां, मैंने निश्चय कर लिया है। कल सारे शहर में बड़े-बड़े वकील-बैरिस्टर जमा थे। यह मुकदमा अपने ढंग का निराला है। उन लोगों ने बहुत कुछ देखभाल कर तब यह सलाह दी है। दो वकीलों को तो बयाना तक दे आया हूं।

कृष्णचन्द्र ने निराश होकर कहा–अच्छी बात है। दायर कर दो।

उमानाथ–आप इससे असंतुष्ट क्यों हैं?

कृष्णचन्द्र–जब तुम आप ही नहीं समझते, तो मैं क्या बतलाऊं? जो बात अभी चार गांव में फैली है, वह सारे शहर में फैल जाएगी। सुमन अवश्य ही इजलास पर बुलाई जाएगी, मेरा नाम गली-गली बिकेगा।

उमानाथ–अब इससे कहां तक डरूं? मुझे भी अपनी दो लड़कियों का विवाह करना है। यह कलंक अपने माथे लगाकर उनके विवाह में क्यों बाधा डालूं?

कृष्णचन्द्र–तो तुम यह मुकदमा इसलिए दायर करते हो, जिससे तुम्हारे नाम पर कोई कलंक न रहे।

उमानाथ ने सगर्व कहा–हां, अगर आप उसका यह अर्थ लगाते हैं तो यही सही। बारात मेरे द्वार से लौटी है। लोगों को भ्रम हो रहा है कि सुमन मेरी लड़की है। सारे शहर में मेरा ही नाम लिया जा रहा है। मेरा दावा दस हजार का होगा। अगर पांच हजार की डिगरी हो गई, तो शान्ता का किसी उत्तम कुल में ठिकाना लग जाएगा। आप जानते हैं, जूठी वस्तु को मिठास के लोभ से लोग खाते हैं। जब तक रुपये का लोभ न होगा शान्ता का विवाह कैसे होगा? एक प्रकार से मेरे कुल में भी कलंक लग गया। पहले जो लोग मेरे यहां संबंध करने में अपनी बड़ाई समझते थे, वे अब बिना लंबी थैली के सीधे बात भी न करेंगे, समस्या यह है।

कृष्णचन्द्र ने कहा–अच्छी बात है, मुकदमा दायर कर दो। उमानाथ चले गए तो कृष्णचन्द्र ने आकाश की ओर देखकर कहा–प्रभो, अब उठा ले चलो, यह दुर्दशा नहीं सही जाती। आज उन्हें अपमान का वास्तविक अनुभव हुआ। उन्हें विदित हुआ कि सुमन को दंड देने से यह कलंक नहीं मिट सकता, जैसे सांप को मारने से उसका विष नहीं उतरता। उसकी हत्या करके उपहास के सिवाय और कुछ न होगा। पुलिस पकड़ेगी; महीनों इधर-उधर मारा-मारा फिरूंगा और इतनी दुर्गति के बाद फांसी पर चढ़ा दिया जाऊंगा। इससे तो कहीं उत्तम यही है कि डूब मरूं। इस दीपक को बुझा दूं, जिसके प्रकाश से ऐसे भयंकर दृश्य दिखाई देते हैं। हाय ! यह अभागिनी सुमन बेचारी शान्ता को भी ले डूबी। उसके जीवन का सर्वनाश कर दिया। परमात्मन् ! अब तुम्हीं इसके रक्षक हो। इस असहाय बालिका को तुम्हारे सिवाय और कोई आश्रय नहीं है। केवल मुझे यहां से उठा ले चलो कि इन आंखों से उसकी दुर्दशा न देखूं।

थोड़ी देर में शान्ता कृष्णचन्द्र को भोजन करने के लिए बुलाने आई। विवाह के दिन से आज तक कृष्णचन्द्र ने उसे नहीं देखा था। इस समय उन्होंने उसकी ओर करुण नेत्रों से देखा। धुंधले दीपक के प्रकाश में उन्हें उसके मुख पर एक अलौकिक शोभा दिखाई दी ! उसकी आंखें निर्मल आत्मिक ज्योति से चमक रही थीं। शोक और मालिन्य का आभास तक न था। जब से उसने सदन को देखा था, उसे अपने हृदय में एक स्वर्गीय विकास का अनुभव होता था। उसे वहां निर्मल भावों का एक स्रोत-सा बहता हुआ मालूम होता था। उसमें एक अद्भुत आत्मबल

का उदय हो गया था। अपनी मामी से वह कभी सीधे मुंह बात न करती थी, पर आजकल घंटों बैठी उसके पैर दबाया करती। अपनी ममेरी बहनों के प्रति अब उसे जरा भी ईर्ष्या न होती थी। वह अब हंसती हुई कुएं से पानी खींच लाती थी। चक्की चलाने में उसे एक पवित्र आनंद आता था। उसके जीवन में प्रेम का उद्‌भव हो गया था। सदन उसे न मिला, पर सदन से कहीं उत्तम वस्तु मिल गई। यह सदन का प्रेम था।

कृष्णचन्द्र शान्ता का प्रफुल्ल बदन देखकर विस्मित ही नहीं, भयभीत भी हो गए। उन्हें प्रतीत हुआ कि शोक की विषम वेदना आंसुओं द्वारा प्रकट नहीं हुई, उसने भीषण उन्माद का रूप धारण किया है। उन्हें ऐसा आभासित हुआ कि वह मुझे अपनी कठोर यातना का अपराधी समझ रही है। उन्होंने उसकी ओर कातर नेत्रों से देखकर कहा–शान्ता !

शान्ता ने जिज्ञासु भाव से उनकी ओर देखा।

कृष्णचन्द्र कुंठित स्वर में बोले–आज चार वर्ष हुए कि मेरे जीवन की नाव भंवर में पड़ी हुई है। इस विपत्तिकाल ने मेरा सब कुछ हर लिया, पर अब अपनी संतान की दुर्गति नहीं देखी जाती। मैं जानता हूं कि यह सब मेरे कुकर्म का फल है। अगर मैं पहले ही सावधान हो जाता, तो आज तुम लोगों की यह दुर्दशा न होती। मैं अब बहुत दिन न जीऊंगा। अगर कभी अभागिन सुमन से तुम्हारी भेंट हो जाए, तो कह देना कि मैंने उसे क्षमा किया। उसने जो कुछ किया, उसका दोष मुझ पर है। आज से दो दिन पहले तक मैं उसकी हत्या करने पर तुला हुआ था। पर ईश्वर ने मुझे इस पाप से बचा लिया। उससे कह देना कि वह अपने अभागे बाप और अपनी अभागिनी माता की आत्मा पर दया करे।

यह कहते-कहते कृष्णचन्द्र रुक गए। शान्ता चुपचाप खड़ी रही। अपने पिता पर उसे बड़ी दया आ रही थी। एक क्षण बाद कृष्णचन्द्र बोले–मैं तुमसे भी एक प्रार्थना करता हूं।

शान्ता–कहिए, क्या आज्ञा है?

कृष्णचन्द्र–कुछ नहीं, यही कि संतोष को कभी मत छोड़ना। इस मंत्र से कठिन-से-कठिन समय में भी तुम्हारा मन विचलित न होगा।

शान्ता ताड़ गई कि पिताजी कुछ और कहना चाहते थे, लेकिन संकोचवश न कहकर बात पलट दी। उनके मन में क्या था, यह उससे छिपा न रहा। उसने गर्व से सिर उठा लिया और साभिमान नेत्रों से देखा। उसकी इस विश्वासपूर्ण दृष्टि ने वह सब कुछ और उससे बहुत अधिक कह दिया, जो वह अपनी वाणी से कह सकती थी। उसने मन में कहा, जिसे पातिव्रत जैसा साधन मिल गया है, उसे और किसी साधन की क्या आवश्यकता? इसमें सुख, संतोष और शांति सब कुछ है।

आधी रात बीत चुकी थी। कृष्णचन्द्र घर से बाहर निकले। प्रकृति सुंदरी किसी वृद्धा के समान कुहरे की मोटी चादर ओढ़े निद्रा में मग्न थी। आकाश में चन्द्रमा मुंह छिपाए हुए वेग से दौड़ा चला जाता था, मालूम नहीं कहां?

कृष्णचन्द्र के मन में एक तीव्र आकांक्षा उठी। गंगाजली को कैसे देखूं। संसार में यही एक वस्तु उनके आनंदमय जीवन का चिह्न रह गई थी। नैराश्य के घने अंधकार में यही एक ज्योति उनको अपने मन की ओर खींच रही थी। वह कुछ देर तक द्वार पर चुपचाप खड़े रहे, तब एक लंबी सांस लेकर आगे बढ़े। उन्हें ऐसा मालूम हुआ, मानो गंगाजली आकाश में बैठी

हुई उन्हें बुला रही है।

कृष्णचन्द्र के मन में इस समय कोई इच्छा, कोई अभिलाषा, कोई चिंता न थी। संसार से उनका मन विरक्त हो गया था। वह चाहते थे कि किसी प्रकार जल्दी गंगातट पर पहुंचूं और उसके अथाह जल में कूद पडूं। उन्हें भय था कि कहीं मेरा साहस न छूट जाए। उन्होंने अपने संकल्प को उत्तेजित करने के लिए दौड़ना शुरू किया।

लेकिन थोड़ी दूर चलकर वह फिर ठिठक गए और सोचने लगे, पानी में कूद पड़ना ऐसा क्या कठिन है, जहां भूमि से पांव उखड़े कि काम तमाम हुआ। यह स्मरण करके उनका हृदय एक बार कांप उठा। अकस्मात् यह बात उनके ध्यान में आई कि कहीं निकल क्यों न जाऊं? जब यहां रहूंगा ही नहीं, तो अपना अपमान कैसे सुनूंगा? लेकिन इस बात को उन्होंने मन में जमने न दिया। मोह की कपट-लीला उन्हें धोखा न दे सकी। यद्यपि वह धार्मिक प्रकृति के मनुष्य नहीं थे और अदृश्य के एक अव्यक्त भय से उनका हृदय कांप रहा था, पर अपने संकल्प को दृढ़ रखने के लिए वह अपने मन को यह विश्वास दिला रहे थे कि परमात्मा बड़ा दयालु और करुणाशील है। आत्मा अपने को भूल गई थी। वह उस बालक के समान थी, जो अपने किसी सखा के खिलौने तोड़ डालने के बाद अपने ही घर में जाते डरता है।

कृष्णचन्द्र इसी प्रकार आगे बढ़ते हुए कोई चार मील चले गए। ज्यों-ज्यों गंगातट निकट आता जाता था, त्यों-त्यों उनके हृदय की गति बढ़ती जाती थी। भय से चित्त अस्थिर हुआ जाता था। लेकिन वह इस आंतरिक निर्बलता को कुछ तो अपने वेग और कुछ तिरस्कार से हटाने की चेष्टा कर रहे थे। हा ! मैं कितना निर्लज्ज, आत्मशून्य हूं। इतनी दुर्दशा होने पर भी मरने से डरता हूं। अकस्मात् उन्हें किसी के गाने की ध्वनि सुनाई दी। ज्यों-ज्यों वे आगे बढ़ते थे, त्यों-त्यों वह ध्वनि निकट आती थी। गाने वाला उन्हीं की ओर चला आ रहा था। उस निस्तब्ध ा रात्रि में कृष्णचन्द्र को वह गाना अत्यंत मधुर मालूम हुआ। कान लगाकर सुनने लगे—

हरि सों ठाकुर और न जन को।
जेहि-जेहि विधि सेवक सुख पावै तेहि विधि राखत तिन को।।
हरि सों ठाकुर और न जन को।
भूखे को भोजन जु उदर को तृषा तोय पट तन को।।
लाग्यो फिरत सुरभि ज्यों सुत संग उचित गमन गृह वन को।।
हरि सों ठाकुर और न जन को।।

यद्यपि गान माधुर्य-रसपूर्ण न था, तथापि वह शास्त्रोक्त था, इसलिए कृष्णचन्द्र को उसमें बहुत आनंद प्राप्त हुआ था। उन्हें इस शास्त्र का अच्छा ज्ञान था। इसने उनके विदग्ध हृदय को शांति प्रदान कर दी।

गाना बंद हो गया और एक क्षण के बाद कृष्णचन्द्र ने एक दीर्घकाय जटाधारी साधु को अपनी ओर आते देखा। साधु ने उनका नाम और स्थान पूछा। उसके भाव से ऐसा ज्ञात हुआ कि वह उनसे परिचित है। कृष्णचन्द्र आगे बढ़ना चाहते थे कि उसने पूछा—इस समय आप इधर कहां जा रहे हैं?

कृष्णचन्द्र—कुछ ऐसा ही काम आ पड़ा है।

साधु—आधी रात को आपका गंगातट पर क्या काम हो सकता है?

कृष्णचन्द्र ने रुष्ट होकर उत्तर दिया—आप तो आत्मज्ञानी हैं। आपको स्वयं जानना चाहिए।

साधु—आत्मज्ञानी तो मैं नहीं हूं, केवल भिक्षुक हूं। इस समय मैं आपको उधर न जाने दूंगा।

कृष्णचन्द्र—आप अपनी राह जाइए। मेरे काम में विघ्न डालने का आपको क्या अधिकार है?

साधु—अधिकार न होता तो मैं आपको रोकता ही नहीं। आप मुझसे परिचित नहीं हैं, पर मैं आपका धर्मपुत्र हूं, मेरा नाम गजाधर पांडे है।

कृष्णचन्द्र—ओहो! आप गजाधर पांडे हैं। आपने यह भेष कब से धारण कर लिया? आपसे मिलने की मेरी बहुत इच्छा थी। मैं आपसे कुछ पूछना चाहता था।

गजाधर—मेरा स्थान गंगातट पर एक वृक्ष के नीचे है। चलिए, वहां थोड़ी देर विश्राम कीजिए। मैं सारा वृत्तांत आपसे कह दूंगा।

रास्ते में दोनों मनुष्यों में कुछ बातचीत न हुई। थोड़ी देर में वे उस वृक्ष के नीचे पहुंच गए, जहां एक मोटा-सा कुंदा जल रहा था। भूमि पर पुआल बिछा हुआ था और एक मृगचर्म, एक कमंडल और पुस्तकों का एक बस्ता उस पर रखा हुआ था।

कृष्णचन्द्र आग तापते हुए बोले—आप साधु हो गए हैं, सत्य ही कहिएगा, सुमन की यह कुप्रवृत्ति कैसे हो गई?

गजाधर अग्नि के प्रकाश में कृष्णचन्द्र के मुख की ओर मर्मभेदी दृष्टि से देख रहे थे। उन्हें उनके मुख पर उनके हृदय के समस्त भाव अंकित देख पड़ते थे। वह अब गजाधर न थे। सत्संग और विरक्ति ने उनके ज्ञान को विकसित कर दिया था। वह उस घटना पर जितना ही विचार करते थे, उतना ही उन्हें पश्चात्ताप होता था। इस प्रकार अनुतप्त होकर उनका हृदय सुमन की ओर से बहुत उदार हो गया था। कभी-कभी उनका जी चाहता था कि चलकर उसके चरणों पर सिर रख दूं।

गजाधर बोले—इसका कारण मेरा अन्याय था। यह सब मेरी निर्दयता और अमानुषीय व्यवहार का फल है। वह सर्वगुण संपन्न थी। वह इस योग्य थी कि किसी बड़े घर की स्वामिनी बनती। मुझ जैसा दुष्ट, दुरात्मा, दुराचारी मनुष्य उसके योग्य न था। उस समय मेरी स्थूल दृष्टि उसके गुणों को न देख सकी। ऐसा कोई कष्ट न था, जो उस देवी को मेरे साथ न झेलना पड़ा हो। पर उसने कभी मन मैला न किया। वह मेरा आदर करती थी। पर उसका यह व्यवहार देखकर मुझे उस पर संदेह होता था कि वह मेरे साथ कोई कौशल कर रही है। उसका संतोष, उसकी भक्ति, उसकी गंभीरता मेरे लिए दुर्बोध थी। मैं समझता था, वह मुझसे कोई चाल चल रही है। अगर वह मुझसे छोटी-छोटी वस्तुओं के लिए झगड़ा करती, रोती, कोसती, ताने देती, तो उस पर मुझे विश्वास होता। उसका ऊंचा आदर्श मेरे अविश्वास का कारण हुआ। मैं उसके सतीत्व पर संदेह करने लगा। अंत में वह दशा हो गई कि एक दिन, रात को एक सहेली के घर पर केवल जरा विलंब हो जाने के कारण मैंने उसे घर से निकाल दिया।

कृष्णचन्द्र बात काटकर बोले—तुम्हारी बुद्धि उस समय कहां गई थी? तुमको जरा भी ध्यान न रहा कि तुम अपनी इस निर्दयता से कितने बड़े कुल को कलंकित कर रहे हो?

गजाधर—महाराज, अब मैं क्या बताऊं कि मुझे क्या हो गया था? मैंने फिर उसकी सुध न ली। पर उसका अंतःकरण शुद्ध था। पापाचरण से उसे घृणा थी। अब वह विधवाश्रम में रहती है और सब उससे प्रसन्न हैं। उसकी धर्मनिष्ठा देखकर लोग चकित हो जाते हैं।

गजाधर की बातें सुनकर कृष्णचन्द्र का हृदय सुमन की ओर से कुछ नरम पड़ गया। लेकिन वह जितना ही इधर नरम था, उतना ही दूसरी ओर कठोर हो गया। जैसे साधारण गति से बहती जलधारा दूसरी ओर और भी वेग से बहने लगती है। उन्होंने गजाधर को सरोष नेत्रों से देखा, जैसे कोई भूखा सिंह अपने शिकार को देखता है। उन्हें निश्चय हो रहा था कि यह मनुष्य मेरे कुल को कलंकित करने वाला है। इतना ही नहीं उसने सुमन के साथ भी अन्याय किया है। उसे नाना प्रकार के कष्ट दिए हैं। क्या मैं उसे केवल इसलिए छोड़ दूं कि वह अब अपने दुष्कृत्यों पर लज्जित है? लेकिन उसने यह बातें मुझसे कह क्यों दीं? कदाचित् वह समझता है कि मैं उसका कुछ नहीं बिगड़ सकता। यही बात है, नहीं तो वह मेरे सामने अपना अपराध इतनी निर्भयता से क्यों स्वीकार करता? कृष्णचन्द्र ने गजाधर के मनोभावों को न समझा। वह क्षण-भर आग की तरफ ताकते रहे, फिर कठोर स्वर में बोले--गजाधर, तुमने मेरे कुल को डुबो दिया। तुमने मुझे कहीं मुंह दिखाने योग्य न रखा। तुमने मेरी लड़की की जान ले ली; उसका सत्यानाश कर दिया, तिस पर भी तुम मेरे सामने इस तरह बैठे हो, मानो कोई महात्मा हो। तुम्हें चुल्लू-भर पानी में डूब मरना चाहिए।

गजाधर जमीन की मिट्टी खुरच रहे थे। उन्होंने सिर न उठाया।

कृष्णचन्द्र फिर बोले--तुम दरिद्र थे। इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं। तुम अगर अपनी स्त्री का उचित रीति से पालन-पोषण नहीं कर सके, तो इसके लिए तुम्हें दोषी नहीं ठहराता। तुम उसके मनोभावों को नहीं जान सके, उसके सद्विचारों का मर्म नहीं समझ सके, इसके लिए भी मैं तुम्हें दोषी नहीं ठहराता। तुम्हारा अपराध यह है कि तुमने उसे घर से निकाल दिया। तुमने उसे मार क्यों नहीं डाला? अगर तुमको उसके पातिव्रत पर संदेह था, तो तुमने उसका सिर क्यों न काट लिया? और यदि इतना साहस नहीं था, तो स्वयं क्यों न प्राण त्याग दिया? विष क्यों न खा लिया? अगर तुमने उसके जीवन का अंत कर दिया होता, तो उसकी यह दुर्दशा न हुई होती, मेरे कुल में यह कलंक न लगता। तुम भी कहोगे कि मैं पुरुष हूं? तुम्हारी इस कायरता पर, इस निर्लज्जता पर धिक्कार है। जो पुरुष इतना नीच है कि अपनी स्त्री को दूसरों से प्रेम करते देखकर उसका रुधिर खौल नहीं उठता, वह पशुओं से भी गया-बीता है।

गजाधर को अब मालूम हुआ कि सुमन को घर से निकालने की बात कहकर वह मानों ब्रह्मफांस में फंस गए। वह मन में पछताने लगे कि उदारता की धुन में मैं इतना असावधान क्यों हो गया? तिरस्कार की मात्रा भी उनकी आशा से अधिक हो गई। वह न समझे कि तिरस्कार यह रूप धारण करेगा और उससे मेरे हृदय पर इतनी चोट लगेगी। अनुतप्त हृदय वह तिरस्कार चाहता है, जिसमें सहानुभूति और सहृदयता हो, वह नहीं जो अपमान-सूचक और क्रूरतापूर्ण हो। पका हुआ फोड़ा नश्तर का घाव चाहता है, पत्थर का आघात नहीं। गजाधर अपने पश्चात्ताप पर पछताए। उनका मन अपना पूर्वपक्ष समर्थन करने के लिए अधीर होने लगा।

कृष्णचन्द्र ने गरजकर कहा-- क्यों, तुमने उसे मार क्यों नहीं डाला?

गजाधर ने गंभीर स्वर में उत्तर दिया-मेरा हृदय इतना कठोर नहीं था?

कृष्णचन्द्र--तो घर से क्यों निकाला?

गजाधर-केवल इसलिए कि उस समय मुझे उससे गला छुड़ाने का और कोई उपाय न था।

कृष्णचन्द्र ने मुंह चिढ़ाकर कहा-क्यों, जहर खा सकते थे?

गजाधर इस चोट से बिलबिलाकर बोले—व्यर्थ में जान देता?

कृष्णचन्द्र—व्यर्थ जान देना, व्यर्थ जीने से अच्छा है।

गजाधर—आप मेरे जीने को व्यर्थ नहीं कह सकते। आपसे पंडित उमानाथ ने न कहा होगा, पर मैंने इसी याचना-वृत्ति से उन्हें शान्ता के विवाह के लिए पंद्रह सौ रुपये दिए हैं और इस समय भी उन्हीं के पास यह एक हजार रुपये लेकर जा रहा था, जिससे वह कहीं उसका विवाह कर दें।

यह कहते-कहते गजाधर चुप हो गए। उन्हें अनुभव हुआ कि इस बात का उल्लेख करके मैंने अपने ओछेपन का परिचय दिया। उन्होंने संकोच से सिर झुका लिया।

कृष्णचन्द्र ने संदिग्ध स्वर से कहा—उन्होंने इस विषय में मुझसे कुछ नहीं कहा।

गजाधर—यह कोई ऐसी बात भी नहीं थी कि वह आपसे कहते। मैंने केवल प्रसंगवश कह दी। क्षमा कीजिएगा मेरा अभिप्राय केवल यह है कि आत्मघात करके मैं संसार का कोई उपकार न कर सकता था। इस कालिमा ने मुझे अपने जीवन को उज्ज्वल बनाने पर बाध्य किया है। सोई हुई आत्मा को जगाने के लिए हमारी भूलें एक प्रकार की दैविक यंत्रणाएं हैं, जो हमको सदा के लिए सतर्क कर देती हैं। शिक्षा, उपदेश, संसर्ग किसी से भी हमारे ऊपर उतना सुप्रभाव नहीं पड़ता, जितना अपनी भूलों के कुपरिणाम को देखकर संभव है आप इसे मेरी कायरता समझें, पर वही कायरता मेरे लिए शांति और सदुद्योग की एक अविरल धारा बन गई है। एक प्राणी का सर्वनाश करके आज मैं सैंकड़ों अभागिन कन्याओं का उद्धार करने योग्य हुआ हूं और मुझे यह देखकर असीम आनंद हो रहा है कि यही सद्प्रेरणा सुमन पर भी अपना प्रभाव डाल रही है। मैंने अपनी कुटी में बैठे हुए उसे कई बार गंगा-स्नान करते देखा है और उसकी श्रद्धा तथा धर्मनिष्ठा को देखकर विस्मित हो गया हूं। उसके मुख पर शुद्धांत:करण की विमल आभा दिखाई देती है। वह अगर पहले कुशल गृहिणी थी, तो अब परम विदुषी है और मुझे विश्वास है कि एक दिन वह स्त्री समाज का शृंगार बनेगी।

कृष्णचन्द्र ने पहले इन वाक्यों को इस प्रकार सुना, जैसे कोई चतुर ग्राहक व्यापारी की अनुरोधपूर्ण बातें सुनता है। वह कभी नहीं भूलता कि व्यापारी उससे अपने स्वार्थ की बातें कर रहा है। लेकिन धीरे-धीरे कृष्णचन्द्र पर इन वाक्यों का प्रभाव पड़ने लगा। उन्हें विदित हुआ कि मैंने उस मनुष्य को कटु वाक्य कहकर दु:ख पहुंचाया, जो हृदय से अपनी भूल पर लज्जित है और जिसके एहसानों के बोझ के नीचे मैं दबा हुआ हूं। हा ! मैं कैसा कृतघ्न हूं ! यह स्मरण करके उनके लोचन सजल हो गए। सरल हृदय मनुष्य मोम की भांति जितनी जल्दी कठोर हो जाता है, उतनी ही जल्दी पसीज भी जाता है।

गजाधर ने उनके मुख की ओर करुण नेत्रों से देखकर कहा—इस समय यदि आप साधु के अतिथि बन जायं तो कैसा हो? प्रात:काल मैं आपके साथ चलूंगा। इस कंबल में आपको जाड़ा न लगेगा।

कृष्णचन्द्र ने नम्रता से कहा—कंबल की आवश्यकता नहीं है। ऐसे ही लेट रहूंगा।

गजाधर—आप समझते हैं कि मेरा कंबल ओढ़ने में आपको दोष लगेगा, पर यह कंबल मेरा नहीं है। मैंने इसे अतिथि-सत्कार के लिए रख छोड़ा है।

कृष्णचन्द्र ने अधिक आपत्ति नहीं की। उन्हें सर्दी लग रही थी। कंबल ओढ़कर लेटे और तुरंत ही निद्रा में मग्न हो गए, पर वह शांतिदायिनी निद्रा नहीं थी, उनकी वेदनाओं का दिग्दर्शन

मात्र थी। उन्होंने स्वप्न देखा कि मैं जेलखाने में मृत्युशय्या पर पड़ा हुआ हूं और जेल का दारोगा मेरी ओर घृणित भाव से देखकर कह रहा है कि तुम्हारी रिहाई अभी नहीं होगी। इतने में गंगाजली और उनके पिता दोनों चारपाई के पास खड़े हो गए। उनके मुंह विकृत थे और उन पर कालिमा लगी हुई थी। गंगाजली ने रोकर कहा, तुम्हारे कारण हमारी यह दुर्दशा हो रही है। पिता ने क्रोधयुक्त नेत्रों से देखते हुए कहा, क्या हमारी कालिमा ही तेरे जीवन का फल होगी, इसीलिए हमने तुमको जन्म दिया था? अब यह कालिमा कभी हमारे मुख से न छूटेगी। हम अनंतकाल तक यह यंत्रणा भोगते रहेंगे। तूने केवल चार दिन जीवित रहने के लिए हमें यह कष्ट-भोग दिया है, पर हम इसी दम तेरा प्राण हरण करेंगे। यह कहते हुए वह कुल्हाड़ा लिए हुए उन पर झपटे।

कृष्णचन्द्र की आंखें खुल गईं। उनकी छाती धड़क रही थी। सोते वक्त वह भूल गए थे कि मैं क्या करने घर से चला था। इस स्वप्न ने उसका स्मरण करा दिया। उन्होंने अपने को धिक्कारा। मैं कैसा कर्त्तव्यहीन हूं। उन्हें निश्चित हो गया कि यह स्वप्न नहीं, आकाशवाणी है।

गजाधर के कथन का असर धीरे-धीरे उनके हृदय से मिटने लगा। सुमन अब चाहे सती हो जाए, साध्वी हो जाए, इससे वह कालिमा तो न मिट जाएगी, जो उसने हमारे मुख में लगा दी है। यह महात्मा कहते हैं, पाप में सुधार की बड़ी शक्ति है। मुझे तो वह कहीं दिखाई नहीं देती। मैंने भी तो पाप किए हैं, पर कभी इस शक्ति का अनुभव नहीं किया। कुछ नहीं, यह सब इनके शब्दजाल हैं, इन्होंने अपनी कायरता को शब्दों के आडंबर में छिपाया है। यह मिथ्या है, पाप से पाप ही उत्पन्न होगा। अगर पाप से पुण्य होता, तो आज संसार में कोई पापी न रह जाता।

यह सोचते हुए वह उठ बैठे। गजाधर भी आग के पास पड़े हुए थे। कृष्णचन्द्र चुपके से उठे और गंगातट की ओर चले। उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब इन वेदनाओं का अंत ही करके छोडूंगा।

चन्द्रमा अस्त हो चुका था। कुहरा और भी सघन हो गया। अंधकार ने वृक्ष, पहाड़ और आकाश में कोई अंतर न छोड़ा था। कृष्णचन्द्र एक पगडंडी पर चले रहे थे, पर दृष्टि की अपेक्षा अनुमान से अधिक काम लेना पड़ता था। पत्थरों के टुकड़ों और झाड़ियों से बचने में वह ऐसे लीन हो रहे थे कि अपनी अवस्था का ध्यान न था।

कगार के किनारे पहुंचकर उन्हें कुछ प्रकाश दिखाई दिया। वह नीचे उतरे। गंगा कुहरे की मोटी चादर ओढ़े पड़ी कराह रही थी। आसपास के अधंकार और गंगा में केवल प्रवाह का अंतर था। यह प्रवाहित अंधकार था। ऐसी उदासी छाई हुई थी, जो मृत्यु के बाद घरों में छा जाती है।

कृष्णचन्द्र नदी के किनारे खड़े थे। उन्होंने विचार किया, हाय ! अब मेरा अंत कितना निकट है। एक पल में यह प्राण न जाने कहां चले जाएंगे। न जाने क्या गति होगी? संसार से आज नाता टूटता है। परमात्मन्, अब तुम्हारी शरण आता हूं, मुझ पर दया करो, ईश्वर मुझे संभालो।

इसके बाद उन्होंने एक क्षण अपने हृदय में बल का संचार किया। उन्हें मालूम हुआ कि मैं निर्भय हूं। वह पानी में घुसे। पानी बहुत ठंडा था। कृष्णचन्द्र का सारा शरीर दहल उठा। वह

घुसते हुए चले गए। गले तक पानी में पहुंचकर एक बार फिर विराट तिमिर को देखा। यह संसार-प्रेम की अंतिम घड़ी थी। यह मनोबल की, आत्माभिमान की अंतिम परीक्षा थी। अब तक उन्होंने जो कुछ किया था, वह केवल इसी परीक्षा की तैयारी थी। इच्छा और माया का अंतिम संग्राम था। माया ने अपनी संपूर्ण शक्ति से उन्हें अपनी ओर खींचा। सुमन विदुषी वेश में दृष्टिगोचर हुई, शान्ता शोक की मूर्ति बनी हुई सामने आई। अभी क्या बिगड़ा है? क्यों न साधु हो जाऊं? मैं ऐसा कौन बड़ा आदमी हूं कि संसार मेरे नाम और मर्यादा की चर्चा करेगा? ऐसी न जाने कितनी कन्याएं पाप के फंदे में फंसती हैं। संसार किसकी परवाह करता है? मैं मूर्ख हूं, जो यह सोचता हूं कि संसार मेरी हंसी उड़ाएगा। इच्छा-शक्ति ने कितना ही चाहा कि इस तर्क का प्रतिवाद करे, पर वह निष्फल हुई, एक डुबकी की कसर थी। जीवन और मृत्यु में केवल एक पग का अंतर था। पीछे का एक पग कितना सुलभ था, कितना सरल, आगे का एक पग कितना कठिन था, कितना भयकारक।

कृष्णचन्द्र ने पीछे लौटने के कदम उठाया। माया ने अपनी विलक्षण शक्ति का चमत्कार दिखा दिया। वास्तव में वह संसार-प्रेम नहीं था, अदृश्य का भय था।

उस समय कृष्णचन्द्र को अनुभव हुआ कि अब मैं पीछे नहीं फिर सकता। वह धीरे-धीरे आप-ही-आप खिसकते जाते थे। उन्होंने जोर से चीत्कार किया। अपने शीत-शिथिल पैरों को पीछे हटाने की प्रबल चेष्टा की, लेकिन कर्म की गति कि वह आगे ही को खिसके।

अकस्मात् उनके कानों में गजाधर के पुकारने की आवाज आई। कृष्णचन्द्र ने चिल्लाकर उत्तर दिया, पर मुंह से पूरी बात भी न निकलने पाई थी कि हवा से बुझकर अंधकार में लीन हो जाने वाले दीपक के सदृश लहरों में मग्न हो गए। शोक, लज्जा और चितातप्त हृदय का दाह शीतल जल में शांत हो गया। गजाधर ने केवल यह शब्द सुने 'मैं यहां डूबा जाता हूं' और फिर लहरों की पैशाचिक क्रीड़ाध्वनि के सिवा और कुछ न सुनाई दिया।

शोकाकुल गजाधर देर तक तट पर खड़े रहे। वही शब्द चारों ओर से उन्हें सुनाई देते थे। पास की पहाड़ियां और सामने की लहरें और चारों ओर छाया हुआ दुर्भेद्य अंधकार इन्हीं शब्दों से प्रतिध्वनित हो रहा था।

उनतालीस

प्रात:काल यह शोक-समाचार अमोला में फैल गया। इने-गिने सज्जनों को छोड़कर कोई भी उमानाथ के द्वार पर समवेदना प्रकट करने न आया। स्वाभाविक मृत्यु हुई होती, तो संभवत: उनके शत्रु भी आकर चार आंसू बहा जाते, पर आत्मघात एक भंयकर समस्या है, यहां पुलिस का अधिकार है। इस अवसर पर मित्रदल ने भी शत्रुवत व्यवहार किया।

उमानाथ से गजाधर ने जिस समय यह समाचार कहा, उस समय वह कुएं पर नहा रहे थे। उन्हें लेश-मात्र भी दु:ख व कौतूहल नहीं हुआ। इसके प्रतिकूल उन्हें कृष्णचन्द्र पर क्रोध आया, पुलिस के हथकंडों की शंका ने शोक को भी दबा दिया। उन्हें स्नान-ध्यान में उस

दिन बड़ा विलंब हुआ। संदिग्ध चित्त को अपनी परिस्थिति के विचार से अवकाश नहीं मिलता। वह समय-ज्ञान-रहित हो जाता है।

जाह्नवी ने बड़ा हाहाकार मचाया। उसे रोते देखकर उसकी दोनों बेटियां भी रोने लगीं। पास-पड़ोस की महिलाएं समझाने के लिए आ गईं। उन्हें पुलिस का भय नहीं था, पर आर्तनाद शीघ्र ही समाप्त हो गया। कृष्णचन्द्र के गुण-दोष की विवेचना होने लगी। सर्वसम्मति ने स्थिर किया कि उनमें गुण की मात्रा दोष से बहुत अधिक थी। दोपहर को जब उमानाथ घर में शर्बत पीने आए और कृष्णचन्द्र के संबंध में कुछ अनुदारता का परिचय दिया, तो जाह्नवी ने उनकी ओर वक्र नेत्रों से देखकर कहा-कैसी तुच्छ बातें करते हो।

उमानाथ लज्जित हो गए। जाह्नवी अपने हार्दिक आनंद का सुख अकेले उठा रही थी। इस भाव को वह इतना तुच्छ और नीच समझती थी कि उमानाथ से भी उसे गुप्त रखना चाहती थी। सच्चा शोक शान्ता के सिवा और किसी को न हुआ। यद्यपि अपने पिता को वह सामर्थ्यहीन समझती थी, तथापि संसार में उसके जीवन का एक आधार मौजूद था। अपने पिता की हीनावस्था ही उसकी पितृ-भक्ति का कारण थी, अब वह सर्वथा निराधार हो गई। लेकिन नैराश्य ने उसके जीवन को उद्देश्यहीन नहीं होने दिया। उसका हृदय और भी कोमल हो गया। कृष्णचन्द्र ने चलते-चलते उसे जो शिक्षा दी थी, उसमें अब उससे विलक्षण प्रेरणा-शक्ति का प्रादुर्भाव हो गया था। आज से शान्ता सहिष्णुता की मूर्ति बन गई। पावस की अंतिम बूंदों के सदृश मनुष्य की वाणी के अंतिम शब्द कभी निष्फल नहीं जाते। शान्ता अब मुंह से ऐसा कोई शब्द न निकालती, जिससे उसके पिता को दु:ख हो। उनके जीवनकाल में वह कभी-कभी उनकी अवहेलना किया करती थी, पर अब वह अनुदार विचारों को हृदय में भी न आने देती थी। उसे निश्चय था कि भौतिक शरीर से मुक्त आत्मा के लिए अंतर और बाह्य में कोई भेद नहीं। यद्यपि अब वह जाह्नवी को संतुष्ट रखने के निमित्त कोई बात उठा न रखती थी, तथापि जाह्नवी उसे दिन में दो-चार बार अवश्य ही उल्टी-सीधी सुना देती। शान्ता को क्रोध आता, पर वह विष का घूंट पीकर रह जाती, एकांत में भी न रोती। उसे भय था कि पिताजी की आत्मा मेरे रोने से दु:खी होगी।

होली के दिन उमानाथ अपनी दोनों लड़कियों के लिए उत्तम साड़ियां लाए। जाह्नवी ने भी रेशमी साड़ी निकाली, पर शान्ता को अपनी पुरानी धोती ही पहननी पड़ी। उसका हृदय दु:ख से विदीर्ण हो गया, पर उसका मुख जरा भी मलिन न हुआ। दोनों बहनें मुंह फुलाए बैठी थीं कि साड़ियों में गोट नहीं लगवाई गई और शान्ता प्रसन्न बदन घर का काम-काज कर रही थी, यहां तक कि जाह्नवी को भी उस पर दया आ गई। उसने अपनी एक पुरानी, लेकिन रेशमी साड़ी निकालकर शान्ता को दे दी। शान्ता ने जरा भी मान न किया। उसे पहनकर पकवान बनाने में मग्न हो गई।

एक दिन शान्ता उमानाथ की धोती छांटना भूल गई। दूसरे दिन प्रात:काल उमानाथ नहाने चले, तो धोती गीली पड़ी थी। वह तो कुछ न बोले, पर जाह्नवी ने इतना कोसा कि वह रो पड़ी। रोती थी और धोती छांटती थी। उमानाथ को यह देखकर दुख हुआ। उन्होंने मन में सोचा, हम केवल पेट की रोटियों के लिए इस अनाथ को इतना कष्ट दे रहे हैं। ईश्वर के यहां क्या जवाब देंगे? जाह्नवी को तो उन्होंने कुछ न कहा, पर निश्चय किया कि शीघ्र ही इस अत्याचार का अंत करना चाहिए। मृतक संस्कारों से निवृत्त होकर उमानाथ आजकल मदनसिंह पर मुकदमा

दायर करने की कार्यवाही में मग्न थे। वकीलों ने उन्हें विश्वास दिला दिया था कि तुम्हारी अवश्य विजय होगी। पांच हजार रुपये मिल जाने से मेरा कितना कल्याण होगा, यह कामना उमानाथ को आनंदोन्मत्त कर देती थी। इस कल्पना ने उनकी शुभाकांक्षाओं को जागृत कर दिया था। नया घर बनाने के मंसूबे होने लगे थे। उस घर का चित्र हृदयपट पर खिंच गया था। उसके लिए उपुयक्त स्थान की बातचीत शुरू हो गई थी। इन आनंद-कल्पनाओं में शान्ता की सुधि न रही थी। जाह्नवी के इस अत्याचार ने उनको शान्ता की ओर आकर्षित किया। गजाधर के दिए हुए सहस्र रुपये, जो उन्होंने मुकदमे के खर्च के लिए अलग रख दिए थे, घर में मौजूद थे। एक दिन जाह्नवी से उन्होंने इस विषय में कुछ बातचीत की। कहीं एक सुयोग्य वर मिलने की आशा थी। शान्ता ने ये बातें सुनीं। मुकदमे की बातचीत सुनकर भी उसे दुख होता था, पर वह उसमें दखल देना अनुचित समझती थी, लेकिन विवाह की बातचीत सुनकर वह चुप न रह सकी। एक प्रबल प्रेरक शक्ति ने उसकी लज्जा और संकोच को हटा दिया। ज्योंही उमानाथ चले गए, वह जाह्नवी के पास आकर बोली—मामा अभी तुमसे क्या कह रहे थे? जाह्नवी ने असंतोष के भाव से उत्तर दिया—कह क्या रहे थे, अपना दु:ख रो रहे थे। अभागिन सुमन ने यह सब कुछ किया, नहीं तो यह दोहरकम्मा क्यों करना पड़ता? अब न उतना उत्तम कुल ही मिलता है, न वैसा सुंदर वर। थोड़ी दूर पर एक गांव है। वहीं एक वर देखने गए थे। शान्ता ने भूमि की ओर ताकते हुए उत्तर दिया—क्या मैं तुम्हें इतना कष्ट देती हूं कि मुझे फेंकने की पड़ी हुई है? तुम मामा से कह दो कि मेरे लिए कष्ट न उठाएं।

जाह्नवी—तुम उनकी प्यारी भांजी हो, उनसे तुम्हारा दुख नहीं देखा जाता। मैंने भी तो यही कहा था कि अभी रहने दो। जब मुकदमे का रुपया हाथ आ जाय, तो निश्चिंत होकर करना, पर वह मेरी बात मानें तब तो?

शान्ता—मुझे वहीं क्यों नहीं पहुंचा देते?

जाह्नवी ने विस्मित होकर पूछा—कहां?

शान्ता ने सरल भाव से उत्तर दिया—चाहे चुनार, चाहे काशी।

जाह्नवी—कैसी बच्चों की-सी बातें करती हो। अगर ऐसा ही होता, तो रोना काहे का था? उन्हें तुम्हें घर में रखना होता, तो यह उपद्रव क्यों मचाते?

शान्ता—बहू बनाकर न रखें, लौंडी बनाकर तो रखेंगे।

जाह्नवी ने निर्दयता से कहा—तो चली जाओ। तुम्हारे मामा से कभी न होगा कि तुम्हें सिर चढ़ाकर ले जाएं और वहां अपना अपमान कराके फिर तुम्हें ले आएं। वह तो उन लोगों का मुंह कुचलकर उनसे रुपये भराएंगे।

शान्ता—मामी, वे लोग चाहे कैसे ही अभिमानी हों, लेकिन मैं उनके द्वार पर जाकर खड़ी हो जाऊंगी, तो उन्हें मुझ पर दया आ ही जाएगी। मुझे विश्वास है कि वह मुझे अपने द्वार पर से हटा न देंगे। अपना बैरी भी द्वार पर आ जाए, तो उसे भगाते संकोच होता है। मैं तो फिर भी....

जाह्नवी अधीर हो गई। यह निर्लज्जता उससे सही न गई। बात काटकर बोली—चुप भी रहो। लाज-हया तो जैसे तुम्हें छू नहीं गई। मान न मान, मैं तेरा मेहमान। जो अपनी बात न पूछे, वह चाहे धन्नासेठ ही क्यों न हो, उसकी ओर आंख उठाकर न देखूं। अपनी तो यह टेक है। अब तो वे लोग यहां आकर नकघिसनी भी करें, तो तुम्हारे मामा दूर से ही भगा देंगे।

शान्ता चुप हो गई। संसार चाहे जो कुछ समझता हो, वह अपने को विवाहिता ही समझती थी। विवाहिता कन्या का दूसरे घर में विवाह हो, यह उसे अत्यंत लज्जाजनक, असह्य प्रतीत होता था। बारात आने के एक मास पहले से वह सदन के रूप-गुण की प्रशंसा सुन-सुनकर उसके हाथों बिक चुकी थी। उसने अपने द्वार पर, द्वाराचार के समय, सदन को अपने पुरुष की भाँति देखा है, इस प्रकार नहीं, मानो वह कोई अपरिचित मनुष्य है। अब किसी दूसरे पुरुष की कल्पना उसके सतीत्व पर कुठार के समान लगती थी। वह इतने दिनों तक सदन को अपना पति समझने के बाद उसे हृदय से निकाल न सकती थी, चाहे वह उसकी बात पूछे या न पूछे, चाहे उसे अंगीकार करे या न करे। अगर द्वाराचार के बाद ही सदन उसके सामने आता, तो वह उसी भाँति मिलती, मानों वह उसका पति है। विवाह, भांवर या सेंदूर-बंधन नहीं, केवल मन का भाव है।

शान्ता को अभी तक यह आशा थी कि कभी-न-कभी मैं पति के घर अवश्य जाऊंगी, कभी-न-कभी स्वामी के चरणों में अवश्य ही आश्रय पाऊंगी, पर आज अपने विवाह की—या पुनर्विवाह की—बात सुनकर उसका अनुरक्त हृदय कांप उठा। उसने नि:संकोच होकर जाह्नवी से विनय की कि मुझे पति के घर भेज दो। यहीं तक उसकी सामर्थ्य थी। इसके सिवा वह और क्या करती? पर जाह्नवी की निर्दयतापूर्ण उपेक्षा देखकर उसका धैर्य हाथ से जाता रहा। मन की चंचलता बढ़ने लगी। रात को जब सब सो गए, तो उसने पद्मसिंह को एक विनय-पत्र लिखना शुरू किया। यह उसका अंतिम साधन था। इसके निष्फल होने पर उसने कर्त्तव्य का निश्चय कर लिया था।

पत्र शीघ्र समाप्त हो गया। उसने पहले ही से कल्पना में उसकी रचना कर ली थी। केवल लिखना बाकी था।

'पूज्य धर्मपिता के चरण-कमलों में सेविका शान्ता का प्रणाम स्वीकार हो। मैं बहुत दुख में हूं। मुझ पर दया करके अपने चरणों में आश्रय दीजिए। पिताजी गंगा में डूब गए। यहां आप लोगों पर मुकदमा चलाने का प्रस्ताव हो रहा है। मेरे पुनर्विवाह की बातचीत हो रही है। शीघ्र सुधि लीजिए। एक सप्ताह तक आपकी राह देखूंगी। उसके बाद फिर आप इस अबला की पुकार न सुनेंगे।'

इतने में जाह्नवी की आंखें खुलीं। मच्छरों ने सारे शरीर में कांटे चुभो दिये थे। खुजलाते हुए बोली—शान्ता ! यह क्या कर रही है?

शान्ता ने निर्भय होकर कहा—पत्र लिख रही हूं।

'किसको ?'

'अपने श्वसुर को।'

'चुल्लू-भर पानी में डूब नहीं मरती?'

'सातवें दिन मरूंगी।'

जाह्नवी ने कुछ उत्तर न दिया, फिर सो गई। शान्ता ने लिफाफे पर पता लिखा और उसे अपने कपड़ों की गठरी में रखकर लेट रही।

चालीस

पद्मसिंह का पहला विवाह उस समय हुआ था, जब वह कॉलेज में पढ़ते थे, और एम० ए० पास हुए, तो वह एक पुत्र के पिता थे। पर बालिका वधू शिशु-पालन का मर्म न जानती थी। बालक जन्म के समय तो हृष्ट-पुष्ट था, पर पीछे धीरे-धीरे क्षीण होने लगा था। यहां तक कि छठे महीने माता और शिशु दोनों ही चल बसे। पद्मसिंह ने निश्चय किया, अब विवाह न करूंगा। मगर वकालत पास करने पर उन्हें फिर वैवाहिक बंधन में फंसना पड़ा। सुभद्रा रानी वधू बनकर आई। इसे आज सात वर्ष हो गए।

पहले दो-तीन साल तक तो पद्मसिंह को संतान का ध्यान ही नहीं हुआ। यदि भामा इसकी चर्चा करती, तो वह टाल जाते। कहते, मुझे संतान की इच्छा नहीं। मुझसे यह बोझ न संभलेगा। अभी तक संतान की आशा थी, इसलिए अधीर न होते थे।

लेकिन जब चौथा साल भी यों ही कट गया, तो उन्हें कुछ निराशा होने लगी। मन में चिंता हुई, क्या सचमुच मैं निःसंतान ही रहूंगा। ज्यों-ज्यों दिन गुजरते थे, यह चिंता बढ़ती जाती थी। अब उन्हें अपना जीवन कुछ शून्य-सा मालूम होने लगा। सुभद्रा से वह प्रेम न रहा, सुभद्रा ने इसे ताड़ लिया। उसे दुख तो हुआ, पर इसे अपने कर्मों का फल समझकर उसने संतोष किया।

पद्मसिंह अपने को बहुत समझाते कि तुम्हें संतान लेकर क्या करना है? जन्म से लेकर पच्चीस वर्ष की आयु तक उसे जिलाओ, खिलाओ, पढ़ाओ, तिस पर भी यह शंका ही लगी रहती है कि वह किसी ढंग की भी होगी या नहीं। लड़का मर गया, तो उसके नाम को लेकर रोओ। जो कहीं हम मर गए, तो उसकी जिंदगी नष्ट हो गई। हमें यह सुख नहीं चाहिए। लेकिन इन विचारों से मन को शांति न होती। वह सुभद्रा से अपने भावों को छिपाने की चेष्टा करते थे और उसे निर्दोष समझकर उसके साथ पूर्ववत् प्रेम करना चाहते थे, पर जब हृदय पर नैराश्य का अंधकार छाया हो, तो मुख पर प्रकाश कहां से आए? साधारण बुद्धि का मनुष्य भी कह सकता था कि स्त्री-पुरुष के बीच में कुछ-न-कुछ अंतर है। कुशल यही थी कि सुभद्रा की ओर से पतिप्रेम और सेवा में कुछ कमी न थी, वरन् दिनोंदिन उसमें और कोमलता आती जाती थी, वह अपने प्रेमानुराग से संतान-लालसा को दबाना चाहती थी, पर इस दुस्तर कार्य में वह उस वैद्य से अधिक सफल न होती थी, जो रोगी को गीतों से अच्छा करना चाहता हो। गृहस्थी की छोटी-छोटी बातों पर, जो अनुचित होने पर भी पति को ग्राह्य हो जाया करती हैं, उसे सदैव दबना पड़ता था और जब से सदन यहां रहने लगा था, कितनी ही बार उसके पीछे तिरस्कृत होना पड़ा। स्त्री अपने पति के बर्छों का घाव सह सकती है, पर किसी दूसरे के पीछे उसकी तीव्र दृष्टि भी उसे असह्य हो जाती है। सदन सुभद्रा की आंखों में कांटे की तरह गड़ता था। अंत को कल वह उबल पड़ी। गर्मी सख्त थी। मिसिराइन किसी कारण से न आई थी, सुभद्रा को भोजन बनाना पड़ा। उसने पद्मसिंह के लिए फुल्कियां पकाईं। लेकिन गर्मी से व्याकुल थी, इसलिए सदन के लिए मोटी-मोटी रोटियां बना दीं। पद्मसिंह भोजन करने बैठे, सदन की थाली में रोटियां देखीं, तो मारे क्रोध के अपनी फुल्कियां उसकी थाली में रख दीं और उसकी रोटियां अपनी थाली में डाल लीं। सुभद्रा ने जलकर कुछ कटु वाक्य कहे, पद्मसिंह ने वैसा ही उत्तर दिया। फिर प्रत्युत्तर की नौबत आई। यहां तक कि वह झल्लाकर चौके से उठ गए। सुभद्रा ने मनावन नहीं किया। उसने रसोई उठा दी और जाकर लेट रही, पर अभी तक दो में से एक का

भी क्रोध शांत नहीं हुआ। मिसिराइन ने आज खाना बनाया, पर न पद्मसिंह ने खाया, न सुभद्रा ने। सदन बारी-बारी से दोनों की खुशामद कर रहा था, पर एक तरफ से यह उत्तर पाता, अभी भूख नहीं है और दूसरी तरफ से जवाब मिलता, खा लूंगी, यह थोड़े ही छूटेगा। यही छूट जाता, तो काहे किसी की धौंस सहनी पड़ती। आश्चर्य था कि सदन से सुभद्रा हंस-हंसकर बातें करती थी और वही इस कलह का मूल कारण था। मृगा खूब जानता है कि टट्टी की आड़ से आने वाला तीर वास्तव में शिकारी की मांस-तृष्णा या मृगया प्रेम है।

तीसरा पहर हो गया था, पद्मसिंह सोकर उठे थे और जम्हाइयां ले रहे थे। उनका हृदय सुभद्रा के प्रति अनुदार, अप्रिय, दग्धकारी भावों से मलिन हो रहा था। सुभद्रा के अतिरिक्त यह प्राणि-मात्र से सहानुभूति करने को तैयार बैठे थे। इसी समय डाकिए ने एक बैरंग चिट्ठी लाकर उन्हें दी। उन्होंने डाकिए को इस अप्रसन्नता की दृष्टि से देखा, मानो बैरंग चिट्ठी लाकर उसने कोई अपराध किया है। पहले तो उन्हें इच्छा हुई कि इसे लौटा दें, किसी दरिद्र मुवक्किल ने इसमें अपनी विपत्ति गाई होगी, लेकिन कुछ सोचकर चिट्ठी ले ली और खोलकर पढ़ने लगे। यह शान्ता का पत्र था। उसे एक बार पढ़कर मेज पर रख दिया। एक क्षण के बाद फिर उठाकर पढ़ा और तब कमरे में टहलने लगे। इस समय यदि मदनसिंह वहां होते, तो वह पत्र उन्हें दिखाते और कहते, यह आपके कुल-मर्यादाभिमान का—आपके लोक-निंदा-भय का फल है। आपने एक मनुष्य का प्राणाघात किया, उसकी हत्या आपके सिर पड़ेगी। पद्मसिंह को मुकदमे की बात पढ़कर एक प्रकार का आनंद-सा हुआ। बहुत अच्छा हो कि यह मुकदमा दायर हो और उनकी कुलीनता का गर्व धूल में मिल जाए। उमानाथ की डिगरी अवश्य होगी और तब भाई साहब को ज्ञात होगा कि कुलीनता कितनी मंहगी वस्तु है। हाय ! उस अबला कन्या के हृदय पर क्या बीत रही होगी? पद्मसिंह ने फिर उस पत्र को पढ़ा। उन्हें उसमें अपने प्रति श्रद्धा का एक स्रोत-सा बहता हुआ मालूम हुआ। इसने उनकी न्यायप्रियता को उत्तेजित-सा कर दिया। 'धर्मपिता' इस शब्द ने उन्हें वशीभूत कर दिया। उसने उनके हृदय में वात्सल्य के तार का स्वर कंपित कर दिया। वह कपड़े पहनकर विट्ठलदास के मकान पर जा पहुंचे, वहां मालूम हुआ कि वे कुंवर अनिरुद्धसिंह के यहां गए हुए हैं। तुरंत बाइसिकल उधर फेर दी। वह शान्ता के विषय में इसी समय कुछ-न-कुछ निश्चय कर लेना चाहते थे। उन्हें भय था कि विलंब होने से यह जोश ठंडा न पड़ जाय।

कुंवर साहब के यहां ग्वालियर से एक जलतरंग बजाने वाला आया हुआ था। उसी का गाना सुनने के लिए आज उन्होंने अपने मित्रों को निमंत्रित किया था। पद्मसिंह वहां पहुंचे तो विट्ठलदास और प्रोफेसर रमेशदत्त में उच्च स्वर में विवाद हो रहा था और कुंवर साहब, पंडित प्रभाकर राव तथा सैयद तेगअली बैठे हुए बटेरों की इस लड़ाई का तमाशा देख रहे थे। शर्माजी को देखते ही कुंवर साहब ने उनका स्वागत किया। बोले—आइए, आइए, देखिए यहां घोर संग्राम हो रहा है। किसी तरह इन्हें अलग कीजिए, नहीं तो ये लड़ते-लड़ते मर जायंगे।

इतने में प्रोफेसर रमेशदत्त बोले—थियासोफिस्ट होना कोई गाली नहीं है। मैं थियासोफिस्ट हूं और इसे सारा शहर जानता है। हमारे ही समाज के उद्योग का फल है कि आज अमेरिका, जर्मनी, रूस इत्यादि देशों में आपको राम और कृष्ण के भक्त और गीता, उपनिषद् आदि सद्ग्रंथों के प्रेमी दिखाई देने लगे हैं। हमारे समाज ने हिन्दू जाति का गौरव बढ़ा दिया है, उसके महत्त्व को प्रसारित कर दिया है और उसे उस उच्चासन पर बिठा दिया है, जिसे वह अपनी अकर्मण्यता

के कारण कई शताब्दियों से छोड़ बैठी थी। यह हमारी परम कृतघ्नता होगी, अगर हम उन लोगों का यश न स्वीकार करें, जिन्होंने अपने दीपक से हमारे अंधकार को दूर करके हमें वह रत्न दिखा दिए हैं, जिन्हें देखने की हममें सामर्थ्य न थी। यह दीपक ब्लाबेट्स्की का हो, या आल्कट का या किसी अन्य पुरुष का, हमें इससे कोई प्रयोजन नहीं। जिसने हमारा अंधकार मिटाया हो, उसका अनुग्रहीत होना हमारा कर्त्तव्य है। अगर आप इसे गुलामी कहते हैं, तो यह आपका अन्याय है।

विट्ठलदास ने इस कथन को ऐसे उपेक्ष्य भाव से सुना, मानो वह कोई निरर्थक बकवाद है और बोले—इसी का नाम गुलामी है, बल्कि गुलाम तो एक प्रकार से स्वतंत्र होता है, उसका अधिकार शरीर पर होता है, आत्मा पर नहीं। आप लोगों ने तो अपनी आत्मा ही को बेच दिया है। आपकी अंग्रेजी शिक्षा ने आपको ऐसा पददलित किया है कि जब तक यूरोप का कोई विद्वान् किसी विषय के गुण-दोष प्रकट न करे, तब तक आप उस विषय की ओर से उदासीन रहते हैं। आप उपनिषदों का आदर इसलिए नहीं करते कि वह स्वयं आदरणीय हैं, बल्कि इसलिए करते हैं कि ब्लाबेट्स्की और मैक्समूलर ने उनका आदर किया है। आपमें अपनी बुद्धि से काम लेने की शक्ति का लोप हो गया है। अभी तक आप तांत्रिक विद्या की बात भी न पूछते थे। अब जो यूरोपीय विद्वानों ने उसका रहस्य खोलना शुरू किया, तो आपको अब तंत्रों में गुण दिखाई देते हैं। यह मानसिक गुलामी उस भौतिक गुलामी से कहीं गई-गुजरी है। आप उपनिषदों को अंग्रेजी में पढ़ते हैं, गीता को जर्मन में। अर्जुन को अर्जुना, कृष्ण को कृशना कहकर अपने स्वभाषा-ज्ञान का परिचय देते हैं। आपने इसी मानसिक दासत्व के कारण उस क्षेत्र में अपनी पराजय स्वीकार कर ली, जहां हम अपने पूर्वजों की प्रतिभा और प्रचंडता से चिरकाल तक अपनी विजय-पताका फहरा सकते थे।

रमेशदत्त इसका कुछ उत्तर देना ही चाहते थे कि कुंवर साहब बोले उठे—मित्रो ! अब मुझसे बिना बोले नहीं रहा जाता। लाला साहब, आप अपने इस 'गुलामी' शब्द को वापस लीजिए।

विट्ठलदास—क्यों वापस लूं?

कुंवरसाहब—आपको इसके प्रयोग करने का अधिकार नहीं है।

विट्ठलदास—मैं आपका आशय नहीं समझा।

कुंवरसाहब—मेरा आशय यह है कि हममें कोई भी दूसरों को गुलाम कहने का अधिकार नहीं रखता ! अंधों के नगर में कौन किसको अंधा कहेगा? हम सब-के-सब राजा हों या रंक, गुलाम हैं। हम अगर अपढ़, निर्धन, गंवार हैं, तो थोड़े गुलाम हैं। हम अपने राम का नाम लेते हैं, अपनी गाय पालते हैं और अपनी गंगा में नहाते हैं, और हम यदि विद्वान्, उन्नत, ऐश्वर्यवान हैं, तो बहुत गुलाम हैं, जो विदेशी भाषा बोलते हैं, कुत्ते पालते हैं और अपने देशवासियों को नीच समझते हैं। सारी जाति इन्हीं दो भागों में विभक्त है। इसलिए कोई किसी को गुलाम नहीं कह सकता। गुलामी के मानसिक, आत्मिक, शारीरिक आदि विभाग करना भ्रांतिकारक है। गुलामी केवल आत्मिक होती है, और दशाएं इसी के अंतर्गत हैं। मोटर, बंगले, पोलो और प्यानो यह एक बेड़ी के तुल्य हैं। जिसने इन बेड़ियों को नहीं पहना, उसी को सच्ची स्वाधीनता का आनंद प्राप्त हो सकता है, और आप जानते हैं, वे कौन लोग हैं? वे हमारे दीन कृषक हैं, जो अपने पसीने की कमाई खाते हैं, अपने जातीय भेष, भाषा और भाव का आदर करते हैं और किसी के सामने सिर नहीं झुकाते हैं।

प्रभाकर राव ने मुस्कराकर कहा—आपको कृषक बन जाना चाहिए।

कुंवरसाहब—तो अपने पूर्वजन्म के कुकर्मों को कैसे भोगूंगा? बड़े दिन में मेवे की डालियां कैसे लगाऊंगा? सलामी के लिए खानसामा की खुशामद कैसे करूंगा? उपाधि के लिए नैनीताल के चक्कर कैसे लगाऊंगा? डिनर पार्टी देकर लेडियों के कुत्तों को कैसे गोद में उठाऊंगा? देवताओं को प्रसन्न और संतुष्ट करने के लिए देशहित के कार्यों में असम्मति कैसे दूंगा? यह सब मानव-अध:पतन की अंतिम अवस्थाएं हैं। उन्हें भोग किए बिना मेरी मुक्ति नहीं हो सकती। (पद्मसिंह से) कहिए शर्माजी, आपका प्रस्ताव बोर्ड में कब आएगा? आप आजकल कुछ उत्साहहीन से दीख पड़ते हैं। क्या इस प्रस्ताव की भी वही गति होगी, जो हमारे अन्य सार्वजनिक कार्यों की हुआ करती है?

इधर कुछ दिनों से वास्तव में पद्मसिंह का उत्साह कुछ क्षीण हो गया था। ज्यों-ज्यों उसके पास होने की आशा बढ़ती थी, उनका अविश्वास भी बढ़ता जाता था। विद्यार्थी की परीक्षा जब तक नहीं होती, वह उसी की तैयारी में लगा रहता है, लेकिन परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने के बाद भावी जीवन-संग्राम की चिंता उसे हतोत्साह कर दिया करती है। उसे अनुभव होता है कि जिन साधनों से अब तक मैंने सफलता प्राप्त की है, वह इस नए, विस्तृत, अगम्य क्षेत्र में अनुपयुक्त हैं। वही दशा इस समय शर्माजी की थी। अपना प्रस्ताव उन्हें कुछ व्यर्थ-सा मालूम होता था। व्यर्थ ही नहीं, कभी-कभी उन्हें उससे लाभ के बदले हानि होने का भय होता था। लेकिन वह अपने संदेहात्मक विचारों को प्रकट करने का साहस न कर सकते थे, कुंवर साहब की ओर विश्वासपूर्ण दृष्टि से देखकर बोले, जी नहीं, ऐसा तो नहीं है। हां, आजकल फुर्सत न रहने से वह काम जरा धीमा पड़ गया है।

कुंवर साहब—उसके पास होने में तो अब कोई बाधा नहीं है?

पद्मसिंह ने तेगअली की तरफ देखकर कहा—मुसलमान मेंबरों का ही भरोसा है।

तेगअली ने मार्मिक भाव से कहा—उन पर एतमाद करना रेत पर दीवार बनाना है। आपको मालूम नहीं, वहां क्या चालें चली जा रही हैं। अजब नहीं है कि ऐन वक्त पर धोखा दें।

पद्मसिंह—मुझे तो ऐसी आशा नहीं है।

तेगअली—यह आपकी शराफत है। यहां इस वक्त उर्दू-हिंदी का झगड़ा, गोकशी का मसला, जुदागाना इंतखाब, सूद का मुआबिजा, कानून इन सबों से मजहबी तास्सुब के भड़काने में मदद ली जा रही है।

प्रभाकर राव—सेठ बलभद्रदास न आएंगे क्या, किसी तरह उन्हीं को समझाना चाहिए।

कुंवर साहब—मैंने उन्हें निमंत्रण ही नहीं दिया, क्योंकि मैं जानता था कि वह कदापि न आएंगे। वह मतभेद को वैमनस्य समझते हैं। हमारे प्राय: सभी नेताओं का यही हाल है। यही एक विषय है, जिसमें उनकी सजीवता प्रकट होती है। आपका उनसे जरा भी मतभेद हुआ और वह आपके जानी दुश्मन हो गए, आपसे बोलना तो दूर रहा, आपकी सूरत तक न देखेंगे, बल्कि अवसर पाएंगे, तो अधिकारियों से आपकी शिकायत करेंगे। अपने मित्रों की मंडली में आपके आचार-विचार, रीति-व्यवहार की आलोचना करेंगे। आप ब्राह्मण हैं तो आपको भिक्षुक कहेंगे, क्षत्रिय हैं तो आपको उज्जड-गंवार कहेंगे। वैश्य हैं, तो आपको बनिए, डंडी-तौल की पदवी मिलेगी और शूद्र हैं तब तो आप बने-बनाए चांडाल हैं ही। आप अगर गाने में प्रेम रखते हैं, तो आप दुराचारी हैं, आप सत्संगी हैं तो आपको तुरंत 'बछिया के ताऊ' की उपाधि मिल जाएगी।

यहां तक कि आपकी माता और स्त्री पर भी निंदास्पद आक्षेप किए जाएंगे। हमारे यहां मतभेद महापाप है और उसका कोई प्रायश्चित्त नहीं। अहा ! वह देखिए, डॉक्टर श्यामाचरण की मोटर आ गई।

डॉक्टर श्यामाचरण मोटर से उतरे और उपस्थित सज्जनों की ओर देखते हुए बोले–

I am sorry. I was late. कुंवर साहब ने उनका स्वागत किया। औरों ने भी हाथ मिलाया और डॉक्टर साहब एक कुर्सी पर बैठकर बोले–When is the performance going to begin !

कुंवर साहब–डॉक्टर साहब, आप भूलते हैं, यह काले आदमियों का समाज है।

डॉक्टर साहब ने हंसकर कहा–मुआफ कीजिएगा, मुझे याद न रहा कि आपके यहां मलेच्छों की भाषा बोलना मना है।

कुंवर साहब–लेकिन देवताओं के समाज में तो आप कभी ऐसी भूल नहीं करते।

डॉक्टर–तो महाराज, उसका कुछ प्रायश्चित्त करा लीजिए।

कुंवर साहब–इसका प्रायश्चित्त यही है कि आप मित्रों से अपनी मातृभाषा का व्यवहार किया कीजिए।

डॉक्टर–आप राजा लोग हैं, आपसे यह प्रण निभ सकता है। हमसे इसका पालन क्योंकर हो सकता है? अंग्रेजी तो हमारी Lingua Franca (सार्वदेशिक भाषा) हो रही है।

कुंवर साहब–उसे आप ही लोगों ने तो यह गौरव प्रदान कर रखा है। फारस और काबुल के मूर्ख सिपाहियों और हिन्दू व्यापारियों के समागम से उर्दू जैसी भाषा का प्रादुर्भाव हो गया। अगर हमारे देश के भिन्न-भिन्न प्रांतों के विद्वज्जन परस्पर अपनी ही भाषा में संभाषण करते, तो अब तक कभी की एक सार्वदेशिक भाषा बन गई होती। जब तक आप जैसे विद्वान् लोग अंग्रेजी के भक्त बने रहेंगे, कभी एक सार्वदेशिक भाषा का जन्म न होगा। मगर यह काम कष्टसाध्य है, इसे कौन करे? यहां तो लोगों को अंग्रेजी जैसी समुन्नत भाषा मिल गई, सब उसी के हाथों बिक गए। मेरी समझ में नहीं आता कि अंग्रेजी भाषा बोलने और लिखने में लोग क्यों अपना गौरव समझते हैं। मैंने भी अंग्रेजी पढ़ी है। दो साल विलायत रह आया हूं और आपके कितने ही अंग्रेजी के धुरंधर पंडितों से अच्छी अंग्रेजी लिख और बोल सकता हूं, पर मुझे उससे ऐसी घृणा होती है, जैसे किसी अंग्रेज के उतारे हुए कपड़े पहनने से।

पद्मसिंह ने इन वादों में कोई भाग न लिया। ज्योंही अवसर मिला, उन्होंने विट्ठलदास को बुलाया और उन्हें एकांत में ले जाकर शान्ता का पत्र दिखाया।

विट्ठलदास ने कहा–अब आप क्या करना चाहते हैं?

पद्मसिंह–मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता। जब से यह पत्र मिला है, ऐसा मालूम होता है, मानो नदी में बहा जाता हूं।

विट्ठलदास–कुछ-न-कुछ करना तो पड़ेगा।

पद्मसिंह–क्या करूं।

विट्ठलदास–शान्ता को बुला लाइए।

पद्मसिंह–सारे घर से नाता टूट जाएगा।

विट्ठलदास–टूट जाए। कर्त्तव्य के सामने किसी का क्या भय?

पद्मसिंह–यह तो आप ठीक कहते हैं, पर मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं। भैया को मैं अप्रसन्न

करने का साहस नहीं कर सकता।

विट्ठलदास–अपने यहां न रखिए, विधवाश्रम में रख दीजिए, यह तो कठिन नहीं।

पद्मसिंह–हां, यह आपने अच्छा उपाय बताया। मुझे इतना भी न सूझा था। कठिनाई में मेरी बुद्धि जैसे चरने चली जाती है।

विट्ठलदास–लेकिन जाना आपको पड़ेगा।

पद्मसिंह–यह क्यों, आपके जाने से काम न चलेगा?

विट्ठलदास–भला, उमानाथ उसे मेरे साथ क्यों भेजने लगे?

पद्मसिंह–इसमें उन्हें क्या आपत्ति हो सकती है?

विट्ठलदास–आप तो कभी-कभी बच्चों-सी बातें करने लगते हैं। शान्ता उनकी बेटी न सही, पर इस समय वह उसके पिता हैं। वह उसे एक अपरिचित मनुष्य के साथ क्यों आने देंगे?

पद्मसिंह–भाई साहब, आप नाराज न हों, मैं वास्तव में कुछ बौखला गया हूं। लेकिन मेरे चलने में तो बड़ा उपद्रव खड़ा हो जाएगा। भैया सुनेंगे तो वह मुझे मार ही डालेंगे। जनवासे में उन्होंने जो धक्का लगाया था, वह अभी तक मुझे याद है।

विट्ठलदास–अच्छा, आप न चलिए, मैं ही चला जाऊंगा। लेकिन उमानाथ के नाम एक पत्र देने में तो आपको कोई बाधा नहीं?

पद्मसिंह–आप कहेंगे कि यह निरा मिट्टी का लौंदा है, पर मुझमें उतना साहस भी नहीं है। ऐसी युक्ति बताइए कि कोई अवसर पड़े, तो मैं साफ निकल जाऊं। भाई साहब को मुझ पर दोषारोपण का मौका न मिले।

विट्ठलदास ने झुंझलाकर उत्तर दिया–मुझे ऐसी युक्ति नहीं सूझती। भलेमानुस आप भी अपने को मनुष्य कहेंगे। वहां तो वह धुआंधार व्याख्यान देते हैं, ऐसे उच्च भावों से भरा हुआ, मानो मुक्तात्मा हैं और कहां यह भीरुता ।

पद्मसिंह ने लज्जित होकर कहा–इस समय जो चाहे कह लीजिए, पर इस काम का सारा भार आपके ऊपर रहेगा।

विट्ठलदास–अच्छा, एक तार तो दे दीजिएगा, या इतना भी न होगा?

पद्मसिंह–(उछलकर) हां, मैं तार दे दूंगा। मैं तो जानता था कि आप राह निकालेंगे। अब अगर कोई बात आ पड़ी, तो मैं कह दूंगा कि मैंने तार नहीं दिया, किसी ने मेरे नाम से दे दिया होगा–मगर एक ही क्षण में उनका विचार पलट गया। अपनी आत्मभीरुता पर लज्जा आई। मन में सोचा, भाई साहब ऐसे मूर्ख नहीं हैं कि इस धर्मकार्य के लिए मुझसे अप्रसन्न हों और यदि हो भी जाएं, तो मुझे इसकी चिंता न करनी चाहिए।

विट्ठलदास–तो आज ही तार दे दीजिए।

पद्मसिंह–लेकिन यह सरासर जालसाजी होगी।

विट्ठलदास–हां, होगी तो, आप ही समझिए।

पद्मसिंह–मैं चलूं तो कैसा हो?

विट्ठलदास–बहुत ही उत्तम, सारा काम ही बन जाए।

पद्मसिंह–अच्छी बात है, मैं और आप दोनों चलें।

विट्ठलदास–तो कब?

पद्मसिंह—बस, आज तार देता हूं कि हम लोग शान्ता को विदा कराने आ रहे हैं, परसों संध्या की गाड़ी से चले चलें।

विट्ठलदास—निश्चय हो गया?

पद्मसिंह—हां, निश्चय हो गया। आप मेरा कान पकड़कर ले जाइएगा।

विट्ठलदास ने अपने सरल-हृदय मित्र की ओर प्रशंसा की दृष्टि से देखा और दोनों मनुष्य जलतरंग सुनने जा बैठे, जिसकी मनोहर ध्वनि आकाश में गूंज रही थी।

इकतालीस

जब हम स्वास्थ्य-लाभ करने के लिए किसी पहाड़ पर जाते हैं, तो इस बात का विशेष यत्न करते हैं कि हमसे कोई कुपथ्य न हो। नियमित रूप से व्यायाम करते हैं, आरोग्य का उद्देश्य सदैव हमारे सामने रहता है। सुमन विधवाश्रम में आत्मिक स्वास्थ्य लाभ करने गई थी और अभीष्ट को एक क्षण के लिए भी न भूलती थी, वह अपनी बहनों की सेवा में तत्पर रहती और धार्मिक पुस्तकें पढ़ती। देवोपासना, स्नानादि में उसके व्यथित हृदय को शांति मिलती थी।

विट्ठलदास ने अमोला के समाचार उससे छिपा रखे थे, लेकिन जब शान्ता को आश्रम में रखने का विचार निश्चित हो गया, तब उन्होंने सुमन को इसके लिए तैयार करना उचित समझा। उन्होंने कुंवर साहब के यहां से आकर उसे सारा समाचार कह सुनाया।

आश्रम में सन्नाटा छाया हुआ था। रात बहुत बीत चुकी थी, पर सुमन को किसी भांति नींद न आती थी। उसे आज अपने अविचार का यथार्थ स्वरूप दिखलाई दे रहा था। जिस प्रकार कोई रोगी क्लोरोफार्म लेने के पश्चात् होश में आकर अपने चीरे फोड़े के गहरे घाव को देखता है और पीड़ा तथा भय से मूर्छित हो जाता है, वही दशा इस समय सुमन की थी। पिता, माता और बहन तीनों उसे अपने सामने बैठे हुए मालूम होते थे। माता लज्जा तथा दुख से सिर झुकाए उदास हो रही थी, पिता खड़े उसकी ओर क्रोधोन्मत्त, रक्तवर्ण नेत्रों से ताक रहे थे और शान्ता शोक, नैराश्य और तिरस्कार की मूर्ति बनी हुई कभी धरती की ओर ताकती थी, कभी आकाश की ओर।

सुमन का चित्त व्यग्र हो उठा। वह चारपाई से उठी और बलपूर्वक अपना सिर पक्की जमीन पर पटकने लगी। वह अपनी ही दृष्टि में एक पिशाचिनी मालूम होती थी। सिर में चोट लगने से उसे चक्कर आ गया। एक क्षण के बाद उसे चेत हुआ, माथे से रुधिर बह रहा था। उसने धीरे से कमरा खोला। आंगन में अंधेरा छाया हुआ था। वह लपकी हुई फाटक पर आई, पर वह बंद था। उसने ताले को कई बार हिलाया, पर वह न खुला, बुड्ढा चौकीदार फाटक से जरा हटकर सो रहा था। सुमन धीरे-धीरे उसके पास आई और उसके सिर के नीचे कुंजी टटोलने लगी। चौकीदार हकबकाकर उठ बैठा और 'चोर ! चोर !' चिल्लाने लगा। सुमन वहां से भागी और अपने कमरे में आकर किवाड़ बंद कर लिए।

किंतु सवेरे के पवन के सदृश चित्त की प्रचंड व्यग्रता भी शीघ्र ही शांत हो जाती है। सुमन खूब बिलखकर रोई। हाय ! मुझ जैसी डाइन संसार में न होगी। मैंने विलास-तृष्णा की धुन में

अपने कुल का सर्वनाश कर दिया, मैं अपने पिता की घातिका हूं, मैंने शान्ता के गले पर छुरी चलाई है, मैं उसे यह कालिमापूर्ण मुंह कैसे दिखाऊंगी? उसके सम्मुख कैसे ताकूंगी? पिताजी ने जिस समय यह बात सुनी होगी, उन्हें कितना दुख हुआ होगा । यह सोचकर वह फिर रोने लगी। यह वेदना उसे अपने और कष्टों से असह्य मालूम होती थी। अगर यह बात उसके पिता से कहने के बदले मदनसिंह उसे कोल्हू में पेर देते, हाथी के पैरों तले कुचलवा देते, आग में झोंक देते, कुत्तों से नुचवा देते तो वह जरा भी चूं न करती। अगर विलास की इच्छा और निर्दय अपमान ने उसकी लज्जा-शक्ति को शिथिल न कर दिया होता, तो वह कदापि घर से बाहर पांव न निकालती। वह अपने पति के हाथों कड़ी-से-कड़ी यातना सहती और घर में पड़ी रहती। घर से निकलते समय उसे यह खयाल भी न था कि मुझे कभी दालमंडी में बैठना पड़ेगा। वह बिना कुछ सोचे-समझे घर से निकल खड़ी हुई। उस शोक और नैराश्य की अवस्था में वह भूल गई कि मेरे पिता हैं, बहन है।

बहुत दिनों के वियोग ने उनका स्मरण ही न रखा। वह अपने को संसार में अकेली असहाय समझती थी। वह समझती थी, मैं किसी दूसरे देश में हूं और मैं जो कुछ करूंगी वह सब गुप्त ही रहेगा। पर अब ऐसा संयोग आ पड़ा कि वह अपने को आत्मीय सूत्र से बंधी हुई पाती थी। जिन्हें वह भूल चुकी थी, वह फिर उसके सामने आ गए और आत्माओं का स्पर्श होते ही लज्जा का प्रकाश आलोकित होने लगा।

सुमन ने शेष रात मानसिक विफलता की दशा में काटी। चार बजने पर वह गंगा-स्नान को चली। वह बहुधा अकेले ही जाया करती थी इसलिए चौकीदार ने कुछ पूछताछ न की।

सुमन गंगातट पर पहुंच कर इधर-उधर देखने लगी कि कोई है तो नहीं। वह आज गंगा में नहाने नहीं, डूबने आई थी। उसे कोई शंका, भय या घबराहट नहीं थी। कल किसी समय शान्ता आश्रम में आ जाएगी। उसे मुंह दिखाने की अपेक्षा गंगा की गोद में मग्न हो जाना कितना सहज था।

अकस्मात् उसने देखा कि कोई आदमी उसकी तरफ चला आ रहा है। अभी कुछ-कुछ अंधेरा था, पर सुमन को इतना मालूम हो गया कि कोई साधु है। सुमन की अंगुली में एक अंगूठी थी। उसने उसे साधु को दान करने का निश्चय किया, लेकिन वह ज्यों ही समीप आया, सुमन ने भय, घृणा और लज्जा से अपना मुंह छिपा लिया। यह गजाधर थे।

सुमन खड़ी थी और गजाधर उसके पैरों पर गिर पड़े और रुद्ध कंठ से बोले—मेरा अपराध क्षमा करो!

सुमन पीछे हट गई। उसकी आंखों के सामने अपने अपमान का दृश्य खिंच गया। घाव हरा हो गया। उसके जी में आया कि इसे फटकारूं, कहूं कि तुम मेरे पिता के घातक, मेरे जीवन का नाश करने वाले हो, पर गजाधर की अनुकंपापूर्ण उदारता, कुछ उसका साधुवेश और कुछ विराग भाव ने, जो प्राणाघात का संकल्प कर लेने के बाद उदित हो जाता है, उसे द्रवित कर दिया। उसके नयन सजल हो गए, करुण स्वर से बोली—तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। जो कुछ हुआ, वह सब मेरे कर्मों का फल था।

गजाधर—नहीं सुमन, ऐसा मत कहो। सब मेरी मूर्खता और अज्ञानता का फल है। मैंने सोचा था कि उसका प्रायश्चित्त कर सकूंगा, पर अपने अत्याचार का भीषण परिणाम देखकर मुझे विदित हो रहा है कि उसका प्रायश्चित्त नहीं हो सकता। मैंने इन्हीं आंखों से तुम्हारे पूज्य

पिता को गंगा में लुप्त होते देखा है।

सुमन ने उत्सुक-भाव से पूछा—क्या तुमने पिताजी को डूबते देखा है?

गजाधर—हां, सुमन, डूबते देखा है। मैं रात को अमोला जा रहा था, मार्ग में वह मुझे मिल गए। मुझे अर्द्धरात्रि के समय गंगा की ओर जाते देखकर संदेह हुआ। उन्हें अपने स्थान पर लाया और उनके हृदय को शांत करने की चेष्टा की। फिर यह समझकर कि मेरा मनोरथ पूरा हो गया, मैं सो गया। थोड़ी देर में जब उठा, तो उन्हें वहां न देखा। तुरंत गंगातट की ओर दौड़ा। उस समय मैंने सुना कि वह मुझे पुकार रहे हैं, पर जब तक मैं निश्चय कर सकूं कि वह कहां हैं, उन्हें निर्दयी लहरों ने ग्रस लिया। वह दुर्लभ आत्मा मेरी आंखों के सामने स्वर्गधाम को सिधारी। तब तक मुझे मालूम न था कि मेरा पाप इतना घोरतम है, वह अक्षम्य है, अदंड्य है। मालूम नहीं, ईश्वर के यहां मेरी क्या गति होगी?

गजाधर की आत्मवेदना ने सुमन के हृदय पर वही काम किया, जो साबुन मैल के साथ करता है। उसने जमे हुए मालिन्य को काटकर ऊपर कर दिया। वह संचित भाव ऊपर आ गए, जिन्हें वह गुप्त रखना चाहती थी। बोली—परमात्मा ने तुम्हें सद्बुद्धि प्रदान कर दी है। तुम अपनी सुकीर्ति से चाहे कुछ कर भी लो, पर मेरी क्या गति होगी, मैं तो दोनों लोकों से गई। हाय ! मेरी विलास-तृष्णा ने मुझे कहीं का न रखा। अब क्या छिपाऊं, तुम्हारे दारिद्र्य और इससे अधिक तुम्हारे प्रेम-विहीन व्यवहार ने मुझमें असंतोष का अंकुर जमा दिया और चारों ओर पाप-जीवन की मान-मर्यादा, सुख-विलास देखकर इस अंकुर ने बढ़ते भटकटैए के सदृश सारे हृदय को छा लिया। उस समय एक फफोले को फोड़ने के लिए जरा-सी ठेस बहुत थी। तुम्हारी नम्रता, तुम्हारा प्रेम, तुम्हारी सहानुभूति, तुम्हारी उदारता उस फफोले पर फाहे का काम देती, पर तुमने उसे मसल दिया, मैं पीड़ा से व्याकुल, संज्ञाहीन हो गई। तुम्हारे उस पाशविक, पैशाचिक व्यवहार का जब स्मरण होता है, तो हृदय में एक ज्वाला-सी दहकने लगती है और अंत:करण से तुम्हारे प्रति शाप निकल आता है। यह मेरा अंतिम समय है, एक क्षण में यह पापमय शरीर गंगा में डूब जाएगा, पिताजी की शरण में पहुंच जाऊंगी, इसलिए ईश्वर से प्रार्थना करती हूं कि तुम्हारे अपराधों को क्षमा करें।

गजाधर ने चिंतित स्वर में कहा—सुमन, यदि प्राण देने से पापों का प्रायश्चित्त हो जाता, तो मैं अब तक कभी का प्राण दे चुका होता।

सुमन—कम-से-कम दुखों का अंत हो जाएगा।

गजाधर—हां, तुम्हारे दुखों का अंत हो सकता है, पर उनके दुखों का अंत न होगा, जो तुम्हारे दुखों से दुखी हो रहे हैं। तुम्हारे माता-पिता शरीर बंधन से मुक्त हो गए हैं, लेकिन उनकी आत्माएं अपनी विदेहावस्था में तुम्हारे पास विचर रही हैं। वह सभी तुम्हारे सुख से सुखी और दुख से दुखी होंगे। सोच लो कि प्राणाघात करके उनको दुख पहुंचाओगी या अपना पुनरुद्धार करके उन्हें सुख और शांति दोगी? पश्चात्ताप अंतिम चेतावनी है, जो हमें आत्म-सुधार के निमित्त ईश्वर की ओर से मिलती है। यदि इसका अभिप्राय न समझकर हम शोकावस्था में अपने प्राणों का अंत कर दें, तो मानो हमने आत्मोद्धार की इस अंतिम प्रेरणा को भी निष्फल कर दिया। यह भी सोचो कि तुम्हारे न रहने से उस अबला शान्ता की क्या गति होगी, जिसने अभी संसार के ऊंच-नीच का कुछ अनुभव नहीं किया है। तुम्हारे सिवा उसका संसार में कौन है? उमानाथ का हाल तुम जानती ही हो, वह उसका निर्वाह नहीं कर सकते। उनमें दया है, पर लोभ उससे

अधिक है। कभी-न-कभी वह उससे अवश्य ही अपना गला छुड़ा लेंगे। उस समय वह किसकी होकर रहेगी?

सुमन को गजाधर के इस कथन में सच्ची समवेदना की झलक दिखाई दी। उसने उनकी ओर विनम्रतासूचक दृष्टि से देखकर कहा—शान्ता से मिलने की अपेक्षा मुझे प्राण देना सहज प्रतीत होता है। कई दिन हुए, उसने पद्मसिंह के पास एक पत्र भेजा था। उमानाथ उसका कहीं और विवाह करना चाहते हैं। वह इसे स्वीकार नहीं करती।

गजाधर—वह देवी है।

सुमन—शर्माजी बेचारे और क्या करते, उन्होंने निश्चय किया है कि उसे बुलाकर आश्रम में रखें। अगर उनके भाई मान जाएंगे, तब तो अच्छा ही है, नहीं तो उस दुखिया को न जाने कितने दिनों तक आश्रम में रहना पड़ेगा। वह कल यहां आ जायगी। उसके सम्मुख जाने का भय, उससे आंखें मिलाने की लज्जा मुझे मारे डालती है। जब वह तिरस्कार की आंखों से मुझे देखेगी, उस समय मैं क्या करूंगी और जो कहीं उसने घृणावश मुझसे गले मिलने में संकोच किया, तब तो मैं उसी क्षण विष खा लूंगी। इस दुर्गति से तो प्राण देना ही अच्छा है।

गजाधर से सुमन को श्रद्धा भाव से देखा। उन्हें अनुभव हुआ कि ऐसी अवस्था में मैं भी वही करता, जो सुमन करना चाहती है। बोले—सुमन, तुम्हारे यह विचार यथार्थ हैं, पर तुम्हारे हृदय पर चाहे जो कुछ बीते, शान्ता के हित के लिए तुम्हें सब कुछ सहना पड़ेगा। तुमसे उसका जितना कल्याण हो सकता है, उतना अन्य किसी से नहीं हो सकता। अब तक तुम अपने लिए जीती थीं, अब दूसरों के लिए जियो।

यह कह गजाधर जिधर से आए थे उधर ही चले गए। सुमन गंगाजी के तट पर देर तक खड़ी उनकी बातों पर विचार करती रही, फिर स्नान करके आश्रम की ओर चली; जैसे कोई मनुष्य समर में परास्त होकर घर की ओर जाता है।

बयालीस

शान्ता ने पत्र तो भेजा, पर उसको उत्तर आने की कोई आशा न थी। तीन दिन बीत गए, उसका नैराश्य दिनों-दिन बढ़ता जा रहा था। अगर कुछ अनुकूल उत्तर न आया, तो उमानाथ अवश्य ही उसका विवाह कर देंगे, यह सोचकर शान्ता का हृदय थरथराने लगता था। वह दिन में कई बार देवी के चबूतरे पर जाती और नाना प्रकार की मनौतियां करती। कभी शिवजी के मंदिर में जाती और उनसे अपनी मनोकामना कहती। सदन एक क्षण के लिए भी उनके ध्यान से न उतरता। वह उसकी मूर्ति को हृदय-नेत्रों के सामने बैठाकर उससे कर जोड़कर कहती—प्राणनाथ, मुझे क्यों नहीं अपनाते? लोकनिंदा के भय से ! हाय, मेरी जान इतनी सस्ती है कि इन दामों बिके ! तुम मुझे त्याग रहे हो, आग में झोंक रहे हो, केवल इस अपराध के लिए कि मैं सुमन की बहन हूं, यही न्याय है। कहीं तुम मुझे मिल जाते, मैं तुम्हें पकड़ पाती, फिर देखती कि मुझसे कैसे भागते हो? तुम पत्थर नहीं हो कि मेरे आँसुओं से न पसीजते। तुम अपनी आंखों से एक बार मेरी दशा देख लेते, तो फिर तुमसे न रहा जाता। हां, तुमसे कदापि न रहा जाता। तुम्हारा

विशाल हृदय करुणाशून्य नहीं हो सकता। क्या करूं, तुम्हें अपने चित्त की दशा कैसे दिखाऊं?

चौथे दिन प्रात:काल पद्मसिंह का पत्र मिला। शान्ता भयभीत हो गई। उसकी प्रेमाभिलाषाएं शिथिल पड़ गईं। अपनी भावी दशा की शंकाओं ने चित्त को अशांत कर दिया।

लेकिन उमानाथ फूले नहीं समाए। बाजे का प्रबंध किया। सवारियां एकत्रित कीं, गांव-भर में निमंत्रण भेजे, मेहमानों के लिए चौपाल में फर्श आदि बिछवा दिए। गांव के लोग चकित थे, यह कैसा गौना है? विवाह तो हुआ ही नहीं, गौना कैसा? वह समझते थे कि उमानाथ ने कोई-न-कोई चाल खेली है। एक ही धूर्त है। निर्दिष्ट समय पर उमानाथ स्टेशन गए और बाजे बजवाते हुए मेहमानों को अपने घर लाए। चौपाल में उन्हें ठहराया। केवल तीन आदमी थे। पद्मसिंह, विट्ठलदास और एक नौकर।

दूसरे दिन संध्या-समय विदाई का मुहूर्त था। तीसरा पहर हो गया, किंतु उमानाथ के घर में गांव की कोई स्त्री नहीं दिखाई देती। वह बार-बार अंदर आते हैं, तेवर बदलते हैं, दीवालों को धमकाकर कहते हैं, मैं एक-एक को देख लूंगा। जाह्नवी से बिगड़कर कहते हैं कि मैं सबकी खबर लूंगा। लेकिन वह धमकियां, जो कभी नंबरदारों को कंपायमान कर दिया करती थीं, आज किसी पर असर नहीं करतीं। बिरादरी अनुचित दबाव नहीं मानती। घमंडियों का सिर नीचा करने के लिए वह ऐसे ही अवसरों की ताक में रहती है।

संध्या हुई । कहारों ने पालकी द्वार पर लगा दी। जाह्नवी और शान्ता गले मिलकर खूब रोईं।

शान्ता का हृदय प्रेम से परिपूर्ण था। इस घर में उसे जो-जो कष्ट उठाने पड़े थे, वह इस समय भूल गए थे। इन लोगों से फिर भेंट न होगी, इस घर के अब फिर दर्शन न होंगे, इनसे सदैव के लिए नाता टूटता है, यह सोचकर उसका हृदय विदीर्ण हुआ जाता था। जाह्नवी का हृदय भी दया से भरा हुआ था। इस माता-पिता विहीन बालिका को हमने बहुत कष्ट दिए, यह सोचकर वह अपने आंसुओं को न रोक सकती थी। दोनों हृदयों में सच्चे, निर्मल, कोमल भावों की तरंगें उठ रही थीं।

उमानाथ घर में आए, तो शान्ता उनके पैरों से लिपट गई और विनय करती हुई कहने लगी—तुम्हीं मेरे पिता हो। अपनी बेटी को भूल न जाना। मेरी बहनों को गहने-कपड़े देना, होली और तीज में उन्हें बुलाना, पर मैं तुम्हारे दो अक्षरों के पत्र को ही अपना धन्य भाग समझूंगी। उमानाथ ने उसको संबोधित करते हुए कहा—बेटी, जैसी मेरी और दो बेटियां हैं, वैसी ही तुम भी हो। परमात्मा तुम्हें सदा सुखी रखें। यह कहकर रोने लगे।

संध्या का समय था, मुन्नी गाय घर में आई, तो शान्ता उसके गले लिपटकर रोने लगी। उसने तीन-चार वर्ष उस गाय की सेवा की थी। अब वह किसे भूसी लेकर दौड़ेगी? किसके गले में काले डोरे में कौड़ियां गूंथकर पहनाएगी? मुन्नी सिर झुकाए उसके हाथों को चाटती थी। उसका वियोग-दुख उसकी आंखों से झलक रहा था।

जाह्नवी ने शान्ता को लाकर पालकी में बैठा दिया। कहारों ने पालकी उठाई। शान्ता को ऐसा मालूम हुआ कि मानो वह अथाह सागर में बही जा रही है।

गांव की स्त्रियां अपने द्वारों पर खड़ी पालकी को देखती थीं और रोती थीं।

उमानाथ स्टेशन तक पहुंचाने आए। चलते समय अपनी पगड़ी उतारकर उन्होंने पद्मसिंह के पैरों पर रख दी। पद्मसिंह ने उनको गले से लगा लिया।

जब गाड़ी चली तो पद्मसिंह ने विट्ठलदास से कहा–अब इस अभिनय का सबसे कठिन भाग आ गया।

विट्ठलदास–मैं नहीं समझा।

पद्मसिंह–क्या शान्ता से कुछ कहे-सुने बिना ही उसे आश्रम में पहुंचा दीजिएगा? उसे पहले उसके लिए तैयार करना चाहिए।

विट्ठलदास–हां, यह आपने ठीक सोचा, तो जाकर कह दूं?

पद्मसिंह–जरा सोच तो लीजिए, क्या कहिएगा? अभी तो वह यह समझ रही है कि ससुराल में जा रही हूं। वियोग के दुख में यह आशा उसे संभाले हुए है। लेकिन जब उसे हमारा कौशल ज्ञात हो जाएगा, तो उसे कितना दुख होगा? मुझे पछतावा हो रहा है कि मैंने पहले ही वे बातें क्यों न कह दीं?

विट्ठलदास–तो अब कहने में क्या बिगड़ा जाता है? मिर्जापुर में गाड़ी देर तक ठहरेगी, मैं जाकर उसे समझा दूंगा।

पद्मसिंह–मुझसे बड़ी भूल हुई।

विट्ठलदास–तो उस भूल पर पछताने से अगर काम चल जाय, तो जी भरकर पछता लीजिए।

पद्मसिंह–आपके पास पेंसिल हो तो लाइए, एक पत्र लिखकर सब समाचार प्रकट कर दूं।

विट्ठलदास–नहीं, तार दे दीजिए, यह और भी उत्तम होगा। आप विचित्र जीव हैं, सीधी-सी बात में भी इतना आगा-पीछा करने लगते हैं।

पद्मसिंह–समस्या ही ऐसी आ पड़ी है, मैं क्या करूं? एक बात मेरे ध्यान में आती है, मुगलसराय में देर तक रुकना पड़ेगा। बस, वहीं उसके पास जाकर सब वृत्तांत कह दूंगा।

विट्ठलदास–यह आप बहुत दूर की कौड़ी लाए, इसीलिए बुद्धिमानों ने कहा है कि कोई काम बिना भली-भांति सोचे नहीं करना चाहिए। आपकी बुद्धि ठिकाने पर पहुंचती है, लेकिन बहुत चक्कर खाकर। यही बात आपको पहले न सूझी।

शान्ता ड्योढ़े दरजे के जनाने कमरे में बैठी हुई थी। वहां दो ईसाई लेडियां और बैठी थीं। वे शान्ता को देखकर अंग्रेजी में बातें करने लगीं।

'मालूम होता है, यह कोई नवविवाहिता स्त्री है।'

'हां, किसी ऊंचे कुल की है ! ससुराल जा रही है।'

'ऐसी रो रही है, मानों कोई ढकेले लिए जाता हो।'

'पति की अभी तक सूरत न देखी होगी, प्रेम कैसे हो सकता है। भय से हृदय कांप रहा होगा।'

'यह इनके यहां अत्यंत निकृष्ट रिवाज है। बेचारी कन्या एक अनजान घर में भेज दी जाती है, जहां कोई उसका अपना नहीं होता।'

'यह सब पाशविक काल की प्रथा है, जब स्त्रियों को बलात् उठा ले जाते थे।'

'क्यों बाईजी, (शान्ता से) ससुराल जा रही हो?'

शान्ता ने धीरे से सिर हिलाया।

'तुम इतनी रूपवती हो, तुम्हारा पति भी तुम्हारे जोड़ का है?'

शान्ता ने गंभीरता से उत्तर दिया—पति की सुंदरता नहीं देखी जाती।

'यदि वह काला-कलूटा हो तो?'

शान्ता ने गर्व से उत्तर दिया—हमारे लिए देवतुल्य है, चाहे कैसा ही हो।

'अच्छा मान लो, तुम्हारे ही सामने दो मनुष्य लाए जाएं, एक रूपवान हो, दूसरा कुरूप, तो तुम किसे पसंद करोगी?'

शान्ता ने दृढ़ता से उत्तर दिया—जिसे हमारे माता-पिता पसंद करें।

शान्ता समझ रही थी कि दोनों हमारी विवाह-प्रथा पर आक्षेप कर रही हैं। थोड़ी देर के बाद उसने उनसे पूछा—मैंने सुना है, आप लोग अपना पति खुद चुन लेती हैं?

'हां, हम इस विषय में स्वतंत्र हैं।'

'आप अपने को मां-बाप से बुद्धिमान समझती हैं?'

'हमारे मां-बाप क्या जान सकते हैं कि हमको उनके पसंद किए हुए पुरुषों से प्रेम होगा या नहीं?'

'तो आप लोग विवाह में प्रेम मुख्य समझती हैं?'

'हां, और क्या? विवाह प्रेम का बंधन है।'

'हम विवाह को धर्म का बंधन समझती हैं। हमारा प्रेम धर्म के पीछे चलता है।'

नौ बजे गाड़ी मुगलसराय पहुंच गई। विट्ठलदास ने आकर शान्ता को उतारा और दूर हटकर प्लेटफार्म पर ही कालीन बिछाकर उसे बिठा दिया। बनारस की गाड़ी खुलने में आध घंटे की देर थी।

शान्ता ने देखा कि उसके देशवासी सिर पर बड़े-बड़े गट्ठर लादे एक संकरे द्वार पर खड़े हैं और बाहर निकलने के लिए एक-दूसरे पर गिरे पड़ते हैं। एक दूसरे तंग दरवाजे पर हजारों आदमी खड़े अंदर आने के लिए धक्कमधक्का कर रहे हैं, लेकिन दूसरी ओर एक चौड़े दरवाजे से अंग्रेज लोग छड़ी घुमाते कुत्तों को लिए आते-जाते हैं। कोई उन्हें नहीं रोकता, कोई उनसे नहीं बोलता।

इतने में पंडित पद्मसिंह उसके निकट आए और बोले—शान्ता, मैं तुम्हारा धर्मपिता पद्मसिंह हूं।

शान्ता खड़ी हो गई और दोनों हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया।

पद्मसिंह ने कहा—तुम्हें आश्चर्य हो रहा होगा कि हम लोग चुनार क्यों नहीं उतरे? इसका कारण यही है कि अभी तक मैंने भाई साहब से तुम्हारे विषय में कुछ नहीं पूछा। तुम्हारा पत्र मुझे मिला, तो मैं ऐसा घबड़ा गया कि मुझे तुम्हें बुलाना परमावश्यक जान पड़ा। भाई साहब से कुछ कहने-सुनने का अवकाश ही नहीं मिला। इसीलिए अभी कुछ दिनों तक बनारस रहना पड़ेगा। मैंने यह उचित समझा है कि तुम्हें उसी आश्रम में ठहराऊं, जहां आजकल तुम्हारी बहन सुमनबाई रहती हैं। सुमन के साथ रहने से तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट न होगा। तुमने सुमन के विषय में जो कलंकित बातें सुनी हैं, उन्हें हृदय से निकाल डालो। अब वह देवी है। उसका जीवन सर्वथा निर्दोष और उज्ज्वल हो गया है। यदि ऐसा न होता, तो मैं अपनी धर्मपुत्री को उसके साथ रखने पर कभी तैयार न होता। महीने-दो-महीने में, मैं भैया को ठीक कर लूंगा। यदि तुम्हें इस प्रबंध में कुछ आपत्ति हो, तो साफ-साफ कह दो कि कोई और प्रबंध करूं?

पद्मसिंह ने इस वाक्य को बड़ी मुश्किल से समाप्त किया। सुमन की उन्होंने जो प्रशंसा

की, उस पर उन्हें स्वयं विश्वास नहीं था। मदनसिंह के संबंध में भी वे उससे बहुत अधिक कह गए, जो वह कहना न चाहते थे। उन्हें इस सरल-हृदय कन्या को इस भांति धोखा देते हुए मानसिक कष्ट होता था।

शान्ता रोते हुए पद्मसिंह के चरणों पर गिर पड़ी और लज्जा, नैराश्य तथा विषाद से भरे हुए यह शब्द उसके मुख से निकले—आपकी शरण में हूं, जो उचित समझिए, वह कीजिए।

शान्ता का हृदय बहुत हल्का हो गया। अब उसे अपने भविष्य के विषय में चिंता करने की आवश्यकता न रही, उसे कुछ दिनों के लिए अपना जीवन- मार्ग निश्चित मालूम होने लगा। वह इस समय उस मनुष्य के सदृश थी जो अपने झोंपड़े में आग लग जाने से इसलिए प्रसन्न हो कि कुछ देर के लिए वह अंधकार के भय से मुक्त हो जाएगा।

ग्यारह बजे ये तीनों प्राणी आश्रम में पहुंच गए। विट्ठलदास उतरे कि जाकर सुमनबाई को खबर दूं, पर वहां जाकर देखा, तो वह बुखार से बेसुध पड़ी थी। आश्रम की कई स्त्रियां उसकी सुश्रूषा में लगी हुई थीं। कोई पंखा झलती थी, कोई उसका सिर दबाती थी, कोई पैरों को मल रही थी। बीच-बीच में कराहने की ध्वनि सुनाई देती थी। विट्ठलदास ने घबराकर पूछा—डॉक्टर को बुलाया था? उत्तर मिला—हां, वह देखकर अभी गए हैं।

कई स्त्रियों ने शान्ता को गाड़ी से उतारा। शान्ता सुमन की चारपाई के पास खड़ी होकर बोली, 'जीजी !' सुमन ने आंखें न खोलीं। शान्ता मूर्तिवत् खड़ी अपनी बहन को करुण तथा सजल नेत्रों से देख रही थी। यही मेरी प्यारी बहन है, जिसके साथ मैं तीन-चार साल पहले खेलती थी। वह लंबे-लंबे काले केश कहां हैं? वह कुंदन-सा दमकता हुआ मुखचन्द्र कहां है? वह चंचल, सजीव मुस्कराती हुई आंखें कहां गईं? वह कोमल, चपल गात, वह ईंगुर-सा भरा हुआ शरीर, वह अरुणवर्ण कपोल कहां लुप्त हो गए? यह सुमन है या उसका शव, अथवा उसकी निर्जीव मूर्ति? उस वर्णहीन मुख पर विरक्ति, संयम तथा आत्मत्याग की निर्मल, शांतिदायिनी ज्योति झलक रही थी। शान्ता का हृदय क्षमा और प्रेम से उमड़ उठा। उसने अन्य स्त्रियों को वहां से हट जाने का संकेत किया और तब वह रोती हुई सुमन के गले से लिपट गई और बोली—जीजी, आंखें खोलो, जी कैसा है? तुम्हारी शान्ति खड़ी है।

सुमन ने आंखें खोलीं और उन्मत्तों की भांति विस्मित नेत्रों से शान्ता की ओर देखकर बोली—कौन, शान्ति? तू हट जा, मुझे मत छू, मैं पापिनी हूं, मैं अभागिनी हूं, मैं भ्रष्टा हूं, तू देवी है, तू साध्वी है, मुझसे अपने को स्पर्श न होने दे। इस हृदय को वासनाओं ने, लालसाओं ने, दुष्कामनाओं ने, मलिन कर दिया है। तू अपने उज्ज्वल, स्वच्छ हृदय को इसके पास मत ला, यहां से भाग जा। वह मेरे सामने नरक का अग्निकुंड दहक रहा है, यम के दूत मुझे उस कुंड में झोंकने के लिए घसीटे लिए जाते हैं, तू यहां से भाग जा—यह कहते-कहते सुमन फिर से मूर्छित हो गई।

शान्ता सारी रात सुमन के पास बैठी पंखा झलती रही।

तैंतालीस

शान्ता को आश्रम में आए एक मास से ऊपर हो गया, लेकिन पद्मसिंह ने अभी तक अपने घर में किसी से इसकी चर्चा नहीं की। कभी सोचते, भैया को पत्र लिखूं, कभी सोचते, चलकर उनसे कहूं, कभी विट्ठलदास को भेजने का विचार करते, लेकिन कुछ निश्चय न कर सकते थे।

इधर उनके मित्रगण वेश्याओं के प्रस्ताव को बोर्ड में पेश करने के लिए जल्दी मचा रहे थे। उन्हें उसकी सफलता की पूरी आशा थी। मालूम नहीं, विलंब होने से फिर कोई बाधा उपस्थित हो जाय। पद्मसिंह उसे टालते आए थे। यहां तक कि मई का महीना आ गया। विट्ठलदास और रमेशदत्त ने ऐसा तंग किया कि उन्हें विवश होकर बोर्ड में नियमानुसार अपने प्रस्ताव की सूचना देनी पड़ी। दिन और समय निर्दिष्ट हो गया।

ज्यों-ज्यों दिन निकट आता था, पद्मसिंह का चित्त अशांत होता जाता था। उन्हें अनुभव होता था कि केवल इस प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने से ही उद्देश्य पूरा न होगा। इसे कार्यरूप में लाने के लिए शहर के सभी बड़े आदमियों की सहानुभूति और सहकारिता की आवश्यकता है, इसलिए वह हाजी हाशिम को किसी-न-किसी तरह अपने पक्ष में लाना चाहते थे। हाजी साहब का शहर में इतना दबाव था कि वेश्याएं भी उनके आदेश के विरुद्ध न जा सकती थीं। अंत में हाजी साहब भी पिघल गए। उन्हें पद्मसिंह की नेकनीयती पर विश्वास हो गया।

आज बोर्ड में यह प्रस्ताव पेश होगा। म्युनिसिपल बोर्ड के अहाते में बड़ी भीड़भाड़ है। वेश्याओं ने अपने दलबल सहित बोर्ड पर आक्रमण किया है। देखें, बोर्ड की क्या गति होती है।

बोर्ड की कार्यवाही आरंभ हो गई। सभी मेंबर उपस्थित हैं। डॉक्टर श्यामाचरण ने पहाड़ पर जाना मुल्तवी कर दिया है, मुंशी अबुलवफा को तो आज रात-भर नींद ही नहीं आई। वह कभी भीतर जाते हैं, कभी बाहर आते हैं। आज उनके परिश्रम और उत्साह की सीमा नहीं है।

पद्मसिंह ने अपना प्रस्ताव उपस्थित किया और तुले हुए शब्दों में उसकी पुष्टि की। यह तीन भागों में विभक्त था। (1) वेश्याओं को शहर के मुख्य स्थान से हटाकर बस्ती से दूर रखा जाय, (2) उन्हें शहर के मुख्य सैर करने के स्थानों और पार्कों में आने का निषेध किया जाय, वेश्याओं का नाच कराने के लिए एक भारी टैक्स लगाया जाय, और ऐसे जलसे किसी हालत में खुले स्थानों में न हों।

प्रोफेसर रमेशदत्त ने उसका समर्थन किया।

सैयद शफकतअली (पें॰ डिप्टी कले॰) ने कहा—इस तजवीब से मुझे पूरा इत्तिफाक है, लेकिन बगैर मुनासिब तरमीम के मैं इसे तसलीम नहीं कर सकता। मेरी राय है कि रिज्योल्यूशन के पहले हिस्से में यह अल्फाज बढ़ा दिए जाएं—बइस्तसनाय उनके, जो नौ माह के अंदर या तो अपना निकाह कर लें या कोई हुनर सीख लें, जिससे वह जाएज़ तरीके से जिंदगी बसर कर सकें।

कुंवर अनिरुद्धसिंह बोले—मुझे इस तरमीम से पूरी सहानुभूति है। हमें वेश्याओं को पतित समझने का कोई अधिकार नहीं है, यह हमारी परम धृष्टता है। हम रात-दिन जो रिश्वतें लेते हैं, सूद खाते हैं, दीनों का रक्त चूसते हैं, असहायों का गला काटते हैं, कदापि इस योग्य नहीं

हैं कि समाज के किसी अंग को नीच या तुच्छ समझें। सबसे नीच हम हैं, सबसे पापी, दुराचारी, अन्यायी हम हैं, जो अपने को शिक्षित, सभ्य, उदार, सच्चा समझते हैं ! हमारे शिक्षित भाइयों ही की बदौलत दालमंडी आबाद है, चौक में चहल-पहल है, चकलों में रौनक है। यह मीना बाजार हम लोगों ही ने सजाया है, ये चिड़ियां हम लोगों ने ही फांसीं हैं, ये कठपुतलियां हमने बनाई हैं। जिस समाज में अत्याचारी जमींदार, रिश्वती राज्य-कर्मचारी, अन्यायी महाजन, स्वार्थी बंधु आदर और सम्मान के पात्र हों, वहां दालमंडी क्यों न आबाद हो? हराम का धन हरामकारी के सिवा और कहां जा सकता है? जिस दिन नजराना, रिश्वत और सूद-दर-सूद का अंत होगा, उसी दिन दालमंडी उजड़ जाएगी, वे चिड़ियां उड़ जायेंगी–पहले नहीं। मुख्य प्रस्ताव इस तरमीम के बिना नश्तर का वह घाव है, जिस पर मरहम नहीं। मैं उसे स्वीकार नहीं कर सकता।

प्रभाकर राव ने कहा–मेरी समझ में नहीं आता कि इस तरमीम का रिज्योल्यूशन से क्या संबंध है? इसको आप अलग दूसरे प्रस्ताव के रूप में पेश कर सकते हैं। सुधार के लिए आप जो कुछ कर सकें, वह सर्वथा प्रशंसनीय है, लेकिन यह काम बस्ती से हटाकर भी उतना ही आसान है, जितना शहर के भीतर, बल्कि वहां सुविधा अधिक हो जाएगी।

अबुलवफा ने कहा–मुझे इस तरमीम से पूरा इत्तफाक है।

अब्दुललतीफ बोले–बिना तरमीम के मैं रिज्योल्यूशन को कभी कबूल नहीं कर सकता।

दीनानाथ तिवारी ने भी तरमीम पर जोर दिया है।

पद्मसिंह बोले–इस प्रस्ताव से हमारा उद्देश्य वेश्याओं को कष्ट देना नहीं, वरन उन्हें सुमार्ग पर लाना है, इसलिए मुझे इस तरमीम के स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है।

सैयद तेगअली ने फर्माया–तरमीम से असल तजवीज का मंशा फीत हो जाने का खौफ है। आप गोया एक मकान का सदर दरवाजा बंद करके पीछे की तरफ दूसरा दरवाजा बना रहे हैं। यह गैरमुमकिन है कि वे औरतें, जो अब तक ऐश और बेतकल्लुफी की जिंदगी बसर करती थीं, मेहनत और मजदूरी की जिंदगी बसर करने पर राजी हो जाएं। वह इस तरमीम से नाजायज फायदा उठाएंगी, कोई अपने बालाखाने पर सिंगार की एक मशीन रखकर अपना बचाव कर लेंगी, कोई मोजे की मशीन रख लेंगी, कोई पान की दूकान खोल लेंगी, कोई अपने बालाखाने पर सेब और अनार के खोमचे सजा देंगी। नकली निकाह और फरजी शादियों का बाजार गर्म हो जाएगा और इस परदे की आड़ में पहले से भी ज्यादा हरामकारी होने लगेगी। इस तरमीम को मंजूर करना इंसानी खसलत से बेइल्मी का इजहार करना है।

हकीम शोहरत खां ने कहा–मुझे सैयद तेगअली के खयालात बेजा मालूम होते हैं। पहले इन खबीस हस्तियों को शहरबदर कर देना चाहिए। इसके बाद अगर वह जाएज तरीके पर जिंदगी बसर करना चाहें, तो काफी इत्मीनान के बाद उन्हें इंतहान शहर में आकर आबाद होने की इजाजत देनी चाहिए। शहर का दरवाजा बंद नहीं है, जो चाहे यहां आबाद हो सकता है। मुझे काबिले यकीन है कि तरमीम से इस तजवीज का मकसद गायब हो जाएगा।

शरीफहसन वकील बोले–इसमें कोई शक नहीं कि पंडित पद्मसिंह एक बहुत ही नेक और रहमी बुजुर्ग हैं, लेकिन इस तरमीम को कबूल करके उन्होंने असल मकसद पर निगाह रखने के बजाए हरदिल अजीज बनने की कोशिश की है। इससे तो यही बेहतर था कि यह तजवीज पेश ही न की जाती। सैयद शराफतअली साहब ने अगर ज्यादा गौर से काम लिया होता, तो वह कभी यह तरमीम पेश न करते।

शाकिरबेग ने कहा—कम्प्रोमाइज मुलकी मुआमिलात में चाहे कितना ही काबिले-तारीफ हो, लेकिन इखलाकी मामलात में वह सरासर काबिले-एतराज है। इससे इखलाकी बुराइयों पर सिर्फ परदा पड़ जाता है।

सभापति सेठ बलभद्रदास ने रिज्योल्यूशन के पहले भाग पर राय ली। नौ सम्मतियां अनुकूल थीं, आठ प्रतिकूल। प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

फिर तरमीम पर राय ली गई, आठ आदमी उसके अनुकूल थे, आठ प्रतिकूल, तरमीम भी पास हो गई। सभापति ने उसके अनुकूल राय दी। डॉक्टर श्यामाचरण ने किसी तरफ राय नहीं दी।

प्रोफेसर रमेशदत्त और रुस्तम भाई और प्रभाकर राव ने तरमीम के स्वीकृत हो जाने में अपनी हार समझी और पद्मसिंह की ओर इस भाव से देखा, मानो उन्होंने विश्वासघात किया है। कुंवर साहब के विषय में उन्होंने स्थिर किया कि बातूनी, शक्की और सिद्धांतहीन मनुष्य हैं।

अबुलवफा और उसके मित्रगण ऐसे प्रसन्न थे, मानो उन्हीं की जीत हुई। उनका यों पुलकित होना प्रभाकर राव और उसके मित्रों के हृदय में कांटे की तरह गड़ता था।

प्रस्ताव के दूसरे भाग पर सम्मति ली गई। प्रभाकर राव और उसके मित्रों ने इस बार उसका विरोध किया। वह पद्मसिंह को विश्वासघात का दंड देना चाहते थे। यह प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया। अबुलवफा और उनके मित्र बगलें बजाने लगे।

अब प्रस्ताव के तीसरे भाग की बारी आई। कुंवर अनिरुद्धसिंह ने उसका समर्थन किया। हकीम शोहरतखां, सैयद शफकतअली, शरीफ हसन और शाकिरबेग ने भी उसका अनुमोदन किया। लेकिन प्रभाकर राव और उनके मित्रों ने उसका भी विरोध किया। तरमीम के पास हो जाने के बाद उन्हें इस संबंध में अन्य सभी उद्योग निष्फल मालूम होते थे। वह उन लोगों में थे, जो या तो सब लेंगे या कुछ न लेंगे। प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

कुछ रात गए सभा समाप्त हुई। जिन्हें हार की शंका थी, वह हंसते हुए निकले, जिन्हें जीत का निश्चय था, उनके चेहरों पर उदासी छाई हुई थी।

चलते समय कुंवर साहब ने मिस्टर रुस्तम भाई से कहा—यह आप लोगों ने क्या कर दिया?

रुस्तम भाई ने व्यंग्य भाव से उत्तर दिया—जो आपने किया, वही हमने किया। आपने घड़े में छेद कर दिया, हमने उसे पटक दिया। परिणाम दोनों का एक ही है।

सब लोग चले गए। अंधेरा हो गया। चौकीदार और माली भी फाटक बंद करके चल दिए, लेकिन पद्मसिंह वहीं घास पर निरुत्साह और चिंता की मूर्ति बने हुए बैठे थे।

चवालीस

पद्मसिंह की आत्मा किसी भांति इस तरमीम के स्वीकार करने में अपनी भूल स्वीकार न करती थी। उन्हें कदापि यह आशा न थी कि उनके मित्रगण एक गौण बात पर उनका इतना विरोध करेंगे।

उन्हें प्रस्ताव के एक अंश के अस्वीकृत हो जाने का खेद न था कि इसका दोष उनके सिर मढ़ा जाता था, हालांकि उन्हें यह संपूर्णतः अपने सहकारियों की असहिष्णुता और अदूरदर्शिता प्रतीत होती थी ! इस तरमीम को वह गौण ही समझते थे। इसके दुरुपयोग की जो शंकाएं की गई थीं, उन पर पद्मसिंह को विश्वास न था। वह विश्वास इस प्रस्ताव की सारी जिम्मेदारी उन्हीं के सिर डाल देता था। उन्हें अब यह निश्चय होता जाता था कि वर्तमान सामाजिक दशा के होते हुए इस प्रस्ताव से जो आशाएं की गई थीं, उनके पूरे होने की संभावना नहीं है। वह कभी-कभी पछताते कि मैंने व्यर्थ ही यह झगड़ा अपने सिर लिया। उन्हें आश्चर्य होता था कि मैं कैसे इस कांटेदार झाड़ी में उलझा और यदि इस भावी सफलता का भार इस तरमीम के सिर जा पड़ता तो वह एक बड़ी भारी जिम्मेदारी से मुक्त हो जाते, पर यह उन्हें दुराशा-मात्र प्रतीत होती थी। अब सारी बदनामी उन्हीं पर आएगी, विरोधी दल उनकी हंसी उड़ाएगा, उनकी उद्दंडता पर टिप्पणियां करेगा और यह सारी निंदा उन्हें अकेले सहनी पड़ेगी। कोई उनका मित्र नहीं, कोई उन्हें तसल्ली देने वाला नहीं। विट्ठलदास से आशा थी कि वह उनके साथ न्याय करेंगे; उनके रूठे हुए मित्रों को मना लाएंगे, लेकिन विट्ठलदास ने उल्टे उन्हीं को अपराधी ठहराया। वह बोले—आपने इस तरमीम को स्वीकार करके सारा गुड़ गोबर कर दिया, बरसों की मेहनत पर पानी फेर दिया। केवल कुंवर अनिरुद्धसिंह वह मनुष्य थे, जो पद्मसिंह के व्यथित हृदय को ढाढ़स देते थे और उनसे सहानुभूति रखते थे।

पूरे महीने भर पद्मसिंह कचहरी न जा सके। बस अकेले बैठे हुए इसी घटना की आलोचना किया करते ! उनके विचारों में एक विचित्र निष्पक्षता आ गई थी। मित्रों के वैमनस्य से उन्हें जो दुःख होता था, उस पर ध्यान देकर वह सोचते थे कि जब ऐसे सुशिक्षित, विचारशील पुरुष एक जरा-सी बात पर अपने निश्चित सिद्धांतों के प्रतिकूल व्यवहार करते हैं, तो इस देश का कल्याण होने की कोई आशा नहीं। माना कि मैंने तरमीम को स्वीकार करने में भूल की, लेकिन मेरी भूल ने उन्हें क्यों मार्ग से विचलित कर दिया?

पद्मसिंह को इस मानसिक कष्ट की अवस्था में पहली बार अनुभव हुआ कि एक अबला स्त्री चित्त को सावधान करने की कितनी शक्ति रखती है। अगर संसार में कोई प्राणी था, जो संपूर्णतः उनकी अवस्था को समझता था, तो वह सुभद्रा थी। वह उस तरमीम को उससे कहीं अधिक आवश्यक समझती थी, जितना वह स्वयं समझते थे। वह उनके सहकारियों की उनसे कहीं अधिक तीव्र समालोचना करना जानती थी। उसकी बातों से पद्मसिंह को बड़ी शांति होती थी। यद्यपि वह समझते थे कि सुभद्रा में ऐसे गहन विषय के समझने और तौलने की सामर्थ्य नहीं और यह जो कुछ कहती है, वह केवल मेरी ही बातों की प्रतिध्वनि है, तथापि इस ज्ञान से उनके आनंद में कोई विघ्न न पड़ता था।

लेकिन महीना पूरा भी न हो पाया था कि प्रभाकर राव ने अपने पत्र में इस प्रस्ताव के संबंध में एक लेखमाला निकालनी आरंभ कर दी। उसमें पद्मसिंह पर ऐसी-ऐसी मार्मिक चोटें करने लगे कि उन्हें पढ़कर वह तिलमिला जाते थे। एक लेख में उन्होंने पद्मसिंह के पूर्व चरित्र और इस तरमीम में घनिष्ठ संबंध दिखाया। एक दूसरे लेख में उनके आचरण पर आक्षेप करते हुए लिखा, यह वर्तमान काल के देशसेवक हैं, जो देश को भूल जाएं, पर अपने को कभी नहीं भूलते, जो देश-सेवा की आड़ में अपना स्वार्थ साधन करते हैं। जाति के नवयुवक कुएं में गिरते हों तो गिरें, काशी के हाजी की कृपा बनी रहनी चाहिए। पद्मसिंह को इस अनुदारता और मिथ्या

द्वेष पर जितना क्रोध आता था, उतना ही आश्चर्य होता था। असज्जनता इस सीमा तक जा सकती है, यह अनुभव उन्हें आज ही हुआ। यह सभ्यता और शालीनता के ठेकेदार बनते हैं, लेकिन उनकी आत्मा ऐसी मलिन है ! और किसी में इतना साहस नहीं कि इसका प्रतिवाद करे।

संध्या का समय था। यह लेख चारपाई पर पड़ा हुआ था। पद्मसिंह सामने मेज पर बैठे हुए इस लेख का उत्तर लिखने की चेष्टा कर रहे थे, पर कुछ लिखते न बनता था कि सुभद्रा ने आकर कहा—गर्मी में यहां क्यों बैठे हो? चलो, बाहर बैठो।

पद्मसिंह—प्रभाकर राव ने मुझे आज खूब गालियां दी हैं, उन्हीं का जवाब लिख रहा हूं।

सुभद्रा—यह तुम्हारे पीछे इस तरह क्यों पड़ा हुआ है?

यह कहकर सुभद्रा वह लेख पढ़ने लगी और पांच मिनट में उसने उसे आद्योपांत पढ़ डाला।

पद्मसिंह—कैसा लेख है?

सुभद्रा—यह लेख थोड़े ही है, यह तो खुली हुई गालियां हैं। मैं समझती थी कि गालियों की लड़ाई स्त्रियों में ही होती है, लेकिन देखती हूं, तो पुरुष हम लोगों से भी बढ़े हुए हैं। ये विद्वान् भी होंगे?

पद्मसिंह—हां, विद्वान् क्यों नहीं हैं, दुनिया-भर की किताबें चाटे बैठे हैं।

सुभद्रा—और उस पर यह हाल !

पद्मसिंह—मैं इसका उत्तर लिख रहा हूं। ऐसी खबर लूंगा कि वह भी याद करें कि किसी से पाला पड़ा था।

सुभद्रा—मगर गालियों का क्या उत्तर होगा?

पद्मसिंह—गालियां।

सुभद्रा—नहीं, गालियों का उत्तर मौन है। गालियों का उत्तर गाली तो मूर्ख भी देते हैं, फिर उनमें और तुममें अंतर ही क्या है?

पद्मसिंह ने सुभद्रा को श्रद्धापूर्ण नेत्रों से देखा। उसकी बात उनके मन में बैठ गई। कभी-कभी हमें उन लोगों से शिक्षा मिलती है, जिन्हें हम अभिमानवश अज्ञानी समझते हैं।

पद्मसिंह—तो मौन धारण कर लूं?

सुभद्रा—मेरी तो यही सलाह है। उसे जो जी में आए, बकने दो। कभी-न-कभी वह अवश्य लज्जित होगा। बस, वही इन गालियों का दंड होगा।

पद्मसिंह—वह लज्जित कभी न होगा। यह लोग लज्जित होना जानते ही नहीं। अभी मैं उसके पास जाऊं, तो मेरा बड़ा आदर करेगा, हंस-हंसकर बोलेगा, लेकिन संध्या होते ही फिर उस पर गालियों का नशा चढ़ जाएगा।

सुभद्रा—तो उसका उद्यम क्या दूसरों पर आक्षेप करना है?

पद्मसिंह—नहीं, उद्यम तो यह नहीं है, लेकिन संपादक लोग अपने ग्राहक बढ़ाने के लिए इस प्रकार कोई-न-कोई फुलझड़ी छोड़ते रहते हैं। ऐसे आक्षेपपूर्ण लेखों से पत्रों की बिक्री बढ़ जाती है। जनता को ऐसे झगड़ों में आनंद प्राप्त होता है और संपादक लोग अपने महत्त्व को भूलकर जनता के इस विवाद-प्रेम से लाभ उठाने लगते हैं। गुरुपद को छोड़कर जनता के कलह-प्रेम का आवाहन करने लगते हैं। कोई-कोई संपादक तो यहां तक कहते हैं कि अपने ग्राहक को प्रसन्न रखना हमारा कर्त्तव्य है। हम उनका खाते हैं, तो उन्हीं का गाएंगे।

सुभद्रा—तब तो ये लोग केवल पैसे के गुलाम हैं। इन पर क्रोध करने की जगह दया करनी चाहिए।

पद्मसिंह मेज से उठ आए। उत्तर लिखने का विचार छोड़ दिया। वह सुभद्रा को ऐसी विचारशील कभी न समझते थे। उन्हें अनुभव हुआ कि यद्यपि मैंने बहुत विद्या पढ़ी है, पर इसके हृदय की उदारता को मैं नहीं पहुंचता। यह अशिक्षित होकर भी मुझसे उच्च विचार रखती है। उन्हें आज ज्ञान हुआ कि स्त्री संतानहीन होकर भी पुरुष के लिए, शांति, आनंद का एक अविरल स्रोत है। सुभद्रा के प्रति उनके हृदय में एक नया प्रेम जागृत हो गया। एक लहर उठी, जिसने बरसों के जमे हुए मालिन्य को काटकर बहा दिया। उन्होंने विमल, विशुद्ध भाव से उसे देखा। सुभद्रा इसका आशय समझ गई और उसका हृदय आनंद से विह्वल हो गद्‌गद हो गया।

पैंतालीस

सदन जब सुमन को देखकर लौटा, तो उसकी दशा उस दरिद्र मनुष्य की-सी थी, जिसका वर्षों का धन चोरों ने हर लिया हो।

वह सोचता था, सुमन मुझसे बोली क्यों नहीं, उसने मेरी ओर ताका क्यों नहीं? क्या वह मुझे इतना नीच समझती है? नहीं, वह अपने पूर्व चरित्र पर लज्जित है और मुझे भूल जाना चाहती है। संभव है, उसे मेरे विवाह का समाचार मिल गया हो और मुझे अन्यायी, निर्दयी समझ रही हो। उसे एक बार फिर सुमन से मिलने की प्रबल उत्कंठा हुई। दूसरे दिन वह विधवा-आश्रम के घाट की ओर चला, लेकिन आधे रास्ते से लौट आया। उसे शंका हुई कि कहीं शान्ता की बात चल पड़ी, तो मैं क्या जवाब दूंगा। इसके साथ ही स्वामी गजानन्द का उपदेश भी याद आ गया।

सदन अब कभी-कभी शान्ता के प्रति अपने कर्त्तव्य पर विचार किया करता। महीनों तक सामाजिक अवस्था पर व्याख्यानों के सुनने का उस पर कुछ प्रभाव न पड़ता—यह असंभव था। वह मन में स्वीकार करने लगा था कि हम लोगों ने शान्ता के साथ अन्याय किया है, मगर अभी तक उस कर्त्तव्यात्मक शक्ति का उदय न हुआ था, जो अपमान करती है और आत्मा की आज्ञा के सामने किसी की परवाह नहीं करती।

वह इन दिनों बहुत अध्ययनशील हो गया था। दालमंडी और चौक की सैर से वंचित होकर अब उसकी सजीवता इस नए मार्ग पर चल पड़ी। आर्यसमाज के उत्सव में उसने व्याख्यान सुने थे, जिनमें चरित्र-गठन के महत्त्व का वर्णन किया गया था। उनके सुनने से उसका यह भ्रम दूर हो गया था कि मुझे जो कुछ होना था, हो चुका। वहां उसे बताया गया था कि बहुत विद्वान् होने से ही मनुष्य आत्मिक गौरव नहीं प्राप्त कर सकता। इसके लिए सच्चरित्र होना परमावश्यक है। चरित्र के सामने विद्या का मूल्य बहुत कम है। वह उसी दिन से चरित्र-गठन और मनोबल संबंधी पुस्तकें पढ़ने लगा और दिनों-दिन उसकी यह रुचि बढ़ती जाती थी। उसे अब अनुभव होने लगा था कि मैं विद्याहीन होकर भी संसार क्षेत्र में कुछ काम कर सकता हूं। उन मंत्रों में इंद्रियों को रोकने तथा मन को स्थिर करने के जो साधन बताए गए थे, उन्हें वह

कभी भूलता न था।

वह म्युनिसिपल बोर्ड के उस जलसे में मौजूद था, जब वेश्या संबंधी प्रस्ताव उपस्थित थे। उस तरमीम के स्वीकृत हो जाने से वह बहुत उदासीन हो गया था और अपने चाचा की भूल कों स्वीकार करता था, लेकिन जब प्रभाकर राव ने पद्मसिंह पर आक्षेप करना शुरू किया, तो वह अपने चचा के पक्ष का समर्थन करने के लिए उत्सुक होने लगा। उसने दो-तीन लेख लिखे और प्रभाकर राव के पास डाक-द्वारा भेजे। कई दिन तक उसके प्रकाशित होने की आशा करता रहा। उसे निश्चय था कि उन लेखों के छपते ही हलचल मच जाएगी, संसार में कोई बड़ा परिवर्तन हो जाएगा। ज्योंही डाकिया पत्र लाता, वह उसे खोलकर अपने लेखों को खोजने लगता, लेकिन उनकी जगह केवल द्वेष और द्रोह से भरे हुए लेख दिखाई देते। उन्हें पढ़कर उसके हृदय में एक ज्वाला-सी उठने लगती थी। अंतिम लेख को पढ़कर उसका धैर्य हाथ से जाता रहा। उसने निश्चय किया कि अब चाहे जो कुछ हो, संपादक महाशय की खबर लेनी चाहिए। अगर वह सज्जन होता, तो मेरे लेखों को छापता। उसकी भाषा अशुद्ध सही, पर वह तर्कहीन तो न थे। उन्हें छिपा रखने से साबित हो गया कि वह सत्यासत्य का निर्णय नहीं करना चाहता, केवल जनता को प्रसन्न करने के लिए नित्य गालियां बकता जाता है। उसने अपने विचारों को किसी पर प्रकट नहीं किया। संध्या समय एक मोटा-सा सोटा लिए हुए 'जगत' कार्यालय में पहुंचा। कार्यालय बंद हो चुका था, पर प्रभाकर राव अपने संपादकीय कुटीर में बैठे हुए कुछ लिख रहे थे। सदन बेधड़क भीतर जाकर उनके सामने खड़ा हो गया। प्रभाकर राव ने चौंककर सिर उठाया, तो एक लंबे-चौड़े युवक को डंडा लिए हुए उद्दंड भाव से देखा। रुष्ट होकर बोले—आप कौन हैं?

सदन—मेरा मकान यहीं है। मैं आपसे केवल यह पूछना चाहता हूं कि आप इतने दिनों से पंडित पद्मसिंह को गालियां क्यों दे रहे हैं?

प्रभाकर—अच्छा, आपने ही दो-तीन लेख मेरे पास भेजे थे?

सदन—जी हां, मैंने ही भेजे थे।

प्रभाकर—उनके लिए धन्यवाद देता हूं। आइए, बैठ जाइए। मैं तो आपसे स्वयं मिलना चाहता था, पर आपका पता न मालूम था। आपके लेख बहुत उत्तम और सप्रमाण हैं और मैं उन्हें कभी का निकाल देता, पर गुमनाम लेखों का छापना नियम विरुद्ध है, इसी से मजबूर था। शुभ नाम?

सदन ने अपना नाम बताया। उसका क्रोध कुछ शांत हो चला था।

प्रभाकर—आप तो शर्माजी के परम भक्त मालूम होते हैं?

सदन—मैं उनका भतीजा हूं।

प्रभाकर—ओह, तब तो आप अपने ही हैं। कहिए, शर्माजी अच्छे तो हैं? वे तो दिखाई नहीं दिए।

सदन—अभी तक तो अच्छे हैं, पर आपके लेखों का यही तार रहा तो ईश्वर ही जानें, उनकी क्या गति होगी। आप उनके मित्र होकर इतना द्वेष कैसे करने लगे?

प्रभाकर—द्वेष? राम-राम ! आप क्या कहते हैं? मुझे उनसे लेशमात्र भी द्वेष नहीं है। आप हम संपादकों के कर्तव्य को नहीं जानते। हम पब्लिक के सामने अपना हृदय खोलकर रखना अपना धर्म समझते हैं। अपने मनोभावों को गुप्त रखना हमारे नीति-शास्त्र में पाप है। हम न

किसी के मित्र हैं, न किसी के शत्रु। हम अपने जन्म के मित्रों को एक क्षण में त्याग देते हैं और जन्म के शत्रुओं से एक क्षण में गले मिल जाते हैं। हम सार्वजनिक विषय में किसी को क्षमा नहीं करते हैं, इसलिए कि हमारे क्षमा करने से उनका प्रभाव और भी हानिकारक हो जाता है।

पद्मसिंह मेरे परम मित्र हैं और मैं उनका हृदय से आदर करता हूं। मुझे उन पर आक्षेप करते हुए हार्दिक वेदना होती है। परसों तक मेरा उनसे केवल सिद्धांत का विरोध था, लेकिन परसों ही मुझे ऐसे प्रमाण मिले हैं, जिनसे विदित होता है कि उस तरमीम के स्वीकार करने में उनका कुछ और ही उद्देश्य था। आपसे कहने में कोई हानि नहीं है कि उन्होंने कई महीने हुए सुमनबाई नाम की वेश्या को गुप्त रीति से विधवा आश्रम में प्रविष्ट करा दिया और लगभग एक मास से उसकी छोटी बहन को भी आश्रम में ही ठहरा रखा है। मैं अब भी चाहता हू कि मुझे गलत खबर मिली हो, लेकिन मैं शीघ्र ही किसी और नीयत से नहीं, तो उसका प्रतिवाद कराने के लिए ही इस खबर को प्रकाशित कर दूंगा !

सदन–यह खबर आपको कहां से मिली?

प्रभाकर–इसे मैं नहीं बता सकता, लेकिन आप शर्माजी से कह दीजिएगा कि यदि उन पर यह मिथ्या दोषारोपण हो तो मुझे सूचित कर दें। मुझे यह मालूम हुआ है कि इस प्रस्ताव के बोर्ड में आने से पहले शर्माजी हाशिम के यहां नित्य जाते थे। ऐसी अवस्था में आप स्वयं देख सकते हैं कि मैं उनकी नीयत को कहां तक निस्पृह समझ सकता था?

सदन का क्रोध शांत हो गया। प्रभाकर राव की बातों ने उसे वशीभूत कर लिया। वह मन में उनका आदर करने लगा और कुछ इधर-उधर की बातें करके घर लौट आया। उसे अब सबसे बड़ी चिंता यह थी कि क्या शान्ता सचमुच आश्रम में लाई गई है।

रात्रि को भोजन करते समय उसने बहुत चाहा कि शर्माजी से इस विषय में कुछ बातचीत करे, पर साहस न हुआ। सुमन को तो विधवा-आश्रम में जाते उसने देखा ही था, लेकिन अब उसे कई बातों का स्मरण करके, जिनका तात्पर्य अब तक उसकी समझ में न आया था, शान्ता के लाए जाने का संदेह भी होने लगा।

वह रात-भर विकल रहा। शान्ता आश्रम में क्यों आई है? चाचा ने उसे क्यों यहां बुलाया है? क्या उमानाथ ने उसे अपने घर में नहीं रखना चाहा? इसी प्रकार के प्रश्न उसके मन में उठते रहे। प्रातःकाल वह विधवा आश्रम वाले घाट की ओर चला कि अगर सुमन से भेंट हो जाय, तो उससे सारी बातें पूछूं। उसे वहां बैठे थोड़ी ही देर हुई थी कि सुमन आती हुई दिखाई दी। उसके पीछे एक और सुंदरी चली आती थी। उसका मुखचंद्र घूंघट से छिपा हुआ था।

सदन को देखते ही सुमन ठिठक गई। वह इधर कई दिनों से सदन से मिलना चाहती थी। यद्यपि पहले मन में निश्चय कर लिया था कि सदन से कभी न बोलूंगी, पर शान्ता के उद्धार का उसे इसके सिवा कोई अन्य उपाय न सूझता था। उसने लजाते हुए सदन से कहा–सदनसिंह, आज बड़े भाग्य से तुम्हारे दर्शन हुए। तुमने तो इधर आना ही छोड़ दिया। कुशल से तो हो?

सदन झेंपता हुआ बोला–हां, सब कुशल है।

सुमन–दुबले बहुत मालूम होते हो, बीमार थे क्या?

सदन–नहीं, बहुत अच्छी तरह हूं। मुझे मौत कहां?

हम बहुधा अपनी झेंप मिटाने और दूसरों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए कृत्रिम भावों की आड़ लिया करते हैं।

सुमन—चुप रहो, कैसा अपशकुन मुंह से निकालते हो। मैं मरने की मनाती, तो एक बात थी, जिसके कारण यह सब हो रहा है। इस रामलीला की कैकेयी मैं ही हूं। आप भी डूबी और दूसरों को भी अपने साथ ले डूबी। खड़े कब तक रहोगे, बैठ जाओ। मुझे आज तुमसे बहुत-सी बातें करनी हैं। मुझे क्षमा करना, अब तुम्हें भैया कहूंगी। अब मेरा तुमसे भाई-बहन का नाता है। मैं तुम्हारी बड़ी साली हूं, अगर कोई कड़ी बात मुंह से निकल जाए, तो बुरा मत मानना। मेरा हाल तो तुम्हें मालूम ही होगा। तुम्हारे चाचा ने मेरा उद्धार किया और अब मैं विधवा आश्रम में पड़ी अपने दिनों को रोती हूं और सदा रोऊंगी। इधर एक महीने से मेरी अभागिनी बहन भी यहां आ गई है, उमानाथ के घर उसका निर्वाह न हो सका। शर्माजी को परमात्मा चिरंजीवी करे, वह स्वयं अमोला गए और इसे ले आए। लेकिन यहां लाकर उन्होंने भी इसकी सुधि न ली । मैं तुमसे पूछती हूं, भला यह कहां की नीति है कि एक भाई चोरी करे और दूसरा पकड़ा जाए? अब तुमसे कोई बात छिपी नहीं है, अपने खोटे नसीब से, दिनों के फेर से, पूर्वजन्म के पापों से मुझ अभागिनी ने धर्म का मार्ग छोड़ दिया। उसका दंड मुझे मिलना चाहिए था और वह मिला। लेकिन इस बेचारी ने क्या अपराध किया था कि जिसके लिए तुम लोगों ने इसे त्याग दिया? इसका उत्तर तुम्हें देना पड़ेगा ! देखो, अपने बड़ों की आड़ मत लेना, यह कायर मनुष्य की चाल है। सच्चे हृदय से बताओ, यह अन्याय था या नहीं? और तुमने कैसे ऐसा घोर अन्याय होने दिया? क्या तुम्हें एक अबला बालिका का जीवन नष्ट करते हुए तनिक भी दया न आई?

यदि शान्ता यहां न होती, तो कदाचित् सदन अपने मन के भावों को प्रकट करने का साहस कर जाता। वह इस अन्याय को स्वीकार कर लेता। लेकिन शान्ता के सामने वह एकाएक अपनी हार मानने के लिए तैयार न हो सका। इसके साथ ही अपनी कुल मर्यादा की शरण लेते हुए भी उसे संकोच होता था। वह ऐसा कोई वाक्य मुंह से न निकालना चाहता था, जिससे शान्ता को दु:ख हो, न कोई ऐसी बात कह सकता था, जो झूठी आशा उत्पन्न करे। उसकी उड़ती हुई दृष्टि ने, जो शान्ता पर पड़ी थी, उसे बड़े संकट में डाल दिया था। उसकी दशा उस बालक की-सी थी, जो किसी मेहमान की लाई हुई मिठाई को ललचाई आंखों से देखता है, लेकिन माता के भय से निकालकर खा नहीं सकता। बोला—बाईजी, आपने पहले ही मेरा मुंह बंद कर दिया है, इसलिए मैं कैसे कहूं कि जो कुछ किया, मेरे बड़ों ने किया। मैं उनके सिर दोष रखकर अपना गला नहीं छुड़ाना चाहता। उस समय लोक-लज्जा से मैं भी डरता था। आप भी मानेंगी कि संसार में रहकर संसार की चाल चलनी पड़ती है। मैं इस अन्याय को स्वीकार करता हूं, लेकिन यह अन्याय हमने नहीं किया, वरन् उस समाज ने किया है, जिसमें हम लोग रहते हैं।

सुमन—भैया, तुम पढ़े-लिखे मनुष्य हो। मैं तुमसे बातों में नहीं जीत सकती, जो तुम्हें उचित जान पड़े, वह करो। अन्याय अन्याय ही है, चाहे कोई एक आदमी करे या सारी जाति करे। दूसरों के भय से किसी पर अन्याय नहीं करना चाहिए। शान्ता यहां खड़ी है, इसलिए मैं उसके भेद नहीं खोलना चाहती, लेकिन इतना अवश्य कहूंगी कि तुम्हें दूसरी जगह धन, सम्मान, रूप, गुण, सब मिल जाए, पर यह प्रेम न मिलेगा। अगर तुम्हारे जैसा उसका हृदय भी होता, तो यह आज अपनी नई ससुराल में आनंद से बैठी होती, लेकिन केवल तुम्हारे प्रेम ने उसे यहां खींचा।

सदन ने देखा कि शान्ता की आंखों से जल बहकर उसके पैरों पर गिर रहा है ! उसका सरल प्रेम-तृषित हृदय शोक से भर गया। अत्यंत करुण स्वर से बोला—मेरी समझ में नहीं आता कि क्या करूं? ईश्वर साक्षी है कि दु:ख से मेरा कलेजा फटा जाता है।

सुमन—तुम पुरुष हो, परमात्मा ने तुम्हें सब शक्ति दी है।

सदन—मुझसे जो कुछ कहिए, करने को तैयार हूं।

सुमन—वचन देते हो?

सदन—मेरे चित्त की जो दशा हो रही है, वह ईश्वर ही जानते होंगे, मुंह से क्या कहूं?

सुमन—मरदों की बातों पर विश्वास नहीं आता।

यह कहकर सुमन मुस्कराई। सदन ने लज्जित होकर कहा—अगर अपने वश की बात होती, तो अपना हृदय निकालकर आपको दिखाता। यह कहकर उसने दबी हुई आंखों से शान्ता की ओर ताका।

सुमन—अच्छा, तो आप इसी गंगा नदी के किनारे शान्ता का हाथ पकड़कर कहिए कि तुम मेरी स्त्री हो और मैं तुम्हारा पुरुष हूं, मैं तुम्हारा पालन करूंगा।

सदन के आत्मिक बल ने जवाब दिया। वह बगलें झांकने लगा, मानो अपना मुंह छिपाने के लिए कोई स्थान खोज रहा है। उसे ऐसा जान पड़ा कि गंगा मुझे छिपाने के लिए बढ़ी चली आती है। उसने डूबते मनुष्य की भांति आकाश की ओर देखा और लज्जा से आंखें नीची किए रुक-रुककर बोला—सुमन, मुझे इसके लिए सोचने का अवसर दो। सुमन ने नम्रता से कहा—हां, सोचकर निश्चय कर लो, मैं तुम्हें धर्म संकट में नहीं डालना चाहती। यह कहकर वह शान्ता से बोली—देख, तेरा पति तेरे सामने खड़ा है। मुझसे जो कुछ कहते बना उससे कहा, पर वह नहीं पसीजता। वह अब सदा के लिए तेरे हाथ से जाता है। अगर तेरा प्रेम सत्य है और उसमें कुछ बल है, तो उसे रोक ले, उससे प्रेम-वरदान ले ले।

यह कहकर सुमन गंगा की ओर चली गई। शान्ता भी धीरे-धीरे उसी के पीछे चली गई। उसका प्रेम मान के नीचे दब गया। जिसके नाम पर वह यावज्जीवन दुख झेलने का निश्चय कर चुकी थी, जिसके चरणों पर कल्पना में अपने को अर्पण कर चुकी थी, उसी से वह इस समय तन बैठी । उसने उसकी अवस्था को न देखा, उसकी कठिनाइयों का विचार न किया, उसकी पराधीनता पर ध्यान न दिया। इस समय वह यदि सदन के सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो जाती, तो उसका अभीष्ट सिद्ध हो जाता पर उसने विनय के स्थान पर मान करना उचित समझा।

सदन एक क्षण वहां खड़ा रहा और बाद को पछताता हुआ घर को चला।

छियालीस

सदन को ऐसी ग्लानि हो रही थी, मानो उसने कोई बड़ा पाप किया हो। वह बार-बार अपने शब्दों पर विचार करता और यही निश्चय करता कि मैं बड़ा निर्दय हूं। प्रेमाभिलाषा ने उसे उन्मत्त कर दिया था।

वह सोचता, मुझे संसार का इतना भय क्यों है? संसार मुझे क्या दे देता है? क्या केवल झूठी बदनामी के भय से मैं उस रत्न को त्याग दूं, जो मालूम नहीं मेरे पूर्व जन्म की कितनी ही तपस्याओं का फल है? अगर अपने धर्म का पालन करने के लिए मेरे बंधुगण मुझे छोड़ दें तो क्या हानि है? लोक-निंदा का भय इसलिए है कि वह हमें बुरे कामों से बचाती है। अगर वह कर्त्तव्य मार्ग में बाधक हो, तो उससे डरना कायरता है। यदि हम किसी निरपराध पर झूठा अभियोग लगाएं, तो संसार हमको बदनाम नहीं करता, वह इस अकर्म में हमारी सहायता करता है, हमको गवाह और वकील देता है। हम किसी का धन दबा बैठें, किसी की जायदाद हड़प लें, तो संसार हमको कोई दंड नहीं देता, देता भी है तो बहुत कम, लेकिन ऐसे कुकर्मों के लिए हमें बदनाम करता है, हमारे माथे पर सदा के लिए कलंक का टीका लगा देता है। नहीं, लोक-निंदा का भय मुझसे यह अधर्म नहीं करा सकता, मैं उसे मंझधार में न डूबने दूंगा। संसार जो चाहे कहे, मुझसे यह अन्याय न होगा।

मैं मानता हूं कि माता-पिता की आज्ञा का पालन करना मेरा धर्म है। उन्होंने मुझे जन्म दिया है, मुझे पाला है। बाप की गोद में खेला हूं, मां का स्तन पीकर पला हूं। मैं उनके इशारे पर विष का प्याला पी सकता हूं, तलवार की धार पर चल सकता हूं, आग में कूद सकता हूं, किंतु उनके दुराग्रह पर भी मैं उस रमणो का तिरस्कार नहीं कर सकता, जिसकी रक्षा करना मेरा धर्म है। मां-बाप मुझसे अवश्य विमुख हो जाएंगे। संभव है, मुझे त्याग दें, मुझे मारा हुआ समझ लें, लेकिन कुछ दिनों के दुख के बाद उन्हें धैर्य हो जाएगा। वह मुझे भूल जाएंगे। काल उनके घाव को भर देगा।

हाय ! मैं कैसा कठोर, कैसा पाषाण-हृदय हूं ! वह रमणी जो किसी रनिवास की शोभा बन सकती है, मेरे सम्मुख एक दीन दया प्रार्थी के समान खड़ी रहे और मैं जरा भी न पसीजूं? वह ऐसा अवसर था कि मैं उसके चरणों पर सिर झुका देता और कर जोड़कर कहता, देवि ! मेरे अपराध क्षमा करो ! गंगा से जल लाता और उसके पैरों पर चढ़ाता, जैसे कोई उपासक अपनी इष्ट देवी को चढ़ाता है। पर मैं पत्थर की मूर्ति के सदृश खड़ा अपनी कुल-मर्यादा का बेसुरा राग अलापता रहा। हा मंदबुद्धि ! मेरी बातों से उसका कोमल हृदय कितना दु:खी हुआ होगा। यह उसके मान करने से ही प्रकट होता है। उसने मुझे शुष्क, प्रेमविहीन, घमंडी और धूर्त्त समझा होगा, मेरी ओर आंख उठाकर देखा तक नहीं। वास्तव में मैं इसी योग्य हूं।

वह पश्चात्तापात्मक विचार कई दिन तक सदन के मर्मस्थल में दौड़ते रहे। अंत में उसने निश्चय किया कि मुझे अपना झोपड़ा अलग बनाना चाहिए, अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए। इसके बिना निर्वाह नहीं हो सकता। मां-बाप के घर का द्वार अब मेरे लिए बंद है, खटखटाने से भी न खुलेगा। चाचा मुझे आश्रय देंगे, लेकिन उनके यहां रहकर घर में बैर का बीज बोना अच्छा नहीं; माता-पिता समझेंगे कि यह मेरे लड़के को बिगाड़ रहे हैं। बस, मेरे लिए इसके सिवाय कोई और उपाय नहीं कि अपने लिए कोई राह निकालूं।

वह विचार करता कि चलकर अपनी लगाई हुई आग को बुझा आऊं, लेकिन चलने के समय उसकी हिम्मत जवाब दे देती। मन में प्रश्न उठता कि किस बिरते पर? घर कहां है?

सदन नित्य इसी चिंता में डूबा रहता कि इस सूत्र को कैसे सुलझाऊं? उसने सारे शहर की खाक छान डाली, कभी दफ्तरों की ओर जाता, कभी बड़े-बड़े कारखानों का चक्कर लगाता और दो-चार घंटे घूम-घामकर लौट आता। उसका जीवन अब तक सुख भोग में बीता था, उसने

नम्रता और विनय का पाठ न पढ़ा था, अभिमान उसके रोम-रोम में भरा हुआ था। रास्ते चलता तो अकड़ता हुआ, अपने सामने किसी को कुछ नहीं समझता था। उसे संसार का कुछ अनुभव न था। वह नहीं जानता था कि इस दरबार में बहुत सिर झुकाने की आवश्यकता है। यहां उसी की प्रार्थना स्वीकृत होती है, जो पत्थर के निर्दय चौखटों पर माथा रगड़ना जानता है, जो उद्योगी है, निपुण है, नम्र है, जिसने किसी योगी के सदृश अपने मन को जीत लिया है, जो अन्याय के सामने झुक जाता है, अपमान को दूध के समान पी जाता है और जिसने आत्माभिमान को पैरों तले कुचल डाला है। वह न जानता था कि वही सद्‌गुण, जो मनुष्य को देवतुल्य बना देते हैं, इस क्षेत्र में निरादर की दृष्टि से देखे जाते हैं। वह ईमानदार था, सत्यवक्ता था, सरल था, जो कहता मुंह पर, लगी-लिपटी रखना न जानता था, पर वह नहीं जानता था कि इन गुणों का आत्मिक महत्त्व चाहे जो कुछ हो, संसार की दृष्टि में विद्या की कमी उनसे नहीं पूरी होती। सदन को अब बहुत पछतावा होता था कि मैंने अपना समय व्यर्थ खोया। कोई ऐसा काम न सीखा, जिससे संसार में निर्वाह होता। सदन को इस प्रकार भटकते हुए एक मास से अधिक हो गया और कोई काम हाथ न लगा।

इस निराशा ने धीरे-धीरे उसके हृदय में असंतोष का भाव जागृत कर दिया। उसे अपने माता-पिता पर, अपने चाचा पर, संसार पर और अपने आप पर क्रोध आता। अभी थोड़े ही दिन पहले वह स्वयं फिटन पर सैर करने निकलता था, लेकिन अब किसी फिटन को आते देखकर उसका रक्त खौलने लगता था। वह किसी फैशनेबुल मनुष्य को पैदल चलते पाता, तो अदबदाकर उससे कंधा मिलाकर चलता और मन में सोचता कि यह जरा भी नाक-भौं सिकोड़े तो इसकी खबर लूं। बहुधा वह कोचवानों के चिल्लाने की परवाह न करता। सबसे छेड़कर लड़ना चाहता था। ये लोग गाड़ियों पर सैर करते हैं, कोट-पतलून डाटकर बन-ठनकर हवा खाने जाते हैं और मेरा कहीं ठिकाना नहीं।

घर पर जमींदारी होने के कारण सदन के सामने जीविका का प्रश्न कभी न आया था। इसीलिए उसने शिक्षा की ओर विशेष ध्यान न दिया था, पर अकस्मात् जो यह प्रश्न उसके सामने आ गया, तो उसे मालूम होने लगा कि इस विषय में सर्वथा असमर्थ हूं। यद्यपि उसने अंग्रेजी न पढ़ी थी, पर इधर उसने हिंदी भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। वह शिक्षित समाज को मातृभाषा में अश्रद्धा रखने के कारण देश और जाति का विरोधी समझता था। उसे अपने सच्चरित्र होने पर भी घमंड था। जब से उसके लेख 'जगत' में प्रकाशित हुए थे, वह अंग्रेजी पढ़े-लिखे आदमियों को अनादर की दृष्टि से देखने लगा था। यह सब-के-सब स्वार्थसेवी हैं, इन्होंने केवल दीनों का गला दबाने के लिए, केवल अपना पेट पालने के लिए अंग्रेजी पढ़ी है, सब-के-सब फैशन के गुलाम हैं, जिनकी शिक्षा ने उन्हें अंग्रेजों का मुंह चिढ़ाना सिखा दिया है, जिनमें दया नहीं, धर्म नहीं, निज भाषा से प्रेम नहीं, चरित्र नहीं, आत्मबल नहीं, वे भी कुछ आदमी हैं? ऐसे ही विचार उसके मन में आया करते थे। लेकिन अब जो जीविका की समस्या उसके सामने आई, तो उसे ज्ञात हुआ कि मैं इनके साथ अन्याय कर रहा था। ये दया के पात्र हैं। मैं भाषा का पंडित नहीं लेकिन बहुतों से अच्छी भाषा जानता हूं। मेरा चरित्र उच्च न सही, पर बहुतों से अच्छा है। मेरे विचार उच्च न हों, पर नीच नहीं, लेकिन मेरे लिए सब दरवाजे बंद हैं। मैं या तो कहीं चपरासी हो सकता हूं या बहुत होगा तो कांस्टेबिल हो जाऊंगा। बस यही मेरी सामर्थ्य है। यह हमारे साथ

कितना बड़ा अन्याय है, हम कैसे चरित्रवान् हों, कितने ही बुद्धिमान हों, कितने ही विचारशील हों, पर अंग्रेजी भाषा का ज्ञान न होने से उनका कुछ मूल्य नहीं। हमसे अधम और कौन होगा कि इस अन्याय को चुपचाप सहते हैं। नहीं, बल्कि उस पर गर्व करते हैं। नहीं, मुझे नौकरी करने का विचार मन से निकाल डालना चाहिए।

सदन की दशा इस समय उस मनुष्य की-सी थी, जो रात को जंगल में भटकता हुआ अंधेरी रात पर झुंझलाता है।

इसी निराशा और चिंता की दशा में एक दिन वह टहलता हुआ नदी के किनारे उस स्थान पर जा पहुंचा, जहां बहुत-सी नावें लगी हुई थीं। नदी में छोटी-सी नावें इधर-उधर इठलाती फिरती थीं। किसी-किसी नौका में सुरीली तानें सुनाई देती थीं। कई किश्तियों पर से मल्लाह लोग बोरे उतार रहे थे। सदन एक नाव पर जा बैठा। संध्या समय की शांतिदायिनी छटा और गंगातट के मनोरम काव्यमय दृश्य ने उसे वशीभूत कर लिया। वह सोचने लगा, यह कैसा आनंदमय जीवन है, ईश्वर मुझे भी ऐसी ही एक झोंपड़ी दे देता, तो मैं उसी पर संतोष करता, यहीं नदी तट पर विचरता, लहरों पर चलता और आनंद के राग गाता। शान्ता झोंपड़े के द्वार पर खड़ी मेरी राह देखती। कभी-कभी हम दोनों नाव पर बैठकर गंगा की सैर करते। उसकी रसिक कल्पना ने उस सरल, सुखमय-जीवन का ऐसा सुंदर चित्र खींचा, उस आनंदमय स्वप्न के देखने में वह ऐसा मग्न हुआ कि उसका चित्त व्याकुल हो गया। वहां की प्रत्येक वस्तु उस समय सुख, शांति और आनंद के रंग में डूबी हुई थी। वह उठा और मल्लाह से बोला—क्यों जी चौधरी, यहां कोई नाव बिकाऊ भी है।

मल्लाह बैठा हुक्का पी रहा था। सदन को देखते ही उठ खड़ा हुआ और उसे कई नावें दिखाईं। सदन ने एक नई किश्ती पसंद की। मोल-तोल होने लगा। कितने ही और मल्लाह एकत्र हो गए। अंत में तीन सौ रुपये में नाव पक्की हो गई। यह भी तय हो गया कि जिसकी नाव है, वही उसे चलाने के लिए नौकर होगा।

सदन घर की ओर चला तो ऐसा प्रसन्न था, मानो अब उसे जीवन में किसी वस्तु की अभिलाषा नहीं है, मानो उसने किसी बड़े भारी संग्राम में विजय पाई है। सारी रात आंखों में नींद नहीं आई। वही नाव जो पाल खोले क्षितिज की ओर से चली आती थी, उसके नेत्रों के सामने नाचती रही, वही दृश्य उसे दिखाई देते रहे। उसकी कल्पना ने तट पर एक सुंदर, हरी-भरी लताओं से सजा हुआ झोंपड़ा बनाया और शान्ता की मनोहारिणी मूर्ति आकर उसमें बैठी। झोंपड़ा प्रकाशमान हो गया। यहां तक कि आनंद कल्पना ने धीरे-धीरे नदी के किनारे एक सुंदर भवन बनाया, उसमें एक वाटिका लगवाई और सदन उसकी कुंजों में शान्ता के साथ विहार करने लगा। एक ओर नदी की कलकल ध्वनि थी, दूसरी ओर पक्षियों का कलरव गान। हमें जिससे प्रेम होता है, उसे सदा एक ही अवस्था में देखते हैं। हम उसे जिस अवस्था में स्मरण करते हैं, उसी समय के भाव, उसी समय के वस्त्राभूषण हमारे हृदय पर अंकित हो जाते हैं। सदन शान्ता को उसी अवस्था में देखता था, जब वह एक सादी साड़ी पहने, सिर झुकाए गंगातट पर खड़ी थी। वह चित्र उसकी आंखों से न उतरता था।

सदन को इस समय ऐसा मालूम होता था कि इस व्यवसाय में लाभ-ही-लाभ है। हानि की संभावना ही उसके ध्यान से बाहर थी। सबसे विचित्र बात यह थी कि अब तक उसने यह न सोचा था कि रुपये कहां से आएंगे?

प्रात:काल होते ही उसे चिंता हुई कि रुपयों का क्या प्रबंध करूं? किससे मांगूं और कौन देगा? मांगूं किस बहाने से? चाचा से कहूं? नहीं, उनके पास आजकल न होंगे। महीनों से कचहरी नहीं जाते और दादा से मांगना तो पत्थर से तेल निकालना है। क्या करूं? यदि इस समय न गया, तो चौधरी अपने मन में क्या कहेगा? वह छत पर इधर-उधर टहलने लगा। अभिलाषाओं का वह विशाल भवन, अभी थोड़ी देर पहले उसकी कल्पना ने जिसका निर्माण किया था, देखते-देखते गिरने लगा। युवाकाल की आशा पुआल की आग है, जिसके जलने और बुझने में देर नहीं लगती।

अकस्मात् सदन को उपाय सूझ गया। वह जोर से खिलखिलाकर हंसा, जैसे कोई अपने शत्रु को भूमि पर गिराकर बेहंसी की हंसी हंसता है। वाह ! मैं भी कैसा मूर्ख हूं। मेरे संदूक में मोहनमाला रखी हुई है। तीन सौ रुपये से अधिक की होगी। क्यों न उसे बेच डालूं? जब कोई मांगेगा; देखा जाएगा। कौन मांगता है और किसी ने मांगा भी, तो साफ-साफ कह दूंगा कि बेचकर खा गया। जो कुछ करना होगा, कर लेगा और अगर उस समय तक हाथ में कुछ रुपये आ गए, तो निकालकर फेंक दूंगा। उसने आकर संदूक से माला निकाली और सोचने लगा कि इसे कैसे बेचूं। बाजार में कोई गहना बेचना अपनी इज्जत बेचने से कम अपमान की बात नहीं है। इसी चिंता में बैठा था कि जीतन कहार कमरे में झाड़ू देने आया। सदन को मलिन देखकर बोला—भैया, आज उदास हो, आंखें चढ़ी हुई हैं, रात को सोए नहीं क्या?

सदन ने कहा—आज नींद नहीं आई। सिर पर एक चिंता सवार है।

जीतन—ऐसी कौन-सी चिंता है? मैं भी सुनूं।

सदन—तुमसे कहूं तो तुम अभी सारे घर में दोहाई मचाते फिरोगे।

जीतन—भैया, तुम्हीं लोगों की गुलामी में उमिर बीत गई। ऐसा पेट हल्का होता, तो एक दिन न चलता। इससे निसाखातिर रहो।

जिस प्रकार एक निर्धन किंतु शीलवान मनुष्य के मुंह से बड़ी कठिनता, बड़ी विवशता और बहुत लज्जा के साथ 'नहीं' शब्द निकलता है, उसी प्रकार सदन के मुंह से निकला—मेरे पास एक मोहनमाला है, इसे कहीं बेच दो। मुझे रुपयों का काम है।

जीतन—तो यह कौन बड़ा काम है, इसके लिए क्यों चिंता करते हो? मुर्दा रुपये क्या करोगे? मालकिन से क्यों नहीं मांग लेते हो? वह कभी नाहीं नहीं करेंगी। हां, मालिक से कहो तो न मिलेगा। इस घर में मालिक कुछ नहीं हैं, जो हैं वह मालकिन हैं।

सदन—मैं घर में किसी से नहीं मांगना चाहता।

जीतन ने माला लेकर देखी, उसे हाथों में तौला और शाम तक उसे बेच लाने की बात कहकर चला गया। मगर बाजार न जाकर वह सीधे अपनी कोठरी में गया, दोनों किवाड़ बंद कर लिए और अपनी खाट के नीचे की भूमि खोदने लगा। थोड़ी देर में मिट्टी की एक हांडी निकल आई। यही उसकी सारे जन्म की कमाई थी, सारे जीवन की किफायत, कंजूसी, काट-कपट, बेईमानी, दलाली, गोलमाल, इसी हांडी के अंदर इन रुपयों के रूप में संचित थी। कदाचित् इसी कारण रुपयों के मुंह पर कालिमा भी लग गई थी। लेकिन जन्म भर के पापों का कितना संक्षिप्त फल था। पाप कितने सस्ते बिकते हैं।

जीतन ने रुपये गिनकर बीस-बीस रुपये की ढेरियां लगाईं। कुल सत्रह ढेरियां हुईं। तब उसने तराजू पर माला को रुपयों से तौला। यह पच्चीस रुपये भर से कुछ अधिक थी। सोने की

दर बाजार में चढ़ी हुई थी, पर उसने एक रुपये भर के पच्चीस रुपये ही लगाए। फिर रुपयों की पच्चीस-पच्चीस की ढेरियां बनाईं। तेरह ढेरियां हुईं और पंद्रह रुपये बच रहे। उसके कुल रुपये माला के मूल्य से दो सौ पिचासी रुपये कम थे। उसने मन में कहा, अब यह चीज हाथ से नहीं जाने पाएगी। कह दूंगा, माला तेरह ही भर थी ! पंद्रह और बच जाएंगे। चलो मालारानी, तुम इस दरबे में आराम से बैठो।

हांडी फिर धरती के नीचे चली गई। पापों का आकार और भी सूक्ष्म हो गया।

जीतन इस समय उछला पड़ता था। उसने बात-की-बात में दो सौ पिचासी रुपये पर हाथ मारा था। ऐसा सुअवसर उसे कभी नहीं मिला था। उसने सोचा, आज अवश्य किसी भले आदमी का मुंह देखकर उठा था। बिगड़ी हुई आंखों के सदृश बिगड़े हुए ईमान में प्रकाश-ज्योति प्रवेश नहीं करती।

दस बजे जीतन ने तीन सौ पच्चीस रुपये लाकर सदन के हाथों में दिए। सदन को मानो पड़ा हुआ धन मिला।

रुपये देकर जीतन ने नि:स्वार्थ भाव से मुंह फेरा। सदन ने पांच रुपये निकालकर उसकी ओर बढ़ाए और बोला—ये लो, तमाखू-पान।

जीतन ने ऐसा मुंह बनाया, जैसा कोई वैष्णव मदिरा देखकर मुंह बनाता है, और बोला—भैया, तुम्हारा दिया तो खाता ही हूं, यह कहां पचेगा?

सदन—नहीं-नहीं, मैं खुशी से देता हूं। ले लो, कोई हरज नहीं है।

जीतन—नहीं भैया, यह न होगा। ऐसा करता तो अब तक तो चार पैसे का आदमी हो गया होता। नारायण तुम्हें बनाए रखें।

सदन को विश्वास हो गया कि यह बड़ा सच्चा आदमी है। इसके साथ अच्छा सलूक करूंगा।

संध्या समय सदन की नाव गंगा की लहरों पर इस भांति चल रही थी, जैसे आकाश में मेघ चलते हैं। लेकिन उसके चेहरे पर आनंद-विकास की जगह भविष्य की शंका झलक रही थी, जैसे कोई विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद चिंता में ग्रस्त हो जाता है। उसे अनुभव होता है कि वह बांध, जो संसार रूपी नदी की बाढ़ से मुझे बचाए हुए था, टूट गया है और मैं अथाह सागर में खड़ा हूं। सदन सोच रहा था कि मैंने नाव तो नदी में डाल दी, लेकिन यह पार भी लगेगी? उसे अब मालूम हो रहा था कि वह पानी गहरा है, हवा तेज है और जीवन-यात्रा इतनी सरल नहीं है, जितनी मैं समझता था। लहरें यदि मीठे स्वरों में गाती हैं, तो भयंकर ध्वनि से गरजती हैं, हवा अगर लहरों को थपकियां देती है, तो कभी-कभी उन्हें उछाल भी देती है।

सैंतालीस

प्रभाकर राव का क्रोध बहुत कुछ तो सदन के लेखों से ही शांत हो गया था और जब पद्मसिंह ने सदन के आग्रह से सुमन का पूरा वृत्तांत उन्हें लिख भेजा, तो वह सावधान हो गए।

म्युनिसिपैलिटी में प्रस्ताव को पास हुए लगभग तीन मास बीत गए, पर उसकी तरमीम के विषय में तेगअली ने जो शंकाएं प्रकट की थीं, वह निर्मूल प्रतीत हुईं। न दालमंडी के कोठों पर दूकानें ही सजीं और न वेश्याओं ने निकाह-बंधन से ही कोई विशेष प्रेम प्रकट किया! हां, कई कोठे खाली हो गए। उन वेश्याओं ने भावी निर्वासन के भय से दूसरी जगह रहने का प्रबंध कर लिया। किसी कानून का विरोध करने के लिए उससे अधिक संगठन की आवश्यकता होती है, जितनी उसके जारी करने के लिए। प्रभाकर राव का क्रोध शांत होने का यह एक और कारण था।

पद्मसिंह ने इस प्रस्ताव को वेश्याओं के प्रति घृणा से प्रेरित होकर हाथ में लिया था। पर अब इस विषय पर विचार करते-करते उनकी घृणा बहुत कुछ दया और क्षमा का रूप धारण कर चुकी थी। इन्हीं भावों ने उन्हें तरमीम से सहमत होने पर बाध्य किया था। सोचते, यह बेचारी अबलाएं अपनी इंद्रियों में, सुख-भोग में अपना सर्वस्व नाश कर रही हैं। विलास-प्रेम की लालसा ने उनकी आंखें बंद कर रखी हैं। इस अवस्था में उनके साथ दया और प्रेम की आवश्यकता है। इस अत्याचार से उनकी सुधारक शक्तियां और भी निर्बल हो जाएंगी और जिन आत्माओं का हम उपदेश से, प्रेम से, ज्ञान से, शिक्षा से उद्धार कर सकते हैं, वे सदा के लिए हमारे हाथ से निकल जाएंगी। हम लोग जो स्वयं माया-मोह के अंधकार में पड़े हुए हैं, उन्हें दंड देने का कोई अधिकार नहीं रखते। उनके कर्म ही उन्हें क्या कम दंड दे रहे हैं कि हम यह अत्याचार करके उनके जीवन को और भी दुखमय बना दें।

हमारे मन के विचार कर्म के पथदर्शक होते हैं। पद्मसिंह ने झिझक और संकोच को त्यागकर कर्मक्षेत्र में पैर रखा। वही पद्मसिंह जो सुमन के सामने भाग खड़े हुए थे, अब दिन दोपहर दालमंडी के कोठों पर बैठे दिखाई देने लगे। उन्हें अब लोकनिंदा का भय न था। मुझे लोग क्या कहेंगे, इसकी चिंता न थी। उनकी आत्मा बलवान हो गई थी, हृदय में सच्ची सेवा का भाव जागृत हो गया था। कच्चा फल पत्थर मारने से भी नहीं गिरता, किंतु पककर आप-ही-आप धरती की ओर आकर्षित हो जाता है। पद्मसिंह के अंत:करण में सेवा का-प्रेम का भाव परिपक्व हो गया था।

विट्ठलदास इस विषय में उनसे पृथक हो गए। उन्हें जन्म की वेश्याओं के सुधार पर विश्वास न था। सैयद शफकतअली भी, जो इसके जन्मदाता थे, उनसे कन्नी काट गए और कुंवर साहब को तो अपने साहित्य, संगीत और सत्संग से ही अवकाश न मिलता था, केवल साधु गजाधर ने इस कार्य में पद्मसिंह का हाथ बंटाया। उस सदुद्योगी पुरुष में सेवा का भाव पूर्ण रूप से उदय हो चुका था।

अड़तालीस

एक महीना बीत गया। सदन ने अपने इस नए धंधे की चर्चा घर में किसी से न की। वह नित्य सबेरे उठकर गंगा-स्नान के बहाने चला जाता। वहां से दस बजे घर आता। भोजन करके फिर चल देता और तब का गया-गया घड़ी रात गए, घर लौटता। अब उसकी नाव घाट पर की सब

नावों से अधिक सजी हुई, दर्शनीय थी। उस पर दो-तीन मोढ़े रखे रहते थे और एक जाजिम बिछी रहती थी। इसलिए शहर के कितने ही रसिक, विनोदी मनुष्य उस पर सैर किया करते थे। सदन किराए के विषय में खुद बातचीत न करता। यह काम उसका नौकर झींगुर मल्लाह किया करता था। वह स्वयं तो कभी तट पर बैठा रहता तो कभी नाव जा बैठता था। वह अपने को बहुत समझाता कि काम करने में क्या शरम? मैंने कोई बुरा काम तो नहीं किया है, किसी का गुलाम तो नहीं हूं, कोई आंखें तो नहीं दिखा सकता। लेकिन जब वह किसी भले आदमी को अपनी नाव की ओर आते देखता, तो आप-ही-आप उसके कदम पीछे हट जाते और लज्जा से आंखें झुक जातीं। वह एक जमींदार का पुत्र था और एक वकील का भतीजा। उच्च पद से उतरकर मल्लाह का उद्यम करने में उसे स्वभावत: लज्जा आती थी, जो तर्क से किसी भांति न हटती। इस संकोच से उसकी बहुत हानि होती थी। जिस काम के लिए वह एक रुपया ले सकता था, उसी के लिए उसे आधे में ही राजी होना पड़ता था। ऊंची दूकान फीके पकवान होने पर भी बाजार में श्रेष्ठ होती है। यहां तो पकवान भी अच्छे थे, केवल एक चतुर सजीले दूकानदार की कमी थी। सदन इस बात को समझता था, पर संकोचवश कुछ कह न सकता था। तिस पर भी डेढ़-दो रुपये नित्य मिल जाते थे और वह समय निकट आता जाता था, जब गंगा-तट पर उसका झोंपड़ा बनेगा और आबाद होगा। वह अब अपने बल-बूते पर खड़े होने के योग्य होता जाता था। इस विचार से उसके आत्मसम्मान को अतिशय आनंद होता था। वह बहुधा रात-की-रात इन्हीं अभिलाषाओं की कल्पना में जागता रहता।

इसी समय म्युनिसिपैलिटी ने वेश्याओं के लिए शहर से हटकर मकान बनवाने का निश्चय किया, लाला भगतराम को इसका ठीका मिला। नदी के इस पार ऐसी जमीन न मिल सकी, जहां वह पजावे लगाते और चूने के भट्ठे बनाते। इसलिए उन्होंने नदी पार जमीन ली थी और वहीं सामान तैयार करते थे। उस पार ईंटें, चूना आदि लाने के लिए उन्हें एक नाव की जरूरत हुई। नाव तय करने के लिए मल्लाहों के पास आए। सदन से भेंट हो गई। सदन ने अपनी नाव दिखाई, भगतराम ने उसे पसंद किया। झींगुर से मजूरी तय हुई, दो खेवे रोज लाने की बात ठहरी। भगतराम ने बयाना दिया और चले गए।

रुपये की चाट बुरी होती है। सदन अब वह उड़ाऊ, लुटाऊ युवक नहीं रहा। उसके सिर पर अब चिंताओं का बोझ है, कर्त्तव्य का ऋण है। वह इससे मुक्त होना चाहता है। उसकी निगाह एक-एक पैसे पर रहती है। उसे अब रुपये कमाने और घर बनवाने की धुन है। उस दिन वह घड़ी रात रहे, उठकर नदी किनारे चला आया और झींगुर को जगाकर नाव खुलवा दी। दिन निकलते-निकलते उस पार जा पहुंचा। लौटती बार उसने स्वयं डांड ले लिया और हंसते हुए दो-चार हाथ चलाए, लेकिन इतने से ही नाव की चाल बढ़ते देखकर उसने जोर-जोर से डांड़ चलाने शुरू कर दिए। नाव की गति दूनी हो गई। झींगुर पहले-पहल तो मुस्कराता रहा, लेकिन अब चकित हो गया।

आज से वह सदन का दबाव कुछ अधिक मानने लगा। उसे मालूम हो गया कि यह महाशय निरे मिट्टी के लौंदे नहीं हैं। काम पड़ने पर यह अकेले नाव को पार ले जा सकते हैं, और अब मेरा टर्राना उचित नहीं।

उस दिन दो खेवे हुए, दूसरे दिन एक ही हुआ। क्योंकि सदन को आने में देर हो गई। तीसरे दिन उसने नौ बजे रात को तीसरा खेवा पूरा किया, लेकिन पसीने से डूबा था। ऐसा थक

गया था कि घर तक आना पहाड़ हो गया। इसी प्रकार दो मास तक लगातार उसने काम किया और इसमें उसे अच्छा लाभ हुआ। उसने दो मल्लाह और रख लिए थे।

सदन अब मल्लाहों का नेता था। उसका झोंपड़ा तैयार हो गया था। भीतर एक तख्त था, दो पलंग, दो लैंप, कुछ मामूली बर्तन भी। एक कमरा बैठने का था, एक खाना पकाने का, एक सोने का। द्वार पर ईंटों का चबूतरा था। उसके इर्द-गिर्द गमले रखे हुए थे। दो गमलों में लताएं लगी हुई थीं, जो झोंपड़े के ऊपर चढ़ती जाती थीं। यह चबूतरा अब मल्लाहों का अड्डा था। वह बहुधा वहीं बैठे तमाखू पीते। सदन ने उनके साथ बड़ा उपकार किया था। अफसरों से लिखा-पढ़ी करके उन्हें आए दिन की बेगार से मुक्त करा दिया था। इस साहस के काम ने उसका सिक्का जमा दिया था। उसके पास अब कुछ रुपये भी जमा हो गए थे और वह मल्लाहों को बिना सूद के रुपये उधार देता था। अब उसे एक पैर-गाड़ी की फिक्र थी, शौकीन आदमियों के सैर के लिए वह एक सुंदर बजरा भी लेना चाहता था और हारमोनियम के लिए तो उसने पत्र डाल ही दिया। यह सब उस देवी के आगमन की तैयारियां थीं, जो एक क्षण के लिए भी उसके ध्यान से न उतरती थी।

सदन की अवस्था अब ऐसी थी कि वह गृहस्थी का बोझ उठा सके, लेकिन अपने चाचा की सम्मति के बिना वह शान्ता को लाने का साहस न कर सकता था। वह घर पर पद्मसिंह के साथ भोजन करने बैठता, तो निश्चय कर लेता कि आज इस विषय को छेड़कर तय कर लूंगा। पर उसका इरादा कभी पूरा न होता, उसके मुंह से बात ही न निकलती।

यद्यपि उसने पद्मसिंह से इस व्यवसाय की चर्चा न की थी, पर उन्हें लाला भगतराम से सब हाल मालूम हो गया था। वह सदन की उद्योगशीलता पर बहुत प्रसन्न थे। वह चाहते थे कि एक-दो नावें और ठीक कर ली जाएं और कारोबार बढ़ा लिया जाए। लेकिन जब सदन स्वयं कुछ नहीं कहता था, तो वह भी इस विषय में चुप रहना ही उचित समझते थे। वह पहले ही उसकी खातिर करते थे, अब कुछ आदर भी करने लगे और सुभद्रा तो उसे अपने लड़के के समान मानने लगी।

एक दिन, रात के समय सदन अपने झोंपड़े में बैठा हुआ नदी की तरफ देख रहा था। आज न जाने क्यों नाव के आने में देर हो रही थी। सामने लैंप जल रहा था। सदन के हाथ में एक समाचार-पत्र था, पर उसका ध्यान पढ़ने में न लगता था। नाव के न आने से उसे किसी अनिष्ट की शंका हो रही थी। उसने पत्र रख दिया और बाहर निकलकर तट पर आया। रेत पर चांदनी की सुनहरी चादर बिछी हुई थी और चांद की किरणें नदी के हिलते हुए जल पर ऐसी मालूम होती थीं, जैसे किसी झरने से निर्मल जल की धारा क्रमश: चौड़ी होती हुई निकलती है। झोपड़े के सामने चबूतरे पर कई मल्लाह बैठे हुए बातें कर रहे थे कि अकस्मात् सदन ने दो स्त्रियों को शहर की ओर से आते देखा। उनमें से एक ने मल्लाहों से पूछा—हमें उस पार जाना है, नाव ले चलोगे?

सदन ने शब्द पहचाने। यह सुमनबाई थी। उसके हृदय में एक गुदगुदी-सी हुई, आंखों में एक नशा-सा आ गया। लपककर चबूतरे के पास आया और सुमन से बोला—बाईजी, तुम यहां कहां?

सुमन ने ध्यान से सदन को देखा, मानो उसे पहचानती ही नहीं। उसके साथ वाली स्त्री ने घूंघट निकाल लिया और लालटेन के प्रकाश से कई पग हटकर अंधेरे में चली गई। सुमन

ने आश्चर्य से कहा—कौन? सदन?

मल्लाहों ने उठकर घेर लिया, लेकिन सदन ने कहा—तुम लोग इस समय यहां से चले जाओ। ये हमारे घर की स्त्रियां हैं, आज यहीं रहेंगी। इसके बाद वह सुमन से बोला—बाईजी, कुशल समाचार कहिए। क्या माजरा है?

सुमन—सब कुशल ही है, भाग्य में जो कुछ लिखा है, वही भोग रही हूं। आज का पत्र तुमने अभी न पढ़ा होगा। प्रभाकर राव ने न जाने क्या छाप दिया कि आश्रम में हलचल मच गई। हम दोनों बहनें वहां एक दिन भी और रह जातीं, तो आश्रम बिल्कुल खाली हो जाता। वहां से निकल आने में कुशल थी। अब इतनी कृपा करो कि हमें उस पार ले जाने के लिए एक नाव ठीक कर दो। वहां से हम इक्का करके मुगलसराय चली जाएंगी। अमोला के लिए कोई-न-कोई गाड़ी मिल ही जायगी। यहां से रात कोई गाड़ी नहीं जाती?

सदन—अब तो तुम अपने घर ही पहुंच गईं, अमोला क्यों जाओगी? तुम लोगों को कष्ट तो बहुत हुआ, पर इस समय तुम्हारे आने से मुझे जितना आनंद हुआ, यह वर्णन नहीं कर सकता। मैं स्वयं कई दिन से तुम्हारे पास आने का इरादा कर रहा था, लेकिन काम से छुट्टी ही नहीं मिलती। मैं तीन-चार महीने से मल्लाह का काम करने लगा हूं। यही तुम्हारा झोंपड़ा है, चलो अंदर चलो।

सुमन झोपड़े में चली गई, लेकिन शान्ता वहीं अंधेरे में चुपचाप सिर झुकाए रो रही थी। जब से उसने सदनसिंह के मुंह से वे बातें सुनी थीं, उस दुखिया ने रो-रोकर दिन काटे थे। उसे बार-बार अपने मान करने पर पछतावा होता था। वह सोचती, यदि मैं उस समय उनके पैरों पर गिर पड़ती, तो उन्हें मुझ पर अवश्य दया आ जाती। सदन की सूरत उसकी आंखों में फिरती और उसकी बातें उसके कानों में गूंजती। बातें कठोर थीं, लेकिन शान्ता को वह प्रेम-करुणा से भरी हुई प्रतीत होती थीं। उसने अपने मन को समझा लिया था कि यह सब मेरे कुदिन का फल है, सदन का कोई अपराध नहीं। वह वास्तव में विवश हैं। अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन करना उनका धर्म है। यह मेरी नीचता है कि मैं उन्हें धर्म के मार्ग से फेरना चाहती हूं। हा ! मैंने अपने स्वामी से मान किया ! मैंने अपने आराध्यदेव का निरादर किया, मैंने अपने कुटिल स्वार्थ के वश होकर उनका अपमान किया। ज्यों-ज्यों दिन बीतते थे, शान्ता की आत्मग्लानि बढ़ती थी। इस शोक, चिंता और विरह-पीड़ा से वह रमणी इस प्रकार सूख गई थी, जैसे जेठ महीने में नदी सूख जाती है।

सुमन झोंपड़े में चली गई, तो सदन धीरे-धीरे शान्ता के सामने आया और कांपते हुए स्वर से बोला—शान्ता !

यह कहते-कहते उसका गला रुंध गया।

शान्ता प्रेम से गद्‌गद हो गई। उसका प्रेम उस विरत दशा को पहुंच गया, जब वह संकुचित स्वार्थ से मुक्त हो जाता है।

उसने मन में कहा, जीवन का क्या भरोसा है? मालूम नहीं, जीती रहूं या न रहूं, इनके दर्शन फिर हों या न हों, एक बार इनके चरणों पर सिर रखकर रोने की अभिलाषा क्यों रह जाय? इसका इससे उत्तम और कौन-सा अवसर मिलेगा? स्वामी ! तुम एक बार अपने हाथों से उठाकर मेरे आंसू पोंछ दोगे, तो मेरा चित्त शांत हो जायगा, मेरा जन्म सफल हो जायगा। मैं जब तक जीऊंगी, इस सौभाग्य के स्मरण का आनंद उठाया करूंगी। मैं तो तुम्हारे दर्शनों की आशा ही

त्याग चुकी थी, किंतु जब ईश्वर ने यह दिन दिखा दिया, तब अपनी मनोकामना क्यों न पूरी कर लूं? जीवनरूपी मरुभूमि में यह वृक्ष मिल गया है, तो इसकी छांह में बैठकर क्यों न अपने दग्ध हृदय को शीतल कर लूं।

यह सोचकर शान्ता रोती हुई सदन के पैरों पर गिर पड़ी, किंतु मुरझाया हुआ फूल हवा का झोंका लगते ही बिखर गया। सदन झुका कि उसे उठाकर छाती से लगा ले, चिमटा ले, लेकिन शान्ता की दशा देखकर उसका हृदय विकल हो गया। जब उसने उसे पहले-पहल नदी के किनारे देखा था, तब वह सौंदर्य की एक नई कोमल कली थी, पर आज वह एक सूखी हुई पीली पत्ती थी, जो बसंत ऋतु में गिर पड़ी है।

सदन का हृदय नदी में चमकती हुई चन्द्र-किरणों के सदृश थरथराने लगा। उसने कांपते हुए हाथों से उस संज्ञाशून्य शरीर को उठा लिया। निराश अवस्था में उसने ईश्वर की शरण ली। रोते हुए बोला—प्रभो, मैंने बड़ा पाप किया है, मैंने एक कोमल संतप्त हृदय को बड़ी निर्दयता से कुचला है, पर इसका यह दंड असह्य है। इस अमूल्य रत्न को इतनी जल्दी मुझसे मत छीनो। तुम दयामय हो, मुझ पर दया करो।

शान्ता को छाती से लगाए हुए सदन झोंपड़ी में गया और उसे पलंग पर लिटाकर, शोकातुर स्वर से बोला—सुमन, देखो, यह कैसी हुई जाती है। मैं डॉक्टर के पास दौड़ा जाता हूं।

सुमन ने समीप आकर बहन को देखा। माथे पर पसीने की बूंदें आ गई थीं, आंखें पथराई हुईं। नाड़ी का कहीं पता नहीं। मुख वर्णहीन हो गया था। उसने तुरंत पंखा उठा लिया और झलने लगी। वह क्रोध जो शान्ता की दशा देख-देखकर महीनों से उसके दिल में जमा हो रहा था, फूट निकला। सदन की ओर तिरस्कारपूर्ण नेत्रों से देखकर बोली—यह तुम्हारे अत्याचार का फल है, यह तुम्हारी करनी है, तुम्हारे ही निर्दय हाथों ने इस फल को यों मसला है। तुमने अपने पैरों से इस पौधे को यों कुचला है। लो, अब तुम्हारा गला छूटा जाता है। सदन, जिस दिन से इस दुखिया ने तुम्हारी वह अभिमान भरी बातें सुनीं, इसके मुख पर हंसी नहीं आई, इसके आंसू कभी नहीं थमे। बहुत गला दबाने से दो-चार कौर खा लिया करती थी। और तुमने उसके साथ यह अत्याचार केवल इसलिए किया कि मैं उसकी बहन हूं, जिसके पैरों पर तुमने बरसों नाक रगड़ी है, जिसके तलुवे तुमने बरसों सहलाए हैं। जिसके कुटिल प्रेम में तुम महीनों मतवाले हुए रहते थे। उस समय भी तो तुम अपने मां-बाप के आज्ञाकारी पुत्र थे या कोई और थे? उस समय भी तो तुम वही उच्च कुल के ब्राह्मण थे या कोई और थे? तब तुम्हारे दुष्कर्मों से खानदान की नाक न कटती थी? आज तुम आकाश के देवता बने फिरते हो। अंधेरे में जूठा खाने पर तैयार, पर उजाले में निमंत्रण भी स्वीकार नहीं। यह निरी धूर्त्तता है, दगाबाजी है। जैसा तुमने इस दुखिया के साथ किया है, उसका फल तुम्हें ईश्वर देंगे। इसे जो कुछ भुगतना था, वह भुगत चुकी। आज न मरी, कल मर जाएगी, लेकिन तुम इसे याद करके रोओगे। कोई और स्त्री होती, तो तुम्हारी बातें सुनकर फिर तुम्हारी ओर आंख उठाकर न देखती, तुम्हें कोसती, लेकिन यह अबला सदा तुम्हारे नाम पर मरती रही। लाओ, थोड़ा ठंडा पानी।

सदन अपराधी की भांति सिर झुकाए ये बातें सुनता रहा। इससे उसका हृदय कुछ हल्का हुआ। सुमन ने यदि उसे गालियां दी होतीं, तो और भी बोध होता। वह अपने को इस तिरस्कार के सर्वथा योग्य समझता था।

उसने ठंडे पानी का कटोरा सुमन को दिया और स्वयं पंखा झलने लगा। सुमन ने शान्ता के मुंह पर पानी के कई छींटे दिए। इस पर जब शान्ता ने आंखें न खोलीं, तब सदन बोला—जाकर डॉक्टर को बुला लाऊं न?

सुमन—नहीं, घबराओ मत। ठंडक पहुंचते ही होश आ जाएगा। डाक्टर के पास इसकी दवा नहीं।

सदन को कुछ तसल्ली हुई, बोला—सुमन, चाहे तुम समझो कि मैं बात बना रहा हूं, लेकिन मैं तुमसे सत्य कहता हूं कि उसी मनहूस घड़ी से मेरी आत्मा को कभी शांति नहीं मिली। मैं बार-बार अपनी मूर्खता पर पछताता था। कई बार इरादा किया कि चलकर अपना अपराध क्षमा कराऊं, लेकिन यही विचार उठता कि किस बूते पर जाऊं? घरवालों से सहायता की कोई आशा न थी, और मुझे तो तुम जानती ही हो कि सदा कोतल घोड़ा बना रहा। बस, इसी चिंता में डूबा रहता था कि किसी प्रकार चार पैसे पैदा करूं और अपनी झोंपड़ी अलग बनाऊं। महीनों नौकरी की खोज में मारा-मारा फिरा, कहीं ठिकाना न लगा। अंत को मैंने गंगा-माता की शरण ली और अब ईश्वर की दया से मेरी नाव चल निकली है। अब मुझे किसी के सहारे या मदद की आवश्यकता नहीं है। यह झोंपड़ी बना ली है, और विचार है कि कुछ रुपये और आ जाएं, तो उस पार किसी गांव में एक मकान बनवा लूं। क्योंकि, इनकी तबीयत कुछ संभलती मालूम होती है?

सुमन का क्रोध शांत हुआ। बोली—हां, अब कोई भय नहीं है, केवल मूर्च्छा थी। आंखें बंद हो गईं और होंठों का नीलापन जाता रहा।

सदन को ऐसा आनंद हुआ कि यदि वहां ईश्वर की कोई मूर्ति होती, तो उसके पैरों पर सिर रख देता। बोला—सुमन, तुमने मेरे साथ जो उपकार किया है, उसको मैं सदा याद करता रहूंगा। अगर और कोई बात हो जाती, तो इस लाश के साथ मेरी लाश भी निकलती।

सुमन—यह कैसी बात मुंह से निकालते हो। परमात्मा चाहेंगे तो यह बिना दवा के अच्छी हो जाएगी और तुम दोनों बहुत दिनों तक सुख से रहोगे। तुम्हीं उसकी दवा हो। तुम्हारा प्रेम ही उसका जीवन है, तुम्हें पाकर अब उसे किसी वस्तु की लालसा नहीं है। लेकिन अगर तुमने भूलकर भी उसका अनादर या अपमान किया, तो फिर उसकी यही दशा हो जाएगी और तुम्हें हाथ मलना पड़ेगा।

इतने में शान्ता ने करवट बदली और पानी मांगा। सुमन ने पानी का गिलास उसके मुंह से लगा दिया। उसने दो-तीन घूंट पीया और तब फिर चारपाई पर लेट गई। वह विस्मित नेत्रों से इधर-उधर ताक रही थी, मानो उसे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं है! वह चौंककर उठ बैठी और सुमन की ओर ताकती हुई बोली—क्यों, यही मेरा घर है न? हां-हां, यही है, और वह कहां हैं मेरे स्वामी, मेरे जीवन के आधार! उन्हें बुलाओ, आकर मुझे दर्शन दें, बहुत जलाया है, इस दाह को बुझाएं। मैं उनसे कुछ पूछूंगी। क्या नहीं आते? तो लो, मैं ही चलती हूं। आज मेरी उनसे तकरार होगी। नहीं, मैं उनसे तकरार न करूंगी, केवल यही कहूंगी कि अब मुझे छोड़कर कहीं मत जाओ। चाहे गले का हार बनाकर रखो, चाहे पैरों की बेड़ियां बनाकर रखो, पर अपने साथ रखो। वियोग-दुख अब नहीं सहा जाता। मैं जानती हूं कि तुम मुझसे प्रेम करते हो। अच्छा, न सही, तुम मुझे नहीं चाहते, मैं तो तुम्हें चाहती हूं। अच्छा, यह भी न सही, मैं भी तुम्हें नहीं चाहती, मेरा विवाह तो तुमसे हुआ है, नहीं, नहीं हुआ! अच्छा कुछ न सही, मैं तुमसे विवाह

नहीं करती, लेकिन मैं तुम्हारे साथ रहूंगी और अगर तुमने आंख फेरी तो अच्छा न होगा। हां, अच्छा न होगा, मैं संसार में रोने के लिए नहीं आई हूं। प्यारे, रिसाओ मत। यही होगा, दो-चार आदमी हंसेंगे, ताने देंगे। मेरी खातिर उसे सह लेना। क्या मां-बाप छोड़ देंगे, कैसी बात कहते हो? मां-बाप अपने लड़के को नहीं छोड़ते। तुम देख लेना, मैं उन्हें खींच लाऊंगी, मैं अपनी सास के पैर धो-धो पीऊंगी, अपने ससुर के पैर दबाऊंगी, क्या उन्हें मुझ पर दया न आएगी? यह कहते-कहते शान्ता की आंखें फिर बंद हो गईं।

सुमन ने सदन से कहा—अब सो रही है, सोने दो। एक नींद सो लेगी, तो उसका जी संभल जाएगा। रात अधिक बीत गई है, अब तुम भी घर जाओ, शर्माजी बैठे घबराते होंगे।

सदन—आज न जाऊंगा।

सुमन—नहीं-नहीं, वे लोग घबराएंगे। शान्ता अब अच्छी है, देखो, कैसे सुख से सोती है। इतने दिनों में आज ही मैंने उसे यों सोते देखा है। सदन नहीं माना, वहीं बरामदे में आकर चौकी पर लेट रहा और सोचने लगा।

उनचास

बाबू विट्ठलदास न्यायप्रिय सरल मनुष्य थे, जिधर न्याय खींच ले जाता, उधर चले जाते थे। इसमें लेश-मात्र भी संकोच न होता था। जब उन्होंने पद्मसिंह को न्यायपथ से हटते देखा, तो उनका साथ छोड़ दिया और कई महीने तक उनके घर न आए, लेकिन प्रभाकर राव ने जब आश्रम पर आक्षेप करना शुरू किया और सुमनबाई के संबंध में कुछ गुप्त रहस्यों का उल्लेख किया, तो विट्ठलदास का उनसे भी बिगाड़ हो गया। अब सारे शहर में उनका कोई मित्र न था। अब उन्हें अनुभव हो रहा था कि ऐसी संस्था का अध्यक्ष होकर, जिसका अस्तित्व दूसरे की सहायता और सहानुभूति पर निर्भर है, मेरे लिए किसी पक्ष को ग्रहण करना अत्यंत अनुचित है। उन्हें अनुभव हो रहा था कि आश्रम की कुशल इसी में है कि मैं सबसे पृथक् रहते हुए भी सबसे मिला रहूं। यही मार्ग मेरे लिए सबसे उत्तम है। संध्या का समय था। वे बैठे हुए सोच रहे थे कि प्रभाकर राव के आक्षेपों का क्या उत्तर दूं। बातें कुछ सच्ची हैं, सुमन वास्तव में वेश्या थी, मैं यह जानते हुए उसे आश्रम में लाया। मैंने प्रबंधकारिणी सभा में इसकी कोई चर्चा नहीं की, इसका कोई प्रस्ताव नहीं किया। मैंने वास्तव में आश्रम को अपनी निज की संस्था समझा। मेरा उद्देश्य चाहे कितना ही प्रशंसनीय हो, पर उसे गुप्त रखना सर्वथा अनुचित था।

विट्ठलदास अभी कुछ निश्चय नहीं करने पाए थे कि आश्रम की अध्यापिका ने आकर कहा—महाशय, आनंदी, राजकुमारी और गौरी घर जाने को तैयार बैठी हैं। मैंने कितना ही समझाया, पर वे मानती ही नहीं। विट्ठलदास ने झुंझलाकर कहा—कह दो, चली जाएं। मुझे इसका डर नहीं है। उनके लिए मैं सुमन और शान्ता को नहीं निकाल सकता।

अध्यापिका चली गई और विट्ठलदास फिर सोचने लगे। यह स्त्रियां अपने को क्या समझती हैं? क्या सुमन ऐसी गई-बीती है कि उनके साथ रह भी नहीं सकती? उनका कहना

है कि आश्रम बदनाम हो रहा है और यहां रहने में हमारी बदनामी है। हां, जरूर बदनामी है। जाओ, मैं तुम्हें नहीं रोकता।

इसी समय डाकिया चिट्ठियां लेकर आया। विट्ठलदास के नाम पांच चिट्ठियां थीं।

एक में लिखा था कि मैं अपनी कन्या (विद्यावती) को आश्रम में रखना उचित नहीं समझता। मैं उसे लेने आऊंगा। दूसरे महाशय ने धमकाया था कि अगर वेश्याओं को आश्रम से न निकाला जाएगा, तो वह चंदा देना बंद कर देंगे। तीसरे पत्र का भी यही आशय था। शेष दोनों पत्रों को विट्ठलदास ने नहीं खोला। इन धमकियों ने उन्हें भयभीत नहीं किया, बल्कि हठ पर दृढ़ कर दिया। ये लोग समझते होंगे, मैं इनकी गीदड़-भभकियों से कांपने लगूंगा ! यह नहीं समझते कि विट्ठलदास किसी की परवाह नहीं करता। आश्रम भले ही टूट जाए, शान्ता और सुमन को मैं कदापि अलग नहीं कर सकता। विट्ठलदास के अहंकार ने उनकी सद्बुद्धि को परास्त कर दिया। सदुत्साह और दुस्साहस दोनों का स्रोत एक ही है। भेद केवल उनके व्यवहार में है।

सुमन देख रही थी कि मेरे ही कारण यह भगदड़ मची हुई है। उसे दुख हो रहा था कि मैं यहां क्यों आई? उसने कितनी श्रद्धा से इन विधवाओं की सेवा की थी, पर उसका यह फल निकला ! वह जानती थी, विट्ठलदास कभी उसे वहां से न जाने देंगे, इसलिए उसने निश्चय किया कि क्यों न मैं चुपके से चली जाऊं? तीन स्त्रियां चली गई थीं, दो-तीन महिलाएं तैयारियां कर रही थीं, और कई अन्य देवियों ने अपने-अपने घरों पर पत्र भेजे थे। केवल वही चुपचाप बैठी थीं, जिनका कहीं ठिकाना नहीं था। पर वह भी सुमन से मुंह चुराती फिरती थीं। सुमन यह अपमान न सह सकी। उसने शान्ता से सलाह की। शान्ता बड़ी दुविध
ा में पड़ी। पद्मसिंह की आज्ञा के बिना वह आश्रम से निकलना अनुचित समझती थी। केवल यही नहीं कि आशा का पतला सूत उसे यहां बांधे हुए था, बल्कि इसे वह धर्म का बंधन समझती थी। वह सोचती थी, जब मैंने अपना सर्वस्व पद्मसिंह के हाथों में रख दिया, तब अब स्वेच्छा-पथ पर चलने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। लेकिन जब सुमन ने निश्चित रूप से कह दिया कि तुम रहती हो तो रहो, पर मैं किसी भांति यहां न रहूंगी, तो शान्ता को वहां रहना असंभव-सा प्रतीत होने लगा। जंगल में भटकते हुए उस मनुष्य की भांति, जो किसी दूसरे को देखकर उसके साथ इसलिए हो लेता है कि एक से दो हो जाएंगे, शान्ता अपनी बहन के साथ चलने को तैयार हो गई।

सुमन ने पूछा—और जो पद्मसिंह नाराज हों?

शान्ता—उन्हें एक पत्र द्वारा समाचार लिख दूंगी।

सुमन—और जो सदनसिंह बिगड़ें?

शान्ता—जो दंड देंगे, सह लूंगी।

सुमन—खूब सोच लो, ऐसा न हो कि पीछे पछताना पड़े।

शान्ता—रहना तो मुझे यहीं चाहिए, पर तुम्हारे बिना मुझसे रहा न जाएगा। हां, यह बता दो कि कहां चलोगी?

सुमन—तुम्हें अमोला पहुंचा दूंगी।

शान्ता—और तुम?

सुमन—मेरे नारायण मालिक हैं। कहीं तीर्थ-यात्रा करने चली जाऊंगी।

दोनों बहनों में बहुत देर तक बातें हुईं। फिर दोनों मिलकर रोईं। ज्योंही आज आठ बजे और विट्ठलदास भोजन करने के लिए अपने घर गए, दोनों बहनें सबकी आंख बचाकर चल खड़ी हुईं।

रात भर किसी को खबर न हुई। सबेरे चौकीदार ने आकर विट्ठलदास से यह समाचार कहा। वह घबराए और लपके हुए सुमन के कमरे में गए। सब चीजें पड़ी हुई थीं, केवल दोनों बहनों का पता न था। बेचारे बड़ी चिंता में पड़े। पद्मसिंह को कैसे मुंह दिखाऊंगा? उन्हें उस समय सुमन पर क्रोध आया। यह सब उसी की करतूत है, वही शान्ता को बहकाकर ले गई है। एकाएक उन्हें सुमन की चारपाई पर एक पत्र पड़ा हुआ दिखाई दिया। लपककर उठा लिया और पढ़ने लगे। यह पत्र सुमन ने चलते समय लिखकर रख दिया था। इसे पढ़कर विट्ठलदास को कुछ धैर्य हुआ। लेकिन इसके साथ ही उन्हें यह दुख हुआ कि सुमन के कारण मुझे नीचा देखना पड़ा। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि मैं अपने धमकी देने वालों को नीचा दिखाऊंगा, पर यह अवसर उनके हाथ से निकल गया। अब लोग यही समझेंगे कि मैं डर गया। यह सोचकर उन्हें बहुत दुख हुआ।

आखिर वह कमरे से निकले। दरवाजे बंद किए और सीधे पद्मसिंह के घर पहुंचे।

शर्माजी ने यह समाचार सुना तो सन्नाटे में आ गए; बोले—अब क्या होगा?

विट्ठलदास—वे अमोला पहुंच गई होंगी।

शर्माजी—हां, संभव है।

विट्ठलदास—शान्ता इतनी दूर का सफर तो मजे में कर सकती है।

शर्माजी—हां, ऐसी नासमझ तो नहीं है।

विट्ठलदास—सुमन तो अमोला गई न होगी?

शर्माजी—कौन जाने, दोनों कहीं डूब मरी हों।

विट्ठलदास—एक तार भेजकर पूछ क्यों न लीजिए।

शर्माजी—कौन मुंह लेकर पूछूं? जब मुझसे इतना भी न हो सका कि शान्ता की रक्षा करता, तो अब उसके विषय में कुछ पूछ-ताछ करना मेरे लिए लज्जाजनक है। मुझे आपके ऊपर विश्वास था। अगर जानता होता कि आप ऐसी लापरवाही करेंगे, तो उसे मैंने अपने ही घर में रखा होता।

विट्ठलदास—आप तो ऐसी बातें कर रहे हैं, मानो मैंने जान-बूझकर उन्हें निकाल दिया हो।

शर्माजी—आप उन्हें तसल्ली देते रहते, तो वह कभी न जातीं। आपने मुझसे भी अब कहा है, जब अवसर हाथ से निकल गया।

विट्ठलदास—आप सारी जिम्मेदारी मुझी पर डालना चाहते हैं?

पद्मसिंह—और किस पर डालूं? आश्रम के संरक्षक आप ही हैं या कोई और?

विट्ठलदास—शान्ता को वहां रहते तीन महीने से अधिक हो गए, आप कभी भूलकर भी आश्रम की ओर गए? अगर आप कभी-कभी वहां जाकर उसका कुशल समाचार पूछते रहते, तो उसे धैर्य रहता। जब आपने उसकी कभी बात तक न पूछी, तो वह किस आधार पर वहां पड़ी रहती? मैं अपने दायित्व को स्वीकार करता हूं, पर आप भी दोष से नहीं बच सकते।

पद्मसिंह आजकल विट्ठलदास से चिढ़े हुए थे। उन्होंने उन्हीं के अनुरोध से वेश्या-सुधार के काम में हाथ डाला था, पर अंत में जब काम करने का अवसर पड़ा तो वह साफ निकल गए। उधर विट्ठलदास भी वेश्याओं के प्रति उनकी सहानुभूति देखकर उन्हें संदिग्ध दृष्टि से देखते थे। वह इस समय अपने-अपने हृदय की बात न कहकर एक-दूसरे पर दोषारोपण करने की चेष्टा कर रहे थे। पद्मसिंह उन्हें खूब आड़े हाथों लेना चाहते थे, पर यह प्रत्युत्तर पाकर उन्हें चुप हो जाना पड़ा। बोले-हां, इतना दोष मेरा अवश्य है।

विट्ठलदास-नहीं, आपको दोष देना मेरा आशय नहीं है। दोष सब मेरा ही है। आपने जब उन्हें मेरे सुपुर्द कर दिया, तो आपका निश्चिंत हो जाना स्वाभाविक ही था।

शर्माजी-नहीं, वास्तव में यह सब मेरी कायरता और आलस्य का फल है। आप उन्हें जबर्दस्ती नहीं रोक सकते थे।

पद्मसिंह ने अपना दोष स्वीकार करके बाजी पलट दी थी। हम आप झुककर दूसरे को झुका सकते हैं, पर तनकर किसी को झुकाना कठिन है।

विट्ठलदास-शायद सदनसिंह को कुछ मालूम हो। जरा उन्हें बुलाइए।

शर्माजी-वह तो रात से ही गायब है। उसने गंगा के किनारे एक झोंपड़ा बनवा लिया है, कई मल्लाह लगा लिए हैं और एक नाव चलाता है। शायद रात वहीं रह गया।

विट्ठलदास-संभव है, दोनों बहनें वहीं पहुंच गई हों। कहिए, तो जाऊं?

शर्माजी-अजी नहीं, आप किस भ्रम में हैं। वह इतना लिबरल नहीं है। उनके साये से भागता है।

अकस्मात् सदन ने उनके कमरे में प्रवेश किया। पद्मसिंह ने पूछा-तुम रात कहां रह गए? सारी रात तुम्हारी राह देखी।

सदनसिंह ने धरती की ओर ताकते हुए कहा-मैं स्वयं लज्जित हूं। ऐसा काम पड़ गया कि मुझे विवश होकर रुकना पड़ा। इतना समय भी न मिला कि आकर कह जाता। मैंने आपसे शरम के मारे कभी चर्चा नहीं की, लेकिन इधर कई महीने से मैंने एक नाव चलाना शुरू किया है। वहीं नदी के किनारे एक झोंपड़ा बनवा लिया है। मेरा विचार है कि इस काम को जमकर करूं। इसलिए आपसे उस झोंपड़े में रहने की आज्ञा चाहता हूं।

शर्माजी-इसकी चर्चा तो लाला भगतराम ने एक बार मुझसे की थी, लेकिन खेद यह है कि तुमने अब तक मुझसे इसे छिपाया, नहीं तो मैं भी कुछ सहायता करता। खैर, मैं इसे बुरा नहीं समझता, बल्कि तुम्हें इस अवस्था में देखकर मुझे बड़ा आनंद हो रहा है। लेकिन मैं यह कभी न मानूंगा कि तुम अपना घर रहते हुए अपनी हांड़ी अलग चढ़ाओ। क्या एक नाव का और प्रबंध हो, तो अधिक लाभ हो सकता है?

सदन-जी हां, मैं स्वयं इसी फिक्र में हूं। लेकिन इसके लिए मेरा घाट पर रहना जरूरी है।

शर्माजी-भाई, यह शर्त तुम बुरी लगाते हो। शहर में रहकर तुम मुझसे अलग रहो, यह मुझे पसंद नहीं। इसमें चाहे तुम्हें कुछ हानि भी हो, लेकिन मैं न मानूंगा।

सदन-नहीं चाचा, आप मेरी यह प्रार्थना स्वीकार कीजिए। मैं बहुत मजबूर होकर आपसे यह कह रहा हूं।

शर्माजी-ऐसी क्या बात है, जो तुम्हें मजबूर करती है? तुम्हें जो संकोच हो, वह

साफ-साफ क्यों नहीं कहते?

सदन–मेरे इस घर में रहने से आपकी बदनामी होगी। मैंने अब अपने उस कर्त्तव्य का पालन करने का संकल्प कर लिया है, जिसे मैं कुछ दिनों तक अपने अज्ञान और कुछ समय तक अपनी कायरता और निंदा के भय से टालता आता था। मैं आपका लड़का हूं। जब मुझे कोई कष्ट होगा, तो आपका आश्रय लूंगा, कोई जरूरत पड़ेगी, तो आपको सुनाऊंगा, लेकिन रहूंगा अलग और मुझे विश्वास है कि आप मेरे इस प्रस्ताव को पसंद करेंगे।

विट्ठलदास बात की तह तक पहुंच गए। पूछा–कल सुमन और शान्ता से तुम्हारी मुलाकात नहीं हुई?

सदन के चेहरे पर लज्जा की लालिमा छा गई, जैसे किसी रमणी के मुख पर से घूंघट हट जाए। दबी जबान से बोला–जी हां।

पद्मसिंह बड़े धर्म-संकट में पड़े। न 'हां' कह सकते थे, न 'नहीं' कहते बनता था। अब तक वह शान्ता के संबंध में अपने को निर्दोष समझते थे। उन्होंने इस अन्याय का सारा भाग अपने भाई के सिर डाला था और सदन तो उनके विचार में काठ का पुलता था। लेकिन अब इस जाल में फंसकर वह भाग निकलने की चेष्टा करते थे। संसार का भय तो उन्हें नहीं था, भय था कि कहीं भैया यह न समझ लें कि यह सब मेरे सहारे से हुआ है, मैंने ही सदन को बिगाड़ा है। कहीं यह संदेह उनके मन में उत्पन्न हो गया, तो फिर वह कभी मुझे क्षमा न करेंगे।

पद्मसिंह कई मिनट तक इसी उलझन में पड़े रहे। अंत में वह बोले–सदन, यह समस्या इतनी कठिन है कि मैं अपने भरोसे पर कुछ नहीं कर सकता। भैया की राय लिए बिना 'हां' या 'नहीं' कैसे कहूं? तुम मेरे सिद्धांत को जानते हो। मैं तुम्हारी प्रशंसा करता हूं और प्रसन्न हूं कि ईश्वर ने तुम्हें सद्बुद्धि दी। लेकिन मैं भाई साहब की इच्छा को सर्वोपरि समझता हूं। यह हो सकता है कि दोनों बहनों के अलग रहने का प्रबंध कर दिया जाए जिसमें उन्हें कोई कष्ट न हो। बस, यहीं तक। इसके आगे मेरी कुछ सामर्थ्य नहीं है। भाई साहब की जो इच्छा हो, वही करो।

सदन–क्या आपको मालूम नहीं कि वह क्या उत्तर देंगे?

पद्मसिंह–हां, यह भी मालूम है।

सदन–तो उनसे पूछना व्यर्थ है। माता-पिता की आज्ञा से मैं अपनी जान दे सकता हूं, जो उन्हीं की दी हुई है, लेकिन किसी निरपराध की गर्दन पर तलवार नहीं चला सकता।

पद्मसिंह–तुम्हें इसमें क्या आपत्ति है, कि दोनों बहनें एक अलग मकान में ठहरा दी जाएं?

सदन ने गर्म होकर कहा–ऐसा तो मैं तब करूंगा, जब मुझे छिपाना हो। मैं कोई पाप करने नहीं जा रहा हूं, जो उसे छिपाऊं? वह मेरे जीवन का परम कर्त्तव्य है, उसे गुप्त रखने की आवश्यकता नहीं है। अब वह विवाह के जो संस्कार नहीं पूरे हुए हैं, कल गंगा के किनारे पूरे किए जाएंगे। यदि आप वहां आने की कृपा करेंगे, तो मैं अपना सौभाग्य समझूंगा, नहीं तो ईश्वर के दरबार में गवाहों के बिना भी प्रतिज्ञा हो जाती है।

यह कहता हुआ सदन उठा और घर में चला गया। सुभद्रा ने कहा–वाह, खूब गायब होते हो। सारी रात जी लगा रहा। कहां रह गए थे?

सदन ने रात का वृत्तांत चाची से कहा। चाची से बातचीत करने में उसे वह झिझक न होती थी, जो शर्माजी से होती थी। सुभद्रा ने उसके साहस की बड़ी प्रशंसा की, बोली–मां-बाप के डर से कोई अपनी ब्याहता को थोड़े ही छोड़ देता है। दुनिया हंसेगी तो हंसा करे। उसके डर से अपने घर के प्राणी की जान ले लें? तुम्हारी अम्मां से डरती हूं, नहीं तो उसे यहीं रखती।

सदन ने कहा–मुझे अम्मां-दादा की परवाह नहीं है।

सुभद्रा–बहुत परवाह तो की। इतने दिनों तक बेचारी को घुला-घुला के मार डाला। कोई दूसरा लड़का होता, तो पहले दिन ही फटकार देता। तुम्हीं हो कि इतना सहते हो।

सुभद्रा, यही बातें यदि तुमने पवित्र भाव से कहीं होतीं, तो हम तुम्हारा कितना आदर करते ! किंतु तुम इस समय ईर्ष्या-द्वेष के वश में हो। तुम सदन को उभारकर अपनी जेठानी को नीचा दिखाना चाहती हो। तुम एक माता के पवित्र हृदय पर आघात करके उसका आनंद उठा रही हो।

सदन के चले जाने पर विट्ठलदास ने पद्मसिंह से कहा–यह तो आपके मन की बात हुई। आप इतना आगा-पीछा क्यों करते हैं? शर्माजी ने उत्तर नहीं दिया।

विट्ठलदास फिर बोले–यह प्रस्ताव आपको स्वयं करना चाहिए था, लेकिन आप अब उसे स्वीकार करने में संकोच कर रहे हैं।

शर्माजी ने इसका भी उत्तर नहीं दिया।

विट्ठलदास–अगर वह अपनी स्त्री के साथ अलग रहे तो क्या हानि है? आप न अपने साथ रखेंगे, न अलग रहने देंगे, यह कौन-सी नीति है?

पद्मसिंह ने व्यंग्य भाव से कहा–भाई साहब, जब अपने ऊपर पड़ती है, तभी आदमी जानता है। जैसे आप मुझे राह दिखा रहे हैं, इसी प्रकार मैं भी दूसरों को राह दिखाता रहता हूं। आप भी कभी वेश्याओं का उद्धार करने के लिए कैसी लंबी-चौड़ी बातें करते थे, लेकिन जब काम का समय आया, तो कन्नी क़ाट गए। इसी तरह दूसरों को भी समझ लीजिए। मैं सब कुछ कर सकता हूं, पर अपने भाई को नाराज नहीं कर सकता। मुझे कोई सिद्धांत इतना प्यारा नहीं है, जो मैं उनकी इच्छा पर न्योछावर न कर सकूं।

विट्ठलदास–मैंने आपसे यह कभी नहीं कहा कि जन्म की वेश्याओं को देवियां बना दूंगा। क्या आप समझते हैं कि उसी स्त्री में, जो अपने घर वालों के अन्याय या दुर्जनों के बहकाने से पतित हो जाती है और जन्म की वेश्याओं में कोई अंतर नहीं है? मेरे विचार में उनमें उतना ही अंतर है, जितना साध्य और असाध्य रोग में है। जो आग अभी लगी है और अंदर तक नहीं पहुंचने पाई, उसे आप शांत कर सकते हैं, लेकिन ज्वालामुखी पर्वत को शांत करने की चेष्टा पागल करे तो करे, बुद्धिमान् कभी नहीं कर सकता।

शर्माजी–कम-से-कम आपको मेरी सहायता तो करनी चाहिए थी। आप अगर एक घंटे के लिए मेरे साथ दालमंडी चलें, तो आपको मालूम हो जायगा कि जिसे आप सब ज्वालामुखी पर्वत समझ बैठे हैं, वह केवल बुझी हुई आग का ढेर है। अच्छे और बुरे आदमी सब जगह होते हैं। वेश्याएं भी इस नियम से बाहर नहीं हैं। आपको यह देखकर आश्चर्य होगा कि उनमें कितनी धार्मिक श्रद्धा, पाप-जीवन से कितनी घृणा, अपने जीवनोद्धार की कितनी अभिलाषा है। मुझे स्वयं इस पर आश्चर्य होता है। उन्हें केवल एक सहारे की आवश्यकता है, जिसे पकड़कर वह बाहर निकल आएं। पहले तो वह मुझसे बात तक

न करती थीं, लेकिन जब मैंने उन्हें समझाया कि मैंने वह प्रस्ताव तुम्हारे उपकार के लिए किया है, जिससे तुम दुराचारियों, दुष्टों तथा कुमार्गियों की पहुंच से बाहर रह सको, तो उन्हें मुझ पर कुछ-कुछ विश्वास होने लगा। नाम तो न बताऊंगा, लेकिन कई धनी वेश्याएं धन से मेरी सहायता करने को तैयार हैं। कई अपनी लड़कियों का विवाह करना चाहती हैं। लेकिन अभी उन औरतों की संख्या बहुत है, जो भोग-विलास के इस जीवन को छोड़ना नहीं चाहती हैं। मुझे आशा है कि स्वामी गजानन्द के उपदेश का कुछ-न-कुछ फल अवश्य होगा। खेद यही है कि कोई मेरी सहायता करने वाला नहीं है। हां, मजाक उड़ाने वाले ढेरों पड़े हैं। इस समय एक ऐसे अनाथालय की आवश्यकता है, जहां वेश्याओं की लड़कियां रखी जा सकें और उनकी शिक्षा का उत्तम प्रबंध हो। पर मेरी कौन सुनता है?

विट्ठलदास ने ये बातें बड़े ध्यान से सुनीं। पद्मसिंह ने जो कुछ कहा था, वह उनका अनुभव था, और अनुभवपूर्ण बातें सदैव विश्वासोत्पादक हुआ करती हैं। विट्ठलदास को ज्ञात होने लगा कि मैं जिस कार्य को असाध्य समझता था, वह वास्तव में ऐसा नहीं है। बोले—अनिरुद्धसिंह से आपने इस विषय में कुछ नहीं कहा?

शर्माजी—वहां लच्छेदार बातों और तीव्र समालोचनाओं के सिवा और क्या रखा है?

पचास

सदनसिंह का विवाह संस्कार हो गया। झोंपड़ा खूब सजाया गया था। वही मंडप का काम दे रहा था, लेकिन कोई भीड़-भाड़ न थी।

पद्मसिंह उस दिन घर चले गए और मदनसिंह से सब समाचार कहा। वह यह सुनते ही आग हो गए, बोले—मैं उस छोकरे का सिर काट लूंगा, वह अपने को समझता क्या है? भाभी ने कहा—मैं आज ही जाती हूं। उसे समझाकर अपने साथ लिवा लाऊंगी। अभी नादान लड़का है। उस कुटनी सुमन की बातों में आ गया है। मेरा कहना वह कभी न टालेगा।

लेकिन मदनसिंह ने भामा को डांटा और धमकाकर कहा—अगर तुमने उधर जाने का नाम लिया, तो मैं अपना और तुम्हारा गला एक साथ घोंट दूंगा। वह आग में कूदता है, कूदने दो। ऐसा दूध पीता नादान बच्चा नहीं है। यह सब उसकी जिद है। बच्चू को भीख मंगाकर न छोड़ूं तो कहना। सोचते होंगे, दादा मर जाएंगे तो आनंद करूंगा। मुंह धो रखे, यह कोई मौरूसी जायदाद नहीं है। यह मेरी अपनी कमाई है। सबकी-सब कृष्णार्पण कर दूंगा। एक फूटी कौड़ी तो मिलेगी नहीं।

गांव में चारों ओर बतकहाव होने लगा। लाला बैजनाथ को निश्चय हो गया कि संसार से धर्म उठ गया। जब लोग ऐसे-ऐसे नीच कर्म करने लगे, तो धर्म कहां रहा? न हुई नवाबी, नहीं तो आज बच्चू की धज्जियां उड़ जातीं। अब देखें, कौन मुंह लेकर गांव में आते हैं?

पद्मसिंह रात को बहुत देर तक भाई के साथ बैठे रहे, लेकिन ज्योंही वह सदन का कुछ जिक्र छेड़ते, मदनसिंह उनकी ओर ऐसी आग्नेय दृष्टि से देखते कि उन्हें बोलने की हिम्मत न पड़ती। अंत में जब वह सोने चले, तो पद्मसिंह ने हताश होकर कहा—भैया, सदन आपसे

अलग रहे, तब भी आपका लड़का ही कहलाएगा। वह जो कुछ नेक-बद करेगा, उसकी बदनामी हम सब पर आएगी। जो लोग इस अवस्था को भली-भांति जानते हैं, वह चाहे हम लोगों को निर्दोष समझें, लेकिन जनता सदन में और हममें कोई भेद नहीं कर सकती, तो इससे क्या फायदा कि सांप भी मरे और लाठी भी टूट जाए। एक ओर दो बुराइयां हैं—बदनामी भी होती है और लड़का भी हाथ से जाता है। दूसरी ओर एक ही बुराई है, बदनामी होगी, लेकिन लड़का अपने हाथ में रहेगा। इसलिए मुझे तो यही उचित जान पड़ता है कि हम लोग सदन को समझाएं और यदि वह किसी तरह न माने तो...

मदनसिंह ने बात काटकर कहा—तो उस चुड़ैल से उसका विवाह ठान दें? क्यों, यही न कहना चाहते हो? यह मुझसे न होगा। एक बार नहीं, हजार बार नहीं।

यह कहकर वह चुप हो गए। एक क्षण के बाद पद्मसिंह को लांछित कर बोले—आश्चर्य यह है कि यह सब तुम्हारे सामने हुआ और तुम्हें जरा भी खबर न हुई। उसने नाव, झोंपड़ा बनाया, दोनों चुड़ैलों से सांठ-गांठ की और तुम आंखें बंद किए बैठे रहे। मैंने तो उसे तुम्हारे ही भरोसे भेजा था। यह क्या जानता था कि तुम कान में तेल डाले बैठे रहते हो। अगर तुमने जरा भी चतुराई से काम लिया होता, तो यह नौबत न आती। तुमने इन बातों की सूचना तक मुझे न दी, नहीं तो मैं स्वयं जाकर उसे किसी उपाय से बचा लाता। अब जब सारी गोटियां पिट गईं, सारा खेल बिगड़ गया, तो चले हो वहां से मुझसे सलाह लेने। मैं साफ-साफ कहता हूं कि तुम्हारी आनाकानी से मुझे तुम्हारे ऊपर भी संदेह होता है। तुमने जान-बूझकर उसे आग में गिरने दिया। मैंने तुम्हारे साथ बहुत बुराइयां की थीं, उनका तुमने बदला लिया। खैर, कल प्रात:काल एक दानपत्र लिख दो। तीन पाई जो मौरूसी ज़मीन है, उसे छोड़कर मैं अपनी सब जायदाद कृष्णार्पण करता हूं, यहां न लिख सको तो वहां से लिखकर भेज देना। मैं दस्तखत कर दूंगा और उसकी रजिस्ट्री हो जाएगी।

यह कहकर मदनसिंह सोने चले गए। लेकिन पद्मसिंह के मर्म-स्थान पर ऐसा वार कर गए कि वह रात-भर तड़पते रहे। जिस अपराध से बचने के लिए उन्होंने अपने सिद्धांतों की भी परवाह न की और अपने सहवर्गियों में बदनाम हुए, वह अपराध लग ही गया। इतना ही नहीं, भाई के हृदय में उनकी ओर से मैल पड़ गई। अब उन्हें अपनी भूल दिखाई दे रही थी। नि:संदेह अगर उन्होंने बुद्धिमानी से काम लिया होता, तो यह नौबत न आती। लेकिन इस वेदना में इस विचार से कुछ संतोष होता था कि जो कुछ हुआ सो हुआ, एक अबला का उद्धार तो हो गया।

प्रात:काल जब वह घर से चलने लगे, तो भामा रोती हुई आई और बोली—भैया, इनका हठ तो देख रहे हो, लड़के की जान ही लेने पर उतारू हैं, लेकिन तुम जरा सोच-समझकर काम करना। भूल-चूक तो बड़ों-बड़ों से हो जाती है, वह बेचारा तो अभी नादान लड़का है। तुम उसकी ओर से मन न मैला करना। उसे किसी की टेढ़ी निगाह भी सहन नहीं है। ऐसा न हो, कहीं देश-विदेश की राह ले, मैं तो कहीं की न रहूं। उसकी सुध लेते रहना। खाने-पीने की तकलीफ न होने पाए। यहां रहता था तो एक भैंस का दूध पी जाता था। उसे दाल में घी अच्छा नहीं लगता, लेकिन मैं उससे छिपाकर लौंदे-के-लौंदे दाल में डाल देती थी। अब इतना सेवा-जतन कौन करेगा? न जाने बेचारा कैसे होगा? यहां घर पर कोई खाने वाला नहीं, वहां वह इन्हीं चीजों के लिए तरसता होगा। क्यों भैया, क्या अपने हाथ से नाव चलाता है?

पद्मसिंह—नहीं, दो मल्लाह रख लिए हैं।

भामा—तब भी दिन-भर दौड़-धूप तो करनी ही पड़ती होगी। मजूर बिना देखे-भाले थोड़े ही काम करते हैं। मेरा तो यहां कुछ बस नहीं है, उसे तुम्हें सौंपती हूं। उसे अनाथ समझकर खोज-खबर लेते रहना। मेरा रोआं-रोआं तुम्हें आशीर्वाद देगा। अबकी कार्तिक-स्नान में मैं उसे जरूर देखने-जाऊंगी। कह देना, तुम्हारी अम्मां तुम्हें बहुत याद करती थीं, बहुत रोती थीं। यह सुनकर उसे ढाढ़स हो जाएगा। उसका जी बड़ा कच्चा है। मुझे याद करके रोज रोता होगा। यह थोड़े-से रुपये हैं, लेते जाओ, उसके पास भिजवा देना।

पद्मसिंह—इसकी क्या जरूरत है? मैं तो वहां हूं ही, मेरे देखते उसे किसी बात की तकलीफ न होने पाएगी।

भामा—नहीं भैया, लेते जाओ, क्या हुआ। इस हांड़ी में थोड़ा-सा घी है, यह भी भिजवा देना ! बाजारू घी घर के घी को कहां पाता है, न वह सुगंध है, न वह स्वाद। उसे अमावट की चटनी बहुत अच्छी लगती है, मैं थोड़ी-सी अमावट भी रखे देती हूं। मीठे-मीठे आम चुनकर रस निकाला था। समझाकर कह देना, बेटा, कोई चिंता मत करो। जब तक तुम्हारी मां जीती है तुमको कोई कष्ट न होने पाएगा। मेरे तो वही एक अंधे की लकड़ी है। अच्छा है तो, बुरा है तो, अपना ही है। संसार की लाज से आंखों से चाहे दूर कर दूं, लेकिन मन से थोड़े ही दूर कर सकती हूं।

इकयावन

जैसे सुंदर भाव के समावेश से कविता में जान पड़ जाती है और सुंदर रंगों से चित्र में, उसी प्रकार दोनों बहनों के आने से झोंपड़ी में जान आ गई है। अंधी आंखों में पुतलियां पड़ गई हैं।

मुरझाई हुई कली शान्ता अब खिलकर अनुपम शोभा दिखा रही है। सूखी हुई नदी उमड़ पड़ी है। जैसे जेठ–बैसाख की तपन की मारी हुई गाय सावन में निखर जाती है और खेतों में किलोलें करने लगती है, उसी प्रकार विरह की सताई हुई रमणी अब निखर गई है, प्रेम में मग्न है।

नित्यप्रति प्रातःकाल इस झोंपड़े से दो तारे निकलते हैं और जाकर गंगा में डूब जाते हैं। उनमें से एक बहुत दिव्य और द्रुतगामी है, दूसरा मध्यम और मंद। एक नदी में थिरकता है, दूसरा अपने वृत्त से बाहर नहीं निकलता। प्रभात की सुनहरी किरणों में इन तारों का प्रकाश मंद नहीं होता, वे और भी जगमगा उठते हैं।

शान्ता गाती है, सुमन खाना पकाती है। शान्ता अपने केशों को संवारती है, सुमन कपड़े सीती है। शान्ता भूखे मनुष्य के समान भोजन के थाल पर टूट पड़ती है, सुमन किसी रोगी के सदृश सोचती है कि मैं अच्छी हूंगी या नहीं।

सदन के स्वभाव में अब कायापलट हो गया है। वह प्रेम का आनंदभोग करने में तन्मय हो रहा है। वह अब दिन चढ़े उठता है, घंटों नहाता है, बाल संवारता है, कपड़े बदलता, सुगन्ध मलता है, नौ बजे से पहले अपनी बैठक में नहीं आता और आता भी है तो जमकर बैठता

नहीं, उसका मन कहीं और रहता है। एक-एक पल में भीतर जाता है और अगर बाहर किसी से बात करने में देर हो जाती है, तो उकताने लगता है। शान्ता ने उस पर वशीकरण मंत्र डाल दिया है।

सुमन घर का सारा काम भी करती है और बाहर का भी। वह घड़ी रात रहे उठती है और स्नान-पूजा के बाद सदन के लिए जलपान बनाती है। फिर नदी के किनारे आकर नाव खुलवाती है। नौ बजे भोजन बनाने बैठ जाती है। ग्यारह बजे तक यहां से छुट्टी पाकर वह कोई-न-कोई काम करने लगती है। नौ बजे रात को जब सब लोग सोने चले जाते हैं, तो वह पढ़ने बैठ जाती है। तुलसी की विनय-पत्रिका और रामायण से उसे बहुत प्रेम है। कभी भक्तमाल पढ़ती है, कभी विवेकानंद के व्याख्यान और कभी रामतीर्थ के लेख। वह विदुषी स्त्रियों के जीवन-चरित्रों को बड़े चाव से पढ़ती है। मीरा पर उसे असीम श्रद्धा है। वह बहुधा धार्मिक ग्रंथ ही पढ़ती है। लेकिन ज्ञान की अपेक्षा भक्ति में उसे अधिक शांति मिलती है।

मल्लाहों की स्त्रियों में उसका बड़ा आदर है। वह उनके झगड़े चुकाती है। किसी के बच्चे के लिए कुर्त्ता-टोपी सीती है, किसी के लिए अंजन या घुट्टी बनाती है। उनमें कोई बीमार पड़ता है, तो उसके घर जाती है और दवा-दारू की फिक्र करती है। वह अपनी गिरी दीवाल को उठा रही है। उस बस्ती के सभी नर-नारी उसकी प्रशंसा करते हैं और उसका यश गाते हैं। हां, अगर आदर नहीं है, तो अपने घर में। सुमन इस तरह जी तोड़कर घर का सारा बोझ संभाले हुए है, लेकिन सदन के मुंह से कृतज्ञता का एक शब्द भी नहीं निकलता। शान्ता भी उसके इस परिश्रम का कुछ मूल्य नहीं समझती। दोनों-के-दोनों उसकी ओर से निश्चिंत हैं, मानो वह घर की लौंडी है और चक्की में जुते रहना ही उसका धर्म है। कभी-कभी उसके सिर में दर्द होने लगता है, कभी-कभी दौड़-धूप से बुखार चढ़ आता है, तब भी वह घर का सारा काम रीत्यानुसार करती रहती है। वह भी कभी-कभी एकांत में अपनी इस दीन दशा पर घंटों रोती रहती है, पर कोई ढाढ़स देने वाला, कोई आंसू पोंछने वाला नहीं?

सुमन स्वभाव से ही मानिनी, सगर्वा स्त्री थी। वह जहां कहीं रही थी, रानी बनकर रही थी। अपने पति के घर वह सब कष्ट झेलकर भी रानी थी। विलास-नगर में वह जब तक रही, उसी का सिक्का चलता रहा। आश्रम में वह सेवा-धर्म पालन करके सर्वमान्य बनी हुई थी। इसलिए अब यहां इस हीनावस्था में रहना उसे असह्य था। अगर सदन कभी-कभी उसकी प्रशंसा कर दिया करता, कभी उससे सलाह लिया करता, उसे अपने घर की स्वामिनी समझा करता या शान्ता उसके पास बैठकर उसकी हां में हां मिलाती, उसका मन बहलाती, तो सुमन इससे भी अधिक परिश्रम करती और प्रसन्नचित्त रहती। लेकिन उन दोनों प्रेमियों को अपनी तरंग में और कुछ न सूझता था। निशाना मारते समय दृष्टि केवल एक ही वस्तु पर रहती है। प्रेमासक्त मनुष्य का भी यही होता है।

लेकिन शान्ता और सदन की यह उदासीनता प्रेम-लिप्सा के ही कारण थी, इसमें संदेह है। सदन इस प्रकार सुमन से बचता था, जैसे हम कुष्ठ-रोगी से बचते हैं, उस पर दया करते हुए भी उसके समीप जाने की हिम्मत नहीं रखते। शान्ता उस पर अविश्वास करती थी, उसके रूप-लावण्य से डरती थी। कुशल यही था कि सदन स्वयं सुमन से आंखें चुराता था, नहीं तो शान्ता इससे जल ही जाती। अतएव दोनों चाहते थे कि यह आस्तीन का सांप दूर हो जाए, लेकिन संकोचवश वह आपस में भी इस विषय को छेड़ने से डरते थे।

सुमन पर यह रहस्य शनैः-शनैः खुलता जाता था।

एक बार जीतन कहार शर्माजी के यहां से सदन के लिए कुछ सौगात लाया था। इसके पहले भी वह कई बार आया था, लेकिन उसे देखते ही सुमन छिप जाया करती थी। अब की जीतन की निगाह उस पर पड़ गई। फिर क्या था, उसके पेट में चूहे दौड़ने लगे। वह पत्थर खाकर पचा सकता था, पर कोई बात पचाने की शक्ति उसमें न थी। मल्लाहों के चौधरी के पास चिलम पीने के बहाने गया और सारी रामकहानी सुना आया। अरे ! यह तो कस्बीन है, खसम ने घर से निकाल दिया, तो हमारे यहां खाना पकाने लगी, वहां से निकाली गई तो चौक में हरजाईपन करने लगी, अब देखता हूं तो यहां विराजमान है। चौधरी सन्नाटे में आ गया, मल्लाहिनों में भी इशारेबाजियां होने लगीं। उस दिन से कोई मल्लाह सदन के घर का पानी न पीता, उनकी स्त्रियों ने सुमन के पास आना-जाना छोड़ दिया। इसी तरह एक बार लाला भगतराम ईंटों की लदाई का हिसाब करने आए। प्यास मालूम हुई तो मल्लाह से पानी लाने को कहा। मल्लाह कुएं से पानी लाया। सदन के घर में बैठे हुए बाहर से पानी मंगाकर पीना सदन की छाती में छुरी मारने से कम न था।

अंत में दूसरा साल जाते-जाते यहां तक नौबत पहुंची कि सदन जरा-जरा-सी बात पर सुमन से झुंझला जाता और चाहे कोई लागू बात न कहे, पर उसके मन के भाव झलक ही पड़ते थे।

सुमन को मालूम हो रहा था कि अब मेरा निर्वाह यहां न होगा। उसने समझा था कि यहां बहन-बहनोई के साथ जीवन समाप्त हो जाएगा। उनकी सेवा करूंगी, टुकड़ा खाऊंगी और एक कोने में पड़ी रहूंगी। इसके अतिरिक्त जीवन में अब उसे कोई लालसा नहीं थी, लेकिन हा शोक ! यह तख्ता भी उसके पैरों के नीचे से सरक गया और अब वह निर्दयी लहरों की गोद में थी।

लेकिन सुमन को अपनी परिस्थिति पर दुख चाहे कितना ही हुआ हो, उसे सदन या शान्ता से कोई शिकायत न थी। कुछ तो धार्मिक प्रेम और कुछ अपनी अवस्था के वास्तविक ज्ञान ने उसे अत्यंत नम्र, विनीत बना दिया था। वह बहुत सोचती कि वहां जाऊं, जहां अपनी जान-पहचान का कोई आदमी न हो, लेकिन उसे ऐसा कोई ठिकाना न दिखाई देता। अभी तक उसकी निर्बल आत्मा कोई अवलंब चाहती थी। बिना किसी सहारे के संसार में रहने का विचार करके उसका कलेजा कांपने लगता था। वह अकेली असहाय, संसार-संग्राम में आने का साहस न कर सकती थी। जिस संग्राम में बड़े-बड़े कुशल, धर्मशील, दृढ़संकल्प मनुष्य मुंह की खाते हैं, वहां मेरी क्या गति होगी। कौन मेरी रक्षा करेगा। कौन मुझे संभालेगा। निरादर होने पर भी यह शंका उसे यहां से निकलने न देती थी।

एक दिन सदन दस बजे कहीं से घूमकर आया और बोला–भोजन में अभी कितनी देर है, जल्दी करो मुझे पंडित उमानाथ से मिलने जाना है, चाचा के यहां आए हुए हैं।

शान्ता ने पूछा–वह वहां कैसे आए?

सदन–अब यह मुझे क्या मालूम? अभी जीतन आकर कह गया है कि वह आए हुए हैं और आज ही चले जाएंगे। यहां आना चाहते थे, लेकिन (सुमन की ओर इशारा करके) किसी कारण से नहीं आए।

शान्ता–तो जरा बैठ जाओ, यहां अभी एक घंटे की देर है।

सुमन ने झुंझलाकर कहा—देर क्या है, सब कुछ तो तैयार है। आसन बिछा दो, पानी रख दो, मैं थाली परोसती हूं।

शान्ता—अरे, तो जरा ठहर ही जाएंगे तो क्या होगा? कोई डाकगाड़ी छूटी जाती है? कच्चा-पक्का खाने का क्या काम?

सदन—मेरी समझ में नहीं आता कि दिन-भर क्या होता रहता है? जरा-सा भोजन बनाने में इतनी देर हो जाती है।

सदन जब भोजन करके चला गया, तब सुमन ने शान्ता से पूछा—क्यों शान्ता, सच बता, तुझे मेरा यहां रहना अच्छा नहीं लगता? तेरे मन में जो कुछ है, वह मैं जानती हूं, लेकिन तू जब तक अपने मुंह से मुझे दुतकार न देगी, मैं जाने का नाम न लूंगी। मेरे लिए कहीं ठिकाना नहीं है।

शान्ता—बहन, कैसी बात कहती हो। तुम रहती हो तो घर संभला हुआ है, नहीं तो मेरे किए क्या होता?

सुमन—यह मुंह देखी बात मत करो, मैं ऐसी नादान नहीं हूं। मैं तुम दोनों आदमियों को अपनी ओर से कुछ खिंचा हुआ पाती हूं।

शान्ता—तुम्हारी आंखों की क्या बात है, वह तो मन तक की बात देख लेती हैं।

सुमन—आंखें सीधी करके बोलो, जो मैं बोलती हूं, झूठ है?

शान्ता—जब तुम जानती हो, तो पूछती क्यों हो?

सुमन—इसलिए कि सब कुछ देखकर भी आंखों पर विश्वास नहीं आता। संसार मुझे चाहे कितना ही नीच समझे, मुझे उससे कोई शिकायत नहीं है। वह मेरे मन का हाल नहीं जानता, लेकिन तुम तो सब कुछ देखते हुए भी मुझे नीच समझती हो, इसका आश्चर्य है। मैं तुम्हारे साथ लगभग दो वर्ष से हूं, इतने दिनों में तुम्हें मेरे चरित्र का परिचय अच्छी तरह हो गया होगा।

शान्ता—नहीं बहन, मैं परमात्मा से कहती हूं, यह बात नहीं है। हमारे ऊपर इतना बड़ा कलंक मत लगाओ। तुमने मेरे साथ जो उपकार किए हैं, वह मैं कभी न भूलूंगी। लेकिन बात यह है कि उनकी बदनामी हो रही है। लोग मनमानी बातें उड़ाया करते हैं। वह (सदनसिंह) कहते थे कि सुभद्राजी यहां आने को तैयार थीं, लेकिन तुम्हारे रहने की बात सुनकर नहीं आईं और बहन, बुरा न मानना, जब संसार में यही प्रथा चल रही है, तो हम लोग क्या कर सकते हैं?

सुमन ने विवाद न किया। उसे आज्ञा मिल गई। अब केवल एक रुकावट थी। शान्ता थोड़े ही दिनों में बच्चे की मां बनने वाली थी। सुमन ने अपने मन को समझाया; इस समय छोड़कर जाऊंगी तो इसे कष्ट होगा। कुछ दिन और सह लूं। जहां इतने दिन काटे हैं, महीने-दो महीने और सही। मेरे ही कारण यह इस विपत्ति में फंसे हुए हैं। ऐसी अवस्था में इन्हें छोड़कर जाना मेरा धर्म नहीं है।

सुमन का यहां एक-एक दिन एक-एक साल की तरह कटता था, लेकिन सब्र किए पड़ी हुई थी।

पंखहीन पक्षी पिंजरबद्ध रहने में ही अपनी कुशल समझता है।

बावन

पंडित पद्मसिंह के चार-पांच मास के सदुद्योग का यह फल हुआ कि बीस-पच्चीस वेश्याओं ने अपनी लड़कियों को अनाथालय में भेजना स्वीकार कर लिया। तीन वेश्याओं ने अपनी सारी संपत्ति अनाथालय के निमित्त अर्पण कर दी, पांच वेश्याएं निकाह करने पर राजी हो गईं। सच्ची हिताकांक्षा कभी निष्फल नहीं होती। अगर समाज में विश्वास हो जाए कि आप उसके सच्चे सेवक हैं, आप उसका उद्धार करना चाहते हैं, आप निःस्वार्थ हैं, तो वह आपके पीछे चलने को तैयार हो जाता है। लेकिन यह विश्वास सच्चे सेवाभाव के बिना कभी प्राप्त नहीं होता। जब तक अंतःकरण दिव्य और उज्ज्वल न हो, वह प्रकाश का प्रतिबिंब दूसरों पर नहीं डाल सकता। पद्मसिंह में सेवाभाव का उदय हो गया था। हममें कितने ही ऐसे सज्जन हैं, जिनके मस्तिष्क में राष्ट्र की कोई सेवा करने का विचार उत्पन्न होता है, लेकिन बहुधा वह विचार ख्याति-लाभ की आकांक्षा से प्रेरित होता है। हम वह काम करना चाहते हैं, जिसमें हमारा नाम प्राणि-मात्र की जिह्वा पर हो, कोई ऐसा लेख अथवा ग्रंथ लिखना चाहते हैं, जिसकी लोग मुक्त-कंठ से प्रशंसा करें, और प्रायः हमारे इस स्वार्थ का कुछ-न-कुछ बदला भी हमको मिल जाता है, लेकिन जनता के हृदय में हम घर नहीं कर सकते। कोई मनुष्य, चाहे वह कितने ही दुःख में हो, उस व्यक्ति के सामने अपना शोक प्रकट नहीं करना चाहता, जिसे वह अपना सच्चा मित्र समझता हो।

पद्मसिंह को अब दालमंडी में जाने का बहुत अवसर मिलता था और वह वेश्याओं के जीवन का जितना भी अनुभव करते थे, उतना ही उन्हें दुःख होता था। ऐसी-ऐसी सुकोमल रमणियों को भोग-विलास के लिए अपना सर्वस्व गंवाते देखकर उनका हृदय करुणा से विह्वल हो जाता था, उनकी आंखों से आंसू निकल पड़ते थे। उन्हें अब ज्ञात हो रहा था कि ये स्त्रियां विचारशून्य नहीं, भावशून्य नहीं, बुद्धिहीन नहीं, लेकिन माया के हाथों में पड़कर उनकी सारी सद्वृत्तियां उल्टे मार्ग पर जा रही हैं, तृष्णा ने उनकी आत्माओं को निर्बल, निश्चेष्ट बना दिया है। पद्मसिंह इस मायाजाल को तोड़ना चाहते थे, वह उन भूली हुई आत्माओं को सचेत किया चाहते थे, वह उनको इस अज्ञानावस्था से मुक्त किया चाहते थे, पर मायाजाल इतना दृढ़ था और अज्ञान-बंधन इतना पुष्ट तथा निद्रा इतनी गहरी थी कि पहले छः महीनों में उससे अधिक सफलता न हो सकी, जिसका ऊपर वर्णन किया जा चुका है। शराब के नशे में मनुष्य की जो दशा हो जाती, वही दशा इन वेश्याओं की हो गई थी।

उधर प्रभाकर राव और उनके मित्रों ने उस प्रस्ताव के शेष भागों को फिर बोर्ड में उपस्थित किया। उन्होंने केवल पद्मसिंह से द्वेष हो जाने के कारण उन मंतव्यों का विरोध किया था, पर अब पद्मसिंह का वेश्यानुराग देखकर वह उन्हीं के बनाए हुए हथियारों से उन पर आघात कर बैठे। पद्मसिंह उस दिन बोर्ड नहीं गए, डॉक्टर श्यामाचरण नैनीताल गए हुए थे। अतएव वे दोनों मंतव्य निर्विघ्न पास हो गए।

बोर्ड की ओर से अलईपुर के निकट वेश्याओं के लिए मकान बनाए जा रहे थे। लाला भगतराम दत्तचित्त होकर काम कर रहे थे। कुछ कच्चे घर थे, कुछ पक्के, कुछ दुमंजिले, एक छोटा-सा औषधालय और एक पाठशाला भी बनाई जा रही थी। हाजी हाशिम ने एक मस्जिद बनवानी आरंभ की थी और सेठ चिम्मनलाल की ओर से एक मंदिर बन रहा था। दीनानाथ

तिवारी ने एक बाग की नींव डाल दी थी। आशा तो थी कि नियत समय के अंदर भगतराम काम समाप्त कर देंगे, मिस्टर दत्त और पंडित प्रभाकर राव तथा मिस्टर शाकिरबेग उन्हें चैन न लेने देते थे। लेकिन काम बहुत था, और बहुत जल्दी करने पर भी एक साल लग गया। बस इसी की देर थी। दूसरे दिन वेश्याओं को दालमंडी छोड़कर इन नए मकानों में आबाद होने का नोटिस दे दिया गया।

लोगों को शंका थी कि वेश्याओं की ओर से इसका विरोध होगा, पर उन्हें यह देखकर आमोदपूर्ण आश्चर्य हुआ कि वेश्याओं ने प्रसन्नतापूर्वक इस आज्ञा का पालन किया। सारी दालमंडी एक दिन में खाली हो गई। जहां निशि-वासर एक श्री-सी बरसती थी, वहां संध्या होते-होते सन्नाटा छा गया।

महबूबजान एक धन-संपन्न वेश्या थी। उसने अपना सर्वस्व अनाथालय के लिए दान कर दिया था। संध्या समय सब वेश्याएं उसके मकान में एकत्रित हुईं, वहां एक महती सभा हुई। शाहजादी ने कहा—बहनो, आज हमारी जिंदगी का एक नया दौर शुरू होता है। खुदाताला हमारे इरादे में बरकत दे और हमें नेक रास्ते पर ले जाए। हमने बहुत दिन बेशर्मी और जिल्लत की जिन्दगी बसर की, बहुत दिन शैतान की कैद में रहीं। बहुत दिनों तक अपनी रूह (आत्मा) और ईमान का खून किया और बहुत दिनों तक मस्ती और ऐशपरस्ती में भूली रहीं। इस दालमंडी की जमीन हमारे गुनाहों से सियाह हो रही है। आज खुदाबंद करीम ने हमारी हालत पर रहम करके हमें कैदेगुनाह से निजात (मुक्ति) दी है, इसके लिए हमें उसका शुक्र करना चाहिए। इसमें शक नहीं कि हमारी कुछ बहनों को यहां से जलावतन होने का कलक होता होगा, और इसमें भी शक नहीं है कि उन्हें आने वाले दिन तारीक नजर आते होंगे। उन बहनों से मेरा यही इल्तमास है कि खुदा ने रिज्क (जीविका) का दरवाजा किसी पर बंद नहीं किया है। आपके पास वह हुनर है कि उसके कदरदां हमेशा रहेंगे। लेकिन अगर आपको आइंदा तकलीफें भी हों तो हमको साबिर व शाकिर (शांत) रहना चाहिए। हमें आइंदा जितनी भी तकलीफें होंगी, उतना ही हमारे गुनाहों का बोझ हल्का होगा। मैं फिर से खुदा से दुआ करती हूं कि वह हमारे दिलों को अपनी रोशनी से रोशन करे और हमें राहे नेक पर लाने की तौफीक (सामर्थ्य) दे दे।

रामभोली बाई बोली—हमें पद्मसिंह शर्मा को हृदय से धन्यवाद देना चाहिए, जिन्होंने हमको धर्म-मार्ग दिखाया है। उन्हें परमात्मा सदा सुखी रखे।

जोहरा जान बोली—मैं अपनी बहनों से यही कहना चाहती हूं कि वह आइंदा से हलाल-हराम का खयाल रखें। गाना-बजाना हमारे लिए हलाल है। इसी हुनर में कमाल हासिल करो। बदकार रईसों के शुहबत (कामातुरता) का खिलौना बनना छोड़ना चाहिए। बहुत दिनों तक गुनाह की गुलामी की। अब हमें अपने को आजाद करना चाहिए। हमको खुदा ने क्या इसलिए पैदा किया है कि अपना हुस्न, अपनी जवानी, अपनी रूह, अपना ईमान, अपनी गैरत, अपनी हया, हरामकार शुहबत-परस्त आदमियों की नजर करें? जब कोई मनचला नौजवान रईस हमारे ऊपर दीवाना हो जाता है, तो हमको कितनी खुशी होती है। हमारी नायिका फूली नहीं समाती। सफरदाई बगलें बजाने लगते हैं और हमें तो ऐसा मालूम होता है, गोया सोने की चिड़िया फंस गई, लेकिन बहनो, यह हमारी हिमाकत है। हमने उसे अपने दाम में नहीं फंसाया, बल्कि उसके खुद दाम में फंस गईं। उसने सोने और चांदी से हमको खरीद लिया। हम अपनी अस्मत

(पवित्रता) जैसी बेबहा (अमूल्य) जिन्स खो बैठीं। आइंदा से हमारा वह वतीरा (ढंग) होना चाहिए कि अगर अपने में से किसी को बुराई करते देखें, तो उसे उसी वक्त बिरादरी से खारिज कर दें।

सुन्दरबाई ने कहा—जोहरा बहन ने यह बहुत अच्छी तजबीज की है। मैं भी यही चाहता हूं। अगर हमारे यहां किसी की आमदरफ्त होने लगे, तो पहले यह देखना चाहिए कि वह कैसा आदमी है। अगर उसे हमसे मुहब्बत हो और अपना दिल भी उस पर आ जाए तो शादी करनी चाहिए। लेकिन अगर वह शादी न करके महज शुहबतपरस्ती के इरादे से आता हो, तो उसे फौरन दुत्कार देना चाहिए। हमें अपनी इज्जत कौड़ियों पर न बेचनी चाहिए।

रामप्यारी ने कहा—स्वामी गजानन्द ने हमें एक किताब दी है, जिसमें लिखा है कि सुंदरता हमारे पूर्व जन्म के अच्छे कर्मों का फल है, लेकिन हम अपने पूर्व जन्म की कमाई भी इस जन्म में नष्ट कर देती हैं। जो बहनें जोहरा की बात को पसंद करती हों, वे हाथ उठा दें।

इस पर बीस-पच्चीस वेश्याओं ने हाथ उठाए।

रामप्यारी ने फिर कहा—जो इसे पसंद न करती हों, वह भी हाथ उठा दें।

इस पर एक भी हाथ न उठा।

रामप्यारी—कोई हाथ न उठा। इसका यह आशय है कि हमने जोहरा की बात मान ली। आज का दिन मुबारक है।

वृद्धा महबूब जान बोली—मुझे कहते हुए यही डर लगता है कि तुम लोग कहोगी, सत्तर चूहे खाकर के बिल्ली चली हज को, पर आज के सातवें दिन मैं सचमुच हज करने चली जाऊंगी। मेरी जिंदगी तो जैसे कटी वैसे कटी, पर इस वक्त तुम्हारी यह नीयत देखकर मुझे कितनी खुशी हो रही है, वह मैं जाहिर नहीं कर सकती। खुदा-ए-पाक तुम्हारे इरादों को पूरा करे।

कुछ वेश्याएं आपस में कानाफूसी कर रही थीं। उनके चेहरों से मालूम होता था कि ये बातें उन्हें पसंद नहीं आतीं, लेकिन उन्हें कुछ बोलने का साहस न होता था। छोटे विचार पवित्र भावों के सामने दब जाते हैं।

इसके बाद यह सभा समाप्त हुई और वेश्याओं ने पैदल अलईपुर की ओर प्रस्थान किया, जैसे यात्री किसी धाम का दर्शन करने जाते हैं।

दालमंडी में अंधेरा छाया हुआ था। न तबलों की थाप थी, न सारंगियों की अलाप, न मधुर स्वरों का गाना, न रसिकजनों का आना-जाना। अनाज कट जाने पर खेत की जो दशा हो जाती है, वही दालमंडी की हो रही थी।

तिरेपन

पंडित मदनसिंह की कई महीने तक यह दशा थी कि जो कोई उनके पास आता, उसी से सदन की बुराई करते—कपूत है, भ्रष्ट है, शोहदा है, लुच्चा है, एक कानी कौड़ी तो दूंगा नहीं, भीख मांगता फिरेगा, तब आटे-दाल का भाव मालूम होगा। पद्मसिंह को दानपत्र लिखाने के लिए कई बार लिखा। भामा कभी सदन की चर्चा करती, तो उससे बिगड़ जाते, घर से निकल जाने

की धमकी देते, कहते—जोगी हो जाऊंगा, संन्यासी हो जाऊंगा, लेकिन उस छोकरे का मुंह न देखूंगा।

इसके पश्चात् उनकी मानसिक अवस्था में एक परिवर्तन हुआ। उन्होंने सदन की चर्चा ही करनी छोड़ दी। यदि कोई उसकी बुराई करता, तो कुछ अनमने-से हो जाते, कहते, भाई, अब क्यों उसे कोसते हो? जैसा उसने किया, वैसा आप भुगतेगा। अच्छा है या बुरा, मेरे पास से तो दूर है। अपने चार पैसे कमाता है, खाता है, पड़ा है, पड़ा रहने दो। लाला बैजनाथ उनके बहुत मुंह लगे थे। एक दिन वह खबर लाए कि उमानाथ ने सदन को कई हजार रुपये दिए हैं, अब नदी पार मकान बना रहा है, एक बागीचा लगवा रहा है। चूना पीसने की एक कल ली है, खूब रुपया कमाता है और उड़ाता है। मदनसिंह ने झुंझलाकर कहा—तो क्या चाहते हो कि वह भीख मांगे, दूसरों की रोटियां तोड़े? उमानाथ उसे रुपया क्या देंगे, अभी एक का चंदे से ब्याह किया है, आप टके-टके को मोहताज हो रहे हैं। सदन ने जो कुछ किया होगा, अपनी कमाई से किया होगा। वह लाख बुरा हो, निकम्मा नहीं है। अभी जवान है, शौकीन है, अगर कमाता है और उड़ाता है, तो किसी को क्यों बुरा लगे? तुम्हारे इस गांव के कितने ही लौंडे हैं, जो एक पैसा भी नहीं कमाते, लेकिन घर से रुपये चुराकर ले जाते हैं और चमारिनों का पेट भरते हैं। सदन उनसे कहीं अच्छा है । मुंशी बैजनाथ लज्जित हो गए।

कुछ काल के उपरांत मदनसिंह की मनोवृत्ति पर प्रतिक्रिया का आधिपत्य हुआ। सदन की सूरत आंखों में फिरने लगी, उसकी बातें याद आया करतीं, कहते, देखो तो कैसा निर्दयी है, मुझसे रूठने चला है, मानो मैं यह जगह, जमीन, माल, असबाब सब अपने माथे पर लादकर ले जाऊंगा। एक बार यहां आते नहीं बनता, पैरों में मेंहदी रचाए बैठा है ! पापी कहीं का, मुझसे घमंड करता है, कुढ़-कुढ़कर मर जाऊंगा, तो बैठा मेरे नाम को रोएगा, तब भले वहां दौड़ा आएगा, अभी नहीं आते बनता, अच्छा देखें, तुम कहां भागकर जाते हो, वहीं से चलकर तुम्हारी खबर लेता हूं।

भोजन करके जब विश्राम करते, तो भामा से सदन की बातें करने लगते—यह लौंड़ा लड़कपन में भी जिद्दी था। जिस वस्तु के लिए अड़ जाता था, उसे लेकर ही छोड़ता था। तुम्हें याद आता होगा, एक बार मेरी पूजा की झोली के बस्ते के वास्ते कितना महनामथ मचाया और उसे लेकर ही चुप हुआ। बड़ा हठी है, देखो तो उसकी कठोरता। एक पत्र भी नहीं भेजता। चुपचाप कान में तेल डाले बैठा है, मानो हम लोग मर गए हैं। भामा ये बातें सुनती और रोती। मदनसिंह के आत्माभिमान ने पुत्र-प्रेम के आगे सिर झुका दिया है।

इस प्रकार एक वर्ष के ऊपर हो गया। मदनसिंह बार-बार सदन के पास जाने का विचार करते, पर उस विचार को कार्य रूप में न ला सकते। एक बार असबाब बंधवा चुके थे, पर थोड़ी देर पीछे उसे खुलवा दिया। एक बार स्टेशन से लौट आए। उनका हृदय मोह और अभिमान का खिलौना बना हुआ था।

अब गृहस्थी के कामों में उनका जी न लगता। खेतों में समय पर पानी नहीं दिया गया और फसल खराब हो गई। असामियों से लगान नहीं वसूल किया गया। वह बेचारे रुपये लेकर आते, लेकिन मदनसिंह को रुपया लेकर रसीद देना भारी था। कहते, भाई, अभी जाओ, फिर आना। गुड़ घर में धरा-धरा पसीज गया, उसे बेचने का प्रबंध न किया। भामा कुछ कहती तो झुंझलाकर कहते, चूल्हे में जाए घर और द्वार, जिसके लिए सब कुछ करता था, जब वही नहीं

है तो यह गृहस्थी मेरे किस काम की है? अब उन्हें ज्ञात हुआ कि मेरा सारा जीवन, सारी धर्मनिष्ठा, सारी कर्मशीलता, सारा आनंद केवल एक आधार पर अवलंबित था और वह आधार सदन का था।

इधर कई दिनों से पद्मसिंह भी नहीं आए थे। एक बड़ा कार्य संपादन करने के उपरांत चित्त पर जो शिथिलता छा जाती है, वही अवस्था उनकी हो रही थी। मदनसिंह उनके पास भी पत्र न भेजते थे। हां, उनके पत्र आते तो बड़े शौक से पढ़ते, लेकिन सदन का कुछ समाचार न पाकर उदास हो जाते।

एक दिन मदनसिंह दरवाजे पर बैठे हुए प्रेमसागर पढ़ रहे थे। कृष्ण की बाल-लीला में उन्हें बच्चों का-सा आनंद आ रहा था। संध्या हो गई थी। अक्षर सूझ न पड़ते थे, पर उनका मन ऐसा लगा हुआ था कि उठने की इच्छा न होती थी। अकस्मात् कुत्तों के भूंकने ने किसी नए आदमी के गांव में आने की सूचना दी। मदनसिंह की छाती धड़कने लगी। कहीं सदन तो नहीं आ रहा है। किताब बंद करके उठे, तो पद्मसिंह को आते देखा। पद्मसिंह ने उनके चरण छुए, फिर दोनों भाइयों में बातचीत होने लगी।

मदनसिंह–सब कुशल है?

पद्मसिंह–जी हां, ईश्वर की दया है।

मदनसिंह–भला, उस बेईमान की भी कुछ खोज-खबर मिली है?

पद्मसिंह–जी हां, अच्छी तरह है। दसवें-पांचवें दिन मेरे यहां आया करता है। मैं कभी-कभी हाल-चाल पुछवा लेता हूं। कोई चिंता की बात नहीं है।

मदनसिंह–भला, वह पापी कभी हम लोगों की भी चर्चा करता है या बिल्कुल मरा समझ लिया? क्या यहां आने की कसम खा ली है? क्या यहां हम लोग मर जाएंगे, तभी आएगा? अगर उसकी यही इच्छा है, तो हम लोग कहीं चले जाएं। अपना घर-द्वार ले, अपना घर संभाले। सुनता हूं, वहां मकान बनवा रहा है। वह तो वहां रहेगा? और यहां कौन रहेगा? वह मकान किसके लिए छोड़े देता है?

पद्मसिंह–जी नहीं, मकान-वकान कहीं नहीं बनवाता, यह आपसे किसी ने झूठ कह दिया। हां, चूने की कल खड़ी कर ली है और यह भी मालूम हुआ है कि नदी पार थोड़ी-सी जमीन भी लेना चाहता है।

मदनसिंह–तो उससे कह देना, पहले आकर इस घर में आग लगा जाए, तब वहां जगह-जमीन ले।

पद्मसिंह–यह आप क्या कहते हैं, वह केवल आप लोगों की अप्रसन्नता के भय से नहीं आता। आज उसे मालूम हो जाए कि आपने उसे क्षमा कर दिया, तो सिर के बल दौड़ा आए। मेरे पास आता है, तो घंटों आप ही की बातें करता रहता है। आपकी इच्छा हो, तो कल ही चला आए।

मदनसिंह–नहीं, तो मैं उसे बुलाता नहीं। हम उसके कौन होते हैं, जो यहां आएगा? लेकिन यहां आए तो कह देना, जरा पीठ मजबूत कर रखे। उसे देखते ही मेरे सिर पर शैतान सवार हो जाएगा और मैं डंडा लेकर पिल पडूंगा। मूर्ख मुझसे रूठने चला है। तब नहीं रूठा था, जब पूजा के समय पोथी पर राल टपकाता था, खाने की थाली के पास पेशाब करता था। उसके मारे कपड़े साफ न रहने पाते थे, उजले कपड़ों को तरस के रह जाता था। मुझे साफ

कपड़े पहने देखता था, तो बदन से धूल-मिट्टी लपेटे आकर सिर पर सवार हो जाता। तब क्यों नहीं रूठा था? आज रूठने चला है। अब की पाऊं तो ऐसी कनेठी दूं कि छठी का दूध याद आ जाएगा।

दोनों भाई घर गए। भामा बैठी गाय को भूसा खिला रही थी और सदन की दोनों बहनें खाना पकाती थीं। भामा देवर को देखते ही खड़ी हो गई और बोली—भला, तुम्हारे दर्शन तो हुए। चार पग पर रहते हो और इतना भी नहीं होता कि महीने में एक बार तो जाकर देख आएं—घर वाले मरे कि जीते हैं। कहो, कुशल से तो रहे?

पद्मसिंह—हां, सब तुम्हारा आशीर्वाद है। कहो, खाना क्या बन रहा है? मुझे इस वक्त खीर, हलुवा और मलाई खिलाओ, तो वह सुख-संवाद सुनाऊं कि फड़क जाओ। पोता मुबारक हो।

भामा के मलिन मुख पर आनंद की लालिमा छा गई और आंखों में पुतलियां पुष्प के समान खिल उठीं। बोली—चलो, घी-शक्कर के मटके में डुबा दूं, जितना खाते बने, खाओ।

मदनसिंह ने मुंह बनाकर कहा—यह तुमने बुरी खबर सुनाई। क्या ईश्वर के दरबार में उलटा न्याय होता है? मेरा बेटा छिन जाए और उसे बेटा मिल जाए। अब वह एक से दो हो गया, मैं उससे कैसे जीत सकूंगा? हारना पड़ा। यह मुझे अवश्य खींच ले जाएगा। मेरे तो कदम अभी से उखड़ गए। सचमुच ईश्वर के यहां बुराई करने पर भलाई होती है। उल्टी बात है कि नहीं? लेकिन अब मुझे चिंता नहीं है। सदन जहां चाहे जाए, ईश्वर ने हमारी सुन ली। कै दिन का हुआ है?

पद्मसिंह—आज चौथा दिन है, मुझे छुट्टी नहीं मिली, नहीं तो पहले ही दिन आता।

मदनसिंह—क्या हुआ, छठी तक पहुंच जाएंगे, धूमधाम से छठी मनाएंगे। बस, कल चलो।

भामा फूली न समाती थी। हृदय पुलकित हो उठा था। जी चाहता था कि किसे क्या दे दूं, क्या लुटा दूं? जी चाहता था, घर में सोहर उठे, दरवाजे पर शहनाई बजे, पड़ोसिनें बुलाई जाएं। गाने-बजाने की मंगल ध्वनि से गांव गूंज उठे। उसे ऐसा ज्ञात हो रहा था, मानो आज संसार में कोई असाधारण बात हो गई है, मानो सारा संसार संतानहीन है और एक मैं ही पुत्र-पौत्रवती हूं।

एक मजदूर ने आकर कहा—भौजी, एक साधु द्वार पर आए हैं। भामा ने तुरंत इतनी जिन्स भेज दी, जो चार साधुओं के खाने से भी न चुकती।

ज्योंही लोग भोजन कर चुके, भामा अपनी दोनों लड़कियों के साथ ढोलक लेकर बैठ गई और आधी रात गाती रही।

चौवन

जिस प्रकार कोई मनुष्य लोभ के वश होकर आभूषण चुरा लेता है, पर विवेक होने पर उसे देखने में भी लज्जा आती है, उसी प्रकार सदन भी सुमन से बचता फिरता था। इतना ही नहीं,

वह उसे नीची दृष्टि से देखता था और उसकी उपेक्षा करता था। दिन-भर काम करने के बाद संध्या को उसे अपना यह व्यवसाय बहुत अखरता, विशेषकर चूने के काम में उसे बड़ा परिश्रम करना पड़ता था। वह सोचता, इसी सुमन के कारण मैं यों घर से निकाला गया हूं। इसी ने मुझे यह बनवास दे रखा है। कैसे आराम से घर पर रहता था। न कोई चिंता थी, न कोई झंझट, चैन से खाता था और मौज करता था। इसी ने मेरे लिए सिर पर यह मुसीबत ढा दी। प्रेम की पहली उमंग में उसने उसका बनाया हुआ भोजन खा लिया था, पर अब उसे बड़ा पछतावा होता था। वह चाहता था कि किसी प्रकार इससे गला छूट जाए। यह वही सदन है, जो सुमन पर जान देता था, उसकी मुस्कान पर, मधुर बातों पर, कृपाकटाक्ष पर अपना जीवन तक न्योछावर करने को तैयार था। पर सुमन आज उसकी दृष्टि में इतनी गिर गई है। वह स्वयं अनुभव करके भी भूल जाता था कि मानव-प्रकृति कितनी चंचल है !

सदन ने इधर वर्षों से लिखना-पढ़ना छोड़ दिया था और जब से चूने की कल ली, तो वह दैनिक पत्र भी पढ़ने का अवकाश न पाता था। अब वह समझता था पढ़ना उन लोगों का काम है, जिन्हें कोई काम नहीं है, जो सारे दिन पड़े-पड़े मक्खियां मारा करते हैं। लेकिन उसे बालों को संवारने, हारमोनियम बजाने के लिए न मालूम कैसे अवकाश मिल जाता था।

कभी-कभी पिछली बातों का स्मरण करके वह मन में कहता, मैं उस समय कैसा मूर्ख था, इसी सुमन के पीछे लट्टू हो रहा था? वह अब अपने चरित्र पर घमंड करता था। नदी के तट पर वह नित्य स्त्रियों को देखा करता था, पर कभी उसके मन में कुभाव न पैदा होते थे। सदन इसे अपना चरित्रबल समझता था।

लेकिन जब गर्भिणी शान्ता के प्रसूति का समय निकट आया और वह बहुधा अपने कमरे में बंद, मलिन, शिथिल पड़ी रहने लगी, तो सदन को मालूम हुआ कि मैं बहुत धोखे में था। जिसे मैं चरित्रबल समझता था, वह वास्तव में मेरी तृष्णाओं के संतुष्ट होने का फलमात्र था। अब वह काम पर से लौटता, तो शान्ता मधुर मुस्कान के साथ उसका स्वागत न करती, वह अपनी चारपाई पर पड़ी रहती। कभी उसके सिर में दर्द होता, कभी शरीर में, कभी ताप चढ़ जाता, कभी मतली होने लगती, उसका मुखचन्द्र कान्तिहीन हो गया था, मालूम होता था शरीर में रक्त ही नहीं है। सदन को उसकी यह दशा देखकर दुख होता, यह घंटों उसके पास बैठकर उसका दिल बहलाता रहता, लेकिन उसके चेहरे से मालूम होता था कि उसे वहां बैठना अखर रहा है। वह किसी-न-किसी बहाने से जल्दी ही उठ जाता। उसकी विलास-तृष्णा ने मन को फिर चंचल करना शुरू किया, कुवासनाएं उठने लगीं। वह युवती मल्लाहिनों से हंसी करता, गंगातट पर जाता, तो नहाने वाली स्त्रियों को कुदृष्टि से देखता। यहां तक कि एक दिन इस वासना से विह्वल होकर वह दालमंडी की ओर चला। वह कई महीनों से इधर नहीं आया था। आठ बज गए थे। काम-भोग की प्रबल इच्छा उसे बढ़ाए लिए जाती थी। उसका ज्ञान और विवेक इस समय इस आवेग के नीचे दब गया था। वह कभी दो पग आगे चलता, कभी चुपचाप खड़ा होकर कुछ सोचता और पीछे फिरता, लेकिन दो-चार कदम चलकर वह फिर लौट पड़ता। इस समय उसकी दशा उस रोगी-सी हो रही थी, जो मीठे पदार्थ को सामने देखकर उस पर टूट पड़ता है और पथ्यापथ्य का विचार नहीं करता।

लेकिन जब वह दालमंडी में पहुंचा, तो गली में वह चहल-पहल न देखी, जो पहले दिखाई देती थी। पान वालों की दुकानें दो-चार थीं, लेकिन नानबाइयों और हलवाइयों की दूकानें

बंद थीं। कोठों पर वेश्याएं झांकती हुई दिखाई न दीं, न सारंगी और तबले की ध्वनि सुनाई दी। अब उसे याद आया कि वेश्याएं यहां से चली गईं। उसका मन खिन्न हो गया, लेकिन एक क्षण में उसे एक विचित्र आनंद का अनुभव हुआ। उसने अपनी कामप्रवृत्ति पर विजय पा ली, मानो वह किसी कठोर सिपाही के हाथ से छूट गया। सिपाही उसे नीचे लिए जाता था, उसके पंजे से अपने को छुड़ा लेने की उसमें सामर्थ्य न थी, पर थाने में पहुंचकर सिपाही ने देखा कि थाना बंद है, न थानेदार है, न कोई कांस्टेबिल, न चौकीदार। सदन को अब अपने मन की दुर्बलता पर लज्जा आई। उसे अपने मनोबल पर जो घमंड था, वह चूर-चूर हो गया।

वह लौटना चाहता था, पर जी में आया कि आया हूं, तो अच्छी तरह से सैर क्यों न कर लूं? आगे बढ़ा तो वह मकान दिखाई दिया, जिसमें सुमन रहती थी। वहां गाने की मधुर ध्वनि उसके कान में आई। उसने आश्चर्य से ऊपर देखा, तो एक बड़ा साइनबोर्ड दिखाई दिया। उस पर लिखा था 'संगीत-पाठशाला'। सदन ऊपर चढ़ गया। इसी कमरे में वह महीनों सुमन के पास बैठा था। उसके मन में कितनी ही पुरानी स्मृतियां आने लगीं। वह एक बेंच पर बैठ गया और गाना सुनने लगा। बीस-पच्चीस मनुष्य बैठे हुए गाने-बजाने का अभ्यास कर रहे थे। कोई सितार बजाता था, कोई सारंगी, कोई तबला और एक वृद्ध पुरुष उन सबको बारी-बारी से सिखा रहा था। वह गान विद्या में निपुण मालूम होता था। सदन का गाना सुनने में ऐसा मन लगा कि वह पंद्रह मिनट तक वहां बैठा रहा। उसके मन में बड़ी उत्कंठा हुई कि मैं भी गाना सीखने आया करता, पर एक तो उसका मकान यहां से बहुत दूर था, दूसरे स्त्रियों को अकेली छोड़कर रात को आना कठिन था। वह उठना ही चाहता था कि इतने में उसी गायनाचार्य ने सितार पर यह गाना शुरू किया–

दयामयि भारत को अपनाओ।
तव वियोग से व्याकुल है मां, सत्वर धैर्य धराओ।
प्रिय लालन कहकर पुचकारो, हंसकर गले लगाओ।।
दयामयि भारत को अपनाओ।
सोये आर्य जाति के गौरव, जननि ! फेर जगाओ।
दुखड़ा पराधीनता रूपी बेड़ी काट बहाओ।।
दयामयि भारत को अपनाओ ।।

इस पद ने सदन के हृदय में उच्च भावों का स्रोत-सा खोल दिया। देशोपकार, जाति-सेवा तथा राष्ट्रीय गौरव की पवित्र भावनाएं उसके हृदय में गूंजने लगीं। यह बाह्य ध्वनि उसके अंतर में भी एक विशाल ध्वनि पैदा कर रही थी, जगज्जननी की दयामयी मूर्ति उसके हृदय-नेत्रों के सम्मुख खड़ी हो गई। एक दरिद्र, दुखी, दीन, क्षीण बालक दीन भाव से देवी की ओर ताक रहा था, और अपने दोनों हाथ उठाए, सजल आंखों से देखता हुआ कह रहा था, 'दयामयि भारत को अपनाओ।' उसने कल्पनाओं में अपने को दीन कृषकों की सेवा करते हुए देखा। वह जमींदारों के कारिंदों से विनय कर रहा था कि इन दीन जनों पर दया करो। कृषकगण उसके पैरों पर गिर पड़ते थे, उनकी स्त्रियां उसे आशीर्वाद दे रही थीं। स्वयं इस कल्पित बारात का दूल्हा बना हुआ सदन यहां से जाति-सेवा का संकल्प करके उठा और नीचे उतर आया। वह अपने विचारों में ऐसा लीन हो रहा था कि किसी से कुछ नहीं बोला। थोड़ी ही दूर चला था कि उसे सुंदरबाई के भवन के सामने कुछ मनुष्य दिखाई दिए। उसने

एक आदमी से पूछा, यह कैसा जमघट है? मालूम हुआ कि आज कुंवर अनिरुद्धसिंह यहां एक 'कृषि सहायक सभा' खोलने वाले हैं? सभा का उद्देश्य होगा, किसानों को जमींदारों के अत्याचारों से बचाना। सदन के मन में अभी-अभी कृषकों के प्रति जो सहानुभूति प्रकट हुई थी, वह मंद पड़ गई। वह जमींदार था और कृषकों पर दया करना चाहता था, पर उसे मंजूर न था कि कोई उसे दबाए और किसानों को भड़काकर जमींदारों के विरुद्ध खड़ा कर दे। उसने मन में कहा, यह लोग जमींदारों के सत्वों को मिटाना चाहते हैं। द्वेष-भाव से ही प्रेरित होकर इन लोगों ने यह संस्था खोलने का विचार किया है, तो हम लोगों को भी सतर्क हो जाना चाहिए, हमको अपनी रक्षा करनी चाहिए। मानव प्रकृति को दबाव से कितनी घृणा है? सदन ने यहां ठहरना व्यर्थ समझा, नौ बज गए थे। वह घर लौटा।

पचपन

संध्या का समय है। आकाश पर लालिमा छाई हुई है और मंद वायु गंगा की लहरों पर क्रीड़ा कर रही है, उन्हें गुदगुदा रही है। वह अपने करुण नेत्रों से मुस्कराती है और कभी-कभी खिलखिलाकर हंस पड़ती है, तब उसके मोती के दांत चमक उठते हैं। सदन का रमणीय झोंपड़ा आज फूलों और लताओं से सजा हुआ है। दरवाजों पर मल्लाहों की भीड़ है। अंदर उनकी स्त्रियां बैठी सोहर गा रही हैं। आंगन में भट्टी खुदी हुई है और बड़े-बड़े हंडे चढ़े हुए हैं। आज सदन के नवजात पुत्र की छठी है, यह उसी का उत्सव है।

लेकिन सदन बहुत उदास दिखाई देता है। वह सामने के चबूतरे पर बैठा हुआ गंगा की ओर देख रहा है। उसके हृदय में भी विचार की लहरें उठ रही हैं। ना ! वह लोग न आएंगे। आना होता तो आज छः दिन बीत गए, आ न जाते? यदि मैं जानता कि वे न आएंगे, तो मैं चाचा से भी यह समाचार न कहता। उन्होंने मुझे मरा हुआ समझ लिया है, वह मुझसे कोई सरोकार नहीं रखना चाहते। मैं जीऊं या मरूं, उन्हें परवाह नहीं है। लोग ऐसे अवसर पर अपने शत्रुओं के घर भी जाते हैं। प्रेम से न आते, दिखावे के लिए आते, व्यवहार के तौर पर आते—मुझे मालूम तो हो जाता कि संसार में मेरा कोई है। अच्छा न आएं, इस काम से छुट्टी मिली, तो एक बार मैं स्वयं जाऊंगा और सदा के लिए निपटारा कर आऊंगा। लड़का कितना सुंदर है, कैसे लाल-लाल होंठ हैं। बिल्कुल मुझी को पड़ा है। हां, आंखें शान्ता की हैं। मेरी ओर कैसे ध्यान से टुक-टुक ताकता था। दादा को तो मैं नहीं कहता, लेकिन अम्मां उसे देखें तो एक बार गोद में अवश्य ही ले लें। एकाएक सदन के मन में यह विचार हुआ, अगर मैं मर जाऊं तो क्या हो? इस बालक का पालन कौन करेगा? कोई नहीं। नहीं, मैं मर जाऊं तो दादा को अवश्य उस पर दया आएगी। वह इतने निर्दय नहीं हो सकते। जरा देखूं। सेविंग बैंक में मेरे कितने रुपये हैं। अभी तक हजार भी पूरा नहीं। ज्यादा नहीं, अगर पचास रुपये महीना भी जमा करता जाऊं, तो साल भर में छः सौ रुपये हो जाएंगे। ज्योंही दो हजार पूरे हो जाएंगे, घर बनवाना शुरू कर दूंगा। दो कमरे सामने, पांच कमरे भीतर, दरवाजे पर मेहराबदार सायवान, पटाव के ऊपर दो कमरे हों तो मकान अच्छा हो। कुरसी ऊंची रहने से घर की शोभा बढ़ जाती है। कम-से-कम

ु'ट की कुरसी दूंगा।

सदन इन्हीं कल्पनाओं का आनंद ले रहा था। चारों ओर अंधेरा छाने लगा था कि इतने में उसने सड़क की ओर से एक गाड़ी आती देखी। उसकी दोनों लालटेनें बिल्ली की आंखों की तरह चमक रही थीं। कौन आ रहा है? चाचा साहब के सिवा और कौन होगा? मेरा और है ही कौन? इतने में गाड़ी निकट आ गई और उसमें से मदनसिंह उतरे। इस गाड़ी के पीछे एक और गाड़ी थी। सुभद्रा और भामा उसमें से उतरीं। सदन की दोनों बहनें भी थीं। जीतन कोचबक्स पर से उतरकर लालटेन दिखाने लगा। सदन इतने आदमियों को उतरते देखकर समझ गया कि घर के लोग आ गए, पर वह उनसे मिलने के लिए नहीं दौड़ा। वह समय बीत चुका था, जब वह उन्हें मनाने जाता। अब उसके मान करने का समय आ गया था। वह चबूतरे पर से उठकर झोंपड़े में चला गया, मानो उसने किसी को देखा ही नहीं। उसने मन में कहा, ये लोग समझते होंगे कि इनके बिना मैं बेहाल हुआ जाता हूं, पर उन्हें जैसे मेरी परवाह नहीं, उसी प्रकार मैं भी इनकी परवाह नहीं करता।

सदन झोंपड़े में जाकर ताक रहा था कि देखें यह लोग क्या करते हैं। इतने में उसने जीतन को दरवाजे पर आकर पुकारते हुए देखा। कई मल्लाह इधर-उधर से दौड़े। सदन बाहर निकल आया और दूर से ही अपनी माता को प्रणाम करके किनारे खड़ा हो गया।

मदनसिंह बोले—तुम तो इस तरह खड़े हो, मानो हमें पहचानते ही नहीं। मेरे न सही, पर माता के चरण छूकर आशीर्वाद तो ले लो।

सदन—मेरे छू लेने से आपका धर्म बिगड़ जाएगा।

मदनसिंह ने भाई की ओर देखकर कहा—देखते हो इसकी बात। मैं तो तुमसे कहता था कि वह हम लोगों को भूल गया होगा, लेकिन तुम खींच लाए। अपने माता-पिता को द्वार पर खड़े देखकर भी इसे दया नहीं आती।

भामा ने आगे बढ़कर कहा—बेटा सदन ! दादा के चरण छुओ, तुम बुद्धिमान होकर ऐसी बातें करते हो।

सदन अधिक मान न कर सका। आंखों में आंसू भरे पिता के चरणों पर गिर पड़ा। मदनसिंह रोने लगे।

इसके बाद वह माता के चरणों पर गिरा। भामा ने उठाकर छाती से लगा लिया और आशीर्वाद दिया।

प्रेम, भक्ति और क्षमा का कैसा मनोहर, कैसा दिव्य, कैसा आनंदमय दृश्य है। माता-पिता का हृदय प्रेम से पुलकित हो रहा है और पुत्र के हृदयसागर में भक्ति की तरंगें उठ रही हैं। इसी प्रेम और भक्ति की निर्मल ज्योति से हृदय की अंधेरी कोठरियां प्रकाशपूर्ण हो गई हैं। मिथ्याभिमान और लोक-लज्जा या भयरूपी कीट-पतंग वहां से निकल गए हैं। अब वहां न्याय, प्रेम और सद्व्यवहार का निवास है।

आनंद के मारे सदन के पैर जमीन पर नहीं पड़ते। वह अब मल्लाहों को कोई-न-कोई काम करने को हुक्म देकर दिखा रहा है कि मेरा यहां कितना रोब है। कोई चारपाई निकालने जाता है, कोई बाजार दौड़ा जाता है कि मदनसिंह फूले नहीं समाते और अपने भाई के कानों में कहते हैं, सदन तो बड़ा चतुर निकला। मैं तो समझता था, किसी तरह पड़ा दिन काट रहा होगा, यहां तो बड़ा ठाट है।

इधर भामा और सुभद्रा भीतर गईं। भामा चारों ओर चकित होकर देखती थी। कैसी सफाई है। सब चीजें ठिकाने से रखीं हुई हैं ! इसकी बहन गुणवान मालूम होती है।

वह सौरीगृह में गई तो शान्ता ने अपनी दोनों सासों के चरण-स्पर्श किए। भामा ने बालक को गोद में ले लिया। उसे ऐसा मालूम हुआ, मानो वह कृष्ण का ही अवतार है। उसकी आंखों से आनंद के आंसू बहने लगे।

थोड़ी देर में उसने मदनसिंह से आकर कहा—और जो कुछ हो, पर तुमने बहू बड़ी रूपवती पाई है। गुलाब का फूल है और बालक तो साक्षात् भगवान् का अवतार ही है।

मदनसिंह—ऐसा तेजस्वी न होता, तो मदनसिंह को खींच कैसे लाता?

भामा—बहू बड़ी सुशील मालूम होती है।

मदनसिंह—तभी तो सदन ने उसके पीछे मां-बाप को त्याग दिया था।

सब लोग अपनी-अपनी धुन में मग्न थे, पर किसी को सुधि न थी कि अभागिनी सुमन कहां है?

सुमन गंगातट पर संध्या करने गयी थी। जब वह लौटी तो उसे झोंपड़े के द्वार पर गाड़ियां खड़ी दिखाईं दीं। दरवाजे पर कई आदमी बैठे थे। पद्मसिंह को पहचाना। समझ गई कि सदन के माता-पिता आ गए। वह आगे न बढ़ सकी। उसके पैरों में बेड़ी-सी पड़ गईं। उसे मालूम हो गया कि अब यहां मेरे लिए स्थान नहीं है, अब यहां से मेरा नाता टूटता है। वह मूर्तिवत् खड़ी सोचने लगी कि कहां जाऊं?

इधर एक मास से शान्ता और सुमन में बहुत मनमुटाव हो गया था। वही शान्ता जो विधवा-आश्रम में दया और शांति की मूर्ति बनी हुई थी, अब सुमन को जलाने और रुलाने पर तत्पर रहती थी। उम्मीदवारी के दिनों में हम जितने विनयशील और कर्त्तव्य-परायण होते हैं, उतने ही अगर जगह पाने पर बन रहें, तो हम देवतुल्य हो जाएं। उस समय शान्ता को सहानुभूति की जरूरत थी, प्रेम की आकांक्षा ने उसके चित्त को उदार, कोमल, नम्र बना दिया था, पर अब अपना प्रेमरत्न पाकर किसी दरिद्र से धनी हो जाने वाले मनुष्य की भांति उसका हृदय कठोर हो गया था। उसे भय खाए जाता था कि सदन कहीं सुमन के जाल में न फंस जाए ! सुमन के पूजा-पाठ, श्रद्धाभक्ति का उसकी दृष्टि में कुछ भी मूल्य न था। वह इसे पाखंड समझती थी। सुमन सिर में तेल मलने या साफ कपड़ा पहनने के लिए तरस जाती थी, शान्ता इसे समझती थी। वह सुमन के आचार-व्यवहार को बड़ी तीव्र दृष्टि से देखती रहती थी। सदन से जो कुछ कहना होता, सुमन शान्ता से कहती। यहां तक कि शान्ता भोजन के समय भी रसोई में किसी-न-किसी बहाने आ बैठती थी। वह अपने प्रसवकाल के पहले सुमन को किसी भांति वहां से टालना चाहती थी, क्योंकि सौरीगृह में बंद होकर सुमन की देख-भाल न कर सकेगी। उसे और सब कष्ट सहना मंजूर था, पर यह दाह न सही जाती थी।

लेकिन सुमन सब कुछ देखते हुए भी न देखती थी, सब कुछ सुनते हुए भी कुछ न सुनती थी। नदी में डूबते हुए मनुष्य के समान वह इस तिनके के सहारे को भी छोड़ सकती थी। वह अपना जीवन मार्ग स्थिर न कर सकती थी, पर इस समय सदन के माता-पिता को यहां देखकर उसे यह सहारा छोड़ना पड़ा। इच्छा-शक्ति जो कुछ न कर सकती थी, वह इस अवस्था ने कर दिखाया।

वह पांव दबाती हुई धीरे-धीरे झोंपड़े के पिछवाड़े आई और कान लगाकर सुनने लगी

कि देखूं यह लोग मेरी कुछ चर्चा तो नहीं कर रहे हैं। आध घंटे तक वह इसी प्रकार खड़ी रही। भामा और सुभद्रा इधर-उधर की बातें कर रही थीं। अंत में भामा ने कहा—क्या अब इसकी बहन यहां नहीं रहती?

सुभद्रा—रहती क्यों नहीं, वह कहां जाने वाली है?

भामा—दिखाई नहीं देती।

सुभद्रा—किसी काम से गई होगी। घर का सारा काम तो वही संभाले हुए है।

भामा—आए तो कह देना कि कहीं बाहर लेट रहे। सदन उसी का बनाया खाता होगा?

शान्ता सौरीगृह में से बोली—नहीं, अभी तक तो मैं ही बनाती रही हूं। आजकल वह अपने हाथ से बना लेते हैं।

भामा—तब भी घड़ा-बर्तन तो वह छूती ही रही होगी। यह घड़ा फिंकवा दो, बर्तन फिर से धुल जाएंगे।

सुभद्रा—बाहर कहां सोने की जगह है?

भामा—हो चाहे न हो, लेकिन यहां मैं उसे न सोने दूंगी। वैसी स्त्री का क्या विश्वास?

सुभद्रा—नहीं दीदी, वह अब वैसी नहीं है। वह नेम-धरम से रहती है।

भामा—चलो, वह बड़ी नेम-धरम से रहने वाली है। सात घाट का पानी पी के आज नेमवाली बनी है। देवता की मूरत टूटकर फिर नहीं जुड़ती। वह अब देवी बन जाए, तब भी मैं विश्वास न करूं।

सुमन इससे ज्यादा न सुन सकी। उसे ऐसा मालूम हुआ, मानो किसी से लोहा लाल करके उसके हृदय में चुभा दिया। उल्टे पांव लौटी और उसी अंधकार में एक ओर चल पड़ी।

अंधेरा खूब छाया था, रास्ता भी अच्छी तरह न सूझता था, पर सुमन गिरती-पड़ती चली जाती थी, मालूम नहीं कहां, किधर? वह अपने होश में न थी। लाठी खाकर घबराए हुए कुत्ते के समान वह मूर्च्छावस्था में लुढ़कती जा रही थी। संभलना चाहती थी, पर संभल न सकती थी। यहां तक कि उसके पैरों में एक बड़ा-सा कांटा चुभ गया। वह पैर पकड़कर बैठ गई। चलने की शक्ति न रही।

उसने बेहोशी के बाद होश में आने वाले मनुष्य के समान इधर-उधर चौंककर देखा। चारों ओर सन्नाटा था। गहरा अंधकार छाया हुआ था। केवल सियार अपना राग अलाप रहे थे। यहां मैं अकेली हूं, यह सोचकर सुमन के रोएं खड़े हो गए। अकेला-पन किसे कहते हैं, यह उसे आज मालूम हुआ। लेकिन यह जानते हुए भी कि यहां कोई नहीं है, मैं ही अकेली हूं, उसे अपने चारों ओर, नीचे-ऊपर नाना प्रकार के जीव आकाश में चलते हुए दिखाई देते थे। यहां तक कि उसने घबड़ाकर आंखें बंद कर लीं। निर्जनता कल्पना को अत्यंत रचनाशील बना देती है।

सुमन सोचने लगी, मैं कैसी अभागिन हूं और तो और, सगी बहन भी अब मेरी सूरत नहीं देखना चाहती। उसे कितना अपनाना चाहा, पर वह अपनी न हुई। मेरे सिर कलंक का टीका लग गया और वह अब धोने से नहीं धुल सकता। मैं उसको या किसी को दोष क्यों दूं? यह सब मेरे कर्मों का फल है। आह ! एड़ी में कैसी पीड़ा हो रही है, यह कांटा कैसे निकलेगा? भीतर उसका एक टुकड़ा टूट गया है। कैसा टसक रहा है, नहीं, मैं किसी को दोष नहीं दे सकती। बुरे कर्म तो मैंने किए हैं, उनका फल कौन भोगेगा? विलास-लालसा ने मेरी यह दुर्गति की।

कैसी अंधी हो गई थी, केवल इंद्रियों के सुखभोग के लिए अपनी आत्मा का नाश कर बैठी। मुझे कष्ट अवश्य था। मैं गहने-कपड़े को तरसती थी, अच्छे भोजन को तरसती थी, प्रेम को तरसती थी। उस समय मुझे अपना जीवन दुखमय दिखाई देता था, पर वह अवस्था भी तो मेरे पूर्वजन्म के कर्मों का फल थी और क्या ऐसी स्त्रियां नहीं हैं, जो उससे कहीं अधिक कष्ट झेलकर भी अपनी आत्मा की रक्षा करती हैं? दमयंती पर कैसे-कैसे दुख पड़े, सीता को रामचन्द्र ने घर से निकाल दिया, वह बरसों जंगलों में नाना प्रकार के क्लेश उठाती रहीं, सावित्री ने कैसे-कैसे दु:ख सहे, पर वह धर्म पर दृढ़ रहीं। उतनी दूर क्यों जाऊं मेरे ही पड़ोस में कितनी स्त्रियां रो-रोकर दिन काट रही थीं। अमोला में वह बेचारी अहीरिन कैसी विपत्ति झेल रही थी। उसका पति परदेस से बरसों न आता था, बेचारी उपवास करके पड़ी रहती थी। हाय, इतनी सुंदरता ने मेरी मिट्टी खराब की। मेरे सौंदर्य के अभिमान ने मुझे यह दिन दिखाया।

हा प्रभो ! तुम सुंदरता देकर मन को चंचल क्यों बना देते हो? मैंने सुंदर स्त्रियों को प्राय: चंचल ही पाया। कदाचित् ईश्वर इस युक्ति से हमारी आत्मा की परीक्षा करते हैं, अथवा जीवन-मार्ग में सुंदरता रूपी बाधा डालकर हमारी आत्मा को बलवान, पुष्ट बनाना चाहते हैं। सुंदरता रूपी आग में आत्मा को डालकर उसे चमकाना चाहते हैं। पर हां ! अज्ञानवश हमें कुछ नहीं सूझता, यह आग हमें जला डालती है, यह हमें विचलित कर देती है।

यह कैसे बंद हो, न जाने किस चीज का कांटा था। जो कोई आके मुझे पकड़ ले तो यहां चिल्लाऊंगी, तो कौन सुनेगा? कुछ नहीं, यह न विलास-प्रेम का दोष है, न सुंदरता का दोष है, यह सब मेरे अज्ञान का दोष है, भगवान् ! मुझे ज्ञान दो ! तुम्हीं अब मेरा उद्धार कर सकते हो। मैंने भूल की कि विधवाश्रम में गई। सदन के साथ रहकर भी मैंने भूल की। मनुष्यों से अपने उद्धार की आशा रखना व्यर्थ है। ये आप ही मेरी तरह अज्ञान में पड़े हुए हैं। ये मेरा उद्धार क्या करेंगे? मैं उसी की शरण में जाऊंगी। लेकिन कैसे जाऊं? कौन-सा मार्ग है, दो साल से धर्म-ग्रंथों को पढ़ती हूं, पर कुछ समझ में नहीं आता। ईश्वर, तुम्हें कैसे पाऊं? मुझे इस अंधकार से निकालो ! तुम दिव्य हो, ज्ञानमय हो, तुम्हारे प्रकाश में संभव है, यह अंधकार विच्छिन्न हो जाए। यह पत्तियां क्यों खड़खड़ा रही हैं? कोई जानवर तो नहीं आता? नहीं, कोई अवश्य आता है।

सुमन खड़ी हो गई। उसका चित्त दृढ़ था। वह निर्भय हो गई थी।

सुमन बहुत देर तक इन्हीं विचारों में मग्न रही। इससे उसके हृदय को शांति न होती थी। आज तक उसने इस प्रकार कभी आत्म-विचार नहीं किया था। इस संकट में पड़कर उसकी सद्इच्छा जागृत हो गई थी।

रात बीत चुकी थी। वसंत की शीतल वायु चलने लगी। सुमन ने साड़ी समेट ली और घुटनों पर सिर रख लिया। उसे वह दिन आया, जब इसी ऋतु में इसी समय वह अपने पति के द्वार पर बैठी हुई सोच रही थी कि कहां जाऊं? उस समय वह विलास की आग में जल रही थी। आज भक्ति की शीतल छाया ने उसे आश्रय दिया था।

एकाएक उसकी आंखें झपक गईं। उसने देखा कि स्वामी गजानन्द मृगचर्म धारण किए उसके सामने खड़े दयापूर्ण नेत्रों से उसकी ओर ताक रहे हैं। सुमन उनके चरणों पर गिर पड़ी और दीन भाव से बोली—स्वामी ! मेरा उद्धार कीजिए !

सुमन ने देखा कि स्वामीजी ने उसके सिर पर दया से हाथ फेरा और कहा—ईश्वर ने

मुझे इसीलिए तुम्हारे पास भेजा है। बोलो, क्या चाहती हो, धन?

सुमन—नहीं, महाराज, धन की इच्छा नहीं।

स्वामी—भोग-विलास?

सुमन—महाराज, इसका नाम न लीजिए, मुझे ज्ञान दीजिए।

स्वामी—अच्छा तो सुनो, सतयुग में मनुष्य की मुक्ति ज्ञान से होती थी, त्रेता में सत्य से, द्वापर में भक्ति से, पर इस कलयुग में इसका केवल एक ही मार्ग है और वह है सेवा। इसी मार्ग पर चलो, तुम्हारा उद्धार होगा। जो लोग तुमसे भी दीन, दुखी, दलित हैं, उनकी शरण में जाओ और उनका आशीर्वाद तुम्हारा उद्धार करेगा। कलियुग में परमात्मा इसी दुखसागर में वास करते हैं।

सुमन की आंखें खुल गईं। उसने इधर-उधर देखा, उसे निश्चय था कि मैं जागती थी। इतनी जल्दी स्वामीजी कहां अदृश्य हो गए। अकस्मात् उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि सामने पेड़ों के नीचे स्वामीजी लालटेन लिए खड़े हैं। वह उठकर अंगड़ाती उनकी ओर चली। उसने अनुमान किया था कि वृक्ष समूह सौ गज के अंतर पर होगा, पर वह सौ के बदले दो सौ, तीन सौ, चार सौ गज चली गई और वह वृक्षपुंज और उनके नीचे स्वामीजी लालटेन लिए हुए उतनी ही दूर खड़े थे।

सुमन को भ्रम हुआ, मैं सो तो नहीं रही हूं? यह कोई स्वप्न तो नहीं है? इतना चलने पर भी वह उतनी ही दूर है। उसने जोर से चिल्लाकर कहा—महाराज, आती हूं, आप जरा ठहर जाइए।

उसके कानों में शब्द सुनाई दिए—चली आओ, मैं खड़ा हूं।

सुमन फिर चली, पर दो सौ कदम चलने पर वह थककर बैठ गई। वह वृक्ष-समूह और स्वामीजी ज्यों-के-त्यों सामने सौ गज की दूरी पर खड़े थे।

भय से सुमन के रोएं खड़े हो गए। उसकी छाती धड़कने लगी और पैर थर-थर कांपने लगे। उसने चिल्लाना चाहा, पर आवाज न निकली। सुमन ने सावधान होकर विचार करना चाहा, पर आवाज न निकली।

सुमन ने सावधान होकर विचार करना चाहा कि यह क्या रहस्य है, मैं कोई प्रेत लीला तो नहीं देख रही हूं, लेकिन कोई अज्ञात शक्ति उसे उधर खींचे लिए जाती थी, मानो इच्छा-शक्ति मन को छोड़कर उसी रहस्य के पीछे दौड़ी जाती है।

सुमन फिर चली। अब वह शहर के निकट आ गई थी। उसने देखा कि स्वामीजी एक छोटी-सी झोंपड़ी में चले गए और वृक्ष-समूह अदृश्य हो गया। सुमन ने समझा, यही उनकी कुटी है। उसे बड़ा धीरज हुआ। अब स्वामीजी से अवश्य भेंट होगी। उन्हीं से यह रहस्य खुलेगा।

उसने कुटी के द्वार पर जाकर कहा—स्वामीजी, मैं हूं सुमन!

यह कुटी गजानन्द की ही थी, पर वह सोए हुए थे। सुमन को कुछ जवाब न मिला।

सुमन ने साहस करके कुटी में झांका। आग जल रही थी और गजानन्द कंबल ओढ़े सो रहे थे। सुमन को अचंभा हुआ कि अभी तो चले आते हैं, इतनी जल्दी सो कैसे गए और वह लालटेन कहां चली गई? जोर से पुकारा—स्वामीजी!

गजानन्द उठ बैठे और विस्मित नेत्रों से सुमन को देखा। वह एक मिनट तक ध्यानपूर्वक उसे देखते रहे। तब बोले—कौन? सुमन !

सुमन—हां महाराज, मैं हूं।

गजानन्द—मैं अभी-अभी तुम्हें स्वप्न में देख रहा था।

सुमन ने चकित होकर कहा—आप तो अभी-अभी कुटी में आए हैं।

गजानन्द—नहीं, मुझे सोए बहुत देर हुई, मैं तो कुटी से निकला नहीं। अभी स्वप्न में तुम्हीं को देख रहा था।

सुमन—और मैं आप ही के पीछे-पीछे गंगा किनारे से चली आ रही हूं। आप लालटेन लिए मेरे सामने चले आते थे।

गजानन्द ने मुस्कुराकर कहा—तुम्हें धोखा हुआ।

सुमन—धोखा होता, तो मैं बिना देखे-सुने यहां कैसे पहुंच जाती? मैं नदी किनारे अकेले सोच रही थी कि मेरा उद्धार कैसे होगा? मैं परमात्मा से विनय कर रही थी कि मुझ पर दया करो और अपनी शरण में लो। इतने में आप वहां पहुंचे और मुझे सेवाधर्म का उपेदश दिया। मैं आपसे कितनी ही बातें पूछना चाहती थी, पर आप अदृश्य हो गए। किंतु एक क्षण में मैंने आपको लालटेन लिए थोड़ी दूर पर खड़े देखा। बस, आपके पीछे दौड़ी। यह रहस्य मेरी समझ में नहीं आता। कृपा करके मुझे समझाइए।

गजानन्द—संभव है, ऐसा ही हुआ हो, पर ये बातें अभी तुम्हारी समझ में नहीं आएंगी।

सुमन—कोई देवता तो नहीं थे, जो आपका वेश धारण करके मुझे आपकी शरण में लाए हों?

गजानन्द—यह भी संभव है। तुमने जो कहा, वही मैं स्वप्न में देख रहा था और तुम्हें सेवाधर्म का उपेदश कर रहा था। सुमन, तुम मुझे भलीभांति जानती हो, तुमने मेरे हाथों बहुत दुख उठाए हैं, बहुत कष्ट सहे हैं। तुम जानती हो, मैं कितनी नीच प्रकृति का अधम जीव हूं, लेकिन अपनी उन नीचताओं का स्मरण करता हूं, तो मेरा हृदय व्याकुल हो जाता है। तुम आदर के योग्य थीं, मैंने तुम्हारा निरादर किया। यह हमारी दुरावस्था का, हमारे दुखों का मूल कारण है। ईश्वर वह दिन कब लाएगा कि हमारी जाति में स्त्रियों का आदर होगा। स्त्री मैले-कुचैले, फटे-पुराने वस्त्र पहनकर आभूषण-विहीन होकर, आधे पेट सूखी रोटी खाकर, झोंपड़े में रहकर, मेहनत-मजदूरी कर, सब कष्टों को सहते हुए भी आनंद से जीवन व्यतीत कर सकती है। केवल घर में उसका आदर होना चाहिए, उससे प्रेम होना चाहिए। आदर या प्रेम-विहीन महिला महलों में भी सुख से नहीं रह सकती, पर मैं अज्ञान, अविद्या के अंधकार में पड़ा हुआ था। अपना उद्धार करने का साधन मेरे पास न था। न ज्ञान था, न विद्या थी, न भक्ति थी, न कर्म की सामर्थ्य थी। मैंने अपने बंधुओं की सेवा करने का निश्चय किया। यही मार्ग मेरे लिए सबसे सरल था। तब से मैं यथाशक्ति इसी मार्ग पर चल रहा हूं और अब मुझे अनुभव हो रहा है कि आत्मोद्धार के मार्गों में केवल नाम का अंतर है। मुझे इस मार्ग पर चलकर शांति मिली है और मैं तुम्हारे लिए भी यही मार्ग सबसे उत्तम समझता हूं। मैंने तुम्हें आश्रम में देखा, सदन के घर में देखा, तुम सेवाव्रत में मग्न थीं। तुम्हारे लिए ईश्वर से यही प्रार्थना करता था। तुम्हारे हृदय में दया है, प्रेम है, सहानुभूति है और सेवाधर्म के यही मुख्य साधन हैं। तुम्हारे लिए उसका द्वार खुला है। वह तुम्हें अपनी ओर बुला रहा है। उसमें प्रवेश करो, ईश्वर तुम्हारा कल्याण करेंगे।

सुमन को गजानन्द के मुखारविंद पर एक विमल ज्योति का प्रकाश दिखाई दिया। उसके अंतःकरण में एक अद्भुत श्रद्धा और भक्ति का भाव उदय हुआ। उसने सोचा, इनकी आत्मा

में कितनी दया और प्रेम है। हाय ! मैंने ऐसे नर-रत्न का तिरस्कार किया। इनकी सेवा में रह तो मेरा जीवन सफल हो गया होता। बोली—महाराज, आप मेरे लिए ईश्वर रूप हैं, आपके द्वारा मेरा उद्धार हो सकता है। मैं अपना तन-मन आपकी सेवा में अर्पण करती हूं। यही प्रति एक बार मैंने की थी, पर अज्ञानतावश उसका पालन न कर सकी। वह प्रतिज्ञा मेरे हृदय र निकली थी। आज मैं सच्चे मन से यह प्रतिज्ञा करती हूं। आपने मेरी बांह पकड़ी थी, अब यद्य मैं पतित हो गई हूं, पर आप ही अपनी उदारता से मुझे क्षमादान कीजिए और मुझे सन्मार्ग ले जाइए।

गजानन्द को इस समय सुमन के चेहरे पर प्रेम और पवित्रता की छटा दिखाई दी। व्याकुल हो गए। वह भाव, जिन्हें उन्होंने बरसों से दबा रखे थे, जागृत होने लगे। सुख : आनंद की नवीन भावनाएं उत्पन्न होने लगीं। उन्हें अपना जीवन शुष्क, नीरस, आनंदवि जान पड़ने लगा। वह इन कल्पनाओं से भयभीत हो गए। उन्हें शंका हुई कि यदि मेरे मन यह विचार ठहर गए तो मेरा संयम, वैराग्य और सेवाव्रत इसके प्रवाह में तृण के समान जाएंगे। वह बोल उठे—तुम्हें मालूम है कि यहां एक अनाथालय खोला गया है?

सुमन—हां, इसकी कुछ चर्चा सुनी तो थी।

गजानन्द—इस अनाथालय में विशेषकर वही कन्याएं हैं, जिन्हें वेश्याओं ने हमें स है। कोई पचास कन्याएं होंगी।

सुमन—यह आपके ही उपदेशों का फल है।

गजानन्द—नहीं, ऐसा नहीं है। इसका संपूर्ण श्रेय पंडित पद्मसिंह को है, मैं तो के उनका सेवक हूं। इस अनाथालय के लिए एक पवित्र आत्मा की आवश्यकता है और तु वह आत्मा हो। मैंने बहुत ढूंढ़ा, पर कोई ऐसी महिला न मिली, जो यह काम प्रेम-भाव से क जो कन्याओं का माता की भांति पालन करे और अपने प्रेम से अकेली उनकी माताओं का स्‍ पूरा कर दे, वह बीमार पड़ें तो उनकी सेवा करे, उनके फोड़े-फुंसियां, मल-मूत्र देखकर घ न करे और अपने व्यवहार से उनमें धार्मिक भावों का संचार कर दे कि उनके पिछले कुसंस मिट जाएं और उनका जीवन सुख से कटे। वात्सल्य के बिना यह उद्देश्य पूरा नहीं हो सक ईश्वर ने तुम्हें ज्ञान और विवेक दिया है, तुम्हारे हृदय में दया है, करुणा है, धर्म है और तु इस कर्त्तव्य का भार संभाल सकती हो। मेरी प्रार्थना स्वीकार करोगी?

सुमन की आंखें सजल हो गईं। मेरे विषय में एक ज्ञानी महात्मा का यह विचार है, सोचकर उसका चित्त गद्‌गद् हो गया। उसे स्वप्न में भी ऐसी आशा न थी कि उस पर इ विश्वास किया जाएगा और उसे सेवा का ऐसा महान् गौरव प्राप्त होगा। उसे निश्चय हो कि परमात्मा ने गजानन्द को यह प्रेरणा की है। अभी थोड़ी देर पहले वह किसी बालक कीचड़ लपेटे देखती, तो उसकी ओर से मुंह फेर लेती, पर गजानन्द ने उस पर विश्वास क उस घृणा को जीत लिया था, उसमें प्रेम-संचार कर दिया था। हम अपने ऊपर विश्वास क वालों को कभी निराश नहीं करना चाहते और ऐसे बोझों को उठाने को तैयार हो जाते हैं जि हम असाध्य समझते थे। विश्वास से विश्वास उत्पन्न होता है। सुमन ने अत्यन्त विनीत से कहा—आप लोग मुझे इस योग्य समझते हैं, यह मेरा परम सौभाग्य है। मैं किसी के काम आ सकूं, किसी की सेवा कर सकूं, यह मेरी परम लालसा थी। आपके बताए हुए आ तक मैं पहुंच न सकूंगी, पर यथाशक्ति मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगी। यह कहते-व

सुमन चुप हो गई। उसका सिर झुक गया और आंखें डबडबा आईं। उसकी वाणी से जो कुछ न हो सकता, वह उसके मुख के भाव ने प्रकट कर दिया। मानो वह कह रही थी, यह आपकी असीम कृपा है, जो आप मुझ पर ऐसा विश्वास करते हैं! कहां मुझ जैसी नीच, दुश्चरित्रा और कहां यह महान् पद। पर ईश्वर ने चाहा, तो आपको इस विश्वासदान के लिए पछताना न पड़ेगा।

गजानन्द ने कहा–मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी। परमात्मा तुम्हारा कल्याण करे।

यह कहकर गजानन्द उठ खड़े हुए। पौ फट रही थी, पपीहे की ध्वनि सुनाई दे रही थी। उन्होंने अपना कमंडल उठाया और गंगास्नान करने चले गए।

सुमन ने कुटी के बाहर निकलकर देखा, जैसे हम नींद से जागकर देखते हैं। समय कितना सुहावना है, कितना शांतिमय, कितना उत्साहपूर्ण। क्या उसका भविष्य भी ऐसा ही होगा? क्या उसके भविष्य-जीवन का भी प्रभात होगा? उसमें भी कभी ऊषा की झलक दिखाई देगी? कभी सूर्य का प्रकाश होगा। हां, होगा और यह सुहावना शांतिमय प्रभात आनेवाले दिनरूपी जीवन का प्रभात है।

छप्पन

एक साल बीत गया। पंडित मदनसिंह पहले तीर्थ-यात्रा पर उधार खाए बैठे थे। जान पड़ता था, सदन के घर आते ही एक दिन भी न ठहरेंगे, सीधे बद्रीनाथ पहुंचकर दम लेंगे, पर जब से सदन आ गया है, उन्होंने भूलकर भी तीर्थ-यात्रा का नाम नहीं लिया। पोते को गोद में लिए आसामियों का हिसाब करते हैं, खेतों की निगरानी करते हैं। माया ने और भी जकड़ लिया है। हां, भामा अब कुछ निश्चिंत हो गई है। पड़ोसिनों से वार्तालाप करने का कर्त्तव्य अपने सिर से नहीं हटाया। शेष कार्य उसने शान्ता पर छोड़ दिए हैं।

पंडित पद्मसिंह ने वकालत छोड़ दी। अब वह म्युनिसिपैलिटी के प्रधान कर्मचारी हैं। इस काम से उन्हें बहुत रुचि है। शहर दिनों-दिन उन्नति कर रहा है। साल के भीतर ही कई नई सड़कें, नए बाग तैयार हो गए हैं, अब उनका इरादा है इक्के और गाड़ी वालों के लिए शहर के बाहर एक मुहल्ला बनवा दें। शर्माजी के कई पहले के मित्र अब उनके विरोधी हो गए हैं और पहले के कितने ही विरोधियों से मेल हो गया है, किंतु महाशय विट्ठलदास पर उनकी श्रद्धा दिनों-दिन बढ़ती जाती है। वह बहुत चाहते हैं कि महाशय को म्युनिसिपैलिटी में कोई अधिकार दें, पर विट्ठलदास राजी नहीं होते। वह नि:स्वार्थ कर्म की प्रतिज्ञा को नहीं तोड़ना चाहते। उनका विचार है कि अधिकारी बनकर वह इतना हित नहीं कर सकते, जितना पृथक् रहकर कर सकते हैं। उनका विधवाश्रम इन दिनों बहुत उन्नति पर है और म्युनिसिपैलिटी से उसे विशेष सहायता मिलती है। आजकल वह कृषकों की सहायता के लिए एक कोष स्थापित करने का उद्योग कर रहे हैं, जिससे किसानों को बीज और रुपये नाममात्र सूद पर उधार दिए जा सकें, इस सत्कार्य में सदन बाबू विट्ठलदास का दाहिना हाथ बना हुआ है।

सदन का अपने गांव में मन नहीं लगा। वह शान्ता को वहां छोड़कर फिर गंगा किनारे

के झोंपड़े में आ गया है और उस व्यवसाय को खूब बढ़ा रहा है। उसके पास अब पांच नावें हैं और सैकड़ों रुपये महीने का लाभ हो रहा है। वह अब एक स्टीमर मोल लेने का विचार कर रहा है।

स्वामी गजानन्द अधिकतर देहातों में रहते हैं। उन्होंने निर्धनों की कन्याओं का उद्धार करने के निमित्त अपना जीवन अर्पण कर दिया है। शहर में आते हैं, तो दो-एक दिन से अधिक नहीं ठहरते।

सत्तावन

कार्तिक का महीना था। पद्मसिंह सुभद्रा को लेकर गंगा-स्नान कराने ले गए थे। लौटती बार वह अलईपुर की ओर से आ रहे थे। सुभद्रा गाड़ी की खिड़की से बाहर झांकती चली आती थी और सोचती थी कि यहां इस सन्नाटे में लोग कैसे रहते हैं। उनका मन कैसे लगता है। इतने में उसे एक सुंदर भवन दिखाई पड़ा, जिसके फाटक पर मोटे अक्षरों में लिखा था–सेवासदन।

सुभद्रा ने शर्माजी से पूछा–क्या यही सुमनबाई का सेवासदन है?

शर्माजी ने कुछ उदासीन भाव से कहा–हां। वह पछता रहे थे कि इस रास्ते से क्यों आए? यह अब अवश्य ही इस आश्रम को देखेगी। मुझे भी जाना पड़ेगा, बुरे फंसे। शर्माजी ने अब तक एक बार भी सेवासदन का निरीक्षण नहीं किया था। गजानन्द ने कितनी ही बार चाहा कि उन्हें लाएं, पर वह कोई-न-कोई बहाना कर दिया करते थे। वह सब कुछ कर सकते थे, पर सुमन के सम्मुख आना उनके लिए कठिन था। उन्हें सुमन की वे बातें कभी न भूलती थीं, जो उसने कंगन देते समय पार्क में उनसे कही थीं। उस समय वह सुमन से इसलिए भागते थे कि उन्हें लज्जा आती थी। उनके चित्त से यह विचार कभी दूर न होता था कि वह स्त्री, जो इतनी साध्वी तथा सच्चरित्रा हो सकती है, केवल मेरे कुसंस्कारों के कारण कुमार्ग-गामिनी बनी–मैंने ही उसे कुएं में गिराया।

सुभद्रा ने कहा–जरा गाड़ी रोक लो, इसे देखूंगी।

पद्मसिंह–आज बहुत देर होगी, फिर कभी आ जाना।

सुभद्रा–साल-भर से तो आ रही हूं, पर आज तक कभी न आ सकी। यहां से जाकर फिर न जाने कब फुरसत हो?

पद्मसिंह–तुम आप ही नहीं आईं। कोई रोकता था?

सुभद्रा–भला, जब नहीं आई तब नहीं आई। अब तो आई हूं। अब क्यों नहीं चलते?

पद्मसिंह–चलने से मुझे इनकार थोड़े ही है, केवल देर हो जाने का भय है। नौ बजते होंगे।

सुभद्रा–यहां कौन बहुत देर लगेगी, दस मिनट में लौट आएंगे।

पद्मसिंह–तुम्हारी हठ करने की बुरी आदत है। कह दिया कि इस समय मुझे देर होगी, लेकिन मानती नहीं हो।

सुभद्रा–जरा घोड़े को तेज कर देना, कसर पूरी हो जाएगी।

पद्मसिंह–अच्छा तो तुम जाओ। अब से संध्या तक जब जी चाहे घर लौट आना। मैं चलता हूं। गाड़ी छोड़े जाता हूं। रास्ते में कोई सवारी किराए पर कर लूंगा।

सुभद्रा–तो इसकी क्या आवश्यकता है। तुम यहीं बैठे रहो, मैं अभी लौट आती हूं।

पद्मसिंह–(गाड़ी से उतरकर) मैं चलता हूं, तुम्हारा जब जी चाहे आना।

सुभद्रा इस हीले-हवाले का कारण समझ गई। उसने 'जगत' में कितनी ही बार 'सेवासदन' की प्रशंसा पढ़ी थी। पंडित प्रभाकर राव की इन दिनों सेवासदन पर बड़ी दया-दृष्टि थी। अतएव सुभद्रा को इस आश्रम से प्रेम-सा हो गया था और सुमन के प्रति उसके हृदय में भक्ति उत्पन्न हो गई थी। वह सुमन को इस नई अवस्था में देखना चाहती थी। उसको आश्चर्य होता था कि सुमन इतने नीचे गिरकर कैसे ऐसी विदुषी हो गई कि पत्रों में उसकी प्रशंसा छपती है। उसके जी में तो आया कि पंडितजी को खूब आड़े हाथों ले, पर साईस खड़ा था, इसलिए कुछ न बोल सकी। गाड़ी से उतरकर आश्रम में दाखिल हुई।

वह ज्योंही बरामदे में पहुंची कि एक स्त्री ने भीतर जाकर सुमन को उसके आने की सूचना दी और एक क्षण में सुभद्रा ने सुमन को आते देखा। वह उस केशहीना, आभूषण-विहीना सुमन को देखकर चकित हो गई। उसमें न वह कोमलता थी, न वह चपलता, न वह मुस्कराती हुई आंखें, न हंसते हुए होंठ। रूप-लावण्य की जगह पवित्रता की ज्योति झलक रही थी।

सुमन निकट आकर सुभद्रा के पैरों पर गिर पड़ी और सजल नयन होकर बोली–बहूजी, आज, मेरे धन्य भाग्य हैं कि आपको यहां देख रही हूं।

सुभद्रा की आंखें भर आईं। उसने सुमन को उठाकर छाती से लगा लिया और गद्गद स्वर में कहा–बाईजी, आने का तो बहुत जी चाहता था, पर आलस्यवश अब तक न आ सकी थी।

सुमन–शर्माजी भी हैं या आप अकेले ही आई हैं?

सुभद्रा–साथ तो थे, पर उन्हें देर हो गई थी, इसलिए वह दूसरी गाड़ी करके चले गए।

सुमन ने उदास होकर कहा–देर तो क्या होती थी, पर वह यहां आना ही नहीं चाहते। मेरा अभाग्य ! दुख केवल यह है कि जिस आश्रम के वह स्वयं जन्मदाता हैं, उससे मेरे कारण उन्हें इतनी घृणा है। मेरी हृदय से अभिलाषा थी कि एक बार आप और वह दोनों यहां आते। आधी तो आज पूरी हुई, शेष भी कभी-न-कभी पूरी ही होगी। वह मेरे उद्धार का दिन होगा।

यह कहकर सुमन ने सुभद्रा को आश्रम दिखाना शुरू किया। भवन में पांच बड़े कमरे थे। पहले कमरे में लगभग तीस बालिकाएं बैठी हुई कुछ पढ़ रही थीं। उनकी अवस्था बारह वर्ष से पंद्रह वर्ष तक थी। अध्यापिका ने सुभद्रा को देखते ही आकर उससे हाथ मिलाया। सुमन ने दोनों का परिचय कराया। सुभद्रा को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह महिला मिस्टर रुस्तम भाई बैरिस्टर की सुयोग्य पत्नी हैं। नित्य दो घंटे के लिए आश्रम में आकर इन युवतियों को पढ़ाया करती थीं।

दूसरे कमरे में भी इतनी कन्याएं थीं। उनकी अवस्था आठ से लेकर बारह वर्ष तक थी। उनमें कोई कपड़े काटती थी, कोई सीती थी और कोई अपने पास वाली लड़की को चिकोटी काटती थी। यहां कोई अध्यापिका न थी। एक बूढ़ा दरजी काम कर रहा था। सुमन ने कन्याओं

के तैयार किए हुए कुरते, जाकेट आदि सुभद्रा को दिखाए।

तीसरे कमरे में पंद्रह-बीस छोटी-छोटी बालिकाएं थीं, कोई पांच वर्ष से अधिक की न थी। इनमें कोई गुड़िया खेलती थी, कोई दीवार पर लटकती हुई तस्वीरें देखती थी। सुमन आप ही इस कक्षा की अध्यापिका थी।

सुभद्रा यहां से सामने वाले बगीचे में आकर इन्हीं लड़कियों के लगाए हुए फूल-पत्ते देखने लगी। कन्याएं वहां आलू-गोभी की क्यारियों में पानी दे रही थीं। उन्होंने सुभद्रा को सुंदर फूलों का एक गुलदस्ता भेंट किया।

भोजनालय में कई कन्याएं बैठी भोजन कर रही थीं। सुमन ने सुभद्रा को इन कन्याओं के बनाए हुए आचार-मुरब्बे आदि दिखाए।

सुभद्रा को यहां का सुप्रबंध, शांति और कन्याओं का शील-स्वभाव देखकर बड़ा आनंद हुआ। उसने मन में सोचा, सुमन इतने बड़े आश्रम को अकेले कैसे चलाती होगी, मुझसे तो कभी न हो सकता। कोई लड़की मलिन या उदास नहीं दिखाई देती।

सुमन ने कहा—मैंने यह भार अपने ऊपर ले तो लिया, पर मुझमें संभालने की शक्ति नहीं है। लोग जो सलाह देते हैं, वही मेरा आधार है। आपको भी जो कुछ त्रुटि दिखाई दे, वह कृपा करके बता दीजिए, इससे मेरा उपकार होगा।

सुभद्रा ने हंसकर कहा—बाईजी, मुझे लज्जित न करो। मैंने तो जो कुछ देखा है, उसी से चकित हो रही हूं, तुम्हें सलाह क्या दूंगी? बस, इतना ही कह सकती हूं कि ऐसा अच्छा प्रबंध विधवा-आश्रम का भी नहीं है।

सुमन—आप संकोच कर रही हैं।

सुभद्रा—नहीं, सत्य कहती हूं। मैंने जैसा सुना था, इसे उससे बढ़कर पाया ! हां, यह तो बताओ, इन बालिकाओं की माताएं इन्हें देखने आती हैं या नहीं?

सुमन—आती हैं, पर मैं यथासाध्य इस मेल-मिलाप को रोकती हूं।

सुभद्रा—अच्छा, इनका विवाह कहां होगा?

सुमन—यह तो टेढ़ी खीर है। हमारा कर्त्तव्य यह है कि इन कन्याओं को चतुर गृहिणी बनने के योग्य बना दें। उनका आदर समाज करेगा या नहीं, मैं नहीं कह सकती।

सुभद्रा—बैरिस्टर साहब की पत्नी को इस काम में बड़ा प्रेम है।

सुमन—यह कहिए कि आश्रम की स्वामिनी वही हैं। मैं तो केवल उनकी आज्ञाओं का पालन करती हूं।

सुभद्रा—क्या कहूं, मैं किसी योग्य नहीं, नहीं तो मैं भी यहां कुछ काम किया करती।

सुमन—आते-आते तो आप आज आई हैं, उस पर शर्माजी को नाराज करके। शर्माजी फिर इधर आने तक न देंगे।

सुभद्रा—नहीं। अब की इतवार को मैं उन्हें अवश्य खींच लाऊंगी। बस, मैं लड़कियों को पान लगाना और खाना बनाना सिखाया करूंगी।

सुमन—(हंसकर) इस काम में आप कितनी ही लड़कियों को अपने से भी निपुण पाएंगी।

इतने में दस लड़कियां सुंदर वस्त्र पहने हुए आईं और सुभद्रा के सामने खड़ी होकर मधुर स्वर में गाने लगीं :

हे जगत पिता, जगत प्रभु, मुझे अपना प्रेम और प्यार दे।
तेरी भक्ति में लगे मन मेरा, विषय कामना को बिसार दे।

सुभद्रा यह गीत सुनकर बहुत प्रसन्न हुई और लड़कियों को पांच रुपये इनाम दिया।

जब वह चलने लगी, तो सुमन ने करुण स्वर में कहा—मैं इसी रविवार को आपकी राह देखूंगी।

सुभद्रा—मैं अवश्य आऊंगी। ·

सुमन—शान्ता तो कुशल से है?

सुभद्रा—हां, पत्र आया था। सदन तो यहां नहीं आए?

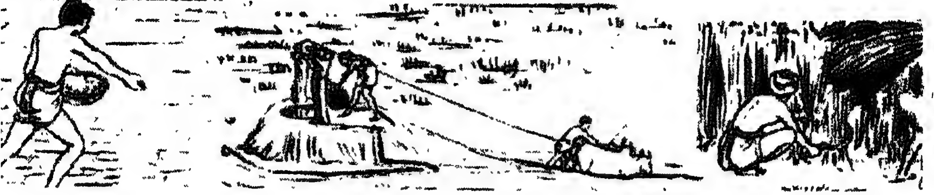
सुमन—नहीं, पर दो रुपये मासिक चंदा भेज दिया करते हैं।

सुभद्रा—आप बैठिए, मुझे आज्ञा दीजिए।

सुमन—आपके आने से मैं कृतार्थ हो गई। आपकी भक्ति, आपका प्रेम, आपकी कार्यकुशलता, किस-किसकी बड़ाई करूं। आप वास्तव में स्त्री-समाज का शृंगार हैं। (सजल नेत्रों से) मैं तो अपने को आपकी दासी समझती हूं। जब तक जीऊंगी, आप लोगों का यश मानती रहूंगी। मेरी बांह पकड़ी और मुझे डूबने से बचा लिया। परमात्मा आप लोगों का सदैव कल्याण करें।

• • •





प्रेमाश्रम

रचनाकाल : 2 मई, 1918 – 25 फरवरी, 1920

प्रकाशनकाल : जनवरी, 1922





हिन्दी पुस्तक एजेन्सीमाला—संख्या १८

प्रेमाश्रम

लेखक—

प्रेमप्रमोद, नवनिधि, प्रेमपचीसी, संग्राम, कर्बला, सेवासदन,

प्रेमपूर्णिमा, शान्ति, बैंकका दिवाला,

आत्माराम, आदि के रचयिता

श्रीयुत प्रेमचन्दजी

[illegible]

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी,
२०३ हरिसन रोड,
कलकत्ता।

चतुर्थ बार) सं० १९८८ (मूल्य २।)

(चतुर्थ संस्करण का मुखपृष्ठ)

एक

संध्या हो गई है। दिन-भर के थके-मांदे बैल खेत से आ गए हैं। घरों से धुएं के काले बादल उठने लगे। लखनपुर में आज परगने के हाकिम की पड़ताल थी। गांव के नेतागण दिन-भर उनके घोड़े के पीछे-पीछे दौड़ते रहे थे। इस समय वह अलाव के पास बैठे हुए नारियल पी रहे हैं और हाकिमों के चरित्र पर अपना-अपना मत प्रकट कर रहे हैं। लखनपुर बनारस नगर से बारह मील पर उत्तर की ओर एक बड़ा गांव है। यहां अधिकांश कुर्मी और ठाकुरों की बस्ती है, दो-चार घर अन्य जातियों के भी हैं।

मनोहर ने कहा—भाई हाकिम तो अंग्रेज, अगर यह न होते तो इस देश वाले हाकिम हम लोगों को पीसकर पी जाते।

दुखरन भगत ने इस कथन का समर्थन किया—जैसा उनका अकबाल है, वैसा ही नारायण ने स्वभाव भी दिया है। न्याय करना यही जानते हैं, दूध का दूध और पानी का पानी, घूस-रिसवत से कुछ मतलब नहीं। आज छोटे साहब को देखा, मुंह-अंधेरे घोड़े पर सवार हो गए और दिन-भर पड़ताल की। तहसीलदार, पेसकार, कानूनगो एक भी उनके साथ नहीं पहुंचता था।

सुक्खू कुर्मी ने कहा—यह लोग अंग्रेजों की क्या बराबरी करेंगे? बस खाली गाली देना और इजलास पर गरजना जानते हैं। घर से तो निकलते ही नहीं। जो कुछ चपरासी या पटवारी ने कह दिया, वही मान गए। दिन-भर पड़े-पड़े आलसी हो जाते हैं।

मनोहर—सुनते हैं अंग्रेज लोग घी नहीं खाते।

सुक्खू—घी क्यों नहीं खाते? बिना घी-दूध के इतना बूता कहां से होगा? वह मसक्कत करते हैं, इसी से उन्हें घी-दूध पच जाता है। हमारे देशी हाकिम खाते तो बहुत हैं पर खाट पर पड़े रहते हैं। इसी से उनका पेट बढ़ जाता है।

दुखरन भगत—तहसीलदार साहब तो ऐसे मालूम होते हैं जैसे कोल्हू। अभी पहले आए थे तो कैसे दुबले-पतले थे, लेकिन दो ही साल में उन्हें न जाने कहां की मोटाई लग गई।

सुक्खू—रिसवत का पैसा देह फुला देता है।

मनोहर—यह कहने की बात है। तहसीलदार साहब एक पैसा भी नहीं लेते।

सुक्खू—बिना हराम की कौड़ी खाए देह फूल ही नहीं सकती।

मनोहर ने हंसकर कहा—पटवारी की देह क्यों नहीं फूल जाती, चुचके आम बने हुए हैं।

सुक्खू—पटवारी सैकड़े-हजार की गठरी थोड़े ही उड़ाता है। जब बहुत दांव-पेंच किया तो दो-चार रुपये मिल गए। उसकी तनख्वाह तो कानूनगोय ले लेते हैं। इसी छीन-झपट पर

निर्वाह करता है, तो देह कहां से फूलेगी? तकावी में देखा नहीं, तहसीलदार साहब ने हजारों पर हाथ फेर दिया।

दुखरन—कहते हैं कि विद्या से आदमी की बुद्धि ठीक हो जाती है, पर यहां उलटा ही देखने में आता है। यह हाकिम और अमले तो पढ़े-लिखे विद्वान होते हैं, लेकिन किसी को दया-धर्म का विचार नहीं होता।

सुक्खू—जब देश के अभाग आते हैं तो सभी बातें उलटी हो जाती हैं। जब बीमार के मरने के दिन आ जाते हैं तो औषधि भी औगुन करती है।

मनोहर—हमीं लोग तो रिसवत देकर उनकी आदत बिगाड़ देते हैं। हम न दें, तो वह कैसे पावें। बुरे तो हम हैं ! लेने वाला मिलता हुआ धन थोड़े ही छोड़ देगा? यहां तो आपस में ही एक-दूसरे को खाए जाते हैं। तुम हमें लूटने को तैयार, हम तुम्हें लूटने को तैयार। इसका और क्या फल होगा?

दुखरन—अरे तो हम मूरख, गंवार, अपढ़ हैं। वह लोग तो विद्वान हैं। उन्हें न सोचना चाहिए कि यह गरीब लोग हमारे ही भाई-बंद हैं? हमें भगवान् ने विद्या दी है, तो इन पर निगाह रखें। इन विद्वानों से तो हम मूरख ही अच्छे ! अन्याय सह लेना अन्याय करने से तो अच्छा है।

सुक्खू—यह विद्या का दोष नहीं, देश का अभाग है।

मनोहर—न विद्या का दोष है, न देश का अभाग; यह हमारी फूट का फल है। सब अपना दोष है। विद्या से और कुछ नहीं होता तो दूसरों का धन ऐंठना तो आ जाता है। मूरख रहने से तो अपना धन गंवाना पड़ता है।

सुक्खू—हां, तुमने यह ठीक कहा कि विद्या से दूसरों का धन लेना आ जाता है। हमारे बड़े सरकार जब तक रहे दो साल की मालगुजारी बाकी पड़ जाती थी, तब भी डांट-डपट कर छोड़ देते थे। छोटे सरकार जब से मालिक हुए हैं, देखते हो, कैसा उपद्रव कर रहे हैं। रात-दिन जाफा, बेदखली, अखराज की धूम मची हुई है।

दुखरन—कारिंदा साहब कल कहते थे कि अबकी इस गांव की बारी है, देखो क्या होता है?

मनोहर—होगा क्या, तुम हमारे खेत पर चढ़ोगे, हम तुम्हारे खेत पर चढ़ेंगे, छोटे सरकार की चांदी होगी। सरकार की आंखें तो तब खुलतीं जब कोई किसी के खेत पर दांव न लगाता। सब कौल कर लेते। लेकिन यह कहां होने वाला है। सबसे पहले तो सुक्खू महतो दौड़ेंगे?

सुक्खू—कौन कहे कि मनोहर न दौड़ेंगे !

मनोहर—मुझसे चाहे गंगाजली उठवा लो, मैं खेत पर न जाऊंगा और जाऊंगा कैसे, कुछ घर में पूंजी भी तो हो। अभी रब्बी में महीनों की देर है और घर में अनाज का दाना नहीं है। गुड़ एक सौ रुपये से कुछ ऊपर ही हुआ है, लेकिन बैल बैठाऊ हो गया है, डेढ़ सौ लगेंगे, तब कहीं एक बैल आवेगा।

दुखरन—क्या जाने क्या हो गया कि अब खेतों में बरक्कत ही नहीं रही। पांच बीघे रब्बी बोई थी, लेकिन दस मन की भी आशा नहीं है और गुड़ का तुम जानते ही हो, जो हाल हुआ। कोल्हाड़े में ही बिसेसर साह ने तौला लिया। बाल-बच्चों के लिए शीरा तक न बचा। देखें भगवान् कैसे पार लगाते हैं।

अभी यही बातें हो रही थीं कि गिरधर महाराज आते हुए दिखाई दिए। लंबा डील था,

भरा हुआ बदन, तनी हुई छाती, सिर पर एक पगड़ी, बदन पर एक चुस्त मिरजई। मोटा-सा लट्ठ कंधे पर रक्खे हुए थे। उन्हें देखते ही सब लोग मांचों से उतर कर जमीन पर बैठ गए। यह महाशय जमींदार के चपरासी थे। जबान से सबके दोस्त, दिल से सबके दुश्मन थे। जमींदार के सामने जमींदार की-सी कहते थे, असामियों के सामने असामियों की-सी। इसलिए उनके पीठ पीछे लोग चाहे उनकी कितनी ही बुराइयां करें, मुंह पर कोई कुछ न कहता था।

सुक्खू ने पूछा—कहो महाराज, किधर से?

गिरधर ने इस ढंग से कहा, मानो वह जीवन से असंतुष्ट है—किधर से बताएं, ज्ञान बाबू के मारे नाकों दम है। अब हुक्म हुआ है कि असामियों को घी के लिए रुपये दे दो। रुपये सेर का भाव कटेगा। दिन-भर दौड़ते हो गया।

मनोहर—कितने का घी मिला?

गिरधर—अभी तो खाली रुपये बांट रहे हैं। बड़े सरकार की बरसी होने वाली है। उसी की तैयारी है। आज कोई पचास रुपये बांटे हैं।

मनोहर—लेकिन बाजार-भाव तो दस छटांक का है।

गिरधर—भाई, हम तो हुकुम के गुलाम हैं। बाजार में छटांक भर बिके, हमको सेर भर लेने का हुक्म है। इस गांव में भी पचास रुपये देने हैं। बोलो.सुक्खू महतो, कितना लेते हो?

सुक्खू ने सिर नीचा करके कहा—जितना चाहे दे दो, तुम्हारी जमीन में बसे हुए हैं, भाग के कहां जाएंगे?

गिरधर—तुम बड़े असामी हो। भला दस रुपये तो लो और दुखरन भगत, तुम्हें कितना दें?

दुखरन—हमें भी पांच रुपये दे दो।

गिरधर—और तुम्हें मनोहर?

मनोहर—मेरे घर तो एक ही भैंस लगती है, उसका दूध बाल-बच्चों में उठ जाता है, घी होता ही नहीं। अगर गांव में कोई कह दे कि मैंने एक पैसे का भी घी बेचा है तो पचास रुपये लेने पर तैयार हूं।

गिरधर—अरे क्या पांच रुपये भी न लोगे? भला भगत के बराबर तो हो जाओ।

मनोहर—भगत के घर में भैंस लगती है, घी बिकता है, वह जितना चाहें ले लें। मैं रुपये ले लूं तो मुझे बाजार से दस छटांक का मोल लेकर देना पड़ेगा।

गिरधर—जो चाहो करो, पर सरकार का हुकुम तो मानना ही पड़ेगा। लालगंज में तीस रुपये दे आया हूं। वहां गांव में एक भैंस भी नहीं है। लोग बाजार से ही लेकर देंगे। पड़ाव में बीस रुपये दिए हैं। वहां भी जानते हो किसी के भैंस नहीं है।

मनोहर—भैंसें न होंगी तो पास रुपये होंगे। यहां तो गांठ में कौड़ी भी नहीं है।

गिरधर—जब जमींदार की जमीन जोतते हो तो उसके हुकुम के बाहर नहीं जा सकते।

मनोहर—जमीन कोई खैरात जोतते हैं? लगान देते हैं। एक किस्त भी बाकी पड़ जाय तो नालिस होती है।

गिरधर—मनोहर, घी तो तुम दोगे दौड़ते हुए, पर चार बातें सुनकर। जमींदार के गांव में रहकर उससे हेकड़ी नहीं चल सकती। अभी कारिंदा साहब बुलाएंगे तो रुपये भी लोगे, हाथ-पैर भी पड़ोगे, मैं सीधे-सीधे कहता हूं तो तेवर बदलते हो।

मनोहर ने गर्म होकर कहा-- न कारिंदा कोई काटू है न जमींदार कोई हौवा है। यहां कोई दबैल नहीं है। जब कौड़ी-कौड़ी लगान चुकाते हैं तो धौंस क्यों सहें?

गिरधर--सरकार को अभी जानते नहीं हो। बड़े सरकार का जमाना अब नहीं है। इनके चंगुल में एक बार आ जाओगे तो निकलते न बनेगा।

मनोहर की क्रोधाग्नि और प्रचंड हुई। बोला--अच्छा जाओ, तोप पर उड़वा देना। गिरधर महाराज उठ खड़े हुए। सुक्खू और दुखरन ने अब मनोहर के साथ बैठना उचित न समझा। वह भी गिरधर के साथ चले गए। मनोहर ने इन दोनों आदमियों को तीव्र दृष्टि से देखा और नारियल पीने लगा।

दो

लखनपुर के जमींदारों का मकान काशी में औरंगाबाद के निकट था। मकान के दो खंड आमने-सामने बने हुए थे। एक जनाना मकान था, दूसरी मरदानी बैठक। दोनों खंडों के बीच की जमीन बेल-बूटे से सजी हुई थी, दोनों ओर ऊंची दीवारें खिंची हुई थीं लेकिन दोनों ही खंड जगह-जगह टूट-फूट गए थे। कहीं कोई कड़ी टूट गई थी और उसे थूनियों के सहारे रोका गया था, कहीं दीवार फट गई थी और कहीं छत धंस पड़ी थी--एक वृद्ध रोगी की तरह जो लाठी के सहारे चलता हो। किसी समय यह परिवार नगर में बहुत प्रतिष्ठित था, किंतु ऐश्वर्य के अभिमान और कुलमर्यादा-पालन ने उसे धीरे-धीरे इतना गिरा दिया कि अब मोहल्ले का बनिया पैसे-धले की चीज भी उनके नाम पर उधार न देता था। लाला जटाशंकर मरते-मरते मर गए, पर जब घर से निकले तो पालकी पर। लड़के-लड़कियों के विवाह किए तो हौसले से। कोई उत्सव आता तो हृदय सरिता की भांति उमड़ आता था। कोई मेहमान आ जाता तो उसे सर-आंखों पर बैठाते, साधु-सत्कार और अतिथि-सेवा में उन्हें हार्दिक आनंद होता था। इसी मर्यादा-रक्षा में जायदाद का बड़ा भाग बिक गया, कुछ रेहन हो गया और अब लखनपुर के सिवा चार और छोटे-छोटे गांव रह गए थे जिनसे कोई चार हजार वार्षिक लाभ होता था।

लाला जटाशंकर के एक छोटे भाई थे, उनका नाम प्रभाशंकर था। यही सियाह और सफेद के मालिक थे। बड़े लाला साहब को अपनी भागवत और गीता से अनुराग था। घर का प्रबंध छोटे भाई के ही हाथों में था। दोनों भाइयों में इतना प्रेम था कि उनके बीच में कभी कटु वाक्यों की नौबत न आई थी। स्त्रियों में तू-तू, मैं-मैं होती थी, किंतु भाइयों पर इसका असर न पड़ता था। प्रभाशंकर स्वयं कितना ही कष्ट उठाएं अपने भाई से कभी भूलकर भी शिकायत न करते थे। जटाशंकर भी उनके किसी काम में हस्तक्षेप न करते थे।

लाला जटाशंकर का एक साल पूर्व देहांत हो गया था। उनकी स्त्री उनके पहले ही मर चुकी थी। उनके दो पुत्र थे, प्रेमशंकर और ज्ञानशंकर। दोनों के विवाह हो चुके थे। प्रेमशंकर चार-पांच वर्षों से लापता थे। उनकी पत्नी श्रद्धा घर में पड़ी उनके नाम को रोया करती थी। ज्ञानशंकर ने गत वर्ष बी० ए० की उपाधि प्राप्त की थी और हर समय हारमोनियम बजाने में मगन रहते थे। उनके एक पुत्र था, मायाशंकर। लाला प्रभाशंकर की स्त्री जीवित थी। उनके तीन

बेटे थे और दो बेटियां। बड़े बेटे दयाशंकर सब-इंस्पेक्टर थे। विवाह हो चुका था। बाकी लड़के अभी मदरसे में अंग्रेजी पढ़ते थे। दोनों पुत्रियां भी कुंवारी थीं।

प्रेमशंकर ने बी० ए० की डिग्री लेने के बाद अमेरिका जाकर आगे पढ़ने की इच्छा थी, पर जब चाचा को इसका विरोध करते देखा तो एक दिन चुपके से भाग निकले। घरवा से पत्र-व्यवहार करना भी बंद कर दिया। उनके पीछे ज्ञानशंकर ने बाप और चाचा से ला ठानी। उनकी फिजूलखर्चियों की कड़ी आलोचना किया करते। कहते, क्या आप लोग हमारे लिए कुछ भी नहीं छोड़ जाएंगे? क्या आपकी यही इच्छा है कि हम रोटियों को मोहताज हो जायं? किंतु इसका जवाब यही मिलता, भाई हम लोग तो जिस प्रकार अब तक निभाते आए हैं उसी प्रकार निभाएंगे, यदि तुम इससे उत्तम प्रबंध कर सकते हो तो करो, जरा हम भी देखें। ज्ञानशंकर उस समय कॉलेज में थे, यह चुनौती सुनकर चुप हो जाते थे। पर जब से वह डिग्री लेकर आए थे और इधर उनके पिता का देहांत हो चुका था, उन्होंने घर के प्रबंध में संशोधन करने का यत्न करना शुरू किया था, जिसका फल यह हुआ कि उस मेल-मिलाप में बहुत कुछ अंतर पड़ चुका था जो पिछले सात वर्षों से चला आता था। न चचा का प्रबंध भतीजे को पसंद था, न भतीजे का चचा को। आए दिन शाब्दिक संग्राम होते रहते। ज्ञानशंकर कहते, आपने सारी जायदाद चौपट कर दी, हम लोगों को कहीं का न रक्खा। जीवन, खाट पर पड़े-पड़े पूर्वजों की कमाई खाने में काट दिया। मर्यादा-रक्षा की तारीफ तो तब थी जब अपने बाहुबल से कुछ करते, या जायदाद को बचाकर करते। घर बेचकर तमाशा देखना कौन-सा मुश्किल काम है? लाला प्रभाशंकर यह कटु वाक्य सुनकर अपने भाई को याद करते और उनका नाम लेकर रोने लगते। यह चोटें उनसे न सही जाती थीं।

लाला जटाशंकर की बरसी के लिए प्रभाशंकर ने दो हजार का अनुमान किया था। एक हजार ब्राह्मणों का भोज होने वाला था। नगर भर के समस्त प्रतिष्ठित पुरुषों को निमंत्रण देने का विचार था। इसके सिवा चांदी के बर्तन, कालीन, पलंग, वस्त्र आदि महापात्र को देने के लिए बन रहे थे। ज्ञानशंकर इसे धन का अपव्यय समझते थे, उनकी राय थी कि इस काम में दो सौ रुपये से अधिक खर्च न किया जाए। जब घर की दशा इतनी चिंताजनक है तो इतने रुपये खर्च करना सर्वथा अनुचित है, किंतु प्रभाशंकर कहते थे, जब मैं मर जाऊं तब तुम चाहे अपने बाप को एक-एक बूंद पानी के लिए तरसाना, पर जब तक मेरे दम में दम है, मैं उनकी आत्मा को दुःखी नहीं कर सकता। सारे नगर में उनकी उदारता की धूम थी, बड़े-बड़े उनके सामने सिर झुका लेते थे, ऐसे प्रतिभाशाली पुरुष की बरसी भी यथायोग्य होनी चाहिए—यही हमारी श्रद्धा और प्रेम का अंतिम प्रमाण है।

ज्ञानशंकर के हृदय में भावी उन्नति की बड़ी-बड़ी अभिलाषाएं थीं। वह अपने परिवार को फिर समृद्धि और सम्मान के शिखर पर ले जाना चाहते थे। घोड़े और फिटन की उन्हें बड़ी-बड़ी आकांक्षा थी। वह शान से फिटन पर बैठकर निकलना चाहते थे कि हठात् लोगों की आंखें उनकी तरफ उठ जाएं और लोग कहें कि लाला जटाशंकर के बेटे हैं। वह अपने दीवानखाने को नाना प्रकार की सामग्रियों से सजाना चाहते थे। मकान को भी आवश्यकतानुसार बढ़ाना चाहते थे। वह घंटों एकाग्र बैठे हुए इन्हीं विचारों में मग्न रहते थे। चैन से जीवन व्यतीत हो, यही उनका ध्येय था। वर्त्तमान दशा में मितव्ययिता के सिवा उन्हें इसका कोई दूसरा उपाय न सूझता था। कोई छोटी-मोटी नौकरी करने में वह अपना अपमान समझते थे; वकालत से

उन्हें अरुचि थी और उच्चाधिकारों का द्वार उनके लिए बंद था। उनका घराना शहर में चाहे कितना ही सम्मानित हो, पर देश के विधाताओं की दृष्टि से उसे वह गौरव प्राप्त न था जो उच्चाधिकार-सिद्धि का अनुष्ठान है। लाला जटाशंकर तो विरक्त ही थे और प्रभाशंकर केवल जिलाधीशों की कृपा-दृष्टि को अपने लिए काफी समझते थे। इसका फल जो कुछ हो सकता था, वह उन्हें मिल चुका था। उनके बड़े बेटे दयाशंकर सब-इंस्पेक्टर हो गए थे। ज्ञानशंकर कभी-कभी इस अकर्मण्यता के लिए भी अपने चाचा से उलझा करते थे—आपने अपना सारा जीवन नष्ट कर दिया। लाखों की जायदाद भोग-विलास में उड़ा दी। सदा आतिथ्य-सत्कार और मर्यादा-रक्षा पर जान देते रहे। अगर इस उत्साह का एक अंश भी अधिकारी वर्ग के सेवा-सत्कार में समर्पण करते तो आज मैं डिप्टी-कलक्टर होता। खाने वाले खा-खाकर चल दिए। अब उन्हें याद भी न रहा कि आपने उन्हें कभी खिलाया या नहीं। खस्ता कचौरियां ...र सोने के पत्र लगे हुए पान के बीड़े खिलाने से परिवार की उन्नति नहीं होती, इसके और ...े हैं। बेचारे प्रभाशंकर यह तिरस्कार सुनकर व्यथित होते और कहते—बेटा, ऐसी-ऐसी ...रके हमें न जलाओ। तुम फिटन और घोड़े, कुर्सी और मेज, आईने और तस्वीरों पर जान ...। तुम चाहते हो कि हम अच्छे-से-अच्छा खाएं, अच्छे-से-अच्छा पहनें, लेकिन ...खाने-पहनने से दूसरों को क्या सुख होगा? तुम्हारे धन और संपत्ति से दूसरे क्या लाभ ...? हमने भोग-विलास में जीवन नहीं बिताया, वह कुल-मर्यादा की रक्षा थी। विलासिता ...जिसके पीछे तुम उन्मत्त हो। हमने जो कुछ किया, नाम के लिए किया। घर में उपवास ...है, लेकिन जब कोई मेहमान आ गया तो उसे सिर और आंखों पर लेते थे। तुमको बस ...पेट भरने की, अपने शौक की, अपने विलास की धुन है। यह जायदाद बनाने के नहीं, ... के लक्षण हैं। अंतर इतना ही है कि हमने दूसरों के लिए बिगाड़ा, तुम अपने लिए ...गे।

...मुसीबत यह थी कि ज्ञानशंकर की स्त्री विद्यावती भी इन विचारों में अपने पति से सहमत ...उसके विचार बहुत-कुछ लाला प्रभाशंकर से मिलते थे। उसे परमार्थ पर स्वार्थ से अधिक श्रद्धा थी। उसे बाबू ज्ञानशंकर को अपने चचा से वाद-विवाद करते देखकर खेद होता था और अवसर मिलने पर वह उन्हें समझाने की चेष्टा करती थी। पर ज्ञानशंकर उसे झिड़क दिया करते थे। वह इतने शिक्षित होकर भी स्त्री का आदर उससे अधिक न करते थे, जितना अपने पैर के जूतों का। अतएव उनका दाम्पत्य जीवन भी, जो चित्त की शांति का एक प्रधान साधन है, सुखकर न था।

तीन

मनोहर अक्खड़पन की बातें तो कर बैठा, किंतु जब क्रोध शांत हुआ तो मालूम हुआ कि मुझसे बड़ी भूल हुई। गांव वाले सब-के-सब मेरे दुश्मन हैं। वह इस समय चौपाल में बैठे मेरी निंदा कर रहे होंगे। कारिंदा न जाने कौन-सा उपद्रव मचावे। बेचारे दुर्जन को बात-की-बात में मटियामेट कर दिया, तो फिर मुझे बिगाड़ते क्या देर लगती है। मैं अपनी जबान से लाचार हूं।

कितना ही उसे बस में रखना चाहता हूं, पर नहीं रख सकता। यही न होता कि जहां और सब लेना-देना है वहां दस रुपये और हो जाते, नक्कू तो न बनता।

लेकिन इन विचारों ने एक क्षण में फिर पलटा खाया। मनुष्य जिस काम को हृदय से बुरा नहीं समझता, उसके कुपरिणाम का भय एक गौरवपूर्ण धैर्य की शरण लिया करता है। मनोहर अब इस विचार से अपने को शांति देने लगा—मैं बिगड़ जाऊंगा तो बला से, पर किसी की धौंस तो न सहूंगा, किसी के सामने सिर तो नीचा नहीं करता। जमींदार भी देख लें कि गांव में सब-के-सब भांड ही नहीं हैं। अगर कोई मामला खड़ा किया तो अदालत में हाकिम के सामने सारा भंडा फोड़ दूंगा, जो कुछ होगा, देखा जाएगा।

इसी उधेड़बुन में वह भोजन करने लगा। चौके में एक मिट्टी के तेल का चिराग जल रहा था; किंतु छत में धुआं इतना भरा हुआ था कि उसका प्रकाश मंद पड़ गया था। उसकी स्त्री बिलासी ने एक पीतल की थाली में बथुए की भाजी और जौ की कई मोटी-मोटी रोटियां परस दीं। मनोहर इस भांति रोटियां तोड़-तोड़ मुंह में रखता था। जैसे कोई दवा खा रहा हो। इतनी ही रुचि से वह घास भी खाता। बिलासी ने पूछा—क्या साग अच्छा नहीं? गुड़ दूं?

मनोहर—नहीं, साग तो अच्छा है।

बिलासी—क्या भूख नहीं?

मनोहर—भूख क्यों नहीं है, खा तो रहा हूं।

बिलासी—खाते तो नहीं हो, जैसे औंध रहे हो। किसी से कुछ कहा-सुनी तो नहीं हुई है?

मनोहर—नहीं, कहा-सुनी किससे होती?

इतने में एक युवक कोठरी में आकर खड़ा हो गया। उसका शरीर खूब गठीला हृष्ट-पुष्ट था, छाती चौड़ी और भरी हुई थी। आंखों में तेज झलक रहा था। उसके गले में सोने का यंत्र था और दाहिनी बांह में चांदी का एक अनंत। यह मनोहर का पुत्र बलराज था।

बिलासी—कहां घूम रहे हो? आओ, खा लो, थाली परसूं?

बलराज ने धुएं से आंखें मलते हुए कहा—काहे दादा, आज गिरधर महाराज तुमसे क्यों बिगड़ रहे थे? लोग कहते हैं कि बहुत लाल-पीले हो रहे थे?

मनोहर—कुछ नहीं, तुमसे कौन कहता था?

बलराज—सभी लोग तो कह रहे हैं। तुमसे घी मांगते थे। तुमने कहा, मेरे पास घी नहीं है। बस इसी पर तन गए।

मनोहर—अरे तो कोई झगड़ा थोड़े ही हुआ? गिरधर महाराज ने कहा, तुम्हें घी देना पड़ेगा, हमने कह दिया, जब घी हो जायगा तब देंगे, अभी तो नहीं है। इसमें भला झगड़ने की कौन-सी बात थी?

बलराज—झगड़े की बात क्यों नहीं है। कोई हमसे क्यों घी मांगे? किसी का दिया खाते हैं कि किसी के घर मांगने जाते हैं? अपना तो एक पैसा नहीं छोड़ते, तो हम क्यों धौंस सहें? न हुआ मैं, नहीं तो दिखा देता। क्या हमको भी दुर्जन समझ लिया है?

मनोहर की छाती अभिमान से फूली जाती थी, पर इसके साथ ही यह चिंता भी थी कि कहीं यह कोई उजड्डपन न कर बैठे। बोला—चुपके से बैठकर खाना खा लो, बहुत बहकना अच्छा नहीं होता। कोई सुन लेगा तो वहां जाकर एक की चार जड़ आएगा। यहां कोई अपना मित्र नहीं है।

बलराज–सुन लेगा तो क्या किसी से छिपा के कहते हैं? जिसे बहुत घमंड हो, आकर देख ले। एक-एक का सिर तोड़ के रख दें। यही न होगा, कैद होकर चला जाऊंगा। इससे कौन डरता है? महात्मा गांधी भी तो कैद हो आए हैं।

बिलासी ने मनोहर की ओर तिरस्कार के भाव से देखकर कहा–तुम्हारी कैसी आदत है कि जब देखो एक-न-एक बखेड़ा मचाए ही रहते हो। जब सारा गांव घी दे रहा है तब हम क्या गांव के बाहर हैं? जैसे बन पड़ेगा देंगे। इसमें कोई अपनी हेठी थोड़े ही हुई जाती है? हेठा तो नारायण ने ही बना दिया है। तो क्या अकड़ने से ऊंचे हो जायंगे? थोड़ा-सा घी हांड़ी में है, दो-चार दिन में और बटोर लूंगी, जाकर तौल आना।

बलराज–क्यों दे आएं? किसी के दबैल हैं?

बिलासी–नहीं, तो तुम तो लाट-गवर्नर हो। घर में भूनी भांग नहीं, उस पर इतना घमंड?

बलराज–हम दरिद्र सही, किसी से मांगने तो नहीं जाते?

बिलासी–अरे जा बैठ, आया है बड़ा योद्धा बनके। ऊंट जब तक पहाड़ पर नहीं चढ़ता तब तक समझता है कि मुझसे ऊंचा और कौन होगा? जमींदार से बैर कर गांव में रहना सहज नहीं है। (मनोहर से) सुनते हो महापुरुष, कल कारिंदा के पास जाके कह-सुन आओ।

मनोहर–मैं तो अब नहीं जाऊंगा।

बिलासी–क्यों?

मनोहर–क्यों क्या, अपनी खुशी है। जाएं क्या, अपने ऊपर तालियां लगवाएं?

बिलासी–अच्छा, तो मुझे जाने दोगे?

मनोहर–तुम्हें भी न जाने दूंगा। कारिंदा हमारा कर ही क्या सकता है? बहुत करेगा अपना सिकमी खेत छोड़ा लेगा। न दो हल चलेंगे, एक ही सही।

यद्यपि मनोहर बढ़-चढ़कर बातें कर रहा था, पर वास्तव में उसका हंकार अब परास्त नृप के समान था। यदि बिना दूसरों की दृष्टि में अपमान उठाए झगड़ा हुआ खेल बन जाए, तो उसे आपत्ति नहीं थी। हां वह स्वयं क्षमा-प्रार्थना करने में अपनी हेठी समझता था। एक बार तनकर फिर न झुकना उसके लिए बड़ी लज्जा की बात थी। बलराज की उद्दंडता उसे शांत करने में हानि के भय से अधिक सफल हुई थी।

प्रातःकाल बिलासी चौपाल जाने को तैयार हुई, पर न मनोहर साथ चलने को राजी होता था, न बलराज। अकेली जाने की उसको हिम्मत न पड़ती थी। इतने में कादिर मियां ने घर में प्रवेश किया। बूढ़े आदमी थे, ठिगना डील, लंबी दाढ़ी, घुटनों के ऊपर तक धोती, एक गाढ़े का मिरजई पहने हुए थे। नाते के भाव से वह मनोहर के भाई लगते थे। बिलासी ने उन्हें देखते ही थोड़ा-सा घूंघट निकाल लिया।

कादिर ने चिंतापूर्ण भाव से कहा–अरे मनोहर, कल तुम्हें क्या सूझ गई? जल्दी जाकर कारिंदा साहब को मना लो, नहीं तो फिर कुछ करते-धरते न बनेगी। सुना है वह तुम्हारी शिकायत करने मालिकों के पास जा रहे हैं। सुक्खू भी साथ जाने को तैयार हैं। नहीं मालूम, दोनों में क्या सांठ-गांठ हुई है।

बिलासी–भाई जी, यह बूढ़े हो गए, लेकिन इनका लड़कपन अभी नहीं गया। कितना समझाती हूं, बस अपने मन की करते हैं। इन्हीं की देखा-देखी एक लड़का है वह भी हाथ से निकला जाता है। जिससे देखो उसी से उलझ पड़ता है। भला इनसे पूछा जाय कि सारे गांव

ने घी के रुपये लिए तो तुम्हें नाहीं करने की क्या पड़ी थी।

कादिर—इनकी भूल है और क्या? दस रुपये हमें भी लेने पड़े, क्या करते? और यह कोई नई बात थोड़े ही है? बड़े सरकार थे तब भी तो एक-न-एक बेगार लगी ही रहती थी।

मनोहर—भैया, तब की बातें जाने दो। तब साल-दो साल की देन बाकी पड़ जाती थी, मुदा मालिक कभी कुड़की-बेदखली नहीं करते थे। जब कोई काम-काज पड़ता था, तब हमको नेवता मिलता था। लड़कियों के ब्याह के लिए उनके यहां से लकड़ी, चारा और पच्चीस रुपये बंधा हुआ था। यह सब जानते हो कि नहीं? जब वह अपने लड़कों की तरह पालते थे तो रैयत भी हंसी-खुशी उनकी बेगार करती थी। अब यह बातें तो गईं, बस एक-न-एक पच्चड़ लगा ही रहता है। तो जब उनकी ओर से यह कड़ाई है तो हम भी कोई मिट्टी के लौंदे थोड़े ही हैं?

कादिर—तब की बातें छोड़ो, अब जो सामने है उसे देखो। चलो, जल्दी करो। मैं इसीलिए तुम्हारे पास आया हूं। मेरे बैल खेत में खड़े हैं।

मनोहर—दादा, मैं तो न जाऊंगा।

बिलासी—इनकी चूड़ियां मैली हो जाएंगी, चलो मैं चलती हूं।

कादिर और बिलासी दोनों चौपाल चले। वहां इस वक्त बहुत से आदमी जमा थे। कुछ लोग लगान के रुपये दाखिल करने आए, कुछ घी के रुपये लेने के लिए और कुछ केवल तमाशा देखने और ठकुरसुहाती करने के लिए। कारिंदे का नाम गुलाम गौस खां था। वह बृहदाकार मनुष्य थे, सांवला रंग, लम्बी दाढ़ी, चेहरे पर कठोरता झलकती थी। अपनी जवानी में वह पलटन में नौकर थे और हवलदार के दरजे तक पहुंचे थे। जब सीमा प्रांत में कुछ छेड़छाड़ हुई तब बीमारी की छुट्टी लेकर घर भाग आए और यहीं से इस्तीफा पेश कर दिया। वह अब भी अपने सैनिक जीवन की कथाएं मजे ले-लेकर कहते थे। इस समय वह तख्त पर बैठे हुए हुक्का पी रहे थे। सुक्खू और दुखरन तख्त के नीचे बैठे हुए थे।

सुक्खू ने कहा—हम मजदूर ठहरे, हम घमंड करें तो हमारी भूल है। जमींदार की जमीन में बसते हैं, उसका दिया खाते हैं, उससे किनारा कर कहां जाएंगे? क्यों दुखरन?

दुखरन—हां, ठीक ही है।

सुक्खू—नारायण हमें चार पैसे दें, दस मन अनाज दें तो क्या हम अपने मालिकों से लड़ें, मारे घमंड के धरती पर पैर न रक्खें।

दुखरन—यही मद तो आदमी को खराब करता है। इसी मद [illegible] इसी के कारण जरासंध और दुरजोधन का सर्वनास हो गया तो भला हमारी-तुम्हारी कौन बात है।

इतने में कादिर मियां चौपाल में आए, उनके पीछे-पीछे बिलासी भी आई। कादिर ने कहा—खां साहब, यह मनोहर की घरवाली आई है। जितने रुपये चाहें घी के लिए दे दें। बेचारी डर के मारे आती न थी।

गौस खां ने कटु स्वर से कहा—वह कहां है मनोहर, क्या उसे आते शरम आती थी?

बिलासी ने दीनतापूर्वक कहा—सरकार, उनकी बातों का कुछ खयाल न करें। आपकी गुलामी करने को मैं तैयार हूं।

कादिर—यों तो गऊ है, किंतु आज न जाने उसके सिर पर कैसे भूत सवार हो गया। क्यों सुक्खू महतो, आज तक गांव में किसी से लड़ाई हुई है।

सुक्खू ने बगलें झांकते हुए कहा—नहीं भाई, कोई झूठ थोड़े ही कह देगा।

कादिर–अब बैठा रो रहा है। कितना समझाया कि चल के खां साहब से कसूर माफ करा ले, लेकिन शरम से आता नहीं है।

गौस खां–शर्म नहीं, शरारत है। उसके सिर पर जो भूत चढ़ा हुआ है उसका उतार मेरे पास है। उसे गरूर हो गया है।

कादिर–अरे खां साहब, बेचारा मजूर गरूर किस बात पर करेगा? मूरख उजड्ड आदमी है, बात करने का सहूर नहीं है।

गौस खां–तुम्हें वकालत करने की जरूरत नहीं। मैं अपना काम खूब जानता हूं। इस तरह दबने लगा तो मुझसे कारिंदागिरी हो चुकी। आज एक ने तेवर बदले हैं, कल उसके दूसरे भाई शेर हो जाएंगे। फिर जमींदार को कौन पूछता है। अगर पलटन में किसी ने ऐसी शरारत की होती तो उसे गोली मार दी जाती। जमींदार से आंखें बदलना खाला जी का घर नहीं है।

यह कहकर गौस खां टांगन पर सवार होने चले। बिलासी रोती हुई उनके सामने हाथ बांधकर खड़ी हो गई और बोली–सरकार, कहीं की न रहूंगी। जो डांड चाहे लगा दीजिए, जो सजा चाहे दीजिए, मालिकों के कान में यह बात न डालिए। लेकिन खां साहब ने सुक्खू महतो को मत्थे पर चढ़ा लिया था। वह सूखी करुणा को अपनी कपट चाल में बाधक नहीं बनाना चाहते थे। तुरंत घोड़े पर सवार हो गए और सुक्खू को आगे-आगे चलने का हुक्म दिया। कादिर मियां ने धीरे से गिरधर महाराज के कान में कहा–क्या महाराज, बेचारे मनोहर का सत्यानास करके ही दम लोगे?

गिरधर ने गौरव-युक्त भाव से कहा–जब तुम हमसे आंखें दिखलाओगे तो हम भी अपनी-सी करके रहेंगे। हमसे कोई एक अंगुल दबे तो हम उससे हाथ भर दबने को तैयार हैं। जो हमसे जौ भर तनेगा हम उससे गज-भर तन जाएंगे।

कादिर–यह तो सुपद ही है, तुम हमसे दबने लगोगे तो तुम्हें कौन पूछेगा? मुदा अब मनोहर के लिए कोई राह निकालो। उसका सुभाव तो जानते हो। गुस्सैल आदमी है, पहले बिगड़ जाता है, फिर बैठकर रोता है। बेचारा मिट्टी में मिल जायगा।

गिरधर–भाई, अब तो तीर हमारे हाथ से निकल गया।

कादिर–मनोहर की हत्या तुम्हारे ऊपर ही पड़ेगी।

गिरधर–एक उपाय मेरी समझ में आता है। जाकर मनोहर से कह दो कि मालिक के पास जाकर हाथ-पैर पड़े। वहां मैं भी कुछ कह-सुन दूंगा। तुम लोगों के साथ नेकी करने का जी तो नहीं चाहता, काम पड़ने पर घिघियाते हो, काम निकल गया तो सीधे ताकते भी नहीं। लेकिन अपनी-अपनी करनी अपने साथ है। जाकर उसे भेज दो।

कादिर और बिलासी मनोहर के पास गए। वह शंका और चिंता की मूर्ति बना हुआ उसी रास्ते की ओर ताक रहा था। कादिर ने जाते ही यहां का समाचार कहा और गिरधर महाराज का आदेश सुना दिया। मनोहर क्षण भर सोचकर बोला–वहां मेरी और भी दुर्गति होगी। अब तो सिर पर पड़ी ही है, जो कुछ होगा, देखा जायगा।

कादिर–नहीं, तुम्हें जाना चाहिए। मैं भी चला चलूंगा।

मनोहर–मेरे पीछे तुम्हारी भी ले-दे होगी।

बिलासी ने कादिर की ओर अत्यंत विनीत भाव से देखकर कहा–दादाजी, यह न जाएंगे, मैं ही तुम्हारे साथ चली चलूंगी।

कादिर–तुम क्या चलोगी, वहां बड़े आदमियों के सामने मुंह तो खुलना चाहिए।

बिलासी–न कुछ कहते बनेगा, रो तो लूंगी।

कादिर–यह जाने देंगे?

बिलासी–जाने क्यों न देंगे, मैं इनसे कुछ मांगती हूं? इन्हें अपना बुरा-भला न सूझता हो, मुझे तो सूझता है।

कादिर–तो फिर देर न करनी चाहिए, नहीं तो वह लोग पहले से ही मालिकों का कान भर देंगे।

मनोहर ज्यों-का-त्यों मूरत की तरह बैठा रहा। बिलासी घर में गई, अपने गहने निकालकर पहने, चादर ओढ़ी और बाहर निकलकर खड़ी हो गई। कादिर मियां संकोच में पड़े हुए थे। उन्हें आशा थी कि अब भी मनोहर उठेगा, किंतु जब वह अपनी जगह से जरा भी न हिला तब धीरे-धीरे आगे चले। बिलासी भी पीछे-पीछे चली। पर रह-रहकर कातर नेत्रों से मनोहर की ओर ताकती जाती थी। जब वह गांव के बाहर निकल गए, तो मनोहर कुछ सोचकर उठा और लपका हुआ कादिर मियां के समीप आकर बिलासी से बोला–जा घर बैठ, मैं जाता हूं।

चार

तीसरा पहर था। ज्ञानशंकर दीवानखाने में बैठे हुए एक किताब पढ़ रहे थे कि कहार ने आकर कहा–बाबू साहब पूछते हैं, कै बजे हैं? ज्ञानशंकर ने चिढ़कर कहा–जा कह दे, आपको नीचे बुलाते हैं? क्या सारे दिन सोते रहेंगे।

इन महाशय का नाम बाबू ज्वालासिंह था। ज्ञानशंकर के सहपाठी थे और आज ही इस जिले में डिप्टी कलेक्टर होकर आए थे। दोपहर तक दोनों मित्रों में बातचीत होती रही। ज्वालासिंह रात भर के जगे थे, सो गए। ज्ञानशंकर को नींद नहीं आई। इस समय उनकी छाती पर सांप-सा लोट रहा था। सब-के-सब बाजी लिए जाते हैं। और मैं कहीं का न हुआ। कभी अपने ऊपर क्रोध आता, कभी अपने पिता और चचा के ऊपर। पुराना सौहार्द द्वेष का रूप ग्रहण करता जाता था। यदि इस समय अकस्मात् ज्वालासिंह के पद-च्युत होने का समाचार मिल जाता तो शायद ज्ञानशंकर के हृदय को शांति होती। वह इस क्षुद्र भाव को मन में न आने देना चाहते थे। अपने को समझाते थे कि यह अपना-अपना भाग्य है। अपना मित्र कोई ऊंचा पद पाए तो हमें प्रसन्न होना चाहिए, किंतु उनकी विकलता इन सद्विचारों से न मिटती थी और बहुत यत्न करने पर भी परस्पर संभाषण में उनकी लघुता प्रकट हो जाती थी। ज्वालासिंह को विदित हो रहा था कि मेरी यह तरक्की इन्हें जला रही है, किंतु यह सर्वथा ज्ञानशंकर की ईर्ष्या-वृत्ति का ही दोष न था। ज्वालासिंह के बात-व्यवहार में वह पहले की-सी स्नेहमय सरलता न थी, वरन् उसकी जगह एक अज्ञात सहृदयता, एक कृत्रिम वात्सल्य, एक गौरव-युक्त साधुता पाई जाती थी, जो ज्ञानशंकर के घाव पर नमक का काम कर रही थी। इसमें संदेह नहीं कि ज्वालासिंह का यह दु:स्वभाव इच्छित न था, वह इतनी नीच प्रकृति के पुरुष न थे, पर अपनी सफलता ने उन्हें उन्मत्त कर दिया था। इधर ज्ञानशंकर इतने उदार न थे कि

इससे मानव चरित्र के अध्ययन का आनंद उठाते।

कहार के जाने के क्षण-भर पीछे ज्वालासिंह ऊपर से उतर पड़े और बोले—यार, बताओ क्या समय है? जरा साहब से मिलने जाना है।

ज्ञानशंकर ने कहा—अजी, मिल लेना, ऐसी क्या जल्दी है?

ज्वालासिंह—नहीं भाई, एक बार मिलना जरूरी है, जरा मालूम हो जाए, किस ढंग का आदमी है, खुश कैसे होता है?

ज्ञान—वह इस बात से खुश होता है कि आप दिन में तीन बार उसके द्वार पर नाक रगड़ें।

ज्वालासिंह ने हंसकर कहा—यह तो कुछ मुश्किल नहीं, मैं पांच बार सिजदे किया करूंगा।

ज्ञान—और वह इस बात से खुश होता है कि आप कायदे-कानून को तिलांजलि दीजिए, केवल उसकी इच्छा को कानून समझिए।

ज्वालासिंह—ऐसा ही करूंगा।

ज्ञान—इनकम टैक्स बढ़ाना पड़ेगा। किसी अभियुक्त को भूलकर भी छोड़ा तो बहुत बुरी तरह खबर लेगा।

ज्वाला—भाई, तुम बना रहे हो, ऐसा भला क्या होगा।

ज्ञान—नहीं, विश्वास मानिए; वह ऐसा ही विचित्र जीव है।

ज्वाला—तब तो उसके साथ मेरा निर्वाह कठिन है।

ज्ञान—जरा भी नहीं। आज आप ऐसी बात कह रहे हैं, कल को उसके इशारों पर नाचेंगे। इस घमंड में न रहिए कि आपको अधिकार प्राप्त हुआ है, वास्तव में आपने गुलामी लिखाई है। यहां आपको आत्मा की स्वाधीनता से हाथ धोना पड़ेगा, न्याय और सत्य का गला घोंटना पड़ेगा, यही आपकी उन्नति और सम्मान के साधन हैं। मैं तो ऐसे अधिकार पर लात मारता हूं। यहां तो अल्लाहताला भी आसमान से उतर आएं और अन्याय करने को कहें तो उनका हुक्म न मानूं।

ज्वालासिंह समझ गए कि यह जले हुए दिल के फफोले हैं। बोले—अभी ऐसी दून की ले रहे हो, कल को नामजद हो जाओ, तो यह बातें भूल जाएं।

ज्ञानशंकर—हां, बहुत संभव है, क्योंकि मैं भी तो मनुष्य हूं, लेकिन संयोग से मेरे इस परीक्षा में पड़ने की कोई संभावना नहीं है और हो भी तो मैं आत्मा की रक्षा करना सर्वोपरि समझूं।

ज्वालासिंह गर्म होकर बोले—आपको यह अनुमान करने का क्या अधिकार है कि और लोग अपनी आत्मा का आपसे कम आदर करते हैं? मेरा विचार तो यह है कि संसार में रहकर मनुष्य आत्मा की जितनी रक्षा कर सकता है, उससे अधिकार उसे वंचित नहीं कर सकता। अगर आप समझते हों कि वकालत या डॉक्टरी विशेष रूप से आत्मरक्षा के अनुकूल है तो आपकी भूल है। मेरे चचा साहब वकील हैं, बड़े भाई साहब डॉक्टरी करते हैं, पर वह लोग केवल धन कमाने की मशीनें हैं, मैंने उन्हें कभी असद-सद के झगड़े में पड़ते हुए नहीं पाया?

ज्ञानशंकर—वह चाहें तो आत्मा की रक्षा कर सकते हैं।

ज्वालासिंह—बस, उतनी ही जितनी कि एक सरकारी नौकर कर सकता है। वकील को ही ले लीजिए, यदि विवेक की रक्षा करो तो रोटियां चाहे भले खाए, समृद्धिशाली नहीं हो सकता। अपने पेशे में उन्नति करने के लिए उसे अधिकारियों का कृपा-पात्र बनना परमावश्यक है और

डॉक्टरों का तो जीवन ही रईसों की कृपा पर निर्भर है, गरीबों से उन्हें क्या मिलेगा? द्वार पर सैकड़ों गरीब रोगी खड़े रहते हैं, लेकिन जहां किसी रईस का आदमी पहुंचा, वह उनको छोड़कर फिटन पर सवार हो जाते हैं। इसे मैं आत्मा की स्वाधीनता नहीं कह सकता।

इतने में गौस खां, गिरधर महाराज और सुक्खू ने कमरे में प्रवेश किया। गौस खां तो सलाम करके फर्श पर बैठ गए, शेष दोनों आदमी खड़े रहे। लाला प्रभाशंकर बरामदे में बैठे हुए थे। पूछा—असामियों को घी के रुपये बांट दिए?

गौस खां—जी हां, हुजूर के इकबाल से सब रुपये तकसीम हो गए, मगर इलाके में चंद आदमी ऐसे सरकश हो गए हैं कि खुदा की पनाह। अगर उनकी तंबीह न की गई तो एक दिन मेरी इज्जत में फर्क आ जायगा और क्या अजब है कि जान से भी हाथ धोऊं।

ज्ञानशंकर—(विस्मित होकर) दहात में भी यह हवा चली?

गौस खां ने रोनी सूरत बनाकर कहा—हुजूर, कुछ न पूछिए, गिरधर महाराज भाग न खड़े हों तो इनके जान की खैरियत नहीं थी।

ज्ञान—उन आदमियों को पकड़ के पिटवाया क्यों नहीं?

गौस खां—तो थानेदार साहब के लिए थैली कहां से लाता?

ज्ञान—अजी आप लोगों को तो सैकड़ों हथकंडे मालूम हैं, किसी भी शिकंजे में कस लीजिए।

गौस खां—हुजूर, मौरूसी असामी हैं। यह सब जमींदार को कुछ नहीं समझते। उनमें एक का नाम मनोहर है। बीस बीघे जोतता है और कुल पचास रुपये लगान देता है। आज उसी आराजी का किसी दूसरे असामी से बंदोबस्त हो सकता तो सौ रुपये कहीं नहीं गए थे।

ज्ञानशंकर ने चचा की ओर देखकर पूछा—आपके अधिकांश असामी दखलदार क्यों कर हो गए?

प्रभाशंकर ने उदासीनता से कहा- जो कुछ किया होगा, इन्हीं कारिंदों ने किया होगा, मुझे क्या खबर?

ज्ञानशंकर—(व्यंग्य से) तभी तो इलाका चौपट हो गया।

प्रभाशंकर ने झुंझलाकर कहा- अब तो भगवान् की दया से तुमने हाथ-पैर संभाले, इलाके का प्रबंध क्यों नहीं करते?

ज्ञान—आपके मारे जब मेरी कुछ चले तब तो।

प्रभा—मुझसे कसम ले लो, जो तुम्हारे बीच कुछ बोलूं। यह काम करते बहुत दिन हो गए, इसके लिए; लोलुप नहीं हूं।

ज्ञान—तो फिर मैं भी दिखा दूंगा कि सुप्रबंध से क्या हो सकता है?

इसी समय कादिर खां और मनोहर आकर द्वार पर खड़े हो गए। गौस खां ने कहा—हुजूर, यह वही असामी है, जिसका अभी मैं जिक्र कर रहा था।

ज्ञानशंकर ने मनोहर की ओर क्रोध से देखकर कहा—क्यों रे, जिस पत्तल में खाता है उसी में छेद करता है? सौ रुपये की जमीन पचास रुपये में जोतता है, उस पर जब थोड़ा-सा बल खाने का अवसर पड़ा तो जामे से बाहर हो गया?

मनोहर की जबान बंद हो गई। रास्ते में जितनी बातें कादिर खां ने सिखाई थीं, वह सब भूल गईं!

ज्ञानशंकर ने उसी स्वर में फिर कहा–दुष्ट कहीं का। तू समझता होगा कि मैं दखलकार हूं, जमींदार मेरा कर ही क्या सकता है? लेकिन मैं तुझे दिखा दूंगा कि जमींदार क्या कर सकता है? तेरा इतना हियाव है कि तू मेरे आदमियों पर हाथ उठाए?

मनोहर निर्बल क्रोध से कांप और सोच रहा था, मैंने घी के रुपये नहीं लिए, वह कोई पाप नहीं है। मुझे लेना चाहिए था, दबाव के भय से नहीं, केवल इसीलिए कि बड़े सरकार हमारे ऊपर दया रखते थे। उसे लज्जा आई कि मैंने ऐसे दयालु स्वामी की आत्मा के साथ कृतघ्नता की; किंतु इसका दंड गाली और अपमान नहीं है। उसका अपमानाहत हृदय उत्तर देने के लिए व्यग्र होने लगा? किंतु कादिर ने उसे बोलने का अवसर न दिया। बोला–हुजूर, हम लोगों की मजाल ही क्या है कि सरकार के आदमियों के सामने सिर उठा सकें? हां, अनपढ़ गंवार ठहरे, बातचीत करने का सहूर नहीं है, उजड्डपन की बातें मुंह से निकल आती हैं। क्या हम नहीं जानते कि हुजूर चाहें तो आज हमारा कहीं ठिकाना न लगे। अब तो यही विनती है कि जो खता हुई उसकी माफी दी जाए।

लाला प्रभाशंकर को मनोहर पर दया आ गई, सरल प्रकृति के मनुष्य थे। बोले–तुम लोग हमारे पुराने असामी हो, क्या नहीं जानते हो कि असामियों पर सख्ती करना हमारे यहां का दस्तूर नहीं है? ऐसा ही कोई काम आ पड़ता है तो तुमसे बेगार ली जाती है और तुम हमेशा उसे हंसी-खुशी देते रहे हो। अब भी उसी तरह निभाते चलो। नहीं तो भाई, अब जमाना नाजुक है। हमने तो भली-बुरी तरह अपना निभा दिया, मगर इस तरह लड़कों से न निभेगी। उनका खून गर्म ठहरा, इसलिए सब संभलकर रहो, चार बातें सह लिया करो। जाओ, फिर ऐसा काम न करना। घर से कुछ खाकर चले न होगे। दिन भी चढ़ आया, यहीं खा-पीकर विश्राम करो, दिन ढले चले जाना।

प्रभाशंकर ने अपने निर्द्वंद्व स्वभाव के अनुसार इस मामले को टालना चाहा किंतु ज्ञानशंकर ने उनकी ओर तीव्र नेत्रों से देखकर कहा–आप मेरे बीच में क्यों बोलते हैं? इसी नरमी ने तो इन आदमियों को शेर बना दिया है। अगर आप इस तरह मेरे कामों में हस्तक्षेप करते रहेंगे तो मैं इलाके का प्रबंध कर चुका। अभी आपने वचन दिया है कि इलाके से कोई सरोकार न रखूंगा। अब आपको बोलने का कोई अधिकार नहीं है।

प्रभाशंकर यह तिरस्कार न सह सके। रुष्ट होकर बोले–अधिकार क्यों नहीं है? क्या मैं मर गया हूं?

ज्ञानशंकर–नहीं, आपको कोई अधिकार नहीं है। आपने सारा इलाका चौपट कर दिया। अब क्या चाहते हैं कि जो बचा-खुचा है, उसे धूल में मिला दें?

प्रभाशंकर के कलेजे में चोट लग गई। बोले–बेटा ! ऐसी बातें करके क्यों दिल दुखाते हो? तुम्हारे पूज्य पिता मर गए, लेकिन कभी मेरी बात नहीं दुलखी। अब तुम मेरी जबान बंद कर देना चाहते हो, किंतु यह नहीं हो सकता कि अन्याय देखा करूं और मुंह न खोलूं। जब तक जीवित हूं, तुम यह अधिकार मुझसे नहीं छीन सकते।

ज्वालासिंह ने दिलासा दिया–नहीं साहब, आप घर के मालिक हैं, यह आपकी गोद के पले हुए लड़के हैं, इनकी अबोध बातों पर ध्यान न दीजिए। इनकी भूल है जो कहते हैं कि आपका कोई अधिकार नहीं है। आपको सब कुछ अधिकार है, आप घर के स्वामी हैं।

गौस खां ने कहा–हुजूर का फरमाना बहुत दुरुस्त है। आप खानदान के सरपरस्त और

मुरव्वी हैं ! आपके मन्सब से किसे इंकार हो सकता है?

ज्ञानशंकर समझ गए कि ज्वालासिंह ने मुझसे बदला ले लिया। उन्हें यह खेद न हुआ कि ऐसी अविनय मैंने क्यों की। खेद केवल यह था कि ज्वालासिंह यहां बैठे थे और उनके सामने वह असज्जनता नहीं प्रकट करना चाहते थे। बोले–अधिकार से मेरा यह आशय नहीं था जो आपने समझा। मैं केवल यह कहना चाहता था कि जब आपने इलाके का प्रबंध मेरे सुपुर्द कर दिया है तो मुझी को करने दीजिए। यह शब्द अनायास मेरे मुंह से निकल गया। मैं इसके लिए बहुत लज्जित हूं। भाई ज्वालासिंह, मैं चचा साहब का जितना अदब करता हूं उतना अपने पिता का भी नहीं किया। मैं स्वयं गरीब आदमियों पर सख्ती करने का विरोधी हूं। इस विषय में आप मेरे विचारों से भली-भांति परिचित हैं। किंतु इसका यह आशय नहीं है कि हम दीन-पालन की धुन में इलाके से ही हाथ धो बैठें। पुराने जमाने की बात और थी, तब जीवन-संग्राम इतना भयंकर न था, हमारी आवश्यकताएं परिमित थीं, सामाजिक अवस्था इतनी उन्नत न थी और सबसे बड़ी बात तो यह कि भूमि का मूल्य इतना चढ़ा हुआ न था। मेरे कई गांव जो दो-दो हजार पर बिक गए हैं, उनके दाम आज बीस-बीस हजार लगे हुए हैं। उन दिनों असामी मुश्किल से मिलते थे, अब एक टुकड़े के लिए सौ-सौ आदमी मुंह फैलाए हुए हैं। यह कैसे हो सकता है कि इस आर्थिक दशा का असर जमींदार पर न पड़े?

लाला प्रभाशंकर को अपने अप्रिय शब्दों का बहुत दुःख हुआ, जिस भाई को वह देवतुल्य समझते थे, उसी के पुत्र से द्वेष करने पर उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। बोले–भैया, इन बातों को तुम जितना समझोगे मैं बूढ़ा आदमी उतना क्या समझूंगा? तुम घर के मालिक हो। मैंने भूल की कि बीच में कूद पड़ा। मेरे लिए एक टुकड़ा रोटी के सिवा और किसी चीज की आवश्यकता नहीं है। तुम जैसे चाहो वैसे घर को संभालो।

थोड़ी देर तक सब लोग चुपचाप बैठे रहे। अंत में गौस खां ने पूछा–हुजूर, मनोहर के बारे में क्या हुक्म होता है?

ज्ञानशंकर–इजाफा लगान का दावा कीजिए।

कादिर–सरकार, बड़ा गरीब आदमी है, मर जायगा।

ज्ञानशंकर–अगर इसकी जोत में कुछ सिकमी जमीन हो तो निकाल लीजिए।

कादिर–सरकार, बेचारा बिन मारे मर जायगा।

ज्ञानशंकर–उसकी परवा नहीं, असामियों की कमी नहीं है।

कादिर–हुजूर....

ज्ञानशंकर–चुप रहो, मैं तुमसे हुज्जत नहीं करना चाहता।

कादिर–सरकार, जरा....

ज्ञानशंकर–बस, कह दिया कि जबान मत खोलो।

मनोहर अब तक चुपचाप खड़ा था। प्रभाशंकर की बात सुनकर उसे आशा हुई थी कि यहां आना निष्फल नहीं हुआ। उनकी विनयशीलता ने वशीभूत कर लिया था। ज्ञानशंकर के कटु व्यवहार के सामने प्रभाशंकर की नम्रता उसे देवोचित प्रतीत होती थी। उसके हृदय में उत्कंठा हो रही थी कि अपना सर्वस्व लाकर इनके सामने रख दूं और कह दूं कि यह मेरी ओर से बड़े सरकार की भेंट है। लेकिन ज्ञानशंकर के अंतिम शब्दों ने इन भावनाओं को पद-दलित कर दिया। विशेषतः कादिर मियां का अपमान उसे असह्य हो गया। तेवर बदलकर बोला–दादा,

इस दरबार से अब दया-धर्म उठ गया। चलो, भगवान् की जो इच्छा होगी, वह होगा। जिसने मुंह चीरा है वह खाने को भी देगा। भीख नहीं तो परदेश तो कहीं नहीं गया है?

यह कहकर उसने कादिर का हाथ पकड़ा और उसे जबर्दस्ती खींचता हुआ दीवानखाने से बाहर निकल गया। ज्ञानशंकर को इस समय इतना क्रोध आ रहा था कि यदि कानून का भय न होता तो वह उसे जीता चुनवा देते। अगर इसका कुछ अंश मनोहर को डांटने-फटकारने में निकल जाता तो कदाचित् उनकी ज्वाला कुछ शांत हो जाती, किंतु अब हृदय में खौलने के सिवा उसके निकलने का कोई रास्ता न था। उनकी दशा उस बालक की-सी हो रही थी जिसका हमजोली उसे दांत काटकर भाग गया हो। इस ज्ञान से उन्हें शांति न होती थी कि मैं इस मनुष्य के भाग का विधाता हूं, आज इसे पैरों तले कुचल सकता हूं। क्रोध को दुर्वचन से विशेष रुचि होती है।

ज्वालासिंह मौनी बने बैठे थे। उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि ज्ञानशंकर में इतनी दयाहीन स्वार्थपरता कहां से आ गई? अभी क्षण भर पहले यह महाशय न्याय और लोक सेवा का कैसा महत्त्वपूर्ण वर्णन कर रहे थे। इतनी ही देर में यह कायापलट ! विचार और व्यवहार में इतना अंतर? मनोहर चला गया तो ज्ञानशंकर से बोले-इजाफा लगान का दावा कीजिएगा तो क्या उसकी ओर से उज्रदारी न होगी? आप केवल एक असामी पर दावा नहीं कर सकते।

ज्ञानशंकर-हां, यह आप ठीक कहते हैं। खां साहब, आप उन असामियों की एक सूची तैयार कीजिए, जिन पर कायदे के अनुसार इजाफा हो सकता है? क्या हरज है, लगे हाथ सारे गांव पर दावा हो जाय?

ज्वालासिंह ने मनोहर की रक्षा के लिए यह शंका की थी। उसका यह विपरीत फल देखकर उन्हें फिर कुछ कहने का साहस न हुआ। उठकर ऊपर चले गए।

पांच

एक महीना बीत गया, गौस खां ने असामियों की सूची न तैयार की और न ज्ञानशंकर ने ही फिर ताकीद की। गौस खां के स्व-हित और स्वामि-हित में विरोध हो रहा था और ज्ञानशंकर सोच रहे थे कि जब इजाफे से सारे परिवार का लाभ होगा तो मुझको क्या पड़ी है कि बैठे-बिठाये सिर-दर्द मोल लूं। सैकड़ों गरीबों का गला तो मैं दबाऊं और चैन सारा घर करे। वह इस सारे अन्याय का लाभ अकेले ही उठाना चाहते थे, और लोग भी शरीक हों, यह उन्हें स्वीकार न था। अब उन्हें रात-दिन यही दुश्चिंता रहती थी कि किसी तरह चचा साहेब से अलग हो जाऊं। यह विचार सर्वथा उनके स्वार्थानुकूल था। उनके ऊपर केवल तीन प्राणियों के भरण-पोषण का भार था। आप, स्त्री और भावज। लड़का अभी दूध पीता था। इलाके की आमदनी का बड़ा भाग प्रभाशंकर के काम आता था जिनके तीन पुत्र थे, दो पुत्रियां, एक बहू, एक पोता और स्त्री-पुरुष आप। ज्ञानशंकर अपने पिता के परिवार-पालन पर झुंझलाया करते। आज से तीन साल पहले वह अलग हो गए होते तो आज हमारी दशा ऐसी खराब न होती। चचा के सिर जो पड़ती उसे झेलते, खाते चाहे उपवास करते, हमसे तो कोई मतलब न रहता, बल्कि इस

दशा में हम उनकी कुछ सहायता करते तो वह इसे ऋण समझते, नहीं तो आज झाड़-लीप कर हाथ काला करने के सिवा और क्या मिला? प्रभाशंकर दुनिया देखे हुए थे। भतीजे का यह भाव देखकर दबते थे, अनुचित बातें सुनकर भी अनसुनी कर जाते। दयाशंकर उनकी कुछ सहायता करने के बदले उलटे उन्हीं के सामने हाथ फैलाते रहते थे, इसलिए दबकर रहने में ही उनका कल्याण था।

ज्ञानशंकर दंभ और द्वेष के आवेग में बहने लगे। एक नौकर चचा का काम करता तो दूसरे को खामखाह अपने किसी-न-किसी काम में उलझा रखते। इसी फेर में पड़े रहते कि चचा के आठ प्राणियों पर जितना व्यय होता है उतना मेरे तीन प्राणियों पर हो। भोजन करने जाते तो बहुत-सा खाना जूठा करके छोड़ देते। इतने पर भी संतोष न हुआ तो दो कुत्ते पाले। उन्हें साथ बैठा कर खिलाते। यहां तक कि प्रभाशंकर डॉक्टर के यहां से कोई दवा लेते तो आप भी उतने ही मूल्य की औषधि अवश्य लाते चाहे उसे फेंक ही क्यों न दें ! इतने अन्याय पर भी चित्त को शांति न होती थी, चाहते थे कि महिलाओं में भी बमचख मचे। विद्या की शालीनता उन्हें नागवार मालूम होती, उसे समझाते कि तुम्हें अपने भले-बुरे की जरा भी परवाह नहीं। मरदों को इतना अवकाश कहां कि जरा-जरा-सी बात पर ध्यान रखें। यह स्त्रियों का खास काम है। यहां तक कि इसी कारण उन्हें घर में आग लगाने का दोष लगाया जाता है, लेकिन तुम्हें किसी बात की सुधि ही नहीं रहती। आंखों से देखती हो कि घी का घड़ा लुढ़का जाता है, पर जबान नहीं हिलती। विद्यावती यह शिक्षा पाकर भी उसे ग्रहण न करती थी।

इसी बीच में एक ऐसी घटना हो गई जिसने इस विरोधाग्नि को और भी भड़का दिया। दयाशंकर यों तो पहले से ही अपने थाने में अंधेर मचाये हुए थे, लेकिन जब से ज्वालासिंह उनके इलाके के मैजिस्ट्रेट हो गए थे तब से तो वह पूरे बादशाह बन बैठे थे। उन्हें यह मालूम ही था कि डिप्टी साहब ज्ञानशंकर के मित्र हैं। इतना सहारा मेलजोल पैदा करने के लिए काफी था। कभी उनके पास चिड़िया भेजते, कभी मछलियां, कभी दूध-घी। स्वयं उनसे मिलने जाते तो मित्रवत् व्यवहार करते। इधर सम्मान बढ़ा तो भय कम हुआ, इलाके को लूटने लगे। ज्वालासिंह के पास शिकायतें पहुंचीं, लेकिन वह लिहाज के मारे न तो दयाशंकर से और न उनके घर वालों से ही इनकी चर्चा कर सके। लोगों ने जब देखा कि डिप्टी साहब भी हमारी फरियाद नहीं सुनते तो हार मानकर चुप हो बैठे। दयाशंकर और भी शेर हुए। पहले दांव-घात देखकर हाथ चलाते थे, अब नि:शंक हो गए। यहां तक कि प्याला लबालब हो गया। इलाके में एक भारी डाका पड़ा। वह उसकी तहकीकात करने गए। एक जमींदार पर संदेह हुआ, तुरंत उसके घर की तलाशी लेनी शुरू की, चोरी का कुछ माल बरामद हो गया। फिर क्या था, उसी दम उसे हिरासत में ले लिया। जमींदार ने कुछ दे-दिला कर बला टाली। पर अभिमानी मनुष्य था, यह अपमान न सहा गया। उसने दूसरे दिन ज्वालासिंह के इजलास में दारोगा साहब पर मुकदमा दायर कर दिया। इलाके में आग सुलग रही थी, हवा पाते ही भड़क उठी। चारों तरफ से झूठे-सच्चे इस्तगासे होने लगे। अन्त में ज्वालासिंह को विवश होकर इन मामलों की छानबीन करनी पड़ी। सारा रहस्य खुल गया। उन्होंने पुलिस के अधिकारियों को रिपोर्ट की। दयाशंकर मुअत्तल हो गए, उन पर रिश्वत लेने और झूठे मुंकदमे बनाने के अभियोग चलने लगे। पांसा पलट गया। उन्होंने जमींदार को हिरासत में लिया था, अब खुद हिरासत में आ गए। लाला प्रभाशंकर के उद्योग से जमानत तो मंजूर हो गई, लेकिन अभियोग इतने सप्रमाण थे कि दयाशंकर

के बचने की बहुत कम आशा थी। वह स्वयं निराश थे। सिट्टी-पिट्टी भूल गई, मानो किसी ने बुद्धि हर ली हो। जो जबान थाने की दीवारों को कंपित कर दिया करती थी, वह अब हिलती भी न थी। वह बुद्धि जो हवा में किले बनाती रहती थी, अब इस गुत्थी को भी न सुलझा सकती थी। कोई कुछ पूछता तो शून्य भाव से दीवार की ओर ताकने लगते। उन्हें खेद न था, लज्जा न थी, केवल विस्मय था कि मैं इस दलदल में कैसे फंस गया? वह मौन दशा में बैठे सोचा करते, मुझसे यह भूल हो गई, अमुक बात बिगड़ गई, नहीं तो कदापि नहीं फंसता। विपत्ति में भी जिस हृदय में सद्ज्ञान न उत्पन्न हो वह सूखा वृक्ष है जो पानी पाकर पनपता नहीं, बल्कि सड़ जाता है। ज्ञानशंकर इस दुरवस्था में अपने संबंधियों की सहायता करना अपना धर्म समझते थे, किंतु इस विषय में उन्हें किसी से कुछ कहते हुए संकोच ही नहीं होता, वरन् जब कोई दयाशंकर के व्यवहार की आलोचना करने लगता, तब वह उसका प्रतिवाद करने के बदले उससे सहमत हो जाते थे।

लाला प्रभाशंकर ने बेटे को बरी कराने के लिए कोई बात उठा नहीं रखी। वह रात-दिन इसी चिंता में डूबे रहते थे। पुत्र-प्रेम तो था ही, पर कदाचित् उससे भी अधिक लोकनिंदा की लाज थी। जो घराना सारे शहर में सम्मानित हो, उसका यह पतन हृदयविदारक था। जब वह चारों तरफ से दौड़-धूप कर निराश हो गए तब एक दिन ज्ञानशंकर से बोले—आज जरा ज्वालासिंह के पास चले जाते। तुम्हारे मित्र हैं, शायद कुछ रियायत करें।

ज्ञानशंकर ने विस्मित भाव से कहा—मेरा इस वक्त उनके पास जाना सर्वथा अनुचित है।

प्रभाशंकर— मैं जानता हूं और इसीलिए अब तक तुमसे जिक्र नहीं किया। लेकिन अब इसके बिना काम नहीं चलता दिखाई देता। डिप्टी साहब अपने इजलास से बरी कर दें, फिर आगे हम देख लेंगे। वह चाहें तो सबूतों को निर्बल बना सकते हैं।

ज्ञानशंकर—पर आप इसकी कैसे आशा रखते हैं कि मेरे कहने से वह अपने ईमान का खून करने पर तैयार हो जाएंगे?

प्रभाशंकर ने आग्रहपूर्वक कहा—मित्रों के कहने-सुनने का बड़ा असर होता है।

बूढ़ों की बातें बहुधा वर्तमान सभ्य प्रथा के प्रतिकूल होती हैं। युवकगण इन बातों पर अधीर हो उठते हैं। उन्हें बूढ़ों का यह अज्ञान अक्षम्य-सा जान पड़ता है।

ज्ञानशंकर चिढ़ कर बोले—जब आपकी समझ में बात ही नहीं आती तो मैं क्या करूं? मैं अपने को दूसरों की निगाह में गिराना नहीं चाहता।

प्रभाशंकर ने पूछा—क्या अपने भाई की सिफारिश करने से अपमान होता है?

ज्ञानशंकर ने कटु भाव से कहा—सिफारिश चाहे किसी काम के लिए हो, नीची बात है, विशेष करके ऐसे मामले में।

प्रभाशंकर बोले—इसका अर्थ तो यह है कि मुसीबत में भाई से मदद की आशा न रखनी चाहिए।

''मुसीबत उन कठिनाइयों का नाम है जो दैवी और अनिवार्य कारणों से उत्पन्न हों, जान-बूझकर आग में कूदना मुसीबत नहीं है।''

''लेकिन जो जान-बूझकर आग में कूदे, क्या उसकी प्राण-रक्षा न करनी चाहिए?''

इतने में बड़ी बहू दरवाजे पर आकर खड़ी हो गई और बोली—चल कर लल्लू

(दयाशंकर) को जरा समझा क्यों नहीं देते? रात को भी कुछ खाना नहीं खाया और इस वक्त अभी तक हाथ-मुंह नहीं धोया।

प्रभाशंकर खिन्न होकर बोले—कहां तक समझाऊं? समझाते-समझाते तो हार गया। बेटा ! मेरे चित्त की इस समय जो दशा है, वह बयान नहीं कर सकता। तुमने जो बातें कही हैं वह बहुत माकूल हैं, लेकिन मुझ पर इतनी दया करो, आज डिप्टी साहब के पास जरा चले जाओ। मेरा मन कहता है कि तुम्हारे जाने से कुछ-न-कुछ उपकार अवश्य होगा।

ज्ञानशंकर बगलें झांक रहे थे कि बड़ी बहू बोल उठी—यह जा चुके। लल्लू कहते थे कि ज्ञानू झूठ भी जाकर कुछ कह दे तो सारा काम बन जाए, लेकिन इन्हें क्या परवाह है, चाहे कोई चूल्हे-भाड़ में जाए। फंसाना होता तो चाहे दौड़-धूप करते भी, बचाने कैसे जाएं, हेठी न हो जाएगी?

प्रभाशंकर ने तिरस्कार के भाव से कहा—क्या बेबात की बात कहती हो? अंदर जाकर बैठती क्यों नहीं?

बड़ी बहू ने कुटिल नेत्रों से ज्ञानशंकर को देखते हुए कहा—मैं तो बेलाग बात कहती हूं, किसी को भला लगे या बुरा। जो बात इनके मन में है वह मेरी आंखों के सामने है।

ज्ञानशंकर मर्माहत होकर बोले—चचा साहेब ! आप सुनते हैं इनकी बातें? यह मुझे इतना नीच समझती हैं।

बड़ी बहू ने मुंह बनाकर कहा—यह क्या सुनेंगे, कान भी हों । सारी उम्र गुलामी करते कटी, अब भी वही आदत पड़ी हुई है। तुम्हारा हाल मैं जानती हूं।

प्रभाशंकर ने व्यथित होकर कहा—ईश्वर के लिए चुप रहो।

बड़ी बहू त्योरियां चढ़ाकर बोली—चुप क्यों रहूं, किसी का डर है? यहां तो जान पर बनी हुई है और यह अपने घमंड में भूले हुए हैं। ऐसे आदमी का तो मुंह देखना पाप है।

प्रभाशंकर ने भतीजे की ओर दीनता से देखकर कहा—बेटा, यह इस समय आपे में नहीं हैं। इनकी बातों का बुरा नहीं मानना। लेकिन ज्ञानशंकर ने ये बात न सुनीं, चाची के कठोर वाक्य उनके हृदय को मथ रहे थे। बोले—तो मैं आप लोगों के साथ रहकर कौन-सा स्वर्ग का सुख भोग रहा हूं?

बड़ी बहू—जो अभिलाषा मन में हो वह निकाल डालो। जब अपनापन ही नहीं तो एक घर में रहने से थोड़े ही एक हो जाएंगे।

ज्ञान—तो आप लोगों की यही इच्छा है तो यही सही, मुझे निकाल दीजिए।

बड़ी बहू—हमारी इच्छा है? आज महीनों से तुम्हारा रंग देख रही हूं। ईश्वर ने आंखें दी हैं, धूप में बाल नहीं सफेद किए हैं। हम लोग तुम्हारी आंख में कांटे की तरह खटकते हैं। तुम समझते हो यह लोग हमारा सर्वस्व खाए जाते हैं। जब तुम्हारे मन में इतना कमीनापन आ गया तो फिर....

प्रभाशंकर ने ठंडी सांस लेकर कहा—या ईश्वर, मुझे मौत क्यों नहीं आ जाती।

बड़ी बहू ने पति को कुपित नेत्रों से देखकर कहा—तुम्हें यह बहुत प्यारे हैं तो जाकर इनकी जूतियां सीधी करो। जो आदमी मुसीबत में साथ न दे, वह दुश्मन है। उससे दूर रहना ही अच्छा है।

ज्ञान—तो यह धमकी किसे देती हो? कल के बदले आज ही हिस्सा-बांट लो ।

बड़ी बहू—क्या तुम समझते हो कि हम तुम्हारा दिया खाती हैं?

ज्ञान—इन बातों का प्रयोजन ही क्या है?

बड़ी बहू—नहीं, तुम्हें यही घमंड है।

ज्ञान—अगर यही घमंड है तो क्या अन्याय है। जितना आपका खर्च है उतना मेरा कभी नहीं है।

बड़ी बहू ने पति की ओर देखकर व्यंग्य भाव से कहा—कुछ सुन रहे हो सपूत की बातें। बोलते क्यों नहीं? क्या मुंह में दही जमा हुआ है। बाप हजारों रुपये साल साधू-भिखारियों को खिला दिया करते थे। मरते दम तक बगैर पालकी कहार दरवाजे से नहीं टले। इन्हें आज हमारी रोटियां अखर रही हैं। लाला, हमारा जस मानो कि आज रईसों की तरह चैन कर रहे हो, नहीं तो मुंह में मक्खियां आतीं-जातीं।

प्रभाशंकर यह बातें न सुन सके। उठकर बाहर चले गए। बड़ी बहू मोर्चे पर अकेले ठहर न सकीं, घर में चली गईं। लेकिन ज्ञानशंकर वहीं बैठे रहे। उनके हृदय में एक दाह-सी हो रही थी। इतनी निष्ठुरता । इतनी कृतघ्नता । मैं कमीना हूं, मैं दुश्मन हूं, मेरी सूरत देखना पाप है। जिंदगी-भर हमको नोचा-खसोटा, आज यह बातें । यह घमंड ! देखता हूं यह घमंड कब तक रहता है? इसे तोड़ न दिया तो कहना । ये लोग सोचते होंगे मालिक तो हम हैं, कुंजियां तो हमारे पास हैं, इसे जो देंगे, वह ले लेगा। एक-एक चीज का आधा करा लूंगा। बुढ़िया के पास जरूर रुपये हैं। पिताजी ने सब कुछ इन्हीं लोगों पर छोड़ दिया था। इसने काट-कपटकर दस-बीस हजार जमा कर लिया है। बस, इसी का घमंड है। और कोई बात नहीं। द्वेष में दूसरों को धनी समझने की विशेष चेष्टा होती है।

ज्ञानशंकर इन कुकल्पनाओं से भरे हुए बाहर आए तो चचा को दीवानखाने में मुंशी ईजाद हुसेन से बातें करते पाया। यह मुंशी ज्वालासिंह के इजलास के अहलमद थे—बड़े बातूनी, बड़े चलते-पुर्जे। वह कह रहे थे, आप घबराएं नहीं, खुदा ने चाहा तो बाबू दयाशंकर बेदाग बरी हो जाएंगे। मैंने महरी की मार्फत उनकी बीवी को ऐसा चंग पर चढ़ाया है कि वह दारोगाजी को बिला बरी कराए डिप्टी साहब का दामन न छोड़ेंगी। सौ-दो सौ रुपये खर्च हो जाएंगे, मगर क्या मुजायका, आबरू तो बच जाएगी। अकस्मात् ज्ञानशंकर को वहां देखकर वह कुछ झेंप गए।

प्रभाशंकर बोले—रुपये जितने दरकार हों ले जाएं। आपकी कोशिश से बात बन गई तो हमेशा आपका शुक्रगुजार रहूंगा।

ईजाद हुसेन ने ज्ञानशंकर को देखते हुए कहा—बाबू ज्वालासिंह दोस्ती का कुछ हक तो जरूर ही अदा करेंगे। जबान से चाहे कितने ही बेनियाज बनें, लेकिन दिल में वह आपका बहुत लिहाज करते हैं। मैं भी इस पर खूब रंग चढ़ाता रहता हूं। कल आपका जिक्र करते हुए मैंने कहा, वह तो दो-तीन दिन से दाना-पानी तक न किए हुए हैं। यह सुनकर कुछ गौर करने लगे, बाद अजां उठाकर अंदर चले गए।

प्रभाशंकर ने मुंशी को श्रद्धापूर्ण नेत्रों से देखा, पर ज्ञानशंकर ने तुच्छ दृष्टि से देखा और ऊपर चले गए। विद्यावती उनकी राह देख रही थी, बोली—आज देर क्यों कर रहे हो? भोजन तो कभी से तैयार है।

ज्ञानशंकर ने उदासीनता से कहा—क्या खाऊं? कुछ मिले भी? मालिक और मालकिन

दोनों ने आज से मेरा निबटारा कर दिया। उन्हें मेरी सूरत देखने से पाप लगता है। ऐसों के साथ रहने से तो मर जाना अच्छा है।

विद्यावती ने सशंक होकर पूछा—क्या बात हुई?

ज्ञानशंकर ने इस प्रश्न का उत्तर विस्तार के साथ दिया। उन्हें आशा थी कि इन बातों से विद्यावती की शांतिप्रियता को आघात पहुंचेगा, किंतु उन्हें कितनी निराशा हुई जब उसने सारी कथा सुनने के बाद कहा, तुम्हें ज्वालासिंह के यहां चले जाना चाहिए था। चचाजी की बात रह जाती। ऐसे ही अवसरों पर तो अपने-पराए की पहचान होती है। तुम्हारी ओर से आनाकानी देखकर उन लोगों को क्रोध आ गया होगा। क्रोध में आदमी अपने मन की बात नहीं कहता। वह केवल दूसरे का दिल दुखाना चाहता है।

ज्ञानशंकर खिन्न होकर बोले—तुम्हारी बातें सुनकर जी चाहता है कि अपना और तुम्हारा दोनों का सिर फोड़ लूं। उन लोगों के कटु वाक्यों को फूल-पान समझ लिया, मुझी को उपदेश देने लगी। मुझे तो यह लज्जा आ रही है कि इस गुरगे ईजाद हुसेन ने मेरी तरफ से न जाने क्या-क्या रद्दे जमाए होंगे और तुम मुझे सिफारिश करने की शिक्षा देती हो। मैं ज्वालासिंह को जता देना चाहता हूं कि इस विषय में सर्वथा स्वतंत्र हूं। गरजमंद बनकर उसकी दृष्टि में नीचा नहीं बनना चाहता।

विद्या ने विस्मित होकर पूछा—क्या उनसे यह कहने जाओगे?

ज्ञानशंकर—अवश्य जाऊंगा। दूसरे की आबरू के लिए अपनी प्रतिष्ठा क्यों खोऊं?

विद्या—भला वह अपने मन में क्या कहेंगे? क्या इससे तुम्हारा द्वेष न प्रकट होगा?

ज्ञानशंकर—तुम मुझे जितना मूर्ख समझती हो, उतना नहीं हूं। मुझे मालूम है कौन बात किस ढंग से करनी चाहिए।

विद्या चिन्तित नेत्रों से भूमि की ओर देखने लगी। उसे पति की संकीर्णता पर खेद हो रहा था, लेकिन कुछ और कहते डरती थी कि कहीं उनकी दुष्कामना और भी दृढ़ न हो जाए। इतने में दयाशंकर की स्त्री भोजन करने के लिए बुलाने आई। उधर श्रद्धा ने जाकर बड़ी बहू को मनाना शुरू किया। विद्या ने लाला प्रभाशंकर को मनाने के लिए तेजशंकर को भेजा, पर इनमें से कोई भी भोजन करने न उठा। प्रभाशंकर को यह ग्लानि हो रही थी कि मेरी स्त्री ने ज्ञानशंकर को अप्रिय बातें सुनाईं। बड़ी बहू को शोक था कि मेरे पुत्र का कोई हितैषी नहीं। और ज्ञानशंकर को यह जलन थी कि यह लोग मेरा खाकर मुझी को आंखें दिखाते हैं। क्षुधाग्नि के साथ क्रोधाग्नि भी भड़कती जाती थी।

विवाद में हम बहुधा अत्यंत नीतिपरायण बन जाते हैं, पर वास्तव में इससे हमारा अभिप्राय यही होता है कि विपक्षी की जबान बंद कर दें। इन चंद घंटों में ही ज्ञानशंकर की नीतिपरायणता ईर्ष्याग्नि में परिवर्तित हो चुकी थी। जिस प्राणी के हित के लिए ज्वालासिंह से कुछ कहना उन्हें असंगत जान पड़ता था, उसी के अहित के लिए वह वहां जाने को तैयार हो गए। उन्होंने इस प्रसंग की सारी बातें मन में निश्चित कर ली थीं। इस प्रश्न को ऐसी कुशलता से उठाना चाहते थे कि नीयत का परदा न खुलने पाए।

दूसरे दिन प्रात:काल ज्यों ही नौ बजे, ज्ञानशंकर ने पैरगाड़ी संभाली और घर से निकले। द्वार पर लाला प्रभाशंकर अपने दोनों पुत्रों के साथ टहल रहे थे। ज्ञानशंकर ने मन में कहा, बुड्ढा साठ बरस का हो गया है, पर अभी तक वही जवानी की ऐंठ है। कैसा अकड़ कर चलता है।

अब देखता हूं, मिश्री और मक्खन कहां मिलता है? लौंडे मेरी ओर कैसे घूर रहे हैं, मानो निगल जाएंगे।

वर्षा का आगमन हो चुका था। घटा उमड़ी हुई थी मानो समुद्र आकाश पर चढ़ गया हो। सड़कों पर इतना कीचड़ था कि ज्ञानशंकर की पैरगाड़ी मुश्किल से निकल सकी। छींटों से कपड़े खराब हो गए। उन्हें म्युनिसिपैलिटी के सदस्यों पर क्रोध आ रहा था कि यह सबके सब स्वार्थी, खुशामदी और उचक्के हैं। चुनाव के समय भिखारियों की तरह द्वार-द्वार घूमते-फिरते हैं, लेकिन मेम्बर होते ही राजा बन बैठते हैं। उस कठिन तपस्या का फल यह निर्वाण पद प्राप्त हो जाता है। यह बड़ी भूल है कि मेम्बरों को एक निर्दिष्ट काल के लिए रखा जाता है। वोटरों को अधिकार होना चाहिए कि जब किसी सदस्य को जी चुराते देखें तो पदच्युत कर दें। यह मिथ्या है कि उस दशा में कोई कर्तव्यपरायण मनुष्य मेंबरी के लिए खड़ा न होगा। जिन्हें राष्ट्रीय उन्नति की धुन है, वह प्रत्येक अवस्था में जाति-सेवा के लिए तैयार रहेंगे, मेरे विचार से जो लोग सच्चे अनुराग से काम करना चाहते हैं वह इस बंधन से और भी खुश होंगे। इससे उन्हें अपनी अकर्मण्यता से बचने का एक साधन मिल जायगा। और यदि हमें जाति-सेवा का अनुराग नहीं तो म्युनिसिपल हाल में बैठने की तृष्णा क्यों हो? क्या इससे इज्जत होती है? सिपाही बनकर कोई लड़ने से जी चुराए, यह उसकी कीर्ति नहीं, अपमान है।

ज्ञानशंकर इन्हीं विचारों में मग्न थे कि ज्वालासिंह का बंगला आ गया। वह घोड़े पर हवा खाने जा रहे थे। साईस घोड़ा कसे खड़ा था। ज्ञानशंकर को देखते ही बड़े प्रेम से मिले और इधर-उधर की बातें करने लगे। उन्हें भ्रम हुआ कि यह महाशय अपने भाई की सिफारिश करने आए होंगे। इसलिए उन्हें इस तरह बातों में लगाना चाहते थे कि उस मुकदमे की चर्चा ही न आने पाए। उन्हें दयाशंकर के विरुद्ध कोई सबल प्रमाण न मिला था। यह वह जानते थे कि दयाशंकर का जीवन उज्ज्वल नहीं है, परंतु यह अभियोग सिद्ध न होता था। उनको बरी करने का निश्चय कर चुके थे। ऐसी दशा में वह किसी को यह विचार करने का अवसर नहीं देना चाहते थे कि मैंने अनुचित पक्षपात किया है। ज्ञानशंकर के आने से जनता के संदेह की पुष्टि हो सकती थी। जनता को ऐसे समाचार बड़ी आसानी से मिल जाते हैं। अरदली और चपरासी अपना गौरव बढ़ाने के लिए खबरें बड़ी तत्परता से फैलाते हैं। बोले—कहिए, आपके असामी सीधे हो गए।

ज्ञानशंकर—जी नहीं, उन्हें काबू में करना इतना सहज नहीं है। चचा साहेब ने उन्हें सिर चढ़ा दिया है। मैं इधर ऐसे झमेले में पड़ा रहा कि उस विषय में कुछ करने का अवकाश ही न मिला।

ज्वालासिंह डरे कि भूमिका तो नहीं है, तुरंत पहलू बदलकर बोले—भाई साहब, मैंने यह नौकरी क्या कर ली, एक जंजाल सिर ले लिया। प्रातःकाल से संध्या तक सिर उठाने की फुर्सत नहीं मिलती। बहुधा दस-ग्यारह बजे रात तक काम करना पड़ता है। और इतना ही होता तो भुगत भी लेता, इसके साथ-साथ यह चिंता भी लगी रहती है कि ऊपर वाले खुश रहें। आप जानते ही हैं, अबकी वर्षा बहुत हुई है। मेरे इलाके के सैकड़ों गांवों में बाढ़ आ गई। खेतों का तो कहना ही क्या, किसानों की झोंपड़ियां तक बह गईं। जमींदारों ने आधी मालगुजारी की छूट की प्रार्थना की है और यह प्रार्थना न्यायानुकूल है। किंतु हाकिमों की यह इच्छा मालूम होती है कि इन दरखास्तों को दाखिल-दफ्तर कर दिया जाए। यद्यपि वह प्रत्यक्ष ऐसा करते नहीं,

पर हानियों की जांच में इतनी बाधाएं डालते हैं कि जांच व्यर्थ हो जाती है। अब यदि मैं जानकर अनजान बनूं और स्वच्छंदता से जांच करूं तो अवश्य ही मुझ पर फटकार पड़ेगी। लोग संदेह की दृष्टि से देखने लगेंगे। यहां की हवा ही कुछ ऐसी बिगड़ी हुई है कि मनुष्य इस अन्याय से किसी भांति बच नहीं सकता। अपने अन्य सहवर्गियों की दशा देखकर बस यही इच्छा होती है कि इस्तीफा देकर घर की राह लूं। मनुष्य कितना स्वार्थप्रिय और कितना चापलूस बन सकता है, इसका यहां से उत्तम उदाहरण और कहीं न मिल सकेगा। यदि साहब बहादुर जरा-सा इशारा कर दें कि आमदनी के टैक्स की जांच अच्छी तरह की जाए तो विश्वास मानिए हमारे मित्रगण दो ही दिन में टैक्स को बढ़ाकर दुगुना-तिगुना कर देंगे। यदि इशारा हो जाए कि अबकी तकाबी जरा हाथ रोककर दी जाए तो समझ लीजिए कि वह बंद हो जाएगी। इन महानुभावों की बातें सुनकर ऐसी घृणा होती है कि इनका मुंह न देखूं। न कोई वैज्ञानिक निरूपण, न कोई राजनैतिक या आर्थिक बात, न कोई साहित्य की चर्चा। बस मैंने यह किया, साहब ने यह कहा तो मैंने यह उत्तर दिया। आपसे यथार्थ कहता हूं, कोई छंटा हुआ शोहदा भी अपनी कपट-लीलाओं की डींग यों न मारेगा। खेद तो यह है कि इस रोग से पुराने विचार के बुड्ढे ही ग्रसित नहीं, हमारा नवशिक्षित वर्ग उनसे कहीं अधिक इस रोग से जर्जरित दीख पड़ता है। मार्ले, मिल और स्पेन्सर सभी इस स्वार्थ सिद्धांत के सामने दब जाते हैं। अजी, यहां ऐसे-ऐसे भद्र पुरुष पड़े हुए हैं, जो खानसामों और अरदलियों की पूजा किया करते हैं, केवल इसलिए कि वह साहेब से उनकी प्रशंसा किया करें। जिसे अधिकार मिल गया वह समझने लगता है, अब मैं हाकिम हूं, अब जनता से, देशबंधुओं से मेरा कोई संबंध नहीं है। अंग्रेज अधिकारियों के सम्मुख जाएंगे तो नम्रता, विनय और शील के पुतले बन जाएंगे, मानो ईश्वर के दरबार में खड़े हैं पर जब दौरे पर निकलेंगे तो प्रजा और जमींदारों पर ऐसा रोब जमाएंगे मानो उनके भाग्य के विधाता हैं।

ज्वालासिंह ने स्थिति को खूब बढ़ाकर दर्शाया, क्योंकि इस विषय में वह ज्ञानशंकर के विचारों से परिचित थे। उनका अभिप्राय केवल यह था कि इस समय दयाशंकर के अभियोग की चर्चा न आने पाए।

ज्ञानशंकर ने प्रसन्न होकर कहा—मैंने तो आपसे पहले ही दिन कहा था, किंतु आपको विश्वास न आता था। अभी तो आपको केवल अपने सहवर्गियों की कपट-नीति का अनुभव हुआ। कुछ दिन और रहिए तो अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की चालें देखकर तो आप दंग रह जाएंगे। यह सब आपको कठपुतली बनाकर नचाएंगे। बदनामी से बचने का इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है कि उन्हें मुंह न लगाया जाए। आपका अहलमद ईजाद हुसेन एक ही घाघ है, उससे होशियार रहिएगा। वह तरह-तरह से आपको अपने पंजे में लाने की कोशिश करेगा। आज ही मैंने उसके मुंह से ऐसी बातें सुनी हैं जिनसे विदित होता है कि वह आपको धोखा दे रहा है। उसने आपसे कदाचित मेरी ओर से दयाशंकर की सिफारिश की है। यद्यपि मुझे दयाशंकर से उतनी ही सहानुभूति है जितनी भाई के साथ हो सकती है, तथापि मैं ऐसा धृष्ट नहीं हूं कि मित्रता से अनुचित लाभ उठाकर न्याय का बाधक बनूं। मैं कुमार्ग का पक्ष कदापि ग्रहण न करूंगा, चाहे मेरे पुत्र के ही संबंध में क्यों न हो। मैं मनुष्यत्व को भ्रातृप्रेम से उच्चतर समझता हूं। मैं उन आदमियों में हूं कि यदि ऐसी दशा में आपकी सहृदयता की ओर झुका देखूं तो आपको उससे बाज रक्खूं।

ज्वालासिंह मनोविज्ञान के ज्ञाता थे। समझ गए कि यह महाशय इस समय अपने चचा

से बिगड़े हुए हैं। यह नीतिपराणयता उसी का बुखार है। द्वेष और वैमनस्य कहां तक छिपाया जा सकता है, इसका अनुभव हो गया। उनकी दृष्टि में ज्ञानशंकर की जो प्रतिष्ठा थी वह लुप्त हो गई। भाई का अपने भाई की सिफारिश करना सर्वथा स्वाभाविक और मानवचरित्रानुकूल है। इसे वह बहुत बुरा नहीं समझते थे, किंतु भाई का अहित करने के लिए नैतिक सिद्धांतों का आश्रय लेना वह एक अमानुषिक व्यापार समझते थे। ऐसे दुष्प्रकृति मनुष्यों को जो आठों पहर न्याय और सत्य की हांक लगाते फिरते हों, मर्माहत करने का यह अच्छा अवसर मिला। बोले—आपको भ्रम हुआ है। ईजाद हुसेन ने मुझसे इस विषय में कोई बातचीत नहीं की। और न इसकी जरूरत ही थी, क्योंकि मैं अपने फैसले में दयाशंकर को पहले ही निरपराध लिख चुका हूं। और सबको यह भली-भांति मालूम है कि मैं किसी की नहीं सुनता। मैंने पक्षपातरहित होकर यह धारणा की है और मुझे आशा है कि आप यह सुनकर प्रसन्न होंगे।

ज्ञानशंकर का मुख पीला पड़ गया, मानो किसी ने उनके घर में आग लगाने का समाचार कह दिया हो। हृदय में तीर-सा चुभ गया। अवाक् रह गए।

ज्वालासिंह—गवाह कमजोर थे। मुकदमा बिल्कुल बनावटी था।

ज्ञानशंकर—यह सुनकर असीम आनंदित हुआ। आपको हजारों धन्यवाद। चचा साहेब यह सुनकर खुशी से बावले हो जाएंगे।

ज्वालासिंह इस दबी हुई चुटकी से पीड़ित होकर बोले—यह कानून की बात है। मैंने कोई अनुग्रह नहीं किया।

ज्ञानशंकर—आप चाहे कुछ कहें, पर मैं तो इसे अनुग्रह ही समझूंगा। मित्रता कानून की सीमाओं को अज्ञात रूप से विस्तृत कर देती है। इसके सिवा आप लोगों को भी तो पुलिस का दबाव मानना पड़ता है। उनके द्रोही बनने से आप लोगों के मार्ग में कितनी बाधाएं पड़ती हैं, इसे भी विचारना ही पड़ता है।

ज्वालासिंह इस व्यंग्य से और भी तिलमिला उठे। गर्व से बोले—यहां जो कुछ करते हैं, न्याय के बल पर करते हैं। पुलिस क्या, ईश्वर के दबाव को भी नहीं मान सकते। आपकी इन बातों में कुछ वैमनस्य की गंध आती है। मुझे संदेह होता है कि दयाशंकर का मुक्त होना आपको अच्छा नहीं लगा।

ज्ञानशंकर ने उत्तेजित होकर कहा—यदि आपको ऐसा संदेह है तो यह कहने के लिए मुझे क्षमा कीजिए कि इतने दिनों तक साथ रहने पर भी आप मुझसे सर्वथा अपरिचित हैं। मेरी प्रकृति कितनी ही दुर्बल हो, पर अभी इस अधोगति को नहीं पहुंची है कि अपने भाई की ओर हाथ उठाए। मगर यह कहने में भी मुझे संकोच नहीं है कि भ्रातृ-स्नेह की अपेक्षा मेरी दृष्टि में राष्ट्र-हित का महत्त्व कहीं अधिक है और जब इन दोनों में विरोध होगा तो मैं राष्ट्रहित की ओर झुकूंगा। यदि आप इसे वैमनस्य या ईर्ष्या समझें तो यह आपकी सज्जनता है। मेरी नीति-शिक्षा ने मुझे यही सिखाया है और यथासाध्य उसका पालन करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं। जब एक व्यक्ति-विशेष से जनता का अपकार होता हो तो हमारा धर्म है कि उस व्यक्ति का तिरस्कार करें और सीधे मार्ग पर लाएं, चाहे वह कितना ही आत्मीय हो। संसार के इतिहास में ऐसे उदाहरण अप्राप्य नहीं हैं, जहां राष्ट्रीय कर्तव्य ने कुल-हित पर विजय पाई है, ऐसी दशा में जब आप मुझ पर दुराग्रह का दोषारोपण करते हैं तो मैं इसके सिवा और क्या कह सकता हूं कि आपकी नीति-शिक्षा और ईथिक्स ने आपको कुछ भी लाभ नहीं पहुंचाया।

यह कहकर ज्ञानशंकर बाहर निकल आए। जिस मनोरथ से वह इतने सवेरे यहां आए थे उसके यों विफल हो जाने से उनका चित्त बहुत खिन्न हो रहा था। हां, यह संतोष अवश्य था कि मैंने इन महाशय के दांत खट्टे कर दिए, अब यह फिर मुझसे ऐसी बातें करने का साहस न कर सकेंगे। ज्वालासिंह ने भी उन्हें रोकने की चेष्टा नहीं की। वह सोच रहे थे इस मनुष्य में बुद्धि-बल और दुर्जनता का कैसा विलक्षण समावेश हो गया है? चातुरी कपट के साथ मिलकर दो-आतशी शराब बन जाती है। इस फटकार से कुछ तो आंखें खुली होंगी। समझ गए होंगे कि कूटनीति के परखने वाले संसार से लोप नहीं हो गए।

ज्ञानशंकर यहां से चले तो उनकी दशा उस जुआरी की-सी थी जो जुए में हार गया हो और सोचता हो कि ऐसी कौन-सी वस्तु दांव पर लगाऊं कि मेरी जीत हो जाए। उनका चित्त उद्विग्न हो रहा था। ज्वालासिंह को यद्यपि उन्होंने तुर्की-बतुर्की जवाब दिया था फिर भी उन्हें प्रतीत होता था कि मैं कोई गहरी चोट न कर सका। अब ऐसी कितनी ही बातें याद आ रही थीं जिनसे ज्वालासिंह के हृदय पर आघात किया जा सकता था। और कुछ नहीं तो रिश्वत का ही दोष लगा देता। खैर, फिर कभी देखा जाएगा। अब उन्हें राष्ट्र-प्रेम और मनुष्यत्व का वह उच्चादर्श भी हास्यास्पद-सा जान पड़ता था, जिसके आधार पर उन्होंने ज्वालासिंह को लज्जित करना चाहा था। वह ज्यों-ज्यों इस सारी स्थिति का निरूपण करते थे, उन्हें ज्वालासिंह का व्यवहार सर्वथा असंगत जान पड़ता था। मान लिया कि उन पर मेरी ईर्ष्या का रहस्य खुल गया तो सहृदयता और शालीनता इसमें थी कि वह मुझसे सहानुभूति प्रकट करते, मेरे आंसू पोंछते। ईर्ष्या भी मानव स्वभाव का एक अंग ही है, चाहे वह कितना ही अवहेलनीय क्यों न हो? यदि कोई मनुष्य इसके लिए मेरा अपमान करे तो इसका कारण उसकी आत्मिक पवित्रता नहीं, वरन् मिथ्याभिमान है। ज्वालासिंह कोई ऋषि नहीं, देवता नहीं, और न यह संभव है कि ईर्ष्या-द्वेष से कभी उनका हृदय प्रभावित न हुआ हो। उनकी यह गर्वपूर्ण नीतिज्ञता और धर्मपरायणता स्वयं उस ईर्ष्या का फल है जो उनके हृदय में अपनी मानसिक लघुता के ज्ञान से प्रज्वलित हुई है।

यह सोचते हुए वह घर पहुंचे तो अपने दोनों छोटे चचेरे भाइयों को अपने कमरे में किताबें उलटते-पुलटते देखा। यद्यपि यह कोई असाधारण बात न थी, पर ज्ञानशंकर इस समय मानसिक अशांति से पीड़ित हो रहे थे। जल गए और दोनों लड़कों को डांटकर भगा दिया। इन लोगों ने अवश्य मुझे छेड़ने के लिए इन शैतानों को यहां भेज दिया है। नीचे इतना बड़ा दीवानखाना है, दो कमरे हैं, क्या उनके लिए इतना काफी नहीं कि मेरे पास एक छोटे-से कमरे को भी नहीं देख सकते। क्या इस पर भी दांत हैं? मुझे घर से निकालने की ठानी है क्या? इस मामले को अभी से साफ कर लेना चाहिए। यह कदापि नहीं हो सकता कि मुझे लोग दबाते जाएं और मैं चूं न करूं। मन में यह निश्चय करके उन्होंने तत्क्षण अपने चचा के नाम यह पत्र लिखा-

'मान्यवर, यह बात मेरे लिए असह्य है कि आपके सुपुत्र मेरी अनुपस्थिति में मेरे कमरे में आकर ऊधम मचाएं और मेरी वस्तुओं का सर्वनाश करें। मैं चाहता हूं कि आज घर का बंटवारा हो जाए और लड़कों को ताकीद कर दी जाए कि वह भूलकर भी मेरे मकान में पदक्षेप न करें, अन्यथा में उनकी ताड़ना करूं, तो आपको या चाचीजी को मुझसे शिकायत करने का कोई अधिकार न रहेगा। इसका ध्यान रखिएगा कि मुझे जो भाग मिले वह गार्हस्थ्य आवश्यकताओं के अनुकूल हो, और सबसे बड़ी बात यह है कि वह पृथक् हो जिससे मैं उसे अपना समझ सकूं और आते-जाते, उठते-बैठते, आग्नेय नेत्रों और व्यंग्य शरों का लक्ष्य न बनूं।'

यह पत्र कहार को देकर वह उत्तर का इंतजार करने लगे। सोच रहे थे कि देखें, बुड्ढा अबकी क्या चाल चलता है? एक क्षण में कहार ने उसका जवाब लाकर उसके हाथ में रख दिया—

'बेटा, मेरे लड़के तुम्हारे लड़के हैं। उन्हें दंड देने का तुम्हें पूरा अधिकार है, इसकी शिकायत मुझे न कभी हुई है न होगी। बल्कि तुम्हारा मुझ पर अनुग्रह होगा, यदि कभी-कभी उनकी खबर लेते रहो। रहा घर का बंटवारा, उसे मैं तुम्हारे ऊपर छोड़ता हूं। घर तुम्हारा है, मैं भी तुम्हारा हूं, जो टुकड़ा चाहो मुझे दे दो, मुझे कोई आपत्ति न होगी। हां, यह ध्यान रखना कि मैं बाहर बैठने का आदी हूं, इसलिए दीवानखाने के बरामदे में मेरे लिए एक चौकी की जगह दे देना। बस, यह मेरी हार्दिक अभिलाषा थी कि मेरे जीवनकाल में यह विच्छेद न होता, पर तुम्हारी यदि इच्छा है और तुम इसी में प्रसन्न हो तो मैं क्या कर सकता हूं।'

ज्ञानशंकर ने पुर्जे को जेब में रख लिया और मुस्कराए। बुड्ढा कैसा घाघ है, इन्हीं नम्रताओं से उसने पिताजी को उल्लू बना लिया था, मुझसे भी वही चाल चल रहा है, पर मैं ऐसा गौखा नहीं हूं। समझे होंगे कि जरा दब जाऊं तो वह आप ही दब जाएगा। यहां ऐसी विषम शालीनता का पाठ नहीं पढ़ा है। विवश होकर दबना तो समझ में आता है, पर किसी के खातिर से दबना, केवल मुरौवत के हाथों की कठपुतली बनना, यह निरी भावुकता है !

ज्ञानशंकर बैठकर सोचने लगे, कैसे इस समस्या की पूर्ति करूं, केवल यह एक कमरा नीचे के दीवानखाने और उसके बगल के दोनों कमरों की समता नहीं कर सकता। ऊपर के दो कमरों पर दयाशंकर का अधिकार है। पर ऊपर के तीनों कमरे मेरे, नीचे के तीनों कमरे उनके। यहां तो बड़ी सुगमता से विभाग हो गया, किंतु जनाने घर में यह पार्थक्य इतना सुलभ नहीं। पर्दे की कम-से-कम दो दीवारें खींचनी पड़ेंगी। पूर्व की ओर से निकास के लिए एक द्वार खोलना पड़ेगा, और इसमें झंझट है। म्युनिसिपैलिटी महीनों का अलसेट लगा देगी। क्या हर्ज है यदि मैं दीवानखाने के नीचे-ऊपर के दोनों भागों पर संतोष कर लूं? जनाना मकान उन्हीं के हिस्से में डाल दूं। यहां ऊपर स्त्रियां भली-भांति रह सकती हैं। जनाना मकान इससे बड़ा अवश्य है, पर न जाने कब का बना हुआ है। थोड़े ही दिनों में उसे फिर बनवाना पड़ेगा। दीवारें अभी से गिरने लगी हैं। नित्य मरम्मत होती ही रहती है। छत भी टपकती है। बस मेरे लिए दीवानखाना ही अच्छा है। चचा साहेब का इसमें गुजर नहीं हो सकता, उन्हें विवश होकर जनाना मकान लेना पड़ेगा। यह बात मुझे खूब सूझी, अपना अर्थ भी सिद्ध हो जाएगा और उदारता का श्रेय भी हाथ रहेगा।

मन में यह निश्चय करके वह स्त्रियों से परामर्श करने के लिए अंदर गए। वह सभ्यता के अनुसार स्त्रियों की सम्मति अवश्य लेते थे, पर 'वीटो' का अधिकार अपने हाथ में रखते और प्रत्येक अवसर पर उसका उपयोग करने के कारण वह अवांछित सम्मति का गला घोंट देते थे। वह अंदर गए तो उन्हें बड़ा करुणाजनक दृश्य दिखाई दिया। दयाशंकर कचहरी जा रहे थे और बड़ी बहू आंखों में आंसू भरे उनको विदा कर रही थीं। दोनों बहनें उनके पैरों से लिपटकर रो रही थीं। उनकी पत्नी अपने कमरे के द्वार पर घूंघट निकाले उदास खड़ी थी। संकोचवश पति के पास न आ सकती थी। श्रद्धा भी खड़ी रो रही थी। आज अभियोग का फैसला सुनाया जाने वाला था। मालूम नहीं क्या होगा। घर लौटकर आना बदा है या फिर घर का मुंह देखना नसीब न होगा। दयाशंकर अत्यंत कातर देख पड़ते थे। ज्ञानशंकर को देखते ही उनके

नेत्र सजल हो गए, निकट आकर बोले—भैया, आज मेरा हृदय शंका से कांप रहा है। ऐसा जान पड़ता है, आप लोगों के दर्शन न होंगे। मेरे अपराधों को क्षमा कीजिएगा। कौन जाने फिर भेंट हो या न हो, दया का क्या आसरा? यह घर अब आपके सुपुर्द है।

ज्ञानशंकर उनकी यह बातें सुनकर पिघल गए। अपने हृदय की संकीर्णता और क्षुद्रता पर ग्लानि उत्पन्न हुई। तस्कीन देते हुए बोले—ऐसी बातें मुंह से न निकालो, तुम्हारा बाल भी बांका न होगा। ज्वालासिंह कितने ही निर्दयी बनें, पर मेरे एहसानों को नहीं भूल सकते। और सच्ची बात तो यह है कि मैं अभी तुम्हारे ही संबंध में बातें करके उनके पास से आ रहा हूं, तुम अवश्य बरी हो जाओगे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में मुझे इसका विश्वास दिलाया है। चलता तो मैं भी तुम्हारे साथ, किंतु मेरे जाने से काम बिगड़ जाएगा।

दयाशंकर ने अविश्वासपूर्ण कृतज्ञता के भाव से उनकी ओर देखकर कहा—हाकिमों की बात का क्या भरोसा?

ज्ञानशंकर—ज्वालासिंह उन हाकिमों में नहीं हैं।

दयाशंकर—यह न कहिए, बड़ा बेमुरौवत आदमी है।

ज्ञानशंकर ने उनके हृदयस्थ अविश्वास को ताड़कर कहा—यही हृदय की निर्बलता हमारे अपराधों का ईश्वरीय दंड है, नहीं तो तुम्हें इतना अविश्वास न होता।

दयाशंकर लज्जित होकर वहां से चले गए। ज्ञानशंकर ने भी उनसे और कुछ न कहा—उन्होंने हारी हुई बाजी को जीतना चाहा था, पर सफल न हुए। वह इस बात पर मन में झुंझलाए कि यह लोग मुझे उच्च भावों के योग्य नहीं समझते। मैं इनकी दृष्टि में विषैला सर्प हूं। जब मुझ पर अविश्वास है तो फिर जो कुछ करना है वह खुल्लम-खुल्ला क्यों न करूं? आत्मीयता का स्वांग भरना व्यर्थ है। इन भावों से यह लोग अब हत्थे चढ़ने वाले नहीं। सद्भावों का अंकुर जो एक क्षण के लिए उनके हृदय में विकसित हुआ था, इन दुष्कामनाओं से झुलस गया। वह विद्या के पास गए तो उसने पूछा—आज सवेरे कहां गए थे?

ज्ञानशंकर—जरा ज्वालासिंह से मिलने गया था।

विद्या—तुम्हारी ये बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं।

ज्ञान—कौन-सी बातें?

विद्या—यही, अपने घर के लोगों की हाकिमों से शिकायत करना। भाइयों में खटपट सभी जगह होती है, मगर कोई इस तरह भाई की जड़ नहीं काटता।

ज्ञानशंकर ने होंठ चबाकर कहा—तुमने मुझे इतना कमीना, इतना कपटी समझ लिया है?

विद्या दृढ़ता से बोली—अच्छा, मेरी कसम खाओ कि तुम इसलिए ज्वालासिंह के पास नहीं गए थे?

ज्ञानशंकर ने कठोर स्वर में कहा—मैं तुम्हारे सामने अपनी सफाई देना आवश्यक नहीं समझता।

यह कहकर ज्ञानशंकर चारपाई पर बैठ गए। विद्या ने पते की बात कही थी और इसने उन्हें मर्माहत कर दिया था। उन्हें इस समय विदित हुआ कि सारे घर के लोग, यहां तक कि मेरी स्त्री भी मुझे कितना नीच समझती है।

विद्या ने फिर कहा—अरे तो यहां कोई दूसरा थोड़े ही बैठा हुआ है, जो सुन लेगा?

ज्ञानशंकर—चुप भी रहो। तुम्हारी ऐसी बातों से बदन में आग लग जाती है। मालूम नहीं, तुम्हें कब बात करने की तमीज आएगी। क्या हुआ, आज भोजन न मिलेगा क्या? दोपहर तो होने को आई।

विद्या—आज तो भोजन बना ही नहीं। तुम्हीं ने घर बांटने के लिए चाचाजी को कोई चिट्ठी लिखी थी। तब से वह बैठे हुए रो रहे हैं।

ज्ञानशंकर—उनका रोने का जी चाहता है तो रोएं। हम लोगों को भूखों मारेंगे क्या?

विद्या ने पति को तिरस्कार की दृष्टि से देखकर कहा—घर में जब ऐसा रार मचा हो तो खाने-पीने की इच्छा किसे होती है? चाचाजी को इस दशा में देखकर किसके कंठ के नीचे अन्न जाएगा। एक तो लड़के पर यह विपत्ति, दूसरे घर में यह द्वेष। जब से तुम्हारी चिट्ठी पाई है, सिर नहीं उठाया। तुम्हें अलग होने की यह धुन क्यों समाई है?

ज्ञानशंकर—इसीलिए कि जो थोड़ी-बहुत जायदाद बच रही है वह भी इस भाड़ में न जल जाय। पहले घर में छह हजार सालाना की जायदाद थी। अब मुश्किल से दो हजार की रह गई है। इन लोगों ने सब खा-पीकर बराबर कर दी।

विद्या—तो यह लोग कोई पराए तो नहीं हैं?

ज्ञानशंकर—तुम जब ऐसी बड़ी-बड़ी बातें करने लगती हो तो मालूम होता है, धन्ना सेठ की बेटी हो। तुम्हारे बाप के पास तो लाखों की संपत्ति है, क्यों नहीं उसमें से थोड़ी-सी हमें दे देते। वह तो कभी बात भी नहीं पूछते और तुम्हारे पैरों तले गंगा बहती है।

विद्या—पुरुषार्थी लोग दूसरों की संपत्ति पर मुंह नहीं फैलाते। अपने बाहुबल का भरोसा रखते हैं।

ज्ञानशंकर—लजाती तो नहीं हो, ऊपर से बढ़कर-बढ़कर बातें करती हो। यह क्यों नहीं कहती कि घर की जायदाद प्राणों से भी प्रिय होती है और उसकी रक्षा प्राणों से भी अधिक की जाती है? नहीं तो ढाई लाख सालाना जिसके घर में आया हो, उसके लिए बेटी-दामाद पर दो-चार हजार खर्च कर देना कौन-सी बड़ी बात है? लाला साहेब तो पैसे को यों दांतों से पकड़ते हैं और तुम इतनी उदार बनती हो मानो जायदाद का कुछ मूल्य ही नहीं।

इतने में श्रद्धा आ गई और ज्ञानशंकर घर के बंटवारे के विषय में उससे बातें करने लगे।

छह

लाला प्रभाशंकर का क्रोध ज्योंही शांत हुआ वह अपने कटु वाक्यों पर बहुत लज्जित हुए। बड़ी बहू की तीखी बातें ज्यों-ज्यों उन्हें याद आती थीं, ग्लानि और भी बढ़ती जाती थी। जिस भाई के प्रेम और अनुराग से उनका हृदय परिपूर्ण था, जिसके मृत्युशोक का घाव अभी भरने न पाया था, जिसका स्मरण आते ही आंखों से अश्रुधारा बहने लगती थी। उसके प्राणाधार पुत्र के साथ उन्हें अपना यह बर्ताव बड़ी कृतघ्नता का मालूम होता था। रात को उन्होंने कुछ न खाया। सिर-पीड़ा का बहाना करके लेट रहे। कमरे में धुंधला प्रकाश था। उन्हें ऐसा जान पड़ा, मानो लाला जटाशंकर द्वार पर खड़े उनकी ओर तिरस्कार की दृष्टि से देख रहे हैं। वह घबराकर उठ

बैठे, सांस वेग से चलने लगी। बड़ी प्रबल इच्छा हुई कि इसी दम चलकर ज्ञानशंकर से क्षमा मांगू, किंतु रात ज्यादा हो गई थी, बेचारे एक ठंडी सांस लेकर फिर लेट रहे। हां ! जिस भाई ने जिंदगी भर मेरी ओर कड़ी निगाह से भी नहीं देखा, उसकी आत्मा को मेरे कारण ऐसा विषाद हो। मैं कितना अत्याचारी, कितना संकीर्ण हृदय, कितना कुटिल-प्रकृति हूं।

प्रातःकाल उन्होंने बड़ी बहू से पूछा–रात ज्ञानू ने कुछ खाया था या नहीं।

बड़ी बहू–रात चूल्हा नहीं जला, किसी ने भी नहीं खाया।

प्रभाशंकर–तुम लोग खाओ या न खाओ, लेकिन उसे क्यों भूखा मारती हो; भला ज्ञानू अपने मन में क्या कहता होगा? मुझे कितना नीच समझ रहा होगा !

बड़ी बहू–नहीं तो अब तक मानो वह तुम्हें देवता समझता था। तुम्हारी आंखों पर पर्दा पड़ा होगा, लेकिन मैं इस छोकरे का रुख साल भर से देख रही हूं। अचरज यही है कि वह अब तक चुप कैसे रहा? आखिर वह क्या समझकर अलग हो रहा है ! यही न कि हम लोग पराए हैं। उसे इसकी लेशमात्र भी परवाह नहीं कि इन लोगों का निर्वाह कैसे होगा? उसे तो बस रुपये की हाय-हाय पड़ी हुई है, चाहे चचा, भाई, भतीजे जीएं या मरें। ऐसे आदमी का मुंह देखना पाप है।

प्रभाशंकर–फिर वही बात मुंह से निकालती हो। अगर वह अपना आधा हिस्सा मांगता है तो क्या बुरा करता है? यही तो संसार की प्रथा रही है।

बड़ी बहू–तुम्हारी तो बुद्धि मारी गई है। कहां तक कोई समझाए, जैसे कुछ सूझता ही नहीं। हमारे लड़के की जान पर बनी हुई है, घर विध्वंस हुआ जाता है, दाना-पानी हराम हो रहा है, वहां आधी रात तक हारमोनियम बजता है। मैं तो उसे काला नाग समझती हूं, जिसके विष का उतार नहीं। यदि कोई हमारे गले पर छुरा भी चला दे तो उसकी आंखों में आंसू न आए। तुम यहां बैठे पछता रहे हो और वह टोले मुहल्ले में घूम-घूम तुम्हें बदनाम कर रहा है। सब तुम्हीं को बुरा कह रहे हैं।

प्रभाशंकर–यह सब तुम्हारी मिथ्या कल्पना है, उसका हृदय इतना क्षुद्र नहीं है।

बड़ी बहू–तुम इसी तरह बैठे स्वर्ग-सपना देखते रहोगे और वह एक दिन सब संबंधियों को बटोरकर बांट-बखरे की बात छेड़ देगा, फिर कुछ करते-धरते न बनेगा। राय कमलानन्द से भी पत्र-व्यवहार कर रहा है। मेरी बात मानो, अपने संबंधियों को भी सचेत कर दो। पहले से सजग रहना अच्छा है।

प्रभाशंकर ने गौरवोन्मत्त होकर कहा–यह हमसे मरते दम तक न होगा। मैं ऐसा निर्लज्ज नहीं हूं कि अपने घर की फूट का ढिंढोरा पीटता फिरूं? ज्ञानशंकर मुझसे चाहे जो भाव रखे, किंतु मैं उसे अपना लड़का ही समझता हूं। हम दोनों भाई एक-दूसरे के लिए प्राण देते रहे। आज भैया के पीछे मैं इतना बेशर्म हो जाऊं कि दूसरों से पंचायत कराता फिरूं? मुझे ज्ञानशंकर से ऐसे द्वेष की आशा नहीं, लेकिन यदि उसके हाथों मेरा अहित भी हो जाय तो मुझे लेशमात्र भी दुःख न होगा। अगर भैया पर हमारा बोझ न होता तो उनका जीवन बड़े सुख से व्यतीत हो सकता था। ज्ञानू उन्हीं का लड़का है। यदि उसके सुख और संतोष के लिए हमें थोड़ा-सा कष्ट भी हो तो हमें बुरा न मानना चाहिए। हमारे सिर उसके ऋण से दबे हुए हैं। मैं छोटी-छोटी बातों के लिए उससे रार मचाना अनुचित समझता हूं।

बड़ी बहू ने इसका प्रतिवाद न किया, उठकर वहां से चली गई। प्रभाशंकर उन्हें और

भी लज्जित करना चाहते थे। कुछ देर तक वहीं बैठे रहे कि आ जाए तो दिल का बुखार निकालूं, लेकिन जब देर हुई तो उकताकर बाहर चले गए। वह पहले कितनी ही बार बड़ी बहू से ज्ञानशंकर की शिकायत कर चुके थे। उसके फैशन और ठाट के लिए वह कभी खुशी से रुपये न देते थे, किंतु जब वह बड़ी बहू या अपने घर के किसी अन्य व्यक्ति को ज्ञानशंकर से विरोध करते देखते, तो उनकी न्याय-वृत्ति प्रज्वलित हो जाती थी और वह उमंग में आकर सज्जनता और उदारता की ऐसी डींग मारने लगते थे, जिसको व्यवहार में लाने का कदाचित उन्हें कभी साहस न होता।

बाहर आकर वह आंगन में टहलने लगे और तेजशंकर को यह देखने को भेजा कि ज्ञानशंकर क्या कर रहे हैं। वह उनसे क्षमा मांगना चाहते थे, किंतु जब उन्हें पैर-गाड़ी पर सवार कहीं जाते देखा, तो कुछ न कह सके। ज्ञानशंकर के तेवर कुछ बदले हुए थे, आंखों में क्रोध झलक रहा था। प्रभाशंकर ने सोचा, इतने सवेरे यह कहां जा रहे हैं, अवश्य कुछ दाल में काला है। उन्होंने अपनी चिड़ियों के पिंजरे उतार लिए और दाने चुगाने लगे। पहाड़ी मैना के हरिभजन का आनंद उठाने में वह अपने को भूल जाया करते थे। इसके बाद स्नान करके रामायण का पाठ करने लगे। इतने में दस बज गए और कहार ने ज्ञानशंकर का पत्र उनके सामने रख दिया। उन्होंने तुरंत पत्र को उठा लिया और पढ़ने लगे। उनकी ईश-वंदना में व्यावहारिक कामों से कोई बाधा न पड़ती थी। इस पत्र को पढ़कर उनके शरीर में ज्वाला-सी लग गई। उसका एक-एक शब्द चिंगारी के समान हृदय पर लगता था। ज्ञानशंकर कितना दंभी और ईर्ष्यालु है, इसका कुछ अनुमान हुआ। ज्ञात हुआ कि बड़ी बहू ने उसकी प्रकृति के विषय में जो आलोचना की थी वह सर्वथा सत्य थी। यह दुस्साहस ! यह पत्र उसकी कलम से कैसे निकला। उसने मेरी गर्दन पर तलवार भी चला दी होती तो मैं इतना द्वेष न कर सकता। इतना योग्य और चतुर होने पर भी उसका हृदय इतना संकीर्ण है। विद्या का फल तो यह होना चाहिए कि मनुष्य में धैर्य और संतोष का विकास हो, ममत्व का दमन हो, हृदय उदार हो न कि स्वार्थपरता, क्षुद्रता और शील-हीनता का भूत सिर चढ़ जाय। लड़कों ने शरारत की थी, डांट देते, झगड़ा मिटता। क्यों जरा-सी बात का बतंगड़ बनाया। अब स्पष्ट विदित हो रहा है कि साथ निर्वाह न होगा। मैं कहां तक दबा करूंगा, मैं कहां तक सिर झुकाऊंगा? खैर, उनकी जैसी इच्छा हो करें। मैं अपनी ओर से ऐसी कोई बात न करूंगा जिससे मेरी पीठ में धूल लगे। मकान बांटने को कहते हैं, इससे बड़ा अनर्थ और क्या होगा? घर का पर्दा खुल जायगा, संबंधियों में घर-घर इसकी चर्चा होगी ! हा दुर्भाग्य ! घर में दो चूल्हे जलेंगे। जो बात कभी न हुई थी, वह अब होगी ! मेरे और मेरे प्रिय भाई के पुत्र के बीच केवल पड़ोसी का नाता रह जायगा। वह जो जीवनपर्यंत साथ रहे, साथ खेले, साथ रोए, साथ हंसे, अब अलग हो जाएंगे। किंतु इसके सिवा और उपाय ही क्या है ! लिख दूं कि तुम जैसे चाहो घर को बांट लो? क्यों कहूं कि मैं यह मकान लूंगा, यह कोठा लूंगा। जब अलग ही होते हैं तो जहां तक हो सके आपस में मनमुटाव न होने दें। यह सोच लाला प्रभाशंकर ने ज्ञानशंकर के पत्र का उत्तर लिख दिया। उन्हें अब भी आशा थी कि मेरे उत्तर की नम्रता का ज्ञानशंकर पर अवश्य कुछ-न-कुछ असर होगा। क्या आश्चर्य है कि अलग होने का विचार ही उसके दिल से अलग हो जाय। यह विचारकर उन्होंने पत्र का उत्तर लिख दिया और जवाब का इंतजार करने लगे।

ग्यारह बजे तक कोई जवाब न आया। दयाशंकर कचहरी जाने लगे। बड़ी बहू आकर

बोली—लल्लू के साथ तुम भी चले जाओ। आज तजबीज सुनाई जायगी। जाने कैसी पड़े, कैसी न पड़े।

प्रभाशंकर ने अपने जीवन में कभी कचहरी के अंदर कदम न रखा था। दोनों भाइयों की प्रतिज्ञा थी कि चाहे कुछ भी क्यों न हो, कचहरी का मुंह न देखेंगे। यद्यपि इस प्रतिज्ञा के कारण उन्हें कितनी बार हानियां उठानी पड़ी थीं, कितनी ही बार बल खाना पड़ा था, विरोधियों के सामने झुकना पड़ा था, तथापि उन्होंने अब तक प्रतिज्ञा का पालन किया था। बड़ी बहू की बात सुनकर प्रभाशंकर बड़े असमंजस में पड़े। न तो जाते ही बनता था, न इंकार ही करते बनता था। बगलें झांकने लगे। दयाशंकर ने उन्हें द्विविधा में देखकर कुछ उदासीन भाव से कहा—आपका जी न चाहता हो, न चलिए, मुझ पर जो कुछ पड़ेगी देख लूंगा।

बड़ी बहू—नहीं, चले जाएंगे, हरज क्या है?

दयाशंकर—जब कभी कचहरी न गए तो अब कैसे जा सकते हैं। प्रतिज्ञा न टूट जायगी?

बड़ी बहू—भला, ऐसी प्रतिज्ञा बहुत देखी है। लाऊं कपड़े?

दयाशंकर—नहीं, मैं अकेले ही चला जाऊंगा, आपके चलने की जरूरत नहीं।

यह कहकर दयाशंकर चले गए। बड़ी बहू भी पति को अश्रद्धा की दृष्टि से देखते हुए घर में चली गई। प्रभाशंकर मन में बड़ी बहू पर झुंझला रहे थे कि इसने मेरे कचहरी जाने का प्रश्न क्यों उठाया ! मैं वहां जाकर क्या बना लेता, हाकिम की कलम तो पकड़ नहीं लेता, न उससे कुछ विनय-प्रार्थना ही कर सकता। और फिर जब कभी न गया तो अब क्यों जाऊं? जिसने कांटे बोए हैं वह उनके फल खायगा। इस फिक्र में कहां तक जान दूं?

वह इसी खिन्नावस्था में बैठे थे कि ज्ञानशंकर का दूसरा पत्र पहुंचा। उन्होंने संपूर्ण दीवानखाना लेने का निश्चय किया था। प्रभाशंकर ने सोचा मेरी नम्रता उसके क्रोध को शांत कर देगी। उस आशा के प्रतिकूल जब यह प्रस्ताव सामने आया तो चित्त अस्थिर हो गया। पत्र के निश्चयात्मक शब्दों ने उन्हें संज्ञाहीन कर दिया। बौखला गए। क्रोध की जगह उनके हृदय में एक विवशता का संचार हुआ। क्रोध प्रत्याघात की सामर्थ्य का द्योतक है। उनमें यह शक्ति निर्जीव हो गई थी। उस प्रस्ताव की भयंकर मूर्ति ने संग्राम की कल्पना तक मिटा दी। उस बालक की-सी दशा हो गई जो हाथी को सामने देखकर मारे भय के रोने लगे, उसे भागने तक की सुध न रहे। उनका समस्त जीवन भ्रातृ-प्रेम की सुखद छाया में व्यतीत हुआ था। वैमनस्य और विरोध की यह ज्वाला-सम धूप असह्य हो गई। एक दीन प्रार्थी की भांति ज्ञानशंकर के पास गए और करुण स्वर में बोले—ज्ञानू, ईश्वर के लिए इतनी बेमुरौवती न करो। मेरी वृद्धावस्था पर दया करो। मेरी आत्मा पर ऐसा निर्दय आघात मत करो। तुम सारा मकान ले लो, मेरे बाल-बच्चों के लिए जहां चाहो थोड़ा-सा स्थान दे दो, मैं उसी में अपना निर्वाह कर लूंगा। मेरे जीवन भर इसी प्रकार चलने दो। जब मर जाऊं तो जो इच्छा हो करना। एक थाली में न खाओ, एक घर में तो रहो, इतना संबंध तो बनाए रखो। मुझे दीवानखाने की जरूरत नहीं है। भला सोचो तो तुम दीवानखाने में जाकर रहोगे तो बिरादरी के लोग क्या कहेंगे? नगर वाले क्या कहेंगे? सब कुछ हो गया है, पर अभी तक तुम्हारी कुल की मर्यादा बनी हुई है। हम दोनों भाई नगर में राम-लक्ष्मण की जोड़ी कहलाते थे। हमारे प्रेम और एकता की सारे नगर में उपमा दी जाती थी। किसी को यह कहने का अवसर मत दो कि एक भाई की आंखें बंद होते ही आपस में ऐसी अनबन हो गई कि अब एक घर में रह भी नहीं सकते। मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करो।

ज्ञानशंकर पर इन विनयपूर्ण शब्दों का कुछ भी असर न हुआ। उनके विचार में वह विकृत भावुकता थी, जो मानसिक दुर्बलता का चिह्न है। हां, उस पर कृत्रिमता का संदेह नहीं हो सकता था। उन्हें विश्वास हो गया कि चचा साहेब को इस समय हार्दिक वेदना हो रही है। वृद्धजनों का हृदय कुछ कोमल हुआ करता है इन्होंने जन्म भर कुल-प्रतिष्ठा तथा मान-मर्यादा के देवता की उपासना की है। इस समय अपकीर्ति का भय चित्त को अस्थिर कर रहा है। बोले--मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, पर यह तो विचार कीजिए कि इस पुराने घर में दो परिवारों का निर्वाह हो भी कैसे सकता है? रसोई का मकान केवल एक ही है। ऊपर सोने के लिए तीन कमरे हैं। आंगन कहने को तो है, किंतु वायु और प्रकाश का प्रवेश केवल एक में ही होता है। स्नानगृह भी एक है। इन कष्टों को नित्य नहीं झेला जा सकता। हमारी आयु इतनी दीर्घ नहीं है कि उसका एक भाग कष्टों को ही भेंट किया जाय। आपकी कोमल आत्मा को इस परिवर्तन से दुःख अवश्य होगा और मुझे आपसे पूर्ण सहानुभूति है, किंतु भावुकता के फेर में पड़कर अपने शारीरिक सुख और शांति का बलिदान करना मुझे पसंद नहीं। यदि आप भी इस विषय पर निष्पक्ष होकर विचार करेंगे तो मुझसे सहमत हो जाएंगे।

प्रभाशंकर--मुझे तो इस बदनामी के सामने यह असुविधाएं कुछ भी नहीं मालूम होतीं। जैसे अब तक काम चलता आ रहा है, उसी भांति अब भी चल सकता है।

ज्ञानशंकर--आपके और मेरे जीवन-सिद्धांतों में बड़ा अंतर है। आप भावों की आराधना करते हैं, मैं विचार का उपासक हूं। आप निंदा के भय से प्रत्येक आपत्ति के सामने सिर झुकाएंगे, मैं अपनी विचार-स्वतंत्रता के सामने लोकमत की लेश-मात्र भी परवाह नहीं करता। जीवन आनंद से व्यतीत हो, यह हमारा अभीष्ट है। यदि संसार स्वार्थपरता कहकर इसकी हंसी उड़ाये, निंदा करे तो मैं उसकी सम्मति को पैरों तले कुचल डालूंगा। आपकी शिष्टता का आधार ही आत्मघात है। आपके घर में चाहे उपवास होता हो, किंतु कोई मेहमान आ जाय तो आप ऋण लेकर उसका सत्कार करेंगे। मैं ऐसे मेहमान को दूर से ही प्रणाम करूंगा। आपके यहां जाड़े में मेहमान लोग प्रायः बिना ओढ़ना-बिछौना लिए ही आते हैं। आप स्वयं जाड़ा खाते हैं, पर मेहमानों के ओढ़ने-बिछौने का प्रबंध अवश्य करते हैं। मेरे लिए यह अवस्था दुस्सह है। किसी मनुष्य को, चाहे वह हमारा निजी संबंधी ही क्यों न हो, यह अधिकार नहीं है कि वह इस प्रकार मुझे असमंजस में डाले। मैं स्वयं किसी से यह आशा नहीं रखता। मैं तो इसे भी सर्वथा अनुचित समझता हूं कि कोई असमय और बिना पूर्व सूचना के मेरे घर आए, चाहे वह मेरा भाई ही क्यों न हो। आपके यहां नित्य दो-चार निठल्ले नातेदार पड़े खाट तोड़ा किए, आपकी जायदाद मटियामेट हो गई, पर आपने कभी इशारे से भी उनकी अवहेलना नहीं की। मैं ऐसी घास-पात को कदापि न जमने दूंगा, जिससे जीवन के पौधे का ह्रास हो। लेकिन वह प्रथा अब कालविरुद्ध हो गई। यह जीवन-संग्राम का युग है, और यदि हमको संसार में जीवित रहना है तो हमें विवश होकर नवीन और पुरुषोचित सिद्धांतों के अनुकूल बनना पड़ेगा।

ज्ञानशंकर ने नई सभ्यता की जिन विशेषताओं का उल्लेख किया, उनका वह स्वयं व्यवहार न कर सकते थे। केवल उनमें मानसिक भक्ति रखते थे। प्राचीन प्रथा को मिटाना उनकी सामर्थ्य से परे था। निंदा और परिहास से सिद्धांत में चाहे न डरते हों पर प्रत्यक्ष उसकी अवज्ञा न कर सकते थे। आतिथ्य-सत्कार और कुटुम्ब-पालन को मन में चाहे अपव्यय समझते हों, पर उनके मित्रों तथा संबंधियों को कभी उनकी असज्जनता की शिकायत नहीं हुई। किंतु

साधारणतः उनका सम्भाषण विवाद का रूप धारण कर लिया करता था, इसलिए वह आवेश में ऐसे सिद्धांतों का समर्थन करने लगते थे, जिनका अनुसरण करने का उन्हें कभी साहस न होता। लाला प्रभाशंकर समझ गए कि इसके सामने मेरी कुछ न चलेगी। इसके मन में जो बात ठन गई है उसे पूरा करके छोड़ेगा। जिसे कुल-मर्यादा की परवाह नहीं उससे उदारता की आशा रखना व्यर्थ है। दुखित भाव से बोले–बेटा, मैं पुराने जमाने का आदमी हूं, तुम्हारी इन नई-नई बातों को नहीं समझता। हम तो अपनी मान-मर्यादा को प्राणों से भी प्रिय समझते थे। यदि घर में एक-दूसरे का सिर काट लेते तो भी अलग होने का नाम नहीं लेते। लेकिन तुम्हारी इसमें हानि हो रही है तो जो इच्छा हो करो, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। हां, इतना अवश्य कहूंगा कि अभी दो-चार दिन रुक जाओ। जहां इतने दिनों तकलीफ उठाई है, दो-चार दिन और उठा लो। आज लल्लू के मुकदमे का फैसला सुनाया जाएगा। हम लोगों के हाथ-पैर फूले हुए हैं, दाना-पानी हराम हो रहा है, जरा यह आग ठंडी हो जाने दो।

ज्ञानशंकर में आत्मश्लाघा की मात्रा अधिक थी। उन्हें स्वभावतः तुच्छता से घृणा थी। पर यह ममत्व अपना गौरव और सम्मान बढ़ाने के लिए उन्हें कभी-कभी धूर्तता की प्रेरणा किया करता था, विशेषतः जब उसके प्रकट होने की कोई संभावना न होती थी। सहानुभूतिपूर्ण भाव से बोले–इस विषय में आप निश्चिंत रहें, दयाशंकर केवल मुक्त ही नहीं बरी हो जाएंगे। उधर के गवाह जैसे बिगड़े हैं, वह आपको मालूम ही है; तिस पर भी सबको शंका थी कि ज्वालासिंह जरूर दबाव में आ जाएंगे। ऐसी दशा में मुझे कैसे चैन आ सकता था? मैं आज प्रातःकाल उनके पास गया और परमात्मा ने मेरी लाज रख ली। यह कोई कहने की बात नहीं है, पर मैंने अपने सामने फैसला लिखवाकर पढ़ लिया, तब उनका पिंड छोड़ा। पहले तो महाशय देर तक बगलें झांकते रहे, पर मैंने ऐसा फटकारा कि अंत में लज्जित होकर उन्हें फैसला लिखना ही पड़ा। मैंने कहा, महाशय आपने मेरी ही बदौलत बी॰ ए॰ की डिगरी पाई है, इसे मत भूलिए। यदि आप मेरा इतना लिहाज भी न करेंगे तो मैं समझूंगा कि एहसान संसार से उठ गया।

प्रभाशंकर ने ज्ञान बाबू को श्रद्धापूर्ण नेत्रों से देखा। उन्हें ऐसा जान पड़ा कि भैया साक्षात सामने खड़े हैं और मेरे सिर पर रक्षा का हाथ रखे हुए हैं। अगर अवस्था बाधक न होती तो वह ज्ञानशंकर के पैरों पर गिर पड़ते और उसे आंसू की बूंदों से तर कर देते। उन्हें लज्जा आई कि मैंने ऐसे कर्त्तव्यपरायण, ऐसे न्यायशील, ऐसे दयालु, ऐसे देवतुल्य पुरुष का तिरस्कार किया। यह मेरी उद्दंडता थी कि मैंने उससे दयाशंकर की सिफारिश करने का आग्रह किया। यह सर्वथा अनुचित था। आजकल के सुशिक्षित युवक-गण अपना कर्त्तव्य स्वयं समझते हैं और अपनी इच्छानुकूल उसका पालन करते हैं। यही कारण है कि उन्हें किसी की प्रेरणा अप्रिय लगती है। बोले, बेटा यह समाचार सुनकर मुझे कितना हर्ष हो रहा, वह प्रकट नहीं कर सकता। तुमने मुझे प्राणदान दिया और कुल-मर्यादा रख ली। मेरा रोम-रोम तुम्हारा अनुगृहीत है। मुझे अब विश्वास हो गया है कि भैया देवलोक में बैठे हुए भी मेरी रक्षा कर रहे हैं। मुझे अत्यंत खेद है कि मैंने तुम्हें कटु शब्द कहे, परमात्मा मुझे इसका दंड दे, मेरे अपराध क्षमा करो। बुड्ढे आदमी चिड़चिड़े हुआ करते हैं, उनकी बातों का बुरा न मानना चाहिए। मुझे यह स्वीकार करते हुए खेद होता है कि तुम्हें अपना अशुभचिंतक समझने लगा था। पर अब मुझे तुम्हारी सज्जनता, तुम्हारा भ्रातृ-स्नेह और तुम्हारी उदारता का अनुभव हुआ। मुझे इस मतिभ्रम का सदैव पछतावा रहेगा।

यह कहते-कहते लाला प्रभाशंकर का गला भर आया। हृदय पर जमा हुआ बर्फ पिघल

गया, आंखों से जल-बिंदु गिरने लगे। किंतु ज्ञानशंकर के मुख से सांत्वना का एक शब्द भी न निकला। वह इस कपटाभिनय का रंग भी गहरा न कर सके। प्रभाशंकर की सरलता, श्रद्धालुता और निर्मलता के आकाश में उन्हें अपनी स्वार्थांधता, कपटशीलता और मलिनता अत्यंत कालिमापूर्ण और ग्लानिमय दिखाई देने लगी। वह स्वयं अपनी ही दृष्टि में गिर गए, इस कपट-कांड का आनंद न उठा सके। शिक्षित आत्मा इतनी दुर्बल नहीं हो सकती, इस विशुद्ध वात्सल्य ध्वनि ने उनकी सोई हुई आत्मा को एक क्षण के लिए जगा दिया। उसने आंखें खोलीं, देखा कि मन मुझे कांटों में घसीटे लिए चला जाता है। वह अड़ गई, धरती पर पैर जमा दिए और निश्चय कर लिया कि इससे आगे न बढ़ेंगे।

सहसा सैयद ईजाद हुसेन मुस्कराते हुए दीवानखाने में आए। प्रभाशंकर ने उनकी ओर आशा भरे नेत्रों से देखकर पूछा—कहिए कुशल तो है?

ईजाद—सब खुदा का फजलोकरम है। लाइए, मुंह मीठा कराइए। खुदा गवाह है कि सुबह से अब तक पानी का एक कतरा भी हलक के नीचे गया हो। बारे खुदा ने आबरू रख ली, बाजी अपनी रही, बेदाग छुड़ा लाए, आंच तक न लगी। हक यह है कि जितनी उम्मीद थी उससे कुछ ज्यादा ही कामयाबी हुई। मुझे ज्वालासिंह से ऐसी उम्मीद न थी।

प्रभाशंकर—ज्ञानू, यह तुम्हारी सद्प्रेरणा का फल है। ईश्वर तुम्हें चिरंजीवी करे।

ईजाद—बेशक, बेशक, इस कामयाबी का सेहरा आपके ही सिर है। मैंने भी जो कुछ किया है आपकी ही बदौलत किया है। आपका आज सुबह को उनके पास जाना काम कर गया। कल मैंने इन्हीं हाथों से तजबीज लिखी थी। वह सरासर हमारे खिलाफ थी। आज जो तजबीज उन्होंने सुनाई, वह कोई और ही चीज है, यह सब आपकी मुलाकात का नतीजा है। आपने उनसे जो बातें कीं और जिस तरीके से उन्हें रास्ते पर लाए उसकी हर्फ-ब-हर्फ इत्तला मुझे मिल चुकी है। अगर आपने इतनी साफगोई से काम न लिया होता तो वह हजरत पंजे में आने वाले न थे।

प्रभाशंकर—बेटा, आज भैया होते तो तुम्हारा यह सदुद्योग देखकर उनकी गज भर की छाती हो जाती। तुमने उनका सिर ऊंचा कर दिया।

ज्ञानशंकर देख रहे थे कि ईजाद हुसेन चचा साहेब के साथ कैसे दांव खेल रहा है और मेरा मुंह बंद करने के लिए कैसी कपट-नीति से काम ले रहा है। मगर कुछ बोल न सकते थे। चोर-चोर मौसरे भाई हो जाते हैं। उन्हें अपने ऊपर क्रोध आ रहा था कि मैं ऐसे दुर्बल प्रकृति के मनुष्य को उसके कुटिल स्वार्थ-साधन में योग देने पर बाध्य हो रहा हूं। मैंने कीचड़ में पैर रखा और प्रतिक्षण नीचे की ओर फिसलता चला जाता हूं।

सात

जब तक इलाके का प्रबंध लाला प्रभाशंकर के हाथों में था, वह गौस खां को अत्याचार से रोकते रहते थे। अब ज्ञानशंकर मालिक और मुख्तार थे। उनकी स्वार्थ-प्रियता ने खां साहब को अपनी अभिलाषाएं पूर्ण करने का अवसर प्रदान कर दिया था। वर्षांत पर उन्होंने बड़ी निर्दयता से लगान

वसूल किया। एक कौड़ी भी बाकी न छोड़ी। जिसने रुपये न दिए या न दे सका, उस पर नालिश की, कुर्की कराई और एक का डेढ़ वसूल किया। शिकमी असामियों को समूल उखाड़ दिया और उनकी भूमि पर लगान बढ़ाकर दूसरे आदमियों को सौंप दिया। मौरूसी और दखीलकार असामियों पर भी कर-वृद्धि के उपाय सोचने लगे। वह जानते थे कि कर-वृद्धि भूमि की उत्पादक शक्ति पर निर्भर है और इस शक्ति को घटाने-बढ़ाने के लिए केवल थोड़ी-सी वाक्‌चतुरता की आवश्यकता होती है। सारे इलाके में हाहाकार मच गया। कर-वृद्धि के पिशाच को शांत करने के लिए लोग नाना प्रकार के अनुष्ठान करने लगे। प्रभात से संध्या तक खां साहब का दरबार लगा रहता। वह स्वयं मसनद लगाकर विराजमान होते। मुंशी मौजीलाल पटवारी उनके दाहिनी ओर बैठते और सुक्खू चौधरी बाईं ओर। यह महानुभाव गांव के मुखिया, सबसे बड़े किसान और सामर्थी पुरुष थे। असामियों पर उनका बहुत दबाव था, इसलिए नीति-कुशल खां साहब ने उन्हें अपना मंत्री बना लिया था। यह त्रिमूर्ति समस्त इलाके की भाग्य विधायक थी।

खां साहब पहले अपने अवकाश का समय भोग-विलास में व्यतीत करते थे। अब यह समय कुरान का पाठ करने में व्यतीत होता था। जहां कोई फकीर या भिक्षुक द्वार पर खड़ा भी न होने पाता था, वहां अब अभ्यागतों का उदारतापूर्ण सत्कार किया जाता था। कभी-कभी वस्त्रदान भी होता। लोक-सिद्धि ने परलोक बनाने की सदिच्छा उत्पन्न कर दी थी।

अब खां साहब को विदित हुआ कि इस इलाके को विद्रोही समझने में मेरी भूल थी। ऐसा विरला की कोई असामी था जिसने उनकी चौखट पर मस्तक न नवाया हो। गांव में दस-बारह घर ठाकुरों के थे। उनसे लगान बड़ी कठिनाई से वसूल होता था। किंतु इजाफा लगान की खबर पाते ही वह भी दब गए। डपटसिंह उनके नेता थे। वह दिन में दस-पांच बार खां साहब को सलाम करने आया करते। दुखरन भगत शिवजी को जल चढ़ाने जाते समय पहले चौपाल का दर्शन करना अपना परम कर्तव्य समझते थे। बस, अब समस्त इलाके में कोई विद्रोही था तो मनोहर था और उसका बंधु था तो कादिर। वह खेत से लौटता तो कादिर के घर जा बैठता और अपने दिनों को रोता। इन दोनों मनुष्यों को साथ बैठे देखकर सुक्खू चौधरी की छाती पर सांप लोटने लगता था। वह यह जानना चाहते थे कि इन दोनों में क्या बातें हुआ करती हैं। अवश्य दोनों मेरी बुराई करते होंगे। उन्हें देखते ही दोनों चुप हो जाते थे, इससे चौधरी के संदेह की और भी पुष्टि हो जाती थी। खां साहब ने कादिर का नाम शैतान रख छोड़ा था और मनोहर को काला नाग कहा करते थे। काले नाग का तो उन्हें बहुत भय नहीं था, क्योंकि एक चोट से उसका काम तमाम कर सकते थे, मगर शैतान से डरते थे। क्योंकि उस पर चोट करना दुष्कर था। उस जवार में कादिर का बड़ा मान था। वह बड़ा नीतिकुशल, उदार और दयालु था। इसके अतिरिक्त उसे जड़ी-बूटियों का अच्छा ज्ञान था। यहां हकीम, वैद्य, डॉक्टर जो कुछ था वही था। रोग-निदान में भी उसे पूर्ण अभ्यास था। इससे जनता की उसमें विशेष श्रद्धा थी। एक बार लाला जटाशंकर कठिन नेत्र रोग से पीड़ित थे। बहुत कुछ प्रयत्न किए, पर कुछ लाभ न हुआ। कादिर की जड़ी-बूटियों ने एक ही सप्ताह में इस असाध्य रोग का निवारण कर दिया। खां साहब को भी एक बार कादिर के ही नुस्खे ने प्लेग से बचा लिया था। खां साहब इस उपकार से तो नहीं, पर कादिर की सर्वप्रियता से सशंक रहते थे। वह सदैव इसी उधेड़बुन में रहते थे कि इस शैतान को कैसे पंजे में लाऊं।

किंतु कादिर निश्‍चिंत और निश्शंक अपने काम में लगा रहता था। उसे एक क्षण के

लिए भी यह भय न होता था कि गांव के जमींदार और कारिंदा मेरे शत्रु हो रहे हैं और उनकी शत्रुता मेरा सर्वनाश कर सकती है। यदि इस समय भी दैवयोग से खां साहब बीमार पड़ जाते तो वह उनका इशारा पाते ही तुरंत उनके उपचार और सेवाशुश्रूषा में दत्तचित्त हो जाता। उसके हृदय में राग और द्वेष के लिए स्थान न था और न इस बात की ही परवाह थी कि मेरे विषय में कैसे-कैसे मिथ्यालाप हो रहे हैं। वह गांव में विद्रोहाग्नि भड़का सकता था, खां साहब और उनके सिपाहियों की खबर ले सकता था। गांव में ऐसे कई उद्दंड नवयुवक थे जो इस अनिष्ट के लिए आतुर थे, किंतु कादिर उन्हें संभाले रहता था। दीन-रक्षा उसका लक्ष्य था, किंतु क्रोध और द्वेष को उभारकर नहीं, वरन् सद्व्यवहार तथा सत्प्रेरणा से।

मनोहर की दशा इसके प्रतिकूल थी। जिस दिन से वह ज्ञानशंकर की कठोर बातें सुनकर लौटा था, उसी दिन से विकृत भावनाएं उसके हृदय और मस्तिष्क में गूंजती रहती थीं। एक मर्माहत पक्षी था, जो घावों से तड़प रहा हो ! वह अपशब्द उसे एक क्षण को भी न भूलते थे। वह ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहता था। वह जानता था कि सबलों से बैर बढ़ाने में मेरा ही सर्वनाश होगा, किंतु इस समय उसकी अवस्था उस मनुष्य-सी हो रही थी जिसके झोंपड़े में आग लगी हो और वह उसके बुझाने में असमर्थ होकर शेष भागों में भी आग लगा दे कि किसी प्रकार इस विपत्ति का अंत हो। रोगी अपने रोग को असाध्य देखता है तो पथ्यापथ्य की बेड़ियों को तोड़कर मृत्यु की ओर दौड़ता है। मनोहर चौपाल के सामने से निकलता तो अकड़कर चलने लगता। अपनी चारपाई पर बैठे हुए कभी खां साहब या गिरधर महाराज को आते देखता तो उठकर सलाम करने के बदले पैर फैलाकर लेट जाता। सावन में उसके पेड़ों के आम पके, उसने सब आम तोड़कर घर में रख लिए। जमींदार का चिरकाल से बंधा हुआ चतुर्थांश न दिया और जब गिरधर महाराज मांगने आए तो उन्हें दुत्कार दिया। वह सिद्ध करना चाहता था कि मुझे तुम्हारी धमकियों की जरा भी परवाह नहीं है। कभी-कभी नौ-दस बजे रात तक उसके द्वार पर गाना होता, जिसका अभिप्राय केवल खां साहब और सुक्खू चौधरी को जलाना था। बलराज को अब वह स्वेच्छाचार प्राप्त हो गया जिसके लिए पहले उसे झिड़कियां खानी पड़ती थीं। उसके रंगीले सहचरों का यहां खूब आदर-सत्कार होता, भंग छनती, लकड़ी के खेल होते, लावनी और ख्याल की तानें उड़तीं, डफली बजती। मनोहर जवानी के जोश के साथ इन जमघटों में सम्मिलित होता। ये ही दोनों पक्षों के विचार-विनिमय के माध्यम थे। खां साहब को एक-एक बात की सूचना यहां हो जाती थी। यहां का एक-एक शब्द वहां पहुंच जाता था। यह गुप्त चालें आग पर तेल छिड़कती रहती थीं। खां साहब ने एक दिन कहा, आजकल तो उधर खूब गुलछर्रे उड़ रहे हैं, बेदखली का सम्मन पहुंचेगा तो होश ठिकाने हो जायगा। मनोहर ने उत्तर दिया, बेदखली की धमकी दूसरों को दें, यहां हमारे खेत के मेड़ों पर कोई आया तो उसके बाल-बच्चे उसके नाम को रोएंगे।

एक दिन संध्या समय मनोहर द्वार पर बैठा हुआ बैलों के लिए करवी छांट रहा था और बलराज अपनी लाठी में तेल लगाता था कि ठाकुर डपटसिंह आकर मांचे पर बैठ गए, और बोले—सुनते हैं डिप्टी ज्वालासिंह हमारे बाबू साहब के पुराने दोस्त हैं ! छोटे सरकार के लड़के जो थानेदार थे, उनका मुकद्दमा उन्हीं के इजलास में था। वह आज बरी हो गए।

मनोहर—रिश्वत तो साबित हो गई थी न?

डपटसिंह—हां, साबित हो गई थी। किसी को उनके बरी होने की आशा न थी। पर बाबू

ज्ञानशंकर ने ऐसी सिफारिश पहुंचाई कि डिप्टी साहब को मुकद्दमा खारिज करना पड़ा।

मनोहर–हमारे परगने का हाकिम भी तो वही डिप्टी है।

डपट–हां, इसी की तो चिंता है। इजाफा लगान का मामला उसी के इजलास में जायगा और ज्ञान बाबू अपना पूरा जोर लगाएंगे।

मनोहर–तब क्या करना होगा?

डपट–कुछ समझ में नहीं आता।

मनोहर–ऐसा कोई कानून नहीं बन जाता कि बेसी का मामला इन हाकिमों के इजलास में न पेश हुआ करे। हाकिम लोग आप भी तो जमींदार होते हैं, इसलिए वह जमींदारों का पक्ष करते हैं। सुनते हैं, लाट साहब के यहां कोई पंचायत होती है। यह बातें उस पंचायत में कोई नहीं कहता?

डपट–वहां भी तो सब जमींदार ही होते हैं, काश्तकारों की फरियाद कौन करेगा?

मनोहर–हमने तो ठान लिया है कि एक कौड़ी भी बेसी न देंगे।

बलराज ने लाठी कंधे पर रखकर कहा–कौन इजाफा करेगा, सिर तोड़ के रख दूंगा।

मनोहर–तू क्यों बीच में बोलता है? तुझसे तो हम नहीं पूछते। यह तो न होगा कि सांझ हो गई है, लाओ भैंस दुह लूं, बैलों की नांद में पानी डाल दूं। बेबात की बात बकता है। (ठाकुर से) यह लौंडा घर का रत्ती भर काम नहीं करता, बस खाने भर का घर से नाता है, मटरगस्त किया करता है।

डपट–मुझसे क्या कहते हो, मेरे यहां तो तीन-तीन मूसलचंद हैं।

मनोहर–मैं तो एक कौड़ी बेसी न दूंगा, और न खेत ही छोड़ूंगा। खेतों के साथ जान भी जायगी और दो-चार को साथ लेकर जायगी।

बलराज–किसी ने हमारे खेतों की ओर आंख भी उठाई तो कुशल नहीं।

मनोहर–फिर बीच में बोला?

बलराज–क्यों न बोलूं, तुम तो दो-चार दिन के मेहमान हो, जो कुछ पड़ेगी वह तो हमारे सिर पर पड़ेगी। जमींदार कोई बादशाह नहीं है कि चाहे जितनी जबर्दस्ती करे और हम मुंह न खोलें। इस जमाने में तो बादशाहों का भी इतना अख्तियार नहीं, जमींदार किस गिनती में हैं। कचहरी-दरबार में कहीं सुनाई नहीं है तो (लाठी दिखलाकर) यह तो कहीं नहीं गई है।

डपट–कहीं खां साहब यह बातें सुन लें तो गजब हो जाय।

बलराज–तुम खां साहब से डरो, यहां उनके दबैल नहीं हैं। खेत में चाहे कुछ उपज हो या न हो, बेसी होती चली जाय, ऐसा क्या अंधेर है? सरकार के घर कुछ तो न्याय होगा, किस पर बेसी मंजूर करेगी।

डपट–अनाज का भाव नहीं चढ़ गया है?

बलराज–भाव चढ़ गया है तो मजदूरों की मजदूरी भी तो चढ़ गई है, बैलों का दाम भी तो चढ़ गया है, लोहे-लक्कड़ का दाम भी तो चढ़ गया है, यह किसके घर से आएगा?

इतने में कादिर मियां घास का गट्ठर सिर पर रखे हुए आकर खड़े हो गए। बलराज की बातें सुनी तो मुस्कराकर बोले–भांग का दाम भी तो चढ़ गया है। चरस भी मंहगी हो गई है, कत्था-सुपारी भी तो दूने दामों बिकती हैं, इसे क्यों छोड़े जाते हो?

मनोहर–हां, कादिर दादा, तुमने हमारे मन की कही।

बलराज—तो क्या अपनी जवानी में तुम लोगों ने बूटी-भांग न पी होगी? या सदा इसी तरह एक जून चबेना और दूसरी जून रोटी-साग खाकर दिन काटे हैं? और फिर तुम जमींदार के गुलाम बने रहे तो उस जमाने में और कर ही क्या सकते थे? न अपने खेत में काम करते, किसी दूसरे के खेत में मजूरी करते। अब तो शहरों में मजूरों की मांग है, रुपया रोज खाने को मिलता है, रहने को पक्का घर अलग। अब हम जमींदारों की धौंस क्यों सहें, क्यों भरपेट खाने को तरसें?

कादिर—क्यों मनोहर, क्या उसे खाने को नहीं देते?

बलराज—यह भी कोई खाना है कि एक आदमी खाय और घर के सब आदमी उपास करें? गांव में सुक्खू चौधरी को छोड़कर और किसी के घर दोनों बेला चूल्हा जलता है? किसी को एक जून चबेना मिलता है, कोई चुटकी भर सत्तू फांककर रह जाता है। दूसरी बेला भी पेट-भर रोटी नहीं मिलती।

कादिर—भाई, बलराज बात तो सच्ची कहता है। इस खेती में कुछ रह नहीं गया, मजदूरी भी नहीं पड़ती। अब मेरे ही घर देखो, कुल छोटे-बड़े मिलाकर दस आदमी हैं, पांच-पांच रुपये भी कमाते तो छह सौ साल भर के होते। खा-पीकर पचास रुपये बच ही रहते। लेकिन इस खेती में रात-दिन लगे रहते हैं, फिर भी किसी को भरपेट दाना नहीं मिलता।

डपट—बस, एक मरजाद रह गई है, दूसरे की मजूरी नहीं करते बनती। इसी बहाने से किसी तरह निबाह हो जाता है। नहीं तो बलराज की उमिर में हम लोग खेत के डांड़ पर न जाते थे। न जाने क्या हुआ कि जमीन की बरक्कत ही उठ गई। जहां बीघा पीछे बीस-बीस मन होते थे, वहां अब चार-पांच मन से आगे नहीं जाता।

मनोहर—सरकार को यह हाल मालूम होता तो जरूर कास्तकारों पर निगाह करती।

कादिर—मालूम क्यों नहीं है? रत्ती-रत्ती का पता लगा लेती है।

डपट—(हंसकर) बलराज से कहो सरकार के दरबार में हम लोगों की ओर से फरियाद कर आए।

बलराज—तुम लोग तो ऐसी हंसी उड़ाते हो, मानो कास्तकार कुछ होता ही नहीं। वह जमींदार की बेगार ही भरने के लिए बनाया गया है; लेकिन मेरे पास जो पत्र आता है, उसमें लिखा है कि रूस देश में कास्तकारों ही का राज है, वह जो चाहते हैं करते हैं। उसी के पास कोई और देश बलगारी है। वहां अभी हाल की बात है, कास्तकारों ने राजा को गद्दी से उतार दिया है और अब किसानों और मजदूरों की पंचायत राज करती है।

कादिर—(कौतूहल से) तो चलो ठाकुर ! उसी देश में चलें, वहां मालगुजारी न देनी पड़ेगी।

डपट—वहां के कास्तकार बड़े चतुर और बुद्धिमान होंगे तभी राज संभालते होंगे।

कादिर—मुझे तो विश्वास नहीं आता।

मनोहर—हमारे पत्र में झूठी बातें नहीं होतीं।

बलराज—पत्र वाले झूठी बातें लिखें तो सजा पा जाएं।

मनोहर—जब उस देश के किसान राज का बंदोबस्त कर लेते हैं, तो क्या हम लोग लाट साहब से अपना रोना भी न रो सकेंगे?

कादिर—तहसीलदार साहब के सामने तो मुंह खुलता नहीं, लाट साहब से कौन फरियाद

करेगा?

बलराज—तुम्हारा मुंह न खुले, मेरी लाट साहब से बातचीत हो तो सारी कथा कह सुनाऊं।

कादिर—अच्छा, अबकी हाकिम लोग दौरे पर आएंगे तो हम तुम्हीं को उनके सामने खड़ा कर देंगे।

यह कहकर कादिर खां घर की ओर चले। बलराज ने भी लाठी कंधे पर रखी और उनके पीछे चला। जब दोनों कुछ दूर निकल गए तब बलराज ने कहा, दादा, कहो तो खां साहब की (घूंसे का इशारा करके) कर दी जाय।

कादिर ने चौंककर उसकी ओर देखा—क्या गांव भर को बंधवाने पर लगे हो? भूलकर भी ऐसा काम न करना।

बलराज—सब मामला लैस है, तुम्हारे हुकुम की देर है।

कादिर—(कान पकड़ कर) नहीं, मैं तुम्हें आग में कूदने की सलाह न दूंगा। जब अल्लाह को मंजूर होगा तब वह आप ही यहां से चले जाएंगे।

बलराज—अच्छा तो बीच में न पड़ोगे न?

कादिर—तो क्या तुम लोग सचमुच मार-पीट पर उतारू हो क्या? हमारी बात न मानोगे तो मैं जाकर थाने में इत्तला कर दूंगा। यह मुझसे नहीं हो सकता कि तुम लोग गांव में आग लगाओ और मैं देखता रहूं।

बलराज—तो तुम्हारी यही सलाह है कि नित यह अन्याय सहते जाएं।

कादिर—जब अल्लाह को मंजूर होगा तो आप-ही-आप सब उपाय हो जायगा।

आठ

जिस भांति सूर्यास्त के पीछे एक विशेष प्रकार के जीवधारी, जो न पशु हैं न पक्षी, जीविका की खोज में निकल पड़ते हैं, अपनी लंबी श्रेणियों से आकाश मंडल को आच्छादित कर लेते हैं, उसी भांति कार्तिक का आरंभ होते ही एक अन्य प्रकार के जन्तु देहातों में निकल पड़ते हैं और अपने खेमों तथा छोलदारियों से समस्त ग्राममंडल को उज्ज्वल कर देते हैं। वर्षा के आदि में राजसिक कीट और पतंग का उद्‌भव होता है, उसके अंत में तामसिक कीट और पतंग का। उनका उत्थान होते ही देहातों में भूकंप-सा आ जाता है और लोग भय से प्राण छिपाने लगते हैं।

इसमें संदेह नहीं कि अधिकारियों के यह दौरे सदिच्छाओं से प्रेरित होकर होते हैं। उनका अभिप्राय है जनता की वास्तविक दशा का ज्ञान प्राप्त करना, न्याय-प्रार्थी के द्वार तक पहुंचाना, प्रजा के दुखों को सुनना, उनकी आवश्यकताओं को देखना, उनके कष्टों का अनुमान करना, उनके विचारों से परिचित होना। यदि यह अर्थ सिद्ध होते तो यह दौरे बसंतकाल से भी अधिक प्राण-पोषक होते, लोग वीणा-पखावज से; ढोल-मजीरे से उनका अभिवादन करते। किंतु जिस भांति प्रकाश रश्मियां पानी में वक्रगामी हो जाती हैं, उसी भांति सदिच्छाएं भी बहुधा मानवी दुर्बलताओं के सम्पर्क से विषम हो जाया करती हैं। सत्य और न्याय पैरों के नीचे आ

जाता है, लोभ और स्वार्थ की विजय हो जाती है! अधिकारी वर्ग और उनके कर्मचारी विरहिणी की भांति इस सुख काल के दिन गिना करते हैं। शहरों में तो उनकी दाल नहीं गलती, या गलती है, तो बहुत कम। वहां प्रत्येक वस्तु के लिए उन्हें जेब में हाथ डालना पड़ता है किंतु देहातों में जेब की जगह उनका हाथ अपने सोटे पर होता है या किसी दीन किसान की गर्दन पर। जिस घी, दूध, शाक-भाजी, मांस-मछली आदि के लिए शहर में तरसते थे, जिनका स्वप्न में भी दर्शन नहीं होता था, उन पदार्थों की यहां केवल जिह्वा और बाहु के बल से रेल-पेल हो जाती है। जितना खा सकते हैं, खाते हैं, बार-बार खाते हैं, और जो नहीं खा सकते, वह घर भेजते हैं। घी से भरे हुए कनस्तर, दूध से भरे हुए मटके, उपले और लकड़ी, घास और चारे से लदी हुई गाड़ियां शहरों में आने लगती हैं। घर वाले हर्ष से फूले नहीं समाते, अपने भाग्य को सराहते हैं, क्योंकि अब दु:ख के दिन गए और सुख के दिन आए। उनकी तरी वर्षा के पीछे आती है, वह खुश्की में तरी का आनंद उठाते हैं। देहात वालों के लिए वह बड़े संकट के दिन होते हैं, उनकी शामत आ जाती है, मार खाते हैं, बेगार में पकड़े जाते हैं, दासत्व के दारुण निर्दय आघातों से आत्मा का भी ह्रास हो जाता है।

अगहन का महीना था, सांझ हो गई थी। कादिर खां के द्वार पर अलाव लगी हुई थी। कई आदमी उसके इर्द-गिर्द बैठे हुए बातें कर रहे थे। कादिर ने बाजार के तंबाकू की निंदा की, दुखरन भगत ने उनका अनुमोदन किया। इसके बाद डपटसिंह पत्थर और बेलन के कोल्हुओं के गुण-दोष की विवेचना करने लगे, अंत में लोहे ने पत्थर पर विजय पाई।

दुखरन बोले—आजकल रात को मटर में सियार और हिरन बड़ा उपद्रव मचाते हैं। जाड़े के मारे उठा नहीं जाता।

कादिर—अबकी ठंड बहुत पड़ेगी। दिन को पछुआ चलता है। मेरे पास तो कोई कंबल भी नहीं, वही एक दोहर लपेटे पड़ा रहता हूं। पुआल न हो गया होता तो रात को अकड़ जाता।

डपट—यहां किसके पास कंबल है, उसी एक पुराने धुस्से की भुगुत है। लकड़ी भी इतनी नहीं मिलती कि रात-भर तापें।

मनोहर—अब के बेटी के ब्याह में इमली का पेड़ कटवाया था। क्या सब जल गई?

डपट—नहीं, बची तो बहुत थी, पर कल डिप्टी ज्वालासिंह के लश्कर में चली गई। खां साहब से कितना कहा कि इसे मत ले जाइए, पर उनकी बला सुनती है। चपरासियों को ढेर दिखा दिया। बात की बात में सारी लकड़ी उठ गई।

मनोहर—तुमने चपरासियों से कुछ कहा नहीं?

डपट—क्या कहता, दस-पांच मन लकड़ी के पीछे अपनी जान सांसत में डालता ! गालियां खाता, लश्कर में पकड़ जाता, मार पड़ती ऊपर से, तब तुम भी पास न फटकते। दोनों लड़के और झपट तो गरम हो पड़े थे, लेकिन मैंने उन्हें डांट दिया। जबर्दस्त का ठेंगा सिर पर।

कादिर—हाकिमों का दौरा क्या है, हमारी मौत है। बकरीद में कुर्बानी के लिए जो बकरा पाल रखा था, वह कल लश्कर में पकड़ा गया। रब्बी बूचड़ पांच रुपये नगद देता था, मगर मैंने न दिया था। इस बखत सात से कम का माल न था।

मनोहर—यह लोग बड़ा अंधेर मचाते हैं। आते हैं इंतजाम करने, इंसाफ करने; लेकिन हमारे गले पर छुरी चलाते हैं। इससे कहीं अच्छा तो यही था कि दौरे बंद हो जाते। यही न होता

कि मुकदमे वालों को सदर जाना पड़ता, इस सांसत से तो जान बचती।

कादिर—इसमें हाकिमों का कसूर नहीं। यह सब उनके लश्कर वालों की धांधली है। वही सब हाकिमों को भी बदनाम कर देते हैं।

मनोहर—कैसी बातें कहते हो, दादा? यह सब मिली-भगत है। हाकिम का इशारा न हो तो मजाल है कि कोई लश्करी पराई चीज पर हाथ डाल सके। सब कुछ हाकिमों की मर्जी से होता है और उनकी मर्ज़ी क्यों न होगी? सेंत का माल किसको बुरा लगता है?

डपट—ठीक बात है। जिसकी जितनी आमद होती है वह उतना ही और मुंह फैलाता है।

दुखरन—परमात्मा यह अंधेर देखते हैं, और कोई जतन नहीं करते। देखें बिसेसर साह को अबकी कितनी घटी आती है।

डपट—परसाल तो पूरे तीन सौ की चपत पड़ी थी। वही अबकी भी समझो, अगर जिंस ही तक रहे तो इतना घाटा न पड़े, मगर यहां तो इलायची, कत्था, सुपारी, मेवा और मिश्री सभी कुछ चाहिए और सब टके सेर। लोग खाने के इतने शौकीन बनते हैं, पर यह नहीं होता कि वे सब चीजें अपने साथ रखें।

मनोहर—शहर में खरे दाम लगते हैं, यहां कौन, जी में आया दिया न दिया।

कादिर—कल लश्कर का एक चपरासी बिसेसर के यहां साबूदाना मांग रहा था। बिसेसर हाथ जोड़ता था, पैरों पड़ता था कि मेरे यहां नहीं है, लेकिन चपरासी एक न सुनता था, कहता था, जहां से चाहो मुझे लाकर दो। गालियां देता था, डंडा दिखाता था। बारे बलराज पहुंच गया। जब वह कड़ा पड़ा तो चपरासी मियां नरम पड़े और भुनभुनाते चले गए।

दुखरन—बिसेसर की एक बार मरम्मत हो जाती तो अच्छा होता। गांव भर का गला मरोड़ता है, यह उसकी सजा है।

डपट—और हम-तुम किस का गला मरोड़ते हैं?

मनोहर ने चिंतित भाव से कहा—बलराज अब सरकारी आदमियों के मुंह आने लगा। कितना समझा के हार गया मानता नहीं।

कादिर—यह उमर ही ऐसी होती है।

यही बातें हो रही थीं कि एक बटोही आकर अलाव के पास खड़ा हो गया। उसके पीछे-पीछे एक बुढ़िया लाठी टेकती हुई आई और अलाव से दूर सिर झुकाकर बैठ गई।

कादिर ने पूछा—कहो भाई, कहां घर है?

'घर तो है देवरी पार, अपनी बुढ़िया माता को लिए अस्पताल जाता था। मगर वह जो सड़क के किनारे बगीचे में डिप्टी साहब का लश्कर उतरा है, वहां पहुंचा तो चपरासी ने गाड़ी रोक ली और हमारे कपड़े-लत्ते फेंक-फांककर लकड़ी लादने लगे। कितनी अरज-बिनती की, बुढ़िया बीमार है, भर रात का चला हूं, आज अस्पताल नहीं पहुंचा तो कल न जाने इसका क्या हाल हो। मगर कौन सुनता है? मैं रोता ही रहा, वहां गाड़ी लद गई। तब मुझसे कहने लगे, गाड़ी हांक। क्या करूं, अब गाड़ी हांककर सदर जा रहा हूं। बैल और गाड़ी उनके भरोसे छोड़कर आया हूं। जब लकड़ी पहुंचा के लौटूंगा तब अस्पताल जाऊंगा। तुम लोगों से हो सके तो बुढ़िया के लिए खटिया दे दो और कहीं पड़े रहने का ठिकाना बता दो। इतना पुण्य करो, मैं बड़ी विपत्ति में हूं।'

दुखरन–यह बड़ा अंधेर है। यह लोग आदमी काहे के, पूरे राक्षस हैं, जिन्हें दया-धरम का विचार नहीं।

डपट–दिन-भर के थके-मांदे बैल हैं, न जाने कहां गाड़ी ले जानी पड़ेगी और न जाने कब लौटोगे। तब तक बुढ़िया अकेली पड़ी रहेगी? जाने कैसी पड़े, कैसी न पड़े ! हम लोग कितने भी हों, हैं तो पराए ही, घर के आदमी की और बात है।

मनोहर–मेरा तो ऐसा ही जी चाहता है कि इसी दम डिप्टी साहब के सामने चला जाऊं और ऐसी खरी-खरी सुनाऊं कि वह भी याद करेंगे। बड़े हाकिमों की पोंछ बने हैं। इंसाफ तो क्या करेंगे, उल्टे और गरीबों को पीसते हैं। खटिया की तो कोई बात नहीं और न जगह की ही कमी है, लेकिन यह अकेली रहेंगी कैसे?

बटोही–कैसे बताऊं? जो भाग्य में लिखा है वही होगा।

मनोहर–यहां से कोई तुम्हारी गाड़ी हांक ले जाय तो कोई हरज है?

बटोही–ऐसा हो जाय तो क्या पूछना। है कोई आदमी?

मनोहर–आदमी बहुत हैं, कोई न कोई चला जायगा।

कादिर–तुम्हारा हलवाहा तो खाली है, उसे भेज दो।

मनोहर–हलवाहे से बैल सधे न सधे, मैं ही चला जाऊंगा।

कादिर–तुम्हारे ऊपर मुझे विश्वास नहीं आता। कहीं झगड़ा कर बैठो तो और बला जाए। दुखरन भगत, तुम चले जाओ तो अच्छा हो।

दुखरन ने नाक सिकोड़कर कहा–मुझे तो जानते हो, रात को कहीं नहीं जाता। भजन-भाव की यही बेला है।

कादिर–चला तो मैं जाता, लेकिन मेरा मन कहता है कि बूढ़ी को अच्छा करने का जस मुझी को मिलेगा। कौन जाने अल्लाह को यही मंजूर हो। मैं उन्हें अपने घर लिए जाता हूं। जो कुछ बन पड़ेगा करूंगा। गाड़ी हसनू से हंकवाए देता हूं। बैलों को चारा-पानी देना है, बलराज को थोड़ी देर के लिए भेज देना।

कादिर के बरौठे में वृद्धा की चारपाई पड़ गई। कादिर का लड़का हसनू गाड़ी हांकने के लिए पड़ाव की तरफ चला। इतने में सुक्खू चौधरी और गौस खां दो चपरासियों के साथ आते दिखाई दिए। दूसरी ओर से बलराज भी आकर खड़ा हो गया।

गौस खां ने कहा–सब लोग यहां बैठे गलचौड़ कर रहे हो, कुछ लश्कर की भी खबर है? देखो, यह चपरासी लोग दूध के लिए आए हैं, उसका बंदोबस्त करो।

कादिर–कितना दूध चाहिए?

एक चपरासी–कम से कम दस सेर।

कादिर–दस सेर ! इतना दूध तो चाहे गांव भर में न निकले। दो ही चार आदमियों के पास तो भैंसें हैं और वह भी दुधार नहीं हैं। मेरे यहां तो दोनों जून में सेर भर से ज्यादा नहीं होता।

चपरासी–भैंसें हमारे सामने लाओ, दूध तो हमारा चपरास निकालता है। हम पत्थर से दूध निकाल लें। चोरों के पेट तक की बात निकाल लेते हैं, भैंसें तो फिर भैंसें हैं। इस चपरास में वह जादू है कि चाहे तो जंगल में मंगल कर दें। लाओ, भैंसें यहां खड़ी करो।

गौस खां–इतने तूल-कमाल की क्या जरूरत है? दूध का इंतजाम हो जायगा। दो सेर

सुक्खू देने को कहते हैं। कादिर के यहां भी दो सेर मिल ही जायगा, दुखरन भगत दो सेर देंगे; मनोहर और डपटसिंह भी दो-दो सेर दे देंगे। बस हो गया।

कादिर—मैं दो-चार सेर का बीमा नहीं लेता। यह दोनों भैंसें खड़ी हैं। जितना दूध दे दें, उतना ले लिया जाय।

दुखरन—मेरी तो दोनों भैंसें गाभिन हैं। बहुत देंगी तो आधा सेर। पुवाल तो खाने को पाती हैं और वह भी आधा पेट। कहीं चराई है नहीं, दूध कहां से हो?

डपटसिंह—सुक्खू चौधरी जितना देते हैं, उसका आधा मुझसे ले लीजिए। हैसियत के ही हिसाब से न लीजिएगा?

गौस खां—तुम लोगों की यही निहायत बेहूदी आदत है कि हर बात में लाग-डांट करने लगते हो। शराफत और नरमी से आधा भी न दोगे, लेकिन सख्ती से पूरा लिए हाजिर हो जाओगे। मैंने तुमसे दो सेर कह दिया है, इतना तुम्हें देना होगा।

डपट—इस तरह आप मालिक हैं, भैंसें खोल ले जाइए, लेकिन दो सेर दूध मेरे यहां न होगा।

गौस खां—मनोहर तुम्हारी भैंसें तो दुधार हैं?

मनोहर ने अभी जवाब न दिया था कि बलराज बोल उठा—मेरी भैंसें बहुत दुधार हैं, मन भर दूध देती हैं, लेकिन बेगार के नाम से छटांक भर भी न देंगी।

मनोहर—तू चुपचाप क्यों नहीं रहता? तुमसे कौन पूछता है? हमसे जितना हो सकेगा देंगे, तुमसे मतलब?

चपरासी ने बलराज की ओर अपमानजनक क्रोध से देखकर कहा—महतो, अभी हम लोगों के पंजे में नहीं पड़े हो। एक बार पड़ जाओगे तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जायगा। मुंह से बात न निकलेगी।

दूसरा चपरासी—मालूम होता है, सिर पर गरमी चढ़ गई है तभी इतना ऐंठ रहा है। इसे लश्कर ले चलो तो गरमी उतर जाए।

बलराज ने मर्माहत होकर कहा—मियां, हमारी गरमी पांच-पांच रुपल्ली के चपरासियों के मान की नहीं है, जाओ, अपने साहब बहादुर के जूते सीधे करो जो तुम्हारा काम है। हमारी गरमी के फेर में न पड़ो, नहीं तो हाथ लग जाएंगे। उस जन्म के पापों का दंड भोग रहे हो, लेकिन अब भी तुम्हारी आंखें नहीं खुलतीं?

बलराज ने यह शब्द ऐसी सगर्व गंभीरता से कहे कि दोनों चपरासी खिसिया-से गए। इस घोर अपमान का प्रतिकार करना कठिन था। यह मानो बात को वाणी की परिधि से निकालकर कर्म के क्षेत्र में लाने की ललकार थी। व्यंग्याघात शाब्दिक कलह की चरम सीमा है। उसका प्रतिकार मुंह से नहीं हाथ से होता है। लेकिन बलराज की चौड़ी छाती और पुष्ट भुजदंड देखकर चपरासियों को हाथापाई करने का साहस न हो सका। गौस खां से बोला—खां साहब, आप इस लौंडे को देखते हैं, कैसा बढ़ा जाता है? इसे समझा दीजिए, हमारे मुंह न लगे। ऐसा न हो शामत आ जाय और छह महीने तक चक्की पीसनी पड़े। हम आप लोगों का मुलाहिजा करते हैं, नहीं तो इस हेकड़ी का मजा चखा देते।

गौस खां—सुनते हो मनोहर, अपने बेटे की बात? भला सोचो तो डिप्टी साहब के कानों में यह बात पड़ जाय तो तुम्हारा क्या हाल हो? कहीं एक पत्ती का साया भी न मिलेगा।

मनोहर ने दीनता से खां साहब की ओर देखकर कहा—खां साहब, मैं तो इसे सब तरह से समझा-बुझाकर हार गया। न जाने क्या हाल करने पर तुला है ! (बलराज से) अरे, तू यहां से जायगा कि नहीं?

बलराज—क्यों जाऊं, मुझे किसी का डर नहीं है। यह लोग डिप्टी साहब से मेरी शिकायत करने की धमकी देते हैं, मैं आप ही उनके पास जाता हूं। इन लोगों को उन्होंने कभी ऐसा नादिरशाही हुक्म न दिया होगा कि जाकर गांव में आग लगा दो। और मान लें कि वह ऐसा कड़ा हुक्म दे भी दें, तो इन लोगों को तो सोचना चाहिए कि गरीब किसान भी हमारे भाई-बंद हैं, इन्हें व्यर्थ न सताएं। लेकिन इन लोगों को तो पैसे के लोभ और चपरास के मद ने ऐसा अंधा बना दिया है कि कुछ सूझता ही नहीं। आज उस बेचारी बुढ़िया का क्या हाल होगा, मरेगी कि जिएगी। नौकरी तो की है पांच रुपये की, काम है बस्ते ढोना, मेज साफ करना, साहब के पीछे-पीछे खिदमतगारों की तरह चलना और बनते हैं रईस।

मनोहर—तू चुप होगा कि नहीं?

एक चपरासी—नहीं, इसे खूब गालियां दे लेने दो, जिसमें इसके दिल की हवस निकल जाय। इसका मजा कल मिलेगा। खां साहब, आपने सुना है, आपको गवाही देनी पड़ेगी। आपका इतना मुलाहिजा बहुत किया। लाइए, दूध का कुछ इंतजाम करते हैं कि हम लोग जायं।

गौस खां—नहीं जी, दूध लो, और दस सेर से सेर-भर ज्यादा। यही लोग झख मारेंगे। क्या बतावें आज इस छोकड़े की बदौलत हमको तुम लोगों के सामने शर्मिंदा होना पड़ा ! इस गांव की कुछ हवा ही बिगड़ी हुई है। मैं खूब समझता हूं। यह लोग जो भीगी बिल्ली बने बैठे हुए हैं, इन्हीं के शह देने से लौंडे की इतनी जुर्रत हुई है; नहीं तो इसकी मजाल थी कि यों टर्राता। बछड़ा खूंटे के ही बल कूदता है। खैर, अगर मेरा नाम गौस खां है तो एक-एक से समझूंगा।

इस तिरस्कार का आशातीत प्रभाव हुआ। सब दहल उठे। वह अविनयशीलता, जो पहले सबके चेहरे से झलक रही थी, लुप्त हो गई। मनोहर तो ऐसा सिटपिटा गया, मानो सैकड़ों जूते पड़े हों। इस खटाई ने सबके नशे उतार दिए।

कादिर खां बोले—मनोहर, जाओ, जितना दूध हो सब यहां भेज दो।

गौस खां—हमको मनोहर के दूध की जरूरत नहीं है।

बलराज—यहां देता ही कौन है?

मनोहर खिसिया गया। उठ खड़ा हुआ और बोला—अच्छा, ले अब तू ही बोल, जो तेरे जी में आए कर, मैं जाता हूं। अपना घर-द्वार संभाल, मेरा निबाह तेरे साथ न होगा। चाहे घर को रख, चाहे आग लगा दे।

यह कहकर वह सशंक क्रोध से भरा हुआ वहां से चल दिया। बलराज भी धीरे-धीरे अपने अखाड़े की ओर चला। वहां इस समय सन्नाटा था, मुगदर की जोड़ी रखी हुई थी। एक पत्थर की नाल जमीन पर पड़ी हुई थी, और लेजिम आम की डाल से लटक रहा था। बलराज ने कपड़े उतारे और लंगोट कसकर अखाड़े में उतरा, लेकिन आज व्यायाम में उसका मन न लगा। चपरासियों की बात एक फोड़े की भांति उसके हृदय में टीस रही थी। यद्यपि उसने चपरासियों को निर्भय होकर उत्तर दिया था, लेकिन उसे इसमें तनिक भी संदेह न था कि गांव के अन्य पुरुषों को, यहां तक कि मेरे पिता को भी मेरी बातें उद्दंड प्रतीत हुईं। सब-के-सब सन्नाटा खींचे बैठे रहे। मालूम होता था किसी में मुंह में जीभ ही नहीं है। तभी तो यह दुर्गति

हो रही है। अगर कुछ दम हो तो आज इतने पीसे-कुचले क्यों जाते? और तो और, दादा ने भी मुझी को डांटा। न जाने इनके मन में इतना डर क्यों समा गया? पहले तो ये इतने कायर न थे। कदाचित् अब मेरी चिंता इन्हें सताने लगी। लेकिन मुझे अवसर मिला तो स्पष्ट कह दूंगा कि तुम मेरी ओर से निश्चिंत रहो। मुझे परमात्मा ने हाथ-पैर दिए हैं। मेहनत कर सकता हूं और दो को खिलाकर खा सकता हूं। तुम्हें अगर अपने खेत इतने प्यारे हैं कि उनके पीछे तुम अत्याचार और अपमान सहने पर तैयार हो तो शौक से सहो, लेकिन मैं ऐसे खेतों पर लात मारता हूं। अपने पसीने की रोटी खाऊंगा और अकड़ कर चलूंगा। अगर कोई आंख दिखाएगा तो उसकी आंख निकाल लूंगा। यह बुड्ढ़ा गौस खां कैसी लाल-पीली आंख कर रहा था, मालूम होता है इनकी मृत्यु मेरे ही हाथों लिखी हुई है। मुझ पर दो चोटें कर चुके हैं। अब देखता हूं कौन हाथ निकालते हैं। इनका क्रोध मुझी पर उतरेगा। कोई चिंता नहीं, देखा जायगा। दोनों चपरासी मन में फूले न समाए होंगे कि सारा गांव कैसा रोब में आ गया, पानी भरने को तैयार है। गांव वालों ने भी लल्लो-चप्पो की होगी। कोई परवाह नहीं। चपरासी मेरा कर ही क्या सकते हैं? लेकिन मुझे कल प्रातःकाल डिप्टी साहब के पास जाकर उनसे सब हाल कह देना चाहिए। विद्वान पुरुष हैं। दीन जनों पर उन्हें अवश्य दया आयगी। अगर वह गाड़ियों के पकड़ने की मनाही कर दें तो क्या पूछना? उन्हें यह अत्याचार, कभी पसंद न आता होगा। यह चपरासी लोग उनसे छिपाकर यों जबरदस्ती करते हैं। लेकिन कहीं उन्होंने मुझे अपने इजलास में खड़े-खड़े निकलवा दिया तो? बड़े आदमियों को घमंड बहुत होता है। कोई हरज नही, मैं सड़क पर खड़ा हो जाऊंगा और देखूंगा कि कैसे कोई मुसाफिर की गाड़ी पकड़ता है। या तो दो-चार का सिर तोड़ दूंगा या आप भी वहीं मर जाऊंगा। अब बिना गरम पड़े काम नहीं चल सकता। वह दादा बुलाने आ रहे हैं।

बलराज अपने बाप के पीछे-पीछे घर पहुंचा। रास्ते में कोई बातचीत नहीं हुई? बिलासी बलराज को देखकर बोली—कहां जाकर बैठे रहे? तुम्हारे दादा कब से खोज रहे हैं। चलो, रोटी तैयार है।

बलराज—अखाड़े की ओर चला गया था।

बिलासी—तुम अखाड़े मत जाया करो।

बलराज—क्यों?

बिलासी—क्यों क्या, देखते नहीं हो, सबकी आंखों में चुभते हो? जिन्हें तुम अपना हितू समझते हो, वह सब-के-सब तुम्हारी जान के घातक हैं। तुम्हें आग में ढकेल कर आप तमाशा देखेंगे। आज ही तुम्हें सरकारी आदमियों से भिड़ा कर कैसा दुबक गए।

बलराज ने इस उपदेश का कुछ उत्तर न दिया। चौके पर जा बैठा। उसके एक ओर मनोहर था और दूसरी ओर जरा हटकर उसका हलवाहा रंगी चमार बैठा हुआ था। बिलासी ने जौ की मोटी-मोटी रोटियां, बथुआ का साग और अरहर की दाल तीनों थालियों में परस दी। तब एक फूल के कटोरे में दूध लाकर बलराज के सामने रख दिया।

बलराज—क्या और दूध नहीं है?

बिलासी—दूध कहां है, बेगार में नहीं चला गया?

बलराज—अच्छा, यह कटोरा रंगी के सामने रख दो।

बिलासी—तुम पी लो, रंगी एक दिन दूध न पीएगा तो दुबला न हो जायगा।

बलराज बेगार का हाल सुनकर क्रोध से आग हो रहा था। कटोरे को उठाकर आंगन की ओर जोर से फेंक दिया। वह तुलसी के चबूतरे से टकराकर टूट गया। बिलासी ने दौड़कर कटोरा उठा लिया और पछताते हुए बोली—तुम्हें क्या हो गया है? राम-राम, ऐसा सुंदर कटोरा चूर कर दिया। कहीं सनक तो नहीं गए हो?

बलराज—हां, सनक ही गया हूं।

बिलासी--किस बात पर कटोरे को पटक दिया?

बलराज—इसलिए कि जो हमसे अधिक काम करता है उसे हमसे अधिक खाना चाहिए। हमने तुमसे बार-बार कह दिया है कि रसोई में जो कुछ थोड़ा-बहुत हो, वह सबके सामने आना चाहिए। अच्छा खाएं तो सब खाएं, बुरा खाएं तो सब खाएं, लेकिन तुम्हें न जाने क्यों यह बात भूल जाती है? अब याद रहेगी। रंगी कोई बेगार का आदमी नहीं है, घर का आदमी है। वह मुंह से चाहे न कहे, पर मन में अवश्य कहता होगा कि छाती फाड़कर काम मैं करूं और मूंछों पर ताव देकर खाएं यह लोग। ऐसे दूध-घी खाने पर लानत है।

रंगी ने कहा—भैया, नित तो दूध खाता हूं, एक दिन न सही। तुम हक-नाहक इतने खफा हो गए।

इसके बाद तीनों आदमी चुपचाप खाने लगे। खा-पीकर बलराज और रंगी ऊख की रखवाली करने मड़ैया की तरफ चले। वहां बलराज ने चरस निकाली और दोनों ने खूब दम लगाए। जब दोनों ऊख के छिलके के बिछावन पर कंबल ओढ़कर लेटे तो रंगी बोला—काहे भैया, आज तुमसे लश्कर के चपरासियों से कुछ कहा-सुनी हो गई थी क्या?

बलराज—हां, हुज्जत हो गई। दादा ने मने न किया होता तो दोनों को मारता।

रंगी—तभी दोनों तुम्हें बुरा-भला कहते चले जाते थे। मैं उधर से क्यारी में पानी खोल कर आता था, मुझे देखकर दोनों चुप हो गए। मैंने इतना सुना, अगर यह लौंडा कल सड़क पर गाड़ियां पकड़ने में कुछ तकरार करे तो बस चोरी का इल्जाम लगा कर गिरफ्तार कर लो। एक पचास बेंत पड़ जाएं तो इसकी शेखी उतर जाए।

बलराज—अच्छा, यह सब यहां तक मेरे पीछे पड़े हुए हैं। तुमने अच्छा किया कि मुझे चेता दिया, मैं कल सवेरे ही डिप्टी साहब के पास जाऊंगा।

रंगी—क्या करने जाओगे, भैया ! सुनते हैं अच्छा आदमी नहीं हैं। बड़ी कड़ी सजा देता है। किसी को छोड़ना तो जानता ही नहीं। तुम्हें क्या करना है? जिसकी गाड़ियां पकड़ी जाएंगी वह आप निबट लेगा।

बलराज—वाह, लोगों में इतना ही बूता होता तो किसी की गाड़ी पकड़ी ही क्यों जाती? सीधे का मुंह कुत्ता चाटता है। यह चपरासी भी तो आदमी ही हैं।

रंगी—तो तुम काहे को दूसरे के बीच में पड़ते हो? तुम्हारे दादा आज बहुत उदास थे और अम्मां रोती रहीं।

बलराज—क्या जाने क्यों रंगी, जब से दुनिया का थोड़ा-बहुत हाल जानने लगा हूं मुझसे अन्याय नहीं देखा जाता। जब किसी जबरे को किसी गरीब का गला दबाते देखता हूं तो मेरे बदन में आग-सी लग जाती है। यही जी चाहता है कि चाहे अपनी जान रहे या जाए, इस जबरे का सिर नीचा कर दूं। सिर पर एक भूत-सा सवार हो जाता है। जानता हूं कि अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता; पर मन काबू से बाहर हो जाता है।

इसी तरह की बातें करते दोनों सो गए। प्रात:काल बलराज घर गया, कसरत की, दूध पिया और अपना ढीला कुर्त्ता पहन, पगड़ी बांध डिप्टी साहब के पड़ाव की ओर चला। मनोहर अब तक उससे रूठे बैठे थे, अब जब्त न कर सके। पूछा–कहां जाते हो?

बलराज–जाता हूं डिप्टी साहब के पास।

मनोहर–क्यों सिर पर भूत सवार है? अपना काम क्यों नहीं देखते?

बलराज–देखूंगा कि पढ़े-लिखे लोगों का मिजाज कैसा होता है।

मनोहर–धक्के खाओगे, और कुछ नहीं।

बलराज–धक्के तो चपरासियो के खाते हैं, इसकी क्या चिंता। कुत्ते की जात तो पहचानी जाएगी।

मनोहर ने उसकी ओर निराशापूर्ण स्नेह की दृष्टि से देखा और कंधे पर कुदाल रखकर हार की ओर चल दिया। बलराज को मालूम हो गया कि अब यह मुझे छोड़ा हुआ सांड समझ रहे हैं, पर वह अपनी धुन में मस्त था। मनोहर का यह विचार कि इस समय समझाने का उतना असर न होगा जितना विरक्ति-भाव का, निष्फल हो गया। वह ज्योंही घर से नाहर निकला, बलराज ने भी लट्ठ कंधे पर रखा और कैंप की ओर चला। किसी हाकिम के सम्मुख जाने का यह पहला ही अवसर था। मन में अनेक विचार आते थे। मालूम नहीं, मिलें, या न मिलें, कहीं मेरी बातें सुनकर बिगड़ न जाएं, मुझे देखते ही सामने से निकलवा न दें, चपरासियों ने मेरी शिकायत अवश्य की होगी। क्रोध में भरे बैठे होंगे। बाबू ज्ञानशंकर से इनकी दोस्ती भी तो है। उन्होंने भी हम लोगों की ओर से उनके कान खूब भरे होंगे। मेरी सूरत देखते ही जल जाएंगे। ऊंह, जो कुछ हो, एक नया अनुभव तो हो जायगा। यही पढ़े-लिखे लोग तो हैं जो सभाओं में और लाट साहब के दरबार में हम लोगों की भलाई की रट लगाया करते हैं, हमारे नेता बनते हैं। देखूंगा कि यह लोग अपनी बातों के कितने धनी हैं।

बलराज कैंप में पहुंचा तो देखा कि जगह-जगह लकड़ी के अलाव जल रहे हैं, कहीं पानी गर्म हो रहा है, कहीं चाय बन रही है। एक ओर बूचड़ बकरे का मांस काट रहा है, दूसरी ओर बिसेसर साह बैठे जिंस तौल रहे हैं। चारों ओर घड़े और हांडियां टूटी पड़ी थीं, एक वृक्ष की छांह में कितने ही आदमी सिकुड़े बैठे थे, जिनके मुकदमों की आज पेशी होने वाली थी। बलराज पेड़ों की आड़ में होता हुआ ज्वालासिंह के खेमे के पास जा पहुंचा। उसे यह धड़का लगा हुआ था कि कहीं उन दोनों चपरासियों की निगाह मुझ पर न पड़ जाय। वह खड़ा सोचने लगा कि डिप्टी साहब के सामने कैसे जाऊं? उसे पर इस समय एक रोब छाया हुआ था। खेमे के सामने जाते हुए पैर कांपते थे। अचानक उसे गौस खां और सुक्खू चौधरी एक पेड़ के नीचे आग तापते दिखाई पड़े। अब वह खेमे के पीछे खड़ा न रह सका। उनके सामने धक्के खाना या डांट सुनना मर जाने से भी बुरा था। वह जी कड़ा करके खेमे के सामने चला गया और ज्वालासिंह को सलाम करके चुपचाप खड़ा हो गया।

बाबू ज्वालासिंह एक न्यायशील और दयालु मनुष्य थे, किंतु इन दो-तीन महीनों के दौरे में उन्हें अनुभव हो गया था कि बिना कड़ाई के मैं सफलता के साथ अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर सकता। सौजन्य और शालीनता निज के कामों में चाहे कितनी ही सराहनीय हो, लेकिन शासन-कार्य में यह सद्गुण अवगुण बन जाते हैं, लोग उनसे अनुचित लाभ उठाने लगते हैं, उन्हें अपनी स्वार्थ-सिद्धि का साधन बना लेते हैं, अतएव न्याय और शील में परस्पर विरोध हो

जाता है। रसद और बेगार के विषय में भी अधीनस्थ कर्मचारियों की चापलूसियां उनकी न्याय-नीति पर विजय पा गई थीं, और वह अज्ञात भाव से स्वेच्छाचारी अधिकारियों के वर्तमान सांचे में ढल गए थे। उन्हें अपने विवेक पर पहले से ही गर्व था, अब इसने आत्मश्लाघा का रूप धारण कर लिया था। वह जो कुछ कहते या करते थे उसके विरुद्ध एक शब्द भी न सुनना चाहते थे। इससे उनकी राय पर कोई असर न पड़ता था। वह निस्पृह मनुष्य थे और न्यायमार्ग से जौ भर भी न टलते थे। उन्हें स्वाभाविक रूप से यह विचार होता था कि किसी को मुझसे शिकायत न होनी चाहिए। अपने औचित्य-पालन का विश्वास और अपनी गौरवशील प्रकृत्ति उन्हें प्रार्थियों के प्रति अनुदार बना देती थी। बलराज को सामने देखकर बोले–कौन हो? यहां क्यों खड़े हो?

बलराज ने झुककर सलाम किया। उसकी उद्दंडता लुप्त हो गई थी। डरता हुआ बोला–हुजूर से कुछ बोलना चाहता हूं। ताबेदार का घर इसी लखनपुर में है।

ज्वालासिंह–क्या कहना है?

बलराज–कुछ नहीं, इतना ही पूछना चाहता हूं कि सरकार को आज कितनी गाड़ियों की जरूरत होगी?

ज्वालासिंह–क्या तुम गाड़ियों के चौधरी हो?

बलराज–जी नहीं, चपरासी लोग सड़क पर जाकर मुसाफिरों की गाड़ियां रोकते हैं और उन्हें दिक करते हैं। मैं चाहता हूं कि सरकार को जितनी गाड़ियां दरकार हों, उतनी आस-पास के गांव से खोज लाऊं। उनका सरकार से जो किराया मिलता हो वह दे दिया जाए तो मुसाफिरों को रोकना न पड़े।

ज्वालासिंह ने अपना सामान लादने के लिए ऊंट रख लिए थे, किंतु यह जानते थे कि मातहतों और चपरासियों को अपना असबाब लादने के लिए गाड़ियों की जरूरत होती है। उन्हें इसका खर्च सरकार से नहीं मिलता। अतएव वे लोग गाड़ियां न रोकें तो उनका काम ही न चले। वह व्यवहार चाहे प्रजा को कष्ट पहुंचाए, पर क्षम्य है। उनके विचार में यह कोई ऐसी ज्यादती न थी। संभव था कि यही प्रस्ताव किसी सम्मानित पुरुष ने किया होता तो वह उस पर विचार करते, लेकिन एक अक्खड़, गंवार, मूर्ख देहाती को उनसे यह शिकायत करने का साहस हो, वह उन्हें न्याय का पाठ पढ़ाने का दावा करे, यह उनके आत्माभिमान के लिए असह्य था। चिढ़कर बोले–जाकर सरिश्तेदार से पूछो।

बलराज–हुजूर ही उन्हें बुलाकर पूछ लें, मुझे वह न बतायेंगे।

ज्वालासिंह–मुझे इस सिर-दर्द की फुर्सत नहीं है।

बलराज के तेवर पर बल पड़ गए। शिक्षित समुदाय की नीति-परायणता और सज्जनता पर उसकी जो श्रद्धा थी, वह क्षण-मात्र में भंग हो गई। इन सद्भावों की जगह उसे अधिकार और स्वेच्छाचार का अहंकार अकड़ता दीख पड़ा। अहंकार के सामने सिर झुकाना उसने न सीखा था। उसने निश्चय किया कि जो मनुष्य इतना अभिमानी हो और मुझे इतना नीच समझे, वह आदर के योग्य नहीं है। इनमें और गौस खां या मामूली चपरासियों में अंतर ही क्या रहा? ज्ञान और विवेक की ज्योति कहां गई? निःशंक होकर बोला–सरकार इसे सिर-दर्द समझते हैं और यहां हम लोगों की जान पर बनी हुई है। हुजूर यहां धरम के आसन पर बैठे हैं, और चपरासी लोग परजा को लूटते फिरते हैं। मुझे आपसे यह बिनती करने का हौसला हुआ, तो इसलिए

कि मैं समझता था, आप दीनों की रक्षा करेंगे। अब मालूम हो गया कि हम अभागों का सहायक परमात्मा के सिवा और कोई नहीं।

यह कहकर बिना सलाम किए ही वहां से चल दिया। उसे एक नशा-सा हो गया था। बातें अवज्ञापूर्ण थीं, पर उनमें स्वाभिमान और सदिच्छा कूट-कूटकर भरी हुई थी। ज्वालासिंह में अभी तक सहृदयता का संपूर्णत: पतन न हुआ था। क्रोध की जगह उनके मन में सद्भावना का विकास हुआ। अब तक इनके यहां स्वार्थी और खुशामदी आदमियों का ही जमघट रहता था। ऐसे एक भी स्पष्टवादी मनुष्य से उनका सम्पर्क न हुआ था। जिस प्रकार मीठे पदार्थ खाने से ऊबकर हमारा मन कड़वी वस्तुओं की ओर लपकता है, उसी भांति ज्वालासिंह को ये कड़वी बातें प्रिय लगीं। उन्होंने उनके हृदय-नेत्रों के सामने से पदाभिमान का पर्दा हटा दिया। जी में तो आया कि इस युवक को बुला कर उससे खूब बातें करूं, किंतु अपनी स्थिति का विचार करके रुक गए। वह बहुत देर तक बैठे हुए इन बातों पर विचार करते रहे। अंतिम शब्दों ने उनकी आत्मा को एक ठोंका दिया था और वह जाग्रत हो गई थी। मन में अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर लेने के बाद उन्होंने अहलमद साहब को बुलाया ! सैयद ईजाद हुसेन ने बलराज को जाते देख लिया था। कल का सारा वृत्तांत उन्हें मालूम ही था। ताड़ गए कि लौंडा डिप्टी साहब के पास फरियाद लेकर आया होगा। पहले तो शंका हुई, कहीं डिप्टी साहब इसकी बातों में न आ गए हों। लेकिन जब उसकी बात से ज्ञात हुआ कि डिप्टी साहब ने उल्टे और फटकार सुनाई तो धैर्य हुआ। बलराज को डांटने लगे। वह अपने अफसरों के इशारे के गुलाम थे और उन्हीं की इच्छानुसार अपने कर्त्तव्य का निर्माण किया करते थे।

बलराज इस समय ऐसा हताश हो रहा था कि पहले थोड़ी देर तक वह चुपचाप खड़ा ईजाद हुसेन की कठोर बातें सुनता रहा। अंत में गंभीर भाव से बोला—आप क्या चाहते हैं कि हम लोगों पर अन्याय भी हो और हम फरियाद भी न करें?

ईजाद हुसेन—फरियाद का मजा तो चख लिया। अब चालान होता है तो देखें कहां जाते हो। सरकारी आदमियों से मजाहिम होना कोई खाला जी का घर नहीं है। डिप्टी साहब को तुम लोगों की सरकशी का रत्ती-रत्ती हाल मालूम है। बाबू ज्ञानशंकर ने सारा कच्चा चिट्ठा उनसे बयान कर दिया है। वह तो मौके की तलाश में थे। आज शाम तक सारा गांव बंधा जाता है। गौस खां को सीधा पा लिया है, इसी से शेर हो गए हो। अब सारी कसर निकल जाती है। इतने बेंत पड़ेंगे कि धज्जियां उड़ जाएंगी।

बलराज—ऐसा कोई अंधेर है कि हाकिम लोग बेकसूर किसी को सजा दे दें?

ईजाद हुसेन—हां-हां ऐसा ही अंधेर है। सरकारी आदमियों को हमेशा बेगार मिली है और हमेशा मिलेगी। तुम गाड़ियां न दोगे तो वह क्या अपने सिर पर असबाब लादेंगे? हमें जिन-जिन चीजों की जरूरत होगी, तुम्हीं से ली जाएंगी। हंसकर दो या रोकर दो। समझ गए....।

इतने में एक चपरासी ने कहा—चलिए, आपको सरकार याद करते हैं। ईजाद हुसेन पान खाए हुए थे। तुरंत कुल्ली की; पगड़ी बांधी और ज्वालासिंह के सामने जाकर सलाम किया।

ज्वालासिंह ने कहा—मीर साहब, चपरासियों को ताकीद कर दीजिए कि अब से कैंप के लिए बेगार में गाड़ियां न पकड़ा करें। आप लोग अपना सामान मेरे ऊंटों पर रख लिया कीजिए।

इससे आप लोगों को चाहे थोड़ी-सी तकलीफ हो, लेकिन यह मुनासिब नहीं मालूम होता कि अपनी आसाइश के लिए दूसरों पर जब्र किया जाए।

ईजाद हुसेन–हुजूर, बहुत बजा फर्माते हैं। आज से गाड़ियां पकड़ने की सख्त मुमानियत कर दी जाएगी। बेशक यह सरासर जुल्म है।

ज्वालासिंह–चपरासियों से कह दीजिए कि मेरे इजलास के खेमे में रात को सो रहा करें। बेगार में पुआल लेने की जरूरत नहीं। गरीब किसान यही पुआल काट-काट कर जानवरों को खिलाते हैं, इसलिए उन्हें इसका देना नागवार गुजरता है।

ईजाद हुसेन–हुजूर का फर्माना बजा है। हुक्काम को ऐसा ही गरीबपरवर होना चाहिए। लोग जमींदारों की सख्तियों से यों ही परेशान रहते हैं, उस पर हुक्काम की बेगार तो और भी सितम हो जाती है।

ज्वालासिंह के हृदय में ज्ञानशंकर के ताने अभी तक खटक रहे थे। यदि थोड़े-से कष्ट से उन पर छींटे उड़ाने की सामग्री हाथ आ जाए तो क्या पूछना। ज्वालासिंह इस द्वेष के आवेग को न रोक सके। एक बार गांव में जाकर उनकी दशा आंखों से देखने का निश्चय किया।

आठ बज चुके थे, किंतु अभी तक चारों ओर कुहरा छाया हुआ था। लखनपुर के किसान आज छुट्टी-सी मना रहे थे। जगह-जगह अलाव के पास बैठे हुए लोग कल की घटना की आलोचना कर रहे थे। बलराज की धृष्टता पर टिप्पणियां हो रही थीं। इतने में ज्वालासिंह चपरासियों और कर्मचारियों के साथ गांव में आ पहुंचे। गौस खां और उनके दोनों चपरासी पीछे-पीछे चले आते थे। उन्हें देखते ही स्त्रियां अपने अधमंजे बर्तन छोड़-छोड़कर घरों में घुसीं। बाल-वृन्द भी इधर-उधर दुबक गए। कोई द्वार पर कूड़ा उठाने लगा, कोई रास्ते में पड़ी हुई खाट उठाने लगा। ज्वालासिंह गांव का भ्रमण करते हुए सुक्खू चौधरी के कोल्हाड़े में आकर खड़े हो गए। सुक्खू चारपाई लेने दौड़े। गौस खां ने एक आदमी को कुर्सी लाने के लिए चौपाल दौड़ाया। लोगों ने चारों ओर से आ-आकर ज्वालासिंह को घेर लिया। अमंगल के भय से सबके चेहरों पर हवाइयां उड़ रही थीं।

ज्वालासिंह–तुम्हारी खेती इस साल कैसी है?

सुक्खू चौधरी को नेतृत्व का पद प्राप्त था। ऐसे अवसरों पर वही अग्रसर हुआ करते थे। पर वह अभी तक घर में से चारपाई निकाल रहे थे जो वृहदाकार होने के कारण द्वार से निकल न सकती थी। इसलिए कादिर खां को प्रतिनिधि का आसन ग्रहण करना पड़ा। उन्होंने विनीत भाव से उत्तर दिया–हुजूर, अभी तक अच्छी है, आगे अल्लाह मालिक है।

ज्वालासिंह–यहां मुझे आबपाशी के कुएं बहुत कम नजर आते हैं, क्या जमींदार की तरफ से इसका इंतजाम नहीं है?

कादिर–हमारे जमींदार तो हुजूर हम लोगों की बड़ी परवस्ती करते हैं, अल्लाह उन्हें सलामत रखें। हम लोग आप ही आलस के मारे कोई फिकर नहीं करते।

ज्वालासिंह–मुंशी गौस खां तुम लोगों की सरकशी की बहुत शिकायत करते हैं। बाबू ज्ञानशंकर भी तुम लोगों से खुश नहीं हैं, यह क्या बात है? तुम लोग वक्त पर लगान नहीं देते और जब तकाजा किया जाता है तो फसाद पर आमादा हो जाते हो। तुम्हें मालूम है कि जमींदार चाहे तो तुमसे एक के दो वसूल कर सकता है?

गजाधर अहीर ने दबी जबान से कहा–तो कौन कहे कि छोड़ देते हैं !

ज्वालासिंह–क्या कहते हो? सामने आकर कहो।

कादिर–कुछ नहीं हुजूर, यही कहता है कि हमारी मजाल है जो अपने मालिक के सामने सिर उठाएं। हम तो उनके ताबेदार हैं, उनका दिया खाते हैं, उनकी जमीन में बसते हैं, भला उनसे सरकशी करके अल्लाह को क्या मुंह दिखाएंगे? रही बकाया, सो हूजूर, जहां तक होता है साल तमाम तक कौड़ी-कौड़ी चुका देते हैं। हां, जब कोई काबू नहीं चलता तो कभी थोड़ी-बहुत बाकी रह भी जाती है।

ज्वालासिंह ने इसी प्रकार से और भी कई प्रश्न किए, किंतु उनका अभीष्ट पूरा न हो सका। किसी की जबान से गौस खां या बाबू ज्ञानशंकर के विरुद्ध एक शब्द भी न निकला। अंत में हार मान कर वह पड़ाव को चल दिए।

नौ

अपनी पारिवारिक सदिच्छा का ऐसा उत्तम प्रमाण देने के बाद ज्ञानशंकर को बंटवारे के विषय में अब कोई असुविधा न रही। लाला प्रभाशंकर ने उन्हीं की इच्छानुसार करने का निश्चय कर लिया। दीवानखाना उनके लिए खाली कर दिया, लखनपुर मोसल्लम उनके हिस्से में दे दिया, और घर की अन्य सामग्रियां भी उन्हीं की मरजी के मुताबिक बांट दीं। बड़ी बहू की ओर से विरोध की शंका थी, लेकिन इस एहसान ने उनकी जबान ही नहीं बंद कर दी, वरन् उनके मनोमालिन्य को भी मिटा दिया। प्रभाशंकर अब बड़ी बहू से, नौकरों से, मित्रों से, संबंधियों से ज्ञानशंकर की प्रशंसा किया करते और प्राय: अपनी आत्मीयता को किसी-न-किसी उपहार के स्वरूप प्रकट करते। एक दुशाला, एक चांदी का थाल, कई सुंदर चित्र, एक बहुत अच्छा ऊनी कालीन और ऐसी ही विविध वस्तुएं उन्हें भेंट कीं। उन्हें स्वादिष्ट पदार्थों से बड़ी रुचि थी। नित्य नाना प्रकार के मुरब्बे, चटनियां, अचार बनाया करते थे। इस कला में प्रवीण थे। आप भी शौक से खाते थे, और दूसरों को खिलाकर आनंदित होते थे। ज्ञानशंकर के लिए नित्य कोई-न-कोई स्वादिष्ट पदार्थ बनाकर भेजते। यहां तक कि ज्ञानशंकर इन सद्भावों से तंग आ गए। उनकी आत्मा अभी तक उनकी कपट नीति पर उनको लज्जित किया करती थी। यह खातिरदारियां उन्हें अपनी कुटिलता की याद दिलाती थीं और इससे उनका चित्त दुखी होता था। अपने चाचा की सरल-हृदयता और सज्जनता के सामने अपनी धूर्तता और मलिनता अत्यंत घृणित दीख पड़ती थी।

लखनपुर ज्ञानशंकर की चिर अभिलाषाओं का स्वर्ग था। घर की सारी संपत्ति में ऐसा उपजाऊ, ऐसा समृद्धिपूर्ण और कोई गांव नहीं था जो शहर से मिला हुआ, पक्की सड़क के किनारे और जलवायु भी उत्तम हो। यहां कई हलों की सीर थी, एक कच्चा पर सुंदर मकान भी था और सबसे बड़ी बात यह है कि यहां इजाफा लगान की बड़ी गुंजाइश थी। थोड़े उद्योग से उनका नफा दूना हो सकता था। दो-चार कच्चे कुएं खुदवा कर इजाफे की कानूनी शर्त पूरी की जा सकती थी। बंटवारे को एक सप्ताह भी न हुआ था कि ज्ञानशंकर ने गौस खां को बुलाया, जमाबंदी की जांच की, इजाफा बेदखली की परत तैयार की और असामियों पर मुकदमा दायर

करने का हुक्म दे दिया। अब तक सीर बिल्कुल न होती थी। इसका भी प्रबंध किया। वह चाहते थे कि अपने हल, बैल, हलवाहे रखे जाएं और विधि-पूर्वक खेती की जाए। किंतु खां साहब ने कहा, इतने आडंबर की जरूरत नहीं, बेगार में बड़ी सुगमता से सीर हो सकती है। सीर के लिए बेगार जमींदार का हक है, उसे क्यों छोड़िए?

लेकिन इस सुव्यवस्थारूपी मधुर गान में एक कटु स्वर भी था, जिससे उसका लालित्य भंग हो जाता था। यह विद्यावती का असहयोग था। उसे अपने पति की स्वार्थपरता एक आंख न भाती थी। कभी-कभी वह मतभेद विवाद और कलह का भी रूप धारण कर लेता था।

फागुन का महीना था। लाला प्रभाशंकर धूमधाम से होली मनाते थे। अपने घरवालों के लिए नए कपड़े लाए तो ज्ञानशंकर के परिवार के लिए भी लेते आए थे। लगभग पचास वर्षों से वह घरभर के लिए नए वस्त्र लाने के आदी हो गए थे। अब अलग हो जाने पर भी वह उस प्रथा को निभाते रहना चाहते थे। ऐसे आनंद के अवसर पर द्वेष भाव को जागृत रखना उनके लिए अत्यंत दु:खकर था। विद्या ने यह कपड़े तो रख लिए, पर इसके बदले में प्रभाशंकर के लड़के, लड़कियों और बहू के लिए एक-एक जोड़े धोती की व्यवस्था की। ज्ञानशंकर ने यह प्रस्ताव सुना तो चिढ़कर बोले—यदि यहीं करना है तो उनके कपड़े लौटा क्यों नहीं देतीं?

विद्या—भला कपड़े लौटा दोगे तो वह अपने मन में क्या कहेंगे? वह बेचारे तो तुमसे मिलने को दौड़ते हैं और तुम भागे-भागे फिरते हो। तुम्हें रुपयों का ही ख्याल है न? तुम कुछ मत देना, मैं अपने पास से दूंगी।

ज्ञान—जब तुम धन्ना सेठों की तरह बातें करने लगती हो तो बदन में आग-सी लग जाती है। उन्होंने कपड़े भेजे तो कोई एहसान नहीं किया। दुकानों का साल भर का किराया पेशगी लेकर हड़प चुके हैं। यह चाल इसलिए चल रहे हैं कि मैं मुंह भी न खोल सकूं और उनका बड़प्पन भी बना रहे। अपनी गांठ से करते तो मालूम होता।

विद्या—तुम दूसरों की कीर्ति को कभी-कभी ऐसा मिटाने लगते हो कि मुझे तुम्हारी अनुदारता पर दु:ख होता है। उन्होंने अपना समझकर उपहार दिया, तुम्हें इसमें उनकी चाल सूझ गई।

ज्ञान—मुझे भी घर में बैठे सुख-भोग की सामग्रियां मिलतीं तो मैं तुमसे अधिक उदार बन जाता। तुम्हें क्या मालूम है कि मैं आजकल कितनी मुश्किल से गृहस्थी का प्रबंध कर रहा हूं? लखनपुर से जो थोड़ा-बहुत मिला उसी में गुजर हो रहा है। किफायत से न चलता तो अब तक सैकड़ों का कर्ज हो गया होता। केवल अदालत के लिए सैकड़ों रुपयों की जरूरत है। बेदखली और इजाफे के कागज-पत्र तैयार हैं, पर मुकदमे दायर करने के लिए हाथ में कुछ भी नहीं। उधर गांव वाले भी बिगड़े हुए हैं। ज्वालासिंह ने अबकी दौरे में उन्हें ऐसा सिर चढ़ा दिया कि मुझे कुछ समझते ही नहीं। मैं तो इन चिंताओं में मरा जाता हूं और तुम्हें एक-न-एक खुराफात सूझा करती है।

विद्या—मैं तुमसे रुपये नहीं मांगती।

ज्ञान—मैं अपने और तुम्हारे रुपयों में कोई भेद नहीं समझता। हां, जब राय साहब तुम्हारे नाम कोई जायदाद लिख देंगे तो समझने लगूंगा।

विद्या—मैं तुम्हारा एक पैसा नहीं चाहती।

ज्ञान—माना, लेकिन वहां से भी तुम रोकड़ नहीं लाती हो। साल में सौ-पचास रुपये मिल

जाते होंगे, इतने पर भी तुम्हारे पैर जमीन पर नहीं पड़ते। छिछले ताल की तरह उबलने लगती हो।

विद्या—तो क्या चाहते हो कि वह तुम्हें अपना घर उठाकर दे दें?

ज्ञान—वह बेचारे आप तो अघा लें, मुझे क्या देंगे? मैं तो ऐसे आदमी को पशु से भी गया-गुजरा समझता हूं जो आप तो लाखों उड़ाए और अपने निकटतम संबंधियों की बात भी न पूछे। वह तो अगर मर भी जाएं तो मेरी आंखों में आंसू न आएं।

विद्या—तुम्हारी आत्मा इतनी संकुचित है, यह मुझे आज मालूम हुआ।

ज्ञान—ईश्वर को धन्यवाद दो कि मुझसे विवाह हो गया, नहीं तो कोई बात भी न पूछता। लाला बरसों तक दही-दही हांक लगाते रहे, पर कोई सेंत भी न पूछता था।

विद्यावती इस मर्माघात को न सह सकी, क्रोध के मारे उसका चेहरा तमतमा उठा। वह झमककर वहां से चली जाने को उठी कि इतने में महरी ने एक तार का लिफाफा लाकर ज्ञानशंकर के हाथ में रख दिया। लिखा था--

'पुत्र का स्वर्गवास हो गया, जल्द आओ।' —कमलानंद

ज्ञानशंकर ने तार का कागज जमीन पर फेंक दिया और लंबी सांस खींचकर बोले--हां ! शोक ! परमात्मा, यह तुमने क्या किया?

विद्या ठिठक गई।

ज्ञानशंकर ने विद्या से कहा—विद्या हम लोगों पर वज्र गिर पड़ा, हमारा....

विद्या ने कातर नेत्रों से देखकर कहा—मेरे घर पर तो कुशल है?

ज्ञानशंकर—हाय प्रिये, किस मुंह से कहूं कि सब कुशल है ! वह घर उजड़ गया, उस घर का दीपक बुझ गया। बाबू रामानंद अब इस संसार में नहीं हैं। हा, ईश्वर !!

विद्या के मुंह से सहसा एक चीख निकल गई। विह्वल होकर भूमि पर गिर पड़ी और छाती पीट-पीटकर विलाप करने लगी। श्रद्धा दौड़ी आई। महरियां जमा हो गईं। बड़ी बहू ने रोना सुना तो अपनी बहू और पुत्रियों के साथ आ पहुंचीं। कमरे में स्त्रियों की भीड़ लग गई। मायाशंकर माता को रोते देखकर चिल्लाने लगा। सभी स्त्रियों के मुख पर शोक की आभा थी और नेत्रों में करुणा का जल। कोई ईश्वर को कोसती थी, कोई समय की निंदा करती थी। अकाल मृत्यु कदाचित् हमारी दृष्टि में ईश्वर का सबसे बड़ा अन्याय है। वह विपत्ति हमारी श्रद्धा और भक्ति का नाश कर देती है, हमें ईश्वरद्रोही बना देती है। संसार में हम नित्य घोर-से-घोर और विषम-से-विषम अन्याय देखा करते हैं, हमें उनकी सहन पड़ गई है। लेकिन हमारी अन्याय पीड़ित आंखें भी यह दारुण दृश्य सहन नहीं कर सकतीं। अकाल मृत्यु हमारे हृदय-पट पर सबसे कठोर दैवी आघात है। यह हमारे न्याय-ज्ञान पर सबसे भयंकर बलात्कार है।

पर हा, स्वार्थ संग्राम ! यह निर्दय वज्र-प्रहार ज्ञानशंकर को सुखद पुष्प वर्षा के तुल्य जान पड़ा। उन्हें क्षणिक शोक अवश्य हुआ, किंतु तुरंत ही हृदय में नई-नई आकांक्षाएं तरंगें मारने लगीं। अब तक उनका जीवन लक्ष्यहीन था। अब उसमें एक महान लक्ष्य का विकास हुआ। विपुल संपत्ति का मार्ग निश्चित हो गया। ऊसर भूमि में हरियाली लहरें मारने लगीं। राय कमलानंद के अब और कोई पुत्र न था। दो पुत्रियों में एक विधवा और निःसंतान थी। विद्या को ही ईश्वर ने संतान दी थी और मायाशंकर अब राय साहब का वारिस था। कोई आश्चर्य नहीं कि ज्ञानशंकर को यह शोकमय व्यापार अपने सौभाग्य की ईश्वर कृत व्यवस्था जान पड़ती

थी। वह मायाशंकर को गोद में लेकर नीचे दीवानखाने में चले आए और विरासत के संबंध में स्मृतिकारों की व्यवस्था का अवलोकन करने लगे। वह अपनी आशाओं की पुष्टि और शंकाओं का समाधान करना चाहते थे। कुछ दिनों तक कानून पढ़ा था, कानूनी किताबों का उनके पास अच्छा संग्रह था। पहले मनुस्मृति खोली, संतोष न हुआ। मिताक्षरा का विधान देखा, शंका और भी बढ़ी। याज्ञवल्क्य ने भी विषय का कुछ संतोषप्रद स्पष्टीकरण न किया। किसी वकील की सम्मति आवश्यक जान पड़ी। वह इतने उतावले हो रहे थे कि तत्काल कपड़े पहनकर चलने को तैयार हो गए। कहार से कहा–माया को ले जा, बाजार की सैर करा ला। कमरे से बाहर निकले ही थे कि याद आया, तार का जवाब नहीं दिया। फिर कमरे में गए, समवेदना का तार लिखा, इतने में लाला प्रभाशंकर और दयाशंकर भी आ पहुंचे, ज्ञानशंकर को इस समय उनका आना जहर-सा लगा। प्रभाशंकर बोले–मैंने तो अभी सुना। सन्नाटे में आ गया। बेचारे राय साहब को बुढ़ापे में यह बुरा धक्का लगा। घर ही वीरान हो गया।

ज्ञानशंकर–ईश्वर की लीला विचित्र है ।

प्रभाशंकर–अभी उम्र ही क्या थी। बिल्कुल लड़का था। तुम्हारे विवाह में देखा था, चेहरे से तेज बरसता था। ऐसा प्रतापी लड़का मैंने नहीं देखा।

ज्ञानशंकर–इसी से तो ईश्वर के न्याय-विधान पर से विश्वास उठ जाता है।

दयाशंकर–आपकी बड़ी साली के तो कोई लड़का नहीं है न?

ज्ञानशंकर ने विरक्त भाव से कहा–नहीं।

दयाशंकर–तब तो चाहे माया ही वारिस हो।

ज्ञानशंकर ने उनका तिरस्कार करते हुए कहा–कैसी बात करते हो। यहां कौन-सी बात, कहां कौन-सी बात? ऐसी बातों का समय नहीं है।

दयाशंकर लज्जित हो गए। ज्ञानशंकर को अब यह विलंब असह्य होने लगा। पैरगाड़ी उठाई और दोनों आदमियों को बरामदे में ही छोड़कर डॉक्टर इरफानअली के बंगले की ओर चल दिए जो नामी बैरिस्टर थे।

बैरिस्टर साहब का बंगला खूब सजा हुआ था। शाम हो गई थी, वह हवा खाने जा रहे थे। मोटर तैयार थी, लेकिन मुवक्किलों से जान न छूटती थी। वह इस समय अपने ऑफिस में आराम कुर्सी पर लेटे हुए सिगार पी रहे थे और अपने छोटे टेरियर को गोद में लिए उसके सिर में थपकियां देते जाते थे। मुवक्किल लोग दूसरे कमरे में बैठे थे। वह बारी-बारी से डॉक्टर साहब के पास आकर अपना वृत्तांत कहते जाते थे। ज्ञानशंकर को बैठे-बैठे आठ बज गए। तब जाकर उनकी बारी आई। उन्होंने ऑफिस में जाकर अपना मामला सुनाना शुरू किया। क्लर्क ने उनकी सब बातें नोट कर लीं। इसकी फीस पांच रुपये हुई। डॉक्टर साहब की सम्मति के लिए दूसरे दिन बुलाया। उसकी फीस पांच सौ रुपये थी। यदि उस सम्मति पर कुछ शंकाएं हों तो उसके समाधान के लिए प्रति घंटा दो सौ रुपये देने पड़ेंगे। ज्ञानशंकर को मालूम न था कि डॉक्टर साहब के समय का मूल्य इतना अधिक है। मन में पछताए कि नाहक इस झमेले में फंसा। क्लर्क की फीस तो उसी दम दे दी और घर से रुपया लाने का बहाना करके वहां से निकल आए। लेकिन रास्ते में सोचने लगे, इनकी राय जरूर पक्की होती होगी, तभी तो उसका इतना मूल्य है। नहीं तो इतने आदमी उन्हें घेरे क्यों रहते हैं, खूब जांच-पड़ताल करके तब राय देंगे। अटकल-पच्चू बातें कहनी होतीं तो अभी न कह देते। अंग्रेजी नीति में यही तो गुण है

कि दाम चौकस लेते हैं, पर माल खरा देते हैं। सैकड़ों नजीरें देखनी पड़ेंगी, हिंदू शास्त्रों का मंथन करना पड़ेगा, तब जाके तत्त्व हाथ आएगा, रुपये का कोई प्रबंध करना चाहिए। उसका मुंह देखने से काम न चलेगा। एक बात निश्चित रूप से मालूम तो हो जाएगी। यह नहीं कि मैं तो धोखे में निश्चिंत बैठा रहूं और वहां दाल न गले, सारी आशाएं नष्ट हो जाएं। मगर यह व्यवसाय है उत्तम। आदमी चाहे तो सोने की दीवार खड़ी कर दे। मुझे शामत सवार हुई कि उसे छोड़ बैठा. नहीं तो आज क्या मेरी आमदनी दो हजार मासिक से कम होती? जब निरे काठ के उल्लू तक हजारों पर हाथ साफ करते हैं तो क्या मेरी ही न चलती? इस जमींदारी का बुरा हो। इसने मुझे कहीं का न रखा।

वह घर पहुंचे तो नौ बज चुके थे। विद्या अपने कमरे में अकेले उदास पड़ी थी, महरियां काम-धंधे में लगी हुई थीं और पड़ोसिनें विदा हो गई थीं। ज्ञानशंकर ने विद्या का सिर उठाकर अपनी गोद में रख लिया और गद्गद स्वर से बोले—मुंह देखना भी न बदा था।

विद्या ने रोते हुए कहा—उनकी सूरत एक क्षण के लिए भी आंखों से नहीं उतरती। ऐसा जान पड़ता है, वह मेरे सामने खड़े मुस्करा रहे हैं।

ज्ञान—मेरा तो अब सांसारिक वस्तुओं पर भरोसा ही नहीं रहा। यही जी चाहता है कि सब कुछ छोड़छाड़ के कहीं चल दूं।

विद्या--कल शाम की गाड़ी से चलो। कुछ रुपये लेते चलने होंगे। मैं, उनके षोडशे में कुछ दान करना चाहती हूं।

ज्ञान—हां-हां, जरूर। अब उसकी आत्मा को संतुष्ट करने का हमारे पास यही तो एक साधन रह गया है।

विद्या--उन्हें घोड़े की सवारी का बहुत शौक था। मैं एक घोड़ा उनके नाम पर देना चाहती हूं।

ज्ञान—बहुत अच्छी बात है। दो-ढाई सौ में घोड़ा मिल जाएगा।

विद्यावती ने डरते-डरते यह प्रस्ताव किया था। ज्ञानशंकर ने उसे सहर्ष स्वीकार करके उसे मुग्ध कर दिया।

ज्ञानशंकर इस अपव्यय को इस समय काटना अनुचित समझते थे। यह अवसर ही ऐसा था। अब वह विद्या का निरादर तथा अवहेलना नहीं कर सकते थे।

दस

राय कमलानन्द बहादुर लखनऊ के एक बड़े रईस और ताल्लुकेदार थे। वार्षिक आय एक लाख के लगभग थी। अमीनाबाद में उनका विशाल भवन था। शहर में उनकी और भी कई कोठियां थीं, पर वह अधिकांश नैनीताल या मसूरी में रहा करते थे। यद्यपि उनकी पत्नी का देहांत उनकी युवावस्था में हो गया, पर उन्होंने दूसरा विवाह न किया था। मित्रों और हितसाधकों ने बहुत घेरा, पर वह पुनर्विवाह के बंधन में न पड़े। विवाह का उद्देश्य संतान है और जब ईश्वर ने उन्हें एक पुत्र और दो पुत्रियां प्रदान कर दीं तो फिर विवाह करने की क्या जरूरत? उन्होंने अपनी

बड़ी लड़की गायत्री का विवाह गोरखपुर के एक बड़े रईस से किया। उत्सव में लाखों रुपये खर्च कर दिए। पर जब विवाह के दो ही साल पीछे गायत्री विधवा हो गई—उनके पति को किसी घर के ही प्राणी ने लोभवश विष दे दिया—तो राय साहब ने विद्या को किसी साधारण कुटुंब में ब्याहने का निश्चय किया, जहां जीवन इतना कंटकमय न हो। यही कारण था कि ज्ञानशंकर को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। स्वर्गीय बाबू रामानन्द अभी तक कुंवारे ही थे। उनकी अवस्था बीस वर्ष से अधिक हो गई थी, पर राय साहब उनका विवाह करने को कभी उत्सुक न हुए। वह उनके मानसिक तथा शारीरिक विकास में कोई कृत्रिम बाधा नहीं डालना चाहते थे। पर शोक ! रामानन्द घुड़दौड़ में सम्मिलित होने के लिए पूना गए हुए थे। वहां घोड़े पर से गिर पड़े, मर्मस्थानों पर कड़ी चोट आ गई। लखनऊ पहुंचने के दो ही दिन बाद उनका प्राणांत हो गया। राय साहब की सारी सद्कल्पनाएं विनष्ट हो गईं, आशाओं का दीपक बुझ गया।

किंतु राय साहब उन प्राणियों में न थे जो शोक-संताप के ग्रास बन जाते हैं। इसे विराग कहिए, चाहे प्रेम-शिथिलता, या चित्त की स्थिरता। दो ही चार दिनों में उनका पुत्र-शोक जीवन की अविश्रांत कर्म-धारा में विलीन हो गया।

राय साहब बड़े रसिक पुरुष थे। घुड़दौड़ और शिकार, सरोद और सितार से उन्हें समान प्रेम था। साहित्य और राजनीति के भी ज्ञाता थे। अवस्था साठ वर्ष के लगभग थी, पर इन विषयों में उनका उत्साह लेशमात्र भी क्षीण न हुआ था। अस्तबल में दस-बारह चुने हुए घोड़े थे, विविध प्रकार की कई बग्घियां, दो मोटरकार, दो हाथी। दर्जनों कुत्ते पाल रखे थे। इनके अतिरिक्त बाज, शिकरे आदि शिकारी चिड़ियों की एक हवाई सेना भी थी। उनके दीवानखाने में अस्त्र-शस्त्र की शृंखला देखकर जान पड़ता था, मानो शस्त्रालय है। घुड़दौड़ में वह अच्छे-अच्छे शहसवारों से पाला मारते थे। शिकार में उनके निशाने अचूक पड़ते थे। पोलो के मैदान में उनकी चपलता और हाथों की सफाई देखकर आश्चर्य होता था। श्रव्य कलाओं में भी वह इससे कम प्रवीण न थे। शाम को जब वह सितार लेकर बैठते तो उनकी सिद्धि पर अच्छे-अच्छे उस्ताद भी चकित हो जाते थे। उनके स्वर में अलौकिक माधुर्य था। वे संगीत के सूक्ष्म तत्त्वों के वेत्ता थे। उनके ध्रुपद की आलाप सुनकर बड़े-बड़े कलावंत भी सिर धुनने लगते थे। काव्यकला में भी उनकी कुशलता और मार्मिकता कवियों को लज्जित कर देती थी। उनकी रचनाएं अच्छे-अच्छे कवियों से टक्कर लेती थीं। संस्कृत, फारसी, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी सभी भाषाओं के वे पंडित थे। स्मरणशक्ति विलक्षण थी। कविजनों के सहस्त्रों शेर, दोहे, कवित्त, पद्य कंठस्थ थे और बातचीत में वह उनका बड़ी सुरुचि से उपयोग करते थे। इसीलिए उनकी बातें सुनने में लोगों को आनंद मिलता था। इधर दस-बारह वर्षों से राजनीति में भी प्रविष्ट हो गए थे। कौंसिल भवन में उनका स्थान प्रथम श्रेणी में था। उनकी राय सदैव निर्भीक होती थी। वह अवसर या समय के भक्त न थे। राष्ट्र या शासन के दास न बनकर सर्वदा अपनी विचार-शक्ति से काम लेते थे। इसी कारण कौंसिल में उनकी बड़ी शान थी। यद्यपि यह बहुत कम बोलते थे, और राजनीति भवन से बाहर उनकी आवाज कभी न सुनाई देती थी, किंतु जब बोलते थे तो अच्छा ही बोलते थे। ज्ञानशंकर को उनके बुद्धि-चमत्कार और ज्ञान-विस्तार पर अचंभा होता था। यदि आंखों देखी बात न होती तो किसी एक व्यक्ति में इतने गुणों की चर्चा सुनकर उन्हें विश्वास न होता। इस सत्संग से उनकी आंखें खुल गईं। उन्हें अपनी योग्यता और चतुरता पर बड़ा गर्व था। इन सिद्धियों ने उसे चूर-चूर कर दिया। पहले दो सप्ताह तक तो उन पर श्रद्धा

का एक नशा छाया रहा। राय साहब जो कुछ कहते वह सब उन्हें प्रामाणिक जान पड़ता था। पग-पग पर, बात-बात में उन्हें अपनी त्रुटियां दिखाई देतीं और लज्जित होना पड़ता। यहां तक कि साहित्य और दर्शन में भी, जो उनके मुख्य विषय थे, राय साहब के विचारों पर मनन करने के लिए उन्हें बहुत कुछ सामग्री मिल जाती थी। सबसे कौतूहल की बात तो यह थी कि ऐसे दारुण शोक के बोझ के नीचे राय साहब क्योंकर सीधे खड़े रह सकते थे। उनके विलास उपवन पर इस दुस्सह झोंके का जरा भी असर न दिखाई देता था।

किंतु शनैः-शनैः ज्ञानशंकर को रायसाहब की इस बहुज्ञता से अश्रद्धा होने लगी। आठों पहर अपनी हीनता का अनुभव करना असह्य था। उनके विचार में अब राय साहब का इन आमोद-प्रमोद विषयों में लिप्त रहना शोभा नहीं देता था। यावज्जीवन विलासिता में लीन रहने के बाद अब उन्हें विरक्त हो जाना चाहिए था। इस आमोद-लिप्सा की भी कोई सीमा है? इसे सजीवता नहीं कह सकते, यह निश्चलता नहीं, इसे धैर्य कहना ही उपयुक्त है। धैर्य कभी सजीवता और वासना का रूप नहीं धारण करता। वह हृदय पर विरक्ति, उदासीनता और मलीनता का रंग फेर देता है। वह केवल हृदयदाह है, जिससे आंसू तक सूख जाता है। वह शोक की अंतिम अवस्था है। कोई योगी, सिद्ध, महात्मा भी जवान बेटे का दाग दिल पर रखते हुए इतना अविचलित नहीं रह सकता। यह नग्न इंद्रियोपासना है। अहंकार ने आत्मा का दमन कर दिया, ममत्व ने हृदय के कोमल भावों का सर्वनाश कर दिया है। ज्ञानशंकर को अब राय साहब की एक-एक बात में क्षुद्र विलासिता की झलक दिखाई देती। वह उनके प्रत्येक व्यवहार को तीव्र समालोचना की दृष्टि से देखते।

परंतु एक महीना गुजर जाने पर भी ज्ञानशंकर ने कभी बनारस जाने की इच्छा नहीं प्रकट की। यद्यपि विद्यावती का उनके साथ जाने पर राजी न होना उनके यहां पड़े रहने का अच्छा बहाना था, पर वास्तव में इसका एक दूसरा ही कारण था, जिसे अंतःकरण में भी व्यक्त करने का उन्हें साहस न होता था। गायत्री के कोमल भाव और मृदुल रसमयी बातों का उनके चित्त पर आकर्षण होने लगा था। उसका विकसित लावण्यमय सौंदर्य अज्ञात रूप से उनके हृदय को खींचता जाता था और वह पंतगे की भांति, परिणाम से बेखबर इस दीपक की ओर बढ़ते चले जाते थे। उन्हें गायत्री प्रेमाकांक्षा और प्रेमानुरोध की मूर्ति दिखाई देती थी, और यह भ्रम उनकी लालसा को और भी उत्तेजित करता रहता था। घर में किसी बड़ी-बूढ़ी स्त्री के न होने के कारण उनका आदर-सत्कार गायत्री ही करती थी और ऐसे स्नेह और अनुराग के साथ कि ज्ञानशंकर को इसमें प्रेमादेश का रसमय आनंद मिलता था। सुखद कल्पनाएं मनोहर रूप धारण करके उनकी दृष्टि के सामने नृत्य करने लगती थीं। उन्हें अपना जीवन कभी इतना सुखमय न मालूम हुआ था। हृदय-सागर में कभी ऐसी प्रबल तरंगें न उठी थीं। उनका मन केवल प्रेम-वासनाओं का आनंद न उठाता था। वह गायत्री की अतुल संपत्ति का भी सुख-भोग करता था। उनकी भावी उन्नति का भवन निर्माण हो चुका था। यदि वह इस उद्यान से सुसज्जित हो जाय तो उसकी शोभा कितनी अपूर्व होगी। उसका दृश्य कितना विस्तृत, कितना मनोहर होगा।

ज्ञानशंकर की दृष्टि में आत्म-संयम का महत्त्व बहुत कम था। उनका विचार था कि संयम और नियम मानव-चरित्र के स्वाभाविक विकास के बाधक हैं। वही पौधा सघन वृक्ष हो सकता है जो समीर और लू, वर्षा और पाले में समान रूप से खड़ा रहे। उसकी वृद्धि के लिए अग्निमय प्रचंड वायु उतनी ही आवश्यक है जितनी शीतल मंद समीर; शुष्कता उतनी

ही प्राणपोषक है, जितनी आर्द्रता। चरित्रोन्नति के लिए भी विविध प्रकार की परिस्थितियां अनिवार्य हैं। दरिद्रता को काला नाग क्यों समझें। चरित्र-गठन के लिए यह संपत्ति से कहीं महत्त्वपूर्ण है। यह मनुष्य में दृढ़ता और संकल्प, दया और सहानुभूति के भाव उदय करती है। प्रत्येक अनुभव चरित्र के किसी-न-किसी अंग की पुष्टि करता है, यह प्राकृतिक नियम है। इसमें कृत्रिम बाधाओं के डालने से चरित्र विषम हो जाता है। यहां तक कि क्रोध और ईर्ष्या, असत्य और कपट में भी बहुमूल्य शिक्षा के अंकुर छिपे रहते हैं। जब तक सितार का प्रत्येक तार चोट न खाए, सुरीली ध्वनि नहीं निकल सकती। मनोवृत्तियों को रोकना ईश्वरीय नियमों में हस्तक्षेप करना है। इच्छाओं का दमन करना आत्म-हत्या के समान है। इससे चरित्र संकुचित हो जाता है। बंधनों के दिन अब नहीं रहे। यह अबाध, उदार, विराट, उन्नति का समय है। त्याग और बहिष्कार उस समय के लिए उपयुक्त था, जब लोग संसार को असार, स्वप्नवत् समझते थे। यह सांसारिक उन्नति हमारा अभीष्ट है। प्रत्येक साधन जो अभीष्ट सिद्धि में हमारा सहायक हो, ग्राह्य है। इन विचारों ने ज्ञानशंकर को विवेक-शून्य बना दिया था। हां, वर्तमान अवस्था का यह प्रभाव था कि वह निंदा और उपहास से डरते थे, हालांकि यह भी उनके विचार में मानसिक दुर्बलता थी।

गायत्री उन स्त्रियों में न थी, जिनके लिए पुरुषों का हृदय एक खुला हुआ पृष्ठ होता है। उसका पति एक दुराचारी मनुष्य था, पर गायत्री को कभी उस पर संदेह नहीं हुआ। उसके मनोभावों की तह तक कभी नहीं पहुंची और यद्यपि उसे मरे हुए तीन साल बीत चुके थे, पर वह अभी तक आध्यात्मिक श्रद्धा से उसकी स्मृति की आराधना किया करती थी। उसका निश्छल हृदय वासनायुक्त प्रेम के रहस्यों से अनभिज्ञ था। किंतु इसके साथ ही सगर्वता उसके स्वभाव का प्रधान अंग थी। वह अपने को उससे कहीं ज्यादा विवेकशील और मर्मज्ञ समझती थी, जितनी वह वास्तव में थी। उसके मनोवेग और विचार जल के नीचे बैठने वाले रोड़े नहीं, सतह पर तैरने वाले बुलबुले थे। ज्ञानशंकर एक रूपवान, सौम्य, मृदुमुख मनुष्य थे। गायत्री सरल भाव से इन गुणों पर मुग्ध थी। वह उनसे मुस्कराकर कहती, तुम्हारी बातों में जादू है, तुम्हारी बातों से कभी मन तृप्त नहीं होता। वह ज्ञानशंकर के सम्मुख विद्या से कहती, ऐसा पति पाकर भी तू अपने भाग्य को नहीं सराहती? यद्यपि ज्ञानशंकर उससे दो-चार ही मास छोटे थे, पर उसकी छोटी बहन के पति थे, इसलिए वह उन्हें छोटे भाई के तुल्य समझती थी। वह उनके लिए अच्छे-अच्छे भोज्य पदार्थ आप बनाती, दिन में कई बार जलपान करने के लिए घर में बुलाती थी। उसे धार्मिक और वैज्ञानिक विषयों से विशेष रुचि थी। ज्ञानशंकर से इसी विषय की बातें करने और सुनने में उसे हार्दिक आनंद प्राप्त होता था। वह साली के नाते से प्रथानुसार उनसे दिल्लगी भी करती, उन पर भावमय चोटें करती और हंसती थी। मुंह लटका कर उदास बैठना उसकी आदत न थी। वह हंसमुख, विनयशील, सरल-हृदय, विनोदप्रिय रमणी थी, जिसके हृदय में लीला और क्रीड़ा के लिए कहीं जगह न थी।

किंतु उसका यह सरल सीधा व्यवहार ज्ञानशंकर की मलिन दृष्टि में परिवर्तित हो जाता था। उज्ज्वलता में वैचित्र्य और समता में विषमता दीख पड़ती थी। उन्हें गायत्री संकेत द्वारा कहती हुई मालूम होती, 'आओ, इस उजड़े हुए हृदय को आबाद कर दो। आओ, इस अंधकारमय कुटीर को आलोकित करो।' इस प्रेमाह्वान का अनादर करना उनके लिए असाध्य था। परंतु स्वयं उनके हृदय ने गायत्री को यह निमंत्रण नहीं दिया, कभी अपना प्रेम उस पर अर्पण नहीं

किया–उन्हें बहुधा क्लब में देर हो जाती, ताश की बाजी अधूरी न छोड़ सकते थे। कभी सैर-सपाटे में विलंब हो जाता, किंतु वह स्वयं विकल न होते, यही सोचते कि गायत्री विकल हो रही होगी। अग्नि गायत्री के हृदय में जलती थी, उन्हें केवल उसमें हाथ सेंकना था। उन्हें इस प्रयास में वही उल्लास होता था जो किसी शिकारी को शिकार में, किसी खिलाड़ी को बाजी की जीत में होता है। यह प्रेम न था, वशीकरण की इच्छा थी। इस इच्छा और प्रेम में बड़ा भेद है, इच्छा अपनी ओर खींचती है, प्रेम स्वयं खिंच जाता है। इच्छा में ममत्व है, प्रेम में आत्म-समर्पण। ज्ञानशंकर के हृदयस्थल में यही वशीकरण चेष्टा किलोलें कर रही थी।

गायत्री भोली सही, अज्ञान सही, पर शनैः-शनैः उसे ज्ञानशंकर से लगाव होता जाता था। यदि कोई भूलकर भी विष खा ले तो उसका असर क्या कुछ कम होगा? ज्ञानशंकर को बाहर से आने में देर होती तो उसे बेचैनी होने लगती। किसी काम में जी नहीं लगता, वह अटारी पर चढ़कर उनकी बाट जोहती। वह पहले विद्यावती के सामने हंस-हंसकर उनसे बातें करती थी, कभी उनसे अकेले भेंट हो जाती तो उसे कोई बात ही न सूझती थी। अब वह अवस्था न थी। उसकी बातें अब एकांत की खोज में रहतीं। विद्या की उपस्थिति उन दोनों को मौन बना देती थी। अब वह केवल वैज्ञानिक तथा धार्मिक चर्चाओं पर आबद्ध न होते। बहुधा स्त्री-पुरुष के पारस्परिक संबंध की मीमांसा किया करते और कभी-कभी ऐसे मार्मिक प्रसंगों का सामना करना पड़ता कि गायत्री लज्जा से सिर झुका लेती।

एक दिन संध्या समय गायत्री बगीचे में आराम कुर्सी पर लेटी हुई एक पत्र पढ़ रही थी, जो अभी डाक से आया था। यद्यपि लू का चलना बंद हो गया था, पर गर्मी के मारे बुरा हाल था। प्रत्येक वस्तु से ज्वाला-सी निकल रही थी। वह पत्र को उठाती थी और फिर गर्मी से विकल होकर रख देती थी। अंत में उसने एक परिचारिका को पंखा झलने के लिए बुलाया और अब पत्र को पढ़ने लगी। उसके मुख्तारआम ने लिखा था, सरकार यहां जल्द आएं। यहां कई ऐसे मामले आ पड़े हैं जो आपकी अनुमति के बिना तय नहीं हो सकते। हरिहरपुर के इलाके में बिल्कुल वर्षा नहीं हुई; यह आपको ज्ञात ही है। अब वहां के असामियों के लगान वसूल करना अत्यंत कठिन हो रहा है। वह सोलहों आने छूट की प्रार्थना करते हैं। मैंने जिलाधीश से इस विषय में अनुरोध किया, पर उसका फल कुछ न हुआ। वह अवश्य छूट कर देंगे। यदि आप आकर स्वयं जिलाधीश से मिलें तो शायद सफलता हो। यदि श्रीमान् राय साहब यहां पधारने का कष्ट उठाएं तो निश्चय ही उनका प्रभाव कठिन को सुगम कर दे। असामियों के इस आंदोलन से हलचल मची हुई है। शंका है कि छूट न हुई, तो उत्पात होने लगेगा। इसलिए आपका जिलाधीश से साक्षात करना परमावश्यक है।

गायत्री सोचने लगी, यह जमींदारी क्या है, जी का जंजाल है। महीने-आध-महीने के लिए भी कहीं जाऊं तो हाय-हाय-सी होने लगती है। असामियों में यह धुन न जाने कैसे समा गई कि जहां देखो वहीं उपद्रव करने पर तत्पर दिखाई देते हैं। सरकार को इन पर कड़ा हाथ रखना चाहिए। जरा भी शह मिली और यह काबू से बाहर हुए। अगर इस इलाके में असामियों की छूट हो गई तो मेरा बीस-पच्चीस हजार का नुकसान हो जाएगा। इसी तरह और इलाके में भी उपद्रव के डर से छूट हो जाय तो मैं कहीं की न रहूं। कुछ वसूल न होगा तो मेरा खर्च कैसे चलेगा? माना कि मुझे उस इलाके की मालगुजारी न देनी पड़ेगी, पर और भी तो कितने ही रुपये पृथक्-पृथक् नामों से देने पड़ते हैं, वह तो देने ही पड़ेंगे। वह किसके घर से आएंगे?

छूट भी हो जाए, मगर लूंगी असामियों से ही।

पर मेरा जी वहां कैसे लगेगा ! यह बातें वहां कहां सुनने को मिलेंगी, अकेले पड़े-पड़े जी उकताया करेगा। जब तक ज्ञानशंकर यहां रहेंगे तब तक तो मैं गोरखपुर जाती नहीं। हां, जब वह चले जाएंगे तो मजबूरी है। नुकसान ही न होगा? बला से। जीवन के दिन आनंद से तो कट रहे हैं; धर्म और ज्ञान की चर्चा सुनने में आती है। कल बाबू साहब मुझसे चिढ़ गए होंगे, लेकिन मेरा मन तो अब भी स्वीकार नहीं करता कि विवाह केवल एक शारीरिक संबंध और सामाजिक व्यवस्था है। वह स्वयं कहते हैं कि मानव शरीर का कई सालों में संपूर्णत: रूपांतर हो जाता है। शायद आठ वर्ष कहते थे। यदि विवाह केवल दैहिक संबंध हो तो इस नियमित समय के बाद उसका अस्तित्व ही नहीं रहता। इसका तो यह आशय है कि आठ वर्षों के बाद पति और पत्नी इस धर्म-बंधन से मुक्त हो जाते हैं, एक का दूसरे पर कोई अधिकार नहीं रहता। आज फिर यही प्रश्न उठाऊंगी। लो, आप ही आ गए। बोली—कहिए कहीं जाने को तैयार हैं क्या?

ज्ञान—आज यहां थिएट्रिकल कंपनी का तमाशा होने वाला है। आपसे पूछने आया हूं कि आपके लिए भी जगह रिजर्व करता आऊं? आज बड़ी भीड़ होगी।

गायत्री—विद्या से पूछो, वह जाएगी?

ज्ञान—वह तो कहती है कि माया को साथ लेकर जाने में तकलीफ होगी। मैंने भी आग्रह नहीं किया।

गायत्री—तो अकेले जाने पर मुझे भी कुछ आनंद न आएगा।

ज्ञान—आप न जाएंगी तो मैं भी न जाऊंगा।

गायत्री—तब तो मैं कदापि नहीं जाऊंगी। आपकी बातों में मुझे थिएटर से अधिक आनंद मिलता है। आइए, बैठिए। कल की बात अधूरी रह गई थी। आप कहते थे, स्त्रियों में आकर्षण-शक्ति पुरुषों से अधिक होती है, पर आपने इसका कोई कारण नहीं बताया था।

ज्ञान—इसका कारण तो स्पष्ट ही है। स्त्रियों का जीवन-क्षेत्र परिमित होता है और पुरुषों का विस्तृत। इसीलिए स्त्रियों की सारी शक्तियां केंद्रस्थ हो जाती हैं और पुरुषों की विच्छिन्न।

गायत्री—लेकिन ऐसा होता तो पुरुषों को स्त्रियों के अधीन रहना चाहिए था। वह उन पर शासन क्यों कर सकते?

ज्ञान—तो क्या आप समझती हैं कि मर्द स्त्रियों पर शासन करते हैं? ऐसी बात तो नहीं है। वास्तव में मर्द ही स्त्रियों के अधीन होते हैं। स्त्रियां उनके जीवन की विधाता होती हैं। देह पर उनका शासन चाहे न हो, हृदय पर उन्हीं का साम्राज्य होता है।

गायत्री—तो फिर मर्द इतने निष्ठुर क्यों हो जाते हैं?

ज्ञान—मर्दों पर निष्ठुरता का दोष लगाना न्याय-विरुद्ध है। वह उस समय तक सिर नहीं उठा सकते, जब तक या तो स्त्री स्वयं उन्हें मुक्त न कर दे, अथवा किसी दूसरी स्त्री की प्रबल विद्युत-शक्ति उन पर प्रभाव न डाले।

गायत्री—(हंसकर) आपने तो सारा दोष स्त्रियों के ही सिर रख दिया।

ज्ञानशंकर ने भावुकता से उत्तर दिया—अन्याय तो वह करती हैं, फरियाद कौन सुनेगा?

इतने में विद्यावती मायाशंकर को गोद में लिए आकर खड़ी हो गई। माया चार वर्ष का हो चुका था, पर अभी तक कोई और बच्चा न होने के कारण वह शैशवावस्था के आंनद भोगता

था।

गायत्री ने पूछा—क्यों विद्या, आज थिएटर देखने चलती हो?

विद्या—कोई अनुरोध करेगा तो चली चलूंगी, नहीं तो मेरा जी नहीं चाहता।

ज्ञान—तुम्हारी इच्छा हो तो चलो, मैं अनुरोध नहीं करता।

विद्या—तो फिर मैं भी नहीं जाती।

गायत्री—मैं अनुरोध करती हूं, तुम्हें चलना पड़ेगा। बाबूजी, आप जगहें रिजर्व करा लीजिए।

नौ बजे रात को तीनों एक फिटन पर बैठकर थिएटर को चले। माया भी साथ था। फिटन कुछ दूर चली आई तो वह पानी-पानी चिल्लाने लगा। ज्ञानशंकर ने विद्या से कहा—लड़के को लेकर चली थीं तो पानी की एक सुराही क्यों न रख ली?

विद्या—क्या जानती थी कि घर से निकलते ही इसे प्यास लग जायगी?

ज्ञान—पानदान रखना तो न भूल गईं?

विद्या—इसी से तो मैं कहती थी कि मैं न चलूंगी।

गायत्री—थिएटर के हाते में बर्फ-पानी सब कुछ मिल जायगा।

माया यह सुनकर और भी अधीर हो गया। रो-रोकर दुनिया सिर पर उठा ली। ज्ञानशंकर ने उसे बढ़ावा दिया। वह और भी गला फाड़-फाड़कर बिलबिलाने लगा।

ज्ञान—जब अभी से यह हाल है, तो दो बजे रात तक न जाने क्या होगा?

गायत्री—कौन जागता रहेगा? जाते-ही-जाते सो जाएगा।

ज्ञान—गोद में आराम से तो सो सकेगा नहीं, रह-रहकर चौंकेगा और रोएगा। सारी सभा घबरा जाएगी। लोग कहेंगे, यह पुछल्ला अच्छा साथ ले आए।

विद्या—कोचवान से कह क्यों नहीं देते कि गाड़ी लौटा दे, मैं न जाऊंगी।

ज्ञान—यह सब बातें पहले ही सोच लेनी चाहिए थीं न? गाड़ी यहां से लौटेगी तो आते-आते दस बज जाएंगे। आधा तमाशा ही गायब हो जाएगा। वहां पहुंच जाएं तो जी चाहे मजे से तमाशा देखना, माया को इसी गाड़ी में पड़े रहने देना या उचित समझना तो लौट आना।

गायत्री—वहां तक जाकर तो लौटना अच्छा नहीं लगता।

ज्ञान—मैंने तो सब कुछ इन्हीं की इच्छा पर छोड़ दिया।

गायत्री—क्या वहां कोई आराम कुर्सी न मिल जाएगी?

विद्या—यह सब झंझट करने की जरूरत ही क्या है? मैं लौट आऊंगी। मैं तमाशा देखने को उत्सुक न थी, तुम्हारी खातिर से चली आई थी।

थिएटर का पंडाल आ गया। खूब जमाव था। ज्ञानशंकर उतर पड़े। गायत्री ने विद्या से उतरने को कहा, पर वह बहुत आग्रह करने पर भी न उठी। कोचवान को पानी लाने को भेजा। इतने में ज्ञानशंकर लपके हुए आए और बोले—भाभी, जल्दी कीजिए, घंटी हो गई, तमाशा आरंभ होने वाला है। जब तक यह माया को पानी पिलाती हैं, आप चलकर बैठ जाइए, नहीं तो शायद जगह ही न मिले।

यह कहकर वह गायत्री को लिए हुए पंडाल में घुस गए। पहले दरजे के मरदाने और जनाने भागों के बीच में केवल एक चिक का परदा था। चिक के बाहर ज्ञानशंकर बैठे और चिक के पास ही भीतर गायत्री को बैठाया। वही दोनों जगहें उन्होंने रिजर्व (आरक्षित) करा

रखी थीं।

गायत्री जल्दी से गाड़ी से उतरकर ज्ञानशंकर के साथ चली आई थी। विद्या अभी आएगी, यह उसे निश्चय था। लेकिन जब उसे बैठे हुए कई मिनट हो गए; विद्या न दिखाई दी और अंत में ज्ञानशंकर ने आकर कहा, वह चली गई, तो उसे बड़ा क्षोभ हुआ। समझ गई कि वह रूठकर चली गई। अपने मन में मुझे ओछी, निष्ठुर समझ रही होगी। मुझे भी उसी के साथ लौट जाना चाहिए था। उसके साथ तमाशा देखने में हर्ज नहीं था। लोग यह अनुमान करते कि मैं उसकी खातिर से आई हूं, किंतु उसके लौट जाने पर मेरा यहां रहना सर्वथा अनुचित है। घर की लौंडियां और महरियां तक हंसेंगी और उनका हंसना यथार्थ है, दादाजी न जाने मन में क्या सोचेंगे। मेरे लिए अब तीर्थ-यात्रा, गंगा-स्नान, पूजा-पाठ, दान और व्रत हैं। यह विहार और विलास सोहागिन के लिए है। मुझे अवश्य लौट जाना चाहिए। लेकिन बाबूजी से इतना जल्द लौटने को कहूंगी तो वह मुझ पर अवश्य झुंझलाएंगे, पछताएंगे कि नाहक इसके साथ आया। बुरी फंसी। कुछ देर यहां बैठे बिना अब किसी तरह छुटकारा न मिलेगा।

यह निश्चय करके वह बैठी। लेकिन जब अपने आगे-पीछे दृष्टि पड़ी तो उसे यहां एक पल भर भी बैठना दुस्तर जान पड़ा। समस्त जनाना भाग वेश्याओं से भरा हुआ था। एक-से-एक सुंदर, एक-से-एक रंगीन। चारों ओर से खस और हिना की लपटें आ रही थीं। उनका आभरण और शृंगार, उनका ठाठ-बाट, उनके हाव-भाव, उनकी मंद मुस्कान, सब गायत्री को घृणोत्पादक प्रतीत होते थे। उसे भी अपने रूप-लावण्य पर घमंड था, पर इस सौंदर्य-सरोवर में वह एक जल-कण के समान विलीन हो गई थी। अपनी तुच्छता का ज्ञान उसे और भी व्यथित करने लगा। यह कुलटाएं कितनी ढीठ, कितनी निर्लज्ज हैं। इसकी शिकायत नहीं कि इन्होंने क्यों ऐसे पापमय, ऐसे नारकीय पथ पर पग रखा। यह अपने पूर्व कर्मों का फल है। दुरवस्था जो न कराए थोड़ा है, लेकिन यह अभिमान क्यों? ये इठलाती किस बिरते पर हैं? मालूम होता है, सबकी सब नवाबजादियां हों। इन्हें तो शर्म से सिर झुकाए रहना चाहिए था। इनके रोम-रोम से दीनता और लज्जा टपकनी चाहिए थी। पर यह ऐसी प्रसन्न हैं मानो संसार में इनसे सुखी और कोई है ही नहीं। पाप एक करुणाजनक वस्तु है, मानवीय विवशता का द्योतक है। उसे देखकर दया आती है। लेकिन पाप के साथ निर्लज्जता और मदांधता एक पैशाचिक लीला है, दया और धर्म की सीमा से बाहर।

गायत्री अब पल भर भी न ठहर सकी। ज्ञानशंकर से बोली—मैं बाहर जाती हूं। यहां नहीं बैठा जाता, मुझे घर पहुंचा दीजिए।

उसे संशय था कि ज्ञानशंकर वहां ठहरने के लिए आग्रह करेंगे। चलेंगे भी तो क्रुद्ध होकर। पर यह बात न थी। ज्ञानशंकर सहर्ष उठ खड़े हुए। बाहर आकर एक बग्घी किराए पर की और घर चले।

गायत्री ने इतना जल्द थिएटर से लौट आने के लिए क्षमा मांगी। फिर वेश्याओं की बेशरमी की चर्चा की, पर ज्ञानशंकर ने कुछ उत्तर न दिया। उन्होंने आज मन में एक विषम कल्पना की थी और इस समय उसे कार्यरूप में लाने के लिए अपनी संपूर्ण शक्तियों को इस प्रकार एकाग्र कर रहे थे, मानो किसी नदी में कूद रहे हों। उनका हृदयाकाश मनोविकार की काली घटाओं से आच्छादित हो रहा था, जो इधर महीनों से जमा हो रही थी। वह ऐसे ही अवसर को ताक में थे। उन्होंने अपना कार्यक्रम स्थिर कर लिया। लक्षणों से उन्हें गायत्री के सहयोग

का भी निश्चय होता जाता था। उसका थिएटर देखने पर राजी हो जाना, विद्या के साथ घर न लौटना, उनके साथ अकेले बग्घी में बैठना प्रत्यक्ष प्रमाण थे। कदाचित् उन्हें अवसर देने के लिए ही वह इतनी जल्द लौटी थी, क्योंकि घर की फिटन पर लौटने से काम में विघ्न पड़ने का भय था। ऐसी अनुकूल दशा में आगा-पीछा करना, उनके विचार में वह कापुरुषता थी, जो अभीष्ट सिद्धि की घातक है। उन्होंने किताबों में पढ़ा था कि पुरुषोचित उद्दंडता वशीकरण का सिद्धमंत्र है। तत्क्षण उनकी विकृत चेष्टा प्रज्वलित हो गई, आंखों से ज्वाला निकलने लगी, रक्त खौलने लगा, सांस वेग से चलने लगी। उन्होंने अपने घुटने से गायत्री की जांघ में एक ठोंका दिया। गायत्री ने तुरंत पैर समेट लिए, उसे कुचेष्टा की लेश-मात्र भी शंका न हुई। किंतु एक क्षण के बाद ज्ञानशंकर ने अपने जलते हुए हाथ से उसकी कलाई पकड़कर धीरे-से दबा दी। गायत्री ने चौंककर हाथ खींच लिया, मानो किसी विषधर ने काट खाया हो, और भयभीत नेत्रों से ज्ञानशंकर को देखा। सड़क पर बिजली की लालटेनें जल रही थीं। उनके प्रकाश में ज्ञानशंकर के चेहरे पर एक संतप्त उग्रता, एक प्रदीप्त दुस्साहस दिखाई दिया। उसका चित्त अस्थिर हो गया, आंखों में अंधेरा छा गया, सारी देह पसीने से तर हो गई। उसने कातर नेत्रों से बाहर की ओर झांका। समझ न पड़ा कि कहां हूं, कब घर पहुंचूंगी। निर्बल क्रोध की एक लहर नसों में दौड़ गई और आंखों से बह निकली। उसे फिर ज्ञानशंकर की ओर ताकने का साहस न हुआ। उनसे कुछ कह न सकी। उसका क्रोध भी शांत हो गया। वह संज्ञाशून्य हो गई। सारे मनोवेग शिथिल पड़ गए। केवल आत्मवेदना का ज्ञान आरे के समान हृदय को चीर रहा था। उसकी वह वस्तु लुट गई जो उसे जान से भी अधिक प्रिय थी, जो उसके मन की रक्षक, उसके आत्म-गौरव की पोषक, धैर्य का आधार और उसके जीवन का अवलंब थी। उसका जी डूबा जाता था। सहसा उसे जान पड़ा कि अब मैं किसी को मुंह दिखाने के योग्य नहीं रही। अब तक उसका ध्यान अपने अपमान के इस बाह्य स्वरूप की ओर नहीं गया था। अब उसे ज्ञात हुआ कि यह केवल मेरा आत्मिक पतन ही नहीं है, इसने केवल मेरी आत्मा को ही कलुषित नहीं किया, वरन् मेरी बाह्य प्रतिष्ठा का भी सर्वनाश कर दिया। इस अवगति ने उसके डूबते हुए हृदय को थाम लिया। गोली खाकर दम तोड़ता हुआ पक्षी भी छुरी को देखकर तड़प जाता है।

गायत्री जरा संभल गई; उसने ज्ञानशंकर की ओर सजल आंखों से देखा। कहना चाहती थी, जो कुछ तुमने किया उसका बदला तुम्हें परमात्मा देंगे। लेकिन यदि सौजन्यता का अल्पांश भी रह गया है तो मेरी लाज रखना, सतीत्व का नाश तो हो गया पर लोक सम्मान की रक्षा करना....किंतु शब्द न निकले, अश्रु-प्रवाह में विलीन हो गए।

ज्ञानशंकर को भी मालूम हो गया कि मैंने धोखा खाया। मेरी उद्विग्नता ने सारा काम चौपट कर दिया। अभी तक उन्हें अपनी अधोगति पर लज्जा न आई थी। पर गायत्री की सिसकियां सुनीं तो हृदय पर चोट-सी लगी। अंतरात्मा जागृत हो गई, शर्म से गर्दन झुक गई। कुवासना लुप्त हो गई। अपने पाप की अधमता का ज्ञान हुआ। ग्लानि और अनुताप के भी शब्द मुंह तक आए, पर व्यक्त न हो सके। गायत्री की ओर देखने का भी हौसला न पड़ा। अपनी मलिनता और दुष्टता अपनी ही दृष्टि में मालूम होने लगी। हा ! मैं कैसा दुरात्मा हूं। मेरे विवेक, ज्ञान और सद्विचार ने आत्महिंसा के सामने सिर झुका दिया। मेरी उच्च शिक्षा और उच्चादर्श का यही परिणाम होना था ! अपने नैतिक पतन के ज्ञान ने आत्म-वेदना का संचार कर दिया। उनकी

आंखों से आंसू की धारा प्रवाहित हो गई।

दोनों प्राणी खिड़कियों से सिर निकाले रोते रहे, यहां तक कि गाड़ी घर पहुंच गई।

ग्यारह

आंधी का पहला वेग जब शांत हो जाता है, तब वायु के प्रचंड झोंके, बिजली की चमक और कड़क भी बंद हो जाती है और मूसलाधार वर्षा होने लगती है। गायत्री के चित्त की शांति भी द्रवीभूत हो गई थी। हृदय में रुधिर की जगह आंसुओं का संचार हो रहा था।

आधी रात बीत गई, पर उसके आंसू न थमे। उसका आत्मगौरव आज नष्ट हो गया। पति-वियोग के बाद उसकी सुदृढ़ स्मृति ही गायत्री के जीवन-सुख की नींव थी। वही साधु-कल्पना उसकी उपास्य थी। वह इस हृदय-कोष को, जहां यह अमूल्य रत्न संचित था, कुटिल आकांक्षाओं की दृष्टि से बचाती रहती थी। इसमें संदेह नहीं कि वह वस्त्राभूषणों से प्रेम रखती थी, उत्तम भोजन करती थी और सदैव प्रसन्नचित्त रहती थी, किंतु इसका कारण उसकी विलासप्रियता नहीं, वरन् अपने सतीत्व का अभिमान था। उसे संयम और आचार का स्वांग भरने से घृणा थी। वह थिएटर भी देखती थी, आनंदोत्सवों में भी शरीक होती थी। आभरण, सुरुचि और मनोरंजन की सामग्रियों का त्याग करने की वह आवश्यकता न समझती थी, क्योंकि उसे अपनी चित्त-स्थिति पर विश्वास था। वह एकाग्र होकर अपने इलाके का प्रबंध करती थी।

जब उसके आंसू थमे तो वह इस दुर्घटना के कारण और उत्पत्ति पर विचार करने लगी, और शनैः-शनैः उसे विदित होने लगा कि इस विषय में मैं सर्वथा निरपराध नहीं हूं। ज्ञानशंकर कदापि यह दुस्साहस न कर सकते, यदि उन्हें मेरी दुर्बलता पर विश्वास न होता। उन्हें यह विश्वास क्योंकर हुआ? मैं इन दिनों उनसे बहुत स्नेह करने लगी थी। यह अनुचित था। कदाचित् इसी संपर्क ने उनके मन में यह भ्रम अंकुरित किया। तब उसे वह बातें याद आतीं जो उन संगतों में हुआ करती थीं। उनका झुकाव उन्हीं विषयों की ओर होता था जिन्हें एकांत और संकोच की जरूरत है। उस समय वह बातें सर्वथा दोषरहित जान पड़ती थीं, पर अब उनके विचार से ही गायत्री को लज्जा आती थी। उसे अब ज्ञात हुआ कि मैं अज्ञान दशा में धीरे-धीरे ढाल की ओर चली जाती थी, और अगर यह गहरी खाई सहसा न आ पड़ती तो मुझे अपने पतन का अनुभव ही न होता। उसे आज मालूम हुआ कि मेरा पति-प्रेम-बंधन जर्जर हो गया, नहीं तो मैं इन वार्ताओं के आकर्षण से सुरक्षित रहती। वह अधीर होकर उठी, और अपने पति के चित्र के सम्मुख जाकर खड़ी हो गई। इस चित्र को वह सदैव अपने कमरे में लटकाए रहती थी। उसने ग्लानिमय नेत्रों से चित्र को देखा, और तब कांपते हाथों से उतारकर उसे छाती से लगाए देर तक खड़ी रोती रही। इस आत्मिक आलिंगन से उसे एक विचित्र संतोष प्राप्त हुआ। ऐसा मालूम हुआ मानो कोई तड़पते हुए हृदय पर मरहम रख रहा है और कितने कोमल हाथों से! वह उस चित्र को अलग न कर सकी, उसे छाती से लगाए हुए बिछावन पर लेट गई। उसका हृदय इस समय पति-प्रेम से आलोकित हो रहा था। वह एक समाधि की अवस्था में थी। उसे

ऐसा प्रतीत होता था कि यद्यपि पतिदेव यहां अदृश्य हैं, तथापि उनकी आत्मा अवश्य यहां भ्रमण कर रही है। शनैः-शनैः उसकी कल्पनाएं सचित्र हो गईं। वह भूल गई कि मेरे स्वामी को मरे तीन वर्ष व्यतीत हो गए। वह अकुलाकर उठ बैठी। उसे ऐसा जान पड़ा कि उनके वक्ष से रक्त स्रावित हो रहा है और कह रहे हैं, यह तुम्हारी कुटिलता का घाव है। तुम्हारी पवित्रता और सत्यता मेरे लिए रक्षास्त्र थी। वह ढाल आज टूट गई और बेवफाई की कटार हृदय में चुभ गई। मुझे तुम्हारे सतीत्व पर अभिमान था। वह अभिमान आज चूर-चूर हो गया। शोक ! मेरी हत्या उन्हीं हाथों से हुई जो कभी मेरे गले में पड़े थे। आज तुमसे नाता टूटता है, भूल जाओ कि मैं कभी तुम्हारा पति था। गायत्री स्वप्न-दशा में उसी कल्पित व्यक्ति के सम्मुख हाथ फैलाए हुए विनय कर रही थी। शंका से उसके हाथ-पांव फूल गए और वह चीख मारकर भूमि पर गिर पड़ी।

वह कई मिनट तक बेसुध पड़ी रही। जब होश आया तो देखा कि विद्या, लौंडियां, महरियां सब जमा हैं और डॉक्टर को बुलाने के लिए आदमी दौड़ाया जा रहा है।

उसे आंखें खोलते देखकर विद्या झपटकर उसके गले से लिपट गई और बोली–बहन, तुम्हें क्या हो गया था? और तो कभी ऐसा न होता था?

गायत्री–कुछ नहीं, एक बुरा स्वप्न देख रही थी। लाओ, थोड़ा-सा पानी पीऊंगी, गला सूख रहा है।

विद्या–थिएटर में कोई भयावना दृश्य देखा होगा।

गायत्री–नहीं, मैं भी तुम्हारे आने के थोड़ी देर पीछे चली आई थी। जी नहीं लगा। अभी थोड़ी ही रात गई है क्या? बाबूजी ध्रुपद अलाप रहे हैं।

विद्या–बारह तो कब के बज चुके, पर उन्हें किसी के मरने-जीने की क्या चिंता? उन्हें तो अपने राग-रंग से मतलब है। महरी ने जाकर तुम्हारा हाल कहा तो एक आदमी को डॉक्टर के यहां दौड़ा दिया और फिर गाने लगे।

गायत्री–यह तो उनकी पुरानी आदत है, कोई नई बात थोड़े ही है। रम्मन बाबू का यहां बुरा हाल हो रहा था, और वह डिनर में गए हुए थे। जब दूसरे दिन मैंने बातों-बातों में इसकी चर्चा की तो बोले, मैं वचन दे चुका था और जाना मेरा कर्त्तव्य था। मैं अपने व्यक्तिगत विषयों को सार्वजनिक जीवन से बिलकुल पृथक रखना चाहता हूं।

विद्या–उस साल जब अकाल पड़ा और प्लेग भी फैला, तो हम लोग इलाके पर गए। तुम गोरखपुर थीं। उन दिनों बाबूजी की निर्दयता देखकर मेरे रोएं खड़े हो जाते थे। असामियों से रुपये वसूल न होते तो वह चिढ़कर असामियों पर गुस्सा उतारते। सौ-सौ मनुष्यों को एक पांति में खड़ा करके हंटर से मारने लगते। बेचारे तड़प-तड़पकर रह जाते, पर उन्हें तनिक भी दया न आती थी। इसी मार-पीट ने इन्हें निर्दय बना दिया है। जीवन-मरण तो परमात्मा के हाथ है, लेकिन मैं इतना अवश्य कहूंगी कि भैया की अकाल मृत्यु इन्हीं दीनों की हाय का फल है।

गायत्री–तुम बाबूजी पर अन्याय करती हो। उनका कोई कसूर नहीं। आखिर रुपये कैसे वसूल होते? निर्दयता अच्छी बात नहीं, किंतु जब इसके बिना काम ही न चले तो क्या किया जाए? तुम्हारे जीजा कैसे सज्जन थे, द्वार पर से किसी भिक्षुक को निराश न लौटने देते। सत्कार्यों में हजारों रुपये खर्च कर डालते थे। कोई ऐसा दिन न जाता कि सौ-पचास साधुओं को भोजन

न कराते हों। हजारों रुपये तो चंदे में दे डालते थे। लेकिन उन्हें भी असामियों पर सख्ती करनी पड़ती थी। मैंने स्वयं उन्हें असामियों की मुश्कें कस कर पिटवाते देखा है। जब कोई और उपाय न सूझता तो उनके घरों में आग लगवा देते थे और अब मुझे भी वही करना पड़ता है। उस समय मैं समझती थी कि यह व्यर्थ इतना जुल्म करते हैं। उन्हें समझाया करती थी, पर जब अपने माथे पड़ गई तो अनुभव हुआ कि यह नीच बिना मार खाए रुपये नहीं देते। घर में रुपये रखे रहते हैं; पर जब तक दो-चार लात-घूंसे न खा लें, या गालियां न सुन लें, देने का नाम नहीं लेते। यह उनकी आदत है।

विद्या—मैं यह न मानूंगी। किसी को मार खाने की आदत नहीं हुआ करती।

गायत्री—लेकिन किसी को मारने की भी आदत नहीं होती। यह संबंध ही ऐसा है कि एक ओर तो प्रजा में भय, अविश्वास और आत्महीनता के भावों को पुष्ट करता है और दूसरी ओर जमींदारों को अभिमानी, निर्दय और निरंकुश बना देता है।

विद्या ने इसका कुछ जवाब न दिया। दोनों बहनें एक ही पलंग पर लेटीं। गायत्री के मन में कई बार इच्छा हुई कि आज की घटना को विद्या से बयान कर दूं। उसके हृदय पर एक बोझ-सा रखा हुआ था। इसे वह हल्का करना चाहती थी। ज्ञानशंकर को विद्या की दृष्टि में गिराना भी अभीष्ट था। यद्यपि उसका स्वयं अपमान होता था, लेकिन ज्ञानशंकर को लज्जित और निंदित करने के लिए वह इतना मूल्य देने पर तैयार थी। किंतु बात मुंह तक आकर लौट गई। थोड़ी देर तक दोनों चुपचाप पड़ी रहीं। विद्या की आंखें तो नींद से झपकी जाती थीं और गायत्री को कोई बात न सूझती थी। अकस्मात् उसे एक विचार सूझ पड़ा। उसने विद्या को हिलाकर कहा—क्या सोने लगीं? मेरा जी चाहता है कि कल-परसों तक यहां से चली जाऊं।

विद्या ने कहा—इतना जल्द ! भला जब तक मैं रहूं तब तक तो रहो।

गायत्री—नहीं, अब यहां जी नहीं लगता। वहां का काम-काज भी तो देखना है।

विद्या—लेकिन अभी तक तो तुमने बाबूजी से इसकी चर्चा भी नहीं की।

गायत्री--उनसे क्या कहना है? जाऊं चाहे रहूं, दोनों एक ही हैं।

विद्या—तो फिर मैं भी न रहूंगी, तुम्हारे साथ ही चली जाऊंगी।

गायत्री—तुम कहां जाओगी? अब यही तुम्हारा घर है। तुम्हीं यहां की रानी हो। ज्ञान बाबू से कहो, इलाके का प्रबंध करें। दोनों प्राणी यहीं सुखपूर्वक रहो।

विद्या—समझा तो मैंने भी यही था, लेकिन विधाता की इच्छा कुछ और ही जान पड़ती है। कई दिन से बराबर देख रही हूं कि पंडित परमानन्द नित्य आते हैं। चिन्ताराम भी आते-जाते हैं। ये लोग कोई-न-कोई षड्यंत्र रच रहे हैं। तुम्हारे चले जाने से इन्हें और भी अवसर मिल जाएगा।

गायत्री—तो क्या बाबूजी को फिर विवाह करने की सूझी है क्या?

विद्या—मुझे तो ऐसा ही मालूम होता है।

गायत्री—अगर यह विचार उनके मन में आया है तो वह किसी के रोके न रुकेंगे। मेरा लिहाज वे करते हैं, पर इस विषय में वह शायद ही मेरी राय लें। उन्हें मालूम है कि मैं उन्हें क्या राय दूंगी।

विद्या—तुम रहतीं तो उन्हें कुछ-न-कुछ संकोच अवश्य होता।

गायत्री–मुझे इसकी आशा नहीं। वहां रहूंगी तो कम-से-कम वहां की देख-रेख तो करती रहूंगी, तीन महीने हो गए, लोगों ने न जाने क्या-क्या उपद्रव खड़े किए होंगे। एक दर्जन नातेदार द्वार पर डटे पड़े रहते हैं। एक महाशय नाते में मेरे मामू होते हैं, वे सुबह से शाम तक मछलियों का शिकार किया करते हैं। दूसरे महाशय मेरी फूफी के सुपुत्र हैं, वे मेरे ससुर के समय से ही वहां रहते हैं। उनका काम मुहल्ले भर की स्त्रियों को घूरना और उनसे दिल्लगी करना है। एक तीसरे महाशय मेरी ननद के छोटे देवर हैं, वह रिश्वत के बाजार के दलाल हैं। इस काम से जो समय बचता है वह भंग पीने-पिलाने में लगाते हैं। इन लोगों में बड़ा भारी गुण यह है कि संतोषी हैं। आनंद से भोजन-वस्त्र मिलता जाए इसके सिवा उन्हें कोई चिंता नहीं। हां, जमींदारी का घमंड सबको है, सभी असामियों पर रोब जमाना चाहते हैं, उनका गला दबाने के लिए सब तत्पर रहते हैं। बेचारे किसानों को, जो अपने परिश्रम की रोटियां खाते हैं, इन निठल्लों का अत्याचार केवल इसलिए सहना पड़ता है कि वह मेरे दूर के नातेदार हैं। मुफ्तखोरी ने उन्हें इतना आत्मशून्य बना दिया है कि चाहे जितनी रुखाई से पेश आओ टलने का नाम न लेंगे। अधिक नहीं तो दस परिवार ऐसे होंगे जो मेरी मृत्यु का स्वप्न देखने में जीवन के दिन काट रहे हैं। उनका बस चले तो मुझे विष दे दें। किसी के यहां से कोई सौगात आए, मैं उसे हाथ तक नहीं लगाती। उनका काम बस यही हैं कि बैठे-बैठे उत्पात किया करें, मेरे काम में विघ्न डाला करें। कोई असामियों को फोड़ता है, कोई मेरे नौकर को तोड़ता है, कोई मुझे बदनाम करने पर तुला हुआ है। तुम्हें सुनकर हंसी आएगी, कई महाशय विरासत की आशा में डेवढ़े-दूने सूद पर ऋण लेकर पेट पालते हैं, कुछ नहीं बन पड़ता तो उपवास करते हैं, किंतु विरासत का अभिमान जीविका की कोई आयोजना नहीं करने देता। इन लोगों ने मेरी अनुपस्थिति में न जाने क्या-क्या गुल खिलाए होंगे। अभी मुझे जाने दो। बाबूजी भी जल्द ही पहाड़ पर चले जाएंगे। यदि ऐसी ही कोई जरूरत आ पड़े तो मुझे पत्र लिखना, चली आऊंगी।

दो दिन गायत्री ने किस प्रकार काटे। ज्ञानशंकर से फिर बातचीत की नौबत नहीं आई। तीसरे दिन वह विदा हुई। राय साहब स्टेशन तक पहुंचाने आए। ज्ञानशंकर भी साथ थे। गायत्री गाड़ी में बैठी। राय साहब खिड़की पर झुके हुए आम और खरबूजे, लीचियां और अंगूर ले-लेकर गाड़ी में भरते जाते थे। गायत्री बार-बार कहती थी कि इतने फल क्या होंगे, कौन-सी बड़ी यात्रा है, किंतु राय साहब एक न सुनते थे। यह भी रियासत की एक आन थी। ज्ञानशंकर एक बेंच पर उदास बैठे हुए थे। गायत्री को उन पर दया आ गई। वियोग के समय हम सहृदय हो जाते हैं। चलते-चलते हम किसी पर अपना ऋण चाहे छोड़ जाएं, किंतु ऋण लेकर जाना नहीं चाहते। जब गाड़ी ने सीटी दी, तो ज्ञानशंकर चौंककर बेंच पर से उठे और गायत्री के सम्मुख आकर उसे लज्जित और प्रार्थी नेत्रों से देखा। उनमें आंसू भरे हुए थे। पश्चात्ताप की सजीव मूर्ति थी। गायत्री भी खिड़की पर आई, कुछ कहना चाहती थी, पर गाड़ी चलने लगी।

ज्ञानशंकर की विनय-मूर्ति रास्ते भर उसकी आंखों के सामने फिरती रही।

बारह

गायत्री के जाने के बाद ज्ञानशंकर को भी वहां रहना दूभर हो गया। सौभाग्य उन्हें हवा के घोड़े पर बैठाए ऋद्धि और सिद्धि के स्वर्ग में लिए जाता था, किंतु एक ही ठोकर में चमकते हुए नक्षत्र अदृश्य हो गए। वह प्राण-पोषक शीतल वायु, वह विस्तृत नभ-मंडल और सुखद कामनाएं लुप्त हो गईं, और वह फिर उसी अंधकार में निराश और विडंबित पड़े हुए थे। उन्हें लक्षणों से विदित होता जाता था कि राय साहब विवाह पर तुले हुए हैं और उनका दुर्बल क्रोध दिनों-दिन अदम्य होता जाता था। वह राय साहब की इंद्रिय-लिप्सा पर, क्षुद्रता पर झल्ला-झल्लाकर रह जाते थे। कभी-कभी अपने को समझाते कि मुझे बुरा मानने का कोई अधिकार नहीं, राय साहब अपनी जायदाद के मालिक हैं, उन्हें विवाह करने की पूर्ण स्वतंत्रता है, वह अभी हृष्ट-पुष्ट हैं, उम्र भी ज्यादा नहीं। उन्हें ऐसी क्या पड़ी है कि मेरे लिए इतना त्याग करें। मेरे लिए यह कितनी लज्जा की बात है कि अपने स्वार्थ के लिए उनका बुरा चेतूं। उनके कुल के अंत होने की अमंगल कामना करूं। यह मेरी घोर नीचता है। लेकिन विचारों को इस उद्देश्य से हटाने का प्रयत्न एक प्रतिक्रिया का रूप धारण कर लेता था, जो अपने बहाव में धैर्य और संतोष के बांध को तोड़ डालता था। तब उनका हृदय उस शुभ मुहूर्त्त के लिए विकल हो जाता था, जब यह अतुल संपत्ति अपने हाथों में आ जाएगी, जब वह यहां मेहमान के अस्थायी रूप से नहीं, स्वामी के स्थायी रूप से निवास करेंगे। वह नित इसी कल्पित सुख के भोगने में मग्न रहते थे। प्राय: रात-रात भर जागते रह जाते और आनंद के स्वप्न देखा करते। उन्नति और सुधार के कितने ही प्रस्ताव उनके मस्तिष्क में चक्कर लगाया करते। सैर करने में उनको अब कुछ आनंद न मिलता, अधिकतर अपने कमरे में ही पड़े रहते। यहां तक कि आशा और भय की अवस्था उनके लिए असह्य हो गई। इस दुविधा में पड़े जेठ का महीना भी बीत गया और आषाढ़ आ पहुंचा।

राय साहब को अबकी पुत्र-शोक के कारण पहाड़ पर जाने में विलंब हो गया था। पहला छींटा पड़ते ही उन्होंने सफर की तैयारी शुरू कर दी। ज्ञानशंकर से अब जब्त न हो सका। सोचा, कौन जाने यह नैनीताल में ही किसी नए विचारों की लेडी से विवाह कर लें। यहां कानोंकान किसी को खबर भी न हो। अतएव उन्होंने इस शंका का अंत करने का निश्चय कर लिया।

संध्या हो गई थी। वह मन को दृढ़ किए हुए राय साहब के कमरे में गए, किंतु देखा तो वहां एक और महाशय विद्यमान थे। यह किसी कंपनी का प्रतिनिधि था और राय साहब से उसके हिस्से लेने का अनुरोध कर रहा था। किंतु राय साहब की बातों से ज्ञात होता था कि वह हिस्से लेने को तैयार नहीं हैं। अंत में एजेंट ने पूछा–आखिर आपको इतनी शंका क्यों है? क्या आपका विचार है कि कंपनी की जड़ मजबूत नहीं है?

राय साहब–जिस काम में सेठ जगतराम और मिस्टर मनचूरजी शरीक हों, उसके विषय में यह संदेह नहीं हो सकता।

एजेंट–तो क्या आप समझते हैं कि कंपनी का संचालन उत्तम रीति पर न होगा?

राय साहब–कदापि नहीं।

एजेंट–तो फिर आपको उसका साझीदार बनने में क्या आपत्ति है? मैं आपकी सेवा में कम-से-कम पांच सौ हिस्सों की आशा लेकर आया था। जब आप ऐसे विचारशील सज्जन

व्यापारिक उद्योग से पृथक रहेंगे तो इस अभागे देश की उन्नति सदैव एक मनोहर स्वप्न ही रहेगी।

राय साहब–मैं ऐसी व्यापारिक संस्थाओं को देशोद्धार की कुंजी नहीं समझता।

एजेंट–(आश्चर्य से) क्यों?

राय साहब–इसलिए कि सेठ जगतराम और मिस्टर मनचूरजी का विभव देश का विभव नहीं है। आपकी यह कंपनी धनवानों को और भी धनवान बनाएगी, पर जनता को इससे बहुत लाभ पहुंचने की संभावना नहीं। निस्संदेह आप कई हजार कुलियों को काम में लगा देंगे, पर यह मजदूर अधिकांश किसान ही होंगे और मैं किसानों को कुली बनाने का कट्टर विरोधी हूं। मैं नहीं चाहता कि वे लोभ के वश अपने बाल-बच्चों को छोड़कर कंपनी की छावनियों में जाकर रहें और अपना आचरण भ्रष्ट करें। अपने गांव में उनकी एक विशेष स्थिति होती है। उनमें आत्म-प्रतिष्ठा का भाव जागृत रहता है। बिरादरी का भय उन्हें कुमार्ग से बचाता है। कंपनी की शरण में जाकर वह अपने घर के स्वामी नहीं, दूसरों के गुलाम हो जाते हैं, और बिरादरी के बंधनों से मुक्त होकर नाना प्रकार की बुराइयां करने लगते हैं। कम-से-कम मैं अपने किसानों को इस परीक्षा में नहीं डालना चाहता।

एजेंट–क्षमा कीजिएगा, आपने एक पक्ष का चित्र खींचा है। कृपा करके दूसरे पक्ष का भी अवलोकन कीजिए। हम कुलियों को जैसे वस्त्र, जैसा भोजन, जैसे घर देते हैं वैसे गांव में रहकर उन्हें कभी नसीब नहीं हो सकते। हम उनको दवा-दारू का, उनकी संतानों की शिक्षा का, उन्हें बुढ़ापे में सहारा देने का उचित प्रबंध करते हैं। यहां तक कि हम उनके मनोरंजन और व्यायाम की भी व्यवस्था कर देते हैं। वह चाहें तो टेनिस और फुटबाल खेल सकते हैं, चाहें तो पार्कों में सैर कर सकते हैं। सप्ताह में एक दिन गाने-बजाने के लिए समय से कुछ पहले ही छुट्टी दे दी जाती है। जहां तक मैं समझता हूं कि पार्कों में रहने के बाद कोई कुली फिर खेती करने की परवाह न करेगा।

राय साहब–नहीं, मैं इसे कदापि स्वीकार नहीं कर सकता। किसान कुली बन कर कभी अपने भाग्य-विधाता को धन्यवाद नहीं दे सकता, उसी प्रकार जैसे कोई आदमी व्यापार का स्वतंत्र सुख भोगने के बाद नौकरी की पराधीनता को पसंद नहीं कर सकता। संभव है कि अपनी दीनता उसे कुली बने रहने पर मजबूर करे, पर मुझे विश्वास है कि वह इस दासता से मुक्त होने का अवसर पाते ही तुरंत अपने घर की राह लेगा और फिर उसी टूटे-फूटे झोंपड़े में अपने बाल-बच्चों के साथ रहकर संतोष के साथ कालक्षेप करेगा। आपको इसमें संदेह हो तो आप कृषक-कुलियों से एकांत में पूछकर अपना समाधान कर सकते हैं। मैं अपने अनुभव के आधार पर यह बात कहता हूं कि आप लोग इस विषय में यूरोप वालों का अनुकरण करके हमारे जाती जीवन के सद्‌गुणों का सर्वनाश कर रहे हैं। यूरोप में इंडिस्ट्रियलिज्म (औद्योगिकता) की जो उन्नति हुई उसके विशेष कारण थे। वहां के किसानों की दशा उस समय गुलामों से भी गई-गुजरी थी, वह जमींदार के बंदी होते थे। इस कठिन कारावास के देखते हुए धनपतियों की कैद गनीमत थी। हमारे किसानों की आर्थिक दशा चाहे कितनी ही बुरी क्यों न हो, पर वह किसी के गुलाम नहीं हैं। अगर कोई उन पर अत्याचार करे तो वह अदालतों में उससे मुक्त हो सकते हैं। नीति की दृष्टि में किसान और जमींदार दोनों बराबर हैं।

एजेंट–मैं श्रीमान् से विवाद करने की इच्छा तो नहीं रखता, पर मैं स्वयं छोटा-मोटा

किसान हूं और मुझे किसानों की दशा का यथार्थ ज्ञान है। आप योरोप के किसानों को गुलाम कहते हैं, लेकिन यहां के किसानों की दशा उससे अच्छी नहीं है। नैतिक बंधनों के होते हुए भी जमींदार कृषकों पर नाना प्रकार के अत्याचार करते हैं और कृषकों की जीविका का और कोई द्वार हो तो वह इन आपत्तियों को कभी भी न झेल सकें।

राय साहब–जब नैतिक व्यवस्थाएं विद्यमान हैं तो विदित है कि उनका उपयोग करने के लिए किसानों को केवल उचित शिक्षा की जरूरत है, और शिक्षा का प्रचार दिनों-दिन बढ़ रहा है। मैं मानता हूं कि जमींदार के हाथों किसानों की बड़ी दुर्दशा होती है। मैं स्वयं इस विषय में सर्वथा निर्दोष नहीं हूं, बेगार लेता हूं, डांड-बांध भी लेता हूं, बेदखली या इजाफा का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देता, असामियों पर अपना रोब जमाने के लिए अधिकारियों की खुशामद भी करता हूं। साम, दाम, दंड, भेद सभी से काम लेता हूं, पर इसका कारण क्या है? वही पुरानी प्रथा, किसानों की मूर्खता और नैतिक अज्ञान। शिक्षा का यथेष्ट प्रचार होते ही जमींदारों के हाथ से यह सब मौके निकल जाएंगे। मनुष्य स्वार्थी जीव है और यह असंभव है कि जब तक उसे धींगा-धींगी के मौके मिलते रहें, वह उनसे लाभ न उठाए। आपका यह कथन सत्य है कि किसानों को यह विडंबनाएं इसलिए सहनी पड़ती हैं कि उनके लिए जीविका के और सभी द्वार बंद हैं। निश्चय ही उनके लिए जीवन-निर्वाह के अन्य साधनों का अवतरण होना चाहिए, नहीं तो उनका पारस्परिक द्वेष और संघर्ष उन्हें हमेशा जमींदारों का ग़ुलाम बनाए रखेगा, चाहे कानून उनकी कितनी ही रक्षा और सहायता क्यों न करे। किंतु यह साधन ऐसे होने चाहिए जो उनके आचार-व्यवहार को भ्रष्ट न करें, उन्हें घर से निर्वासित करके दुर्व्यसनों के जाल में न फंसाएं, उनके आत्माभिमान का सर्वनाश न करें ! और यह उसी दशा में हो सकता है जब घरेलू शिल्प का प्रचार किया जाय और वह अपने गांव में कुल और बिरादरी की तीव्र दृष्टि के सम्मुख अपना-अपना काम करते रहें।

एजेंट–आपका अभिप्राय काटेज इंडस्ट्री (गृह उद्योग या कुटीर शिल्प) से है? समाचार-पत्रों में कहीं-कहीं इनकी चर्चा भी हो रही है; किंतु इसका सबसे बड़ा पक्षपाती भी यह दावा नहीं कर सकता कि इसके द्वारा आप विदेशी वस्तुओं का सफलता के साथ अवरोध कर सकते हैं।

राय साहब–इसके लिए हमें विदेशी वस्तुओं पर कर लगाना पड़ेगा। योरोप वाले दूसरे देशों से कच्चा माल ले जाते हैं, जहाज का किराया देते हैं, उन्हें मजदूरों को कड़ी मजूरी देनी पड़ती है, उस पर हिस्सेदारों को नफा भी खूब चाहिए। हमारा घरेलू शिल्प इन समस्त बाधाओं से मुक्त रहेगा और कोई कारण नहीं कि उचित संगठन के साथ यह विदेशीय व्यापार पर विजय न पा सके। वास्तव में हमने कभी इस प्रश्न पर ध्यान ही नहीं दिया। पूंजी वाले लोग इस समस्या पर विचार करते हुए डरते हैं। वे जानते हैं कि घरेलू शिल्प हमारे प्रभुत्व का अंत कर देगा, इसीलिए वे इसका विरोध करते रहते हैं।

ज्ञानशंकर ने इस विवाद में भाग न लिया। राय साहब की युक्तियां अर्थशास्त्र के सिद्धांतों के प्रतिकूल थीं, पर इस समय उन्हें उनका खंडन करने का अवकाश न था। जब एजेंट ने अपनी दाल गलते न देखी तो विदा हो गए। राय साहब ज्ञानशंकर को उत्सुक देखकर समझ गए कि यह कुछ कहना चाहते हैं, पर संकोचवश चुप हैं। बोले, आप कुछ कहना चाहते हैं तो कहिए, मुझे फुर्सत है।

ज्ञानशंकर की जबान न खुल सकी। उन्हें अब ज्ञात हो रहा था कि मैं जो कथन करने

आया हूं, वह सर्वथा असंगत है, सज्जनता के बिलकुल विरुद्ध। राय साहब को कितना दुःख होगा और वह मुझे मन में कितना लोभी और क्षुद्र समझेंगे। बोले, कुछ नहीं, मैं केवल यह पूछने आया था कि आप नैनीताल जाने का कब तक विचार करते हैं?

राय साहब—आप मुझसे उड़ रहे हैं। आपकी आंखें कह रही हैं कि आपके मन में कोई और बात है, साफ कहिए। मैं आपस में बिल्कुल सचाई चाहता हूं।

ज्ञानशंकर बड़े असमंजस में पड़े। अंत में सकुचाते हुए बोले—यही तो मेरी भी इच्छा है, पर यह बात ऐसी भद्दी है कि आपसे कहते हुए लज्जा आती है।

राय साहब—मैं समझ गया। आपके कहने की जरूरत नहीं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि जिन गप्पों को सुनकर आपको यह शंका हुई है वह बिल्कुल निस्सार है। मैं स्पष्टवादी अवश्य हूं, पर अपने मुंह-देखे हितैषियों की अवज्ञा करना मेरी सामर्थ्य से बाहर है। पर जैसा आपसे कह चुका हूं, वह किंवदंतियां सर्वथा असार हैं। यह तो आप जानते हैं कि मैं पिंडे-पानी का कायल नहीं और न यही समझता हूं कि मेरी संतान के बिना संसार सूना हो जाएगा। रहा इंद्रिय-सुखभोग, उसके लिए मेरे पास इतने साधन हैं कि मैं पैरों में लोहे की बेड़ियां डाले बिना ही उसका आनंद उठा सकता हूं। और फिर मैं कभी कामवासना का गुलाम नहीं रहा, नहीं तो इस अवस्था में आप मुझे इतना हृष्ट-पुष्ट न देखते। मुझे लोग कितना ही विलासी समझें पर वास्तव में मैंने युवावस्था से ही संयम का पालन किया है। मैं समझता हूं कि इन बातों से आपकी शंका निवृत्त हो गई होगी। लेकिन बुरा न मानिएगा, उड़ती खबरों को सुनकर इतना व्यस्त हो जाना मेरी दृष्टि में आपका सम्मान नहीं बढ़ाता। मान लीजिए, मैंने विवाह करने का निश्चय ही कर लिया हो तो यह आवश्यक नहीं कि उससे संतान भी हो और हो भी तो पुत्र ही, और पुत्र भी हो तो जीवित रहे। फिर मायाशंकर अभी अबोध बालक है। विधाता ने उसके भाग्य में क्या लिख दिया है, इसे हम या आप नहीं जानते। यह भी मान लीजिए कि वह वयस्क होकर मेरा उत्तराधिकारी भी हो जाय तो यह आवश्यक नहीं कि वह इतना कर्त्तव्यपरायण और सच्चरित्र हो जितना आप चाहते हैं। यदि वह समझदार होता और उसके मन में यह शंकाएं पैदा होतीं तो मैं क्षम्य समझता, लेकिन आप जैसे बुद्धिमान मनुष्य का एक निर्मूल कल्पित संभावना के पीछे अपना दाना-पानी हराम कर लेना बड़े खेद की बात है।

इस कथन के पहले भाग से, ज्ञानशंकर को संतोष न हुआ था, अंतिम भाग को सुनकर निराशा हुई। समझ गए कि यह चर्चा इन्हें अच्छी नहीं लगती और यद्यपि युक्तियों से यह मुझे शांत करना चाहते हैं, पर वास्तव में इन्होंने विवाह करने का निश्चय कर लिया है। इतना ही नहीं, इन्हें यहां मेरा रहना अखर रहा है। मुझे यह अपना आश्रित न समझते तो मुझे कदापि इस तरह आड़े हाथों न लेते। उनका गौरवशील हृदय प्रत्युत्तर देने के लिए विकल हो उठा, पर उन्होंने जब्त किया। इस कड़वी दवा को पान कर लेना ही उचित समझा। मन में कहा, आप मेरे साथ दोरंगी चाल चल रहे हैं। मैं साबित कर दूंगा कि कम-से-कम इस व्यवहार में मैं आपसे हेठा नहीं हूं।

उन्होंने कुछ जवाब न दिया। राय साहब को भी इन बातों के कहने का खेद हुआ। ज्ञानशंकर का मन रखने के लिए इधर-उधर की बातें करने लगे। नैनीताल का भी जिक्र आ गया। उन्होंने अपने साथ चलने को कहा। ज्ञानशंकर राजी हो गए। इसमें दो लाभ थे। एक तो वह राय साहब को नजरबंद कर सकेंगे, दूसरे वह उच्चाधिकारियों पर अपनी योग्यता का सिक्का

बिठा सकेंगे। संभव है, राय साहब की सिफारिश उन्हें किसी ऊंचे पद पर पहुंचा दे। यात्रा की तैयारियां करने लगे।

तेरह

यद्यपि गांव वालों ने गौस खां पर जरा भी आंच न आने दी थी, लेकिन ज्वालासिंह का उनके बर्ताव के विषय में पूछताछ करना उनके शांति-हरण के लिए काफी था। चपरासी, नाजिर, मुंशी सभी चकित हो रहे थे कि इस अक्खड़ लौंडे ने डिप्टी साहब पर न जाने क्या जादू कर दिया कि उनकी काया ही पलट गई। ईंधन, पुआल, हांडी, बर्तन, दूध-दही, मांस-मछली, साग-भाजी सभी चीजें बेगार में लेने को मना करते हैं। तब तो हमारा गुजर हो चुका। ऐसा भत्ता ही कौन बहुत मिलता है। यह लौंडा एक ही पाजी निकला। एक तो हमें फटकारें सुनाईं, उस पर यह और रद्दा जमा गया। चलकर डिप्टी साहब से सब माजरा कह देना चाहिए। आज यह दुर्दशा हुई है, दूसरे गांव में इससे भी बुरा हाल होगा। हम लोग पानी को तरस जाएंगे। अतएव ज्योंही ज्वालासिंह लौटकर आए, सब-के-सब उनके सामने जाकर खड़े हो गए। ईजाद हुसैन को फिर उनका मुखपात्र बनना पड़ा।

ज्वालासिंह ने रुष्ट भाव से देखकर पूछा—कहिए, आप लोग कैसे चले? कुछ कहना चाहते हैं? मीर साहब, आपने इन लोगों को मेरा हुक्म सुना दिया है न?

ईजाद हुसेन—जी हां, यही हुक्म सुनकर तो यह लोग घबराए हुए आपकी खिदमत में हाजिर हुए हैं। कल इस गांव में एक सख्त वारदात हो गई। गांव के लोग चपरासियों से लड़ने पर आमादा हो गए। ये जान बचाकर चले न आए होते तो फौजदारी हो जाती। इन लोगों ने इत्तला करके हुजूर के आराम में खलल डालना मुनासिब नहीं समझा, लेकिन आज की मुमानियत सुनकर इनके होश उड़ गए हैं। पहले ही बेगार आसानी से न मिलती थी, अब जो लोग इस हुक्म की खबर पाएंगे तो और भी शेर हो जाएंगे। कल जो हंगामा हुआ उसका बानी-मबानी वही नौजवान था जो सुबह हुजूर की खिदमत में हाजिर हुआ था। उसकी कुछ तंबीह होनी निहायत जरूरी है।

ज्वालासिंह—उसकी बातों से तो मालूम होता था कि चपरासियों ने ही उसके साथ सख्ती की थी।

एक चपरासी—वह तो कहेगा ही, लेकिन खुदा गवाह है, हम लोग भाग न आए होते तो जान की खैर न थी। ऐसी जिल्लत आज तक कभी न हुई थी। हम लोग चार-चार पैसे के मुलाजिम हैं, पर हाकिमों के इकबाल से बड़ों-बड़ों की कोई हकीकत नहीं समझते।

गौस खां—हुजूर, वह लौंडा इन्तहा दर्जे का शरीर है। उसके मारे हम लोगों का गांव में रहना दुश्वार हो गया है। रोज एक-न-एक तूफान खड़ा किए रहता है।

दूसरा चपरासी—हुजूर हम लोगों की गुलामी में उम्र कटी, लेकिन कभी ऐसी दुर्गति न हुई थी।

ईजाद हुसेन—हुजूर की रिआया-परवरी में कोई शक नहीं। हुक्काम को रहम दिल होना ही चाहिए; लेकिन हक तो यह है कि बेगार बंद हो जाए तो इन टके के आदमियों का किसी

तरह गुजर ही न हो।

ज्वालासिंह—नहीं, मैं उन्हें तकलीफ नहीं देना चाहता। मेरी मंशा सिर्फ यह है कि रिआया पर बेजा सख्ती न हो। मैंने इन लोगों को जो हुक्म दिया है, उसमें इनकी जरूरतों का काफी लिहाज रखा है। मैं यह नहीं समझता कि सदर में यह लोग जिन चीजों के बगैर गुजर कर सकते हैं उनकी देहात में आकर क्यों जरूरत पड़ती है।

चपरासी—हुजूर, हम लोगों को जैसे चाहें रखें, आपके गुलाम हैं, पर इसमें हुजूर की बेरोबी होती है।

गौस खां—जी हां, यह देहाती लोग उसे हाकिम ही नहीं समझते जो इनके साथ नरमी से पेश आए। हुजूर को हिन्दुस्तानी समझकर ही यह लोग ऐसी दिलेरी करते हैं। अंग्रेज हुक्काम आते हैं तो कोई चूं भी नहीं करता। अभी दो हफ्ते होते हैं, पादरी साहब तशरीफ लाए थे और हफ्ते भर रहे, लेकिन सारा गांव हाथ बांधे खड़ा रहता था।

ईजाद हुसेन—आप बिल्कुल दुरुस्त फरमाते हैं। हिन्दुस्तानी हुक्काम को यह लोग हाकिम ही नहीं समझते, जब तक वह इनके साथ सख्ती न करे।

ज्वालासिंह ने अपनी मर्यादा बढ़ाने के लिए ही अंग्रेजी रहन-सहन ग्रहण किया था। वह अपने को किसी अंग्रेज से कम न समझते थे। अंग्रेजों से मिलने जाते तो टोपी हाथ में ले लेते। जूते उतारने के अपमान से बच जाते। रेलगाड़ी में अंग्रेजों के ही साथ बैतते थे। लोग अपनी बोलचाल में उन्हें साहब ही कहा करते थे। हिन्दुस्तानी समझना उन्हें गाली देना था। गौस खां और ईजाद हुसेन की बातें निशाने पर बैठ गईं। अकड़ कर बोले—अच्छा, यह बात है तो मैं भी दिखा देता हूं कि मैं किसी अंग्रेज से कम नहीं हूं। यह लोग भी समझेंगे कि किसी हिन्दुस्तानी हाकिम से काम पड़ा था। अब तक तो मैं यही समझता था कि सारी खता हमीं लोगों की है। अब मालूम हुआ कि यह देहातियों की शरारत है। अहलमद साहब, आप हलके के सब-इंस्पेक्टर को रूबकार लिखिए कि वह फौरन इस मामले की तहकीकात करके अपनी रिपोर्ट पेश करे।

चपरासी—ज्यादा नहीं तो हुजूर, इन लोगों से मुचलका तो जरूर ही ले लिया जाय।

गौस खां—इस लौंडे की गोशमाली जरूरी है।

ज्वालासिंह—जब तक रिपोर्ट न आ जाए मैं कुछ नहीं करना चाहता।

परिणाम यह हुआ कि संध्या समय बाबू दयाशंकर जो फिर बहाल होकर इसी हलके में नियुक्त हुए थे, लखनपुर आ पहुंचे। कई कांस्टेबल भी साथ थे। इन लोगों ने चौपाल में आसन जमाये। गांव के सब आदमी जमा किए गए। मगर बलराज का पता न था। वह और रंगी दोनों नील गायों को भगाने गए थे। दरोगा जी ने बिगड़कर मनोहर से कहा—तेरा बेटा कहां है? सारे फिसाद की जड़ तो वही है, तूने कहीं भगा तो नहीं दिया? उसे जल्द हाजिर कर, नहीं तो वारंट जारी कर दूंगा।

मनोहर ने अभी उत्तर नहीं दिया था कि किसी ने कहा—वह बलराज आ गया। सबकी आंखें उसकी ओर उठीं। दो कांस्टेबलों ने लपककर उसे पकड़ लिया और दूसरे दो कांस्टेबलों ने उसकी मुश्कें कसनी चाहीं। बलराज ने दीन-भाव से मनोहर की ओर देखा। उसकी आंखों में भयंकर संकल्प तिलमिला रहा था।

वह कह रही थीं कि यह अपमान मुझसे नहीं सहा जा सकता। मैं अब जान पर खेलता

हूं। आप क्या कहते हैं? मनोहर ने बेटे की यह दशा देखी तो रक्त खौल उठा। बावला हो गया। कुछ न सूझा कि मैं क्या कर रहा हूं। बाज की तरह टूटकर बलराज के पास पहुंचा और दोनों कांस्टेबलों को धक्का देकर बोला–छोड़ दो, नहीं तो अच्छा न होगा।

इतना कहते-कहते उसकी जबान बंद हो गई और आंखों से आंसू निकल पड़े। सुक्खू चौधरी मन में फूले न समाते थे। उन्हें वह दिन निकट दिखाई दे रहा था, जब मनोहर के दसों बीघे खेत पर उनके हल चलेंगे। दुखरन भगत कांप रहे थे कि मालूम नहीं क्या आफत आएगी। डपटसिंह सोच रहे थे कि भगवान् करे मार-पीट हो जाए तो इन लोगों की खूब कुंदी की जाए और बिसेसर साह थर-थर कांप रहे थे। केवल कादिर खां को मनोहर से सच्ची सहानुभूति थी। मनोहर की उद्दंडता से उसके हृदय पर एक चोट लगी। सोचा, मार-पीट हो गई तो फिर कुछ बनाए न बनेगी। तुरंत जाकर दयाशंकर के कानों में कहा–हुजूर हमारे मालिक हैं। हम लोग आप ही की रिआया हैं। सिपाहियों को मने कर दें, नहीं तो खून हो जाएगा। आप जो हुक्म देंगे उसके लिए मैं हाजिर हूं। दयाशंकर उन आदमियों में न थे जो खोकर भी कुछ नहीं सीखते। उन्हें अपने अभियोग ने एक बड़ी उपकारी शिक्षा दी थी। पहले वह यथासंभव रिश्वत अकेले ही हजम कर लिया करते थे। इससे थाने के अन्य अधिकारी उनसे द्वेष किया करते थे। अब उन्होंने बांटकर खाना सीखा था। इससे सारा थाना उन पर जान देता था। इसके अतिरिक्त अब वह पहले की भांति अश्लील शब्दों का व्यवहार न करते थे। उन्हें अब अनुभव हो रहा था कि सज्जनता केवल नैतिक महत्त्व की वस्तु नहीं है, उसका आर्थिक महत्त्व भी कम नहीं है। सारांश यह है कि अब उनके स्वभाव में अनर्गलता की जगह गंभीरता का समावेश हो गया था। वह इस झमेले में सारे गांव को समेटकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते थे। कांस्टेबलों का अत्याचार इस उद्देश्य में बाधक हो सकता था। अतएव उन्होंने सिपाहियों को शांत किया और बयान लिखने लगे। पहले चपरासियों के बयान हुए। उन्होंने अपना सारा क्रोध बलराज पर उतारा। गौस खां और उनके दोनों शहनों ने भी इसी से मिलता-जुलता बयान दिया। केवल बिन्दा महाराज का बयान कुछ कमजोर था। अब गांव वालों के इजहार की बारी आई। पहले तो इन लोगों ने समझा कि सारे गांव पर आफत आने वाली है, लेकिन विपक्षियों के बयान से विदित हुआ कि सब उद्योग बलराज को फंसाने के लिए किए जा रहे हैं। बलराज पर उसकी सहृदयता के कारण समस्त गांव जान देता था। पारस्परिक स्नेह और सहृदयता भी ग्राम्य जीवन का एक शुभ लक्षण है। उस अवसर पर केवल सच्ची बात कहने से ही बलराज की जान बचती थी। अपनी ओर से कुछ घटाने या बढ़ाने की जरूरत न थी। अतएव लोगों ने साहस से काम लिया और सारी घटना सच कह सुनाई, केवल बलराज के कठोर शब्दों पर पर्दा डाल दिया। विपक्षियों ने उन्हें फोड़ने में कोई बात उठा न रखी, पर कादिर खां की दृढ़ता ने किसी को विचलित न होने दिया।

आठ बजते-बजते तहकीकात समाप्त हो गई। बलराज को हिरासत में लेने के लिए प्रमाण न मिले। गौस खां दांत पीसकर रह गया। दारोगाजी चौपाल से उठकर अंदर के कमरे में जा बैठे। गांव के लोग एक-एक कर सरकने लगे। डपटसिंह ने अकड़कर कहा–गांव में फूट न हो तो कोई कुछ नहीं कर सकता। दोरागाजी कैसी जिरह करते थे कि कोई फूट जाए।

दुखरन–भगवान् चाहेंगे तो अब कुछ न होगा। मेल बड़ी चीज है।

मनोहर–भाई, तुम लोगों ने मेरी आबरू रख ली, नहीं तो कुशल नहीं थी।

डपटसिंह–लश्कर वालों ने समझा था जैसे दूसरे गांव वालों को दबा लेते हैं, वैसे ही इन लोगों को दबा लेंगे।

दुखरन–इस गांव पर महावीर स्वामी का साया है इसे क्या कोई खाकर दबाएगा?

मनोहर–कादिर भैया, जब दोनों कांस्टेबलों ने बालू का हाथ पकड़ा तो मेरे बदन में जैसे आग लग गई। अगर वह छोड़ न देते तो चाहे जान से जाता, पर एक की तो जान ही लेकर छोड़ता।

डपट–अचरज तो यह है कि बलराज से इतना जब्त कैसे हुआ?

बलराज–मेरी तो सिट्टी-पिट्टी भूल गई थी। मालूम होता था हाथों में दम ही नहीं है। हां, जब वह सब दादा से हाथा-पाई करने लगे तब मुझसे जब्त न हो सका।

दुखरन–चलो, भगवान् की दया से सब अच्छा ही हुआ। अब कोई चिंता नहीं।

यह बात करते हुए लोग अपने-अपने घर गए। मनोहर अभी भोजन करके चिलम पी ही रहा था कि बिन्दा महाराज आकर बैठ गए। यह बड़ा सहृदय मनुष्य था। था तो जमींदार का नौकर, पर उसकी सहानुभूति सदैव असामियों के साथ रहती थी। मनोहर उसे देखते ही खाट से उठ बैठा, बिलासी घर में से निकल आई और बलराज जो ऊख की गंडेरियां काट रहा था, हाथ में गड़ासा लिए आकर खड़ा हो गया। आजकल ऊख पेरी जाती थी। पहर रात रहे कोल्हू खड़े हो जाते थे।

मनोहर ने पूछा–कहो महाराज, कैसे चले? चौपाल में क्या हो रहा है?

बिन्दा–तुम्हारा गला रेतने की तैयारियां हो रही हैं। दारोगाजी ने गांव के मुखिया लोगों को बुलाया है और सबसे अपना-अपना बयान बदलने को कहा है। धमका रहे हैं कि बयान न बदलोगे तो सबसे मुचलका ले लेंगे। उस पर सौ रुपये की थैली अलग से मांगते हैं। डर के मारे सबकी नानी मर रही है। बयान बदलने पर तैयार हैं। मैंने सोचा, चलकर तुम्हें खबर तो दे दूं। जमींदार के चाकर हैं तो क्या, पर हैं तो हम और तुम एक।

मनोहर के पांव तले से जमीन निकल गई। बिलासी सन्नाटे में आ गई, बलराज के भी होश उड़ गए। गरीबों ने समझा था, बला टल गई! अपने काम-धंधे में लगे हुए थे। इस समाचार ने आंधी के झोंके की तरह आकर नौका को डांवाडोल कर दिया। किसी के मुंह से आवाज न निकली।

बिन्दा ने फिर कहा–सबों ने कैसा अच्छा बयान दिया था। मैंने समझा था, वह अपनी बात पर अड़े रहेंगे, पर सब कायर निकले। एक ही धमकी में पानी हो गए।

मनोहर–मेरे ऊपर कोई ग्रह दशा आई हुई है और क्या? इस लौंडे के पीछे देखें क्या-क्या दुर्गति होती है।

बिन्दा–रात तो बहुत हो गई है, पर बन पड़े तो लोगों के पास जाओ। अरज-बिनती करो। कौन जाने मान ही जाएं।

बलराज ने तनकर कहा–न ! किसी भकुए के पास जाने का काम नहीं। यही न होगा, मेरी सजा हो जाएगी। ऐसे कायरों से भगवान् बचाएं। मुचलके के नाम से जिनके प्राण सूखे जाते हैं, उनका कोई भरोसा नहीं। यहां मर्द हैं, सजा से नहीं डरते। कोई चोरी नहीं की है, डाका नहीं मारा है, सच्ची बात के पीछे सजा नहीं गला कट जाए तब भी डरने वाले नहीं।

मनोहर–अरे बाबा, चुप भी रह। आया है बड़ा मर्द बन के। जब तेरी उमिर थी तो हम भी आकाश में दिया जलाते थे, पर अब वह कलेजा कहां से लाएं?

बिन्दा—इन लड़कों की बातें ऐसी ही होती हैं। यह क्या जानें, मां-बाप के दिल पर क्या गुजरती है। जाओ, कहो-सुनो, धिक्कारो, आंखें चार होने पर कुछ-न-कुछ मुरौवत आ ही जाती है।

बिलासी—हां, अपनी वाली कर लो। आगे जो भाग में बदा है वह तो होगा ही।

नौ बजे चुके थे। प्रकृति कुहरे के सागर में डूबी हुई थी। घरों के द्वार बंद हो चुके थे। अलाव भी ठंडे हो गए थे। केवल सुक्खू चौधरी के कोल्हाड़े में गुड़ पक रहा था। कई आदमी भट्ठे के सामने आग ताप रहे थे। गांव की गरीब स्त्रियां अपने-अपने घड़े लिए गर्म रस की प्रतीक्षा कर रही थीं। इतने में मनोहर आकर सुक्खू के पास बैठ गया। चौधरी अभी चौपाल से लौटे थे और अपने मेलियों से दारोगाजी की सज्जनता की प्रशंसा कर रहे थे। मनोहर को देखकर बात बदल दी और बोले, आओ मनोहर, बैठो। मैं तो आप ही तुम्हारे पास आने वाला था। कड़ाह की चासनी देखने लगा। इन लोगों को चासनी की परख नहीं है। कल एक पूरा ताव बिगड़ गया। दारोगाजी तो बहुत मुंह फैला रहे हैं। कहते हैं, सबसे मुचलका लेंगे। उस पर सौ की थैली अलग मांगते हैं। हाकिमों के बीच में बोलना जान जोखिम है। जरा-सी सुई का पहाड़ हो गया। मुचलका का नाम सुनते ही सब लोग थरथरा रहे हैं। अपने-अपने बयान बदलने पर तैयार हो रहे हैं।

मनोहर—तब तो बालू के फंसने में कोई कसर ही नहीं रही।

सुक्खू—हां, बयान बदल जाएंगे तो उसका बचना मुश्किल है। इसी मारे मैंने अपना बयान न दिया था। खां साहब बहुत दम-भरोसा देते रहे, पर मैंने कहा, मैं न इधर हूं, न उधर हूं। न आपसे बिगाड़ करूंगा, न गांव से बुरा बनूंगा। इस पर बुरा मान गए। सारा गांव समझता है कि खां साहब से मिला हुआ हूं, पर कोई बता दे कि उनसे मिलकर गांव की क्या बुराई की? हां, उनके पास उठता-बैठता हूं। इतने से ही जब मेरा बहुत-सा काम निकलता है तब व्यवहार क्यों तोड़ूं? मेल से जो काम निकलता है वह बिगाड़ करने से नहीं निकलता। हमारा सिर जमींदार के पैरों तले रहता है। ऐसे देवता को राजी रखने ही में अपनी भलाई है।

मनोहर—अब मेरे लिए कौन-सी राह निकालते हो?

सुक्खू—मैं क्या कहूं, गांव का हाल तो जानते ही हो। तुम्हारी खातिर मुचलका देने पर कौन राजी होगा? कोई न मानेगा। बस, या तो भगवान् का भरोसा है या अपनी गांठ का।

मनोहर ने सुक्खू से ज्यादा बातचीत नहीं की। समझ गया कि यह मुझे मुड़वाना चाहते हैं। कुछ दारोगा को देंगे, कुछ गौस खां के साथ मिलकर आप खा जाएंगे। इन दिनों उसका हाथ बिलकुल खाली था। नई गोई लेनी पड़ी, सब रुपये हाथ से निकल गए। खां साहब ने सिकमी खेत निकाल लिए थे। इसलिए रब्बी की भी आशा कम थी। केवल ऊख का भरोसा था, लेकिन बिसेसर साह के रुपये चुकाने थे और लगान भी बेबाक करना था। गुड़ से इससे अधिक और कुछ न हो सकता था। दूसरा ऐसा कोई महाजन न था जिससे रुपये उधार मिल सकते। वह यहां से उठकर डपटसिंह के घर की ओर चला, पर अभी तक कुछ निश्चय न कर सका था कि उनसे क्या कहूंगा। वह भटके हुए पथिक की भांति एक पगडंडी पर चला जा रहा था, बिलकुल बेखबर कि यह रास्ता मुझे कहां लिए जाता है, केवल इसलिए कि एक जगह खड़े रहने से चलते रहना अधिक संतोषप्रद था। क्या हानि है, यदि लोग मुचलका देने पर राजी हो जाएं। यह विधान इतना दूरस्थ था कि वहां तक इसका विचार भी न पहुंच सकता था।

डपटसिंह के दालान में एक मिट्टी के तेल की कुप्पी जल रही थी। भूमि पर पुआल बिछी हुई थी और कई आदमी और लड़के एक मोटे टाट का टुकड़ा ओढ़े सिमटे पड़े थे। एक कोने में एक कुतिया बैठी हुई पिल्लों को दूध पिला रही थी। डपटसिंह अभी सोए न थे। सोच रहे थे कि सुक्खू के कोल्हाड़े से गर्म रस आ जाय तो पीकर सोएं। उनके छोटे भाई झपटसिंह कुप्पी के सामने रामायण लिए आंखें गड़ा-गड़ाकर पढ़ने का उद्योग कर रहे थे। मनोहर को देखकर बोले–आओ महतो, तुम तो बड़े झमेले में पड़ गए।

मनोहर–अब तो तुम्हीं लोग बचाओ तो बच सकते हैं।

डपट–तुम्हें बचाने के लिए हमने कौन-सी बात उठा रखी? ऐसा बयान दिया कि बलराज पर कोई दाग नहीं आ सकता था, पर भाई मुचलका तो नहीं दे सकते। आज मुचलका दे दें, कल को गौस खां झूठों कोई सवाल दे दें तो सजा हो जाए।

मनोहर–नहीं भैया, मुचलका देने को मैं आप ही न कहूंगा।

डपटसिंह मनोहर के सदिच्छुक थे, पर इस समय उसे प्रकट न कर सकते थे। बोले–परमात्मा बैरी को भी कपूत संतान न दे। बलराज ने कल झूठ-मूठ बतबढ़ाव न किया होता तो तुम्हें क्यों इस तरह लोगों की चिरौरी करनी पड़ती?

हठात् कादिर खां की आवाज यह कहते हुए सुनाई दी–बड़ा न्याय करते हो ठाकुर। बलराज ने झूठ-मूठ बतबढ़ाव किया था तो उसी घड़ी डांट क्यों न दिया? तब तो तुम भी बैठे मुस्कराते रहे और आंखों से इस्तालुक देते रहे। आज जब बात बिगड़ गई है तो कहते हो झूठ-मूठ बतबढ़ाव किया था। पहले तुम्हीं ने अपनी लकड़ी का रोना रोया था, मैंने अपनी रामकहानी कही थी। यही सब-सुनकर बलराज भरा बैठा था। ज्यों ही मौका मिला खुल पड़ा। हमने और तुमने रो-रोकर बेगार दी, पर डर के मारे मुंह न खोल सके। वह हिम्मत का जवान है, उससे बरदास न हुई। वह जब हम सभी लोगों की खातिर आगे बढ़ा तो यह कहां का न्याय है कि मुचलके के डर से उसे आग में झोंक दें?

डपटसिंह ने विस्मित होकर कहा–तो क्या तुम्हारी सलाह है कि मुचलका दे दिया जाय?

कादिर–नहीं, मेरी सलाह नहीं है। मेरी सलाह है कि हम लोग अपने-अपने बयान पर डटे रहें। अभी कौन जानता है कि मुचलका देना ही पड़ेगा। लेकिन अगर ऐसा हो तो हमें पीठ न फेरनी चाहिए। भला सोचो, कितना बड़ा अंधेर है कि हम लोग मुचलके के डर से अपने बयान बदल दें। अपने ही लड़के को कुएं में ढकेल दें।

मनोहर ने कादिर मियां को अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखा। उसे ऐसा जान पड़ा मानो यह कोई देवता है। कादिर की सम्मति जो साधारण न्याय पर स्थिर थी उसे अलौकिक प्रतीत हुई। डपटसिंह को भी यह सलाह सयुक्तिक ज्ञात हुई। मुचलके की शंका कुछ कम हुई। मन में अपनी स्वार्थपरता पर लज्जित हुए, तिस पर भी मन से यह विचार न निकल सका कि प्रस्तुत विषय का सारा भार बलराज के सिर है। बोले–कादिर भाई, यह तो तुम नाहक कहते हो कि मैंने बलराज को इस्तालुक दिया। मैंने बलराज से कब कहा कि तुम लश्कर वालों से तूल-कलाम करना। यह रार तो उसने आप ही बढ़ाई। उसका स्वभाव ही ऐसा कड़ा ठहरा। आज को सिपाहियों से उलझा है, कल को किसी पर हाथ ही चला दे तो हम लोग कहां तक उसकी हिमायत करते फिरेंगे?

कादिर–तो मैं तुमसे कब कहता हूं कि उसकी हिमायत करो। वह बुरी राह चलेगा तो

आप ठोकर खाएगा। मेरा कहना यही है कि हम लोग अपनी आंखों की देखी और कानों की सुनी बातों में किसी के भय से उलट-फेर न करें। सचाई पर रहें, अपनी जान बचाने के लिए फरेब न करें। मुचलके की बात ही क्या, हमारा धर्म है कि अगर सच कहने के लिए जेल भी जाना पड़े तो सच से मुंह न मोड़ें।

डपटसिंह को अब निकलने का कोई रास्ता न रहा, किंतु फिर भी इस निश्चय को व्यावहारिक रूप में मानने का कोई संभावित मार्ग निकल आने की आशा बनी हुई थी। बोले–अच्छा, मान लो हम और तुम अपने बयान पर अड़े रहे, लेकिन बिसेसर और दुखरन को क्या करोगे? वह किसी विधि न मानेंगे।

कादिर–उनको भी खींचे लाता हूं, मानेंगे कैसे नहीं। अगर अल्लाह का डर है तो कभी निकल ही नहीं सकते।

यह कहकर कादिर खां चले गए और थोड़ी देर में दोनों आदमियों को साथ लिए हुए आ पहुंचे। बिसेसर साह ने तो आते ही डपटसिंह की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से आंखें नचाकर देखा, मानो पूछना चाहते थे कि तुम्हारी क्या सलाह है, और दुखरन भगत, जो दोनों जून मंदिर में पूजा करने जाया करते थे और जिन्हें रामचर्चा से कभी तृप्ति न होती थी, इस तरह सिर झुकाकर बैठ गए, मानो उन पर वज्रपात हो गया है या कादिर खां उन्हें किसी गहरी खोह में गिरा रहे हैं।

इन्हें यहां बैठाकर कादिर खां ने अपनी पगड़ी से थोड़ी-सी तम्बाखू निकाली, अलाव से आग रख लाए और दो-तीन दम लगाकर चिलम को डपटसिंह की ओर बढ़ाते हुए बोले–कहो भगत, कल दारोगाजी के पास चलकर क्या करना होगा?

दुखरन–जो तुम लोग करोगे वही मैं करूंगा। हां, मुचलका न देना पड़े। कादिर ने फिर उसी युक्ति से काम लिया जो डपटसिंह को समाधान करने में सफल हुई थी। सीधे किसान वितंडावादी नहीं होते। वास्तव में इन लोगों के ध्यान में यह बात ही न आई थी कि बयान का बदलना प्रत्यक्ष जाल है। कादिर खां ने इस विषय का निदर्शन किया तो उन लोगों की सरल सत्य-भक्ति जागृत हो गई। दुखरन शीघ्र ही उनसे सहमत हो गए। लेकिन बिसेसर पर उनके भाषण का कुछ असर न हुआ। साहजी के यहां शक्कर और अनाज का कारोबार होता था। डेवढ़ी-सवाई चलती थी, लेन-देन करते थे, दो हल की खेती होती थी; गांजा-भांग, चरस आदि का ठेका भी ले लिया था, पर उनका भेष-भाव उन्हें कराधिकारियों के पंजे से बचाता रहता था। बोले भाई, तुम लोगों का साथ देने से मैं कहीं का न रहूंगा; चार पैसे का लेन-देन है। नरमी-गरमी, डांट-डपट किए बिना काम नहीं चल सकता। रुपये लेते समय तो लोग सगे भाई बन जाते हैं, पर देने की बारी आती है तो कोई सीधे मुंह बात नहीं करता। यह रोजगार ही ऐसा है कि अपने घर की जमा देकर दूसरों से बैर मोल लेना पड़ता है। आज मुचलका हो जाय, कल को कोई मामला खड़ा हो जाय, तो गांव में सफाई के गवाह तक न मिलेंगे और फिर संसार में रहकर अधर्म से कहां तक बचेंगे? यह तो कपट लोक है। अपने मतलब के लिए दंगा, फरेब, जाल सभी कुछ करना पड़ता है। आज धरम का विचार करने लगूं तो कल सारा कारबार मिट्टी में मिल जाय। इस जमाने में जो रोजगार रह गया है इसी बेईमानी का रोजगार है। क्या हम हुए, क्या तुम हुए सबका एक ही हाल है, सभी सन की गांठों में मिट्टी और लकड़ी भरते हैं, तेलहन और अनाज में मिट्टी और कंकर मिलाते हैं। क्या यह बेईमानी नहीं है? अनुचित बात कहता

होऊं तो मेरे मुंह पर थप्पड़ मारो। तुम लोगों को जैसा गौं पड़े वैसा करो, पर मैं मुचलका देने पर किसी तरह राजी नहीं हो सकता।

स्वार्थ-नीति का जादू निर्बल आत्माओं पर खूब चलता है। दुखरन और डपटसिंह को यह बातें अतिशय न्याय-संगत जान पड़ीं। यही विचार उनके हृदय में भी थे, पर किसी कारण से व्यक्त न हो सके थे। दोनों ने एक-दूसरे को मार्मिक दृष्टि से देखा। डपटसिंह बोले-भाई, बात तो सच्ची कहते हो, संसार में रहकर सीधी राह पर कोई नहीं चल सकता। अधर्म से बचना चाहे तो किसी जंगल-पहाड़ में जाकर बैठो। यहां निबाह नहीं।

कादिर खां समझ गए कि साहुजी पर धर्म और न्याय का कुछ बस न चलेगा। यह उस वक्त तक काबू में न आएंगे जब तक इन्हें यह न सूझेगा कि बयान बदलने में कौन-कौन-सी बाधाएं उपस्थित हो सकती हैं। बोले-साहुजी, तुम जो बात कहते हो बेलाग कहते हो। संसार में रहकर अधर्म से कहां तक कोई बचेगा? रात-दिन तो छलकपट करते रहते हैं ! जहां इतने पापों का दंड भोगना है, एक पाप और सही। लेकिन यहां धर्म का ही विचार नहीं है न। डर तो यह है कि बयान बदलकर हम लोग और किसी संकट में न फंस जाएं। पुलिस वाले किसी के नहीं होते। हम लोगों का पहला बयान दारोगाजी के पास रखा हुआ है। उस पर हमारे दस्तखत और अंगूठे के निशान भी मौजूद हैं। दूसरा बयान लेकर वह हम लोगों को जालसाजी में गिरफ्तार कर लें तो सोचो कि क्या हो? सात बरस से कम की सजा न होगी। न भैया, इससे तो मुचलका ही अच्छा। आंख से देखकर मक्खी क्यों निगलें?

बिसेसर साह की आंखें खुलीं। और लोग भी चकराए। कादिर खां की यह युक्ति काम कर गई। लोग समझ गए कि हम लोग बुरे फंस गए हैं और किसी तरह निकल नहीं सकते। बिसेसर का मुंह ऐसा लटक गया मानो रुपये की थैली गिर गई हो। बोले-दारोगाजी ऐसे आदमी तो नहीं जान पड़ते। कितना ही हैं तो हमारे मालिक ही, कुछ-न-कुछ मुलाहिजा तो करेंगे ही, लेकिन किसी के मन का हाल परमात्मा ही जान सकता है। कौन जाने, उनके मन में कपट समा जाए। तब तो हमारा सत्यानास ही हो जाए। तो यही सलाह पक्की कर लो कि न बयान बदलेंगे, न दारोगाजी के पास जाएंगे। अब तो जाल में फंस गए हैं। फड़फड़ाने से फंदे और भी बंद हो जाएंगे। चुपचाप राम आसरे बैठे रहना ही अच्छा है।

इस प्रकार आपस में सलाह करके लोग अपने-अपने घर गए। कादिर खां की व्यवहार-पटुता ने विजय पाई।

बाबू दयाशंकर नियमानुसार आठ बजे सोकर उठे और रात की खुमारी उतारने के बाद इन लोगों की राह देखने लगे। जब नौ बजे तक किसी की सूरत न दिखाई दी तो गौस खां से बोले-कहिए खां साहब, यह सब न आएंगे क्या? देर बहुत हुई।

गौस खां-क्या जाने कल सबों में क्या मिस्कौट हुई। क्यों सुक्खू, रात मनोहर तुम्हारे पास आया था न?

सुक्खू-हां आया तो था, पर कुछ मामले की बातचीत नहीं हुई। कादिर मियां बड़ी रात तक सबके घर-घर घूमते रहे। उन्होंने सबों को मंत्र दिया होगा।

गौस खां-जरूर उसी की शरारत है। कल पहर रात तक सब लोग बयान बदलने पर आमादा थे। मालूम होता है जब लोग यहां से गए हैं तो उसे पट्टी पढ़ाने का मौका मिल गया। मैं जानता तो सबों को यहीं बुलाता। यह मलऊन कभी अपनी हरकत से बाज नहीं आता। हमेशा

भांजी मारा करता है।

दया—अच्छी बात है, तो मैं अब रिपोर्ट लिख डालता हूं। मुझे गांव वालों की तरफ से किसी किस्म की ज्यादती का सबूत नहीं मिलता।

गौस खां—हुजूर, खुदा के लिए ऐसी रिपोर्ट न लिखें, वरना यह सब और शेर हो जाएंगे। हुजूर, महज अफसर नहीं हैं, मेरे आका भी तो हैं। गुलाम ने बहुत दिनों तक हुजूर का नमक खाया है। ऐसा कुछ कीजिए कि यहां मेरा रहना दुश्वार न हो जाय। मैं तो हुजूर और बाबू ज्ञानशंकर को एक ही समझता हूं। मैं यही चाहता हूं कि बलराज को कम-से-कम एक माह की सजा हो जाय और बाकी से मुचलका ले लिया जाय। यह इनायत खास मुझ पर होगी। मेरी धाक बंध जाएगी और आइंदा से हुक्काम की बेगार में जरा भी दिक्कत न होगी।

दयाशंकर—आपका फरमाना बजा है, पर मैं इस वक्त न आपके पास आका की हैसियत से हूं और न मेरा काम हुक्काम के लिए बेगार पहुंचाना है। मैं तफतीश करने आया हूं और किसी के साथ रू-रिआयत नहीं कर सकता। यह तो आप जानते ही हैं कि मैंने मुफ्त में कलम उठाने का सबक नहीं पढ़ा। किसी पर जब्र नहीं करता, सख्ती नहीं करता, सिर्फ काम की मजदूरी चाहता हूं और खुशी से जो मुझसे काम लेना चाहे मेरी उजरत पेश करे। और मुझे महज अपनी फिक्र तो नहीं, मेरे मातहत और भी तो कितने ही छोटी-छोटी तनख्वाहों के लोग हैं। उनका गुजर कैसे हो? गांव में आपकी धाक बंध जायगी, इससे मेरा फायदा? आप असामियों को लूटेंगे, मेरी गरज? गांव वालों से मेरी कोई दुश्मनी नहीं, बल्कि वह गरीब तो मेरे पुराने वफादार असामी हैं। मैं मच्छर नहीं कि डंक मारता फिरूं। कसम खा चुका हूं कि अब एक सौ से कम की तरफ निगाह न उठाऊंगा, यह रकम चाहे आप दें या काला चोर दे। मेरे सामने रकम आनी चाहिए। गुनाह बेलज्जत नहीं कर सकता।

गौस खां ने बहुत मिन्नत-समाजत की। अपनी दीन दशा का रोना रोया, अपनी दुरवस्था का पचड़ा गाया, पर दारोगाजी टस से मस न हुए। खां साहब ने लोगों को नीचा दिखाने का निश्चय किया था, इसी में उनका कल्याण था। दारोगाजी के पूजार्पण के सिवा अन्य कोई उपाय न था। सोचा, जब मेरी धाक जम जाएगी तो ऐसे-ऐसे कई-कई सौ का वारा-न्यारा कर दूंगा। कुछ रुपये अपने संदूक से निकाले, कुछ सुक्खू चौधरी से लिए और दारोगाजी की खिदमत में पेश किए। यह रुपये उन्होंने अपने गांव में एक मसजिद बनवाने के लिए जमा किए थे। निकालते हुए हार्दिक वेदना हुई, पर समस्या ने विवश कर दिया था। दयाशंकर ने काले-काले रुपयों का ढेर देखा तो चेहरा खिल उठा। बोले—अब आपकी फतह है, वह रिपोर्ट लिखता हूं कि मिस्टर ज्वालासिंह भी फड़क जाएं। मगर आपने यह रुपये जमीन में दफन कर रखे थे क्या?

गौस खां—अब हुजूर कुछ न पूछें। बरसों की कमाई है। ये पसीने के दाग हैं।

दयाशंकर—(हंसकर) आपके पसीने के दाग तो न होंगे, हां असामियों के खूने-जिगर के दाग हैं।

दस बजे रिपोर्ट तैयार हो गई। दो दिन तक सारे गांव में कुहराम मचा रहा। लोग तलब हुए। फिर सबके बयान हुए। अंत में सबसे सौ-सौ रुपये के मुचलके ले लिए गए। कादिर खां का घर से बाहर निकलना मुश्किल हो गया।

शाम हो गई थी। बाबू ज्वालासिंह शिकार खेलने गए हुए थे। फैसला कल सुनाया जाने वाला था। गौस खां ईजाद हुसेन के पास आकर बैठ गए और बोले—क्या डिप्टी साहब अभी

शिकार से वापस नहीं आए?

ईजाद हुसेन–कहीं घड़ी रात तक लौटेंगे। हुकूमत का मजा तो दौरे में ही मिलता है। घंटे-आध घंटे कचहरी की, बाकी सारे दिन मटरगश्ती करते रहे। रोजनामचा भरने को लिख दिया, पड़ताल करते रहे।

गौस खां–आपको तो मालूम ही हुआ होगा, दारोगाजी ने मुझे आज खूब पथा।

ईजाद–इन हिन्दुओं से खुदा समझे। यह बला के मुतअस्सिब होते हैं। हमारे साहब बहादुर भी बड़े मुंसिफ बनते हैं, मगर जब कोई जगह खाली होती है तो वह हिन्दू को ही देते हैं। अर्दली चपरासी मजीद को आप जानते होंगे। अभी हाल में उसने जिल्दबंदी की दुकान खोल ली, नौकरी से इस्तीफा दे दिया। आपने उसकी जगह पर एक गंवार अहीर को मुकर्रर कर लिया। है तो अर्दली का चपरासी, पर उसका काम है गाएं दुहना, उन्हें चारा-पानी देना। दौरे के चौकीदारों में दो कहार रख लिए हैं। उनसे खिदमतगारी का काम लेते हैं। जब इन हथकंडों से काम चले तो बेगार की जरूरत ही क्या? हम लोगों को अलबत्ता हुक्म मिला है कि बेगार न लिया करो।

सूर्य अस्त हुए। खां साहब को याद आ गया कि नमाज का वक्त गुजरा जाता है। वजू किया और एक पेड़ के नीचे नमाज पढ़ने लगे।

इतने में बिसेसर साह ने रावटी के द्वार पर आकर अहलमद साहब को अदब से सलाम किया। स्थूल शरीर, गाढ़े की मिर्जई, उस पर गाढ़े का दोहर, सिर पर एक मैली-सी पगड़ी, नंगे पांव, मुख मलिन, स्वार्थपूर्ण विनय की मूर्ति बने हुए थे। एक चपरासी ने डांटकर कहा–यहां कहां घुसे चले आते हो? कुछ अफसरों का अदब-लिहाज भी है?

बिसेसर साह दो-तीन पग पीछे हट गए और हाथ बांधकर बोले–सरकार, एक विनती है। हुक्म हो तो अरज करूं।

ईजाद–क्या कहते हो? तुम लोगों के मारे तो दम मारने की भी फुर्सत नहीं। जब देखो, एक-न-एक आदमी शैतान की तरह सिर पर सवार रहता है।

बिसेसर–हुजूर, बड़ी देर से खड़ा हूं।

ईजाद–अच्छा, खैर अपना मतलब कहो।

बिसेसर–यही अरज है हुजूर कि मुझसे मुचलका न लिया जाय। बड़ा गरीब हूं सरकार, मिट्टी में मिल जाऊंगा।

अहलमद साहब के यहां ऐसे गरज के बावले, आंख के अंधे, गांठ के पूरे नित्य ही आया करते थे। वह उनके कल-पुर्जे खूब जानते थे। पहले मुंह फेरा, फिर अपनी विवशता प्रकट की पर भाव ऐसा शीलपूर्ण बनाए रखा कि शिकार हाथ से निकल न जाए। अंत में मामले पर आए। रुपये लेते हुए ऐसा मुंह बनाया, मानो दे रहो हों। साहजी को दिलासा देकर विदा किया।

चपरासी ने पूछा–क्या इससे मुचलका न लिया जायगा?

ईजाद–लिया क्यों न जायगा? फैसला लिखा हुआ तैयार है। इसके लिए जैसे सौ, वैसे एक सौ बीस। मैंने उससे यह हर्गिज नहीं कहा कि तुम्हें मुचलका से निजात दिला दूंगा। महज इतना कह दिया कि तुम्हारे लिए अपने इमकान भर कोशिश करूंगा। उसकी तस्कीन इतने से ही हो गई तो मुझे ज्यादा सरदर्द की क्या जरूरत थी? रिश्वत को लोग नाहक बदनाम करते हैं। इस वक्त मैं इससे रुपये न लेता तो इसकी न जाने क्या हालत होती। मालूम नहीं, कहां-कहां दौड़ता और क्या-क्या करता? रुपये देकर इसके सिर का बोझ हलका हो गया और

दिल पर से बोझ उतर गया। इस वक्त आराम से खाएगा और मीठी नींद सोएगा। कल कह दूंगा, भाई, क्या करूं, बहुत हाथ-पैर मारे; पर डिप्टी साहब राजी न हुए। मौका देखूंगा तो एक चाल और चलूंगा। कहूंगा, डिप्टी साहब को कुछ नजर दिए बिना काम पूरा न होगा। सौ रुपये पेश करो तो तुम्हारा मुचलका रद्द करा दूं। यह चाल चल गई तो पौ बारह हैं। इसी का नाम 'हम खुर्मा व हम सवाब' है। मैंने कोई ज्यादती नहीं की, कोई जब्र नहीं किया। यह गैबी इमदाद है। इसी से मैं हिन्दुओं के मसलए तनासुख का कायल हूं। जरूर इससे पहले की जिंदगी में इस आदमी पर मेरे कुछ रुपये आते होंगे। आए दिन ऐसे शिकार फंसा करते हैं, गोया उन्हें रुपयों से कोई चिढ़ है। दिल में उनकी हिमाकत पर हंसता हूं और अल्लाह का शुक्र अदा करता हूं कि ऐसे बंदे न पैदा करता तो हम जैसों का गुजर क्योंकर होता।

चौदह

राय साहब को नैनीताल आए हुए एक महीना हो गया है। एक सुरम्य झील के किनारे हरे-भरे वृक्षों के कुंज में उनका बंगला स्थित है, जिसका एक हजार रुपया मासिक किराया देना पड़ता है। कई घोड़े हैं, कई मोटर गाड़ियां, बहुत-से नौकर। यहां वह राजाओं की भांति शान से रहते हैं। कभी हिमराशियों की सैर, कभी शिकार, कभी झील में बजरों की बहार, कभी पोलो और गोल्फ, कभी सरोद और सितार, कभी पिकनिक और पार्टियां, नित्य नए जलसे, नए प्रमोद होते रहते हैं। राय साहब बड़ी उमंग के साथ इन विनोदों की बहार लूटते हैं। उनके बिना किसी महफिल, किसी जलसे का रंग नहीं जमता। वह सभी बरातों के दूल्हे हैं। व्यवस्थापक सभा की बैठकें नियमित समय पर हुआ करती हैं, पर मेंबरों के राग-रंग को देखकर यह अनुमान करना कठिन है कि वह आमोद को अधिक महत्त्व का विषय समझते हैं या व्यवस्थाओं के संपादन को।

किंतु ज्ञानशंकर के हृदय की कली यहां भी न खिली। राय साहब ने उन्हें यहां के समाज से परिचित करा दिया। उन्हें नित्य दावतों और जलसों में अपने साथ ले जाते, अधिकारियों से उनके गुणों की प्रशंसा करते, यहां तक कि उन्हें लेडियों से भी इंट्रोड्यूस कराया। इससे ज्यादा वह क्या कर सकते थे? इस भित्ति पर दीवार उठाना उनका काम था, पर उनकी दशा उस पौधे की-सी थी जो प्रतिकूल परिस्थिति में जाकर माली के सुव्यवस्था करने पर भी दिनों-दिन सूखता जाता है। ऐसा जान पड़ता था कि वह किसी गहन घाटी में रास्ता भूल गए हैं। रत्न-जटित लेडियों के सामने वह शिष्टाचार के नियमों के ज्ञाता होने पर भी झेंपने लगते थे। राय साहब उन्हें प्राय: एकांत में सभ्य व्यवहार के उपदेश दिया करते। स्वयं नमूना बन उन्हें सिखाते, पुरुषों से क्योंकर बिना प्रयोजन ही मुस्कराकर बातें करनी चाहिए, महिलाओं के रूप-लावण्य की क्योंकर सराहना करनी चाहिए, किंतु अवसर पड़ने पर ज्ञानशंकर का मतिहरण हो जाता था। उन्हें आश्चर्य होता था कि राय साहब इस वृद्धावस्था में भी लेडियों के साथ कैसे घुल-मिल जाते हैं, किस अंदाज से बातें करते हैं कि बनावट का ध्यान भी नहीं हो सकता, मानो इसी जलवायु में उनका पालन-पोषण हुआ है।

एक दिन वह झील के किनारे एक बेंच पर बैठे हुए थे। कई लेडियां एक बजरे पर जल-क्रीड़ा कर रही थीं। इन्हें पहचानकर उन्होंने इशारे से बुलाया और सैर करने की दावत दी। इस समय ज्ञानशंकर की मुखाकृति देखते ही बनती थी। उन्हें इंकार करने के शब्द न मिले। भय हुआ कि कहीं असभ्यता न समझी जाए। झेंपते हुए बजरे में जा बैठे, पर सूरत बिगड़ी हुई, खेद और ग्लानि की सजीव मूर्ति। हृदय पर एक पहाड़ का बोझ रखा हुआ था। लेडियों ने उनकी यह दशा देखी, तो आड़े हाथों लिया और इतनी फबतियां उड़ाईं, इतना बनाया कि इस समय कोई ज्ञानशंकर को देखता तो न पहचान न सकता। मालूम होता था आकृति ही बिगड़ गई है। मानो कोई बंदर का बच्चा नटखट लड़कों के हाथों पड़ गया हो। आंखों में आंसू भरे एक कोने में दुबके-सिमटे बैठे हुए अपने दुर्भाग्य को रो रहे थे। बारे किसी तरह इस विपत्ति से मुक्ति हुई, जान में जान आई। कान पकड़े कि फिर लेडियों के निकट न जाऊंगा।

शनैः-शनैः ज्ञानशंकर को इन खेल-तमाशों से अरुचि होने लगी। अंगूर खट्टे हो गए। ईर्ष्या, जो अपनी क्षुद्रताओं की स्वीकृति हुई है, हृदय का कांटा बन गई। रात-दिन इसकी टीस रहने लगी। उच्चाकांक्षाएं उन्हें पर्वत के पादस्थल तक ले गई, लेकिन ऊपर न ले जा सकीं। वहीं हिम्मत हारकर बैठ गए और उस धुन के पूरे साहसी पुरुष की निंदा करने लगे, जो गिरते-पड़ते ऊपर चढ़ते जाते थे। यह क्या पागलपन है। लोग ख्वाहमख्वाह अंग्रेजियत के पीछे लट्ठ लिए फिरते हैं। थोड़ी-सी ख्याति और सत्ता के लिए इतना झंझट और इतने रंग-रोगन पर भी असलियत का कहीं पता नहीं। सब-के-सब बहुरूपिए मालूम होते हैं। अंग्रेज लोग इनके मुंह पर चाहे न हंसें, पर मित्र-मंडली में सब इन पर तालियां बजाते होंगे। और तो और लोग लेडियों के साथ नाचने पर भी मरते हैं। कैसी निर्लज्जता है, कैसी बेहयाई, जाति के नाम पर धब्बा लगाने वाली। राय साहब भी विचित्र जीव हैं। इस अवस्था में आपको भी नाचने की धुन है। ऐसा मालूम होता है मानो उच्छृंखलता सदेह होकर दूसरों का मुंह चिढ़ा रही है। डॉक्टर चन्द्रशेखर कहने को तो दर्शन के ज्ञाता हैं, पुरुष और प्रकृति जैसे गहन विषयों पर लच्छेदार वक्तृताएं देते हैं, लेकिन नाचने लगते हैं तो सारा पांडित्य धूल में मिल जाता है। वह जो राजा साहब हैं इन्द्रकुमारसिंह, मटके की भांति तोंद निकली हुई है, लेकिन आप भी अपना नृत्य-कौशल दिखाने पर उधार खाए हुए हैं, और तुर्रा यह कि सब-के-सब जाति के सेवक और देश के भक्त बनते हैं। जिसे देखिए, भारत की दुर्दशा पर आंसू बहाता नजर आता है। ये लोग विलासमय होटलों में शराब और लेमोनेड पीते हुए देश की दरिद्रता और अधोगति का रोना रोते हैं। यह भी फैशन में दाखिल हो गया है।

इस भांति ज्ञानशंकर की ईर्ष्या देशानुराग के रूप में प्रकट हुई। असफल लेखक समालोचक बन बैठा। अपनी असमर्थता ने साम्यवादी बना दिया। यह सभी रंगे हुए सियार हैं, लुटेरों का जत्था है। किसी को खबर नहीं कि गरीबों पर क्या बीत रही है? किसी के हृदय में दया नहीं। कोई राजा है, कोई ताल्लुकेदार, कोई महाजन, सभी गरीब का खून चूसते हैं, गरीबों के झोंपड़ों में सेंध मारते हैं और यहां आकर देश की अवनति का पचड़ा गाते हैं। भला यही है कि अधिकारी वर्ग इन महानुभावों को मुंह नहीं लगाते। कहीं वह इनकी बातों में आ जाएं और देश का भाग्य इनके हाथों में दे दें तो ज़ाति का कहीं नाम-निशान भी न रहे। यह सब दिन-दहाड़े लूट खाएं। कोई इन भलेमानुसों से पूछे, आप जो यहां लाखों रुपये सैर-सपाटे में उड़ा रहे हैं, उससे जाति को क्या लाभ हो रहा है? यही धन यदि जाति पर अर्पण करते तो जाति

तुम्हें धन्यवाद देती और तुम्हें पूजती, नहीं तो उसे खबर भी नहीं कि तुम कौन हो और क्या करते हो। उनके लिए तुम्हारा होना न होना दोनों बराबर हैं। प्रार्थी को इस बात से संतोष नहीं होता कि तुम दूसरों से सिफारिश करके उसे कुछ दिला दोगे, उसे संतोष होगा जब तुम स्वयं अपने पास से थोड़ा-सा निकालकर उसे दे दो।

ये द्रोहात्मक विचार ज्ञानशंकर के चित्त को मथने लगे। वाणी उन्हें प्रकट करने के लिए व्याकुल होने लगी। एक दिन वह डॉक्टर चंद्रशेखर से उलझ पड़े। इसी प्रकार एक दिन राजा इन्द्रकुमार से विवाद कर बैठे और मिस्टर हरिदास बैरिस्टर से तो एक दिन हाथापाई की नौबत आ गई। परिणाम यह हुआ कि लोगों ने ज्ञानशंकर का बहिष्कार करना शुरू किया; यहां तक कि राय साहब के बंगले पर आना भी छोड़ दिया। किंतु जब ज्ञानशंकर ने अपने विचारों को एक प्रसिद्ध अंग्रेजी पत्रिका में प्रकाशित कराया तो सारे नैनीताल में हलचल मच गई। जिसके मस्तिष्क में ऐसे उत्कृष्ट भाव प्रकट हो सकते थे, उसे झक्की या बक्की समझना असंभव था। शैली ऐसी सजीव, चुटकियां ऐसी तीव्र, व्यंग्य ऐसे मीठे और उक्तियां ऐसी मार्मिक थीं कि लोगों को उसकी चोटों में भी आनंद आता था। नैनीताल समाज का एक वृहत् चित्र था। चित्रकार ने प्रत्येक चित्र के मुख पर उसका व्यक्तित्व ऐसी कुशलता से अंकित कर दिया था कि लोग मन-ही-मन कटकर रह जाते थे। लेख में ऐसे कटाक्ष थे कि उसके कितने ही वाक्य लोगों की जबान पर चढ़ गए।

ज्ञानशंकर को शंका थी कि कहीं यह लेख छपते ही समस्त नैनीताल उनके सिर हो जाएगा; किंतु यह शंका निस्सार सिद्ध हुई। जहां लोग उनका निरादर और अपमान करते थे, वहां अब उनका आदर और मान करने लगे। एक-एक करके लोगों ने उनके पास आकर अपने अविनय की क्षमा मांगी। सब-के-सब एक, दूसरे पर की गई चोटों का आनंद उठाते थे। डॉक्टर चन्द्रशेखर और राजा इन्द्रकुमार में बड़ी घनिष्ठता थी, किंतु राजा साहब पर दो-मुंहे सांप की फबती डॉक्टर महोदय को लोट-पोट कर देती थी। राजा साहब भी डॉक्टर महाशय की प्रौढ़ा से उपमा पर मुग्ध हो जाते थे। उनकी घनिष्ठता इस द्वेषमय आनंद में बाधक न होती थी। यह चोटें और चुटकियां सर्वथा निष्फल न हुईं। सैर-तमाशों में लोगों का उत्साह कुछ कम हो गया। अगर अंत:करण से नहीं तो केवल ज्ञानशंकर को खुश करने के लिए लोग उनसे सार्वजनिक प्रस्तावों में सम्मति लेने लगे। ज्ञानशंकर का साहस और बढ़ा। वह खुल्लमखुल्ला लोगों को फटकारें सुनाने लगे। निंदक से उपदेशक बन बैठे। उनमें आत्मगौरव का भाव उदय हो गया। अनुभव हुआ कि इन बड़े-बड़े उपाधिधारियों और अधिकारियों पर कितनी सुगमता से प्रभुत्व जमाया जा सकता है। केवल एक लेख ने उनकी धाक बिठा दी। सेवा और दया के जो पवित्र भाव उन्होंने चित्रित किए थे, उनका स्वयं उनकी आत्मा पर भी असर हुआ। पर शोक ! इस अवस्था का शीघ्र ही अंत हो गया। क्वार का आरंभ होते ही नैनीताल से डेरे कूच होने लगे और आधे क्वार तक सब बस्ती उजाड़ हो गई। ज्ञानशंकर फिर उसी कुटिल स्वार्थ की उपासना करने लगे। उनका हृदय दिनों-दिन कृपण होने लगा। नैनीताल में भी वह मन-ही-मन राय साहब की फिजूलखर्चियों पर कुड़बुड़ाया करते थे। लखनऊ आकर उनकी संकीर्णता शब्दों में व्यक्त होने लगी। जुलाहे का क्रोध दाढ़ी पर उतरता। कभी मुख्तार से, कभी-मुहर्रिर से, कभी नौकरों से उलझ पड़ते। तुम लोग रियासत लूटने पर तुले हुए हो, जैसे मालिक वैसे नौकर, सभी की आंखों में सरसों फूली हुई है। मुफ्त का माल उड़ाते क्या लगता है? जब पसीना मारकर कमाते

तो खर्च करते अखर होती। राय साहब रामलीला सभा के प्रधान थे। इस अवसर पर हजारों रुपये खर्च करते, नौकरों को नई-नई वर्दियां मिलतीं, रईसों की दावत की जाती, राजगद्दी के दिन ब्रह्मभोज किया जाता। ज्ञानशंकर यह धन का अपव्यय देखकर जलते रहते थे। दीपमालिका के उत्सव की तैयारियां देखकर वह ऐसे हताश हुए कि एक सप्ताह के लिए इलाके की सैर करने चले गए।

दिसंबर का महीना था और क्रिसमस के दिन। राय साहब अंग्रेज अधिकारियों को डालियां देने की तैयारियों में तल्लीन हो रहे थे। ज्ञानशंकर उन्हें डालियां सजाते देखकर इस तरह मुंह बनाते, मानो वह कोई महाघृणित काम कर रहे हैं। कभी-कभी दबी जबान से उनकी चुटकी भी ले लेते। उन्हें छेड़कर तर्क-वितर्क करना चाहते। राय साहब पर इन भावों का जरा भी असर न होता। वह ज्ञानशंकर की मनोवृतियों से परिचित जान पड़ते थे। शायद उन्हें जलाने के लिए ही वह इस समय इतने उत्साहशील हो गए थे। यह चिंता ज्ञानशंकर की नींद हराम करने के लिए काफी थी। उस पर जब उन्हें विश्वस्त सूत्रों से मालूम हुआ कि राय साहब पर कई लाख का कर्ज है तो वह नैराश्य से विह्वल हो गए। एक उद्विग्न दशा में विद्या के पास आकर बोले—मालूम होता है यह मरते दम तक कौड़ी कफन को न छोड़ेंगे। मैं आज ही इस विषय में इनसे साफ-साफ बातें करूंगा और कह दूंगा कि यदि आप अपना हाथ न राकेंगे तो मुझसे भी जो कुछ बन पड़ेगा कर डालूंगा।

विद्या—उनकी जायदाद है, तुम्हें रोक-टोक करने का क्या अधिकार है? कितना ही उड़ाएंगे तब भी हमारे खाने भर को बचा ही रहेगा। भाग्य में जितना बदा है, उससे अधिक थोड़े ही मिलेगा।

ज्ञान—भाग्य के भरोसे बैठकर अपनी तबाही तो नहीं देखी जाती।

विद्या—भैया जीते होते तब?

ज्ञान—तब दूसरी बात थी। मेरा इस जायदाद से कोई संबंध न रहता। मुझको उसके बनने-बिगड़ने की चिंता न रहती। किसी चीज पर अपनेपन की छाप लगते ही हमारा उससे आत्मिक संबंध हो जाता है।

किंतु हा दुर्दैव ! ज्ञानशंकर की विषाद-चिंताओं का यहीं तक अंत न था। अभी तक उनकी स्थिति एक आक्रमणकारी सेना की-सी थी। अपने घर का कोई खटका न था। अब दुर्भाग्य ने उनके घर पर छापा मारा। उनकी स्थिति रक्षाकारिणी सेना की-सी हो गई। उनके बड़े भाई प्रेमशंकर कई वर्ष से लापता थे। ज्ञानशंकर को निश्चय हो गया था कि वह अब इस संसार में नहीं हैं। फाल्गुन का महीना था। अनायास प्रेमशंकर का एक पत्र अमेरिका से आ पहुंचा कि मैं पहली अप्रैल को बनारस पहुंच जाऊंगा। यह पत्र पाकर पहले तो ज्ञानशंकर प्रेमोल्लास में मग्न हो गए। इतने दिनों के वियोग के बाद भाई के मिलने की आशा ने चित्त गद्गद कर दिया। पत्र लिए हुए विद्या के पास आकर यह शुभ समाचार सुनाया। विद्या बोली—धन्य भाग ! भाभीजी की मनोकामना ईश्वर ने पूरी कर दी ! इतने दिनों कहां थे?

ज्ञान—वहीं अमेरिका में कृषिशास्त्र का अभ्यास करते रहे। दो साल तक एक कृषिशाला में काम भी किया है।

विद्या—तो आज अभी पच्चीस तारीख है। हम लोग कल-परसों तक यहां से चल दें। ज्ञानशंकर ने केवल इतना कहा, 'हां, और क्या' और बाहर चले गए। उनकी प्रफुल्लता एक

ही क्षण में लुप्त हो गई थी और नई चिंताएं आंखों के सामने फिरने लगी थीं, जैसे कोई जीर्ण रोगी किसी उत्तेजक औषधि के असर से एक क्षण के लिए चैतन्य होकर फिर जीर्णावस्था में विलीन हो जाता है। उन्होंने अब तक जो मनसूबे बांधे थे, जीवन का जो मार्ग स्थिर किया था, उसमें अपने सिवा किसी अन्य व्यक्ति के लिए जगह न रखी थी। वह सब कुछ अपने लिए चाहते थे। अब इन व्यवस्थाओं में दो परिवारों का निर्वाह होना कठिन था। लखनपुर के दो हिस्से करने पड़ेंगे ! ज्यों-ज्यों वह इस विषय पर विचार करते थे, समस्या और भी जटिल होती जाती थी, चिंताएं और भी विषम होती जाती थीं। यहां तक कि शाम होते-होते उन्हें अपनी अवस्था असह्य प्रतीत होने लगी। वे अपने कमरे में उदास बैठे हुए थे कि राय साहब आकर बोले–तुमने अभी कपड़े भी न पहने, क्या सैर करने न चलोगे?

ज्ञान–जी नहीं, आज जी नहीं चाहता।

राय–केसरबाग में आज बैंड होगा। हवा कितनी प्यारी है !

ज्ञान–मुझे आज क्षमा कीजिए।

राय–अच्छी बात है, मैं भी न जाऊंगा। आजकल कोई लेख लिख रहे हो या नहीं?

ज्ञान–जी नहीं, इधर तो कुछ नहीं लिखा।

राय–तो अब कुछ लिखो। विषय और सामग्री मैं देता हूं। सिपाही की तलवार में मोरचा न लगना चाहिए। पहला लेख तो इस साल के बजट पर लिख दो और दूसरा गायत्री पर।

ज्ञान–मैंने तो आजकल कोई बजट संबंधी लेख आद्योपांत पढ़ा तक नहीं, उस पर कलम क्योंकर उठाऊं?

राय–अजी, तो उसमें करना ही क्या है? बजट को कौन पढ़ता है और कौन समझता है? आप केवल शिक्षा के लिए और धन की आवश्यकता दिखाइए और शिक्षा के महत्त्व का थोड़ा-सा उल्लेख कीजिए, स्वास्थ्य-रक्षा के लिए और धन मांगिए और उसके मोटे-मोटे नियमों पर दो-चार टिप्पणियां कर दीजिए। पुलिस के व्यय में वृद्धि अवश्य ही हुई होगी, मानी हुई बात है। आप उसमें कमी पर जोर दीजिए और नई नहरें निकालने की आवश्यकता दिखाकर लेख समाप्त कर दीजिए। बस, अच्छी-खासी बजट समालोचना हो गई। लेकिन यह बातें ऐसे विनम्र शब्दों में लिखिए और अर्थसचिव की योग्यता की और कार्यपटुता की ऐसी प्रशंसा कीजिए कि वह बुलबुल हो जाएं और समझें कि मैंने उसके मंतव्यों पर खूब विचार किया है। शैली तो आपकी सजीव है ही, इतना यत्न और कीजिएगा कि एक-एक शब्द से मेरी बहुज्ञता और पांडित्य टपके। इतना बहुत है। हमारा कोई प्रस्ताव माना तो जाएगा नहीं, फिर बजट के लेखों को पढ़ना और उस पर विचार करना व्यर्थ है।

ज्ञान–और गायत्रीदेवी के विषय में क्या लिखना होगा?

राय–बस, एक संक्षिप्त-सा जीवन वृतांत हो। कुछ मेरे कुल का, कुछ उसके कुल का हाल लिखिए, उसकी शिक्षा का जिक्र कीजिए। फिर उसके पति की मृत्यु का वर्णन करने के बाद उसके सुप्रबंध और प्रजा-रंजन का जरा बढ़ाकर विस्तार के साथ उल्लेख कीजिए। गत तीन वर्षों में विविध कामों में उसने जितने चंदे दिए हैं और अपने असामियों की सुदशा के लिए जो व्यवस्थाएं की हैं, उनके नोट मेरे पास मौजूद हैं। उससे आपको बहुत मदद मिलेगी। उस ढांचे को सजीव और सुंदर बनाना आपका काम है। अंत में लिखिएगा कि ऐसी सुयोग्य और विदुषी महिला का अब तक किसी पद से सम्मानित न होना, शासन-कर्त्ताओं की

गुण-ग्राहकता का परिचय नहीं देता है। सरकार का कर्त्तव्य है कि उन्हें किसी उचित उपाधि से विभूषित करके सत्कार्यों में प्रोत्साहित करें, लेकिन जो कुछ लिखिए जल्द लिखिए, विलंब से काम बिगड़ जाएगा।

ज्ञान–बजट की समालोचना तो मैं कल तक लिख दूंगा लेकिन दूसरे लेख में अधिक समय लगेगा। मेरे बड़े भाई, जो बहुत दिनों से गायब थे, पहली तारीख को घर आ रहे हैं। उनके आने से पहले हमें वहां पहुंच जाना चाहिए।

राय–वह तो अमेरिका चले गए थे?

ज्ञान–जी हां, वहीं से पत्र लिखा है।

राय–कैसे आदमी हैं?

ज्ञान–इस विषय में क्या कह सकता हूं? आने पर मालूम होगा कि उनके स्वभाव में क्या परिवर्तन हुआ है। यों तो बहुत शांत प्रकृति और विचारशील थे।

राय–लेकिन आप जानते हैं अमेरिका की जलवायु बंधु-प्रेम के भाव की पोषक नहीं है। व्यक्तिगत स्वार्थ वहां के जीवन का मूल तत्त्व है और आपके भाई साहब पर उसका असर जरूर ही पड़ा होगा।

ज्ञान–देखना चाहिए, मैं अपनी तरफ से तो उन्हें शिकायत का मौका न दूंगा।

राय–आप दें या न दें, वह स्वयं ढूंढ़ निकालेंगे। संभव है, मेरी शंका निर्मूल हो। मेरी हार्दिक इच्छा है कि निर्मूल हो पर मेरा अनुभव है कि विदेश में बहुत दिनों तक रहने से प्रेम का बंधन शिथिल हो जाता है।

ज्ञानशंकर अब अपने मनोभावों को छिपा न सके। खुलकर बोले–मुझे भी यही भय है। जब छ: साल से उन्होंने घर पर एक पत्र तक नहीं लिखा तो विदित ही है कि उनमें आत्मीयता का आधिक्य नहीं है। आप मेरे पिता तुल्य हैं, आपसे पर्दा क्या है? इनके आने से मेरे सारे मन्सूबे मिट्टी में मिल गए। मैं समझा था चचा साहब से अलग होकर दो-चार वर्षों में मेरी दशा सुधर जाएगी। मैंने ही चचा साहब को अलग होने पर मजबूर किया, जायदाद की बांट भी अपनी इच्छा के अनुसार की, जिसके लिए चचा साहब की संतान मुझे सदैव कोसती रहेगी। किंतु सब किया-कराया बेकार गया।

राय साहब–कहीं उन्होंने गत वर्षों के मुनाफे का दावा कर दिया तो आप बड़ी मुश्किल में फंस जाएंगे। इस विषय में वकीलों की सम्मति लिए बिना आप कुछ न कीजिएगा।

इस भांति ज्ञानशंकर की शंकाओं को उत्तेजित करने में राय साहब का आशय क्या था, इसको समझना कठिन है। शायद यह उनके हृदयगत् भावों की थाह लेना चाहते थे अथवा उनकी क्षुद्रता और स्वार्थपरता का तमाशा देखने का विचार था। वह तो यह चिंगारी दिखाकर हवा खाने चल दिए। बेचारे ज्ञानशंकर अग्नि-दाह में जलने लगे। उन्हें इस समय नाना प्रकार की शंकाएं हो रही थीं। उनका वह तत्क्षण समाधान करना चाहते थे। क्या भाई साहब गत वर्षों के मुनाफे का दावा कर सकते हैं? यदि वह ऐसा करें, तो मेरे लिए भी निकास का कोई उपाय है या नहीं? क्या राय साहब को अधिकार है कि वह रियासत पर ऋणों का बोझ लादते जाएं? उनकी फजूलखर्ची को रोकने की कोई कानूनी तदबीर हो सकती है या नहीं ? इन प्रश्नों से ज्ञानशंकर के चित्त में घोर अशांति हो रही थी, उनकी मानसिक वृत्तियां जल रही थीं। वह उठकर राय साहब के पुस्तकालय में गए और एक कानून की किताब निकालकर देखने लगे। इस किताब

से शंका निवृत्त न हुई। दूसरी किताब निकाली, यहां तक कि थोड़ी देर में मेज पर किताबों का ढेर लग गया। कभी इस पोथी के पन्ने उलटते थे, कभी उस पोथी के, किंतु किसी प्रश्न का संतोषप्रद उत्तर न मिला। हताश होकर वे इधर-उधर ताकने लगे। घड़ी पर निगाह पड़ी। दस बजना चाहते थे। किताबें समेटकर रख दीं। भोजन किया, लेटे, किंतु नींद कहां? चित्त की चंचलता निद्रा की बाधक है। अब तक वह स्वयं अपने जीवन-सागर के रक्षा-तट थे। उनकी सारी आकांक्षाएं इसी तट पर विश्राम किया करती थीं। प्रेमशंकर ने आकर इस तट-रक्षा को विध्वंस कर दिया था और उन नौकाओं को डांवाडोल। भैया क्योंकर काबू में आएंगे? खुशामद से? कठिन है, वह एक ही घाघ हैं। नम्रता और विनय से? असंभव। नम्रता का जवाब सद्व्यवहार हो सकता है, स्वार्थ त्याग नहीं। फिर क्या कलह और अपवाद से? कदापि नहीं, इससे मेरा पक्ष और भी निर्बल हो जाएगा। इस प्रकार भटकते-भटकते सहसा ज्ञानशंकर को एक मार्ग दीख पड़ा और वह हर्षोन्मत्त होकर उछल पड़े। वाह ! मैं भी कितना मंद-बुद्धि हूं। बिरादरी इन महाशय को घर में पैर तो रखने देगी नहीं, यह बेचारे मुझसे क्या छेड़-छाड़ करेंगे? आश्चर्य है, अब तक यह छोटी-सी बात भी मेरे ध्यान में न आई। राय साहब को भी न सूझी। बनारस आते ही लाला पर चारों ओर से बौछारें पड़ने लगेंगी, उनके वहां पैर भी न जमने पाएंगे। प्रकट में मैं उनसे भ्रातृवत् व्यवहार करता रहूंगा, बिरादरी की संकीर्णता और अन्याय पर आंसू बहाऊंगा, लेकिन परोक्ष में उसकी कील घुमाता रहूंगा। महीने-दो महीने में आप ही भाग खड़े होंगे। शायद श्रद्धा भी उनसे खिंच जाय। उसे कुछ उत्तेजित करना पड़ेगा। धार्मिक प्रवृत्ति की स्त्री है। लोकमत का असर उस पर अवश्य पड़ेगा। बस, मेरा मैदान साफ है। इन महाशय से डरने की कोई जरूरत नहीं। अब मैं निर्भय होकर भ्रातृ-स्नेह का आचरण कर सकता हूं।

इस विचार से ज्ञानशंकर इतने उत्फुल्ल हुए कि जी चाहा चल कर विद्या को जगाऊं, पर जब्त से काम लिया। इस चिंता-सागर से निकलकर अब उन्हें शंका होने लगी कि गायत्री की अप्रसन्नता भी मेरा भ्रम है। मैं स्त्रियों के मनोभावों से सर्वथा अपरिचित हूं। संभव है, मैंने उतावलापन किया हो, पर यह कोई ऐसा अपराध न था कि गायत्री उसे क्षमा न करती। मेरे दुस्साहस पर अप्रसन्न होना उसके लिए स्वाभाविक बात थी। कोई गौरवशाली रमणी इतनी सहज रीति से वशीभूत नहीं हो सकती। अपनी सतीत्व-रक्षा का विचार स्वभावत: उसकी प्रेम-वासना को दबा देता है। ऐसा न हो, तो भी वह अपनी उदासीनता और अनिच्छा प्रकट करने के लिए कठोरता का स्वांग भरना आवश्यक समझती है। शायद इससे उसका अभिप्राय प्रेम-परीक्षा होता है। वह एक अमूल्य वस्तु है। और अपनी दर गिराना नहीं चाहती। मैं अपनी असफलता से ऐसा दबा कि फिर सिर उठाने की हिम्मत ही न पड़ी। वह यहां कई दिन रही। मुझे जाकर उससे क्षमा मांगनी चाहिए थी। वह क्रुद्ध होती तो शायद मुझे झिड़क देती। वह स्वयं निर्दोष बनना चाहती और सारा दोष मेरे सिर रखती। मुझे यह वाक्प्रहार सहना चाहिए था और थोड़े दिनों में मैं उसके हृदय का स्वामी होता। यह तो मुझसे हुआ नहीं, उलटे आप ही रूठ बैठा, स्वयं उससे आंखें चुराने लगा। उसने अपने मन में मुझे बोदा, साहसहीन, निरा बुद्धू समझा होगा। खैर, अब कसर पूरी हुई जाती है। यह मानो अंत:प्रेरणा है। इस जीवन-चरित्र के निकलते ही उसकी अवज्ञा और अभिमान का अंत हो जाएगा। मान-प्रतिष्ठा पर जान देती है। राय साहब स्वयं गायत्री के भेष में अवतरित हुए हैं। उसकी यह आकांक्षा पूरी हुई तो फूली न समाएगी और जो कहीं रानी की पदवी मिल गई तो वह मेरा पानी भरेगी। भैया के झमेले

से छुट्टी पाऊं तो यह खेल शुरू करूं। मालूम नहीं, अपने पत्रों में कुछ मेरा कुशल-समाचार भी पूछती है या नहीं। चलूं, विद्या से पूछूं। अबकी वह इस प्रबल इच्छा को न रोक सके। विद्या बगल के कमरे में सोती थी, जाकर उसे जगाया। वह चौंककर उठ बैठी और बोली–क्या है? अभी तक सोए नहीं?

ज्ञान–आज नींद ही नहीं आती। बातें करने को जी चाहता है। राय साहब शायद अभी तक नहीं आए।

विद्या–वह बारह बजे के पहले कभी आते हैं कि आज ही आ जाएंगे। कभी-कभी एक-दो बज जाते हैं।

ज्ञान–मुझे जरा-सी झपकी आ गई थी। क्या देखता हूं कि गायत्री सामने खड़ी है, फूट-फूटकर रो रही है, आंखें खुल गईं। तब से करवटें बदल रहा हूं। उनकी चिट्ठियां तो तुम्हारे पास आती हैं न?

विद्या–हां, सप्ताह में एक चिट्ठी जरूर आती है बल्कि मैं जवाब देने में पिछड़ जाती हूं।

ज्ञान–कभी कुछ मेरा हालचाल भी पूछती हैं?

विद्या–वाह, ऐसा कोई पत्र नहीं जिसमें तुम्हारी क्षेम-कुशल न पूछती हो।

ज्ञान–बुलाती तो एक बार उनसे जाकर मिल आता।

विद्या–तुम जाओ तो वह तुम्हारी पूजा करें। तुमसे उन्हें बड़ा प्रेम है।

ज्ञानशंकर को अब भी नींद नहीं आई, किंतु सुख-स्वप्न देख रहे थे !

पंद्रह

प्रातःकाल था। ज्ञानशंकर स्टेशन पर गाड़ी का इंतजार कर रहे थे। अभी गाड़ी के आने में आध घंटे की देर थी। एक अंग्रेजी पत्र लेकर पढ़ना चाहा पर उसमें जी न लगा। दवाओं के विज्ञापन अधिक मनोरंजक थे। दस मिनट में उन्होंने सभी विज्ञापन पढ़ डाले। चित्त चंचल हो रहा था। बेकार बैठना मुश्किल था। इसके लिए बड़ी एकाग्रता की आवश्यकता होती है। आखिर खोंचे की चाट खाने में उनके चित्त को शांति मिली। बेकारी में मन बहलाने का यही सबसे सुगम उपाय है।

जब वह फिर प्लेटफार्म पर आए तो सिगनल डाउन हो चुका था। ज्ञानशंकर का हृदय धड़कने लगा। गाड़ी आते ही पहले और दूसरे दरजे की गाड़ियों में झांकने लगे, किंतु प्रेमशंकर इन कमरों में न थे। तीसरे दरजे की सिर्फ दो गाड़ियां थीं। वह इन्हीं गाड़ियों के कमरे में बैठे हुए थे। ज्ञानशंकर को देखते ही दौड़कर उनके गले लिपट गए। ज्ञानशंकर को इस समय अपने हृदय में आत्मबल और प्रेमभाव प्रवाहित होता जान पड़ता था। सच्चे भ्रातृ-स्नेह ने मनोमालिन्य को मिटा दिया। गला भर आया और अश्रुजल बहने लगा। दोनों भाई दो-तीन मिनट तक इसी भांति रोते रहे। ज्ञानशंकर ने समझा था कि भाई साहब के साथ बहुत-सा आडंबर होगा, ठाठ-बाट के साथ आते होंगे, पर उनके वस्त्र और सफर का सामान बहुत मामूली था। हां, उनका शरीर पहले से कहीं हृष्ट-पुष्ट था और यद्यपि वह ज्ञानशंकर से पांच साल बड़े थे, पर देखने

में उनसे छोटे मालूम होते थे, और चेहरे पर स्वास्थ्य की कांति झलक रही थी।

ज्ञानशंकर अभी तक कुलियों को पुकार ही रहे थे कि प्रेमशंकर ने अपना सब सामान उठा लिया और बाहर चले। ज्ञानशंकर संकोच के मारे पीछे हट गए कि किसी जान-पहचान के आदमी से भेंट न हो जाय।

दोनों आदमी तांगे पर बैठे तो प्रेमशंकर बोले—छ: साल के बाद आता हूं, पर ऐसा मालूम होता है कि यहां से गए थोड़े ही दिन हुए हैं। घर पर तो सब कुशल है न?

ज्ञान—जी हां, सब कुशल है। आपने तो इतने दिन हो गए, एक पत्र भी न भेजा, बिल्कुल भुला दिया। आपके ही वियोग में बाबूजी के प्राण गए।

प्रेम—वह शोक समाचार तो मुझे यहां के समचारपत्र से मालूम हो गया था, पर कुछ ऐसे ही कारण थे कि न आ सका। 'हिंदुस्तान रिव्यू' में तुमने नैनीताल के जीवन पर जो लेख लिखा था उसे पढ़कर मैंने आने का निश्चय किया। तुम्हारे उन्नत विचारों ने ही मुझे खींचा, नहीं तो संभव है, मैं अभी कुछ दिन और न आता। तो तुम पालिटिक्स (राजनीति) में भाग लेते हो न?

ज्ञान—(संकोच भाव से) अभी तक तो मुझे इसका अवसर नहीं मिला। हां, उसकी स्टडी (अध्ययन) करता रहता हूं।

प्रेम—कौन-सा प्रोफेशन (पेशा) अख्तियार किया?

ज्ञान—अभी तो घर के ही झंझटों से छुट्टी नहीं मिली। जमींदारी के प्रबंध के लिए मेरा घर रहना जरूरी था। आप जानते हैं यह जंजाल है। एक-न-एक झगड़ा लगा ही रहता है। चाहे उससे लाभ कुछ न हो पर मन की प्रवृत्ति आलस्य की ओर ही जाती है। जीवन के कर्म-क्षेत्र में उतरने का साहस नहीं होता। यदि यह अवलंब न होता तो अब तक मैं अवश्य वकील होता।

प्रेम—तो तुम भी मिल्कियत के जाल में फंस गए और अपनी बुद्धि-शक्तियों का दुरुपयोग कर रहे हो? अभी जायदाद के अंत होने में कितनी कसर है?

ज्ञान—चचा साहब का बस चलता तो कभी का अंत हो चुका होता, पर शायद अब जल्द अंत न हो। मैं चचा साहब से अलग हो गया हूं।

प्रेम—(खेद के साथ) यह तुमने क्या किया? तब तो उनका गुजर बड़ी मुश्किल से होता होगा?

ज्ञान—कोई तकलीफ नहीं है। दयाशंकर पुलिस में हैं और जायदाद से दो हजार मिल जाते हैं।

प्रेम—उन्हें अलग होने का दु:ख तो बहुत हुआ होगा। वस्तुत: मेरे भागने का मुख्य कारण उन्हीं का प्रेम था। तुम तो उस वक्त शायद स्कूल में पढ़ते थे, मैं कॉलेज से ही स्वराज्य आंदोलन में अग्रसर हो गया। उन दिनों नेतागण स्वराज्य के नाम से कांपते थे। इस आंदोलन में प्राय: नवयुवक ही सम्मिलित थे। मैंने साल भर बड़े उत्साह से काम किया। पुलिस ने मुझे फंसाने का प्रयास करना शुरू किया। मुझे ज्यों ही मालूम हुआ कि मुझ पर अभियोग चलाने की तैयारियां हो रही हैं, त्यों ही मैंने जान लेकर भागने में ही कुशल समझी। मुझे फंसे देखकर बाबूजी तो चाहे धैर्य से काम लेते, पर चचा साहब निस्संदेह आत्महत्या कर लेते। इसी भय से मैंने पत्र-व्यवहार भी बंद कर दिया कि ऐसा न हो, पुलिस यहां लोगों को तंग करे। बिना देशाटन किए अपनी पराधीनता का यथेष्ट ज्ञान नहीं होता। जिन विचारों के लिए मैं यहां राजद्रोही समझा

जाता था, उससे कहीं स्पष्ट बातें अमेरिका वाले अपने शासकों को नित्य सुनाया करते हैं, बल्कि वहां शासन की समालोचना जितनी ही निर्भीक हो, उतनी ही आदरणीय समझी जाती है। इस बीच में यहां भी विचार-स्वातंत्र्य की कुछ वृद्धि हुई है। तुम्हारा लेख इसका उत्तम प्रमाण है। इन्हीं सुव्यवस्थाओं ने मुझे आने को प्रोत्साहित किया और सत्य तो यह है कि अमेरिका से दिनों-दिन अभक्ति होती जाती थी। वहां धन और प्रभुत्व की इतनी क्रूर लीलाएं देखीं कि अंत में उनसे घृणा हो गई। यहां के देहातों और छोटे शहरों का जीवन उससे कहीं सुखकर है। मेरा विचार भी सरल जीवन व्यतीत करने का है। हां, यथासाध्य कृषि की उन्नति करना चाहता हूं।

ज्ञान—यह रहस्य आज खुला। अभी तक मैं और घर के सभी लोग यही समझते थे कि आप केवल विद्योपार्जन के लिए गए हैं। मगर आजकल तो स्वराज्यान्दोलन बहुत शिथिल पड़ गया है। स्वराज्यवादियों की जबान ही बंद कर दी गई है।

प्रेम—यह तो कोई बुरी बात नहीं, अब लोग बातें करने की जगह काम करेंगे। हमें बातें करते एक युग बीत गया। मुझे भी अब शब्दों पर विश्वास नहीं रहा। हमें अब संगठन की, परस्पर प्रेम-व्यवहार की और सामाजिक अन्याय को मिटाने की जरूरत है। हमारी आर्थिक दशा भी खराब हो रही है। मेरा विचार कृषि विधान में संशोधन करने का है। इसलिए मैंने अमेरिका में कृषिशास्त्र का अध्ययन किया है।

यों बातें करते हुए दोनों भाई मकान पर पहुंचे। प्रेमशंकर को अपना घर बहुत छोटा दिखाई दिया। उनकी आंखें अमेरिका की गगनस्पर्शी अट्टालिकाओं को देखने की आदी हो रही थीं। उन्हें कभी अनुमान ही न हुआ था कि मेरा घर इतना पस्त है। कमरे में आए तो उसकी दशा देखकर और भी हताश हो गए। जमीन पर फर्श तक न था। दो-तीन कुर्सियां जरूर थीं, लेकिन बाबा आदम के जमाने की, जिन पर गर्द जमी हुई थी। दीवारों पर तस्वीरें नई थीं, लेकिन बिल्कुल भद्दी और अस्वाभाविक। यद्यपि वह सिद्धांत रूप से विलास-वस्तुओं की अवहेलना करते थे, पर अभी तक रुचि उनकी ओर से न हटी थी।

लाला प्रभाशंकर उनकी राह देख रहे थे। आकर उनके गले से लिपट गए और फूट-फूटकर रोने लगे। मुहल्ले के और सज्जन भी मिलने आ गए। दो-ढाई घंटों तक प्रेमशंकर उन्हें अमेरिका के वृत्तांत सुनाते रहे। कोई वहां से हटने का नाम न लेता था। किसी को यह ध्यान न होता था कि ये बेचारे सफर करके आ रहे हैं, इनके नहाने-खाने का समय आ गया है, यह बातें फिर सुन लेंगे। आखिर ज्ञानशंकर को साफ-साफ कहना पड़ा कि आप लोग कृपा करके भाई साहब को भोजन करने का समय दीजिए, बहुत देर हो रही है।

प्रेमशंकर ने स्नान किया, संध्या की और ऊपर भोजन करने गए। उन्हें आशा थी कि श्रद्धा भोजन परसेगी, वहीं उससे भेंट होगी, खूब बातें करूंगा। लेकिन यह आशा पूरी न हुई। एक चौकी पर कालीन बिछा हुआ था, थाल परसा रखा था, पर श्रद्धा वहां उनका स्वागत करने के लिए न थी। प्रेमशंकर को उसकी इस प्रेमशून्यता पर बड़ा दुःख हुआ। श्रद्धा से प्रेम उनके लौटने का एक मुख्य कारण था। उसकी याद उन्हें हमेशा तड़पाया करती थी, उसकी प्रेम-मूर्ति सदैव उनके हृदय-नेत्रों के सामने रहती थी। उन्हें प्रेम के बाह्याडंबर से घृणा थी। वह अब भी स्त्रियों की श्रद्धा, पति-भक्ति, लज्जाशीलता और प्रेमानुराग पर मोहित थे। उन्हें श्रद्धा को नीचे दीवानखाने में देखकर खेद होता, पर उसे यहां न देखकर उनका हृदय व्याकुल हो गया। यह लज्जा नहीं, हया नहीं, प्रेम शैथिल्य है। इतने मर्माहत हुए कि जी चाहा इसी क्षण यहां से चला जाऊं

और फिर आने का नाम न लूं पर धैर्य से काम लिया। भोजन पर बैठे। ज्ञानशंकर से बोले, आओ भाई, बैठो। माया कहां है, उसे भी बुलाओ, एक मुद्दत के बाद आज सौभाग्य प्राप्त हुआ।

ज्ञानशंकर ने सिर नीचा करके कहा–आप भोजन कीजिए, मैं फिर खा लूंगा।

प्रेम–ग्यारह तो बज रहे हैं, अब कितनी देर करोगे? आओ, बैठ जाओ। इतनी चीजें मैं अकेले कहां तक खाऊंगा? मुझे अब धैर्य नहीं है। बहुत दिनों के बाद चपातियों के दर्शन हुए हैं। हलुआ, समोसे, खीर आदि का तो स्वाद ही मुझे भूल गया। अकेले खाने में आनंद नहीं आता। यह कैसा अतिथि सत्कार है कि मैं तो यहां भोजन करूं और तुम कहीं और। अमेरिका में तो मेहमान इसे अपना घोर अपमान समझता।

ज्ञान–मुझे तो इस समय क्षमा ही कीजिए। मेरी पाचन-शक्ति दुर्बल है। बहुत पथ्य से रहता हूं।

प्रेमशंकर भूल गए थे कि समुद्र में जाते ही हिन्दू-धर्म धुल जाता है। अमेरिका से चलते समय उन्हें ध्यान भी न था कि बिरादरी मेरा बहिष्कार करेगी, यहां तक कि मेरा सहोदर भाई भी मुझे छूत समझेगा। पर इस समय जब उनके बराबर आग्रह करने पर भी ज्ञानशंकर उनके साथ भोजन करने नहीं बैठे और एक-न-एक बहाना करके टालते रहे तो उन्हें वह भूली हुई बात याद आ गई। सामने के बर्तनों ने इस विचार को पुष्ट कर दिया, फूल या पीतल का कोई बर्तन न था। सब बर्तन चीनी के थे और गिलास शीशे का। शंकित भाव से बोले–आखिर यह बात क्या है कि तुम्हें मेरे साथ बैठने में इतनी आपत्ति है? कुछ छूत-छात का विचार तो नहीं है?

ज्ञानशंकर ने झेंपते हुए कहा–अब मैं आपसे क्या कहूं? हिन्दुओं को तो आप जानते ही हैं, कितने मिथ्यावादी होते हैं। आपके लौटने का समाचार जब से मिला है, सारी बिरादरी में एक तूफान-सा उठा हुआ है। मुझे स्वयं विदेश-यात्रा में कोई आपत्ति नहीं है। मैं देश और जाति की उन्नति के लिए इसे जरूरी समझता हूं; और स्वीकार करता हूं कि इस नाकेबंदी से हमको बड़ी हानि हुई है, पर मुझें इतना साहस नहीं है कि बिरादरी से विरोध कर सकूं।

प्रेम–अच्छा, यह बात है। आश्चर्य है कि अब तक क्यों मेरी आंखों पर परदा पड़ा रहा? अब मैं ज्यादा आग्रह न करूंगा। भोजन करता हूं, पर खेद यह है कि तुम इतने विचारशील होकर बिरादरी के गुलाम बने हुए हो, विशेषकर जब तुम मानते हो कि इस विषय में बिरादरी का बंधन सर्वथा असंगत है। शिक्षा का फल यह होना चाहिए कि तुम बिरादरी के सूत्रधार बनो, उसको सुधारने का प्रयास करो, न यह कि उसके दबाव से अपने सिद्धांतों को भी बलिदान कर दो। यदि तुम स्वाधीन भाव से समुद्र यात्रा को दूषित समझते तो मुझे कोई आपत्ति न होती। तुम्हारे विचार और व्यवहार अनुकूल होते। लेकिन अंतःकरण से किसी बात के कायल होकर केवल निंदा या उपहास के भय से उसका व्यवहार न करना तुम जैसे उदार पुरुष को शोभा नहीं देता। अगर तुम्हारे धर्म में किसी मुसाफिर की बातों पर विश्वास करना मना न हो तो मैं तुम्हें यकीन दिलाता हूं कि अमेरिका में मैंने कोई ऐसा कर्म नहीं किया जिसे हिन्दू-धर्म निषिद्ध ठहराता हो। मैंने दर्शन शास्त्रों पर कितने ही व्याख्यान दिए, अपने रस्म-रिवाज और वर्णाश्रम धर्म का समर्थन करने में सदैव तत्पर रहा, यहां तक कि परदे की रस्म की भी सराहना करता रहा; और मेरा मन इसे कभी नहीं मान सकता कि यहां किसी को मुझे विधर्मी समझने का अधिकार है। मैं अपने धर्म और मत का वैसा ही भक्त हूं, जैसा पहले था–बल्कि उससे ज्यादा। इससे अधिक मैं अपनी सफाई नहीं दे सकता।

ज्ञान–इस सफाई की तो कोई जरूरत ही नहीं; क्योंकि यहां लोगों को विदेश यात्रा पर अश्रद्धा है, वह किसी तर्क या सिद्धांत के अधीन नहीं है। लेकिन इतना तो आपको भी मानना पड़ेगा कि हिन्दू-धर्म कुछ रीतियों और प्रथाओं पर अवलंबित है और विदेश में आप उनका पालन समुचित रीति से नहीं कर सकते। आप वेदों से इंकार कर सकते हैं, ईसा या मूसा के अनुयायी बन सकते हैं, किंतु इन रीतियों को नहीं त्याग सकते। इसमें संदेह नहीं कि दिनों-दिन यह बंधन ढीले होते जाते हैं और इसी देश में ऐसे कितने ही सज्जन हैं जो प्रत्येक व्यवहार का उल्लंघन करके भी हिन्दू बने हुए हैं, किंतु बहुमत उनकी उपेक्षा करता है और उनको निंद्य समझता है। इसे आप मेरी आत्मभीरुता या अकर्मण्यता समझें, किंतु मैं बहुमत के साथ चलना अपना कर्तव्य समझता हूं। मैं बलप्रयुक्त सुधार का कायल नहीं हूं। मेरा विचार है कि हम बिरादरी में रहकर उससे कहीं अधिक सुधार कर सकते हैं जितना स्वाधीन होकर।

प्रेमशंकर ने इसका कुछ जवाब न दिया। भोजन करके लेटे तो अपनी परिस्थिति पर विचार करने लगे। मैंने समझा था यहां शांतिपूर्वक अपना काम करूंगा, कम-से-कम अपने घर में कोई मुझसे विरोध न करेगा, किंतु देखता हूं, यहां कुछ दिन घोर अशांति का सामना करना पड़ेगा। ज्ञानशंकर के उदारतापूर्ण लेख ने मुझे भ्रम में डाल दिया। खैर कोई चिंता नहीं। बिरादरी मेरा कर ही क्या सकती है? उसमें रहकर मुझमें कौन से सुर्खाब के पर लग जाएंगे। अगर कोई मेरे साथ नहीं खाता तो न खाए। मैं भी उसके साथ न खाऊंगा। कोई मुझसे सहवास नहीं करता, न करे, मैं भी उससे किनारे रहूंगा। वाह ! परदेश क्या गया, मानो कोई पाप किया, पर पापियों को तो कोई बिरादरी से च्युत नहीं करता। धर्म बेचने वाले, ईमान बेचने वाले, संतान बेचने वाले बगलें बजाते हैं, कोई उनकी ओर कड़ी आंख से देख नहीं सकता। ऐसे पतितों, ऐसे भ्रष्टाचारियों में रहने के लिए मैं अपनी आत्मा का सर्वनाश क्यों करूं?

अकस्मात् उन्हें ध्यान आया, कहीं श्रद्धा भी मेरा बहिष्कार न कर रही हो ! इन अनुदार भावों का उस पर भी असर न पड़ा हो । फिर तो मेरा जीवन नष्ट हो जाएगा। इस शंका ने उन्हें घोर चिंता में डाल दिया और तीसरे पहर तक उनकी व्यग्रता इतनी बढ़ी कि वह स्थिर न रह सके। माया से श्रद्धा का कमरा पूछकर ऊपर चढ़ गए।

श्रद्धा इस समय अपने द्वार पर इस भांति खड़ी थी, जैसे पथिक रास्ता भूल गया हो। उसका हृदय आनंद से नहीं, एक अव्यक्त भय से कांप रहा था। यह शुभ दिन देखने के लिए उसने तपस्या की थी। यह आकांक्षा उसके अंधकारमय जीवन का दीपक, उसकी डूबती हुई नौका की लंगर थी। महीने के तीस दिन और दिन के चौबीस घंटे यही मनोहर स्वप्न देखने में कटते थे। विडंबना यह थी कि वे आकांक्षाएं और कामनाएं पूरी होने के लिए नहीं, केवल तड़पाने के लिए थीं। वह दाह और संतोष शांति का इच्छुक न था। श्रद्धा के लिए प्रेमशंकर केवल एक कल्पना थे। इसी कल्पना पर वह प्राणार्पण करती थी। उसकी भक्ति केवल उनकी स्मृति पर थी जो अत्यंत मनोरम, भावमय और अनुरागपूर्ण थी। उनकी उपस्थिति ने इस सुखद कल्पना और मधुर स्मृति का अंत कर दिया। वह जो उनकी याद पर जान देती थी, अब उनकी सत्ता से भयभीत थी, क्योंकि वह कल्पना, धर्म और सतीत्व की पोषक थी, और यह सत्ता उनकी घातक। श्रद्धा को सामाजिक अवस्था और समयोचित आवश्यकताओं का ज्ञान था। परंपरागत बंधनों को तोड़ने के लिए जिस विचार-स्वातंत्र्य और दिव्य ज्ञान की जरूरत है उससे वह रहित थी। वह एक साधारण हिन्दू अबला थी; वह अपने प्राणों से, अपने प्राणप्रिय स्वामी से हाथ ध

ा सकती थी; किंतु अपने धर्म की अवज्ञा करना अथवा लोक-निंदा को सहन करना उसके लिए असंभव था। जब से उसने सुना था कि प्रेमशंकर घर आ रहे हैं, उसकी दशा उस अपराध ी की-सी हो रही थी जिसके सिर पर नंगी तलवार लटक रही हो। आज जब से वह नीचे आकर बैठे थे उसके आंसू एक क्षण के लिए भी न थमते थे। उसका हृदय कांप रहा था कि कहीं वह ऊपर न आते हों, कहीं वह आकर मेरे सम्मुख खड़े न हो जाएं, मेरे अंग को स्पर्श न कर लें। मर जाना इससे कहीं आसान था। मैं उनके सामने कैसे खड़ी हूंगी, मेरी आंखें क्योंकर उनसे मिलेंगी, उनकी बातों का क्योंकर जवाब दूंगी? वह इन्हीं ज़टिल चिंताओं में मग्न खड़ी थी कि इतने में प्रेमशंकर उसके सामने आकर खड़े हो गए। श्रद्धा पर अगर बिजली गिर पड़ती, भूमि उसके पैरों के नीचे से सरक जाती अथवा कोई सिंह आकर खड़ा हो जाता तो भी वह इतनी असावधान होकर अपने कमरे में न भाग जाती। वह तो भीतर जाकर एक कोने में खड़ी हो गई। भय से उसका एक-एक रोम कांप रहा था। प्रेमशंकर सन्नाटे में आ गए। कदाचित् आकाश सामने से लुप्त हो जाता तो भी उन्हें इतना विस्मय न होता। वह क्षण भर मूर्तिवत खड़े रहे और एक ठंडी सांस लेकर नीचे की ओर चले। श्रद्धा के कमरे में जाने; उससे कुछ पूछने या कहने का उन्हें साहस न हुआ। इस दुरानुराग ने उनका उत्साह भंग कर दिया, उन काव्यमय स्वप्नों का नाश कर दिया जो बरसों से उनकी चैतन्यावस्था के सहयोगी बने हुए थे। श्रद्धा ने किवाड़ की आड़ से उन्हें जीने की ओर जाते देखा। हा ! इस समय उसके हृदय पर क्या बीत रही थी, कौन जान सकता है? उसका प्रिय पति जिसके वियोग में उसने सात वर्ष रो-रोकर काटे थे; सामने से भग्न-हृदय, हताश चला जा रहा था और वह इस भांति सशंक खड़ी थी मानो आगे कोई बृहद् जलागार है। धर्म पैरों को बढ़ने न देता था। प्रेम-उन्मत्त तरंगों की भांति बार-बार उमड़ता था, पर धर्म की शिलाओं से टकरा कर लौट आता था। एक बार वह अध ीर होकर चली कि प्रेमशंकर का हाथ पकड़कर फेर लाऊं, द्वार तक आई, पर आगे न बढ़ सकी। धर्म ने ललकार कर कहा—प्रेम नश्वर है, निस्सार है, कौन किसका पति और कौन किसकी पत्नी? यह सब माया-जाल है। मैं अविनाशी हूं, मेरी रक्षा करो। श्रद्धा स्तंभित हो गई। मन में स्थिर किया जो स्वामी सात समुंदर पार गया; वहां न जाने क्या खाया, क्या पीया, न जाने किसके साथ रहा, अब उससे मेरा क्या नाता? किंतु जब प्रेमशंकर जीने से नीचे उतर गए तब श्रद्धा मूर्छित होकर गिर पड़ी। उठती हुई लहरें टीले को न तोड़ सकीं, पर तटों को जल-मग्न कर गईं।

सोलह

प्रेमशंकर यहां दो सप्ताह ऐसे रहे, जैसे कोई जल्द छूटने वाला कैदी। जरा भी जी न लगता था। श्रद्धा की धार्मिकता से उन्हें जो आघात पहुंचा था, उसकी पीड़ा एक क्षण के लिए भी शांत न होती थी। बार-बार इरादा करते कि फिर अमेरिका चला जाऊं और फिर जीवन-पर्यंत आने का नाम न लूं। किंतु यह आशा कि कदाचित् देश और समाज की अवस्था का ज्ञान श्रद्धा में सद्विचार उत्पन्न कर दे, उनका दामन पकड़ लेती थी। दिन भर दीवानखाने में पड़े रहते, न

किसी से मिलना न जुलना। कृषि-सुधार के इरादे स्थगित हो गए। उस पर विपत्ति यह थी कि ज्ञानशंकर बिरादरी वालों के षड्यंत्रों के समाचार ला-लाकर उन्हें और भी उद्विग्न करते रहते थे। एक दिन खबर लाए कि लोगों ने एक महती सभा करके आपको समाज-च्युत करने का प्रस्ताव पास कर दिया। दूसरे दिन ब्राह्मणों की एक सभा की खबर लाए जिसमें उन्होंने निश्चय किया कि कोई प्रेमशंकर के घर पूजा-पाठ करने न जाए। इसके एक दिन पीछे श्रद्धा के पुरोहित जी ने आना छोड़ दिया। ज्ञानशंकर बातों-बातों में यह भी जना दिया करते थे कि आपके कारण मैं भी बदनाम हो रहा हूं और शंका है कि लोग मुझे भी त्याग दें। भाई के साथ तो यह व्यवहार था, और बिरादरी के नेताओं के पास जाकर प्रेमशंकर पर झूठे आक्षेप करते—वह देवताओं को गालियां देते हैं, कहते हैं, मांस सब एक है, चाहे किसी का हो। खाना खाकर कभी हाथ-मुंह तक नहीं धोते। कहते हैं, चमार भी कर्मानुसार ब्राह्मण हो सकता है। यह बातें सुन-सुनकर बिरादरी वालों की द्वेषाग्नि और भी भड़कती थी, यहां तक कि कई मनचले नवयुवक तो इस पर उद्यत थे कि प्रेमशंकर को कहीं अकेले पा जाएं तो उनकी अच्छी तरह खबर लें। 'तिलक' एक स्थानीय समाचार-पत्र था। उसमें इस विषय पर खूब जहर उगला जाता था। ज्ञानशंकर नित्य वह पत्र लाकर अपने भाई को सुनाते और यह सब केवल इसलिए कि वह निराश और भयभीत होकर यहां से भाग खड़े हों और मुझे जायदाद में हिस्सा न देना पड़े। प्रेमशंकर साहस और जीवट के आदमी थे, इन धमकियों की उन्हें परवाह न थी लेकिन उन्हें मंजूर न था कि मेरे कारण ज्ञानशंकर पर कोई आंच आए। श्रद्धा की ओर से भी उनका चित्त फटता जाता था। इस चिंतामय अवस्था का अंत करने के लिए वह कहीं जाकर शांति के साथ रहना और अपने जीवनोद्देश्य को पूरा करना चाहते थे। पर जाएं कहां? ज्ञानशंकर से एक बार लखनपुर में रहने की इच्छा प्रकट की थी, पर उन्होंने इतनी आपत्तियां खड़ी कीं, कष्टों और असुविधाओं का एक ऐसा चित्र खींचा कि प्रेमशंकर उनकी नीयत को ताड़ गए। वह शहर के निकट ही थोड़ी-सी ऐसी जमीन चाहते थे, जहां एक कृषिशाला खोल सकें। इसी धुन में नित्य इधर-उधर चक्कर लगाया करते थे। स्वभाव में संकोच इतना कि किसी से अपने इरादे जाहिर नहीं करते। हां, लाला प्रभाशंकर का पितृवत् प्रेम और स्नेह उन्हें अपने मन का विचार प्रकट करने पर बाध्य कर देता था। लालाजी को जब अवकाश मिलता, वह प्रेमशंकर के पास आ बैठते और अमेरिका का वृत्तांत बड़े शौक से सुनते। प्रेमशंकर दिनों-दिन उनकी सज्जनता पर मुग्ध होते जाते थे। ज्ञानशंकर तो सदैव उनका छिद्रान्वेषण किया करते पर उन्होंने कभी भूलकर भी ज्ञानशंकर के खिलाफ जबान नहीं खोली। वह प्रेमशंकर के विचारों से सहमत न होते थे; यही सलाह दिया करते कि कहीं सरकारी नौकरी कर लो।

एक दिन प्रेमशंकर को उदास और चिंतित देखकर लालाजी बोले—क्या यहां जी नहीं लगता?

प्रेम—मेरा विचार है कि कहीं अलग मकान लेकर रहूं। यहां मेरे रहने से सबको कष्ट होता है।

प्रभा—तो मेरे घर उठ चलो, वह भी तो तुम्हारा ही घर है। मैं भी कोई बेगाना नहीं हूं। वहां कोई कष्ट न होगा। हम लोग इसे अपना धन्य भाग समझेंगे। कहीं नौकरी के लिए लिखा?

प्रेम—मेरा इरादा कहीं नौकरी करने का नहीं है।

प्रभा—आखिर तुम्हें नौकरी से क्यों इतनी नफरत है? नौकरी कोई बुरी चीज है?

प्रेम—जी नहीं, मैं उसे बुरा नहीं कहता। पर मेरा मन उससे भागता है।

प्रभा—तो मन को समझाना चाहिए न? आज सरकारी नौकरी का जो मान-सम्मान है वह और किसका है? और आमदनी अच्छी, काम कम, छुट्टी ज्यादा। व्यापार में नित्य हानि का भय, जमींदारी में नित्य अधिकारियों की खुशामद और असामियों के बिगड़ने का खटका। नौकरी इन सब पेशों से उत्तम है। खेती-बारी का शौक उस हालत में भी पूरा हो सकता है। यह तो रईसों के मनोरंजन की सामग्री है। अन्य देशों के हालात तो नहीं जानता, पर यहां किसी रईस के लिए खेती करना अपमान की बात है। मुझे भूखों मरना कबूल है, पर दुकानदारी या खेती करना कबूल नहीं।

प्रेम—आपका कथन सत्य है, पर मैं अपने मन से मजबूर हूं। मुझे थोड़ी-सी जमीन की तलाश है पर इधर कहीं नजर नहीं आती।

प्रभा—अगर इसी पर मन लगा है तो करके देख लो। क्या करूं, मेरे पास शहर के निकट जमीन नहीं है, नहीं तो तुम्हें हैरान न होना पड़ता। मेरे गांव में करना चाहो तो जितनी जंमीन चाहो मिल सकती है, मगर दूर है।

इसी हैस-बैस में चैत का महीना भी गुजर गया। प्रेमशंकर ने कृषि-प्रयोगशाला की आवश्यकता की ओर रईसों का ध्यान आकर्षित करने के लिए समाचार-पत्रों में कई विद्वतापूर्ण लेख छपवाए। इन लेखों का बड़ा आदर हुआ। उन्हें पत्रों ने उद्धृत किया, उन पर टीकाएं कीं और कई अन्य भाषाओं में उनके अनुवाद भी हुए। इसका फल यह हुआ कि ताल्लुकेदार एसोसिएशन ने अपने वार्षिकोत्सव के अवसर पर प्रेमशंकर को कृषि-विषयक एक निबंध पढ़ने के लिए निमंत्रित किया। प्रेमशंकर आनंद से फूले न समाए। बड़ी खोज और परिश्रम से एक निबन्ध लिखा और लखनऊ आ पहुंचे। केसरबाग में इस उत्सव के लिए एक विशाल पंडाल बनाया गया था। राय कमलानन्द इस सभा के मन्त्री चुने गए थे। मई का महीना था। गरमी खूब पड़ने लगी थी। मैदानों में भी संध्या समय तक लू चला करती थी। घर में बैठना नितान्त दुस्सह था। रात के आठ बजे प्रेमशंकर राय साहब के निवास स्थान पर पहुंचे। राय साहब ने तुरंत उन्हें अंदर बुलाया। वह इस समय अपने दीवानखाने के पीछे की एक छोटी-सी कोठरी में बैठे हुए थे। ताक पर एक धुंधला-सा दीपक जल रहा था। गरमी इतनी थी कि जान पड़ता था अग्निकुंड है। पर इस आग की भट्ठी में राय साहब एक मोटा ऊनी कंबल ओढ़े हुए थे। उनके मुख पर विलक्षण तेज था और नेत्रों से दिव्य प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा था। प्रतिभा और सौम्यता की सजीव मूर्ति मालूम होते थे। उनका शारीरिक गठन और दीर्घकाया किसी पहलवान को भी लज्जित कर सकती थी। उनके गले में रुद्राक्ष की माला थी, बगल में एक चांदी का प्याला और गडुवा रखा हुआ था। तख्ते के एक ओर दो मोटे ताजे जवान बैठे पंजा लड़ा रहे थे और उसकी दूसरी ओर तीन कोमलांगी रमणियां वस्त्राभूषणों से सजी हुई विराज रही थीं। इन्द्र का अखाड़ा था, जिसमें इन्द्र, काले देव और अप्सराएं सभी अपना-अपना पार्ट खेल रहे थे।

प्रेमशंकर को देखते ही राय साहब ने उठकर बड़े तपाक से उनका स्वागत किया। उनके बैठने को एक कुर्सी मंगाई और बोले—क्षमा कीजिए, मैं इस समय देवोपासना कर रहा हूं, पर आपसे मिलने के लिए ऐसा उत्कंठित था कि एक क्षण का विलम्ब भी न सह सका। आपको देखकर चित्त प्रसन्न हो गया। सारा संसार ईश्वर का विराट् स्वरूप है। जिसने संसार को देख लिया, उसने ईश्वर के विराट् स्वरूप का दर्शन कर लिया। यात्रा अनुभूत ज्ञान प्राप्त करने का

स...ाम साधन है। कुछ जल-पान के लिए मंगाऊं?

प्रेम—जी नहीं, अभी जलपान कर चुका हूं।

राय साहब—समझ गया, आप भी जवानी में बूढ़े हो गए। भोजन-आहार का यही पथ्यापथ्य-विचार बुढ़ापा है। जवान वह है जो भोजन के उपरांत फिर भोजन करे, ईंट-पत्थर तक भक्षण कर ले। जो एक बार जलपान करके फिर नहीं खा सकता, जिसके लिए कुम्हाड़ा बादी है, करेला गर्म, कटहल गरिष्ठ, उसे मैं बूढ़ा ही समझता हूं। मैं सर्वभक्षी हूं और इसी का फल है कि साठ वर्ष की आयु होने पर भी मैं जवान हूं।

यह कहकर राय साहब ने लोटा मुंह से लगाया और कई घूंट गट-गट पी गए, फिर प्याले में से कई चमचे निकालकर खाए और जीभ चटकाते हुए बोले, यह न समझिए कि मैं स्वादेन्द्रिय का दास हूं। मैं इच्छाओं का दास नहीं, स्वामी बनकर रहता हूं। यह दमन करने का साधन मात्र है। तैराक वह है जो पानी में गोते लगाए। योद्धा वह है जो मैदान में उतरे। वबा से भाग कर वबा से बचने का कोई मूल्य नहीं। ऐसा आदमी वबा की चपेट में आकर फिर नहीं बच सकता। वास्तव में रोग-विजेता वही है जिसकी स्वाभाविक अग्नि, जिसकी अंतरस्थ ज्वाला, रोग-कीटों को भस्म कर दे। इस लोटे में आग की चिंगारियां हैं, पर मेरे लिए शीतल जल है। इस प्याले में वह पदार्थ है, जिसका एक चमचा किसी योगी को भी उन्मत्त कर सकता है, पर मेरे लिए सूखे साग के तुल्य है। आज-कल यही मेरा आहार है, मैं गर्मी में आग खाता हूं और आग ही पीता हूं। मैं शिव और शक्ति का उपासक हूं। विष को दूध-घी समझता हूं। जाड़े में हिमकणों का सेवन करता हूं और हिमालय की हवा खाता हूं। हमारी आत्मा ब्रह्म का ज्योतिस्वरूप है। उसे मैं देश और काल, इच्छाओं और चिंताओं से मुक्त रखना चाहता हूं। आत्मा के लिए पूर्ण अखंड स्वतंत्रता सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। मेरे किसी काम का कोई निर्दिष्ट समय नहीं। जो इच्छा होती है, करता हूं। आपको कोई कष्ट तो नहीं है, आराम से बैठिए।

प्रेम—बहुत आराम से बैठा हूं।

राय साहब—आप इस त्रिमूर्ति को देखकर चौंकते होंगे। पर मेरे लिए यह मिट्टी के खिलौने हैं। विषयासक्त आंखें इनके रूप लावण्य पर मिट्टी हैं, मैं उस ज्योति को देखता हूं जो इनके घट में व्यापक है। बाह्य रूप कितना ही सुंदर क्यों न हो, मुझे विचलित नहीं कर सकता। वह भकुए हैं, जो गुफाओं और कंदराओं में बैठकर तप और ध्यान के स्वांग भरते हैं। वह कायर हैं, प्रलोभनों से मुंह छिपाने वाले, तृष्णाओं से जान बचाने वाले। वे क्या जानें कि आत्म-स्वातंत्र्य क्या वस्तु है! चित्त की दृढ़ता और मनोबल का उन्हें अनुभव ही नहीं हुआ। वह सूखी पत्तियां हैं, जो हवा के एक झोंके से जमीन पर गिर पड़ती हैं। योग कोई दैहिक क्रिया नहीं है। आत्म-शुद्धि, मनोबल और इन्द्रियदमन ही सच्चा योग, सच्ची तपस्या है। वासनाओं में पड़कर अविचलित रहना ही सच्चा वैराग्य है। उत्तम पदार्थों का सेवन कीजिए, मधुर गान का आनंद उठाइए, सौंदर्य की उपासना कीजिए, परंतु मनोवृत्तियों का दास न बनिए, फिर आप सच्चे वैरागी हैं। (दोनों पहलवानों से) पंडाजी! तुम बिल्कुल बुद्धू ही रहे। यह महाशय अमेरिका का भ्रमण कर आए हैं, हमारे दामाद हैं। इन्हें कुछ अपनी कविता सुनाओ, खूब फड़कते हुए कवित्त हों।

दोनों पंडे खड़े हो गए और स्वर मिलाकर एक किंतु कवित्त पढ़ने लगे। किंतु कवित्त क्या था, अपशब्दों का पोथा और अश्लीलता का अविरल प्रवाह था। एक-एक शब्द बेहयाई और बेशर्मी में डूबा हुआ था। मुंहफट भांड भी लज्जास्पद अंगों का ऐसा नग्न, ऐसा घृणोत्पादक

वर्णन न कर सकते होंगे। कवि ने समस्त भारतवर्ष के कबीर और फाग का इत्र, समस्त कायस्थ समाज की वैवाहिक गजलों का सत्, समस्त भारतीय नारी-वृंद की प्रथा-प्रणीत गालियों का निचोड़ और समस्त पुलिस विभाग के कर्मचारियों के अपशब्दों का जौहर खींचकर रख दिया था, और यह गंदे कवित्त इन पंडों के मुंह से ऐसी सफाई से निकल रहे थे, मानो फूल झड़ रहे हैं। राय साहब मूर्तिवत् बैठे थे, हंसी का तो कहना क्या, होंठों पर मुस्कराहट का चिह्न भी न था। तीनों वेश्याओं ने शर्म से सिर झुका लिया, किंतु प्रेमशंकर हंसी को न रोक सके। हंसते-हंसते उनके पेट में बल पड़ गए।

पंडों के चुप होते ही समाजियों का आगमन हुआ। उन्होंने अपने साज मिलाए, तबले पर थाप पड़ी, सारंगियों ने स्वर मिलाया और तीनों रमणियां एक ध्रुपद अलापने लगीं। प्रेमशंकर को स्वर-लालित्य का वही आनंद मिल रहा था जो किसी गंवार को उज्ज्वल रत्नों को देखने से मिलता है। इस आनंद में रसज्ञता न थी, किंतु मर्मज्ञ राय साहब मस्त हो-होकर झूम रहे थे और कभी-कभी स्वयं गाने लगते थे।

आधी रात तक मधुर अलाप की तानें उठती रहीं। जब प्रेमशंकर ऊंघ-ऊंघकर गिरने लगे तब सभा विसर्जित हुई। उन्हें राय साहब की बहुज्ञता और प्रतिभा पर आश्चर्य हो रहा था। इस मनुष्य में कितना बुद्धि-चमत्कार, कितना आत्मबल, कितनी सिद्धि, कितनी सजीवता है और जीवन का कितना विलक्षण आदर्श !

दूसरे दिन प्रेमशंकर सोकर उठे तो आठ बजे थे। मुंह-हाथ धोकर बरामदे में टहलने लगे कि सामने से राय साहब एक मुश्की घोड़े पर सवार आते दिखाई दिए। शिकारी वस्त्र पहने हुए थे। कंधे पर बंदूक थी। पीछे-पीछे शिकारी कुत्तों का झुंड चला आ रहा था। प्रेमशंकर को देखकर बोले—आज किसी भले आदमी का मुंह देखा था। एक बार भी खाली नहीं गया। निश्चय कर लिया था कि जलपान के समय तक लौट आऊंगा। आप कुछ अनुमान कर सकते हैं कितनी दूर से आ रहा हूं? पूरे बीस मील का धावा किया है। तीन घंटे से ज्यादा कभी नहीं सोता। मालूम है न, आज तीन बजे जलसा शुरू होगा।

प्रेम—जी हां, डेलीगेट लोग (प्रतिनिधिगण) आ गए होंगे?

राय—(हंसकर) मुझे अभी तक कुछ खबर नहीं और मैं ही स्वागतकारिणी समिति का प्रधान हूं। मेरे मुख्तार साहब ने सब प्रबंध कर दिया होगा। अभी तक मैंने कुछ भी नहीं सोचा कि वहां क्या कहूंगा? बस, मौके पर जो कुछ मुंह में आएगा, बक डालूंगा।

प्रेम—आपकी सूझ बहुत अच्छी होगी?

राय—जी हां, मेरे एसोसिएशन में ऐसा कोई नहीं है, जिसकी सूझ अच्छी न हो। इस गुण में एक से एक बढ़कर हैं। कोषाध्यक्ष महाशय को आय-व्यय का पता नहीं, पर सभा के सामने वह पूरा ब्योरा दिखा देंगे। यही हाल औरों का भी है। जीवन इतना अल्प है कि आदमी को अपने ही ढोल पीटने से छुट्टी नहीं मिलती, जाति का मजीरा कौन बजाए?

प्रेम—ऐसी संस्थाओं से देश का क्या उपकार होगा?

राय—उपकार क्यों नहीं, क्या आपके विचार में जाति का नेतृत्व निरर्थक वस्तु है? आजकल तो यही उपाधियों का सदर दरवाजा हो रहा है। सरल भक्तों का श्रद्धास्पद बनना क्या कोई मामूली बात है? बेचारे जाति के नाम पर मरने वाले सीधे-सादे लोग दूर-दूर से हमारे दर्शनों को आते हैं, हमारी गाड़ियां खींचते हैं, हमारी पदरज को माथे पर चढ़ाते हैं। क्या यह कोई छोटी

बात है? और फिर हममें कितने ही जाति के सेवक ऐसे भी हैं जो सारा हिसाब मन में रखते हैं, उनसे हिसाब पूछिए तो वह अपनी तौहीन समझेंगे और इस्तीफे की धमकी देंगे। इसी संस्था के सहायक मंत्री की वकालत बिलकुल नहीं चलती, पर अभी उन्होंने बीस हजार का एक बंगला मोल लिया है। जाति से ऐसे भी लेना है, वैसे भी लेना है, चाहे इस बहाने से लीजिए, चाहे उस बहाने से लीजिए !

प्रेम–मुझे अपना निबंध पढ़ने का समय कब मिलेगा?

राय–आज तो मिलता नहीं। कल गार्डन पार्टी है। हिज एक्सेलेंसी और अन्य अधिकारी वर्ग निमंत्रित हैं। सारा दिन उसी तैयारी में लग जायगा। परसों सब चिड़ियां उड़ जाएंगी, कुछ गिने-गिनाए लोग रह जाएंगे, तब आप शौक से अपना लेख सुनाइएगा।

यही बातें हो रही थीं कि राजा इन्द्रकुमारसिंह का आगमन हुआ। राय साहब ने उनका स्वागत करके पूछा–नैनीताल कब तक चलिएगा?

राजा साहब–मैं तो सब तैयारियां करके चला हूं। यहीं से हिज एक्सेलेन्सी के साथ चला जाऊंगा। क्या मिस्टर ज्ञानशंकर नहीं आए?

प्रेम–जी नहीं, उन्हें अवकाश नहीं मिला।

राजा–मैंने समाचार-पत्रों में आपके लेख देखे हैं। इसमें संदेह नहीं कि आप कृषि-शास्त्र के पंडित हैं, पर आप जो प्रस्ताव कर रहे हैं वह यहां के लिए कुछ बहुत उपयुक्त नहीं जान पड़ता। हमारी सरकार ने कृषि की उन्नति के लिए कोई बात उठा नहीं रखी। जगह-जगह पर प्रयोगशालाएं खोलीं, सस्ते दामों में बीज बेचती है, कृषि संबंधी आविष्कारों का पत्रों द्वारा प्रचार करती है। इस काम के लिए कितने ही निरीक्षक नियुक्त किए हैं, कृषि के बड़े-बड़े कॉलेज खोल रखे हैं, पर उनका फल कुछ न निकला। जब वह करोड़ों रुपये व्यय करके कृतकार्य न हो सकी तो आप दो लाख की पूंजी से क्या कर लेंगे? आपके बनाए हुए यंत्र कोई सेंत भी न लेगा। आपकी रासायनिक खादें पड़ी सड़ेंगी। बहुत हुआ, तो आप पांच-सात सैकड़े मुनाफा दे देंगे। इससे क्या होता है? जब हम दो-चार कुएं खोदवाकर, पटवारी से मिलकर, कर्मचारियों का सत्कार करके आसानी से अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं, तो यह झंझट कौन करे?

प्रेम–मेरा उद्देश्य कोई व्यापार खोलना नहीं है। मैं तो केवल कृषि की उन्नति के लिए धन चाहता हूं। संभव है आगे चलकर लाभ हो, पर अभी तो मुनाफे की कोई आशा नहीं।

राजा–समझ गया, यह केवल पुण्य-कार्य होगा।

प्रेम–जी हां, यही मेरा उद्देश्य है। मैंने अपने लेखों में और इस निबंध में भी यही बात साफ-साफ कह दी है।

राजा–तो फिर आपने श्रीगणेश करने में ही भूल की। आपको पहले इस विषय में लाट साहब की सहानुभूति प्राप्त करनी चाहिए थी। तब दो की जगह आपको दस लाख बात की बात में मिल जाते। बिना सरकारी प्रेरणा के यहां ऐसे कामों में सफलता नहीं होती। यहां आप जितनी संस्थाएं देख रहे हैं, उनमें किसी का जन्म स्वाधीन रूप से नहीं हुआ। यहां की यही प्रथा है। राय साहब यदि आपको हिज एक्सेलेंसी से मिला दें और उनकी आप पर कृपा-दृष्टि हो जाय तो कल ही रुपये का ढेर लग जाए।

राय–मैं बड़ी खुशी से तैयार हूं।

प्रेम–मैं इस संस्था को सरकारी संपर्क से अलग रखना चाहता हूं।

राजा—ऐसी दशा में आप इस एसोसिएशन से सहायता की आशा न रखें। कम-से-कम मेरा यही विचार है; क्यों राय साहब?

राय—आपका कहना व्यर्थ है।

प्रेम—तो फिर मेरा निबंध पढ़ना व्यर्थ है।

राजा—नहीं, व्यर्थ नहीं है। संभव है, आप इसके द्वारा आगे चलकर सरकारी सहायता पा सकें। हां, राय साहब, प्रधानजी का जुलूस निकालने की तैयारी हो रही है न? वह तीसरे पहर की गाड़ी से आने वाले हैं।

प्रेमशंकर निराश हो गए। ऐसी सभा में अपना निबंध पढ़ना अंधों के आगे रोना था। वह तीन दिन लखनऊ रहे और एसोसिएशन के अधिवेशन में शरीक होते रहे, किंतु न तो अपना लेख पढ़ा और न किसी ने उनसे पढ़ने के लिए जोर दिया। वहां तो सभी अधिकारियों के सेवा-सत्कार में ऐसे दत्तचित्त थे मानो बरात आई हो। बल्कि उनका वहां रहना सबको अखरता था। सभी समझते थे कि यह महाशय मन में हमारा तिरस्कार कर रहे हैं। लोगों को किसी गुप्त रीति से मालूम हो गया था कि यह स्वराज्यवादी हैं। इस कारण से किसी ने उनसे निबंध पढ़ने के लिए आग्रह नहीं किया, यहां तक कि गार्डन पार्टी में उन्हें निमंत्रण भी न दिया। यह रहस्य लोगों पर उनके आने के एक दिन पीछे खुला था, नहीं तो कदाचित् उनके पास लेख पढ़ने का आदेश-पत्र भी न भेजा जाता। प्रेमशंकर ऐसी दशा में वहां क्योंकर ठहरते? चौथे दिन घर चले आए। दो-तीन दिन तक उनका चित्त बहुत खिन्न रहा, किंतु इसलिए नहीं कि उन्हें आशातीत सफलता न हुई, बल्कि इसलिए कि उन्होंने सहायता के लिए रईसों के सामने हाथ फैलाकर अपने स्वाभिमान की हत्या की। यद्यपि अकेले पड़े-पड़े उनका जी बहुत उकताता था, पर इसके साथ ही यह अवस्था आत्म-चिंतन के बहुत अनुकूल थी। निःस्वार्थ सेवा करना मेरा कर्तव्य है। प्रयोगशाला स्थापित करके मैं कुछ स्वार्थ भी सिद्ध करना चाहता था। कुछ लाभ होता, कुछ नाम होता। परमात्मा ने उसी का मुझे यह दंड दिया है। सेवा का क्या यही एक साधन है? मैं प्रयोगशाला के ही पीछे क्यों पड़ा हुआ हूं? बिना प्रयोगशाला के भी कृषि-संबंधी विषयों का प्रचार किया जा सकता है। रोग-निवारण क्या सेवा नहीं है? इन प्रश्नों ने प्रेमशंकर के सदुत्साह को उत्तेजित कर दिया। वह प्रायः घर से निकल जाते और आस-पास के देहातों में जाकर किसानों से खेती-बारी के विषय में वार्त्तालाप करते। उन्हें अब मालूम हुआ कि यहां के किसानों को जितना मूर्ख समझा जाता है, वे उतने मूर्ख नहीं हैं। उन्हें किसानों से कितनी ही नई बातों का ज्ञान हुआ। शनैः-शनैः वह दिन-दिन भर घर से बाहर रहने लगे। कभी-कभी दूर के देहातों में चले जाते, दो-दो; तीन-तीन दिनों तक न लौटते।

सत्रह

जेठ का महीना था। आकाश से आग बरसती थी। राज्याधिकारी वर्ग पहाड़ों पर ठंडी हवा खा रहे थे। भ्रमण करने वाले कर्मचारियों के दौरे भी बंद थे; पर प्रेमशंकर की तातील न थी। उन्हें बहुधा दोपहर का समय पेड़ों की छांह में काटना पड़ता, कभी दिन का दिन निराहार बीत जाता,

पर सेवा की धुन ने उन्हें शारीरिक सुखों से विरक्त कर दिया था। किसी गांव में हैजा फैलने की खबर मिलती, कहीं कीड़े ऊख के पौधे का सर्वनाश किए डालते थे, कहीं आपस में लठियाव होने का समाचार मिलता। प्रेमशंकर डाकियों की भांति इन सभी स्थानों पर जा पहुंचते और यथासाध्य कष्ट-निवारण का प्रयास करते। कभी-कभी लखनपुर तक का धावा मारते। जब आषाढ़ में मेह बरसा तो प्रेमशंकर को अपने काम में बड़ी असुविधा होने लगी। वह एक विशेष प्रकार के धानों का प्रचार करना चाहते थे। तरकारियों के बीज भी वितरण करने के लिए मंगा रखे थे। उन्हें बोने और उपजाने की विधि बतलानी भी जरूरी थी। इसीलिए उन्होंने शहर से चार-पांच मील पर वरुणा किनारे हाजीगंज में रहने का निश्चय किया। गांव से बाहर फूस का एक झोंपड़ा पड़ गया। दो-तीन खाटें आ गईं। गांव वालों की उन पर असीम भक्ति थी। उनके निवास को लोगों ने अहोभाग्य समझा। उन्हें सब लोग अपना रक्षक, अपना इष्टदेव समझते थे और उनके इशारे पर जान देने को तैयार रहते थे।

यद्यपि प्रेमशंकर को यहां बड़ी शांति मिलती थी, पर श्रद्धा की याद कभी-कभी विकल कर देती थी। वह सोचते, यदि वह भी मेरे साथ होती तो कितने आनंद से जीवन व्यतीत होता। उन्हें यह ज्ञात हो गया था कि ज्ञानशंकर ने ही मेरे विरुद्ध उसके कान भरे हैं, अतएव उन्हें अब उस पर क्रोध के बदले दया आती थी। उन्हें एक बार उससे मिलने और उसके मनोगत भावों के जानने की बड़ी आकांक्षा होती थी। कई बार इरादा किया कि उसे एक पत्र लिखूं पर यह सोचकर कि जवाब दे या न दे, टाले जाते थे। इस चिंता के अतिरिक्त अब धनाभाव से कष्ट होता था। अमेरिका से जितने रुपये लाए थे, वह इन चार महीनों में खर्च हो गए थे और यहां नित्य ही रुपयों का काम लगा रहता था। किसानों से अपनी कठिनाइयां बयान करते हुए इन्हें संकोच होता था। वह अपने भोजनादि का बोझ "ी उन पर डालना पसंद न करते थे और न शहर के किसी रईस से ही सहायता मांगने का साहस होता था। अंत में उन्होंने निश्चय किया कि ज्ञानशंकर से अपने हिस्से का मुनाफा मांगना चाहिए। उन्हें मेरे हिस्से की पूरी रकम उड़ा जाने का क्या अधिकार है? श्रद्धा के भरण-पोषण के लिए वह अधिक-से-अधिक मेरा हिस्सा ले सकते हैं। तब भी मुझे एक हजार के लगभग मिल जाएंगे। इस वक्त काम चलेगा, फिर देखा जायगा। निःसन्देह इस आमदनी पर मेरा कोई हक नहीं है, मैंने उसका अर्जन नहीं किया, लेकिन मैं उसे अपने भोग-विलास के निमित्त तो नहीं चाहता, उसे लेकर परमार्थ में खर्च करना आपत्तिजनक नहीं हो सकता। पहले प्रेमशंकर की निगाह इस तरफ कभी नहीं गई थी, वह इन रुपयों को ग्रहण करना अनुचित समझते थे। पर अभाव बहुधा सिद्धांतों और धारणाओं का बाधक है। सोचा था कि पत्र में सब कुछ साफ़-साफ लिख दूंगा, पर लिखने बैठे तो केवल इतना लिखा कि मुझे रुपयों की बड़ी जरूरत है। आशा है मेरी कुछ सहायता करेंगे। भावों को लेखबद्ध करने में हम बहुत विचारशील हो जाते हैं।

ज्ञानशंकर को यह पत्र मिला तो जामे से बाहर हो गए। श्रद्धा को सुनाकर बोले, यह तो नहीं होता कि कोई उद्यम करें, बैठे-बैठे सुकीर्ति का आनंद उठाना चाहते हैं। जानते होंगे कि यहां रुपये बरस रहे हैं। बस बिना हर्रे-फिटकरी के मुनाफा हाथ आ जाता है। और यहां अदालत के खर्च के मारे कचूमर निकला जाता है। एक हजार रुपये कर्ज लेकर खर्च कर चुका और अभी पूरा साल पड़ा है। एक बार हिसाब-किताब देख लें तो आंखें खुल जाएं; मालूम हो जाए कि जमींदारी परोसा हुआ थाल नहीं है। सैकड़ों रुपये साल कर्मचारियों की नजर-नियाज में

उड़ जाते हैं।

यह कहते हुए उसी गुस्से में पत्र का उत्तर लिखने नीचे गए। उन्हें अपनी अवस्था और दुर्भाग्य पर क्रोध आ रहा था। राय कमलानंद की चेतावनी बार-बार याद आती थी। वही हुआ, जो उन्होंने कहा था।

संध्या हो गई थी। आकाश पर काली घटा छाई हुई थी। प्रेमशंकर सोच रहे थे, बड़ी देर हुई अभी तक आदमी जवाब लेकर नहीं लौटा। कहीं पानी न बरसने लगे, नहीं तो इस वक्त आ भी न सकेगा। देखूं क्या जवाब देते हैं? सूखा जवाब तो क्या देंगे, हां, मन में अवश्य झुंझलाएंगे। अब मुझे भी निःसंकोच होकर लोगों से सहायता मांगनी चाहिए, अपने बल पर यह बोझ मैं नहीं संभाल सकता। थोड़ी-सी जमीन मिल जाती, मैं स्वयं कुछ पैदा करने लगता तो यह दशा न रहती। जमीन तो यहां बहुत कम है। हां, पचास बीघे का यह ऊसर अलबत्ता है, लेकिन जमींदार साहब से सौदा पटना कठिन है। वह ऊसर के लिए दो सौ रुपये बीघे नजराना मांगेंगे। फिर इसकी रेह निकालने और पानी के निकास के लिए नालियां बनाने में हजारों का खर्च है। क्या बताऊं, ज्ञानू ने मेरे सारे मंसूबे चौपट कर दिए, नहीं लखनपुर यहां से कौन बहुत दूर था? मैं पंद्रह-बीस बीघे की सीर भी कर लेता तो मुझे किसी की मदद की दरकार न होती।

वह इन्हीं विचारों में डूबे थे कि सामने से एक इक्का आता दिखाई दिया। पहले तो कई आदमियों ने इक्केवान को ललकारा। क्यों खेत में इक्का लाता है? आंखें फूटी हुई हैं? देखता नहीं, खेत बोया हुआ है? पर जब इक्का प्रेमशंकर के झोंपड़े की ओर मुड़ा तो लोग चुप हो गए। इस पर लाला प्रभाशंकर और उनके दोनों लड़के पद्मशंकर और तेजशंकर बैठे थे। प्रेमशंकर ने दौड़कर उनका स्वागत किया। प्रभाशंकर ने उन्हें गले से लगा लिया और पूछा—अभी तुम्हारा आदमी ज्ञानू का जवाब लेकर तो नहीं आया?

प्रेम—जी नहीं, अभी तो नहीं आया, देर बहुत हुई।

प्रभा—मेरे ही हाथ बाजी रही। मैं उसके एक घंटा पीछे चला हूं। यह लो, बड़ी बहू ने यह लिफाफा और यह संदूकची तुम्हारे पास भेजी है। मगर यह तो बताओ, यह वनवास क्यों कर रहे हो? तुम्हारे एक छोड़ दो-दो घर हैं। उनमें न रहना चाहो तो तुम्हारे कई मकान किराए पर उठे हुए हैं, उनमें से जिसे चाहो खाली करा दूं। आराम से शहर में रहो। तुम्हें इस दशा में देखकर मेरा हृदय फटा जाता है। यह फूस का झोंपड़ा, बीहड़ स्थान, न कोई आदमी न आदमजाद। मुझसे तो यहां एक क्षण भी न रहा जाए। हफ्तों घर की सुधि नहीं लेते। मैं तुम्हें यहां न रहने दूंगा। हम तो महल में रहें और तुम यों बनवास करो। (सजल नेत्र होकर) यह सब मेरा दुर्भाग्य है। मेरे कलेजे के टुकड़े हुए जाते हैं। भाई साहब जब तक जीवित रहे, मैं अपने ऊपर गर्व करता था। समझता था कि मेरी बदौलत एका बना हुआ है। लेकिन उनके उठते ही घर की श्री उठ गई। मैं दो-चार साल भी उस मेल को न निभा सका। वह भाग्यशाली थे, मैं अभागा हूं और क्या कहूं।

प्रेमशंकर ने बड़ी उत्सुकता से लिफाफा खोला और पढ़ने लगे। लालाजी की तरफ उनका ध्यान न था।

'प्रिय प्राणपति, दासी का प्रणाम स्वीकार कीजिए। आप जब तक विदेश में थे, वियोग के दुःख को धैर्य के साथ सहती रही, पर आपका यह एकांत निवास नहीं सहा जाता। मैं यहां आपसे बोलती न थी, आपसे मिलती न थी, पर आपको आंखों से देखती तो थी, आपकी सेवा

तो कर सकती थी। आपने यह सुअवसर भी मुझसे छीन लिया। मुझे तो संसार की हंसी का डर था, आपको भी संसार की हंसी का डर है? मुझे आपसे मिलते हुए अनिष्ट की आशंका होती है। धर्म को तोड़कर कौन प्राणी सुखी रह सकता है? आपके विचार तो ऐसे नहीं, फिर आप क्यों मेरी सुधि नहीं लेते?

यहां लोग आपके प्रायश्चित्त करने की चर्चा कर रहे हैं। मैं जानती हूं, आपको बिरादरी का भय नहीं है, पर यह भी जानती हूं कि आप मुझ पर दया और प्रेम रखते हैं। क्या मेरी खातिर इतना न कीजिएगा। मेरे धर्म को न निभाइएगा?

इस संदूकची में मेरे कुछ गहने और रुपये हैं। गहने अब किसके लिए पहनूं? कौन देखेगा? यह तुच्छ भेंट है, इसे स्वीकार कीजिए। यदि आप न लेंगे तो समझूंगी कि आपने मुझसे नाता तोड़ दिया।

आपकी अभागिनी, 'श्रद्धा'

प्रेमशंकर के मन में पहले विचार हुआ कि संदूकची को वापस कर दूं और लिख दूं कि मुझे तुम्हारी मदद की जरूरत नहीं। क्या मैं ऐसा निर्लज्ज हो गया कि जो स्त्री मेरे पास इतनी निष्ठुरता से पेश आए उसी के सामने मदद के लिए हाथ फैलाऊं? लेकिन एक ही क्षण में यह विचार पलट गया। उसके स्थान पर यह शंका हुई कि कहीं इसने मन में कुछ और तो नहीं ठान ली है? यह पत्र किसी विषम संकल्प का सूचक तो नहीं है? वह अस्थिर चित्त होकर इधर-उधर टहलने लगे। सहसा लाला प्रभाशंकर से बोले—आपको तो मालूम होगा ज्ञानशंकर का बर्ताव उसके साथ कैसा है?

प्रभा—बेटा, यह बात मुझसे मत पूछो। हां, इतना कहूंगा कि तुम्हारे यहां रहने से वह बहुत दुखी है। तुम्हें मालूम है कि उसको तुमसे कितना प्रेम है। तुम्हारे लिए उसने बड़ी तपस्या की है। उसके ऊपर तुम्हारी अकृपा नितांत अनुचित है।

प्रेम—मुझे वहां रहने में कोई उज्र नहीं है। हां, ज्ञानशंकर के कुटिल व्यवहार से दुःख होता है और फिर वहां बैठकर यह काम न होगा। किसानों के साथ रहकर मैं उनकी जितनी सेवा कर सकता हूं, अलग रहकर नहीं कर सकता। आपसे केवल यह प्रार्थना करता हूं, आप उसे बुलाकर उसकी तस्कीन कर दीजिएगा। मेरे विचार से उसका व्यवहार कितना ही अनुचित क्यों न हो, पर मैं उसे निरपराध समझता हूं। यह दूसरों के बहकाने का फल है। मुझे शंका होती है कि वह जान पर न खेल जाए।

प्रभा—मगर तुम्हें वचन देना होगा कि सप्ताह में कम-से-कम एक बार वहां अवश्य जाया करोगे।

प्रेम—इसका पक्का वादा करता हूं।

प्रभाशंकर ने लौटना चाहा, पर प्रेमशंकर ने उन्हें साग्रह रोक लिया। हाजीगंज में एक सज्जन ठाकुर भवानीसिंह रहते थे। उनके यहां भोजन का प्रबंध किया गया। पूरियां मोटी थीं और भाजी भी अच्छी न बनी थी, किंतु दूध बहुत स्वादिष्ट था। प्रभाशंकर ने मुस्कराकर कहा—यह पूरियां हैं या लिट्टी? मुझे तो दो-चार दिन भी खानी पड़ें तो काम तमाम हो जाए। हां, दूध की मलाई बहुत अच्छी है।

प्रेम—मैं तो यहां रोटियां बना लेता हूं। दोपहर को दूध पी लिया करता हूं।

प्रभा—तो यह कहो तुम योगाभ्यास कर रहे हो। अपनी रुचि का भोजन न मिले तो फिर जीवन का सुख भी क्या रहा?

प्रेम—क्या जाने, मैं तो रोटियों से ही संतुष्ट हो जाता हूं। कभी-कभी तो मैं शाक या दाल भी नहीं बनाता। सूखी रोटियां बहुत मीठी लगती हैं। स्वास्थ्य के विचार से भी तो रूखा-सूखा भोजन उत्तम है।

प्रभा—यह सब नए जमाने के ढकोसले हैं। लोगों की पाचन-शक्ति निर्बल हो गई है। इसी विचार से अपने को तस्कीन दिया करते हैं। मैंने तो आजीवन चटपटा भोजन किया है, पर कभी कोई शिकायत नहीं हुई।

भोजन करने के बाद कुछ इधर-उधर की बातें होने लगीं। लालाजी थके थे, सो गए, किंतु दोनों लड़कों को नींद नहीं आती थी। प्रेमशंकर बोले—क्यों तेजशंकर, क्या नींद नहीं आती? मैट्रिक में हो न? इसके बाद क्या करने का विचार है?

तेजशंकर—मुझे क्या मालूम? दादाजी की जो राय होगी, वही करूंगा।

प्रेम—और तुम क्या करोगे पद्मशंकर?

पद्मशंकर—मेरा तो पढ़ने में जी नहीं लगता। जी चाहता है, साधु हो जाऊं।

प्रेम—(मुस्कराकर) अभी से?

पद्म—जी हां, खूब पहाड़ों पर विचरूंगा। दूर-दूर के देशों की सैर करूंगा। भैया भी तो साधु होने को कहते हैं।

प्रेम—तो तुम दोनों साधु हो जाओगे और गृहस्थी का सारा बोझ चचा साहब के सिर पर छोड़ दोगे?

तेज—मैंने कब साधु होने को कहा, पद्मू? झूठ बोलते हो।

पद्म—रोज कहते हो, इस वक्त लजा रहे हो।

तेज—बड़े झूठे हो।

पद्म—अभी तो कल ही कह रहे थे कि पहाड़ों पर जाकर योगियों से मंत्र जगाना सीखेंगे।

प्रेम—मंत्र जगाने से क्या होगा?

पद्म—वाह ! मंत्र में इतनी शक्ति है कि चाहें तो अभी गायब हो जायं, जमीन में गड़ा हुआ धन देख लें। एक मंत्र तो ऐसा है कि चाहें तो मुर्दों को जिला दें। बस, सिद्धि चाहिए। खूब चैन रहेगा। यहां तो बरसों पढ़ेंगे, तब जाकर कहीं नौकरी मिलेगी। और वहां तो एक मंत्र भी सिद्ध हो गया तो फिर चांदी-ही-चांदी है।

प्रेम—क्यों जी तेजू, तुम भी इन मिथ्या बातों पर विश्वास करते हो?

तेज—जी नहीं, यह पद्मू यों ही वाही-तबाही बकता फिरता है, लेकिन इतना कह सकता हूं कि आदमी मंत्र जगाकर बड़े-बड़े काम कर सकता है। हां, डर न जाय, नहीं तो जान जाने का डर रहता है।

प्रेम—यह सब गपोड़ा है। खेद है, तुम विज्ञान पढ़कर इन गपोड़ों में विश्वास करते हो। संसार में सफलता का सबसे जागता हुआ मंत्र अपना उद्योग, अध्यवसाय और दृढ़ता है, इसके सिवा और सब मंत्र झूठे हैं।

दोनों लड़कों ने इसका कुछ उत्तर न दिया। उनके मन में मंत्र की बात बैठ गई थी और तर्क द्वारा उन्हें कायल करना कठिन था।

इनके सो जाने के बाद प्रेमशंकर ने संदूकची खोलकर देखा। गहने सभी सोने के थे। रुपये गिने तो पूरे एक हजार थे। इस समय प्रेमशंकर के सम्मुख श्रद्धा एक देवी के रूप में खड़ी

मालूम होती थी। उसकी मुखश्री एक विलक्षण ज्योति से प्रदीप्त थी। त्याग और अनुराग की विशाल मूर्ति थी, जिसके कोमल नेत्रों में भक्ति और प्रेम की किरणें प्रस्फुटित हो रही थीं। प्रेमशंकर का हृदय विह्वल हो गया। उन्हें अपनी निष्ठुरता पर बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई। श्रद्धा की भक्ति के सामने अपनी कटुता और अनुदारता अत्यंत निंद्य प्रतीत होने लगी। उन्होंने संदूकची बंद करके खाट के नीचे रख दी और लेटे तो सोचने लगे, इन गहनों का क्या करूं? कुल संपत्ति पांच हजार से कम नहीं है। इसे मैं ले लूं तो श्रद्धा निरवलंब हो जाएगी। लेकिन मेरी दशा सदैव ऐसी ही थोड़े रहेगी। अभी ऋण समझकर ले लूं, फिर कभी सूद समेत चुका दूंगा। पच्चीस बीघे ऊसर ले लूं तो ढाई हजार में तय हो जाए। एक हजार खाद डालने और रेह निकलाने में लग जाएंगे। एक हजार में बैलों की गोइयां और दूसरी सामग्रियां आ जाएंगी। दस बीघे में एक सुंदर बाग लगा दूं, पंद्रह बीघे में खेती करूं। दो साल तो चाहे उपज कम हो, लेकिन आगे चलकर दो-ढाई हजार वार्षिक की आय होने लगेगी। अपने लिए मुझे दो सौ रुपये साल भी बहुत हैं, शेष रुपये जीवनोद्देश्य के पूरे करने में लगेंगे। संभव है, तब तक कोई सहायक भी मिल जाए। लेकिन उस दशा में कोई सहायता भी न करे तो मेरा काम चलता रहेगा। हां, एक बात का ध्यान ही न रहा। मैं यह ऊसर ले लूं तो फिर इस गांव में गोचर भूमि कहां रहेगी? यही ऊसर तो यहां के पशुओं का मुख्य आधार है। नहीं, इसके लेने का विचार छोड़ देना चाहिए। अब तो हाथ में रुपये आ गए हैं, कहीं-न-कहीं जमीन मिल ही जाएगी। हां, अच्छी जमीन होगी तो इन रुपयों में दस बीघे से ज्यादा न मिल सकेगी। दस बीघे में मेरा काम कैसे चलेगा?

प्रेमशंकर इसी उधेड़बुन में पड़े हुए थे। मूसलाधार मेह बरस रहा था। सहसा उनके कानों में बादलों के गर्जन की-सी आवाज आने लगी, मानो किसी बड़े पुल पर से रेलगाड़ी चली जा रही हो। लेकिन जब देर तक इस ध्वनि का तार न टूटा, और थोड़ी देर में गांव की ओर से आदमियों के चिल्लाने और रोने की आवाजें आने लगीं, तो वह घबराकर उठे और गांव की तरफ नजर दौड़ाई। गांव में हलचल मची हुई थी। लोग हाथों में सन और अरहर के डण्ठलों की मशालें लिए इधर-उधर दौड़ते फिरते थे। कुछ लोग मशालें लिए नदी की तरफ दौड़ते जाते थे। एक क्षण में मशालों का प्रतिबिंब-सा दीखने लगा, जैसे गांव में पानी लहरें मार रहा हो। प्रेमशंकर समझ गए कि बाढ़ आ गई।

अब विलंब करने का समय न था। वह तुरंत गांव की तरफ चले। थोड़ी ही दूर चलकर वह घुटनों तक पानी में पहुंचे। बहाव में इतना वेग था कि उनके पांव मुश्किल से संभल सकते थे। कई बार वह गड्ढों में गिरते-गिरते बचे। जल्दी में जल थाहने के लिए कोई लकड़ी भी न ले सके थे। जी चाहता था कि गांव में उड़कर जा पहुंचू और लोगों की यथासाध्य मदद करूं; लेकिन यहां एक-एक पग रखना दुस्तर था। चारों तरफ घना अंधेरा, ऊपर मूसलाधार वर्षा, नीचे वेगवती लहरों का सामना, राह-बाट का कहीं पता नहीं। केवल मशालों को देखते चले जाते थे। कई बार घरों के गिरने का धमाका सुनाई दिया। गांव के निकट पहुंचे तो हाहाकार मचा हुआ था। गांव के समस्त प्राणी, युवा, वृद्ध, बाल मंदिर के चबूतरे पर खड़े यह विध्वंसकारी मेघलीला देख रहे थे। प्रेमशंकर को देखते ही लोग चारों ओर से आकर खड़े हो गए। स्त्रियां रोने लगीं।

प्रेमशंकर—बाढ़ क्या अबकी ही आई है या और भी कभी आई थीं?

भवानीसिंह—हर दूसरे-तीसरे साल आ जाती है। कभी-कभी तो साल में दो-दो बार आ जाती है।

प्रेमशंकर—इसके रोकने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया?

भवानीसिंह—इसका एक ही उपाय है। नदी के किनारे बांध बना दिया जाय। लेकिन कम-से-कम तीन हजार का खर्च है, वह हमारे किए नहीं हो सकता। इतनी सामर्थ्य ही नहीं। कभी बाढ़ आती है, कभी सूखा पड़ता है। धन कहां से आए?

प्रेमशंकर—जमींदार से इस विषय में तुम लोगों ने कुछ नहीं कहा?

भवानी—उनके कभी दर्शन ही नहीं होते, किससे कहें? सेठजी ने यह गांव उन्हें पिंडदान में दे दिया था। बस, आप तो गयाजी में बैठे रहते हैं। साल में दो बार उनका मुंशी आकर लगान वसूल कर ले जाता है। उससे कहो तो कहता है, हम कुछ नहीं जानते, पंडाजी जानें। हमारे सिर पर चाहे जो पड़े उन्हें अपने नफे से काम है।

प्रेमशंकर—अच्छा, इस वक्त क्या उपाय करना चाहिए? कुछ बचा या सब डूब गया?

भवानी—अंधेरे में सब-कुछ सूझ तो नहीं पड़ता, लेकिन अटकल से जान पड़ता है कि घर एक भी नहीं बचा। कपड़े-लत्ते, बर्तन-भांडे, खाट-खटोले सब बह गए। इतनी मुहलत ही नहीं मिली कि अपने साथ कुछ लाते। जैसे बैठे थे वैसे ही उठकर भागे। ऐसी बाढ़ कभी नहीं आई थी, जैसे आंधी आ जाए, बल्कि आंधी का हाल भी कुछ पहले मालूम हो जाता है, यहां तो कुछ पता ही न चला।

प्रेमशंकर—मवेशी भी बह गए होंगे?

भवानी—राम जाने, कुछ रस्सी तुड़ाकर भागे होंगे, कुछ बह गए होंगे, कुछ बदन तक पानी में खड़े होंगे। पानी दस-पांच अंगुल और चढ़ा तो उनका भी पता न लगेगा।

प्रेमशंकर—कम-से-कम उनकी रक्षा तो करनी चाहिए।

भवानी—हमें तो असाध्य जान पड़ता है।

प्रेमशंकर—नहीं, हिम्मत मत हारो! भला कुल कितने मर्द यहां होंगे?

भवानी—(आंखों से गिनकर) यही कोई चालीस-पचास।

प्रेमशंकर—तो पांच-पांच आदमियों की एक-एक टुकड़ी बना लो और सारे गांव का एक चक्कर लगाओ। जितने जानवर मिलें उन्हें बटोर लो और मेरे झोंपड़े के सामने ले चलो। वहां जमीन बहुत ऊंची है, पानी नहीं जा सकता। मैं भी तुम लोगों के साथ चलता हूं। जो लोग इस काम के लिए तैयार हों, सामने निकल आएं।

प्रेमशंकर के उत्साह ने लोगों को उत्साहित किया। तुरंत पचास-साठ आदमी निकल आए। सबके हाथों में लाठियां थीं। प्रेमशंकर को लोगों ने रोकना चाहा, लेकिन वह किसी तरह न माने। एक लाठी हाथ में ले ली और आगे-आगे चले। पग-पग पर बहते हुए झोंपड़ों, गिरे हुए वृक्षों तथा बहती हुई चारपाइयों से टकराना पड़ता था। गांव का नाम-निशान भी न था। गांव वालों को अपने-अपने घरों का भी पता न चलता था। हां, जहां-तहां भैंसों और बैलों के डकारने की आवाज सुन पड़ती थी। कहीं-कहीं पशु बहते हुए भी मिलते थे। यह रक्षक-दल सारी रात पशुओं के उद्धार का प्रयत्न करता रहा। उनका साहस अदम्य और उद्योग अविश्रांत था। प्रेमशंकर अपनी टुकड़ी के साथ बारी-बारी से अन्य दलों की सहायता करते रहते थे। उनका धैर्य और परिश्रम देखकर निर्बल हृदय वाले भी प्रोत्साहित हो जाते थे। जब दिन निकला और

प्रेमशंकर अपने झोंपड़े पर पहुंचे तब दो सौ से अधिक पशुओं को आनंद से बैठे जुगाली करते हुए देखा। अंग-अंग में पीड़ा हो रही थी। आठ बजते-बजते उन्हें ज्वर हो आया। लाला प्रभाशंकर ने यह वृत्तांत सुना तो असंतुष्ट होकर बोले–बेटा, परमार्थ करना अच्छी बात है, लेकिन इस तरह प्राण देकर नहीं। चाहे तुम्हें अपने प्राण का मूल्य इन जानवरों से कम जान पड़ता हो, लेकिन हम ऐसे-ऐसे लाखों पशुओं का तुम्हारे ऊपर बलिदान कर सकते हैं। श्रद्धा सुनेगी तो न जाने उसका क्या हाल होगा? यह कहते-कहते उनकी आंखें भर आईं।

तीन दिन तक प्रेमशंकर ने सिर न उठाया और न लाला प्रभाशंकर उनके पास से उठे। उनके सिरहाने बैठे हुए कभी विनयपत्रिका के पदों का पाठ करते, कभी हनुमान चालीसा पढ़ते। हाजीपुर में दो ब्राह्मण भी थे। वह दोनों झोंपड़े में बैठे दुर्गा-पाठ किया करते। अन्य लोग तरह-तरह की जड़ी-बूटियां लाते। आसपास के देहातों में भी जो उनकी बीमारी की खबर पाता, दौड़ा हुआ देखने आता। चौथे दिन ज्वर उतर गया, आकाश भी निर्मल हो गया और बाढ़ भी उतर गई।

प्रभात का समय था। लाला प्रभाशंकर ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर घर चले गए थे। प्रेमशंकर अपनी चारपाई पर तकिए के सहारे बैठे हुए हाजीपुर की तरफ चिंतामय नेत्रों से देख रहे थे। चार दिन पहले जहां एक हरा-भरा लहलहाता हुआ गांव था, जहां मीलों तक खेतों में सुखद हरियाली छाई हुई थी, जहां प्रातःकाल गाय-भैंसों के रेवड़ के रेवड़ चरते हुए दिखाई देते थे, जहां झोंपड़ों से चक्कियों की मधुर ध्वनि उठती थी और बाल-वृंद मैदानों में खेलते-कूदते दिखाई देते थे, वहां एक निर्जन मरुभूमि थी। गांव के अधिकांश प्राणी दूसरे गांव में भाग गए थे, और कुछ लोग प्रेमशंकर के झोंपड़े के सामने सिरकियां डाले पड़े थे। न किसी के पास अन्न था, न वस्त्र, बड़ा शोकमय दृश्य था। प्रेमशंकर सोचने लगे, कितनी विषम समस्या है ! इन दीनों का कोई सहायक नहीं। आए दिन इन पर यही विपत्ति पड़ा करती है और ये बेचारे इसका निवारण नहीं कर सकते। साल-दो साल में जो कुछ तन-पेट काटकर संचय करते हैं वह जलदेव को भेंट कर देते हैं। कितना धन, कितने जीव इस भंवर में समा जाते हैं, कितने घर मिट जाते हैं, कितनी गृहस्थियों का सर्वनाश हो जाता है और यह केवल इसलिए कि इनको गांव के किनारे एक सुदृढ़ बांध बनाने का साहस नहीं है। न इतना धन है, न वह सहमति और सुसंगठन है जो धन का अभाव होने पर भी बड़े-बड़े कार्य सिद्ध कर देता है। ऐसा बांध यदि बन जाए तो उससे इसी गांव की नहीं, आस-पास के कई गांवों की रक्षा हो सकती है। मेरे पास इस समय चार-पांच हजार रुपये हैं। क्यों न इस बांध में हाथ लगा दूं? गांव के लोग धन न दे सकें, मेहनत तो कर सकते हैं। केवल उन्हें संगठित करना होगा। दूसरे गांव के लोग भी निस्संदेह इस काम में सहायता देंगे। ओह, कहीं यह बांध तैयार हो जाए तो इन गरीबों का कितना कल्याण हो।

यद्यपि प्रेमशंकर बहुत अशक्त हो रहे थे, पर इन विचारों ने उन्हें इतना उत्साहित किया कि तुरंत उठ खड़े हुए और लोगों के बहुत रोकने पर भी हाथ में डंडा लेकर नदी की ओर बांध-स्थल का निरीक्षण करने चल खड़े हुए। जेब में पेंसिल और कागज भी रख लिया। कई आदमी साथ हो लिए। नदी के किनारे खड़े-खड़े वह बहुत देर तक रस्सी से नाप-नापकर कागज पर बांध का नक्शा खींचते और उसकी लंबाई, चौड़ाई, गर्भ आदि का अनुमान करते रहे। उन्हें उत्साह के वेग में यह काम सहज जान पड़ता था, केवल काम छेड़ देने की जरूरत थी। उन्होंने

वहीं खड़े-खड़े निश्चय किया कि वर्षा समाप्त होते ही श्रीगणेश कर दूंगा। ईश्वर ने चाहा तो जाड़े में बांध तैयार हो जाएगा। बांध के साथ-साथ गांव को भी पुनर्जीवित कर दूंगा। बाढ़ का भय तो न रहेगा, दीवारें मजबूत बनाऊंगा और उस पर फूस की जगह खपरैल का छाज रखूंगा।

भवानीसिंह ने कहा—बाबूजी, यह काम हमारे मान का नहीं है।

प्रेमशंकर—है क्यों नहीं; तुम्हीं लोगों से यह काम पूरा कराऊंगा। तुमने इसे असाध्य समझ लिया है, इसी कारण इतनी मुसीबतें झेलते हो।

भवानी—गांव में आदमी कितने हैं?

प्रेम—दूसरे गांव वाले तुम्हारी मदद करेंगे, काम शुरू तो होने दो।

भवानी—जैसा बांध आप सोच रहे हैं, पांच-छह हजार से कम में न बनेगा।

प्रेम—रुपयों की कोई चिंता नहीं। कार्तिक आ रहा है, बस काम शुरू कर दो। दो-तीन महीने में बांध तैयार हो जाएगा। रुपयों का प्रबंध जो कुछ मुझसे हो सकेगा, मैं कर दूंगा।

भवानी—आपका ही भरोसा है।

प्रेम—ईश्वर पर भरोसा रखो।

भवानी—मजदूरों की मदद मिल जाए तो अगहन में ही बांध तैयार हो सकता है।

प्रेम—इसका मैं वचन दे सकता हूं। यहां साठ-सत्तर बीघे का अच्छा चक निकल आएगा।

भवानी—तब हम आपका झोंपड़ा भी यहीं बना देंगे। वह जगह ऊंची है, लेकिन कभी-कभी वहां भी बाढ़ आ जाती है।

प्रेम—तो आज ही भागे हुए लोगों को सूचना दे दो और पड़ोस के गांवों में भी खबर भेज दो।

अठारह

गायत्री उन महिलाओं में थी जिनके चरित्र में रमणीयता और लालित्य के साथ पुरुषों का साहस और धैर्य भी मिला होता है। यदि वह कंघी और आईने पर जान देती थी तो कच्ची सड़कों के गर्द और धूल से भी न भागती थी। प्यानो पर मोहित थी तो देहातियों के बेसुरे अलाप का आनंद भी उठा सकती थी। सरस साहित्य पर मुग्ध होती थी तो खसरा और खतौनी से भी जी न चुराती थी। लखनऊ से आए हुए उसे दो साल हो गए। लेकिन एक दिन भी अपने विशाल भवन में आराम से न बैठी। कभी इस गांव जाती, कभी उस छावनी ठहरती, कभी तहसील आना पड़ता, कभी सदर जाना पड़ता, बार-बार अधिकारियों से मिलने की जरूरत पड़ती। उसे अनुभव हो रहा था कि दूसरों पर शासन करने के लिए स्वयं कितना झुकना पड़ता है। उसके इलाके में सर्वत्र लूट मची हुई थी, कारिंदे असामियों को नोचे खाते थे। सोचती, क्या इन सब मुख्तारों और कारिन्दों को जवाब दे दूं? मगर काम कौन करेगा? और यही क्या मालूम है कि इनकी जगह जो नए लोग आएंगे, वे इनसे ज्यादा नेकनीयत होंगे? मुश्किल तो यह है कि प्रजा को इस अत्याचार से उतना कष्ट भी नहीं होता, जितना मुझे होता है। कोई शिकायत नहीं करता, कोई फरियाद नहीं करता, उन्हें अन्याय सहने का ऐसा अभ्यास हो गया है कि वह इसे भी जीवन

की एक साधारण दशा समझते हैं। उससे मुक्त होने का कोई यत्न भी हो सकता है इसका उन्हें ध्यान भी नहीं होता।

इतना ही नहीं था। प्रजा गायत्री की सचेष्टाओं को संदेह की दृष्टि से देखती थी। उनको विश्वास ही न होता था कि उनकी भलाई के लिए कोई जमींदार अपने नौकरों को दंड दे सकता है। वर्तमान अन्याय उनका ज्ञात विषय था, इसका उन्हें भय न था। सुधार के मंतव्यों से वे भयभीत होते थे, यह उनके लिए अज्ञात विषय था। उन्हें शंका होती थी कि कदाचित् यह हम लोगों को निचोड़ने की कोई नई विधि है। अनुभव ही शंका को पुष्ट करता था। गायत्री का हुक्म था कि किसानों को नाममात्र सूद पर रुपये उधार दिए जाएं, लेकिन कारिंदे महाजनों से भी ज्यादा सूद लेते थे। उसने ताकीद कर दी थी कि बखारों से असामियों को अष्टांश पर अनाज दिया जाए। लेकिन वहां अष्टांश न देकर लोग दूसरों से सवाई-डेवढ़े पर अनाज लाते थे। वह अपने इलाके भर में सफाई का प्रबंध भी करना चाहती थी। गोबर बटोरने के लिए गांव के बाहर खत्ते बनवा दिए थे। मोरियों को साफ करने के लिए भंगी लगा दिए थे। लेकिन प्रजा इसे 'मुदाखलत बेजा' समझती थी और डरती थी कि कहीं रानी साहिबा हमारे घरों और खत्तों पर तो हाथ नहीं बढ़ा रही हैं।

जाड़ों के दिन थे। गायत्री राप्ती नदी के किनारे के गांवों का दौरा कर रही थी। अब की बाढ़ में कई गांव डूब गए थे। कृषकों ने छूट की प्रार्थना की थी। सरकारी कर्मचारियों ने इधर-उधर देखकर लिख दिया था, छूट की जरूरत नहीं है। गायत्री अपनी आंखों से इन ग्रामों की दशा देखकर यह निर्णय लेना चाहती थी कि कितनी छूट होनी चाहिए। संध्या हो गई थी। वह दिन भर की थकी-मांदी बिन्दापुर की छावनी में उदास पड़ी हुई थी। सारा मकान खंडहर हो गया था। इस छावनी की मरम्मत के लिए उसने कारिंदों को सैकड़ों रुपये दिए थे, लेकिन उसकी दशा देखने से ज्ञात होता था कि बरसों से खपरैल भी नहीं बदला गया। दीवारें गिर गई थीं, कड़ियों के टूट जाने से जगह-जगह छत बैठ गई थी। आंगन में कूड़े के ढेर लगे हुए थे। यहां के कारिंदों को वह बहुत ईमानदार समझती थी। उनके कुटिल व्यवहार पर चित्त बहुत खिन्न हो रहा था। सामने चौकी पर पूजा के लिए आसन बिछा हुआ था, लेकिन उसका उठने का जी न चाहता था कि इतने में एक चपरासी ने आकर कहा–सरकार, कानूनगो साहब आए हैं।

गायत्री उठकर आसन पर जा बैठी और इस भय से कि कानूनगो साहब चले न जाएं, शीघ्रता से संध्या समाप्त की और परदा कराके कानूनगो साहब को बुलाया।

गायत्री–कहिए, खां साहब ! मिजाज तो अच्छा है? क्या आजकल पड़ताल हो रही है?

कानूनगो–जी हां, आजकल हुजूर के ही इलाके का दौरा कर रहा हूं।

गायत्री–आपके विचार से बाढ़ से खेती को कितना नुकसान हुआ?

कानूनगो–अगर सरकारी तौर पर पूछती हैं तो रुपये में एक आना, निज के तौर पर पूछती हैं तो रुपये में बारह आना।

गायत्री–आप लोग यह दोरंगी चाल क्यों चलते हैं? आप जानते नहीं कि इसमें प्रजा का कितना नुकसान होता है?

कानूनगो–हुजूर यह न पूछें। दोरंगी चाल न चलें और असली बात लिख दें तो एक दिन में नालायक बता कर निकाल दिए जाएं। हम लोगों से सच्चा हाल जानने के लिए तहकीकात

नहीं कराई जाती, बल्कि उसको छिपाने के लिए। पेट की बदौलत सब कुछ करना पड़ता है।

गायत्री—पेट को गरीबों की हाय से भरना तो अच्छा नहीं है। अगर अपनी तरफ से प्रजा की कुछ भलाई न कर सकें तो कम-से-कम अपने हाथों से उनका अहित तो न करना चाहिए। इलाके का और क्या हाल है?

कानूनगो—आपको सुनकर रंज होगा। सारन में हुजूर की कई बीघे सीर असामियों ने जोत ली है, जगरांव के ठाकुरों ने हुजूर के नए बाग को जोतकर खेत बना लिया है, मेड़ें खोद डाली हैं। जब तक फिर से पैमाइश न हो कुछ पता नहीं चल सकता कि आपकी कितनी जमीन उन्होंने खाई है।

गायत्री—क्या वहां का कारिंदा सो रहा है? मेरा तो इन झगड़ों से नाकोदम है।

कानूनगो—हुजूर की जानिब से पैमाइश की एक दरख्वास्त पेश हो जाए, बस बाकी काम मैं कर लूंगा। हां, सदर कानूनगो साहब की कुछ खातिर करनी पड़ेगी। मैं हुजूर का गुलाम हूं ऐसी सलाह हरगिज न दूंगा जिससे हुजूर को नुकसान हो। इतनी अर्ज और करूंगा कि हुजूर एक मैनेजर रख लें। गुस्ताखी माफ, इतने बड़े इलाके का इंतजाम करना हुजूर का काम नहीं है।

गायत्री—मैनेजर रखने की तो मुझे भी फिक्र है, लेकिन लाऊं कहां से? कहीं वह महाशय भी कारिंदों से मिल गए तो रही-सही बात भी बिगड़ जाएगी। उनका यह अंतिम आदेश था कि मेरी प्रजा को कोई कष्ट न होने पाए। उसी आदेश के पालन के लिए मैं यों अपनी जान खपा रही हूं। आपकी दृष्टि में कोई ऐसा ईमानदार और चतुर आदमी हो, जो मेरे सिर से यह भार उतार ले तो बतलाइए।

कानूनगो—बहुत अच्छा, मैं ख्याल रखूंगा। मेरे एक दोस्त हैं। ग्रेजुएट, बड़े लायक और तजुर्बेकार खानदानी आदमी हैं। मैं उनसे जिक्र करूंगा। तो मुझे क्या हुक्म होता है? सदर कानूनगो साहब से बातचीत करूं?

गायत्री—जी हां, कह तो रही हूं। वही लाला साहब हैं न? लेकिन वह तो बेतरह मुंह फैलाते हैं।

कानूनगो—हुजूर खातिर जमा रखें, मैं उन्हें सीधा कर लूंगा। औरों के साथ वह चाहे जितना मुंह फैलाएं, यहां उनकी दाल न गलने पाएगी। बस, हुजूर के पांच सौ रुपये खर्च होंगे। इतने में ही दोनों गांवों की पैमाइश करा दूंगा।

गायत्री—(मुस्कराकर) इसमें कम-से-कम आधा तो आपके हाथ जरूर लगेगा।

कानूनगो—मुआजल्लाह, जनाब यह क्या फरमाती हैं? मैं मरते दम तक हुजूर को मुगालता न दूंगा। हां, काम पूरा हो जाने पर हुजूर जो कुछ अपनी खुशी से अदा करेंगी वह सिर-आंखों पर रखूंगा।

गायत्री—तो यह कहिए, पांच सौ के ऊपर कुछ और भी आपको भेंट करना पड़ेगा। मैं इतना महंगा सौदा नहीं करती।

यही बातें हो रही थीं कि पंडित लेखराज जी का शुभागमन हुआ। रेशमी अचकन, रेशमी पगड़ी, रेशमी चादर, रेशमी धोती, पांव में दिल्ली का सलेमशाही कामदार जूता, माथे पर चंद्रबिंदु, अधरों पर पान की लाली, आंखों पर सुनहरी ऐनक, केवड़ों में बसे हुए आकर कुर्सी पर बैठ गए।

गायत्री—पंडितजी महाराज को पालागन करती हूं।

लेखराज–आशीर्वाद। आज तो सरकार को बहुत कष्ट हुआ।

गायत्री–क्या करूं, मेरे पुरखों ने भी बिना खेत की खेती, बिना जमीन की जमींदारी, बिना धन की महाजनी प्रथा निकाली होती, तो मैं भी आपकी ही तरह चैन करती।

लेखराज–(हंसकर) कानूनगो साहब। आप सुनते हैं सरकार की बातें। ऐसी चुनकर कह देती हैं कि उसका जवाब ही न बन पड़े। सरकार को परमात्मा ने रानी बनाया है, हम तो सरकार के द्वार के भिक्षुक हैं। सरकार ने धर्मशाला के शिलारोपण का शुभ मुहूर्त्त पूछा था, वह मैंने विचार लिया है। इसी पक्ष की एकादशी को प्रात:काल सरकार के हाथ से नींव पड़ जानी चाहिए।

गायत्री–यह सुकीर्ति मेरे भाग में नहीं लिखी है। आपने किसी रईस को अपने हाथों सार्वजनिक इमारतों का आधार रखते देखा है? लोग अपने रहने के मकानों की नींव अधिकारियों से रखवाते हैं। मैं इस प्रथा को क्योंकर तोड़ सकती हूं? जिलाधीश को शिलारोपण के लिए निमंत्रित करूंगी। उन्हीं के नाम पर धर्मशाला का नामकरण होगा। किसी ठीकेदार से भी आपने बातचीत. की?

लेखराज–जी हां, मैंने एक ठीकेदार ठीक कर लिया है। सज्जन पुरुष है। इस शुभ कार्य को बिना लाभ के करना चाहता है। केवल लागत-मात्र लेगा।

गायत्री–आपने उसे नक्शा दिखा दिया न? कितने पर इस काम का ठेका लेना चाहता है?

लेखराज–वह कहता है, दूसरा ठीकेदार जितना मांगे उससे मुझे सौ रुपये कम दिए जाएं।

गायत्री–तो अब एक दूसरा ठीकेदार लगाना पड़ा, वह कितना तखमीना करता है?

लेखराज–उसके हिसाब से साठ हजार पड़ेंगे। माल-मसाला सब अव्वल दर्जे का लगाएगा। छ: महीने में काम पूरा कर देगा।

गायत्री ने इस मकान का नक्शा लखनऊ में बनवाया था। वहां इसका तखमीना चालीस हजार किया गया था। व्यंग्य-भाव से बोली–तब वास्तव में आपका ठीकेदार बड़ा सज्जन पुरुष है। इसमें कुछ-न-कुछ तो आपके ठाकुरजी पर जरूर ही चढ़ाए जाएंगे।

लेखराज–सरकार तो दिल्लगी करती हैं। मुझे सरकार से यों ही क्या कम मिलता है कि ठीकेदार से कमीशन ठहराता? कुछ इच्छा होगी तो मांग लूंगा, नीयत क्यों बिगाडूं?

गायत्री–मैं इसका जवाब एक सप्ताह में दूंगी।

कानूनगो–और मुझे क्या हुक्म होता है? पंडित जी, आपने भी तो देखा होगा, सारन और जगरांव में हुजूर की कितनी जमीन दब गई है?

पंडित–जी हां, देखा क्यों नहीं, सौ बीघे से कम न दबी होगी।

गायत्री–मैं जमीन देखकर आपको इत्तला दूंगी। अगर आपस के समझौते से काम चल जाए तो रार बढ़ाने की जरूरत नहीं।

दोनों महानुभाव निराश होकर बिदा हुए। दोनों मन-ही-मन गायत्री को कोस रहे थे। कानूनगो ने कहा, चालाक औरत है, बड़ी मुश्किल से हत्थे पर चढ़ती है। लेखराज बोले–एक-एक पैसा दांत से पकड़ती है। न जाने बटोरकर क्या करेगी? कोई आगे-पीछे भी तो नहीं है।

अंधेरा हो चला था। गायत्री सोच रही थी, इन लुटेरों से क्योंकर बचूं? इनका बस चले तो दिन-दहाड़े लूट लें। इतने नौकर हैं, लेकिन ऐसा कोई नहीं, जिसे इलाके की उन्नति का ध्यान

हो। ऐसा सुयोग्य आदमी कहां मिलेगा? मैं अकेली ही कहां-कहां दौड़ सकती हूं ! ठीके पर दे दूं तो इससे अधिक लाभ हो सकता है। सब झंझटों से मुक्त हो जाऊंगी, लेकिन असामी मर मिटेंगे। ठीकेदार इन्हें पीस डालेगा। कृष्णार्पण कर दूं, तो भी वही हाल होगा। कहीं ज्ञानशंकर राजी हो जाएं तो इलाके के भाग जग उठें। कितने अनुभवशील पुरुष हैं, कितने मर्मज्ञ, कितने सूक्ष्मदर्शी। वह आ जाएं तो इन लुटेरों से मेरा गला छूट जाय। सारा इलाका चमन हो जाय। लेकिन मुसीबत तो यह है कि उनकी बातें सुनकर मेरी भक्ति और धार्मिक विश्वास डावांडोल हो जाते हैं। अगर उनके साथ मुझे दो-चार महीने और लखनऊ रहने का अवसर मिलता तो मैं अब तक फैशनेबुल लेडी बन गई होती। उनकी वाणी में विचित्र प्रभाव है। मैं तो उनके सामने बावली-सी हो जाती हूं। वह मेरा कितना अदब करते थे। उनके स्वभाव में थोड़ी-सी उच्छृंखलता अवश्य है, लेकिन मैं भी तो परछाईं की तरह उनके पीछे-पीछे लगी रहती थी, छेड़छाड़ किया करती थी। न जाने उनके मन में मेरी ओर से क्या-क्या भावनाएं उठी हों। पुरुषों में यह बड़ा अवगुण है कि हास्य और विनोद को कुवृत्तियों से अलग नहीं रख सकते। इसका पवित्र आनंद उठाना उन्हें आता ही नहीं। स्त्री जरा हंसकर बोली और उन्होंने समझ लिया कि वह मुझ पर लट्टू हो गई। उन्हें जरा-सी उंगली पकड़ने को मिल जाय, फिर तो पहुंचा पकड़ते देर नहीं लगती। अगर ज्ञानशंकर यहां आने पर तैयार हो गए तो उन्हें यहीं रखूंगी। यहीं से वह इलाके का प्रबंध करेंगे। जब कोई विशेष काम होगा तो शहर जाएंगे। वहां भी मैं उनसे दूर-दूर रहूंगी। भूलकर भी घर में न बुलाऊंगी। नहीं, अब उन्हें उतनी धृष्टता करने का साहस ही न होगा। बेचारा कितना लज्जित था, मेरे सामने ताक न सकता था। स्टेशन पर मुझे बिदा करने आया था, मगर दूर बैठा रहा, जबान तक न खोली।

गायत्री इन्हीं विचारों में मग्न थी कि एक चपरासी ने आज की डाक उसके सामने रख दी। डाकघर यहां से तीन कोस पर था। प्रतिदिन एक बेगार डाक लेने जाया करता था।

गायत्री ने पूछा—वह आदमी कहां है? क्यों रे, अपनी मजूरी पा गया?

बेगार—हां सरकार, पा गया।

गायत्री—कम तो नहीं है?

बेगार—नहीं सरकार, खूब खाने भर को मिल गया।

गायत्री—कल तुम जाओगे कि कोई दूसरा आदमी ठीक किया जाए?

बेगार—सरकार, मैं तो हाजिर ही हूं, दूसरा क्यों जाएगा?

गायत्री चिट्ठियां खोलने लगी। अधिकांश चिट्ठियां सुगंधित तेल और अन्य औषधियों के विज्ञापनों की थी। गायत्री ने उन्हें उठाकर रद्दी की टोकरी में डाल दिया। एक पत्र राय कमलानन्द का था। इसे उसने उत्सुकता से खोला और पढ़ते ही उनकी आंखें आनंदपूर्ण गर्व से चमक उठीं, मुखमंडल नव पुष्प के समान खिल गया। उसने तुरंत वह पैकेट खोला जिसे वह अब तक किसी औषधालय का सूचीपत्र समझ रही थी। पूर्व पृष्ठ खोलते ही उसे अपना चित्र दिखाई दिया। पहले लेख का शीर्षक था 'गायत्री देवी'। लेखक का नाम था ज्ञानशंकर बी॰ ए॰। गायत्री अंग्रेजी कम जानती थी, लेकिन स्वाभाविक बुद्धिमत्ता से वह साधारण पुस्तकों का आशय समझ लेती थी। उसने बड़ी उत्सुकता से लेख पढ़ना शुरू किया और यद्यपि बीस पृष्ठों से कम न थे, पर उसने आधा घंटे में ही सारा लेख समाप्त कर दिया और तब गौरवोन्मत्त नेत्रों से इधर-उधर देखकर एक लंबी सांस ली। ऐसा आनंदोन्माद उसे अपने जीवन में शायद

ही प्राप्त हुआ हो। उसका मान-प्रेम कभी इतना उल्लसित न हुआ था। ज्ञानशंकर ने गायत्री के चरित्र, उसके सद्गुणों और सत्कार्यों का इतनी कुशलता से उल्लेख किया था कि भक्ति की जगह लेख में ऐतिहासिक गंभीरता का रंग आ गया था। इसमें संदेह नहीं कि एक-एक शब्द से श्रद्धा टपकती थी, किंतु वाचक को यह विवेकहीन प्रशंसा नहीं, ऐतिहासिक उदारता प्रतीत होती थी। इस शैली पर वाक्य-नैपुण्य सोने में सुगंध हो गया था। गायत्री बार-बार आईने में अपना स्वरूप देखती थी, उसके हृदय में एक असीम उत्साह प्रवाहित हो रहा था, मानो वह विमान पर बैठी हुई स्वर्ग को जा रही हो। उसकी धमनियों में रक्त की जगह उच्च भावों का संचार होता हुआ जान पड़ता था। इस समय उसके द्वार पर भिक्षुओं की एक सेना भी होती तो निहाल हो जाती। कानूनगो साहब अगर आ जाते तो पांच सौ के बदले पांच हजार ले भागते और पंडित लेखराज का तखमीना दूना भी होता तो स्वीकार कर लिया जाता। उसने कई दिन से यहां के कारिंदे से बात न की थी, उससे रूठी हुई थी। इस समय उसे अपराधियों की भाँति खड़े देखा तो प्रसन्न मुख होकर बोली, कहिए—मुंशी जी, आजकल तो कच्चे घड़े की खूब छनती होगी।

मुंशी जी धीरे-धीरे सामने आकर बोले हुजूर—जनेऊ की सौगंध है, जब से सरकार ने मना कर दिया मैंने उसकी सूरत तक न देखी।

यह कहते हुए उन्होंने अपने साहित्य-प्रेम का परिचय देने के लिए पत्रिका उठा ली और पन्ने उलटने लगे। अकस्मात् गायत्री का चित्र देखकर उछल पड़े। बोले—सरकार, यह तो आपकी तस्वीर है। कैसा बनाया है कि अब बोली, अब बोली। क्या कुछ सरकार का हाल भी लिखा है?

गायत्री ने बेपरवाही से कहा—हां, तस्वीर है तो हाल क्यों न होगा? कारिंदा दौड़ा हुआ बाहर गया और यह खबर सुनायी। कई कारिंदे और चपरासी भोजन बना रहे थे, कोई भंग पीस रहा था, कोई गा रहा था। सब-के-सब आकर तस्वीर पर टूट पड़े। छीना-झपटी होने लगी, पत्रिका के कई पन्ने फट गए। यों गायत्री किसी को अपनी किताबें छूने नहीं देती थी, पर इस समय जरा भी न बोली।

एक मुंहलगे चपरासी ने कहा—सरकार, कुछ हम लोगों को भी सुना दें।

गायत्री—यह मुझसे न होगा। सारा पोथा भरा हुआ है, कहां तक सुनाऊंगी? दो-चार दिन में इसका अनुवाद हिंदी पत्र में छप जायगा, तब पढ़ लेना।

लेकिन जब आदमियों ने एक स्वर होकर आग्रह करना शुरू किया तो गायत्री विवश हो गई। इधर-उधर से कुछ अनुवाद करके सुनाया। यदि उसे अंग्रेजी की अच्छी योग्यता होती तो कदाचित् वह अक्षरशः सुनाती।

एक कारिंदे ने कहा—पत्र वालों को न जाने यह सब हाल कैसे मिल जाते हैं !

दूसरे कारिंदे ने कहा—उनके गोइंदे सब जगह विचरते हैं। कहीं कोई बात हो, चट उनके पास पहुंच जाती है।

गायत्री को इन वार्ताओं में असीम आनंद आ रहा था। प्रातःकाल उसने ज्ञानशंकर को एक विनयपूर्ण पत्र लिखा। इस लेख की चर्चा न करके केवल अपनी विडंबनाओं का वृत्तांत लिखा और साग्रह निवेदन किया कि आप आकर मेरे इलाके का प्रबंध अपने हाथ में लें, इस डूबती हुई नौका को पार लगाएं। उसका मनोमालिन्य मिट गया था। खुशामद अभिमान का सिर

नीचा कर देती है। गायत्री अभिमान की पुतली थी। ज्ञानशंकर ने अपने श्रद्धाभाव से उसे वशीभूत कर लिया।

उन्नीस

ज्ञानशंकर को गायत्री का पत्र मिला तो फूले न समाये। हृदय में भांति-भांति की मनोहर सुखद कल्पनाएं, तरंगें मारने लगीं। सौभाग्य देवी जीवन-संकल्प की भेंट लिए उनका स्वागत करने को तैयार खड़ी थी। उनका मधुर स्वप्न इतनी जल्दी फलीभूत होगा इसकी उन्हें आशा न थी। विधाता ने एक बड़ी रियासत के स्वामी बनने का अवसर प्रदान कर दिया था। यदि अब भी वह इससे लाभ न उठा सके तो उनका दुर्भाग्य।

किंतु गोरखपुर जाने के पहले लखनपुर की ओर से निश्चिंत हो जाना चाहते थे। जब से प्रेमशंकर ने उनसे अपने हिस्से का नफा मांगा था, उनके मन में नाना प्रकार की शंकाएं उठ रही थीं। लाला प्रभाशंकर का वहां आना-जाना और भी खटकता था। उन्हें संदेह होता था कि वह बुड्ढा घाघ अवश्य कोई-न-कोई दांव खेल रहा है। यह पितृवत् प्रेम अकारण नहीं। प्रेमशंकर चतुर हों, लेकिन इस चाणक्य के सामने अभी लौंडे हैं। उनकी कुटिल कामना यही होगी कि उन्हें फोड़कर लखनपुर के आठ आने लड़कों के नाम हिब्बा करा लें या किसी दूसरे महाजन के यहां बय कराके बीच में दस-पांच हजार की रकम उड़ा लें। जरूर यही बात है, नहीं तो जब अपनी ही रोटियों के लाले पड़े हैं तो यह पकवान बन-बनकर न जाते। अब तो श्रद्धा ही मेरी हारी हुई बाजी का फर्जी है। अब उसे यह पढ़ाऊं कि तुम अपने गुजारे के लिए आधा लखनपुर अपने नाम करा लो। उनकी कौन चलाए, अकेले हैं ही, न जाने कब कहां चल दें तो तुम कहीं की न रहो। यह चाल सीधी पड़ जाय तो अब भी लखनपुर अपना हो सकता है। श्रद्धा को तीर्थयात्रा करने के लिए भेज दूंगा। एक-न-एक दिन मर ही जाएगी। जीती भी रही तो हरिद्वार में बैठी गंगा स्नान करती रहेगी। लखनपुर की ओर से मुझे कोई चिंता न रहेगी।

यों निश्चय करके ज्ञानशंकर अंदर गए। दैवयोग से श्रद्धा उनकी इच्छानुसार अपने कमरे में अकेली बैठी हुई मिल गई। माया को कई दिन से ज्वर आ रहा था, विद्या अपने कमरे में बैठी हुई, उसे पंखा झल रही थी।

ज्ञानशंकर चारपाई पर बैठकर श्रद्धा से बोले—देखी चचा साहब की धूर्तता ! वह तो मैं पहले ही ताड़ गया था कि यह महाशय कोई-न-कोई स्वांग रच रहे हैं। सुना, लखनपुर के बय करने की बातचीत हो रही है।

श्रद्धा—(विस्मित होकर) तुमसे किसने कहा? चचा साहब को मैं इतना नीच नहीं समझती। मुझे पूरा विश्वास है कि वह केवल प्रेमवश वहां आते-जाते हैं।

ज्ञान—यह तुम्हारा भ्रम है। यह लोग ऐसे निःस्वार्थ प्रेम करने वाले जीव नहीं हैं। जिसने जीवन-पर्यंत दूसरों को ही मूंड़ा हो वह अब अपना गंवा कर भला क्या प्रेम करेगा? मतलब कुछ और ही है। भैया का माल है, चाहे बेचें या रखें, चाहे चचा साहब को दे दें या लुटा दें, इसका उन्हें पूरा अधिकार है, मैं बीच में कूदने वाला कौन होता हूं? हां, इतना अवश्य है कि

तुम फिर कहीं की न रहोगी।

श्रद्धा–अगर तुम्हारा ही कहना ठीक हो तो मेरा इसमें क्या बस है?

ज्ञान–बस क्यों नहीं है? आखिर तुम्हारे गुजारे का भार तो उन्हीं पर है। तुम आठ आने लखनपुर अपने नाम लिखा सकती हो। भैया को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। तुम्हें संकोच हो तो मैं स्वयं जाकर उनसे मामला तय कर सकता हूं। मुझे विश्वास है कि भैया इंकार न करेंगे और करें तो भी मैं उन्हें कायल कर सकता हूं। जब तुम्हारे नाम हो जायगा तब उन्हें बय करने का अधिकार न रहेगा। और चचा साहब की दाल भी न गलेगी।

श्रद्धा विचार में डूब गई। जब उसने कई मिनट तक सिर न उठाया तब ज्ञानशंकर ने पूछा–क्या सोचती हो? इसमें कोई हर्ज है? जायदाद नष्ट हो जाय, वह अच्छा है या घर में बनी रहे, वह अच्छा है?

अब श्रद्धा ने सिर उठाया और गौरवपूर्ण भाव से बोली–मैं ऐसा नहीं कर सकती। उनको जो इच्छा हो वह करें, चाहे अपना हिस्सा बेच दें या रखें। वह स्वयं बुद्धिमान हैं, जो उचित समझेंगे वह करेंगे। मैं उनके पांव में बेड़ी क्यों डालूं?

ज्ञानशंकर ने रुष्ट होकर उत्तर दिया–लेकिन यह सोचा है कि जायदाद निकल गई तो तुम्हारा निर्वाह क्यों कर होगा? वह कल ही फिर अमेरिका की राह लें, तो?

श्रद्धा–मेरी कुछ चिंता न करो। वह मेरे स्वामी हैं, जो कुछ करेंगे उसी में मेरी भलाई है। मुझे विश्वास ही नहीं होता कि मुझे निरावलंब छोड़ जाएंगे।

ज्ञान–तुम्हारी जैसी इच्छा। मैंने ऊंच-नीच सुझा दिया। अगर पीछे से कोई बात बने-बिगड़े तो मेरे सिर दोष न रखना।

ज्ञानशंकर बाहर आए तो उनका चित्त उद्विग्न हो रहा था। श्रद्धा के संतोष और पतिभक्ति ने उन्हें एक नई उलझन में डाल दिया। यह तो उन्हें मालूम था कि श्रद्धा मेरे प्रस्ताव को सुगमता से स्वीकार न करेगी, लेकिन उसमें इतना दृढ़ त्याग-भाव है इसका उन्हें पता न था। अपने मानव-प्रकृति ज्ञान पर उन्हें घमंड था, श्रद्धा के त्याग-भाव ने उसे चूर कर दिया। ओह ! स्त्रियां कितनी अविवेकिनी होती हैं। मैंने महीनों इसे तोते की भांति पढ़ाया, उसका यह फल ! वह अपने कमरे में देर तक बैठे सोचते रहे कि क्योंकर यह गुत्थी सुलझे? वह आज ही इस दुविधा का अंत करना चाहते थे। यदि वह श्रद्धा का भार मुझ पर छोड़ना चाहते हैं, तो उन्हें लखनपुर उसके नाम लिखना पड़ेगा। मैं उन्हें मजबूर करूंगा। खूब खुली-खुली बातें होंगी। इसी असमंजस में वह घर से निकले और हाजीपुर की ओर चले। रास्ते भर वह इसी चिंता में पड़े रहे। यह संकोच भी होता था कि इतने दिनों के बाद मिलने भी चला तो स्वार्थ-वश होकर। जब से प्रेमशंकर हाजीपुर रहने लग गए थे, ज्ञानबाबू ने एक बार भी वहां जाने का कष्ट न उठाया था। कभी-कभी अपने घर पर ही उनसे मुलाकात हो जाती थी। मगर इधर तीन-चार महीनों से दोनों भाइयों से भेंट ही न हुई थी।

ज्ञानशंकर हाजीपुर पहुंचे, तो शाम हो गई थी। पूस का महीना था। खेतों में चारों ओर हरियाली छाई हुई थी। सरसों, मटर, कुसुम, अलसी के नीले-पीले फूल अपनी छटा दिखा रहे थे। कहीं चंचल तोतों के झुंड थे, कहीं उचक्के कौवे के गोल। जगह-जगह पर सारस के जोड़े अहिंसापूर्ण विचार में मग्न खड़े थे। युवतियां सिरों पर घड़े रखे नदी से पानी ला रही थीं, कोई खेत में बथुआ का साग तोड़ रही थी, कोई बैलों को खिलाने के लिए हरियाली का गट्ठा सिर

पर रखे चली आती थी। सरल शांतिमय जीवन का पवित्र दृश्य था। शहर की चिल्ल-पों, दौड़-धूप के सामने यह शांति अतीव सुखद प्रतीत होती थी।

ज्ञानशंकर एक आदमी के साथ प्रेमशंकर के झोंपड़े में आए तो वहां की सुरम्य शोभा देखकर चकित हो गए। नदी के किनारे एक ऊंचे और विस्तृत टीले पर लताओं और बेलों से सजा हुआ ऐसा जान पड़ता था, मानो किसी उच्चात्मा का संतोषपूर्ण हृदय है। झोंपड़े के सामने जहां तक निगाह जाती थी, प्रकृति की पुष्पित और पल्लवित छटा दिखाई देती थी। प्रेमशंकर झोंपड़े के सामने खड़े बैलों को चारा डाल रहे थे। ज्ञानशंकर को देखते ही बड़े प्रेम से गले मिले और घर का कुशल-समाचार पूछने के बाद बोले—तुम तो जैसे मुझे भूल ही गए। इधर न आने की कसम खा ली।

ज्ञानशंकर ने लज्जित होकर कहा—यहां आने का विचार तो कई दिन से था, पर अवकाश ही नहीं मिलता था। इसे अपने दुर्भाग्य के सिवा और क्या कहूं? आप मुझसे इतने समीप हैं, फिर भी हमारे बीच में सौ कोस का अंतर है। यह मेरी नैतिक दुर्बलता और बिरादरी का लिहाज है। मुझे बिरादरी के हाथों जितने कष्ट झेलने पड़े, वह मैं ही जानता हूं। यह स्थान तो बड़ा रमणीक है। यह खेत किसके हैं?

प्रेमशंकर—इसी गांव के असामियों के हैं। तुम्हें तो मालूम होगा, सावन में यहां बाढ़ आ गई थी। सारा गांव डूब गया था, कितने ही बैल बह गए, यहां तक कि झोंपड़ों का भी पता न चला। तब से लोगों को सहकारिता की जरूरत मालूम होने लगी है। सब असामियों ने मिलकर यह बांध बना लिया है और यह साठ बीघे का चक निकल आया। इसके चारों ओर ऊंची मेंड़ें खींच दी हैं। जिसके जितने बीघे खेत हैं, उसी परते से बीज और मजदूरी ली जाएगी। उपज भी उसी परते से बांट दी जाएंगी। मुझे लोगों ने प्रबंधकर्त्ता बना रखा है। इस ढंग से काम करने से बड़ी किफायत होती है। जो काम दस मजूर करते थे वही काम छह-सात मजूरों से पूरा हो जाता है। जुताई और सिंचाई भी उत्तम रीति से हो सकती है। तुमने गायत्रीदेवी का वृत्तांत खूब लिखा है, मैं पढ़कर मुग्ध हो गया।

ज्ञानशंकर—उन्होंने मुझे अपनी रियासत का प्रबंध करने को बुलाया है। मेरे लिए यह बड़ा अच्छा अवसर है। लेकिन जाऊं कैसे? माया और उनकी मां को तो साथ ले जा सकता हूं, किंतु भाभी किसी तरह जाने पर राजी नहीं हो सकतीं। शिकायत नहीं करता, लेकिन चाची से आजकल उनका बड़ा मेल-जोल है। चाची और उनकी बहू दोनों ही उनके कान भरती हैं। उनका सरल स्वभाव है। दूसरों की बातों में आ जाती हैं। आजकल दोनों महिलाएं उन्हें दम दे रही हैं कि लखनपुर का आधा हिस्सा अपने नाम करा लो। कौन जाने, तुम्हारे पति फिर विदेश की राह लें तो तुम कहीं की न रहो ! चचा साहब भी उसी गोष्ठी में हैं। आज ही कल में वह लोग यह प्रस्वाव आपके सामने लाएंगे। इसलिए आपसे मेरी विनीत प्रार्थना है कि इस विषय में आप जो करना चाहते हैं उससे मुझे सूचित कर दें। आपके ही फैसले पर मेरे जीवन की सारी आशाएं निर्भर हैं। यदि आपने अपने हिस्से को बय करने का निश्चय कर लिया हो, तो मैं अपने लिए कोई और राह निकालूं।

प्रेमशंकर—चचा साहब के विषय में तुम्हें जो संदेह है, वह सर्वथा निर्मूल है। उन्होंने आज तक कभी मुझसे तुम्हारी शिकायत नहीं की। उनके हृदय में संतोष है और चाहे उनकी अवस्था अच्छी न हो, पर वह उससे असंतुष्ट नहीं जान पड़ते। रहा लखनपुर के संबंध में मेरा

इरादा। मैं यह सुनना ही नहीं चाहता कि मैं उस गांव का जमींदार हूं। तुम मेरी ओर से निश्चिंत रहो। यही समझ लो कि मैं हूं ही नहीं। मैं अपने श्रम की रोटी खाना चाहता हूं। बीच का दलाल नहीं बनना चाहता। अगर सरकारी पत्रों में मेरा नाम दर्ज हो गया तो मैं इस्तीफा देने को तैयार हूं। तुम्हारी भाभी के जीवन-निर्वाह का भार तुम्हारे ऊपर रहेगा। मुझसे भी जो कुछ बन पड़ेगा तुम्हारी सहायता करता रहूंगा।

ज्ञानशंकर भाई की बातें सुनकर विस्मित हो गए। यद्यपि इन विचारों में मौलिकता न थी। उन्होंने साम्यवाद के ग्रंथों में इसका विवरण देखा था, लेकिन उनकी समझ में यह केवल मानव समाज का आदर्श-मात्र था। इस आदर्श को व्यावहारिक रूप में देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। वह अगर इस विषय पर तर्क करना चाहते तो अपनी सबल युक्तियों से प्रेमशंकर को निरुत्तर कर देते। लेकिन यह समय इन विचारों के समर्थन करने का था, न कि अपनी वाक्पटुता दिखाने का। बोले—भाई साहब, यह समाज-संगठन का महान आदर्श है, और मुझे गर्व है कि आप केवल विचार से नहीं, व्यवहार से भी उसके भक्त हैं। अमेरिका की स्वतंत्र भूमि में इन भावों का जाग्रत होना स्वाभाविक है। यहां तो घर से बाहर निकलने की नौबत ही नहीं आई। आत्मबल और बुद्धि-सामर्थ्य से भी वंचित हूं। मेरे संकल्प इतने पवित्र और उत्कृष्ट क्योंकर हो सकते हैं। मेरी संकीर्ण दृष्टि में तो यही जमींदारी, जिसे आप (मुस्कराकर) बीच की दलाली समझते हैं, जीवन का सर्वश्रेष्ठ रूप है। हां, संभव है आगे चलकर आपके सत्संग से मुझमें भी सद्विचार उत्पन्न हो जाएं।

प्रेम—तुम अपने ही मन में विचार करो। यह कहां का न्याय है कि मेहनत तो कोई करे, उसकी रक्षा का भार किसी दूसरे पर हो, और रुपये उगाहें हम।

ज्ञान—बात तो यथार्थ है, लेकिन परंपरा से यह परिपाटी ऐसी चली आती है। इसमें किसी प्रकार का संशोधन करने का ध्यान ही नहीं होता।

प्रेम—तो तुम्हारा गोरखपुर जाने का कब तक इरादा है?

ज्ञान—पहले आप मुझे इसका पूरा विश्वास दिला दें कि लखनपुर के संबंध में आपने जो कहा है वह निश्चयात्मक है।

प्रेम—उसे तुम अटल समझो। मैंने तुमसे एक बार अपने हिस्सें का मुनाफा मांगा था। उस समय मेरे विचार इतने पक्के न थे। मेरा हाथ भी तंग था। उस पर मैं बहुत लज्जित हूं। ईश्वर ने चाहा तो अब तुम मुझे इसे प्रतिज्ञा पर दृढ़ पाओगे।

ज्ञान—तो मैं होली तक गोरखपुर चला जाऊंगा। कोई हर्ज न हो तो आप भी घर चलें। माया आपको बहुत पूछा करता है।

प्रेम—आज तो अवकाश नहीं, फिर कभी आऊंगा।

ज्ञानशंकर यहां से चले तो उनका चित्त बहुत प्रसन्न था। बहुत दिनों के बाद मेरे मन की अभिलाषा पूरी हुई। अब मैं पूरे लखनपुर का स्वामी हूं। यहां अब कोई मेरा हाथ पकड़ने वाला नहीं। जो चाहूं निर्विघ्न कर सकता हूं। भैया वचन के पक्के हैं, वह अब कदापि दुलख नहीं सकते। वह इस्तीफा लिख देते तो बात और पक्की हो जाती, लेकिन इस पर जोर देने से मेरी क्षुद्रता प्रकट होगी। अभी इतना ही बहुत है, आगे चल कर देखा जाएगा।

बीस

ज्ञानशंकर लगभग दो बरस से लखनपुर पर इजाफा लगान करने का इरादा कर रहे थे, किंतु हमेशा उनके सामने एक-न-एक बाधा आ खड़ी होती थी। कुछ दिन तो अपने चचा से अलग होने में लगे। जब उधर से बेफिक्र हुए तो लखनऊ जाना पड़ा। इधर प्रेमशंकर के आ जाने से एक नयी समस्या उपस्थित हो गई। इतने दिनों के बाद अब उन्हें मनोनीत सुअवसर हाथ लगा।

लखनपुर के लोग मुचलके के कारण बिगड़े हुए थे ही, यह नई विपत्ति सिर पर पड़ी तो और भी झल्ला उठे। मुचलके की मियाद इसी महीने में समाप्त होने वाली थी। वह स्वच्छंदता से जवाबदेही कर सकते थे। सारे गांव में एका हो गया। आग-सी लग गई। बूढ़े कादिर खां भी, जो अपनी सहिष्णुता के लिए बदनाम थे, धीरता से काम न ले सके। भरी हुई पंचायत में जो जमींदार का विरोध करने के उद्देश्य से बैठी थी, बोले—इसी धरती में सब कुछ पैदा होता है और सब कुछ इसी में समा जाता है। हम भी इसी धरती से पैदा हुए हैं और एक दिन इसी में समा जाएंगे। फिर यह चोट क्यों सहें? धरती के ही लिए छत्रधारियों के सिर गिर जाते हैं, हम भी अपने सिर गिरा देंगे। इस काम में सहायता करना गांव के सब प्राणियों का धर्म हैं, जिससे जो कुछ हो सके, दे। सब लोगों ने एक स्वर से कहा—हम सब तुम्हारे साथ हैं, जिस रास्ते कहोगे, चलेंगे और इस धरती पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देंगे।

निःस्संदेह गांव वालों को मालूम था कि जमींदार को इजाफा करने का पूरा अधिकार है, लेकिन वह यह भी जानते थे कि यह अधिकार उसी दशा में होता है, जब जमींदार अपने प्रयत्न से भूमि की उत्पादक शक्ति बढ़ा दे। इस निर्मूल इजाफे को सभी अनर्थ समझते थे।

ज्ञानशंकर ने गांव में यह एका देखा तो चौंके, लेकिन कुछ तो अपने दबाव और कुछ हाकिम परगना मिस्टर ज्वालासिंह के सहवासी होने के कारण उन्हें अपनी सफलता में विशेष संशय न था। लेकिन जब दावे की सुनवाई हो चुकने के बाद जवाबदेही शुरू हुई तो ज्ञानशंकर को विदित हुआ कि मैं अपनी सफलता को जितना सुलभ समझता था उससे कहीं अधिक कष्टसाध्य है। ज्वालासिंह कभी-कभी ऐसे प्रश्न कर बैठते और असामियों के प्रति ऐसा दया-भाव प्रकट करते कि उनकी अभिरुचि का साफ पता चल जाता था। दिनों-दिन अवस्था ज्ञानशंकर के विपरीत होती जाती थी। वह स्वयं तो कचहरी न जाते, लेकिन प्रतिदिन का विवरण बड़े ध्यान से सुनते थे। ज्वालासिंह पर दांत पीसकर रह जाते। ये महापुरुष मेरे सहपाठियों में हैं। हम बरसों तक साथ-साथ खेले हैं। हंसी-दिल्लगी, धौल-धप्पा सभी कुछ होता था। आज जो जरा अधिकार मिल गया तो ऐसे तोते की भाँति आंखें फेर लीं, मानो कभी का परिचय ही नहीं है।

अंत में जब उन्होंने देखा कि अब यत्न न किया तो काम बिगड़ जाएगा तब उन्होंने एक दिन ज्वालासिंह से मिलने का निश्चय किया। कौन जाने मुझ पर रोब जमाने के लिए यह जाल फैला रहे हों। यद्यपि वह जानते थे कि ज्वालासिंह किसी मुकदमे की जांच की अवधि में वादियों से बहुत कम मिलते थे तथापि स्वार्थपरता की धुन में उन्हें इसका भी ध्यान न रहा। संध्या समय उनके बंगले पर जा पहुंचे।

ज्वालासिंह को इन दिनों सितार का शौक हुआ था। उन्हें अपनी शिक्षा में यह विशेष

त्रुटि जान पड़ती थी। एक गत बजाने की बार-बार चेष्टा करते, पर तारों का स्वर न मिलता था। कभी यह कील घुमाते, कभी वह कील ढीली करते कि ज्ञानशंकर ने कमरे में प्रवेश किया। ज्वालासिंह ने सितार रख दिया और उनसे गले मिलकर बोले—आइए भाईजान, आइए। कई दिनों से आपकी याद आ रही थी। आजकल तो आपका लिटरेरी उमंग बढ़ा हुआ है। मैंने गायत्री देवी पर आपका लेख देखा। बस, यही जी चाहता था, आपकी कलम चूम लूं। यहां सारी कचहरी में उसी की चर्चा है। ऐसा ओज, ऐसा प्रसादगुण, इतनी प्रतिभा, इतना प्रवाह बहुत कम किसी लेख में दिखाई देता है। कल मैं साहब बहादुर से मिलने गया था। उनकी मेज पर वही पत्रिका पड़ी हुई थी। जाते ही जाते उसी लेख की चर्चा छेड़ दी। वे लोग बड़े गुणग्राही होते हैं। यह कहां से ऐसे चुने हुए शब्द और मुहावरे लाकर रख देते हैं, मानो किसी ने सुंदर फूलों का गुलदस्ता सजा दिया हो।

ज्वालासिंह की प्रशंसा उस रईस की प्रशंसा थी जो अपने कलावंत के मधुर गान पर मुग्ध हो गया हो। ज्ञानशंकर ने सकुचाते हुए पूछा—साहब क्या कहते थे?

ज्वाला—पहले तो पूछने लगे, यह है कौन आदमी? जब मैंने कहा, यह मेरे सहपाठी और साथ के खिलाड़ी हैं तब उन्हें और भी दिलचस्पी हुई। पूछा, क्या करते हैं, कहां रहते हैं? मेरी समझ में देहाती बैंकों के संबंध में आपने जो रिमार्क किए हैं उनका उन पर बड़ा असर हुआ।

ज्ञान—(मुस्कराकर) भाईजान, आपसे क्या छिपाएं। वह टुकड़ा मैंने एक अंग्रेजी पत्रिका से कुछ काट-छांटकर नकल कर लिया था (सावधान होकर) कम-से-कम वह विचार मेरे न थे।

ज्वाला—आपको हवाला देना चाहिए था।

ज्ञान—विचारों पर किसी का अधिकार नहीं होता। शब्द तो अधिकांश मेरे ही थे।

ज्वाला—गायत्री देवी तो बहुत प्रसन्न हुई होंगी। कुछ वरदान भी देंगी या नहीं?

ज्ञान—उनका एक पत्र आया है। अपने इलाके का प्रबंध मेरे हाथों में देना चाहती हैं।

ज्वाला—वाह, क्या कहने ! वेतन भी पांच सौ रुपये से कम न होगा।

ज्ञान—वेतन का तो जिक्र न था। शायद इतना न दे सकें।

ज्वाला—भैया, अगर वहां तीन सौ रुपये भी मिलें तो आप हम लोगों से अच्छे रहेंगे। खूब सैर-सपाटे कीजिए, मोटर दौड़ाते फिरिए, और काम ही क्या है? हम लोगों की भांति कागज का एक पुलिंदा तो सिर पर लादकर घर न लाना पड़ेगा। वहां कब तक जाने का विचार है?

ज्ञान—जाने को मैं तैयार हूं, लेकिन जब आप गला छोड़ें।

ज्वालासिंह ने बात काटकर कहा—फैमिली को साथ ले जाइएगा न? अवश्य ले जाइए। मैंने भी एक सप्ताह हुए स्त्री को बुला लिया है। इस ऊजड़ में भूत की तरह अकेला पड़ा रहता था।

ज्ञान—अच्छा, तो भाभी आ गईं? बड़ा आनंद रहेगा। कॉलेज में तो आप परदे के बड़े विरोधी थे?

ज्वाला—अब भी हूं, पर विपत्ति यह है कि अन्य पुरुष के सामने आते हुए उनके प्राण निकल-से जाते हैं। अरदली और नौकर से निःसंकोच बातें करती हैं, लेकिन मेरे मित्रों की परछाईं से भागती हैं। खींच-खांच के लाऊं भी तो सिर झुकाकर अपराधियों की भांति खड़ी रहेंगी।

ज्ञान–अरे, तो क्या मेरी गिनती उन्हीं मित्रों में है?

ज्वाला–अभी तो आपसे भी झिझकेंगी। हां, आपसे दो-चार बार मुलाकात हों, आपके घर की स्त्रियां भी आने लगें तो सम्भव है संकोच न रहे। क्यों न मिसेज ज्ञानशंकर को कल यहां भेज दीजिए? गाड़ी भेज दूंगा। आपकी वाइफ को तो कोई आपत्ति न होगी?

ज्ञान–जी नहीं, वह बड़े शौक से आएंगी।

ज्ञानशंकर को अपने मुकदमे के संबंध में और कुछ कहने का अवसर न मिला। लेकिन वहां से चले तो बहुत खुश थे। स्त्रियों के मेल-जोल से इन महाशय की नकेल मेरे हाथों में आ जाएगी। जिस कल को चाहूं घुमा सकता हूं। उन्हें अब अपनी सफलता में कोई संशय न रहा। लेकिन जब घर पर आकर उन्होंने विद्या से यह चर्चा की तो वह बोली–मुझे तो वहां जाते झेंप होती है, न कभी की जान-पहचान, न रीति न व्यवहार। मैं वहां जाकर क्या बातें करूंगी? गूंगी बनी बैठी रहूंगी। तुमने मुझसे न पूछा न ताछा वादा कर आए।

ज्ञान–मिसेज ज्वालासिंह बड़ी मिलनसार हैं। उनसे मिलकर तुम्हें बड़ा आनंद आयेगा।

विद्या–अच्छा, और मुन्नी को (छोटी लड़की का नाम था) क्या करूंगी? यह वहां रोए-चिल्लाए और उन्हें बुरा लगे तो?

ज्ञान–महरी को साथ लेते जाना। वह लड़की को बाहर बगीचे में बहलाती रहेगी।

विद्या बहुत कहने-सुनने से अंत में जाने पर राजी हो गई। दस बजते-बजते लौटी। ज्ञानशंकर ने बड़ी उत्सुकता से पूछा–कैसे मिलीं?

विद्या–बहुत अच्छी तरह। स्त्री क्या हैं देवी हैं। ऐसी हंसमुख, स्नेहमयी स्त्री तो मैंने देखी ही नहीं। छोड़ती ही न थीं। बहुत जिद की तो आने दिया। मुझे विदा करने लगीं तो उनकी आंखों से आंसू निकलने लगे। मैं भी रो पड़ी। उर्दू, अंग्रेजी सब पढ़ी हुई हैं। बड़ा सरल स्वभाव है। महरियों तक को 'तू' नहीं कहतीं। शीलमणि नाम है।

ज्ञान–कुछ मेरी चर्चा भी हुई?

विद्या–हां, हुई क्यों नहीं? कहती थीं मेरे बाबूजी के पुराने दोस्त हैं। तुम्हें उस दिन चिक की आड़ से देखा था। तुम्हारी अचकन उन्हें पसंद नहीं। हंसकर बोलीं, अचकन क्यों पहनते हैं, मुसलमानों का पहनावा है। कोट क्यों नहीं पहनते?

ज्ञानशंकर की आशा और उद्दीप्त हुई, लेकिन जब मुकदमा फिर तारीख पर पेश हुआ तो ज्वालासिंह के व्यवहार में जरा भी अंतर न था। बार-बार मुद्दई के गवाहों से अविश्वाससूचक प्रश्न करते, मुद्दई के वकील के प्रश्नों पर शंकाएं करते। ज्ञानशंकर ने शाम को यह समाचार सुना तो चकित हो गए। यह तो विचित्र आदमी है। इधर भी चलता है, उधर भी। मुझे नचाना चाहता है। यह पद पाकर दोरंगी चाल चलना सीख गया है। जी में आया, चलकर साफ-साफ कह दूं, मित्रों से यह कपट अच्छा नहीं। या तो दुश्मन बन जाओ या दोस्त बने रहो। यह क्या कि मन में कुछ और मुख में कुछ और। इसी असमंजस में एक सप्ताह गुजर गया। दूसरी तारीख निकट आती जाती थी। ज्ञानशंकर का चित्त बहुत उद्विग्न था। उन्होंने मन में निश्चय कर लिया था कि अगर इन्होंने फिर दोरंगी चाल चली तो अपना मुकदमा किसी दूसरे इजलास में उठा ले जाऊंगा। दबूं क्यों?

लेकिन जब दूसरी तारीख को ज्वालासिंह ने लखनपुर जाकर मौके की जांच करने के लिए फिर तारीख बढ़ा दी तो ज्ञानशंकर झुंझला उठे। क्रोध में भरे विद्या से बोले–देखी तुमने

इनकी शरारत? अब मौके की जांच करने जा रहे हैं। अब नहीं रहा जाता। जाता हूं, जरा दो-दो बातें कर आऊं।

विद्या—तुम इतना अधीर क्यों हो रहे हो? क्या जाने वह दूसरों को दिखाने के लिए यह स्वांग भर रहे हों। अपनी बदनामी को सभी डरते हैं।

ज्ञान—तो आखिर कब तक मैं फैसले का इंतजार करता रहूं? यहां बैठे-बैठे मेरी कई सौ रुपये महीने की हानि हो रही है।

ज्ञानशंकर ने अभी तक विद्या से गायत्री के अनुरोध की जरा भी चर्चा न की थी। इस समय सहसा मुंह से बात निकल गई। विद्या ने चौंककर पूछा—हानि कैसी हो रही है?

ज्ञानशंकर ने देखा, अब बातें बनाने से काम न चलेगा और फिर कब तक छिपाऊंगा। बोले—मुझे याद आता है, मैंने तुमसे गायत्री देवी के पत्र का जिक्र किया था। उन्होंने मुझे अपनी रियासत का मैनेजर बनाने का प्रस्ताव किया है और जल्द बुलाया है।

विद्या—तुमने स्वीकार भी कर लिया?

ज्ञान—क्यों न करता, क्या कोई हानि थी?

विद्या—जब तुम्हें स्वयं इतनी मोटी-सी बात भी नहीं सूझती तो मैं और क्या कहूं। भला सोचो तो दुनिया क्या कहेगी। लोग यही समझेंगे कि अबला विधवा है, नातेदार जमा होकर लूटे खाते हैं। तुम चाहे कितने ही निःस्पृह भाव से काम करो, लेकिन बदनामी से न बच सकोगे, अभी वह तुम्हारी बड़ी साली हैं, तुमसे कितना प्रेम करती हैं, तुम्हारा कितना सत्कार करती हैं। कितनी ही बार तुम्हारी चारपाई तक बिछा दी है। इस उच्चासन से गिरकर अब तुम उनके नौकर हो जाओगे और मुझे भी बहन के पद से गिराकर नौकरानी बना दोगे। मान लिया कि वह भी तुम्हारी खातिर करेंगी, लेकिन वह मृदुभाव कहां? लोग उनसे तुम्हारी जा-बेजा शिकायतें करेंगे। मुलाहिजे के मारे वह तुमसे कुछ न कह सकेंगी, मन-ही-मन कुढ़ेंगी। मैं तुम्हें नौकरी के विचार से जाने की कभी सलाह न दूंगी।

ज्ञान—कह चुकीं या और कुछ कहना है।

विद्या—कहने-सुनने की बात नहीं है, मुझे तुम्हारा वहां जाना सर्वथा अनुचित जान पड़ता है।

ज्ञान—अच्छा तो अब मेरी बात सुनो। मुझे वर्तमान और भविष्य की अवस्था का विचार करके यही उचित जान पड़ता है कि इस अवसर को हाथ से न जाने दूं। जब मैं जी-तोड़कर काम करूंगा, दो की जगह एक खर्च करूंगा, एक की जगह दो जमा करके दिखाऊंगा, तो गायत्री बावली नहीं है कि अनायास मुझ पर संदेह करने लगे। और फिर मैं केवल नौकरी के इरादे से नहीं जाता, मेरे विचार कुछ और ही हैं।

विद्या ने सशंक दृष्टि से ज्ञानशंकर को देखकर पूछा—और क्या विचार हैं?

ज्ञान—मैं इस समृद्धिपूर्ण रियासत को दूसरे के हाथ में नहीं देखना चाहता। गायत्री के बाद जब उस पर दूसरों का ही अधिकार होगा तो मेरा क्यों न हो?

विद्या ने कौतूहल से देखकर कहा—तुम्हारा क्या हक है?

ज्ञान—मैं अपना हक जमाना चाहता हूं। अब चलता हूं, जरा ज्वालासिंह से निबटता आऊं।

विद्या—उनसे क्या निबटोगे? उन्होंने कोई रिश्वत ली है?

ज्ञान—तो फिर इतना मित्रभाव क्यों दिखाते हैं।

विद्या—यह उनकी सज्जनता है। यह आवश्यक नहीं कि वह आपके लिए दूसरों पर अन्याय करें।

ज्ञान—यही बात मैं उनके मुंह से सुनना चाहता हूं। इसका मुंहतोड़ जवाब मेरे पास है।

विद्या—अच्छा तो जाओ, जो जी में आए करो। फिर मुझसे क्यों सलाह लेते हो?

ज्ञान—तुमसे सलाह नहीं लेता, तुम में इतनी ही बुद्धि होती तो फिर रोना काहे का था? स्त्रियां बड़े-बड़े काम कर दिखाती हैं। तुमसे इतना भी न हो सका कि शीलमणि से इस मुकदमे के संबंध में कुछ बात-चीत करतीं, तुम्हारी तो जरा-जरा-सी बात में मान-हानि होने लगती है।

विद्या—हां, मुझसे यह सब नहीं हो सकता। अपना स्वभाव ही ऐसा नहीं है।

ज्ञान—क्यों, इसमें क्या हर्ज था, अगर तुम एक बार हंसी-हंसी में कह देतीं कि तुम्हारे बाबूजी हमारी हजारों रुपये साल की क्षति कराए देते हैं, जरा उनको समझा क्यों नहीं देतीं?

विद्या—मुझे यह बातें बनानी नहीं आतीं, क्या करूं? मैं इस विषय में शीलमणि से कुछ कह नहीं सकती।

ज्ञान—चाहे दावा खारिज हो जाय?

विद्या—चाहे जो कुछ हो।

ज्ञानशंकर बाहर आए तो सामने एक नई समस्या आ खड़ी हुई। विद्या को कैसे राजी करूं? मानता हूं कि संबंधियों के यहां नौकरी से कुछ हेठी अवश्य होती है, लेकिन इतनी नहीं कि कोई उसके लिए चिरकाल के मनसूबों को मिटा दे। विद्या की यह बुरी आदत है कि जिस बात पर अड़ जाती है उसे किसी तरह से नहीं छोड़ती। मैं उधर चला जाऊं और इधर यह राय साहब से मेरी शिकायत कर दे तो बना-बनाया काम बिगड़ जाय। अब यह पहले की-सी सरला नहीं है। इसमें दिनों-दिन आत्म-सम्मान की मात्रा बढ़ती जाती है। इसे नाराज करने का यह अवसर नहीं।

वह इस चिंता में बैठे हुए थे कि शीलमणि की सवारी आ पहुंची। ज्ञानशंकर ने निश्चय किया, स्वयं चलकर उससे अपना समाचार कहूं। अभी तीनों महिलाएं कुशल समाचार ही पूछ रही थीं कि वह कुछ झिझकते हुए ऊपर आए और कमरे के द्वार पर चिलमन के सामने खड़े होकर शीलमणि से बोले—भाभीजी को प्रणाम करता हूं।

विद्या उनका आशय समझ गई। लज्जा से उसका मुखमंडल अरुण वर्ण हो गया। वह वहां से उठकर ज्ञानशंकर को अवहेलनापूर्ण नेत्रों से देखते हुए दूसरे कमरे में चली गई। श्रद्धा मध्यस्थ का काम देने के लिए रह गई।

ज्ञानशंकर बोले—भाई साहब तो पर्दे के भक्त नहीं हैं, और जब हम लोगों में इतनी घनिष्ठता हो गई है तो यह हिजाब उठ जाना चाहिए। मुझे आपसे कितनी ही बातें कहनी हैं। परमात्मा ने आपको शील और विनय के गुणों से विभूषित किया है, इसलिए मुझे आपसे निज के मामलों में जबान खोलने का साहस हुआ है। मुझे विश्वास है कि आप उसकी अवज्ञा न करेंगी। मेरा एक इजाफा लगान का मुकदमा भाई साहब के इजलास में दो महीनों से पेश है। मैं उनका इतना अदब करता हूं कि इस विषय में उनसे कुछ कहते हुए संकोच होता है। यद्यपि मुझे वह भाई समझते हैं। लेकिन किसी कारण से उन्हें भ्रम होता हुआ जान पड़ता है कि मेरा दावा झूठा है। और मुझे भय है कहीं वह उसे खारिज न कर दें। इसमें संदेह नहीं कि दावे को खारिज करने का उन्हें बहुत दु:ख होगा, लेकिन शायद उन्हें अब तक मेरी वास्तविक दशा

का ज्ञान नहीं है। वह यह नहीं जानते कि इससे मेरा कितना अपमान और कितना अनिष्ट होगा। आजकल की जमींदारी एक बला है। जीवन की सामग्रियां दिनों-दिन महंगी होती जाती हैं और मेरी आमदनी आज भी वही है जो तीस वर्ष पहले थी। ऐसी अवस्था में मेरे उद्धार का इसके सिवा और क्या उपाय है कि असामियों पर इजाफा लगान करूं। अन्न मोतियों के मोल बिक रहा है। कृषकों की आमदनी दुगुनी बल्कि तिगुनी हो गई है। यदि मैं उनकी बढ़ी हुई आमदनी में से एक हिस्सा मांगता हूं तो क्या अन्याय करता हूं? अगर मेरी जीत हुई तो सहज में ही मेरी आमदनी एक हजार बढ़ जाएगी। हार हुई तो असामियों की निगाह में गिर जाऊंगा। वह शेर हो जाएंगे और बात-बात पर मुझसे उलझेंगे। तब मेरे लिए इसके सिवा और मार्ग न रहेगा कि जमींदारी से इस्तीफा दे दूं और मित्रों के सिर जा पड़ूं। (मुस्कराकर) आप ही के द्वार पर अड्डा जमाऊंगा और यदि आप मार-मार कर हटाएं, तो भी हटने का नाम न लूंगा।

शीलमणि ने यह विवरण ध्यानपूर्वक सुना और श्रद्धा से बोली–आप बाबूजी से कह दें, मुझे यह सुनकर बड़ा खेद हुआ। आपने पहले इसका जिक्र क्यों नहीं किया? विद्या ने भी कभी इसकी चर्चा नहीं की, नहीं तो अब तक आपकी डिगरी हो गई होती। किंतु आप निश्‍चिंत रहें। मैं आपको विश्‍वास दिलाती हूं कि अपनी ओर से आपकी सिफारिश करने में कोई बात उठा न रखूंगी।

ज्ञान–मुझे आपसे ऐसी ही आशा थी। दो-चार दिन में भाई साहब मौका देखने जाएंगे। इसलिए उनसे जल्द ही इसकी चर्चा कर दें।

शील–मैं आज जाते-ही-जाते कहूंगी। आप इत्मीनान रखें।

इक्कीस

प्रभात का समय था। चैत का सुखद पवन प्रवाहित हो रहा था। बाबू ज्वालासिंह बरामदे में आरामकुर्सी पर लेटे हुए घोड़े का इंतजार कर रहे थे। उन्हें आज मौका देखने के लिए लखनपुर जाना था। किंतु इस मार्ग में एक बड़ी बाधा खड़ी हो गई थी। कल संध्या समय शीलमणि ने उनसे ज्ञानशंकर के मुकदमे की बात कही थी और तभी से वह बड़े असमंजस में पड़े हुए थे। सामने एक जटिल समस्या थी, न्याय या प्रणय, कर्त्तव्य या स्त्री की मान-रक्षा। वह सोचते थे, मुझसे बड़ी भूल हुई कि इस मुकदमे को अपने इलजास में रखा। लेकिन मैं यह क्या जानता था कि ज्ञानशंकर यह कूटनीति ग्रहण करेंगे। बड़ा स्वार्थी मुनष्य है। इसी अभिप्राय से उसने स्त्रियों से यह मेल-जोल बढ़ाया।

शीलमणि यह चालें क्या जाने, शील में पड़कर वचन दे आई। अब यदि उसकी बात नहीं रखता तो वह रो-रोकर जान ही दे देगी। उसे क्या मालूम कि इस अन्याय से मेरी आत्मा को कितना दु:ख होगा। अभी तक जितनी गवाहियां सामने आई हैं उनसे तो यही सिद्ध होता है कि ज्ञानशंकर ने असामियों को दबाने के लिए यह मुकदमा दायर किया है और कदाचित् बात भी यही है। बड़ा ही बना हुआ आदमी है। लेख तो ऐसे लिखता है कि मानो दीन-रक्षा के भावों में पगा हुआ है, किंतु पक्का मतलबी है। गायत्री की रियासत का मैनेजर हो जाएगा

तो अंधेर मचा देगा। नहीं, मुझसे यह अन्याय न हो सकेगा, देखकर मक्खी न निगली जाएगी। शीलमणि रूठेगी तो रूठे। उसे स्वयं समझना चाहिए था कि मुझे ऐसा वचन देने का कोई अधिकार नहीं था। लेकिन मुश्किल तो यह है कि वह केवल रोकर ही मेरा पिंड न छोड़ेगी, बात-बात पर ताने देगी। कदाचित् मैके की तैयारी भी करने लगे। यही उसकी बुरी आदत है कि या तो प्रेम और मृदुलता की देवी बन जाएगी या बिगड़ेगी तो भालों से छेदने लगेगी। ज्ञानशंकर ने मुझे ऐसे संकट में डाल रखा है कि उससे निकलने का कोई मार्ग ही नहीं दीखता।

ज्वालासिंह इसी हैस-बैस में पड़े हुए थे कि अचानक ज्ञानशंकर सामने पैरगाड़ी पर आते दिखाई दिए। ज्वालासिंह तुरंत कुर्सी से उठ खड़े हुए और साईस को जोर से पुकारा कि घोड़ा ला। साईस घोड़े को कसे हुए तैयार खड़ा था। यह हुक्म पाते ही घोड़ा सामने लाकर खड़ा कर दिया। ज्वालासिंह उस पर कूदकर सवार हो गए। ज्ञानशंकर ने समीप आकर कहा—कहिये भाई साहब, आज सबेरे-सबेरे कहां चले?

ज्वाला—जरा लखनपुर जा रहा हूं। मौका देखना है।

ज्ञान—धूप हो जाएगी।

ज्वाला—कोई परवाह नहीं।

ज्ञान—मैं भी साथ चलूं?

ज्वाला—मुझे रास्ता मालूम है।

यह कहते हुए उन्होंने घोड़े को एड़ लगाई और हवा हो गए। ज्ञानशंकर समझ गए कि मेरा मंत्र अपना काम कर रहा है। यह अकृपा इसी का लक्षण है। ऐसा न होता तो आज भी वही मीठी-मीठी बातें होतीं। चलूं, जरा शीलमणि को और पक्का कर आऊं। यह इरादा करके वह ज्वालासिंह के कमरे में जा बैठे। अरदली ने कहा—सरकार बाहर गए हैं।

ज्ञान—मैं जानता हूं। मुझसे मुलाकात हो गई। जरा घर में मेरी इत्तला कर दो।

अरदली—सरकार का हुक्म नहीं है।

ज्ञान—मुझे पहचानते हो या नहीं?

अरदली—पहचानता क्यों नहीं हूं?

ज्ञान—तो चौखट पर जाकर कहते क्यों नहीं?

अरदली—सरकार ने मना कर दिया है।

ज्ञानशंकर को अब विश्वास हो गया कि मेरी चाल ठीक पड़ी। ज्वालासिंह ने अपने को पक्षपात-रहित सिद्ध करने के लिए ही षड्यंत्र रचा है। वह सोच ही रहे थे कि शीलमणि से क्योंकर मिलूं कि इतने में महरी किसी काम से बाहर आई और ज्ञानशंकर को देखते ही जाकर शीलमणि से कहा। शीलमणि ने तुरंत उनके लिए पान भेजा और उन्हें दीवानखाने में बैठाया। एक क्षण के बाद खुद आकर पर्दे की आड़ में खड़ी हो गई और महरी से कहलाया—मैंने बाबूजी से आपकी सिफारिश कर दी है।

ज्ञानशंकर ने धन्यवाद देते हुए कहा—मुझे अब आप ही का भरोसा है।

शीलमणि बोली—आप घबराएं नहीं, मैं उन्हें एकदम चैन न लेने दूंगी। ज्ञानशंकर ने ज्यादा ठहरना उचित न समझा। खुशी-खुशी विदा हुए।

उधर बाबू ज्वालासिंह ने घोड़ा दौड़ाया तो चार मील पर रुके। उन्हें एक सिगार पीने की इच्छा हुई। जेब से सिगार-केस निकाला, लेकिन देखा तो दियासलाई न थी। उन्हें सिगार से

बड़ा प्रेम था। अब क्या हो? इधर-उधर निगाह दौड़ाई तो सामने कुछ दूरी पर एक बहली जाती हुई दिखाई दी। घोड़े को बढ़ाकर बहली के पास पहुंचे। देखा तो उसमें प्रेमशंकर बैठे हुए थे। ज्वालासिंह का उनसे परिचय था। कई बार उनकी कृषिशाला की सैर करने गए थे और उनके सरल, संतोषमय जीवन का आदर करते थे। पूछा-कहिए महाशय, आज इधर कहां चले?

प्रेम-जरा लखनपुर जा रहा हूं, और आप?

ज्वाला-मैं भी वहीं चलता हूं।

प्रेम-अच्छा साथ हुआ। क्या कोई मुकदमा है?

ज्वालासिंह ने सिगार जलाकर मुकदमे का वृत्तांत कह सुनाया।

प्रेमशंकर गौर से सुनते रहे, फिर बोले-आपने उन्हें समझाया नहीं कि गरीबों को क्यों तंग करते हो?

ज्वाला-मैं इस विषय में उनसे क्यों कर कुछ कहता? हां, स्त्रियों में जो बातें हुईं उनसे मालूम होता है कि वह अपनी जरूरतों से मजबूर हैं, उनका खर्च नहीं चलता।

प्रेम-दो हजार साल की आमदनी तीन-चार प्राणियों के लिए तो कम नहीं होती।

ज्वाला-लेकिन इसमें आधा तो आपका है।

प्रेम-जी नहीं; मेरा कुछ नहीं है। मैंने उनसे साफ-साफ कह दिया है कि मैं इस जायदाद में हिस्सा नहीं लेना चाहता।

ज्वालासिंह-(आश्चर्य से) क्या आपने उनके नाम हिब्बा कर दिया?

प्रेम-जी नहीं, लेकिन हिब्बा ही समझिए। मेरा सिद्धांत है कि मनुष्य को अपनी मेहनत की कमाई खानी चाहिए। यही प्राकृतिक नियम है। किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह दूसरों की कमाई को अपनी जीवन-वृत्ति का आधार बनाए।

ज्वाला-तो यह कहिए कि आप जमींदारी के पेशे को ही बुरा समझते हैं।

प्रेम-हां, मैं इसका भक्त नहीं हूं। भूमि उसकी है जो उसको जोते। शासक को उसकी उपज में भाग लेने का अधिकार इसलिए है कि वह देश में शांति और रक्षा की व्यवस्था करता है, जिसके बिना खेती हो ही नहीं सकती। किसी तीसरे वर्ग का समाज में कोई स्थान नहीं है।

ज्वाला-महाशय, इन विचारों से तो आप देश में क्रांति मचा देंगे। आपके सिद्धांत के अनुसार हमारे बड़े-बड़े जमींदारों, ताल्लुकेदारों और रईसों का समाज में कोई स्थान ही नहीं है। सब-के-सब डाकू हैं।

प्रेम-इसमें इनका कोई दोष नहीं, प्रथा का दोष है। इस प्रथा के कारण देश की कितनी आत्मिक और नैतिक अवनति हो रही है, इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। हमारे समाज का वह भाग जो बल, बुद्धि, विद्या में सर्वोपरि है, जो हृदय और मस्तिष्क के गुणों से अलंकृत है, केवल इसी प्रथा के वश आलस्य, विलास और अविचार के बंधनों में जकड़ा हुआ है।

ज्वालासिंह-कहीं आप इन्हीं बातों का प्रचार करने तो लखनपुर नहीं जा रहे हैं कि मुझे पुलिस की सहायता न मांगनी पड़े।

प्रेम-हां, शांति भंग कराने का अपराध मुझ पर लगाना हो तो जरूर पुलिस की सहायता लीजिए।

ज्वालासिंह-मुझे अब आप पर कड़ी निगाह रखनी पड़ेगी। मैं भी छोटा-मोटा जमींदार हूं। आपसे डरना चाहिए। इस समय लखनपुर ही जाइएगा या आगे जाने का इरादा है?

प्रेम—इरादा तो यहीं से लौट आने का है, आगे जैसी जरूरत हो। इधर आस-पास के देहातों में एक महीने से प्लेग का प्रकोप हो रहा है। कुछ दवाएं साथ लेता आया हूं। जरूरत होगी तो उसे बांट दूंगा, कौन जाने मेरे ही हाथों दो-चार जानें बच जाएं।

इसी प्रकार बातें करते हुए दोनों आदमी लखनपुर पहुंचे। गांव खाली पड़ा था। लोग बागों में झोंपड़ियां डाले हुए थे। इस छोटी-सी बस्ती में खूब चहल-पहल थी। उन दारुण दु:खों का चिह्न कहीं न दिखाई देता था; जिनसे लोगों के हृदय विदीर्ण हो गए थे। छप्परों के सामने महुए सुखाए जा रहे थे। चक्कियों की गरज, छाछ की तड़प, ओखली और मूसल की धमक उस जीवन-संग्राम की सूचना दे रही थी, जो प्लेग के भीषण हत्याकांड की भी परवाह न करता था। लड़के आमों पर ढेले चला रहे थे। कोई स्त्री बर्तन मांजती थी, कोई पड़ोसी के घर से आग लिए आती थी। कोई आदमी निठल्ला बैठा नजर न आता था।

प्रेमशंकर तो बस्ती में आते ही बहली से उतर पड़े और एक झोंपड़े के सामने खाट पर बैठ गए। ज्वालासिंह घोड़े से न उतरे। खाट पर बैठना अपमान की बात थी। जोर से बोले—कहां है मुखिया? जाकर पटवारी को बुला लाए। हम मौका देखना चाहते हैं।

यह हुक्म सुनते ही कई आदमी झोंपड़ों से मरीजों को छोड़-छोड़कर निकल आए। चारों ओर भगदड़-सी मच गई। दो-तीन आदमी चौपाल की तरफ कुर्सी लेने दौड़े, दो-तीन आदमी पटवारी की तलाश में भागे और गांव के मान्यगण ज्वालासिंह को घेरकर खड़े हो गए। प्रेमशंकर की ओर किसी ने ध्यान भी न दिया। इतने में कादिर खां अपनी झोंपड़ी से निकले और सुक्खू के कान में कुछ कहा। सुक्खू ने दुखरन भगत से कानाफूसी की, तब बिसेसर साह से सायं-सायं बातें हुईं, मानो लोग किसी महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर विचार कर रहे हों। दस मिनट के बाद सुक्खू चौधरी एक थाल लिए हुए आए। उसमें अक्षत, दही और कुछ रुपये रखे हुए थे। गांव के पुरोहितजी ने प्रेमशंकर के माथे पर दही-चावल का टीका लगाया और थाल उनके सामने रख दिया।

ज्वालासिंह कुर्सी पर बैठते हुए बोले—लीजिए, आपकी तो बोहनी हो गई, घाटे में हम ही रहे। उस पर भी आप जमींदारी के पेशे की निंदा करते हैं।

प्रेमशंकर ने कहा—देवी के नाम से ईंट-पत्थर भी तो पूजे जाते हैं।

कादिर खां—हम लोगों के धनभाग थे कि दोनों मालिकों के एक साथ दर्शन हो गए।

प्रेम—यहां बीमारी कुछ कम हुई या अभी वही हाल है?

कादिर—सरकार, कुछ न पूछिए, कम तो न हुई और बढ़ती जाती है। कोई दिन नागा नहीं जाता कि एक-न-एक घर पर बिजली न गिरती हो। नदी यहां से छ: कोस है। कभी-कभी तो दिन में दो-दो, तीन-तीन बेर जाना पड़ता है। उस पर कभी आंधी, कभी पानी, कभी आग। खेतों में अनाज सड़ा जाता है, कैसे काटें, कहां रखें? बस, भोर को घरों में एक बेर चूल्हा जलता है। फिर दिन-भर कहीं आग नहीं जलती। चिलम को तरस कर रह जाते हैं। हुजूर, रोते नहीं बनता, बड़ी दुर्दशा हो रही है। उस पर मालिकों की निगाह भी टेढ़ी हो गई है। सौ काम छोड़कर कचहरी दौड़ना पड़ता है। कभी-कभी तो घर में लाश छोड़कर जाना पड़ता है। क्या करें, जो सिर पर पड़ी है उसे झेलते हैं। हुजूर का एक गुलाम था। अच्छा पट्ठा था। सारी गृहस्थी संभाले हुए था। तीन घड़ी में चल बसा। मुंह से बोल तक न निकली। सुक्खू चौधरी का तो घर ही सत्यानाश हो गया। बस, अब अकेले इन्हीं का दम रह गया है। बेचारे डपटसिंह का

छोटा लड़का कल मरा है, आज बड़ा लड़का बीमार है। अल्लाह ही बचाए तो बचे। जुबान बंद हो गई है। लाल-लाल आंखें निकाले खाट पर पड़ा हाथ-पैर पटक रहा है। कहां तक गिनाएं। खुदा-रसूल, देवी-देवता सभी की मन्नतें मानते हैं पर कोई नहीं सुनता। अब तक तो जैसे बन पड़ा मुकदमे की उजरदारी की। अब वह हिम्मत भी नहीं रही। किसके लिए यह सब करें? इतने पर भी मालिकों को दया नहीं आती।

प्रेमशंकर–जरा मैं डपटसिंह के लड़के को देखना चाहता हूं।

कादिर–हां हुजूर चलिए, मैं चलता हूं।

ज्वालासिंह–जरा सावधान रहिएगा, यह रोग संक्रामक होता है।

प्रेमशंकर ने इसका कुछ उत्तर न दिया। औषधियों का बैग उठाया और कादिर खां के पीछे-पीछे चले। डपटसिंह के झोंपड़े पर पहुंचे तो आदमियों की बड़ी भीड़ लगी हुई थी, एक आम के पेड़ के नीचे रोगी की खाट पड़ी हुई थी। डपटसिंह और उनके छोटे भाई झपटसिंह सिरहाने खड़े पंखे झल रहे थे। दो स्त्रियां पांयते की ओर खड़ी रो रही थीं, प्रेमशंकर को देखते ही अंदर चली गईं। दोनों भाइयों ने उनकी ओर दीन भाव से देखा और अलग हट गए। उन्होंने उष्णता-मापक यंत्र से देखा तो रोगी का ज्वर एक सौ सात दर्जे पर था। त्रिदोष के लक्षण प्रकट थे। समझ गए, कि यह अब दम भर का और मेहमान है। अभी वह बैग से औषधि निकाल ही रहे थे कि मरीज एक बार जोर से चीख मारकर उठा और फिर खाट पर गिर पड़ा। आंखें पथरा गईं। स्त्रियों में पिट्टस पड़ गई। डपटसिंह शोकातुर होकर मृत शरीर से लिपट गया और रोकर बोला–बेटा, हाय बेटा !

यह कहते-कहते उसकी आंखें रक्त वर्ण हो गईं। उन्माद-सा छा गया, गीली लकड़ी पहली आंच में रसती है, दूसरी आंच में जलकर भस्म हो जाती है। डपटसिंह शोक-संताप से विह्वल हो गया। खड़ा होकर बोला–कोई इस घर में आग क्यों नहीं लगा देता? अब इसमें क्या रखा है? कैसी दिल्लगी है । बाप बैठा रहे और बेटा चल दे। इन्हीं हाथों से मैंने इसे गोद में खिलाया था। इन्हीं हाथों से चिता की गोद में कैसे बिठा दूं कैसा रुलाकर चल दिया मानो हमसे कोई नाता ही नहीं है। कहता था, दादा तुम बूढ़े हुए, अब बैठे-बैठे राम-राम करो, हम तुम्हारी परवस्ती करेंगे। मगर दोनों-के-दोनों चल दिए। किसी को मुझ पर दया नहीं आई। लो, राम-राम करता हूं। अब परवस्ती करो कि बातों के ही धनी थे।

यह कहते-कहते वह शव के पास से हटकर दूसरे पेड़ के नीचे जा बैठे। एक क्षण के बाद फिर बोले–अब इस मायाजाल को तोड़ दूंगा। बहुत दिन इसने मुझे उंगलियों पर नचाया, अब मैं इसे नचाऊंगा। तुम दोनों चल दिए, बहुत अच्छा हुआ। मुझे मायाजाल से छुड़ा दिया। इस माया के कारण कितने पाप किए, कितने झूठ बोले, कितनों का गला दबाया, कितनों के खेत काटे। अब सब पाप-दोष का कारण मिट गया। वह मरी हुई माया सामने पड़ी है। कौन कहता है मेरा बेटा था? नहीं, मेरा दुश्मन था, मेरे गले का फंदा था, मेरे पैरों की बेड़ी था। फंदा छूट गया, बेड़ी कट गई। लाओ, इस घर में आग लगा दो, सब कुछ भस्म कर दो। बलराज, खड़ा आंसू क्या बहाता है? कहीं आग नहीं है? लाके लगा दे।

सब लोग खड़े रो रहे थे। प्रेमशंकर भी करुणातुर हो गए। डपटसिंह के पास जाकर बोले–ठाकुर, धीरज धरो। संसार का यही दस्तूर है। तुम्हारी यह दशा देखकर बेचारी स्त्रियां और भाई रो रहे हैं। उन्हें समझाओ।

डपटसिंह ने प्रेमशंकर को उन्मत्त नेत्रों से देखा और व्यंग्य भाव से बोले–ओहो, आप तो हमारे मालिक हैं। क्या इजाफा वसूल करने आए हैं? उसी से लीजिए जो वहां धरती पर पड़ा हुआ है, वह आपकी कौड़ी-कौड़ी चुका देगा। गौस खां से कह दीजिए, उसे पकड़ ले जाएं, बांधें, मारें, मैं न बोलूंगा। मेरा खेती-बारी से, घर-द्वार से इस्तीफा है।

कादिर खां ने कहा–भैया डपट, दिल मजबूत करो। देखते हो, घर-घर यही आग लगी हुई है। मेरे सिर भी तो यही विपत्ति पड़ी है। इस तरह दिल छोटा करने से काम न चलेगा। उठो, कुछ कफन-कपड़े की फिक्र करो, दोपहर हुआ जाता है।

डपटसिंह को होश आ गया। होश के साथ आंसू भी आए। रोकर बोले–दादा, तुम्हारे-सा कलेजा कहां से लाएं? किसी तरह धीरज नहीं होता। हाय ! दोनों-के-दोनों चल दिए, एक भी बुढ़ापे का सहारा नहीं। सामने यह लाश देखकर ऐसा जी चाहता है, गले पर गड़ांसा मार लूं। दादा, तुम जानते हो कि कितना सुशील लड़का था। अभी उस दिन मुगद्र की जोड़ी के लिए हठ कर रहा था। मैंने सैकड़ों गालियां दीं, मारने उठा। बेचारे ने जबान तक न हिलाई। हां, खाने-पीने को तरसता रह गया। उसकी कोई मुराद पूरी न हुई। न भर पेट खा सका, न तन भर पहन सका। धिक्कार है मेरी जिंदगानी पर । अब यह घर नहीं देखा जाता। झपट, अपना घर-द्वार संभालो, मेरे भाग्य में ठोकर खाना लिखा हुआ है। भाई लोगो ! राम-राम, मालिक को राम-राम, सरकार को राम-राम। अब यह अभागा देश से जाता है, कही-सुनी माफ करना !

यह कहकर डपटसिंह उठकर कदम बढ़ाते हुए एक तरफ चले। जब कई आदमियों ने उन्हें पकड़ना चाहा तो वह भागे। लोगों ने उनका पीछा किया, पर कोई उनकी गर्द को भी न पहुंचा। जान पड़ता था हवा में उड़े जाते हैं। लोगों के दम फूल गए, कोई यहां गिरा, कोई वहां गिरा। अकेले बलराज ने उनका पीछा न छोड़ा, यहां तक कि डपटसिंह बेदम होकर जमीन पर गिर पड़े। बलराज दौड़कर उनकी छाती से लिपट गया और तब अपने अंगोछे से उन्हें हवा करने लगा। जब उन्हें होश आया तो हाथ पकड़े हुए घर लाया।

ज्वालासिंह की करुणा भी जाग्रत हो गई। प्रेमशंकर से बोले–बाबू साहब, बड़ा शोकमय दृश्य है।

प्रेमशंकर–कुछ न पूछिए, कलेजा मुंह को आया जाता है।

कई आदमी बांस काटने लगे, लेकिन तीसरे पहर तक लाश न उठी।

प्रेमशंकर ने कादिर से पूछा–देर क्यों हो रही है?

कादिर–हुजूर, क्या कहें? घर में रुपये नहीं हैं। बेचारा झपट रुपये के लिए इधर-उधर दौड़ रहा है, लेकिन कहीं नहीं मिलते। हमारी जो दशा है सरकार, हमीं जानते हैं। जाफा लगान के मुकदमे ने पहले ही हांड़ी-तावा गिरों रखवा लिया है। इस बीमारी ने रही-सही कसर भी पूरी कर दी। अब किसी के घर में कुछ नहीं रहा।

प्रेमशंकर ने ठंडी सांस लेकर ज्वालासिंह से कहा–देखी आपने इनकी हालत? घर में कौड़ी कफन को नहीं।

ज्वालासिंह–मुझे अफसोस आता है कि इनसे पिछले साल का मुचलका क्यों लिया ! मैं अब तक न जानता था कि इनकी दशा इतनी हीन है।

प्रेम–मुझे खेद है कि मकान से कुछ रुपये लेकर न चला।

ज्वाला—रुपये मेरे पास हैं, पर मुझे देते हुए संकोच होता है। शायद इन्हें बुरा लगे? आप लेकर दे दें तो अच्छा हो।

प्रेमशंकर ने बीस रुपये का नोट ले लिया और कादिर खां को चुपके से दे दिया। एक आदमी तुरंत कफन लेने को दौड़ा। लाश उठाने की तैयारियां होने लगीं। स्त्रियों में फिर कोहराम मचा। जब तक शव घर में रहता है, घर वालों को कदाचित् कुछ आशा लगी रहती है। उसका घर से उठना पार्थिव वियोग का अंत है। वह आशा के अंतिम सूत्र को तोड़ देता है।

तीसरे पहर लाश उठी। सारे गांव के पुरुष साथ चले। पहले कादिर खां ने कंधा दिया।

ज्वालासिंह को सरकारी काम था, वह लौट पड़े। लेकिन प्रेमशंकर ने दो-चार दिन वहां रहने का निश्चय किया।

बाईस

एक पखवारा बीत गया। संध्या समय था। शहरों में बर्फ की दुकानों पर जमघट होने लगा था। हुक्के और सिगरेट से लोगों को अरुचि होती जाती थी। ज्वालासिंह लखनपुर से मौके की जांच करके लौटे थे और कुर्सी पर बैठे हुए ठंडा शर्बत पी रहे थे कि शीलमणि ने आकर पूछा—दोपहर को कहां रह गए थे?

ज्वाला—बाबू प्रेमशंकर का मेहमान रहा। वह अभी देहात में ही हैं।

शील—अभी तक बीमारी का जोर कम नहीं हुआ।

ज्वाला—नहीं, अब कम हो रहा है। वह पूरे पन्द्रह दिन से देहातों में दौरे कर रहे हैं। एक दिन भी आराम से नहीं बैठे। गांव की जनता उनको पूजती है। बड़े-बड़े हाकिम का भी इतना सम्मान न होगा। न जाने इस तपन में उनसे कैसे रहा जाता है। न पंखा, न टट्टी, न शर्बत, न बर्फ। बस, पेड़ के नीचे एक झोंपड़े में पड़े रहते हैं। मुझसे तो वहां एक दिन भी न रहा जाय।

शील—परोपकारी पुरुष जान पड़ते हैं। क्या हुआ, तुमने मौका देखा?

ज्वाला—हां, खूब देखा। जिस बात का संदेह था वही सच्ची निकली। ज्ञानशंकर का दावा बिलकुल निस्सार है। उसके मुख्तार और चपरासियों ने मुझे बहुत कुछ चकमा देना चाहा, लेकिन मैं उन लोगों के हथकंडों को खूब जान गया हूं। बस हाकिमों को धोखा देकर अपना मतलब निकाल लेते हैं। जरा इस भलमनसाहत को देखो कि असामियों के तो जान के लाले पड़े हुए हैं और इन्हें अपने प्याले-भर खून की धुन सवार है। इतना भी नहीं हो सकता कि जरा गांव में जाकर गरीबों की तसल्ली तो करते। इन्हीं का भाई है कि जमींदारी पर लात मारकर दीनों की निःस्वार्थ सेवा कर रहा है, अपनी जान हथेली पर लिए फिरता है। और एक यह महापुरुष हैं कि दीनों की हत्या करने से भी नहीं हिचकते। मेरी निगाह में तो अब इनकी आधी इज्जत भी नहीं रही, खाली ढोल हैं।

शील—तुम जिसकी बुराई करने लगते हो, उसकी मिट्टी पलीद कर देते हो। मैं भी आदमी पहचानती हूं। ज्ञानशंकर देवता नहीं, लेकिन जैसे सब आदमी होते हैं वैसे ही वह भी हैं।

खामख्वाह दूसरों से बुरे नहीं।

ज्वाला–तुम उन्हें जो चाहे समझो, पर मैं तो उन्हें क्रूर, महालोभी और दुरात्मा समझता हूं।

शील–तब तो तुम उनका दावा अवश्य ही खारिज कर दोगे?

जवाला–कदापि नहीं, मैं यह सब जानते हुए भी उन्हीं की डिक्री करूंगा, चाहे अपील से मेरा फैसला मंसूख हो जाए।

शील–(प्रसन्न होकर) हां, बस मैं भी यही चाहती हूं। तुम अपनी-सी कर दो, जिसमें मेरी बात बनी रहे।

ज्वाला–लेकिन यह सोच लो कि तुम अपने ऊपर कितना बड़ा बोझ ले रही हो। लखनपुर में प्लेग का भयंकर प्रकोप हो रहा है। लोग तबाह हुए जाते हैं, खेत काटने की भी किसी को फुरसत नहीं मिलती। कोई घर ऐसा नहीं, जहां से शोक-विलाप की आवाज न आ रही हो। घर के घर अंधेरे हो गए, कोई नाम लेने वाला भी न रहा। उन गरीबों में अब अपील करने की सामर्थ्य नहीं। ज्ञानशंकर डिक्री पाते ही जारी कर देंगे। किसी के बैल नीलाम होंगे, किसी के घर बिकेंगे, किसी की फसल खेत में खड़ी-खड़ी कौड़ियों के मोल नीलाम हो जाएगी। यह दीनों की हाय किस पर पड़ेगी? यह खून किस की गर्दन पर होगा? मैं बदनामी से नहीं डरता, लेकिन अन्याय और अनर्थ से मेरे प्राण कांपते हैं।

शीलमणि यह व्याख्यान सुनकर कांप उठी। उसने इस मामले को इतना महत्त्वपूर्ण न समझा था। उसका मौनव्रत टूट गया, बोली–यदि यह हाल है तो आप वही कीजिए जो न्याय और सत्य कहे। मैं गरीबों की आह नहीं लेना चाहती। मैं क्या जानती थी कि जरा-से दावे का यह भीषण परिणाम होगा?

ज्वालासिंह के हृदय पर से एक बोझ-सा उतर गया। शीलमणि को अब तक वह न समझे थे। बोले–विद्यावती के सामने कौन-सा मुंह लेकर जाओगी?

शीलमणि–विद्यावती ऐसे क्षुद्र विचारों की स्त्री नहीं है, और अगर वह इस तरह मुझसे रूठ भी जाए तो मुझे चिंता नहीं। मैत्री के पीछे क्या गरीबों का गला काट लिया जाए? मैं तो समझती हूं वह ज्ञानशंकर से चिढ़ती है। जब कभी उन्होंने मुझसे इस दावे की चर्चा की, वह मेरे पास से उठकर चली गई है। उनकी माया-लिप्सा उसे एक आंख नहीं भाती। दावा खारिज होने की खबर सुनकर वह मन में प्रसन्न होगी।

ज्वाला–उस पर आपका दावा है कि गायत्री के इलाके का प्रबंध करेंगे। उसकी इनसे एक दिन भी न निभेगी। वह बड़ी दयावती है।

शीलमणि–दावा खारिज करने पर वह अपील कर दें तो?

ज्वाला–हां, बहुत संभव है, अवश्य करेंगे।

शील–और वहां से भी इनका दावा बहाल हो सकता है?

ज्वाला–हां, हो सकता है।

शील–तब तो वह गरीब खेतिहरों को और भी पीस डालेंगे।

ज्वाला–हां, यह तो उनकी प्रकृति ही है।

शील–तुम खेतिहरों की कुछ मदद नहीं कर सकते?

ज्वाला–न, यह मेरे अख्तियार से बाहर है।

शील—किसानों को कहीं से धन की सहायता मिल जाए तब तो वह न हारेंगे?

ज्वाला—हार-जीत तो हाकिम के निश्चय पर निर्भर है। हां, उन्हें मदद मिल जाए तो वह अपने मुकदमे की पैरवी अच्छी तरह कर सकेंगे।

शील—तो तुम कुछ रुपये क्यों नहीं दे देते?

ज्वाला—वाह, जिस अन्याय से भागता हूं, वही करूं।

शील—प्रेमशंकर जी बड़े दयालु हैं। उनके पास रुपये हों तो वह खेतिहारों की मदद करेंगे।

ज्वाला—मेरे विचार से वह इस न्याय के लिए अपने भाई से बैर न करेंगे।

इतने में बाहर कई मित्र आ गए। ग्वालियर का एक नामी जलतरंगिया आया हुआ था। क्लब में उसका गाना होने वाला था। लोग क्लब चल दिए।

दूसरी तारीख पर ज्ञानशंकर का मुकदमा पेश हुआ। ज्वालासिंह ने फैसला सुना दिया। उनका दावा खारिज हो गया। ज्ञानशंकर उस दिन स्वयं कचहरी में मौजूद थे। यह फैसला सुना तो दांत पीसकर रह गए। क्रोध में भरे हुए घर आए और विद्या पर जले दिल के फफोले फोड़े। आज बहुत दिनों के बाद लाला प्रभाशंकर के पास गए और उनसे भी इस सद्व्यवहार का रोना रो आए। एक सप्ताह तक यही क्रम चलता रहा। शहर में ऐसा कोई परिचित आदमी न था, जिससे उन्होंने ज्वालासिंह के कपट व्यवहार की शिकायत न की हो। यहां तक कि रिश्वत का दोषारोपण करने में भी संकोच न किया और उन्हें शब्दाघातों से ही तस्कीन न हुई। कलम की तलवार से भी चोटें करनी शुरू कीं। कई दैनिक पत्रों में ज्वालासिंह की खबर ली। जिस पत्र में देखिए उसी में उनके विरुद्ध कालम के कालम भरे रहते थे। ऐंग्लो-इंडियन पत्रों को हिंदुस्तानियों की अयोग्यता पर टिप्पणी करने का अच्छा अवसर हाथ आया। एक महीने तक यही रौला मचा रहा। ज्वालासिंह के जीवन का कोई अंग कलंक और अपवाद से न बचा। एक संपादक महाशय ने तो यहां तक लिख मारा कि उनका मकान शहर-भर के रसिक जनों का अखाड़ा है। ज्ञानशंकर के रचना कौशल ने उनके मनोमालिन्य के साथ मिलकर ज्वालासिंह को अत्याचार और अविचार का काला देव बना दिया। बेचारे लेखों को पढ़ते थे और मन ही मन ऐंठकर रह जाते थे। अपनी सफाई देने का अधिकार न था। कानून उनका मुंह बंद किए हुए था। मित्रों में ऐसा कोई न था जो पक्ष में कलम उठाता। पत्रों की मिथ्यावादिता पर कुढ़-कुढ़कर रह जाते थे, जो सत्यासत्य का निर्णय किए बिना अधिकारियों पर छींटे उड़ाने में ही अपना गौरव समझते थे। घर से निकलना मुश्किल हो गया। शहर में जहां देखिए यही चर्चा थी। लोग उन्हें आते-जाते देखकर खुले-बंदों उनका उपहास करते थे। अफसरों की निगाह भी बदल गई। जिलाधीश से मिलने गए। उसने कहला भेजा, मुझे फुर्सत नहीं है। कमिश्नर एक बंगाली सज्जन थे। उनके पास फरियाद करने गए। उन्होंने सारा वृत्तांत बड़ी सहानुभूति के साथ सुना, लेकिन चलते समय बोले—यह असंभव है कि इस हलचल का आप पर कोई असर न हो। मुझे शंका है कि कहीं यह प्रश्न व्यवस्थापक सभा में न उठ जाए। मैं यथाशक्ति आप पर आंच न आने दूंगा। लेकिन आपको न्यायोचित समर्थन करने के लिए कुछ नुकसान उठाने पर तैयार रहना चाहिए, क्योंकि सन्मार्ग फूलों की सेज नहीं है।

एक दिन ज्वालासिंह इन्हीं चिंताओं में मग्न बैठे हुए थे कि प्रेमशंकर आए। ज्वालासिंह दौड़कर उनके गले लिपट गए। आंखें सजल हो गईं, मानो अपने किसी परम हितैषी से भेंट हुई हो। कुशल समाचार के बाद पूछा—देहात से कब लौटे?

प्रेमशंकर—आज ही आया हूं। पूरे डेढ़ महीने लग गए। दो-तीन दिन का इरादा करके घर से चला था। हाजीगंज वाले बार-बार बुलाने न जाते तो मैं जेठ भर वहां और रहता।

ज्वाला—बीमारी की क्या हालत है?

प्रेम—शांत हो गई है। यह कहिए, समाचार-पत्रों में क्या हड़बोंग मचा हुआ है? मैंने तो आज देखा। दुनिया में क्या हो रहा है इसकी कुछ खबर ही न थी। यह मंडली तो बेतरह आपके पीछे पड़ी हुई है।

ज्वाला—उनकी कृपा है और क्या कहूं?

प्रेम—मैं तो देखते ही समझ गया कि यह ज्ञानशंकर के दावे को खारिज कर देने का फल है।

ज्वाला—बाबू ज्ञानशंकर से कभी ऐसी आशा न थी कि मुझे अपना कर्त्तव्य-पालन करने का यह दंड दिया जाएगा। अगर वह मेरी न्याय और अधिकार-संबंधी बातों पर आघात करते तब भी मुझे खेद न होता। मुझे अत्याचारी कहते, जुल्मी कहते, निरंकुश सिद्ध करते—हम इन आक्षेपों के आदी होते हैं। दुःख इस बात का है कि मेरे चरित्र को कलंकित किया गया है। मुझे अगर किसी बात का घमंड है तो वह अपने आचरण का है। मेरे कितने ही रसिक मित्र मुझे वैरागी कहकर चिढ़ाते हैं। यहां मैं कभी थियेटर देखने नहीं गया, कभी मेला-तमाशा तक नहीं देखा। बाबू ज्ञानशंकर इस बात से भलीभांति परिचित हैं। लेकिन मुझे सारे शहर के छैलों का नेता बनाने में उन्हें लेशमात्र संकोच न हुआ। इन आक्षेपों से मुझे इतना दुःख हुआ है कि उसे प्रकट नहीं कर सकता। कई बार मेरी इच्छा हुई कि विष खा लूं। आपसे मेरा परिचय बहुत थोड़ा है, लेकिन मालूम नहीं क्यों जी चाहता है कि आपके सामने हृदय निकालकर रख दूं। मैंने कई बार जहर खाने का इरादा किया, किंतु यह सोचकर कि कदाचित् इससे इन आक्षेपों की पुष्टि हो जाएगी, रुक गया। यह भय भी था कि शीलमणि रो-रोकर प्राण न त्याग दे। सच पूछिए, तो उसी के श्रद्धामय प्रेम ने अब तक मेरी प्राण-रक्षा की है, अगर वह एक क्षण के लिए भी मुझसे विमुख हो जाती तो मैं अवश्य ही आत्मघात कर लेता। ज्ञानशंकर मेरे स्वभाव को जानते हैं। मैं और वह बरसों तक भाइयों की भांति रहे हैं। उन्हें मालूम है कि मेरे हृदय में मर्मस्थान कहां है। इसी स्थान को उन्होंने अपनी कलम से बेधा और मेरी आत्मा को सदा के लिए निर्बल बना दिया।

प्रेम—मैं तो आपको यही सलाह दूंगा कि इन पत्रों पर मान-हानि का अभियोग चलाइए। इसके सिवा अपने को निर्दोष सिद्ध करने का कोई उपाय नहीं है। मुझे इसकी जरा भी परवाह नहीं कि ज्ञानशंकर पर इसका क्या असर पड़ेगा। उन्हें अपने कर्मों का दंड मिलना चाहिए। मैं स्वयं सहिष्णुता का भक्त हूं, लेकिन यह असंभव है कि कोई मेरे चरित्र पर मिथ्या कलंक लगाए और मैं मौन धारण किए बैठा रहूं। आप वकीलों से सलाह लेकर अवश्य मान-हानि का मुकदमा चलाइए।

ज्वालासिंह कुछ सोचकर बोले—और भी बदनामी होगी।

प्रेम—कदापि नहीं। आपको इन मिथ्याक्षेपों के प्रतिवाद करने का अवसर मिलेगा और जनता की दृष्टि में आपका सम्मान बढ़ जाएगा। ऐसी दशा में आपका चुप रह जाना अक्षम्य ही नहीं, दूषित है। यह न समझिए कि मुझे ज्ञानशंकर से द्वेष या अपवाद से प्रेम है। मैं इस मामले को केवल सिद्धांत की निष्पक्ष दृष्टि से देखता हूं। मान-रक्षा हमारा धर्म है।

ज्वाला—मैं नतीजे को सोचकर कातर हो जाता हूं। बाबू ज्ञानशंकर का फंस जाना निश्चित है। मुमकिन है, जेल की नौबत आए। वह आत्मिक कष्ट मेरे लिए इससे कहीं असह्य होगा। जिससे बरसों तक भ्रातृवत् प्रेम रहा, जिससे दांतकाटी रोटी थी उससे मैं इतना कठोर नहीं हो सकता। मैं तो इस विचारमात्र ही से कांप उठता हूं। इन आक्षेपों से मेरी केवल इतनी हानि होगी कि यहां से तबदील हो जाऊंगा या अधिक से अधिक पदच्युत हो जाऊंगा, परंतु ज्ञानशंकर तबाह हो जाएंगे। मैं अपने दुरावेशों को पूरा करने के लिए उनके परिवार का सर्वनाश नहीं कर सकता।

प्रेमशंकर ने ज्वालासिंह को श्रद्धापूर्ण नेत्रों से देखा। इस आत्मोत्सर्ग के सामने उनका सिर झुक गया, हृदय सद्नुराग से परिपूर्ण हो गया। ज्वालासिंह के पैरों पर गिर पड़े और सजल नेत्र होकर बोले—भाईजी, आपको परमात्मा ने देवस्वरूप बनाया है। मुझे अब तक न मालूम था कि आपके हृदय में ऐसे पवित्र और निर्मल भाव छिपे हुए हैं।

ज्वालासिंह झिझककर पीछे हट गए और बोले—भैया, ईश्वर के लिए यह अन्याय न कीजिए। मैं तो अपने को इस योग्य भी नहीं पाता कि आपके चरणारविंद अपने माथे से लगाऊं। आप मुझे कांटों में घसीट रहे हैं।

प्रेमशंकर—यदि आपकी इच्छा हो तो मैं उन्हीं पत्रों में इन आक्षेपों का प्रतिवाद कर दूं।

ज्वालासिंह वास्तव में प्रतिवाद की आवश्यकता को स्वीकार करते थे, किंतु इस भय से कि कहीं मेरी सम्मति मुझे उच्च पद से गिरा न दे जो मैंने अभी प्राप्त किया है, इंकार करना ही उचित जान पड़ा। बोले—जी नहीं, इसकी भी जरूरत नहीं।

प्रेमशंकर के चले जाने के बाद ज्वालासिंह को खेद हुआ कि प्रतिवाद का ऐसा उत्तम अवसर हाथ से निकल गया। अगर इनके नाम से प्रतिवाद निकलता तो यह सारा मिथ्या-जाल मकड़ी के जाल के सदृश कट जाता। पर अब तो जो हुआ सो हुआ। एक साधु पुरुष के हृदय में स्थान तो मिल गया।

प्रेमशंकर घर तक जाने का विचार करके हाजीपुर से चले थे। महीनों से घर का कुशल समाचार न मिला था, लेकिन यहां से उठे तो नौ बज गए थे, जेठ की लू चलने लगी थी। घर से हाजीपुर लौट जाना दुस्तर था। इसलिए किसी दूसरे दिन आने का इरादा करके लौट पड़े।

लेकिन ज्ञानशंकर को चैन कहां। उन्हें ज्यों ही मालूम हुआ कि भैया देहात से लौट आए हैं, वह उनसे मिलने के लिए उत्सुक हो गए। ज्वालासिंह को उनकी नजरों में गिराना आवश्यक था। संध्या समय था। प्रेमशंकर अपने झोंपड़े के सामने वाले गमलों में पानी दे रहे थे कि ज्ञानशंकर आ पहुंचे और बोले—क्या मजूर कहीं चला गया है?

प्रेमशंकर—मैं भी तो मजूर ही हूं। घर पर सब कुशल है न?

ज्ञान—जी हां, सब आपकी दया है। आपके यहां तो कई मजूर, हलवाहे होंगे। क्या वह इतना भी नहीं कर सकते कि इन गमलों को सींच दें? आपको व्यर्थ कष्ट उठाना पड़ता है।

प्रेम—मुझे उनसे काम लेने का कोई अधिकार नहीं है। वह मेरे निज के नौकर नहीं हैं। मैं तो केवल यहां का निरीक्षक हूं और फिर मैंने अमेरिका में तो हाथों से बर्तन धोए हैं, होटलों की मेजें साफ की हैं, सड़कों पर झाड़ू दी है। यहां आकर मैं कोई और तो नहीं हो गया? मैंने यहां कोई खिदमतगार नहीं रखा है। अपना सब काम कर लेता हूं।

ज्ञान—तब तो आपने हद कर दी। क्या मैं पूछ सकता हूं कि आप क्यों अपनी आत्मा

को कष्ट देते हैं?

प्रेम–मुझे कोई कष्ट नहीं होता। हां, इसके विरुद्ध आचरण करने में अलबत्ता कष्ट होगा। मेरी आदत ही ऐसी पड़ गई है।

ज्ञान–यह तो आप मानते हैं कि आत्मिक उन्नति की भिन्न-भिन्न कक्षाएं होती हैं?

प्रेम–मैंने इस विषय में कभी विचार नहीं किया और न अपना कोई सिद्धांत स्थिर कर सकता हूं। उस मुकदमे की अपील अभी दायर की या नहीं?

ज्ञान–जी हां, दायर कर दी। आपने ज्वालासिंह की सज्जनता देखी? यह महाशय मेरे बनाए हुए हैं। मैंने ही उन्हें रट-रटा के किसी तरह बी०ए० कराया। अपना हर्ज करता था, पर पहले इनकी कठिनाइयों को दूर कर देता था। इस नेकी का इन्होंने यह बदला दिया। ऐसा कृतघ्न मनुष्य मैंने नहीं देखा।

प्रेम–पत्रों में उनके विरुद्ध जो लेख छपे थे, वह तुम्हीं ने लिखे थे?

ज्ञान–जी हां। जब वह मेरे साथ ऐसा व्यवहार करते हैं, तब मैं क्यों उनसे रियायत करूं?

प्रेम–तुम्हारा व्यवहार बिल्कुल न्याय-विरुद्ध था। उन्होंने जो कुछ किया न्याय समझ कर किया। उनका उद्देश्य तुम्हें नुकसान पहुंचाना न था। तुमने केवल उनका अनिष्ट करने के लिए यह आक्षेप किए।

ज्ञान–जब आपस में अदावत हो गई तब सत्यासत्य का विवेचन कौन करता है? धर्म-युद्ध का समय अब नहीं रहा।

प्रेम–तो यह सब तुम्हारी मिथ्या कल्पना है?

ज्ञान–जी हां, आपके सामने, लेकिन दूसरों के सामने....

प्रेम–(बात काटकर) वह मानहानि का दावा कर दें तो?

ज्ञान–इसके लिए बड़ी हिम्मत चाहिए और उनमें हिम्मत का नाम नहीं। यह सब रोब-दाब दिखाने को ही है। अपील का फैसला मेरे अनुकूल हुआ तो अभी उनकी और खबर लूंगा। जाते कहां हैं? और कुछ न हुआ तो बदनामी के साथ तबदील तो हो ही जाएंगे। अबकी तो आपने लखनपुर की खूब सैर की, असामियों ने मेरी खूब शिकायत की होगी?

प्रेम–हां, शिकायत तो सभी कर रहे हैं।

ज्ञान–लड़ाई-दंगे का तो कोई भय नहीं है?

प्रेम–मेरे विचार में तो इसकी संभावना नहीं है।

ज्ञान–अगर उन्हें मालूम हो जाए कि इस विषय में हम लोगों में मतभेद है–और यह स्वाभाविक ही है, क्योंकि आप अपने मनोगत भावों को छुपा नहीं सकते–तो वह और भी शेर हो जाएंगे।

प्रेम–(हंसकर) तो इससे हानि क्या होगी?

ज्ञान–आपके सिद्धांतों के अनुसार तो कोई हानि न होगी, पर मैं कहीं का न रहूंगा। इस समय मेरे हित के लिए यह अत्यावश्यक है कि आप उधर आना-जाना कम कर दें।

प्रेम–क्या तुम्हें संदेह है कि मैं असामियों को उभाड़ कर तुमसे लड़ाता हूं? मुझे तुमसे कोई दुश्मनी है? मुझे लखनपुर के ही नहीं, सारे देश के कृषकों से सहानुभूति है। लेकिन इसका यह आशय नहीं कि मुझे जमींदारों से कोई द्वेष है, हां, अगर तुम्हारी यही इच्छा है कि मैं उधर न जाऊं तो यही सही। अब से कभी न जाऊंगा।

ज्ञानशंकर को इत्मीनान तो हुआ, पर वह इसे प्रकट न कर सके। मन में लज्जित थे। अपने भाई की रजोवृत्ति के सामने उन्हें अपनी तमोवृत्ति बहुत ही निकृष्ट प्रतीत होती थी। वह कुछ देर तक कपास और मक्का के खेतों को देखते रहे, जो यहां बहुत पहले ही बो दिए गए थे। फिर घर चले आए। श्रद्धा के बारे में न प्रेमशंकर ने कुछ पूछा और न उन्होंने कुछ कहा। श्रद्धा अब उनकी प्रेयसी नहीं उपास्य देवी थी।

दूसरे दिन दस बजे डाकिए ने उन्हें एक रजिस्टर्ड लिफाफा दिया। उन्होंने विस्मित होकर लिफाफे को देखा। पता साफ लिखा हुआ था। खोला तो पांच सौ रुपये का एक करेंसी नोट निकला। एक पत्र भी था, जिसमें लिखा हुआ था :

'लखनपुर वालों की सहायता के लिए यह रुपये आपके पास भेजे जाते हैं। यह आप अपील की पैरवी करने के लिए उन्हें दे दें। इस कष्ट के लिए क्षमा कीजिएगा।'

प्रेमशंकर सोचने लगे, इसका भेजने वाला कौन है? यहां मुझे कौन जानता है? कौन मेरे विचारों से अवगत है? किसे मुझ पर इतना विश्वास है? इन सब प्रश्नों का उत्तर मिलता था, 'ज्वालासिंह' किंतु मन इस उत्तर को स्वीकार न करता था।

अब उन्हें यह चिंता लगी कि यह रुपये क्योंकर भेजूं? ज्ञानशंकर को मालूम हो गया तो वह समझेंगे मैंने स्वयं असामियों को सहायता दी है। उन्हें कभी विश्वास न आएगा कि यह किसी अन्य व्यक्ति की अमानत है। यदि असामियों को न दूं तो महान विश्वासघात होगा। इसी हैस-बैस में शाम हो गई और लाला प्रभाशंकर का शुभागमन हुआ।

तेईस

ज्ञानशंकर को अपील के सफल होने का पूरा विश्वास था। उन्हें मालूम था कि किसानों में धनाभाव के कारण अब बिलकुल दम नहीं है। लेकिन जब उन्होंने देखा, काश्तकारों की ओर से भी मुकदमे की पैरवी उत्तम रीति से की जा रही है तो उन्हें अपनी सफलता में कुछ-कुछ संदेह होने लगा। उन्हें विस्मय होता था कि इनके पास रुपये कहां से आ गए? गौस खां तो कहता था कि बीमारी ने सभी को मटियामेट कर दिया है, कोई अपील की पैरवी करने भी न जाएगा, एकतरफा डिगरी होगी। यह कायालपट क्यों कर हुआ? अवश्य इनको कहीं-न-कहीं से मदद मिली है। कोई महाजन हो गया है। शहर में तो कोई ऐसा नहीं दीख पड़ता, लखनपुर के ही आसपास का होगा। खैर, कभी तो रहस्य खुलेगा, तब बच्चू से समझूंगा। फैसले के दिन वह स्वयं कचहरी गए। अपील खारिज हो गई। सबसे पहले गौस खां सामने आए। उनसे डपटकर बोले—क्यों जनाब, आप तो फरमाते थे इन सबों के पास कौड़ी कफन को नहीं है, यह वकील क्या यों ही आ गया?

गौस खां ने भी गर्म होकर कहा—मैंने हुजूर से बिलकुल सही अर्ज किया था, लेकिन मैं क्या जानता था कि मालिकों में ही इतनी निफाक है। मुझे पता लगता है कि हुजूर के बड़े भाई साहब ने एक हफ्ता हुआ कादिर को अपील की पैरवी के लिए एक हजार रुपये दिए हैं।

ज्ञानशंकर स्तंभित हो गए। एक क्षण के बाद बोले–बिल्कुल झूठ है।

गौस खां–हरगिज नहीं। मेरे चपरासियों ने कादिर खां को अपनी जबान से यह कहते सुना है। उससे पूछा जाए तो वह आपसे भी साफ-साफ कह देगा, या आप अपने भाई साहब से खुद पूछ सकते हैं।

ज्ञानशंकर निरुत्तर हो गए। उसी समय पैरगाड़ी संभाली, झल्लाए हुए घर आए और श्रद्धा से तीव्र स्वर में बोले–भाभी, तुमने देखी भैया की करामात। आज पता चला कि आपने लखनपुर वालों को अपील की पैरवी करने के लिए एक हजार दिए हैं। इसका फल यह हुआ कि मेरी अपील खारिज हो गई। महीनों की दौड़-धूप और हजारों रुपयों पर पानी फिर गया। एक हजार सालाना का नुकसान हुआ और रोब-दाब बिल्कुल मिट्टी में मिल गया। मुझे उनसे ऐसी कूटनीति की आशंका न थी। अब तुम्हीं बताओ, उन्हें दोस्त समझूं या दुश्मन?

श्रद्धा ने संशयात्मक भाव से कहा–तुम्हें किसी ने बहका दिया होगा। भला उनके पास इतने रुपये कहां होंगे?

ज्ञान–नहीं, मुझे पक्की खबर मिली है। जिन लोगों ने रुपये पाए हैं वे खुद अपनी जबान से कहते हैं।

श्रद्धा–तुमसे तो उन्होंने वादा किया था कि लखनपुर से मेरा कोई संबंध नहीं है, मैं वहां कभी न जाऊंगा।

ज्ञान–हां, कहा तो था और मैंने उन पर विश्वास कर लिया था, लेकिन आज विदित हुआ कि कुछ लोग ऐसे भी हैं जो सारे संसार के मित्र होते हैं, पर अपने घर के शत्रु। जरूर इसमें चचा साहब का भी हाथ है।

श्रद्धा–पहले उनसे पूछ तो लो। मुझे विश्वास नहीं आता कि उनके पास इतने रुपये होंगे।

ज्ञान–उनकी कपट नीति ने मेरे सारे मंसूबों को मिट्टी में मिला दिया। जब उनको मुझसे इतना वैमनस्य है तो मैं नहीं समझता कि मैं उन्हें अपना भाई समझूं? बिरादरी वालों ने उनका जो तिरस्कार किया वह असंगत नहीं था। विदेश-निवास आत्मीयता का नाश कर देता है।

श्रद्धा–तुम्हें भ्रम हुआ है।

ज्ञान–फिर वही बच्चों की-सी बातें करती हो। तुम क्या जानती हो कि उनके पास रुपये थे या नहीं?

श्रद्धा–तो जरा वहां तक चले ही क्यों नहीं जाते?

ज्ञान–अब नहीं जा सकता। मुझे उनकी सूरत से घृणा हो गई। उन्होंने असामियों का पक्ष लिया है तो मैं दिखा दूंगा कि मैं क्या कर सकता हूं। जमींदार के बावन हाथ होते हैं। लखनपुर वालों को ऐसा कुचलूंगा कि उनकी हड्डियों का पता न लगेगा। भैया के मन की बात मैं समझता हूं। तुम सरल स्वभावा हो, उनकी तह तक नहीं पहुंच सकती। उनका उद्देश्य इसके सिवा और कुछ नहीं है कि मुझे तंग करें, असामियों को उभाड़कर मुसल्लम गांव हथिया लें और हम-तुम कहीं के न रहें। अब उन्हें खूब पहचान गया। रंगे हुए सियार हैं–मन में और–मुंह में और। और फिर जिसने अपना धर्म खो दिया वह जो कुछ न करे वह थोड़ा है। इनसे तो बेचारा ज्वालासिंह फिर भी अच्छा है। उसने जो कुछ किया न्याय समझ कर किया, मेरा अहित न करना चाहता था। एक प्रकार से मैंने उसके साथ बड़ा अन्याय किया, उसे देश भर में बदनाम कर दिया। उन बातों को याद करने से ही दुःख होता है।

श्रद्धा–उनकी तो यहां से बदली हो गई। शीलमणि की महरी आज आई थी। कहती थी, तीन-चार दिन में चले जाएंगे। दर्जा भी घटा दिया गया है।

ज्ञानशंकर ने चौंककर कहा–सच !

श्रद्धा–शीलमणि कल आने वाली है। विद्या बड़े संकोच में पड़ी हुई है।

ज्ञान–मुझसे बड़ी भूल हुई। इसका शोक जीवनपर्यंत रहेगा। मुझे तो अब इसका विश्वास हो जाता है कि भैया ने उनके कान भी भर दिए थे। जिस दिन वह मौका देखने गए थे उसी दिन भैया भी लखनपुर पहुंचे। बस, इधर तो ज्वालासिंह को पट्टी पढ़ाई, उधर गांव वालों को पक्का-पोढ़ा कर दिया। मैं कभी कल्पना भी न कर सकता था कि वह इतनी दूर की कौड़ी लाएंगे, नहीं तो मैं पहले से ही चौकन्ना रहता।

श्रद्धा ने ज्ञानशंकर को अनादर की दृष्टि से देखा और वहां से उठकर चली गई।

दूसरे दिन शीलमणि आई और दिन भर वहां रही। चलते समय विद्या और श्रद्धा से गले मिलकर खूब रोई।

ज्वालासिंह पांच दिन और रहे। ज्ञानशंकर रोज उनसे मिलने का विचार करते, लेकिन समय आने पर कातर हो जाते थे। भय होता, कहीं उन्होंने उन आक्षेपपूर्ण लेखों की चर्चा छेड़ दी तो क्या जवाब दूंगा? धांधली तो कर सकता हूं, साफ मुकर जाऊं कि मैंने कोई लेख नहीं लिखा, मेरे नाम से तो कोई लेख छपा नहीं किंतु शंका होती थी कहीं इस प्रपंच से ज्वालासिंह की आंखों में न गिर जाऊं।

पांचवें दिन ज्वालासिंह यहां से चले। स्टेशन पर मित्रजनों की अच्छी संख्या थी। प्रेमशंकर भी मौजूद थे। ज्वालासिंह मित्रों के साथ मिल-मिलकर विदा होते थे। गाड़ी के छूटने में एक-दो मिनट ही बाकी थे कि इतने में ज्ञानशंकर लपके हुए प्लेटफार्म पर आए और पीछे की श्रेणी में खड़े हो गए। आगे बढ़कर मिलने की हिम्मत न पड़ी।

ज्वालासिंह ने उन्हें देखा और गाड़ी से उतरकर उनके पास आए और गले से लिपट गए। ज्ञानशंकर की आंखों से आंसू बहने लगे। ज्वालासिंह रोते थे कि चिरकाल की मैत्री का ऐसा शोकमय अंत हुआ। ज्ञानशंकर रोते थे कि हाय ! मेरे हाथों ऐसे सच्चे, निश्छल, निःस्पृह मित्र का अमंगल हुआ।

गार्ड ने हरी झंडी दिखाई तो ज्ञानशंकर ने कंपित स्वर में कहा–भाईजान, मैं अत्यंत लज्जित हूं।

ज्वालासिंह बोले–उन बातों को भूल जाइए।

ज्ञान–ईश्वर ने चाहा तो इसका प्रतिकार कर दूंगा।

ज्वाला–कभी-कभी पत्र लिखते रहिएगा, भूल न जाइएगा।

लोगों को दोनों मित्रों के इस सद्व्यवहार पर कुतूहल हुआ। उनके विचार में उस घाव का भरना दुस्तर था। सबसे ज्यादा आश्चर्य प्रेमशंकर को हुआ जो ज्ञानशंकर को उससे कहीं असज्जन समझते थे, जितने वह वास्तव में थे।

चौबीस

अपील खारिज होने के बाद ज्ञानशंकर ने गोरखपुर की तैयारी की। सोचा, इस तरह तो लखनपुर से आजीवन गला न छूटेगा। एक-न-एक उपद्रव मचा ही रहेगा। कहीं गोरखपुर में रंग जम गया तो दो-तीन बरसों में ऐसे कई लखनपुर हाथ आ जाएंगे। विद्या भी स्थिति का विचार करके सहमत हो गई। उसने सोचा, अगर दोनों भाइयों में यों मनमुटाव रहा तो अवश्य ही बंटवारा हो जाएगा और तब एक हजार की सालाना आमदनी में निर्वाह हो न सकेगा। इनसे और काम तो हो सकेगा नहीं। बला से जो काम मिलता है वही सही। अतएव जन्माष्टमी के उत्सव के बाद गोरखपुर जा पहुंचे। प्रेमशंकर से मुलाकात तक न की।

प्रभात का समय था। गायत्री पूजा पर थी कि दरबान ने ज्ञानशंकर के आने की सूचना दी। गायत्री ने तत्क्षण तो उन्हें अंदर न बुलाया। हां, जो पूजा नौ बजे समाप्त होती थी, वह सात बजे ही समाप्त कर दी। तब अपने कमरे में आकर उसने एक सुंदर साड़ी पहनी, बिखरे हुए केश संवारे और गौरव के साथ मसनद पर जा बैठी। लौंडी को इशारा किया कि ज्ञानशंकर को बुला लाए। वह अब रानी थी। यह उपाधि उसे हाल में ही प्राप्त हुई थी। वह ज्ञानशंकर से यथोचित आरोह से मिलना चाहती थी।

ज्ञानशंकर बुलावे की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें यहां का ठाट-बाट देखकर विस्मय हो रहा था। द्वार पर दो दरबान वर्दी पहने टहल रहे थे। सामने की अंगनाई में एक घंटा लटका हुआ था। एक ओर अस्तबल में कई बड़ी रास के घोड़े बंधे हुए थे। दूसरी ओर एक टीन के झोंपड़े में दो हवागाड़ियां थीं। दालान में पिंजड़े लटकते थे, किसी में मैना थी, किसी में पहाड़ी श्यामा, किसी में सफेद तोता। विलायती खरहे अलग कटघरे में पले हुए थे। भवन के सम्मुख ही एक बंगला था, जो फर्श और मेज-कुर्सियों से सजा हुआ था। यही दफ्तर था। यद्यपि अभी बहुत सबेरा था, पर कर्मचारी लोग अपने-अपने काम में लगे हुए थे। जिस कमरे में वह बैठे हुए थे वह दीवानखाना था। उसकी सजावट बड़े सलीके के साथ की गई थी। ऐसी बहुमूल्य कालीनें और ऐसे बड़े-बड़े आईने उनकी निगाह से न गुजरे थे।

कई दालानों और आंगनों से गुजरने के बाद जब वह गायत्री की बैठक में पहुंचे तब उन्हें अपने सम्मुख विलासमय सौंदर्य की एक अनुपम मूर्ति नजर आई जिसके एक-एक अंग से गर्व और गौरव आभासित हो रहा था। यह वह पहले की-सी प्रसन्नमुख सरल प्रकृति विनयपूर्ण गायत्री न थी।

ज्ञानशंकर ने सिर झुकाए सलाम किया और कुर्सी पर बैठ गए। लज्जा ने सिर न उठाने दिया। गायत्री ने कहा—आइए महाशय, आइए ! क्या विद्या छोड़ती ही न थी? और तो सब कुशल है?

ज्ञान—जी हां, सब लोग अच्छी तरह हैं। माया तो चलते समय बहुत जिद कर रहा था कि मैं भी मौसी के घर चलूंगा, लेकिन अभी बुखार से उठे हुए थोड़े ही दिन हुए हैं, इसी कारण साथ न लाया। आपको नित्य याद करता है।

गायत्री—मुझे भी उसकी प्यारी-प्यारी भोली सूरत याद आती है। कई बार इच्छा हुई कि चलूं, सबसे मिल आऊं, पर रियासत के झमेले से फुरसत ही नहीं मिलती। यह बोझ आप संभालें तो मुझे जरा सांस लेने का अवकाश मिले। आपके लेख का तो बड़ा आदर हुआ। (मुस्कराकर)

खुशामद करना कोई आपसे सीख ले।

ज्ञान—जो कुछ था वह मेरी श्रद्धा का अल्पांश था।

गायत्री ने गुणज्ञता के भाव से मुस्कराकर कहा—जब थोड़ा-सा पाप बदनाम करने को पर्याप्त हो तो अधिक क्यों किया जाए? कार्तिक में हिज एक्सेलेंसी यहां आने वाले हैं। उस अवसर पर मेरे उपाधि-प्रदान का जलसा करना निश्चय किया है। अभी तक केवल गजट में सूचना छपी है। अब दरबार में मैं यथोचित समारोह और सम्मान के साथ उपाधि से विभूषित की जाऊंगी।

ज्ञान—तब तो अभी से दरबार की तैयारी करनी चाहिए।

गायत्री—आप बहुत अच्छे अवसर पर आए। मंडप में अभी से हाथ लगा देना चाहिए। मेहमानों का ऐसा सत्कार किया जाए कि चारों ओर धूम मच जाए। रुपये की जरा भी चिंता मत कीजिए। आप ही इस अभिनय के सूत्रधार हैं, आपके ही हाथों इसका सूत्रपात होना चाहिए। एक दिन मैंने जिलाधीश से आपका जिक्र किया था, पूछने लगे, राजनीतिक विचार कैसे हैं? मैंने कहा, बहुत ही विचारशील, शांत प्रकृति के मनुष्य हैं। यह सुनकर बहुत खुश हुए और कहा, वह आ जाएं तो एक बार जलसे के संबंध में मुझसे मिल लें।

इसके बाद गायत्री ने इलाके की सुव्यवस्था और अपने संकल्पों की चर्चा शुरू की। ज्ञानशंकर को उसके अनुभव और योग्यता पर आश्चर्य हो रहा था। उन्हें भय होता था कि कदाचित् मैं उन कार्यों को उत्तम रीति से संपादन न कर सकूं। उन्हें देहाती बैंक का बिल्कुल ज्ञान न था। निर्माण कार्य से परिचित न थे, कृषि के नए आविष्कारों से कोरे थे, किंतु इस समय अपनी अयोग्यता प्रकट करना नितांत अनुचित था। वह गायत्री की बातों पर ऐसी मर्मज्ञता से सिर हिलाते थे और बीच-बीच में टिप्पणियां करते थे, मानो इन विषयों में पारंगत हों। उन्हें अपनी बुद्धिमत्ता और चातुर्य पर भरोसा था। इसके बल पर वह कोई काम हाथ में लेते हुए न हिचकते थे।

ज्ञानशंकर को दो-चार दिन भी शांति से बैठकर काम को समझने का अवसर न मिला। दूसरे ही दिन से दरबार की तैयारियों में दत्तचित्त होना पड़ा। प्रातःकाल से संध्या तक सिर उठाने की फुरसत न मिलती। बार-बार अधिकारियो से राय लेनी पड़ती, सजावट की वस्तुआं को एकत्र करने के लिए बार-बार रईसों की सेवा में दौड़ना पड़ता। ऐसा जान पड़ता था कि यह कोई सरकारी दरबार है। लेकिन कर्त्तव्यशील उत्साही पुरुष थे। काम से घबराते न थे। प्रत्येक काम को पूरी जिम्मेदारी से करते थे। वह संकोच और अविश्वास, जो पहले किसी मामले में अग्रसर न होने देता था, अब दूर होता जाता था। उनकी अध्यवसायशीलता पर लोग चकित हो जाते थे। दो महीनों के अविश्रांत उद्योग के बाद दरबार का इंतजाम हो गया। जिलाधीश ने स्वयं आकर देखा और ज्ञानशंकर की तत्परता और कार्यदक्षता की खूब प्रशंसा की। गायत्री से मिले तो ऐसे सुयोग्य मैनेजर की नियुक्ति पर उसे बधाई दी। अभिनंदन-पत्र की रचना का भार भी ज्ञानशंकर पर ही था। साहब बहादुर ने उसे पढ़ा तो लोट-पोट हो गए और नगर के मान्य जनों से कहा, मैंने किसी हिन्दुस्तानी की कलम में यह चमत्कार नहीं देखा।

अक्टूबर मास की पंद्रह तारीख दरबार के लिए नियत थी। लोग सारी रात जागते रहे। प्रातःकाल से सलामी की तोपें दगने लगीं, अगर उस दिन की कार्यवाही का संक्षिप्त वर्णन किया जाए तो एक ग्रंथ बन जाए। ऐसे अवसरों पर उपन्यासकार अपनी कल्पना को समाचार-पत्रों के संवाददाताओं के सुपुर्द कर देता है। लेडियों के भूषणालंकारों की बहार, रईसों की

सजधज की छटा देखनी हो, दावत की चटपटी, स्वादयुक्त सामग्रियों का मजा चखना हो और शिकार के तड़प-झड़प का आनंद उठाना हो तो अखबारों के पन्ने उलटिए। वहां आपको सारा विवरण अत्यंत सजीव, चित्रमय शब्दों में मिलेगा। प्रेसिडेंट रूजवेल्ट शिकार खेलने अफ्रीका गए थे तो संवाददाताओं की एक मंडली उनके साथ गई थी। सम्राट जार्ज पंचम जब भारतवर्ष आए थे तब संवाददाताओं की पूरी सेना उनके जुलूस में थी। यह दरबार इतना महत्त्वपूर्ण न था, तिस पर भी पत्रों में महीनों तक इसकी चर्चा होती रही। हम इतना ही कह देना काफी समझते हैं कि दरबार विधिपूर्वक समाप्त हुआ, कोई त्रुटि न रही, प्रत्येक कार्य निर्दिष्ट समय पर हुआ, किसी प्रकार की अव्यवस्था न होने पाई। इस विलक्षण सफलता का सेहरा ज्ञानशंकर के सिर था। ऐसा मालूम होता था कि सभी कठपुतलियां उन्हीं के इशारे पर नाच रही हैं। गवर्नर महोदय ने विदाई के समय उन्हें धन्यवाद दिया। चारों तरफ वाह-वाह हो गई।

संध्या समय था। दरबार समाप्त हो चुका था। ज्ञानशंकर नगर के मान्य जनों के साथ गवर्नर को स्टेशन तक बिदा करके लौटे थे और एक कोच पर आराम से लेटे सिगार पी रहे थे। आज उन्हें सारा दिन दौड़ते गुजरा था, जरा भी दम लेने का अवकाश न मिला था। वह कुछ अलसाए हुए थे, पर इसके साथ ही हृदय पर वह उल्लास छाया हुआ था जो किसी आशातीत सफलता के बाद प्राप्त होता है। वह इस समय जब अपने कृत्यों का सिंहावलोकन करते थे तो उन्हें अपनी योग्यता पर स्वयं आश्चर्य होता था। अभी दो-ढाई मास पहले मैं क्या था? एक मामूली आदमी, केवल दो हजार सालाना का जमींदार ! शहर में कोई मेरी बात भी न पूछता था, छोटे-छोटे अधिकारियों से भी दबता था और उनकी खुशामद करता था। अब यहां के अधिकारी वर्ग मुझसे मिलने की अभिलाषा रखते हैं। शहर के मान्यगण अपना नेता समझते हैं। बनारस में तो सारी उम्र बीत जाती तब भी यह सम्मान-पद न लाभ होता। आज गायत्री का मिजाज भी आसमान पर होगा। मुझे जरा भी आशा न थी कि वह इस तरह बेधड़क मंच पर चली आएगी। वह मंच पर आई तो सारा दरबार जगमगाने लगा था। उसके कुंदन वर्ण पर अगरई साड़ी कैसी छटा दिखा रही थी। उसके सौंदर्य की आभा ने रत्नों की चमक-दमक को भी मात कर दिया था। विद्या इससे कहीं रूपवती है, लेकिन उसमें यह आकर्षण कहां, यह उत्तेजक शक्ति कहां, यह सगर्विता कहां, यह रसिकता कहां? इसके सम्मुख आकर आंखों पर, चित्त पर, जबान पर काबू रखना कठिन हो जाता है। मैंने चाहा था कि इसे अपनी ओर खींचूं, इससे मान करूं, किंतु कोई शक्ति मुझे बलात् उसकी ओर खींचे लिए जाती है। अब मैं रुक नहीं सकता। कदाचित् वह मुझे अपने समीप आते देखकर पीछे हटती है, मुझसे स्वामिनी और सेवक के अतिरिक्त और कोई संबंध नहीं रखना चाहती। वह मेरी योग्यता का आदर करती है और मुझे अपनी सम्मान तृष्णा का साधन-मात्र बनाना चाहती है। उसके हृदय में अब अगर कोई अभिलाषा है तो वह सम्मान-प्रेम है। यही अब उसके जीवन का मुख्य उद्देश्य है। मैं इसी का आह्वान करके यहां पहुंचा हूं और इसी की बदौलत एक दिन मैं उसके हृदय में प्रेम का बीज अंकुरित कर सकूंगा।

ज्ञानशंकर इन्हीं विचारों में मग्न थे कि गायत्री ने अंदर बुलाया और मुस्कराकर कहा—आज के सारे आयोजन का श्रेय आपको है। मैं हृदय से आपकी अनुगृहीत हूं। साहब बहादुर ने चलते समय आपकी बड़ी प्रशंसा की। आपने मजूरों की मजूरी तो दिला दी है? मैं इस आयोजन में बेगार लेकर किसी को दुखी नहीं करना चाहती।

ज्ञान–जी हां, मैंने मुख्तार से कह दिया था।

गायत्री–मेरी ओर से प्रत्येक मजूर को एक-एक रुपया इनाम दिला दीजिए।

ज्ञान–पांच सौ मजूरों से कम न होंगे।

गायत्री–कोई हर्ज नहीं, ऐसे अवसर रोज नहीं आया करते। जिस ओवरसियर ने पंडाल बनवाया है, उसे सौ रुपये इनाम दे दीजिए।

ज्ञान–वह शायद स्वीकार न करे।

गायत्री–यह रिश्वत नहीं, इनाम है। स्वीकार क्यों न करेगा? फर्राशों और आतशबाजों को भी कुछ मिलना चाहिए।

ज्ञान–तो फिर हलवाई और बावर्ची, खानसामे और खिदमतगार क्यों छोड़े जाएं?

गायत्री–नहीं, कदापि नहीं, उन्हें बीस-बीस रुपये से कम न मिलें।

ज्ञान–(हंसकर) मेरी सारी मितव्ययिता निष्फल हो गई।

गायत्री–वाह, उसी की बदौलत तो मुझे हौसला हुआ है। मजूर को मजूरी कितनी ही दीजिए खुश नहीं होता, लेकिन इनाम पाकर खुशी से फूल उठता है। अपने नौकरों को भी यथायोग्य कुछ-न-कुछ दिलवा दीजिए।

ज्ञान–जी हां, जब बाहर वाले लूट मचाएं तो घर वाले क्यों गीत गाएं?

गायत्री–नहीं, घर वालों का पहला हक है जो आठों पहर के गुलाम हैं। सब आदमियों को यहीं बुलाइए, मैं अपने हाथ से उन्हें इनाम दूंगी। इसमें उन्हें विशेष आनंद मिलेगा।

ज्ञान–घंटों की झंझट है। बारह बज जाएंगे।

गायत्री–यह झंझट नहीं है। यह मेरी हार्दिक लालसा है। अब मुझे कई बड़े-बड़े अनुष्ठान करने हैं। यह मेरा जड़ाऊ कंगन है। यह विद्या की भेंट है। कल इसका पार्सल भेज दीजिए और पांच सौ रुपये नकद।

ज्ञान–(सिर झुकाकर) इसकी क्या जरूरत है? कौन-सा मौका है?

गायत्री–और कौन-सा मौका होगा? मेरे लड़के-लड़कियां भी तो नहीं कि उनके विवाह में दिल के अरमान निकालूंगी। यह कंगन उसे पसंद भी था। पिछले साल इटली से मंगवाया था। अब आपसे भी मेरी एक प्रार्थना है। आप मुझसे छोटे हैं। आप भी अपना हक वसूल कीजिए और निर्दयता के साथ।

ज्ञानशंकर ने शर्माते हुए कहा–मेरे लिए आपकी कृपा-दृष्टि ही काफी है। इस अवसर पर मुझे जो कीर्ति प्राप्त हुई है वही मेरा इनाम है।

गायत्री–जी नहीं, मैं न मानूंगी। इस समय संकोच छोड़िए और सूद खाने वालों की भांति कठोर बन जाइए। यह आपकी कलम है, जिसने मुझे इस पद पर पहुंचाया है, नहीं तो जिले में मेरी जैसी कितनी ही स्त्रियां हैं, कोई उनकी बात भी नहीं पूछता। इस कलम की यथायोग्य पूजा किए बिना मुझे तस्कीन न होगी।

ज्ञान–इसकी जरूरत तो तब होती जब मुझे उससे कम आनंद प्राप्त होता, जितना आपको हो रहा है।

गायत्री–मैं यह तर्क-वितर्क एक भी न सुनूंगी। आप स्वयं कुछ नहीं कहते इसलिए आपकी ओर से मैं ही कहे देती हूं। आप अपने लिए बनारस में अपने घर से मिला हुआ एक सुंदर बंगला बनवा लीजिए। चार कमरें हों और चारों तरफ बरामदे। बरामदों पर विलायती

खपरैल हों और कमरों पर लदाव की छत। छत पर बरसात के लिए एक हवादार कमरा बना लीजिए, खुश हुए?

ज्ञानशंकर ने कृतज्ञतापूर्ण भाव से देखकर कहा—खुश तो नहीं हूं, अपने ऊपर ईर्ष्या होती है।

गायत्री—बस, दीपमालिका से आरंभ कर दीजिए। अब बतलाइए, माया को क्या दूं?

ज्ञान—माया को अभी कुछ न चाहिए। उसका इनाम अपने पास अमानत रहने दीजिए।

गायत्री—आप नौ नगद न तेरह उधार वाली मसल भूल जाते हैं।

ज्ञान—अमानत पर तो कुछ-न-कुछ ब्याज मिलता है।

गायत्री—अच्छी बात है। पर इस समय उसके लिए कलकत्ते के किसी कारखाने से एक छोटा-सा टेंडम मंगा दीजिए और मेरा टांघन जो तांगे में चलता है, बनारस भेज दीजिए। छोटी लड़की के लिए हार बनवा दीजिए जो पांच सौ से कम का न हो।

ज्ञानशंकर यहां से चले तो पैर धरती पर न पड़ते थे। बंगले की अभिलाषा उन्हें चिरकाल से थी। वह समझते थे, यह मेरे जीवन का मधुर स्वप्न ही रहेगी, लेकिन सौभाग्य की एक ही दृष्टि ने वह चिरसंचित अभिलाषा पूर्ण कर दी।

आरंभ उत्साहवर्द्धक हुआ, देखें अंत क्या होता है?

पच्चीस

आय में वृद्धि और व्यय में कमी, यह ज्ञानशंकर के सुप्रबंध का फल था। यद्यपि गायत्री भी सदैव किफायत पर निगाह रखती थी, पर उनकी किफायत अशर्फियों की लूट और कोयलों पर मोहर को चरितार्थ करती थी। ज्ञानशंकर ने सारी व्यवस्था ही पलट दी। कारिंदों की बेपरवाही से इलाके में जमीन के बड़े-बड़े टुकड़े परती पड़े थे। हजारों बीघे की सीर होती थी पर अनाज का कहीं पता न चलता था, सब-का-सब सिपाही, प्यादों की खुराक में उठ जाता था। पटवारी की साजिश और कारिंदों की बेईमानी से कितनी ही उर्वरा भूमि ऊसर दिखाई जाती थी। सीर की सारी आमदनी राज्याधिकारियों के आदर-सत्कार के लिए भेंट हो जाती थी। नौकर भी जरूरत से ज्यादा पड़े हुए थे। ज्ञानशंकर ने कागज-पत्र देखा तो उन्हें बड़ा गोल-माल दिखाई दिया। बहुत दिनों से इजाफा लगान न हुआ था। खेतों की जमाबंदी भी किसी निश्चित नियम के अधीन न थी। हजारों रुपये प्रतिवर्ष बट्टे खाते में चले जाते थे। बड़े-बड़े मौरूसी हो गए थे। ज्ञानशंकर ने इन सभी मामलों की छानबीन शुरू की। सारे इलाके में हलचल मच गई। गायत्री के पास शिकायतें पहुंचने लगीं और यद्यपि गायत्री असामियों के साथ नर्मी का बर्ताव करना पसंद करती थी, पर जब ज्ञानशंकर ने उसे हिसाब का ब्यौरा समझाया तो उसकी आंखें खुल गईं। हजार से ज्यादा ऐसे असामी थे, जिन पर तत्काल बेदखली न दायर की जाती तो वे सदा के लिए जमींदार के काबू से बाहर हो जाते और बीस हजार सालाना की क्षति होती। इजाफा लगान से आमदनी सवाई हुई जाती थी। जिस रियासत से दो लाख सालाना भी न निकला था, उससे बिना किसी अड़चन

के तीन लाख की निकासी होती नजर आती थी। ऐसी दशा में गायत्री अपने सुयोग्य मैनेजर से क्यों न सहमत होती।

तीन वर्ष तक सारी रियासत में हाहाकार मचा रहा। ज्ञानशंकर को नाना प्रकार के प्रलोभन दिए गए, यहां तक कि मार डालने की धमकियां भी दी गईं, पर वह अपने कर्मपथ से न हटे। यदि वह चाहते तो इन परिस्थितियों को अपरिमित धन संचय का साधन बना सकते थे, पर सम्मान और अधिकार ने अब उन्हें क्षुद्रताओं से निवृत्त कर दिया था।

किंतु जो मंसूबे बांधकर ज्ञानशंकर यहां आए थे वे अभी तक पूरे होते नजर न आते थे। गायत्री उनका लिहाज करती थी, प्रत्येक विषय में उन्हीं की सलाह पर चलती थी, लेकिन इसके साथ ही वह उनसे कुछ खिंची रहती थी। उन्हें प्रायः नित्य ही उससे मिलने का अवसर प्राप्त होता था। वह इलाके के दूरवर्ती स्थानों से भी मोटर से लौट आया करते थे, लेकिन यह मुलाकात कार्य-संबंधी होती थी। यहां प्रेमतत्वदर्शन का मौका न मिलता, दो-चार लौंडियां खड़ी ही रहतीं, निराश होकर लौट आते थे। यह आग जो उन्होंने हाथ सेंकने के लिए जलाई थी, अब उनके हृदय को भी गर्म करने लगी थी। उनकी आंखें गायत्री के दर्शनों की भूखी रहती थीं, कान उसका मधुर भाषण सुनने के लिए विकल। यदि किसी दिन मजबूर होकर उन्हें देहात में ठहरना पड़ता या किसी कारण गायत्री से भेंट न होती तो वह उस अफीमची की भांति अस्थिर-चित हो जाते थे, जिसे समय पर अफीम न मिले।

एक दिन गायत्री ने प्रातःकाल ज्ञानशंकर को बुलाया। आजकल मकान की सफाई और सफेदी हो रही थी। दीपमालिका का उत्सव निकट था। गायत्री बगीचे में बैठी हुई चिड़ियों को दाना चुगा रही थी। कोई लौंडी न थी। ज्ञानशंकर का हृदय चिड़ियों की भांति फुदकने लगा। आज पहली बार उन्हें ऐसा अवसर मिला। गायत्री ने उन्हें देखकर कहा—आज आपको बहुत जरूरी काम तो नहीं है? मैं आपसे एक खास मामले में कुछ राय लेना चाहती हूं।

ज्ञानशंकर—कुछ हिसाब-किताब देखना था, लेकिन कोई ऐसा जरूरी काम नहीं है।

गायत्री—मेरे स्वामी ने अंतिम समय मुझे वसीयत की थी कि अपने बाद यह इलाका धर्मार्पण कर देना और इसकी निगरानी और प्रबंध के लिए ट्रस्ट बना देना। मेरी अब इच्छा होती है कि उनकी वसीयत पूरी कर दूं। जिंदगी का कोई भरोसा नहीं, न जाने कब संदेशा आ पहुंचे। कहीं बिना लिखा-पढ़ी किए मर गई तो रियासत का बांट-बखरा हो जाएगा और वसीयत पानी की रेखा की भांति मिट जाएगी। मैं चाहती हूं कि आप इस समस्या को हल कर दें, इससे अच्छा अवसर फिर न मिलेगा।

ज्ञानशंकर की आंखों के सामने अंधेरा छा गया। उनकी अभिलाषाओं के त्रिभुज का आधार ही लुप्त हुआ जाता था। बोले—वसीयत लेख-बद्ध हो गई है?

गायत्री—उनकी इच्छा मेरे लिए हजारों लेखों से अधिक मान्य है। यदि उन्हें मेरी फिक्र न होती तो अपने जीवनकाल में ही रियासत को धर्मार्पण कर जाते। केवल मेरा मान रखने के लिए उन्होंने इस विचार को स्थगित कर दिया। जब उन्हें मेरा इतना लिहाज था तो मैं भी उनकी इच्छा को देववाणी समझती हूं।

ज्ञानशंकर समझ गए कि इस समय कूटनीति से काम लेने की आवश्यकता है। अनुमोदन से विरोध का काम लेना चाहिए। बोले—अवश्य, लेकिन पहले यह निश्चय कर लेना चाहिए कि इस परमार्थ का स्वरूप क्या होगा?

गायत्री—आप इस संबंध में लखनऊ जाकर पिताजी से मिलिए। अपने बड़े भाई साहब से भी राय लीजिए।

प्रेमशंकर की चर्चा सुनते ही ज्ञानशंकर के तेवरों पर बल पड़ गए। उनकी ओर से इनके हृदय में गांठ-सी पड़ गई थी। बोले—राय साहब से सम्मति लेनी तो आवश्यक है, वह बुद्धिमान हैं, लेकिन भाई साहब को मैं कदापि इस योग्य नहीं समझता। जो मनुष्य इतना विचारहीन हो कि अपनी स्त्री को त्याग दे, मिथ्या सिद्धांत-प्रेम के घमंड में बिरादरी का अपमान करे और अपनी असाधुता को प्रजा-भक्ति का रंग देकर भाई की गर्दन पर छुरी चलाने में संकोच न करे, उससे इस धार्मिक विषय में कुछ पूछना व्यर्थ है। उनकी बदौलत मेरी एक हजार सालाना की हानि हो गई और तीन साल गुजर जाने पर भी गांव में शांति नहीं होने पाई, बल्कि उपद्रव बढ़ता ही चला जाता है। श्रद्धा इन्हीं अविचारों के कारण उनसे घृणा करती हैं।

गायत्री—मेरी समझ में तो यह श्रद्धा का अन्याय है। जिस पुरुष के साथ विवाह हो गया, उसके साथ निर्वाह करना प्रत्येक कर्मनिष्ठ नारी का धर्म है।

ज्ञान—चाहे पुरुष नास्तिक और विधर्मी हो जाए?

गायत्री—हां, मैं ऐसा ही समझती हूं। विवाह स्त्री-पुरुष के अस्तित्व को संयुक्त कर देता है। उनकी आत्माएं एक-दूसरे में समाविष्ट हो जाती हैं।

ज्ञान—पुराने जमाने में लोगों के विचार ऐसे रहे हों, पर नया युग इसे नहीं मानता। वह स्त्री को संपूर्णतः स्वाधीन ठहराता है। वह मनसा, वाचा, कर्मणा किसी के अधीन नहीं है। परमात्मा से आत्मा का जो घनिष्ठ संबंध है, उसके सामने मानवकृत संबंध की कोई हस्ती नहीं हो सकती। पश्चिम के देशों में आए दिन धार्मिक मतभेद के कारण तलाक होते रहते हैं।

गायत्री—उन देशों की बात न चलाइए, वहां के लोग तो विवाह को केवल सामाजिक संबंध समझते हैं। आपने ही एक बार कहा था कि वहां कुछ ऐसे लोग भी हैं जो विवाह-संस्कार को मिथ्या समझते हैं। उनके विचार में स्त्री-पुरुषों की अनुमति ही विवाह है, लेकिन भारतवर्ष में कभी इन विचारों का आदर नहीं हुआ।

ज्ञान—स्मृतियों में तो इसकी व्यवस्था स्पष्ट रूप से की गई है।

गायत्री—की गई है, मुझे मालूम है, लेकिन कभी उसका प्रचार नहीं हुआ और क्यों होता जबकि हमारे यहां स्त्री-पुरुष दोनों एक साथ रहकर अपने मतानुसार परमात्मा की उपासना कर सकते हैं? पुरुष वैष्णव है, स्त्री शैव है, पुरुष आर्य समाज में है, स्त्री अपने पुरातन सनातन धर्म को मानती है, वह ईश्वर को भी नहीं मानता, स्त्री ईंट और पत्थरों तक की पूजा-अर्चना करती है। लेकिन इन भेदों के पीछे पति-पत्नी में अलगाव नहीं हो जाता। ईश्वर वह कुदिन यहां न लाए जब लोगों में विचार स्वातंत्र्य का इतना प्रकोप हो जाए।

ज्ञान—इसका कारण यही है कि हम भीरू प्रकृति हैं, यथार्थ का सामना न करके मिथ्या आदर्श-प्रेम की आड़ में अपनी कमजोरी छिपाते हैं।

गायत्री—मैंने आपका आशय नहीं समझा।

ज्ञान—मेरा आशय केवल यही है कि लोक-निंदा के भय से अपने प्रेम या अरुचि को छिपाना अपनी धार्मिक स्वाधीनता को खाक में मिलाना है। मैं उस स्त्री को सराहनीय नहीं समझता जो एक दुराचारी पुरुष से केवल इसलिए भक्ति करती है कि वह उसका पति है। वह अपने उस जीवन को, जो सार्थक हो सकता है, नष्ट कर देती है। यही बात पुरुषों पर भी घटित

हो सकती है। हम संसार में रोने और झींकने के ही लिए नहीं आए हैं और न आत्म-दमन हमारे जीवन का ध्येय है।

गायत्री–तो आपके कथन का निष्कर्ष यह है कि हम अपनी मनोवृत्तियों का अनुसरण करें, जिस ओर इच्छाएं ले जाएं उसी ओर आंखें बंद किए चले जाएं। उसके दमन की चेष्टा न करें। आपने पहले भी एक बार यही विचार प्रकट किया था। तब से मैंने इस पर अच्छी तरह गौर किया है, लेकिन हृदय इसे किसी प्रकार स्वीकार नहीं करता। इच्छाओं को जीवन का आधार बनाना बालू की दीवार बनाना है। धर्म-ग्रन्थों में आत्म-दमन और संयम की अखंड महिमा कही गई है; बल्कि इसी को मुक्ति का साधन बताया गया है। इच्छाओं और वासनाओं को ही मानव पतन का मुख्य कारण सिद्ध किया गया है और मेरे विचार में यह निर्विवाद है। ऐसी दशा में पश्चिम वालों का अनुसरण करना नादानी है। प्रथाओं की गुलामी इच्छाओं की गुलामी से श्रेष्ठ है।

ज्ञानशंकर को इस कथन में बड़ा आनंद आ रहा था। इससे उन्हें गायत्री के हृदय के भेद्य और अभेद्य स्थलों का पता मिल रहा था, जो आगे चलकर उनकी अभीष्ट-सिद्धि में सहायक हो सकता था। वह कुछ उत्तर देना ही चाहते थे कि एक लौंडी ने तार का लिफाफा लाकर उनके सामने रख दिया। ज्ञानशंकर ने चौंककर लिफाफा खोला। लिखा था, ''जल्द आइए, लखनपुर वालों से फौजदारी होने का भय है।''

ज्ञानशंकर ने अन्यमनस्क भाव से लिफाफे को जमीन पर फेंक दिया। गायत्री ने पूछा–घर पर तो सब कुशल है न?

ज्ञान–लखनपुर से आया है, वहां फौजदारी हो गई है। इस गांव ने मेरी नाक में दम कर दिया। सब ऐसे दुष्ट हैं कि किसी तरह काबू में नहीं आते। यह सब भाई साहब की करतूत है।

गायत्री–तब तो आपको जाना पड़ेगा। कहीं मामला तूल न पकड़ गया हो।

ज्ञान–अबकी हमेशा के लिए निबटारा कर दूंगा। या तो गांव से इस्तीफा दे दूंगा या सारे गांव को ही जला डालूंगा। वे लोग भी क्या याद करेंगे कि किसी से पाला पड़ा था।

गायत्री–लौटते हुए माया को जरूर लाइएगा। उसे देखने को बहुत जी चाहता है। विद्या को भी घसीट लाएं तो क्या कहना ! मैं तो लिखते-लिखते हैरान हो गई।

ज्ञान–यह वही प्रथा की गुलामी है, जिसका आप बखान करती हैं। बहिन के घर जाने का साधारणतः रिवाज नहीं है, वह इसे क्योंकर तोड़ सकती है ! कदाचित् इसी कारण आप भी वहां नहीं जा सकतीं।

गायत्री–(लजा कर) मैं इन बातों की परवाह नहीं करती, लेकिन यहां तो आप देखते हैं सिर उठाने की फुरसत नहीं।

ज्ञान–यही बहाना वह भी कर सकती है।

गायत्री–खैर, वह न आए न सही, लेकिन माया को जरूर लाइएगा और वहां का समाचार लिखते रहिएगा। अवकाश मिलते ही चले आइएगा।

गायत्री का अंतिम वाक्य ऐसा आकांक्षा-सूचक था कि ज्ञानशंकर के हृदय में गुदगुदी-सी पैदा हो गई। उन्हें यहां रहते तीन साल से ऊपर हो गए थे, कितनी ही बार बनारस आए, लेकिन गायत्री ने कभी लौटने के लिए ऐसा भावपूर्ण आग्रह न किया था। दिल ने कहा, शायद मेरा जादू कुछ असर करने लगा। बोले–तब भी तो दो सप्ताह से कम क्या लगेंगे?

गायत्री चिंतित स्वर से बोली—दो सप्ताह?

ज्ञानशंकर को अपने विचार की पुष्टि हो गई। नौ बजे वह डाकगाड़ी से रवाना हुए और पांच बजते-बजते बनारस पहुंच गए।

छब्बीस

जिस समय ज्ञानशंकर की अपील खारिज हुई, लखनपुर के लोगों पर विपत्ति की घटा छाई थी। कितने ही घर प्लेग से उजड़ गए। कई घरों में आग लग गई। कई चोरियां हुईं। उन पर दैविक घटना अलग हुईं। कभी आंधी आती, कभी पानी बरसता। फाल्गुन के महीने में एक दिन ओले पड़ गए। सारी खेती नष्ट हो गई। अब गांव वालों के लिए कोई सहारा न था। बिसेसर साह ने भी जमींदार के मुकाबले में सहायता देने से इंकार किया। स्त्रियों के गहने पहले ही निकल चुके थे। अब सुक्खू चौधरी के सिवा और कोई न था जो अपील की पैरवी कर सकता था। लोग भाग्य पर भरोसा किए बैठे थे। बेकसी की दशा में प्रेमशंकर के भेजे हुए रुपयों ने बड़ा काम किया। मुर्दे जाग पड़े। कादिर खां दृढ़ प्रतिज्ञ होकर उठ खड़ा हुआ और जी-तोड़कर मुकदमे की पैरवी करने लगा। लेकिन किसानों की नैतिक विजय वास्तविक पराजय से कम न थी। ज्ञानशंकर असामियों को इस दु:साहस का दंड देने के लिए उधार खाये बैठे थे। अभी गांव के लोग झोंपड़ों में [illegible] थे कि गौस खां अपने तीनों चपरासियों को लिए हुए आए और झोंपड़ों में आग लगवा दी। बाग की जमीन जमींदार की थी। असामियों को वहां झोंपड़े बनवाने का कोई अधिकार न था। चपरासियों में दो बिल्कुल नए थे—फैजू और कर्तार। दोनों लकड़ी चलाने में कुशल थे, कई बार सजा पाये हुए। उनके हृदय में दया और शील का नाम न था। पुराने आदमियों में केवल बिन्दा महाराज अपनी कुटिल नीति की बदौलत रह गए थे। अभी तक ताऊन की ज्वाला शांत न हुई थी कि लोगों को विवश होकर बस्ती में आना पड़ा, जिसका फल यह हुआ कि दूसरे ही दिन ठाकुर झपटसिंह प्लेग के झोंके में आ गए और कल्लू अहीर मरते-मरते बच गया। जितनी आरजू मिन्नत हो सकती थी वह सब की गई, लेकिन अत्याचारियों पर कोई असर न हुआ। झपट के मर जाने पर डपट भी मरने के लिए तैयार हुआ। लट्ठ चलाकर बोला, गौस को आज जीता न छोडूंगा। अब क्या भय है? लेकिन कादिर खां उसके पैरों पर गिर पड़ा और समझा-बुझाकर घर लौटाया।

लखनपुर में एक बहुत बड़ा तालाब था। गांव भर के पशु उसमें पानी पीते थे। नहाने-धोने का काम भी उससे चलता था।

जून का महीना था, कुओं का पानी पाताल तक चला गया था। आस-पास के सब गढ़े और तालाब सूख गए थे। केवल इसी बड़े तालाब में पानी रह गया था। ठीक उसी समय गौस खां ने उस तालाब का पानी रोक दिया। दो चपरासी किनारे आकर डट गए और पशुओं को मार-मार कर भगाने लगे। गांव वालों ने सुना तो चकराये। क्या सचमुच जमींदार तालाब का पानी भी बंद कर देगा? यह तालाब सारे गांव का जीवन-स्रोत था। लोगों को कभी स्वप्न में भी अनुमान न हुआ था कि जमींदार इतनी जबर्दस्ती कर सकता है। उनका चिरकाल से इस

पर अधिकार था। पर आज उन्हें ज्ञात हुआ कि इस जल पर हमारा स्वत्व नहीं है। यह जमींदार की कृपा थी कि वह इतने दिनों तक चुप रहा, किंतु चिरकालीन कृपा भी स्वत्व का रूप धारण कर लेती है। गांव के लोग तुरंत तालाब के तट पर जमा हो गए और चपरासियों से वाद-विवाद करने लगे। कादिर खां ने देखा कि बात बढ़ा चाहती है तो वहां से हट जाना उचित्त समझा। जानते थे कि मेरे पीछे और लोग टल जाएंगे, किंतु दो ही चार पग चले थे कि सहसा सुक्खू चौधरी ने उनका हाथ पकड़ लिया और बोले—कहां जाते हो, कादिर भैया ! जब तक यहां कोई निबटारा न हो जाए, तुम जाने न पाओगे। जब जा-बेजा हर एक मामले में इसी तरह दबना है, तो गांव के सरगना काहे को बनते हो?

कादिर खां—तो क्या कहते हो लाठी चलाऊं?

सुक्खू—और लाठी है किस दिन के लिए?

कादिर—किसके बूते पर लाठी चलेगी? गांव में रह कौन गया है? अल्लाह ने पट्ठों को चुन लिया।

सुक्खू—पट्ठे नहीं हैं न सही, बूढ़े तो हैं? हम लोगों की जिंदगानी किस रोज काम आएगी?

गौस खां को जब मालूम हुआ कि गांव के लोग तालाब के तट पर जमा हैं तो वह भी लपके हुए आ पहुंचे और गरजकर बोले—खबरदार ! कोई तालाब की तरफ कदम न रखे।

सुक्खू आगे बढ़ आए और कड़ककर बोले—किसकी मजाल है जो तालाब का पानी रोके ! हम और हमारे पुरखा इसी से अपना निस्तार करते चले आ रहे हैं। जमींदार नहीं ब्रह्मा आकर कहें तब भी इसे न छोड़ेंगे, चाहे इसके पीछे सरबस लुट जाय।

गौस खां ने सुक्खू चौधरी को विस्मित नेत्रों से देखा और कहा—चौधरी, क्या इस मौके पर तुम भी दगा दोगे? होश में आओ।

सुक्खू—तो क्या आप चाहते हैं कि जमींदार की खातिर अपने हाथ कटवा लूं? पैरों में कुल्हाड़ी मार लूं? खैरख्वाही के पीछे अपना हक नहीं छोड़ सकता।

करतार चपरासी ने हंसी करते हुए कहा—अरे तुमका का परी है, है कोऊ आगे-पीछे? चार दिन में हाथ पसारे चले जैहो। ई ताल तुमरे संग न जाई।

वृद्ध जन मृत्यु का व्यंग्य नहीं सह सकते। सुक्खू ऐंठकर बोले—क्या ठीक है कि हम ही पहले चले जाएंगे? कौन जाने हमसे पहले तुम्हीं चले जाओ। जो हो, हम तो चले जाएंगे, पर गांव तो हमारे साथ न चला जायगा?

गौस खां—हमारे सलू ों का यही बदला है?

सुक्खू—आपने हमारे साथ सलूक किए हैं तो हमने भी आपके साथ किए हैं और फिर कोई सलूक के पीछे अपने हक-पद को नहीं छोड़ सकता।

फैजू—तो फौजदारी करने का अरमान है?

सुक्खू—फौजदारी क्यों करें, क्या हाकिम का राज नहीं है? हां, जब हाकिम भी न सुनेगा तो जो तुम्हारे मन में है वह भी हो जायगा। यह कहकर सुक्खू ताल के किनारे से चले आए और उसी वक्त बैलगाड़ी पर बैठकर अदालत चले। दूसरे दिन दावा दायर हो गया।

लाला मौजीलाल पटवारी की साक्षी पर हार-जीत निर्भर थी। उनकी गवाही गांव वालों के अनुकूल हुई। गौस खां ने उन्हें फोड़ने में कोई कसर न उठा रखी, यहां तक कि मार-पीट

की भी धमकी दी। पर मौजीलाल का इकलौता बेटा इसी ताऊन में मर चुका था। इसे वह अपने पूर्व संचित पापों का फल समझते थे। सन्मार्ग से विचलित न हुए। बेलाग साक्षी दी। सुक्खू चौधरी की डिगरी हो गई और यद्यपि उनके कई सौ रुपये खर्च हुए पर गांव में उनकी खोयी प्रतिष्ठा फिर जम गई। धाक बैठ गई। सारा गांव उनका भक्त हो गया। इस विजय का आनंदोत्सव मनाया गया। सत्यनारायण की कथा हुई, ब्राह्मणों को भोज हुआ और तालाब के चारों ओर पक्के घाट की नींव पड़ गई। गौस खां के भी सैकड़ों रुपये खर्च हो गए। ये कांटे उन्होंने ज्ञानशंकर से बिना पूछे ही बोए थे। इसलिए फल भी उन्हीं को खाना पड़ा। हराम का धन हराम की भेंट हो गया।

गौस खां यह चोट खाकर बौखला उठे। सुक्खू चौधरी उनकी आंखों में कांटे की तरह खटकने लगा। दयाशंकर इस हल्के से बदल गए थे। उनकी जगह पर नूरआलम नाम के एक दूसरे महाशय नियुक्त हुए थे। गौस खां ने इनसे राह-रस्म पैदा करना शुरू किया। दोनों आदमियों में मित्रता हो गई और लखनपुर पर नई-नई विपत्तियों का आक्रमण होने लगा।

वर्षा के दिन थे। किसानों को ज्वार और बाजरे की रखवाली से दम मारने का अवकाश न मिलता। जिधर देखिए हा-हू की ध्वनि आती थी। कोई ढोल बजाता था, कोई टीन के पीपे पीटता था। दिन को तोतों के झुंड-के-झुंड टूटते थे, रात को गीदड़ के गोल, उस पर धान की क्यारियों में पौधे बिठाने पड़ते थे। पहर रात रहे ताल में जाते और पहर रात गए आते थे। मच्छरों के डंक से लोगों की देह में छाले पड़ जाते थे। किसी का घर गिरता था, किसी के खेत की मेंड़ें कट जाती थीं। जीवन-संग्राम की दोहाई मची हुई थी। इसी समय दारोगा नूरआलम ने गांव पर छापा मारा। सुक्खू चौधरी ने कभी कोकीन का सेवन नहीं किया था, उसकी सूरत नहीं देखी थी, उसका नाम नहीं सुना था, लेकिन उनके घर में एक तोला कोकीन बरामद हुई। फिर क्या था, मुकदमा तैयार हो गया। माल के निकलने की देर थी, हिरासत में आ गए। उन्हें विश्वास हो गया कि मैं बरी न हो सकूंगा। उन्होंने स्वयं कई आदमियों को इसी भांति सजा दिलाई थी। हिरासत में आने के एक क्षण पहले वह घर में गए और एक हांडी लिए हुए आए। गांव के सब आदमी जमा थे। उनसे बोले—भाइयो, राम-राम ! अब तुमसे विदा होता हूं। कौन जाने फिर भेंट हो या न हो ! बूढ़े आदमी की जिंदगानी का क्या भरोसा। ऐसे ही भाग होंगे तो भेंट होगी। इस हांडी में पांच हजार रुपये हैं। यह कादिर भाई को सौंपता हूं। तालाब का घाट बनवा देना। जिन लोगों पर मेरा जो कुछ आता है वह सब छोड़ता हूं। यह देखो, सब कागज-पत्र अब तुम्हारे सामने फाड़े डालता हूं। मेरा किसी के यहां कुछ बाकी नहीं, सब भर गया।

दारोगाजी वहीं उपस्थित थे। रुपयों की हांडी देखते ही लार टपक पड़ी। सुक्खू को बुलाकर कान में कहा—कैसे अहमक हो कि इतने रुपये रखकर भी बचने की फिक्र नहीं करते?

सुक्खू—अब बचकर क्या करना है ! क्या कोई रोने वाला बैठा है?

नूर आलम—तुम इस गुमान में होगे कि हाकिम को तुम्हारे बुढ़ापे पर तरस आ जाएगी और वह तुमको बरी कर देगा। मगर इस धोखे में न रहना। वह डटकर रिपोर्ट लिखूंगा और ऐसी मोतबिर शहादत पेश करूंगा कि कोई बैरिस्टर भी जबान न खोल सकेगा। पांच हजार नहीं पांच लाख भी खर्च करोगे तो भी मेरे पंजे से न निकल सकोगे। मैं दयाशंकर नहीं हूं, मेरा नाम नूर आलम है। चाहूं, तो एक बार खुदा को भी फंसा दूं।

सुक्खू ने फिर उदासीन भाव से कहा—आप जो चाहे करें। अब जिंदगी में कौन-सा सुख

है कि किसी का ठेंगा सिर पर लूं? गौस खां का दयास्रोत उबल पड़ा। फैजू और कर्तार भी कुलबुला उठे और बिन्दा महाराज तो हांडी की ओर टकटकी लगाए ताक रहे थे।

सबने अलग-अलग और फिर मिलकर सुक्खू को समझाया, लेकिन वह टस-से-मस न हुए। अंत में लोगों ने कादिर को घेरा। नूर आलम ने उन्हें अलग ले जाकर कहा—खां साहब, इस बूढ़े आदमी को समझाओ, क्यों जान देने पर तुला हुआ है? दो साल से कम की सजा न होगी। अभी मामला मेरे हाथ में है। सब कुछ हो सकता है। हाथ से निकल गया तो कुछ न होगा। मुझे उसके बुढ़ापे पर तरस आती है।

गौस खां बोले—हां, इस वक्त उस पर रहम करना चाहिए। अब की ताऊन ने बेचारे का सत्यानाश कर दिया।

कादिर खां जाकर सुक्खू को समझाने लगे। बदनामी का भय दिखाया, कारावास की कठिनाइयां बयान कीं। किंतु सुक्खू जरा भी न पसीजा। जब कादिर खां ने बहुत आग्रह किया और गांव के सब लोग एक स्वर से समझाने लगे तो सुक्खू उदासीन भाव से बोला—तुम लोग क्या समझाते हो? मैं कोई नादान बालक नहीं हूं। कादिर खां से मेरी उम्र दो ही चार दिन कम होगी। इतनी बड़ी जिंदगानी अपने बंधुओं का बुरा करने में कट गई। मेरे दादा मरे तो घर में भूनी भांग तक न थी। कारिंदों से मिल-मिलकर मैं आज गांव का मुखिया बन बैठा हूं। चार आदमी मुझे जानते हैं और मेरा आदर करते हैं, पर अब आंखों के सामने से परदा हट गया। उन कर्मों का फल कौन भोगेगा? भोगना तो मुझी को है, चाहे यहां भोगूं चाहे नरक में। यह सारी हांडी मेरे पापों से भरी हुई है। इसी ने मेरे कुल का सर्वनाश कर दिया। कोई एक चुल्लू पानी देने वाला न रहा। यह पाप की कमाई पुण्य कार्य में लग जाय तो अच्छा है। घाट बनवा देना, अगर कुछ और लगे तो अपने पास से लगा देना। मैं जीता बचा तो कौड़ी-कौड़ी चुका दूंगा।

दूसरे दिन सुक्खू का चालान हुआ। फैजू और कर्तार ने पुलिस की ओर से साक्षी दी। माल बरामद हो ही गया था। कई हजार रुपयों का घर से निकलना पुष्टिकारक प्रमाण हो गया। कोई वकील भी न था। पूरे दो साल की सजा हो गई। निरपराध, निर्दोष सुक्खू गौस खां के वैमनस्य और ईर्ष्या का लक्ष्य बन गया।

सारा गांव थर्रा उठा। इजाफा लगान के खारिज होने से लोगों ने समझा था कि अब किसी बात की चिंता नहीं, मानो ईश्वर ने अभय प्रदान कर दिया। पर अत्याचार के यह नए हथकंडे देखकर सबके प्राण सूख गए। जब सुक्खू चौधरी जैसा शक्तिशाली मनुष्य दम-के-दम में तबाह हो गया तो दूसरों का कहना ही क्या? किंतु गौस खां को अब भी संतोष न हुआ। उनकी यह लालसा कि सारा गांव मेरा गुलाम हो जाए, मेरे इशारे पर नाचे, अभी पूरी न हुई थी। मौरूसी काश्तकारों में अभी तक कई आदमी बचे हुए थे। कादिर खां अब भी था, बलराज और मनोहर अब भी आंखों में खटकते थे। यह सब इस बाग के कांटे थे। उन्हें निकाले बिना सैर करने का आनंद कहां?

लखनपुर शहर से दस ही मील की दूरी पर था। हाकिम लोग आते-जाते यहां जरूर ठहरते। अगहन का महीना लगा ही था कि पुलिस के एक बड़े अफसर का लश्कर आ पहुंचा। तहसीलदार स्वयं रसद का प्रबंध करने के लिए आए। चपरासियों की एक फौज साथ थी। लश्कर में सौ-सवा सौ आदमी थे। गांव के लोगों ने यह जमघट देखा तो समझा कि कुशल

नहीं है। मनोहर ने बलराज को ससुराल भेज दिया और ससुराल वालों को कहला भेजा कि इसे चार-पांच दिन न आने देना। लोग अपनी-अपनी लकड़ियां और भूसा उठा-उठाकर घरों में रखने लगे। लेकिन बोवनी के दिन थे, इतनी फुर्सत किसे थी?

प्रात:काल बिसेसर साह दुकान खोल रहे थे कि अरदली के दस-बारह चपरासी दुकान पर आ पहुंचे। बिसेसर ने आटे-दाल के बोरे खोल दिए, जिन्सें तौली जाने लगीं। दोपहर तक यही तांता लगा रहा। घी के कनस्तर खाली हो गए। तीन पड़ाव के लिए जो सामग्री एकत्र की थी, अभी समाप्त हो गई। बिसेसर के होश उड़ गए। फिर आदमी मंडी दौड़ाए। बेगार की समस्या इससे कठिन थी। पांच बड़े-बड़े घोड़ों के लिए हरी घास छीलना सहज नहीं था। गांव के सब चमार इस काम में लगा दिए गए। कई नोनिए पानी भर रहे थे। चार आदमी नित्य सरकारी डाक लेने के लिए सदर दौड़ाए जाते थे। कहारों को कर्मचारियों की खिदमत से सिर उठाने की फुर्सत न थी। इसलिए जब दो बजे साहब ने हुक्म दिया कि मैदान में घास छीलकर टेनिस कोर्ट तैयार किया जाय तो वे लोग भी पकड़ गए जो अभी तक अपनी वृद्धावस्था या जाति-सम्मान के कारण बचे हुए थे। चपरासियों ने पहले दुखरन भगत को पकड़ा। भगत ने चौंककर कहा—क्यों मुझसे क्या काम है?

चपरासी ने कहा—चलो लश्कर में घास छीलनी है।

भगत—घास चमार छीलते हैं, यह हमारा काम नहीं है।

इस पर एक चपरासी ने उनकी गर्दन पकड़कर आगे ढकेला और कहा—चलते हो यहां कानून बघारते हो?

भगत—अरे तो ऐसा क्या अंधेर है? अभी ठाकुरजी का भोग तक नहीं लगाया।

चपरासी—एक दिन में ठाकुरजी भूखों न मर जाएंगे।

भगत ने वाद-विवाद उचित न समझा, झपटकर सिपाहियों के बीच से निकल गए और भीतर जाकर किवाड़ बंद कर दिए। सिपाहियों ने धड़ाधड़ किवाड़ पीटना शुरू किया। एक सिपाही ने कहा, लगा दे आग, वहीं भुन जाए। दुखरन ने भीतर से कहा, बैठो भोग लगाकर आ रहा हूं। चपरासियों ने खपरैल फोड़ने शुरू किए। इतने में कई चपरासी कादिर खां आदि को साथ लिए आ पहुंचे। डपटसिंह पहर रात रहे घर से गायब हो गए थे। कादिर ने कहा—भगत, घर में क्यों घुसे बैठे हो? चलो, हम लोग भी चलते हैं।

भगत ने द्वार खोला और बाहर निकल आए। कादिर हंसकर बोले—आज हमारी-तुम्हारी बाजी है। देखें कौन ज्यादा घास छीलता है। भगत ने कुछ उत्तर न दिया। सब लश्कर के मैदान में आए और घास छीलने लगे।

मनोहर ने कहा—खां साहब के कारण हम भी चमार हो गए।

दुखरन—भगवान की इच्छा। जो कभी न किया, वह आज करना पड़ा।

कादिर—जमींदार के असामी नहीं हो? खेत नहीं जोतते हो?

मनोहर—खेत जोतते हैं तो उसका लगान नहीं देते हैं? कोई भड़ुआ एक पैसा भी तो नहीं छोड़ता।

कादिर—इन बातों में क्या रक्खा है? गुड़ खाया है तो कान छिदाने पड़ेंगे। कुछ और बात-चीत करो। कल्लू, अबकी तुम ससुराल में बहुत दिन तक रहे। क्या-क्या मार लाए?

कल्लू—मार लाया? यह कहो जान लेकर आ गया। यहां से चला तो कुल साढ़े तीन रुपये

पास थे, एक रुपये की मिठाई ली, आठ आने रेल का किराया दिया, दो रुपये पास रख लिए। वहां पहुंचते ही बड़े साले ने अपना लड़का लाकर मेरी गोद में रख दिया। बिना कुछ दिए उसे गोद में कैसे लेता? कमर से एक रुपया निकालकर उसके हाथ में रख दिया। रात को गांव भर की औरतों ने जमा होकर गाली गाई। उन्हें भी कुछ नेग-दस्तूर मिलना ही चाहिए था। एक ही रुपये की पूंजी थी, वह उनकी भेंट की। न देता तो जग हंसाई होती। मैंने समझा यहां रुपयों का और काम ही क्या है और चलती बेर कुछ-न-कुछ बिदाई मिल ही जाएगी। आठ दिन चैन से रहा। जब चलने लगा तो सामने एक मटका खांड, एक टोकरी ज्वार की बाल और एक थैली में कुछ खटाई भर दी। पहुंचाने के लिए एक आदमी साथ कर दिया। बस विदाई हो गई। अब बड़ी चिंता हुई कि घर तक कैसे पहुंचूंगा? जान न पहचान, मांगू किससे? उस आदमी के साथ टेसन तक आया। इतना बोझ लेकर पैदल घर तक आना कठिन था। बहुत सोचते-समझते सूझी चलकर ज्वार की बाल कहीं बेच दूं। आठ आने भी मिल जाएंगे तो काम चल जाएगा। बाजार में आकर एक दुकानदार से पूछा-बालें लोगे? उसने दाम पूछा। मेरे मुंह से निकला, दाम तो मैं नहीं जानता, आठ आने दो, ले लो। बनिए ने समझा चोरी का माल है। थैला पटका, बालें सब रखवा लीं और कहा-चुपके से चले जाओ नहीं तो चौकीदार को बुलाकर थाने भिजवा दूंगा। तो भैया, क्या करता? सब कुछ वहीं छोड़कर भागा। दिन भर का भूखा-प्यासा रात गए घर आया। कान पकड़े कि अब ससुराल न जाऊंगा।

कादिर-तुम तो सस्ते ही छूट गए। एक बेर मैं भी ससुराल गया था। जवानी की उमर थी। दिन भर धूप में चला तो रतौंधी हो गई। मगर लाज के मारे किसी से कहा तक नहीं। खाना तैयार हुआ तो साली दालान में बुलाकर भीतर चली गई। दालान में अंधेरा था। मैं उठा तो कुछ सूझा ही नहीं कि किधर जाऊं। न किसी को पुकारते बने, न पूछते। इधर-उधर टटोलने लगा। वहीं एक कोने में मेढ़ा बंधा हुआ था। मैं उसके ऊपर जा पहुंचा। वह मेरे पैर के नीचे से झपट कर उठा और मुझे ऐसा सींग मारा कि मैं दूर जा गिरा। यह धमाका सुनके वही साली दौड़ी आई और अंदर ले गई। आंगन में मेरे ससुर और दो-तीन बिरादर बैठे हुए थे। मैं भी जा बैठा। पर कुछ सूझता न था कि क्या करूं। सामने खाना रखा था। इतने में मेरी सास कड़े-छड़े पहने छन-छन करती हुई दाल की रकाबी में घी डालने आईं। मैंने छन-छन की आवाज सुनी तो रोंगटे खड़े हो गए। अभी तक घुटने में दर्द हो रहा था। समझा कि शायद मेढ़ा छूट गया। खड़ा होकर लगा पैंतरे बदलने। सास को भी एक घूंसा लगाया। घी की प्याली उनके हाथ से छूट पड़ी। वह घबरा के भागीं। लोगों ने दौड़कर मुझे पकड़ा और पूछने लगे, क्या हुआ, क्या हुआ? शरम के मारे मेरी जबान बंद हो गई। कुछ बोली ही न निकली। साला दौड़ा हुआ गया और एक मौलवी को लिवा लाया। मौलवी ने देखते ही कहा, इस पर सईद मर्द सवार है। दुवा-ताबीज होने लगी। घर में किसी ने खाना न खाया। सास और ससुर मेरे सिरहाने बैठे हुए बड़ी देर तक रोते रहे और मुझे आवे बार-बार हंसी। कितना ही रोकूं हंसी न रुके। बारे मुझे नींद आ गई। भोर में उठकर मैंने किसी से कुछ पूछा न ताछा सीधे घर की राह ली। दुखरन भगत, अपनी ससुराल की बात तुम भी कहो।

दुखरन-मुझे इस बखत मसखरी नहीं सूझती। यही जी चाहता है कि सिर पटक कर मर जाऊं।

मनोहर-कादिर भैया, आज बलराज होता तो खून-खराबा हो जाता। उससे यह दुर्गत न देखी जाती।

कादिर—फिर वही दुखड़ा ले बैठे। अरे जो अल्लाह को यही मंजूर होता कि हम लोग इज्जत-आबरू से रहें तो काश्तकार क्यों बनाता? जमींदार न बनाता, चपरासी न बनाता, थाने का कानिसटिबिल न बनाता कि बैठे-बैठे दूसरों पर हुकुम चलाया करते? नहीं तो यह हाल है कि अपना कमाते हैं, अपना खाते हैं, फिर भी जिसे देखो धौंस जमाया करता है। सभी की गुलामी करनी पड़ती है। क्या जमींदार, क्या सरकार, क्या हाकिम, सभी की निगाह हमारे ऊपर टेढ़ी है और शायद अल्लाह भी नाराज हैं। नहीं तो क्या हम आदमी नहीं हैं कि कोई हमसे बड़ा बुद्धिमान है? लेकिन रोकर क्या करें? कौन सुनता है? कौन देखता है? खुदाताला ने आंखें बंद कर लीं। जो कोई भलामानुस दरद बूझकर हमारे पीछे खड़ा भी हो जाता है तो उस बेचारे की जान भी आफत में फंस जाती है। उसे तंग करने के लिए, फंसाने के लिए तरह-तरह के कानून गढ़ लिए जाते हैं। देखते तो हो, बलराज के अखबार में कैसी-कैसी बातें लिखी रहती हैं। यह सब अपनी तकदीर की खूबी है।

यह कहते-कहते कादिर खां रो पड़े। वह हृदय-ताप जिसे वह हास्य और विनोद से दबाना चाहते थे, प्रज्वलित हो उठा। मनोहर ने देखा तो उसकी आंखें रक्तवर्ण हो गईं—पददलित अभिमान की मूर्ति की तरह।

चारों में से कोई न बोला। सब-के-सब सिर झुकाए चुपचाप घास छीलते रहे, यहां तक कि तीसरा पहर हो गया। सारा मैदान साफ हो गया। सबने खुरपियां रख दीं और कमर सीधी करने के लिए जरा लेट गए। बेचारे मसझते थे कि गला छूट गया, लेकिन इतने में तहसीलदार साहब ने आकर हुक्म दिया, गोबर लाकर इसे लीप दो, खूब चिकना कर दो, कोई कंकड़-पत्थर न रहने पाए। कहां हैं नाजिर जी, इन सबको डोल और रस्सी दिलवा दीजिए।

नाजिर ने तुरंत डोल और रस्सी मंगाकर रख दी। कादिर खां ने डोल उठाया और कुएं की तरफ चले, लेकिन दुखरन भगत ने घर का रास्ता लिया। तहसीलदार ने पूछा—इधर कहां?

दुखरन ने उद्दंडता से कहा—घर जा रहा हूं।

तहसीलदार—और लीपेगा कौन?

दुखरन—जिसे गरज होगी वह लीपेगा।

तहसीलदार—इतने जूते पड़ेंगे कि दिमाग की सारी गर्मी उतर जाएगी।

दुखरन—आपका अख्तियार है—जूते मारिए चाहे फांसी दीजिए, लेकिन लीप नहीं सकता।

कादिर—भगत, तुम कुछ न करना। आओ, बैठे ही रहना। तुम्हारे हिस्से का काम मैं कर दूंगा।

दुखरन—मैं तो अब जूते खाऊंगा। जो कसर है वह भी पूरी हो जाए।

तहसीलदार—इस पर शामत सवार है। है कोई चपरासी, जरा लगाओ तो बदमाश को पचास जूते, मिजाज ठंडा हो जाए।

यह हुक्म पाते ही एक चपरासी ने लपककर भगत को इतने जोर से धक्का दिया कि वह जमीन पर गिर पड़े और जूते लगाने लगा। भगत जड़वत् भूमि पर पड़े रहे। मानो संज्ञा-शून्य हो गए हैं, उनके चेहरे पर क्रोध या ग्लानि का चिह्न भी न था। उनके मुख से हाय तक न निकलती थी। दीनता ने समग्त चैतन्य शक्तियों का हनन कर दिया था। कादिर खां कुएं पर से दौड़े हुए

आए और उस निर्दय चपरासी के सामने सिर झुकाकर बोले–सेखजी, इनके बदले मुझे जितना चाहिए मार लीजिए, अब बहुत हो गया।

चपरासी ने धक्का देकर कादिर खां को ढकेल दिया और फिर जूता उठाया कि अकस्मात् सामने से एक इक्के पर प्रेमशंकर और डपटसिंह आते दिखाई दिए। प्रेमशंकर यह हृदय-विदारक दृश्य देखते ही इक्के से कूद पड़े और दौड़े हुए चपरासी के पास आकर बोले–खबरदार जो फिर हाथ चलाया !

चपरासी सकते में आ गया। कल्लू, मनोहर सब डोल-रस्सी छोड़-छोड़कर दौड़े और उन्हें सलाम कर खड़े हो गए । चमार भी घास लाकर पैसों के इंतजार में खड़े थे। वे भी पास आ गए। प्रेमशंकर के चारों तरफ एक जमघट-सा हो गया। तहसीलदार ने कठोर स्वर में पूछा–आप कौन हैं? आपको सरकारी काम में मुदाखिलत करने का क्या मजाल है?

प्रेमशंकर–मुझे नहीं मालूम था कि गरीबों को जूते लगवाना भी सरकारी काम है। इसने क्या खता की थी, जिसके लिए आपने यह सजा तजवीज की?

तहसीलदार–सरकारी हुक्म की तामील से इंकार किया। इससे कहा गया था कि इस मैदान को गोबर से लीप दे, पर इसने बदजबानी की।

प्रेम–आपको मालूम नहीं था कि वह ऊंची जाति का काश्तकार है? जमीन लीपना या कूड़ा फेंकना इनका काम नहीं है।

तहसीलदार–जूते की मार सब कुछ करा लेती है।

प्रेमशंकर का रक्त खौल उठा, पर जब्त से काम लेकर बोले–आप जैसे जिम्मेदार ओहदेदार की जबान से यह बात सुनकर सख्त अफसोस होता है।

मनोहर आगे बढ़कर बोला–सरकार, आज जैसी दुर्गति हुई है, वह हमीं जानते हैं।

एक चमार बोला–दिन भर घास छीला, अब कोई पैसे ही नहीं देता घंटों से चिल्ला रहे हैं।

तहसीलदार ने क्रोधोन्मत्त होकर कहा–आप यहां से चले जाएं, वरना आपके हक में अच्छा न होगा। नाजिरजी, आप मुंह क्या देख रहे हैं? चपरासियों से कहिए, इन चमारों की अच्छी तरह खबर लें। यही इनकी मजदूरी है।

चपरासियों ने बेगारों को घेरना शुरू किया। कांस्टेबलों ने भी बंदूकों के कुंदे चलाने शुरू किए। कई आदमियों को चोट आ गई। प्रेमशंकर ने जोर से कहा–तहसीलदार साहब, मैं आपसे मिन्नत करता हूं कि चपरासियों को मार-पीट करने से मना कर दें, वरना इन गरीबों का खून हो जाएगा।

तहसीलदार–आपके ही इशारों से इन बदमाशों ने सरकशी अख्तियार की है। इसके जिम्मेदार आप हैं। मैं समझ गया, आप किसी किसान-सभा से ताल्लुक रखते हैं।

प्रेमशंकर ने देखा तो लखनपुर वालों के चेहरे रोष से विकृत हो रहे थे। प्रतिक्षण शंका होती थी कि इनमें से कोई प्रतिकार न कर बैठे। प्रतिक्षण समस्या जटिलतर होती जाती थी। तहसीलदार और अन्य कर्मचारियों से मनुष्यता और दयालुता की अब कोई आशा न रही। तुरंत अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर लिया। गांव वालों की ओर रुख करके बोले–तहसीलदार साहब का हुक्म मानो। एक आदमी भी यहां से न जाए। सब आदमियों को मुंहमांगी मजूरी दी जाएगी। इसकी कुछ चिंता मत करो।

यह शब्द सुनते ही सारे आदमी ठिठक कर और विस्मित होकर प्रेमशंकर की ओर ताकने लगे। सरकारी कर्मचारियों को भी आश्चर्य हुआ। मनोहर और कल्लू कुएं की तरफ चले। चमारों ने गोबर बटोरना शुरू किया। डपटसिंह भी मैदान से ईंट-पत्थर उठा-उठाकर फेंकने लगे। सारा काम ऐसी शांति से होने लगा, मानो कुछ हुआ ही न था। केवल दुखरन भगत अपनी जगह से न हिले।

प्रेमशंकर ने तहसीलदार से कहा—आपकी इजाजत हो तो यह आदमी अपने घर जाए। इसे बहुत चोट आ गई है।

तहसीलदार ने कुछ सोचकर कहा—हां, जा सकता है।

भगत चुपके से उठे और धीरे-धीरे घर की ओर चल दिए। इधर दम के दम में आदमियों ने मैदान लीप-पोतकर तैयार कर दिया। सब ऐसा दौड़-दौड़कर उत्साह से काम कर रहे थे मानो उनके घर बरात आई हो।

संध्या हो गई थी। प्रेमशंकर जमीन पर बैठे हुए विचारों में मग्न थे—कब तक गरीबों पर यह अन्याय होगा। कब उन्हें मनुष्य समझा जाएगा? हमारा शिक्षित समुदाय कब अपने दीन भाइयों की इज्जत करना सीखेगा? कब अपने स्वार्थ के लिए अपने अफसरों की नीच खुशामद करना छोड़ेगा।

इतने में तहसीलदार साहब सामने आकर खड़े हो गए और विनय भाव से बोले—आपको यहां तकलीफ हो रही है, मेरे खेमे में तशरीफ ले चलिए। माफ कीजिएगा, मैंने आपको पहचाना न था। गरीबों के साथ हमदर्दी देखकर आपकी तारीफ करने को जी चाहता है। आप बड़े खुशनसीब हैं कि खुदा ने आपको ऐसा दर्दमंद दिल अता फरमाया है। हम बदनसीबों की जिंदगी तो अपनी तनपरवरी में ही गुजरती जाती है। क्या करूं? यदि अभी साफ कह दूं कि बेगार में मजदूर नहीं मिलते तो नालायक समझा जाऊं। आंखों से देखता हूं कि मजदूरों को आठ आने रोज मिलते हैं, पर इन साहब बहादुर से इतनी मजूरी मांगूं तो वह हरगिज न देंगे। सरकार ने कायदे बहुत अच्छे बनाए हैं, लेकिन ये हुक्काम उनकी परवाह ही नहीं करते। कम-से-कम पचास रुपये के मिट्टी के बर्तन उठे होंगे। लकड़ी, भूसा, पुआल सैकड़ों मन खर्च हो गए। कौन इनकी कीमत देता है? अगर कायदे पर अमल करने लगूं तो एक लम्हे भर रहना दुश्वार हो जाए और मैं अकेला कर ही क्या सकता हूं? मेरे और भाई भी तो हैं। उनकी सख्तियां आप देखें तो दांतों तले उंगली दबा लें। खुदा ने जिसके घर में रूखी रोटियां भी दी हों, वह कभी यह मुलाजमत न करे। आइए, बैठिए, आपको सैकड़ों दास्तानें सुनाऊं, जिनमें तहसीलदारों को कायदे के मुताबिक अमल करने के लिए जहन्नुम में भेज दिया गया है। मेरे ऊपर खुद एक बार गुजर चुकी है।

प्रेमशंकर को तहसीलदार से सहानुभूति हो गई। समझ गए कि यह बेचारे विवश हैं। मन में लज्जित हुए कि मैंने अकारण ही इनसे अविनय की। उनके साथ खेमे में चले गए। वहां बहुत देर तक बातें होती रहीं। तहसीलदार साहब बड़े साधु-सज्जन निकले। अधिकार-विषयक घटनाएं समाप्त हो चुकीं तो अपनी पारिवारिक कठिनाइयों का बयान करने लगे। उनके तीन पुत्र कालेज में पढ़ते थे। दो लड़कियां विधवा हो गई थीं। एक विधवा बहन और उसके बच्चों का भार भी सिर पर था। दो सौ रुपये में बड़ी मुश्किल से गुजर होता था। अतएव जहां अवसर और सुविधा देखते थे, वहां रिश्वत लेने में उज्र न था। उन्होंने यह वृत्तांत ऐसे सरल और नम्र

भाव से कहा कि प्रेमशंकर का उनसे स्नेह-सा हो गया। वहां से उठे तो आठ बजे चुके थे। चौपाल की तरफ जाते हुए दुखरन भगत के द्वार पर पहुंचे तो एक विचित्र दृश्य देखा। गांव के कितने ही आदमी जमा थे। और भगत उनके बीच में खड़े हाथ में शालिग्राम की मूर्ति लिए उन्मत्तों की भांति बहक-बहककर कह रहे थे—यह शालिग्राम हैं। अपने भक्तों पर बड़ी दया रखते हैं? सदा उनकी रक्षा किया करते हैं। इन्हें मोहनभोग बहुत अच्छा लगता है ! कपूर और धूप की महक बहुत अच्छी लगती है। पूछो, मैंने इनकी कौन सेवा नहीं की? आप सत्तू खाता था, बच्चे चबेना चबाते थे, इन्हें मोहनभोग का भोग लगता था। इनके लिए जाकर कोसों से फूल और तुलसीदल लाता था। अपने लिए तमाखू चाहे न रहे, पर इनके लिए कपूर और धूप की फिक्र करता था। इनका भोग लगा के तब दूसरा काम करता था। घर में कोई मरता ही क्यों न हो, पर इनकी पूजा-अर्चना किए बिना कभी न उठता था। कोई दिन ऐसा न हुआ कि ठाकुरद्वारे में जाकर चरणामृत न पिया हो, आरती न ली हो, रामायण का पाठ न किया हो। यह भगती और श्रद्धा क्या इसलिए कि मुझ पर जूते पड़ें, हकनाहक मारा जाऊं, चमार बनूं? धिक्कार मुझ पर जो फिर ऐसे ठाकुर का नाम लूं, जो इन्हें अपने घर में रखूं, और फिर इनकी पूजा करूं । हां, मुझे धिक्कार है । ज्ञानियों ने सच कहा है कि यह अपने भगतों के बैरी हैं, उनका अपमान कराते हैं, उनकी जड़ खोदते हैं, और उससे प्रसन्न रहते हैं, जो इनका अपमान करे। मैं अब तक भूला हुआ था। बोलो मनोहर, क्या कहते हो, इन्हें कुएं में फेंकू या घूरे पर डाल दूं, जहां इन पर रोज मनों कूड़ा पड़ा करे या राह में फेंक दूं, जहां सबेरे से सांझ तक इन पर लातें पड़ती रहें?

मनोहर—भैया, तुम जानकर अनजान बनते हो। वह संसार के मालिक हैं, उनकी महिमा अपरंपार है।

कादिर—कौन जानता है, उनकी क्या मर्जी है? बुराई से भलाई करते हैं। इतना मन न छोटा करो।

दुखरन—(हंसकर) यह सब मन को समझाने का ढकोसला है। कादिर मियां, यह पत्थर का ढेला है, निरा मिट्टी का पिंड। मैं अब तक भूल में पड़ा हुआ था। समझता था इसकी उपासना करने से मेरे लोक-परलोक दोनों बन जाएंगे। आज आंखों के सामने से वह परदा हट गया। यह निरा मिट्टी का ढेला है। यह लो महाराज, जाओ जहां तुम्हारा जी चाहे। तुम्हारी यही पूजा है। तीस साल की भगती का तुमने मुझे जो बदला दिया है, मैं भी तुम्हें उसी का बदला देता हूं।

यह कहकर भगत ने शलिग्राम की प्रतिमा को जोर से एक ओर फेंक दिया। न जाने कहां जाकर गिरी। फिर दौड़े हुए घर में गए और पूजा की पिटारी लिए हुए बाहर निकले। मनोहर लपका कि पिटारी उनके हाथ से छीन लूं। लेकिन भगत ने उसे अपनी ओर आते देखकर बड़ी फुर्ती से पिटारी खोली और उसे हवा में उछाल दी। सभी सामग्रियां इधर-उधर फैल गईं। तीस वर्ष की धर्मनिष्ठा और आत्मिक श्रद्धा नष्ट हो गई। धार्मिक विश्वास की दीवार हिल गई और उसकी ईंटें बिखर गईं।

कितना हृदय-विदारक दृश्य था। प्रेमशंकर का हृदय गद्गद हो गया। भगवन् । इस असभ्य, अशिक्षित और दरिद्र मनुष्य का इतना आत्माभिमान । इसे अपमान ने इतना मर्माहत कर दिया। कौन कहता है, गंवारों में यह भावना निर्जीव हो जाती है? कितना दारुण आघात

है जिसने भक्ति, विश्वास तथा आत्मगौरव को नष्ट कर डाला!

प्रेमशंकर सब आदमियों के पीछे खड़े थे। किसी ने उन्हें देखा नहीं। वह वहीं से चौपाल चले गए। वहां पलंग बिछा तैयार था। डपटसिंह चौका लगाते थे, कल्लू पानी भरते थे। उन्हें देखते ही गौस खां झुककर आदाब अर्ज बजा लाए और कुछ सकुचाते हुए बोले—हुजूर को तहसीलदार साहब के यहां बड़ी देर हो गई।

प्रेमशंकर—हां, इधर-उधर की बातें करने लगे। क्यों, यहां कहार नहीं है क्या? ये लोग क्यों पानी भर रहे हैं? उसे बुलाइए, मुनासिब मजदूरी दी जाएगी।

गौस खां—हुजूर, कहार तो चार घर थे, लेकिन सब उजड़ गए। अब एक आदमी भी नहीं है।

प्रेमशंकर—यह क्यों?

गौस खां—अब हुजूर से क्या बतलाऊं, हमीं लोगों की शरारत और जुल्म से। यहां हमेशा तीन-चार चपरासी रहते हैं। एक-एक के लिए एक-एक खिदमतगार चाहिए। और मेरे लिए तो जितने खिदमतगार हों उतने थोड़े हैं। बेचारे सुबह से ही पकड़ लिए जाते थे, शाम को छुट्टी मिलती थी। कुछ खाने को पा गए तो पा गए, नहीं तो भूखे ही लौट जाते थे, आखिर सब-के-सब भाग खड़े हुए, कोई कलकत्ता गया, कोई रंगून। अपने बाल-बच्चों को भी लेते गए। अब यह हाल है कि अपने ही हाथों बर्तन तक धोने पड़ते हैं।

प्रेमशंकर—आप लोग इन गरीबों को इतना सताते क्यों हैं? अभी तहसीलदार साहब लश्कर वालों की सारी बेइंसाफियों का इल्जाम आपके ही सिर मढ़ रहे थे।

गौस खां—हुजूर तो फरिश्ते हैं, लेकिन हमारे छोटे सरकार का ऐसा ही हुक्म है। आजकल खतों में बार-बार ताकीद करते हैं कि गांव में एक भी दखलदार आदमी न रहने पाए। हुजूर का नमक खाता हूं तो हुजूर के हुक्म की तामील करना मेरा फर्ज है, वरना खुदाताला को क्या मुंह दिखाऊंगा। इसीलिए मुझे इन बेकसों पर सभी तरह की सख्तियां करनी पड़ती हैं। कहीं मुकदमे खड़े कर दिए, कहीं बेगार में फंसा दिया, कहीं आपस में लड़ा दिया। कानून का हुक्म है कि आदमियों को लगान देते ही पाई-पाई की रसीद दी जाय, लेकिन मैं सिर्फ उन्हीं लोगों को रसीद देता हूं जो जरा चालाक हैं, गंवारों को यों ही टाल देता हूं। छोटे सरकार का बकाया पर इतना जोर है कि एक पाई भी बाकी रहे तो नालिश कर दो। कितने ही असामी तो नालिश से तंग आकर निकल भागे। मेरे लिए तो जैसे छोटे सरकार हैं वैसे हुजूर भी हैं। आपसे क्या छिपाऊं? इस तरह की धांधलियों में हम लोगों का भी गुजर-बसर हो जाता है, नहीं तो इस थोड़ी-सी आमदनी में गुजर होना मुश्किल था।

इतने में बिसेसर, मनोहर, कादिर खां आदि भी आ गए और आज का वृत्तांत कहने लगे। मनोहर दूध लाया, कल्लू ने दही पहुंचाया। सभी प्रेमशंकर के सेवा-सत्कार में तत्पर थे। जब वह भोजन करके लेटे तो लोगों ने आपस में सलाह की कि बाबू साहब को रामायण सुनाई जाय। बिसेसर साह अपने घर से ढोल-मजीरा लाए। कादिर ने ढोल लिया। मजीरे बजने लगे और रामायण का गान होने लगा। प्रेमशंकर को हिन्दी भाषा का अभ्यास न था और शायद ही कोई चौपाई उनकी समझ में आती थी, पर वह इन देहातियों के विशुद्ध धर्मानुराग का आनंद उठा रहे थे। कितने निष्कपट, सरल-हृदय, साधु लोग हैं। इतने कष्ट झेलते हैं, इतना अपमान सहते हैं, लेकिन मनोमालिन्य का कहीं नाम नहीं। इस समय सभी आमोद के नशे में

चूर हो रहे हैं।

रामायण समाप्त हुई तो कल्लू बोला—कादिर चाचा, अब तुम्हारी कुछ हो जाय।

कादिर ने लजाते हुए कहा—गा तो रहे हो, क्या इतनी जल्दी थक गए?

मनोहर—नहीं भैया, अब अपनी कोई अच्छी-सी चीज सुना दो। बहुत दिन हुए नहीं सुना, फिर न जाने कब बैठक हो। सरकार, ऐसा गायक इधर कई गांव में नहीं है।

कादिर—मेरे गंवारू गाने में सरकार को क्या मजा आएगा?

प्रेम—नहीं-नहीं, मैं तुम्हारा गाना बड़े शौक से सुनूंगा।

कादिर—हुजूर गाते क्या हैं रो लेते हैं, आपका हुक्म कैसे टालें?

यह कहकर कादिर खां ने ढोल का स्वर मिलाया और यह भजन गाने लगा—

मैं अपने राम को रिझाऊं।
जंगल जाऊं न बिरछा छेड़ूं, ना कोई डार सताऊं।
पात-पात में है अविनासी, वाही में दरस कराऊं।
मैं अपने राम को रिझाऊं।
ओखद खाऊं न बूटी लाऊं, ना कोई बैद बुलाऊं।
पूरन बैद मिले अविनासी, ताहि को नबज दिखाऊं।
मैं अपने राम को रिझाऊं।

कादिर के गले में यद्यपि लोच और माधुर्य न था, पर ताल और स्वर ठीक था। कादिर इस विद्या में चतुर था। प्रेमशंकर भजन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। इसका एक-एक शब्द भक्ति और उद्‌गार में डूबा हुआ था। व्यवसायी गायकों की नीरसता और शुष्कता की जगह अनुरागमय, भाव-रस परिपूर्ण था।

गाना समाप्त हुआ तो एक नकल की ठहरी। कल्लू इस कला में निपुण था। कादिर मियां राजा बने, कल्लू मंत्री, बिसेसर साह सेठ बन गए। डपटसिंह ने एक चादर ओढ़ ली और रानी बन बैठे। राजकुमार की कमी थी। लोग सोचने लगे कि यह भाग किसे दिया जाए। प्रेमशंकर ने हंसकर कहा—कोई हरज न हो तो मुझे राजकुमार बना दो। यह सुनकर सब-के-सब फूल उठे। नकल शुरू हो गई—

पहला अंक

राजा—हाय ! हाय ! वैद्यों ने जवाब दिया, हकीमों ने जवाब दिया, डाकदरों ने जवाब दिया, किसी ने रोग को न पहचाना। सब के सब लुटेरे थे। अब जिंदगानी की कोई आसा नहीं। यह सारा राज-पाट छूटता है। मेरे पीछे परजा पर न जाने क्या बीतेगी ! राजकुमार अल्हड़ नादान है, उसकी संगत अच्छी नहीं है। (प्रेमशंकर की ओर कटाक्ष से देखकर) किसानों से मेल रखता है। उनके पीछे सरकारी आदमियों से रार करता है। जिन दीन-दु:खी रोगियों की परछाईं से भी डाकदर लोग डरते हैं उनकी दवा-दारू करता है। उसे अपनी जान का, धन का तनिक भी लोभ नहीं है। यह इतना बड़ा राज कैसे संभालेगा? अत्याचारियों को कैसे दंड देगा? हाय, मेरी, प्यारी रानी, जिससे मैंने अभी महीने भर हुए ब्याह किया है, मेरे बिना कैसे जीएगी? कौन उससे प्रेम करेगा? हाय !

रानी—स्वामीजी, मैं इस सोग में मर जाऊंगी। यह उजले सन के-से बाल, यह पोपला मुंह कहां देखूंगी (कटाक्ष भाव से) किसको गोद में लूंगी? किससे ठुनकूंगी? अब मैं किसी तरह न बचूंगी।

राजा की सांस उखड़ जाती है, आंखें पथरा जाती हैं, नाड़ी छूट जाती है। रानी छाती पीटकर रोने लगती है। दरबार में हाहाकार मच जाता है।

राजा के कानों में आकाशवाणी होती है—हम तुझे एक घंटे की मोहलत देते हैं, अगर तुझे तीन मनुष्य ऐसे मिल जाएं जो दिल से तेरे जीने की इच्छा रखते हों तो तू अमर हो जाएगा।

राजा सचेत हो जाता है, उसके मुखारविंद पर जीवन-ज्योति झलकने लगती है। वह प्रसन्नमुख उठ बैठता है और आप-ही-आप कहता है, अब मैं अमर हो गया, अकंटक राज्य करूंगा, शत्रुओं का नाश कर दूंगा। मेरे राज्य में ऐसा कौन प्राणी है जो हृदय से मेरे जीने की इच्छा न रखता हो। न नहीं, तीन लाख आदमी बात-की-बात में निकल आएंगे।

दूसरा अंक

(राजा एक साधारण नागरिक के रूप में आप-ही-आप)

समय कम है, ऐसे तीन सज्जनों के पास चलना चाहिए जो मेरे भक्त थे। पहले सेठ के पास चलूं। वह परोपकार के प्रत्येक काम में मेरी सहायता करता था। मैंने उसकी कितनी बार रक्षा की है और उसे कितना लाभ पहुंचाया है। यह सेठजी का घर आ गया। सेठजी, सेठजी ! जरा बाहर आओ।

सेठ—क्या है? इतनी रात गए कौन काम है?

राजा—कुछ नहीं, अपने स्वर्गवासी राजा का यश गाकर उनकी आत्मा को शांति देना चाहता हूं। कैसे धर्मात्मा, प्रजा-प्रिय पुरुष थे। उनका परलोक हो जाने से सारे देश में अंधकार-सा छा गया है। प्रजा उनको कभी नहीं भूलेगी। आपसे तो उनकी बड़ी मैत्री थी, आपको तो और भी दु:ख हो रहा होगा?

सेठ—मुझे उनके राज्य में कौन-सा सुख था कि अब दु:ख होगा? मर गए, अच्छा हुआ; उनकी बदौलत लाखों रुपये साधु-संतों को खिलाने पड़ते थे।

राजा—(मन में) हाय ! इस सेठ पर मुझे कितना भरोसा था ! यह मेरे इशारे पर लाखों रुपये दान कर दिया करता था। सच कहा है, बनिए किसी के मित्र नहीं होते। मैं जन्म भर इसके साथ रहा, पर इसे पहचान न सका। अब चलूं मंत्री के पास, वह बड़ा स्वामिभक्त सज्जन पुरुष है। उसके साथ मैंने बड़े-बड़े सलूक किए हैं। यह उसका भवन आ गया। शायद अभी दरबार से आ रहा है। मंत्रीजी, कहिए क्या राज दरबार से आ रहे हैं? इस समय तो दरबार में शोक मनाया जा रहा होगा? ऐसे धर्मात्मा राजा की मृत्यु पर जितना शोक किया जाए, वह थोड़ा है। अब फिर ऐसा राजा न होगा। आपको तो बहुत ही दु:ख हो रहा होगा?

मंत्री—मुझे उनसे कौन-सा सुख मिलता था कि अब दु:ख होगा? मर गए, अच्छा हुआ। उनके मारे सांस लेने की भी छुट्टी न मिलती थी। प्रजा के पीछे आप-आप मरते थे, मुझे भी मारते थे ! रात-दिन कमर कसे खड़े रहना पड़ता था।

राजा–(आप-ही-आप) हाय ! इस परम हितैषी सेवक ने भी धोखा दिया। मेरी आंख बन्द होते ही सारा संसार मेरा बैरी हो गया। ऐसे-ऐसे आदमी धोखा दे रहे हैं जो मेरे पसीने की जगह लहू बहाने को तैयार रहते थे। तीन आदमी भी ऐसे नहीं, जिन्हें मेरा जीना पसंद हो। जब दोनों निकल गए तो दूसरों से क्या आशा रखूं? अब रानी के पास जाता हूं। वह साध्वी सती स्त्री है। उसकी जितनी ही सखियां हैं सभी मुझ पर प्राण देती थीं। वहां मेरी इच्छा अवश्य पूरी होगी। अब केवल थोड़ा-सा समय और रह गया है। यह राजभवन आ गया। रानी अकेली मन मारे शोक में बैठी हुई है। महारानी जी, अब धीरज से काम लीजिए, आपके स्वामी ऐसे प्रतापी थे कि संसार में सदा उनका लोग यश गाया करेंगे। देह-त्याग कर वह अमर हो गए।

रानी--अमर नहीं, पत्थर हो गए। उनसे संसार को चाहे जो सुख मिला हो, मुझे तो कोई सुख न मिला ! उनके साथ बैठते लज्जा आती थी। मैं उनका क्या यश गाऊं? मैं तो उसी दिन विधवा हो गई जिस दिन उनसे विवाह हुआ। वह जीते थे तब भी रांड़ थी, मर गए तब भी रांड हूं। देखो तो कुंवर साहब कैसे सजीले, बांके जवान हैं। मेरे योग्य यह थे, न कि वैसा खूसट बुड्ढा, जिसके मुंह में दांत तक नहीं थे।

यह सुनते ही राजा एक लम्बी सांस लेता है और मूर्छित होकर गिर पड़ता है।

(अभिनय समाप्त होता है)

प्रेमशंकर को इन गंवारों के अभिनय-कौशल पर विस्मय हुआ ! बनावट का कहीं नाम न था। प्रत्येक व्यक्ति ने अपना-अपना भाग स्वाभविक रीति से पूरा किया। यद्यपि न परदे थे न कोई दूसरा सामान, तथापि अभिनय रोचक और मनोरंजक था।

सबेरे प्रेमशंकर टहलते हुए पड़ाव की ओर चले तो देखा कि लश्कर कूच की तैयारी कर रहा है। खेमे उखड़ रहे हैं, गाड़ियों पर असबाव लद रहा है। साहब बहादुर की मोटर तैयार है और बिसेसर साह तहसीलदार के सामने कागज का एक पुलिंदा लिए खड़े हैं। तेली, तमोली, बूचड़ आदि भी एक पेड़ के नीचे अभियुक्तों की भांति दाम वसूल करने के लिए बैठे हुए हैं। प्रेमशंकर ने तहसीलदार से हाथ मिलाया और बैठकर तमाशा देखने लगे।

तहसीलदार–कहां हैं गाड़ीवान लोग? बुलाओ, रसद का हिसाब करें। इस पर एक गाड़ीवान ने कहा–हुजूर, यहां रसद मिला है कि हमारी जान मारी गई है। आटे में इस बेईमान बनिए ने न जाने क्या मिला दिया है कि उसी दिन से पेट में दर्द हो रहा है, घी में तेल मिलाया था, उस पर हिसाब करने को कहता है। अभी साहब से कह दें तो बच्चू को लेने के देने पड़ जाएं।

अर्दली के कई चपरासी बोले–यह बनिया गोली मार देने के लायक है। ऐसा खराब आटा उम्र भर नहीं खाया। न जाने क्या चीज मिला दी है कि हजम ही नहीं होता। घी ऐसा बदबू करता था कि दाल खाते न बनती थी। इस पर तो जुर्माना होना चाहिए। उल्टे हिसाब करने आया है।

एक कांस्टेबिल महाशय ने कहा–हम इसे खूब जानते हैं, छंटा हुआ है। चीनी दी तो उसमें आधी बालू, घी में आधी घुइयां, आटे में आधा चोकर, दाल में आधा कूड़ा। इसे तो ऐसी जगह मारें जहां पानी न मिले।

कई साईस बोले–घोड़ों को जो दाना दिया है वह बिल्कुल घुना हुआ, आधा चना, आधा चोकर। घोड़ों ने सूंघा तक नहीं । साहब से कह दें तो अभी हंटर पड़ने लगें।

तहसीलदार –ये सब शिकायतें पहले क्यों नहीं कीं?

कई आदमी—हुजूर, रोज तो हाय-हाय कर रहे हैं।

तहसीलदार—(प्रेमशंकर की ओर देखकर) मुझसे किसी ने भी नहीं कहा। अब यह सब मैं कुछ न सुनूंगा। जिसके जिम्मे जो कुछ निकले, कौड़ी-कौड़ी दे दो। साह जी, अपना हिसाब निकालो।

बिसेसर—मौला बक्श अर्दली, आटा ऽ3, घी ऽ।।, चावल ऽ2, दाल ऽ1, मसाला ऽ।, तमाखू ऽ।, कत्था-सुपारी 2 छटांक, चीनी 5 छटांक—कुल 3 रुपये।

तहसीलदार—कहां है मौला बख्श? दाम देकर रसीद लो।

एक अर्दली—इस नाम का हमारे यहां कोई आदमी नहीं है।

बिसेसर—है क्यों नहीं? लम्बे-लम्बे हैं, छोटी दाढ़ी है, मुंह पर शीतला का दाग है, सामने के दो-तीन दांत टूटे हैं।

कई अर्दली—इस हुलिए का यहां कोई आदमी ही नहीं। पहचान, हममें से कौन है?

तहसीलदार—अच्छा, दूसरा नाम बोलो।

बिसेसर—कहीं चल दिए होंगे और क्या?

तहसीलदार—अच्छा दूसरा नाम बोलो।

बिसेसर—धन्नू अहीर, चावल ऽ3, आटा ऽ2, घी ऽ1, खली ऽ4, दाना और चोकर ऽ8, तमाखू 1 छटांक, कुल दो रुपये।

तहसीलदार—कहां है धन्नू अहीर? निकाल रुपये।

एक अर्दली—वह तो पहर रात रहे साहब का डेरा लादकर चला गया।

तहसीलदार—हिसाब नहीं चुकाया और चल दिया? अच्छा नाजिर जी, उसका नाम लिख लीजिए। कहां जाते हैं बच्चू? एक-एक पाई वसूल कर लूंगा।

प्रेम—यह लश्कर वालों की बड़ी ज्यादती है।

तहसीलदार—कुछ न पूछिए, कमबख्त खा-खाकर चल देते हैं, बदनामी बेचारे तहसीलदार की होती है।

बिससेर साह ने फिर ऐसा ही ब्यौरा पढ़ सुनाया। यह जयराम चपरासी का पुर्जा था। जयराम उपस्थित थे। आगे बढ़कर बोले, क्यों रे घी ऽ।। लिया था कि आधा पाव?

बिसेसर—कागज में तो ऽ।। लिखा हुआ है।

जयराम—झूठ लिखा है, सोलहों आने झूठ।

तहसीलदार—अच्छा ऽ= का दाम दो, या कुछ भी नहीं देना चाहते?

यह झमेला नौ-दस बजे तक रहा। एक तिहाई से अधिक आदमी बिना हिसाब चुकाए ही प्रस्थान कर चुके थे। एक चौथाई से अधिक आदमी लापता हो गए। आधे आदमी मौजूद थे, लेकिन उन्हें भी अपना हिसाब ठीक होने में संदेह था। ऐसे दस ही पांच सज्जन निकले जिन्होंने खरे दाम चुका दिए हों। जब सब चिटें समाप्त हो गईं तो बिसेसर साह ने उन्हें लाकर तहसीलदार के सामने पटक दिया और बोला—मैं और किसी को नहीं जानता, एक हुजूर को जानता हूं और हुजूर के हुक्म से मैंने रसद दी है।

तहसीलदार—मैं क्या अपनी गिरह से दूंगा?

बिसेसर—हुजूर जैसे चाहें दें या दिला दें। दो सौ रुपये में सत्तर रुपये मिले हैं। मैं टके का आदमी इतना धक्का कैसे उठाऊंगा? महाजन मेरा घर बिकवा लेगा।

तहसीलदार–अच्छी बात है, तुम्हारे दाम मिलेंगे। नाजिर जी, आप दो चपरासियों को लेकर जाइए, इसके बही-खाते उठा लाइए और खुद इसकी सालाना आमदनी का हिसाब कीजिए ! देखिए, अभी कलई खुली जाती है। मैं इसके सब रुपये दूंगा, पर इसी से लेकर। बच्चू, दो हजार रुपये साल का नफा करते हो, उस पर एक बार सौ रुपये का घाटा हुआ तो दम निकल गया?

कहां तो बिसेसर साह इतने गर्म हो रहे थे, कहां यह धमकी सुनते ही भीगी बिल्ली बन गए। बोले–हां हुजूर, सब हिसाब-किताब जांच लें। इस गांव में ऐसा कौन रोजगार है कि दो हजार का नफा हो जाएगा? खाने भर को मिल जाए यही बहुत है।

तहसीलदार–और यह आसपास के देहातों का अनाज किसके घर में भरा जाता है? तुम समझते हो कि हाकिमों को खबर नहीं होती। यहां इतना बतला सकते हैं कि आज तुम्हारे घर में क्या पक रहा है। यह रिआयत इसी दिन के लिए करते हैं, कुछ तुम्हारी सूरत देखने के लिए नहीं।

बिसेसर साह चुपके से सरक गए। तेली-तमोली ने भी देखा कि यहां मिलता-जुलता तो कुछ नहीं दीखता, उल्टे और पलोथन लगने का भय है, तो उन्होंने भी अपनी-अपनी राह ली। तहसीलदार ने प्रेमशंकर की ओर देखकर कहा–देखा आपने, टैक्स के नाम से इन सबों की जान निकल जाती है। मैं जानता हूं कि इसकी सालाना आमदनी ज्यादा-से-ज्यादा एक हजार होगी। लेकिन चाहे इस तरह कितना ही नुकसान बर्दाश्त कर लें, अपने बही-खाते न दिखाएंगे। यह इनकी आदत है।

प्रेम–खैर, यह तो अपनी चालबाजी की बदौलत नुकसान से बच गया, मगर और बेचारे तो मुफ्त में पिस गए, उस पर जलील हुए वह अलग।

तहसीलदार–जनाब, इसकी दवा मेरे पास नहीं है। जब तक कौम को आप लोग एक सिरे से जगा न देंगे इस तरह के हथकंडों का बंद होना मुश्किल है। जहां दिलों में इतनी खुदगर्जी समाई हुई है और जहां रिआया इतनी कच्ची है वहां किसी तरह की इसलाह नहीं हो सकती। (मुस्कराकर) हम लोग एक तौर पर आपके मददगार हैं। रिआया को सताकर, पीसकर मजबूत बनाते हैं और आप जैसे कौमी हमदर्दों के लिए मैदान साफ करते हैं।

सत्ताईस

प्रभात का समय था और कुआर का महीना। वर्षा समाप्त हो चुकी थी। देहातों में जिधर निकल जाइए, सड़े हुए सन की दुर्गंध उड़ती थी। कभी ज्येष्ठ को लज्जित करने वाली धूप होती थी, कभी सावन को शरमाने वाले बादल घिर आते थे। मच्छर और मलेरिया का प्रकोप था, नीम की छाल और गिलोय की बहार थी। चरावर में दूर तक हरी-हरी घास लहरा रही थी। अभी किसी को उसे काटने का अवकाश न मिलता था। इसी समय बिन्दा महाराज और कर्तारसिंह लाठी कंधे पर रखे एक वृक्ष के नीचे आकर खड़े हो गए। कर्तार ने कहा–इस बुड्ढे को खुचड़ सूझती रहती है। भला बताओ, जब यहां मवेशी न चरने पाएंगे तो कहां जाएंगे

और जो लोग सदा से चराते आए हैं वे मानेंगे कैसे? एक बेर कोई इसकी मरम्मत कर देता तो यह आदत छूट जाती।

बिन्दा—हमका तो ई मौजा मां तीस बरस होय गई, तब से दस कारिंदे आए पर चरावर कोऊ न रोका। गांव भर के मवेशी मजे से चरत रहे।

कर्तार—उन्हें हुकुम देते क्या लगता है ! जाएगी तो हमारे माथे।

बिन्दा—हमार जी तो अस ऊब गवा है कि मन करत है छोड़-छाड़ के घर चला जाई। सुनित है मालिक अबैया हैं। बस, एक बेर उनसे भेंट होई जाय और अपने घर के राह लेई।

कर्तार—फैजू दिन भर खाट पर पड़ा रहता है, उससे कुछ नहीं कहते। जब देखो कर्तार को ही दौड़ाते हैं, मानो कर्तार उनके बाप का गुलाम है। और देखो, पीपल के नीचे जहां हम-तुम जल चढ़ाते हैं, वहां नमाज पढ़ते हैं, वहीं दतुअन-कुल्ली करते हैं, वहीं नहाते हैं। बताओ, धरम नस्ट भया कि रहा? आप तो रोज कुरान पढ़ते हैं और मैं रामायण पढ़ने लगता हूं तो कैसे डांट के कहते हैं, क्या शोर मचा रक्खा है। अबकी असाढ़ में तीन सौ रुपये नजराना मिला, हमें एक पाई से भेंट न हुई।

बिन्दा—हमका तो एक रुपैया मिला रहे।

कर्तार—यह भी कोई मिलने में मिलना है ! और सब कहीं चपरासियों को रुपये में आठ आने मिलते हैं। यह कुछ न दें तो चार आने तो दें। लेना-देना तो दूर रहा उस पर आठों पहर सिर पर सवार। कल तुम कहीं गए थे। मुझसे बोले, कर्तार एक घड़ा पानी तो खींच लो। मैंने तुरंत जवाब दिया, इसके नौकर नहीं हैं, फौजदारी करा लो, लाठी चलवा लो, अगर कदम पीछे हटाएं तो कहो, लेकिन चिलम भरना, पानी खींचना हमारा काम नहीं है। इस पर आंखें बहुत लाल-पीली कीं। एक दिन पीपल के नीचे वाली मूरतों को देखकर बोले, यह क्या ईंट-पत्थर जमा कर रक्खे हैं। मैंने तो ठान लिया है कि जहां अब की कोई नजराना लेकर आया और मैंने हाथ पकड़ा कि चार आने इधर रखिए। जरा भी नरम-गरम हुए, मुंह से लाम-काफ निकाली और मैंने गर्दन दबाई। फिर जो कुछ होगा देखा जाएगा। फैजू बोले—तो उनसे भी मैं समझूंगा। खूब पड़े-पड़े रोटी, गोस उड़ा रहे हैं, सब निकाल दूंगा....वह देखो, मवेशी इधर आ रहे हैं। बलराज तो नहीं है न?

बिन्दा—होबै करी तो कौनो डर हौ? अब की अस जर आवा है कि ठठरी होय गवा है।

कर्तार—बड़े कस-बल का पट्ठा है। सुक्खू चौधरी का तालाब जहां बन रहा था वहीं एक दिन अखाड़े में उससे मेरी एक पकड़ हो गई थी। मैं उसे पहले ही झपाटे में नीचे लाया; लेकिन ऐसा तड़प के नीचे से निकला कि मैं झोंके में आ गया। संभल ही न सका। बदन नहीं, लोहा है।

बिन्दा—निगाह का बड़ा सच्चा जवान है। क्या मजाल कि कोऊ की बिटिया-महरिया की ओर आंखें उठा के ताके।

कर्तार—वह देखो फैजू और गौस खां भी इधर ही आ रहे हैं। आज कुशल नहीं दीखती।

बिन्दा—यह गायें-भैंसें तो मनोहर की जान परत हैं। बिलासी लीने आवत है।

कर्तार ने उच्च स्वर में कहा—यह कौन मवेशी लिए आता है? यहां से निकाल ले जाव, सरकारी हुकुम नहीं है। इतने में बिलासी निकट आ गई और बिन्दा महाराज की ओर अनिश्चित भाव से देखकर बोली—सुनत हौ महाराज, ठाकुर की बात !

कर्तार—सरकारी हुकुम हो गया है कि अब कोई जानवर यहां न चरने पाए।

बिलासी—कैसा सरकारी हुकुम? सरकार की जमीन नहीं है। महाराज, तुम्हें तो यहां एक युग बीत गया, कभी किसी ने चराई भी मना किया है?

बिन्दा—उन पुरानी बातन का न गाओ, अब ऐसे हुकुम भवा है। जानवरन का और कौनो कैत ले जाव, नाहीं तो वह गौस खां आवत हैं, सभन का पकड़ के कानीहौद पठै देहैं?

बिलासी—कानीहौद कैसे पठे देहैं, कोई राहजनी है? हमारे मवेसी सदा से यहां चरत आए हैं और सदा यहीं चरेंगे। अच्छा सरकारी हुकुम है। आज कह दिया, चरावर के छोड़ दो, कल कहेंगे अपना घर छोड़ो, पेड़ तले जाके रहो। ऐसा कोई अंधेर है?

इतने में गौस खां और फैजू भी आ पहुंचे। बिलासी के अंतिम शब्द खां साहब के कान में पड़े। डपट कर बोले—अपने जानवरों को फौरन निकाल ले जा, वरना मवेशीखाने भेज दूंगा।

बिलासी—क्यों निकाल ले जाऊं? चरावर सारे गांव का है। जब सारा गांव छोड़ देगा तो हम भी छोड़ देंगे।

गौस खां—जानवरों को ले जाती है कि खड़ी-खड़ी कानून बघारती है?

बिलासी—तुम तो खां साहब, ऐसी घुड़की जमा रहे हो जैसे मैं तुम्हारा दिया खाती हूं।

गौस खां—फैजू, यह जबांदराज औरत यों न मानेगी। घेर लो इसके जानवरों को और मवेशीखाने हांक ले जाओ।

फैजू तो मवेशियों की तरफ लपका, पर कर्तार और बिन्दा महाराज धर्म-संकट में पड़े खड़े रहे। खां साहब ने उन्हें भी ललकारा—खड़े मुंह क्या देख रहे हो? घेर लो जानवरों को और हांक ले जाओ। सरकारी हुकुम है या कोई मजाक है।

अब कर्तार और बिन्दा महाराज भी उठे और जानवरों को चारों ओर से घेरने का आयोजन करने लगे। मवेशियों ने चौकन्नी आंखों से देखा, कान खड़े किए और इधर-उधर बिदकने लगे। परिस्थिति को ताड़ गए। बिलासी ने कहा, मैं कहती हूं इन्हें मत घेरो, नहीं तो ठीक न होगा।

किंतु किसी ने उसकी धमकी पर ध्यान न दिया। थोड़ी देर में सब जानवर घिर गए। और कंधे-से-कंधे मिलाए, कनखियों से ताकते तीनो चपरासियों के बीच धीरे-धीरे चले। बिलासी एक संदिग्ध दशा में मूर्तिवत् खड़ी थी। जब जानवर कोई बीस कदम निकल गए तब वह उन्मत्तों की भांति दौड़ी और हांफते हुए बोली—मैं कहती हूं कि इन्हें छोड़ दो, नहीं तो ठीक न होगा।

फैजू—हट जा रास्ते से। कुछ शामत तो नहीं आई है?

बिलासी रास्ते में खड़ी हो गई और बोली—ले कैसे जाओगे? दिल्लगी है?

गौस खां—न [illegible] तो इसकी मरम्मत कर दो ।

बिलासी—कहे देती हूं, इन जानवरों के पीछे लोहू की नदी बह जाएगी, माथे गिर जाएंगे।

फैजू—हटती है या नहीं चुड़ैल?

बिलासी—तू हट जा, दाढ़ीजार।

इतना उसके मुंह से निकलना था कि फैजू ने आगे बढ़कर बिलासी की गर्दन पकड़ी और उसे इतने जोर से झोंका दिया कि वह दो कदम पर जा गिरी। उसकी आंखें तिलमिला गईं, मूर्छा-सी आ गई। एक क्षण वह वहीं अचेत पड़ी रही, तब उठी और लंगड़ाती हुई उन पुरुषों से अपनी अपमान-कथा कहने चली जो उसके मान और मर्यादा के रक्षक थे।

मनोहर और बलराज दोनों एक दूसरे गांव में धान काटने गए हुए थे। वह यहां से कोस

पर पड़ता था। लखनपुर में धान के खेत न थे, इसलिए सभी लोग प्रायः उसी गांव में धान बोते थे। बिलासी धान की मेंड़ों पर चली जाती थी। कभी पैर इधर फिसलते, कभी उधर। वह ऐसी उद्विग्न हो रही थी कि किसी प्रकार उड़कर वहां पहुंच जाऊं। पर घुटनियों में चोट आ गई थी, इसलिए विवश थी। उसके रोम-रोम से अग्नि की ज्वाला निकल रही थी। अंग-अंग से यही ध्वनि निकलती थी—इनकी इतनी मजाल !

उसे इस समय परिणाम और फल की लेश-मात्र भी चिंता न थी। कौन मरेगा? किसका घर मिट्टी में मिलेगा? यह बातें उसके ध्यान में भी न आती थीं। वह संकल्प-विकल्प के बंधन से मुक्त हो गई थी।

लेकिन जब उस गांव के समीप पहुंची और धान के लहराते हुए खेत दिखाई देने लगे, तो पहली बार उसके मन में यह प्रश्न उठा कि इसका फल क्या होगा? बलराज एक ही क्रोधी है, मनोहर उससे भी एक अंगुल आगे। मेरा रोना सुनते ही दोनों भभक उठेंगे। जान पर खेल जाएंगे, तब? किंतु आहत हृदय ने उत्तर दिया, क्या हानि है? लड़कों के लिए आदमी क्यों झींकता है। पति के लिए क्यों रोता है ! इसी दिन के लिए तो? इस कलमुंहे फैजू का मान-मरदन तो हो जाएगा? गौस खां का घमंड तो चूर-चूर हो जाएगा।

तब भी, जब वह अपने खेतों के डांड़े पर पहुंची, मनोहर और बलराज नजर आने लगे तब उसके पैर आप ही रुकने लगे। यहां तक कि वह उनके पास पहुंची तब परिणाम-चिंता ने उसे परास्त कर दिया। वह फूट-फूटकर रोने लगी। जानती थी और समझती थी कि यह आंसू की बूंदें आग की चिंगारियां हैं, पर आवेश पर अपना काबू न था। वह खेत के किनारे खड़ी हो गई और मुंह ढांपकर रोने लगी।

बलराज ने सशंक होकर पूछा—अम्मां, क्या बात है? रोती क्यों है? क्या हुआ? यह सारा कपड़ा कैसे लोहूलुहान हो गया?

बिलासी ने साड़ी की ओर देखा तो वास्तव में रक्त की छींटें दिखाई दिए। घुटनियों से खून बह रहा था। उसका हृदय थर-थर कांपने लगा। इन छींटों को छिपाने के लिए वह इस समय अपने प्राण तक दे सकती थी। हाय ! मेरे सिर कौन-सा भूत सवार हो गया कि यहां दौड़ी हुई आई। मैं क्या जानती थी कि कहीं फूट-फाट भी गया है। अब गजब हो गया ! मुझे चाहिए था कि धीरज धरे बैठी रहती। सांझ को जब यह लोग घर जाते और गांव के सब आदमी जमा होते तो सारा वृत्तांत कह देती। जैसी सबकी सलाह होती, वैसा किया जाता। इस अव्यवस्थित दशा में वह कोई शांतिप्रद उत्तर न सोच सकी।

बलराज ने फिर पूछा—कुछ मुंह से बोलती क्यों नहीं? बस रोए जाती है। क्या हुआ, कुछ बता भी तो।

बिलासी—(सिसकते हुए) फैजू और गौस खां हमारी सब गाएं-भैंसें कानीहौद हांक ले गए।

बलराज—क्यों? क्या उनकी सीर में पड़ी थीं?

बिलासी—नहीं, कहते थे कि चरावर में चराने की मनाही हो गई है।

बलराज ने देखा कि माता की आंखें झुकी हुई हैं और मुख पर मर्माघात की आभा झलक रही है। उसने उग्रावस्था में स्थिति को उससे कहीं भयंकर समझ लिया, जितनी वह वस्तुतः थी। कुछ पूछने की हिम्मत न पड़ी। आंखें रक्तवर्ण हो गईं। कंधे पर लट्ठ रख लिया और मनोहर

से बोला—मैं जरा गांव तक जाता हूं।

मनोहर—क्या काम है?

बलराज—फैजू और गौस खां से दो-दो बातें करनी हैं।

मनोहर—ऐसी बात करने का यह मौका नहीं। अभी जाओगे तो बात बढ़ेगी और कुछ हाथ भी न लगेगा। चार आदमी तुम्हीं को बुरा कहेंगे। अपमान का बदला इस तरह नहीं लिया जाता।

मनोहर के इन शब्दों में इतना भयंकर संकल्प, इतना घातक निश्चय भरा हुआ था कि हम लोग आएंगे, तो देखा जाएगा।

मनोहर—नहीं, घर मत जाओ। यहीं बैठो। सांझ को सब जने साथ ही चलेंगे। वह कौन चला आ रहा है? बिन्दा महाराज हैं क्या?

बलराज—नहीं, कादिर दादा जान पड़ते हैं, हां, वही हैं। भागे चले आते हैं। मालूम होता है गांव में मारपीट हो गई। दादा, क्या है? कैसे दौड़े आते हो, कुशल तो है?

कादिर ने दम लेकर कहा—तुम्हारे ही पास तो दौड़े आते हैं। बिलासी रोती आई है। मैं डरा कि तुम लोग गुस्से में न जाने क्या कर बैठो। चला कि राह में मिल जाओगे तो रोक लूंगा, पर तुम कहीं मिले ही नहीं। अब तो जो हो गया सो हो गया, आगे की खबर करो। आज से जमींदार ने चरावर रोक दी है । यह अंधेर देखते हो?

मनोहर—हां, देख तो रहा हूं, अंधेर ही अंधेर है।

कादिर—फिर अदालत जाना पड़ेगा।

मनोहर—चलो, मैं तैयार हूं।

कादिर—हां, आज आओ तो सलाह पक्की करके सवाल दे दें। अबकी हाईकोर्ट तक लड़ेंगे, चाहे घर बिक जाए। बस, हल पीछे चंदा लगा लिया जाए।

मनोहर—हा, यही अच्छा होगा।

कादिर—मैं नमाज पढ़ता था, सुना बिलासी को चरावर में चपरासियों ने बुरा-भला कहा और वह रोती हुई इधर आई है। समझ गया कि आज गजब हो गया। बारे तुमने सबर से काम लिया। अल्लाह इसका सबाब तुमको देगा। तो मै अब जाता हूं, सबसे चंदे की बातचीत करता हूं। जरा दिन रहते चले आना।

कादिर खां सावधान होकर चले गए। यह न समझे यहां मन में कुछ और ठन गई है। मनोहर के तुले हुए शब्दों को उन्होंने मानसिक धैर्य का द्योतक समझा।

मनोहर ऐसे उद्दीपन उत्साह से अपने काम में दत्तचित्त था मानो उसकी युवावस्था का विकास हो गया है। धान के पोलों के ढेर लगते जाते थे। न आगे ताकता था न पीछे, न किसी से कुछ बोलता था, न किसी की कुछ सुनता था, न हाथ थकते थे, न कमर दुखती थी। बलराज ने चिलम भर कर रख दी। तंबाकू रखे-रखे जल गया। बिलासी खांड का रस घोलकर सामने लाई। उसने उसकी ओर देखा तक नहीं, कुत्ता पी गया। कुआर की धूप थी, देह से चिंगारियां निकलती थीं, पसीने की धारें बहती थीं, किंतु वह सिर तक न उठाता था। बलराज कभी खेत में आता, कभी पेड़ के नीचे जा बैठता, कभी चिलम पीता। एक ही अग्नि दोनों के हृदय में प्रज्ज्वलित थी, एक ओर सुलगती हुई, दूसरी ओर दहकती हुई। एक ओर वायु के वेग से चंचल, दूसरी ओर निर्बलता से निश्चल। एक ही भावना दोनों के हृदय में थी, एक में उद्दाम-उच्छृंखल, दूसरे में गंभीर और स्थिर।

दोपहर हुई। बिलासी ने आकर डरते-डरते कहा—चलो, चबेना कर लो।

मनोहर ने सिर झुकाए हुए जवाब दिया—चलो आते हैं।

एक घंटे बाद बिलासी फिर आकर बोली—चलो, चबेना कर लो, दिन ढल गया। क्या आज ही सब खेत काट लोगे?

मनोहर ने कठोर स्वर में कहा—हां, यही विचार है। कौन जाने, कल आए या न आए।

जैसे किसी भरे हुए घड़े में एक कंकर लग जाए और पानी बह निकले, उसी भांति बिलासी के हृदय में एक चोट-सी लगी और आंसू बहने लगे। वह रह-रहकर हाथ मलती थी। हाय ! न जाने इन्होंने मन में क्या ठान लिया है !

वह कई मिनट तक वहीं खड़ी रोती रही। परिणाम की भयावह विकराल मूर्ति उसके नेत्रों के सामने नाच रही थी। मुंह खोले उसे निगलने को दौड़ती थी और शोक ! इस मूर्ति को उसने अपने ही हाथों रचा था। अंत में मनोहर के सम्मुख बैठ गई और उसकी ओर अत्यंत दीन भाव से देखकर बोली—हाथ जोड़कर कहती हूं, चलकर चबेना कर लो। तुम्हारे इस तरह गुमसुम रहने से मेरा कलेजा दहल रहा है। तुमने क्या ठान ली है, बोलते क्यों नहीं?

मनोहर—जाकर चुपके से बैठो। जब मुझे भूख लगेगी, खा लूंगा।

बिलासी—हाय राम, तुम क्या करने पर तुले हुए हो?

मनोहर—करूंगा क्या? कुछ करने ही लायक होता तो आज यह बेइज्जती नहीं होती। जो कुछ तकदीर में है वह होगा।

यह कहकर वह फिर अपने काम में व्यस्त हो गया। कोई किसी से न बोला। बलराज टालमटोल करता रहा और बिलासी उदास बैठी कभी रोती और कभी अपने को कोसती; यहां तक कि संध्या हो गई। तीनों ने धान के गट्ठे गाड़ी पर लादे और लखनपुर चले? बलराज गाड़ी हांकता था और मनोहर पीछे-पीछे उच्च स्वर में एक बिरहा गाता हुआ चला आता था। राह में कल्लू अहीर मिला, बोला—मनोहर काका आज बड़े मगन हो। मनोहर का गाना समाप्त हुआ तो उसने भी एक बिरहा गया। दोनों साथ-साथ गांव में पहुंचे तो एक हलचल-सी मची हुई थी। चारों ओर चरावर की ही चर्चा थी। कादिर के द्वार पर एक पंचायत-सी बैठी हुई थी। लेकिन मनोहर पंचायत में न जाकर सीधा घर गया और जाते ही जाते भोजन मांगा। बहू ने रसोई तैयार कर रक्खी थी। इच्छापूर्ण भोजन करके नारियल पीने लगा। थोड़ी देर में बलराज भी पंचायत से लौटा। मनोहर ने पूछा—कहो, क्या हुआ?

बलराज—कुछ नहीं, यह सलाह हुई है कि खां साहब को कुछ नजर-वजर देकर मना लिया जाय। अदालत से सब लोग घबराते हैं।

मनोहर—यह तो मैं पहले ही समझ गया था। अच्छा, जाकर चटपट खा-पी लो। आज मैं भी तुम्हारे साथ रखवाली करने चलूंगा। आंख लग जाए तो जगा लेना।

एक घंटे के बाद दोनों खेत की ओर चलने को तैयार हुए। मनोहर ने पूछा—कुल्हाड़ा खूब चलता है न?

बलराज—हां, आज ही तो रगड़ा है।

मनोहर—तो उसे ले लो।

बलराज—मेरा तो कलेजा थर-थर कांप रहा है।

मनोहर—कांपने दो। तुम्हारे साथ मैं भी तो रहूंगा। तुम दो-एक हाथ चलाके वहां से लंबे

हो जाना और सब मैं देख लूंगा। इस तरह आके सो रहना, जैसे कुछ जानते ही नहीं। कोई कितना ही पूछे, डरावे-धमकावे मुंह मत खोलना। मैं अकेले ही जाता, मुदा एक तो मुझे अच्छी तरह सूझता नहीं, कई दिनों से रतौंधी होती है, दूसरे हाथों में अब वह बल नहीं कि एक चोट में वारा-न्यारा हो जाए।

मनोहर यह बातें ऐसी सावधानी से कह रहा था मानो कोई साधारण घरेलू बातचीत हो। बलराज इसके प्रतिकूल शंका और भय से आतुर हो रहा था। क्रोध के आवेश में वह आग में कूद सकता था, किंतु इस पैशाचिक हत्याकांड से उसके प्राण सूखे जाते थे।

खेत में पहुंचकर दोनों मचान पर लेटे। अमावस की रात थी। आकाश पर कुछ बादल भी हो आए थे। चारों ओर घोर अंधकार छाया हुआ था।

मनोहर तो लेटते ही खर्राटे लेने लगा, लेकिन बलराज पड़ा-पड़ा करवटें बदलता रहा। उसका हृदय नाना प्रकार की शंकाओं का अविरल स्रोत बना हुआ था।

दो घड़ी बीतने पर मनोहर जागा, बोला—बलराज, सो गए क्या?

बलराज—नहीं, नींद नहीं आती।

मनोहर—अच्छा, तो अब राम का नाम लेकर तैयार हो जाओ। डरने या घबराने की कोई बात नहीं। अपने मरजाद की रक्षा करना मरदों का काम है। ऐसे अत्याचारों का हम और क्या जवाब दे सकते हैं? बेइज्जत होकर जीने से मर जाना अच्छा है। दिल को खूब संभालो। अपना काम करके सीधे यहां चले आना। अंधेरी रात है। किसी की नजर भी नहीं पड़ सकती। थानेदार तुम्हें डराएंगे, लेकिन खबरदार, डरना मत ! बस, गांव के लोगों से मेल रखोगे तो कोई तुम्हारा बाल भी बांका न कर सकेगा। दुखरन भगत अच्छा आदमी नहीं है, उससे चौकन्ने रहना। हां, कादिर भरोसे का आदमी है। उसकी बातों का बुरा मत मानना। मैं तो फिर लौट कर घर न आऊंगा। तुम्हीं घर के मालिक बनोगे। अब वह लड़कपन छोड़ देना, कोई चार बात कहे तो गम खाना। ऐसा कोई काम न करना कि बाप-दादे के नाम को कलंक लगे। अपनी घरवाली को सिर मत चढ़ाना। उसे समझाते रहना कि सास के कहने में रहे। मैं तो देखने न आऊंगा, लेकिन इसी तरह घर में रार मचता रहा तो घर मिट्टी में मिल जाएगा।

बलराज ने अवरुद्ध कंठ से कहा—दादा, मेरी इतनी बात मानो, इस बखत सबुर कर जाओ। मैं कल एक-एक की खोपड़ी तोड़कर रख दूंगा।

मनोहर—हां, तुम्हें कोई मारे तो तुम संसार भर को मार गिराओ। फैजू और कर्तार क्या मिट्टी के लोंदे हैं? गौस खां भी पलटन में रह चुका है। तुम लकड़ी में उनसे पेश न पा सकोगे। वह देखो, हिरना निकल आया। महाबीरजी का नाम लेकर उठ खड़े हो। ऐसे कामों में आगा-पीछा अच्छा नहीं होता। गांव के बाहर ही बाहर चलना होगा, नहीं तो कुत्ते भूकेंगे और लोग जाग उठेंगे।

बलराज—मेरे तो हाथ-पैर कांप रहे हैं।

मनोहर—कोई परवाह नहीं। कुल्हाड़ी हाथ में लोगे तो सब ठीक हो जाएगा। तुम मेरे बेटे हो, तुम्हारा कलेजा मजबूत है। तुम्हें अभी जो डर लग रहा है, वह ताप से पहले का जाड़ा है। तुमने कुल्हाड़ा कंधे पर रक्खा, महाबीर का नाम लेकर उधर चले तो तुम्हारी आंखों से चिंगारियां निकलने लगेंगी। सिर पर खून सवार हो जाएगा। बाज की तरह शिकार पर झपटोगे। फिर तो मैं तुम्हें मना भी करूं तो न सुनोगे। वह देखो, सियार बोलने लगे, आधी रात हो गई। मेरा हाथ पकड़ लो और आगे-आगे चलो। जय महाबीर की।

अट्ठाईस

प्रेमशंकर की कृषिशाला अब नगर के रमणीय स्थानों की गणना में थी। यहां ऐसी सफाई और सजावट थी कि प्रायः रसिकगण सैर करने आया करते। यद्यपि प्रेमशंकार केवल उसके प्रबंधकर्ता थे, पर वस्तुतः असामियों की भक्ति और पूर्ण विश्वास ने उन्हें उसका स्वामी बना दिया था। अब अपनी इच्छानुसार नई-नई फसलें पैदा करते; नाना प्रकार की परीक्षाएं करते, पर कोई जरा भी न बोलता। और बोलता ही क्यों, जब उनकी कोई परीक्षा असफल न होती थी। जिन खेतों में मुश्किल से पांच-सात मन उपज होती थी, वहां अब पंद्रह-बीस मन का औसत पड़ता था। उस पर बाग की आमदनी अलग थी। इन्हीं चार सालों में कलमी आम, बेर, नारंगी आदि के पेड़ों में फल लगने शुरू हो गए थे। शाक-भाजी की पैदावार घाटे में थी। प्रेमशंकर में व्यावसायिक संकीर्णता छू तक न गई थी। जो सज्जन यहां आ जाते, उन्हें फूल-फलों की डाली अवश्य भेंट की जाती थी। प्रेमशंकर की देखा-देखी हाजीपुर वालों ने भी अपने जीवन का कुछ ऐसा डौल कर लिया था कि उनकी सारी आवश्यकताएं उसी बगीचे से पूरी हो जाती थीं। भूमि का आठवां भाग कपास के लिए अलग कर दिया गया था। अन्य प्रांतों से उत्तम बीज मंगाकर बोए गए थे। गांव के लोग स्वयं सूत कात लेते थे और गांव का ही कोरी उसके कपड़े बुन देता था। नाम उसका मस्ता था। पहले वह जुआ खेला करता था और कई बार चोरी में पकड़ा गया था। लेकिन अब अपने श्रम से गांव में भले आदमियों में गिना जाता था। प्रेमशंकर के उद्योग से आस-पास के गांवों में भी कपास की खेती होने लगी थी और कितने ही कोरियों और जुलाहों के उजड़े हुए घर आबाद हो गए थे। देहातों के मुकदमेबाज जमींदार और किसान बहुधा इसी जगह ठहरा करते थे। यहां उन्हें ईंधन, शाक-भाजी, नमक-तेल के लिए पैसे न खर्च करने पड़ते थे। प्रेमशंकर उनसे खूब बातें करते और उन्हें अपने बगीचे की सैर कराते। साधु-संतों का तो मानो अखाड़ा ही था। दो-चार मूर्तियां नित्य ही पड़ी रहती थीं। न जाने उस भूमि में क्या बरकत थी कि इतनी आतिथ्य-सेवा करने पर भी किसी पदार्थ की कमी न थी। हाजीपुर वाले तो उन्हें देवता समझते थे, और अपने भाग्य को सराहते थे कि ऐसे पुण्यात्मा ने हमें उबारने के लिए यहां निवास किया। उनके सदय, उदार, सरल स्वभाव ने मस्ता कोरी के अतिरिक्त गांव के कई कुचरित्र मनुष्यों का उद्धार कर दिया था। भोला अहीर, जिसके मारे खलिहान में अनाज न बचता था; दमड़ी पासी, जिसका पेशा ही लठैती था, अब गांव के सबसे मेहनती और ईमानदार किसान थे।

प्रेमशंकर अक्सर कृषकों की आर्थिक दुरवस्था पर विचार किया करते थे। अन्य अर्थशास्त्रवेत्ताओं की भांति वह कृषकों पर फिजूलखर्ची, आलस्य, अशिक्षा या कृषिविधान से अनभिज्ञता का दोष लगाकर इस प्रश्न को हल न करते थे। वह परोक्ष में कहा करते थे कि मैं कृषकों को शायद ही कोई ऐसी बात बता सकता हूं जिसका उन्हें ज्ञान हो। परिश्रमी तो इनसे अधिक कोई संसार में न होगा। मितव्ययिता में, आत्मसंयम में, गृह-प्रबंध में वे निपुण हैं। उनकी दरिद्रता का उत्तरदायित्व उन पर नहीं, बल्कि उन परिस्थितियों पर है जिनके अधीन उनका जीवन व्यतीत होता है, और यह परिस्थितियां क्या हैं? आपस की फूट, स्वार्थपरता और एक ऐसी संस्था का विकास, जो उनके पांव की बेड़ी बनी हुई है।

लेकिन जरा और विचार कीजिए तो यह तीनों कहानियां एक ही शाखा से फूटी हुई प्रतीत होंगी और यह वही संस्था है जिसका अस्तित्व कृषकों के रक्त पर अवलंबित है। आपस में विरोध क्यों है? दुरवस्थाओं के कारण, जिनकी इस वर्तमान शासन ने सृष्टि की है। परस्पर प्रेम और विश्वास क्यों नहीं है? इसलिए कि यह शासन इन सद्भावों को अपने लिए घातक समझता है और उन्हें पनपने नहीं देता। इस परस्पर विरोध का सबसे दुःखजनक फल क्या है? भूमि का क्रमशः अत्यंत अल्प भागों में विभाजित हो जाना और उसके लगान की अपरिमित वृद्धि। प्रेमशंकर इस शासन के सुधार को तो मानव शक्ति से परे समझते थे, लेकिन भूमि के बंटवारे का रोकना उन्हें साध्य जान पड़ता था और यद्यपि किसी आंदोलन में अगुआ बनना उन्हें पसंद न था, किंतु इस विषय में वह इतने उत्सुक थे कि समाचार-पत्रों में अपने मंतव्यों को प्रकट करने से न रुक सके। इससे उनका उद्देश्य केवल यह था कि कोई मुझसे अधिक अनुभवशील, कुशल और प्रतिभाशाली व्यक्ति इस प्रश्न को अपने हाथ में ले ले।

एक दिन वह कई सहृदय मित्रों के साथ बैठे हुए इसी विषय पर बातचीत कर रहे थे कि एक सज्जन ने कहा–यदि आपका विचार है कि यह प्रथा कानून से बंद की जा सकती है तो आपकी भ्रांति है। इस विष-युक्त पौधे की जड़ें मनुष्य के हृदय में हैं और जब तक इसे हृदय से खोदकर न निकालिएगा, यह इसी प्रकार फूलता-फलता रहेगा।

प्रेमशंकर–कानून में कुछ-न-कुछ सुधार तो हो ही सकता है।

इस पर उन महाशयों ने जोर देकर कहा–कदापि नहीं। बल्कि स्वार्थ प्रत्यक्ष रूप से स्फुटित होने का अवसर न पाकर और भी भयंकर रूप धारण कर लेगा।

इस पर एक किसान, बंटवारे की दरख्वास्त करके कचहरी से लौटा था और जो आज यहीं ठहरा हुआ था, बोल उठा–कहूं कुछ न होई। हम तो आपे लोगन के पीछे-पीछे चलित हैं। जब आपे लोगन में भाई-भाई में निबाह नाहीं होय सकत है तो हमार कस होई? आपका नारायन सब कुछ दिहे हैं, मुदा आपे अपने भाई से अलग रहत हो।

ये उच्छृंखल शब्द प्रेमशंकर के हृदय में तीर के समान चुभ गए। सिर झुका लिया। मुखश्री मलीन हो गई। मित्रों ने कृषक की ओर तिरस्कारपूर्ण नेत्रों से देखा। यह एक जगत्-व्यापार था। यहां व्यक्तियों को खींचना नितांत न्याय-विरुद्ध था, पर वह अक्खड़ देहाती सभ्यता के रहस्यों को क्या जाने। मुंह में जो बात आई, कह डाली। एक महाशय ने कहा–निरे गंवार हो, जरा भी तमीज नहीं।

दूसरे महाशय बोले–अगर इतना ही ज्ञान होता तो देहाती क्यों कहलाते? न अवसर का ध्यान, न औचित्य का विचार, जो कुछ ऊटपटांग मुंह में आया, बक डाला।

बेचारे किसान को अब मालूम हुआ कि मुंह से कोई अनुचित बात निकल गई। लज्जित होकर बोला–साहब, मैं गंवार मनई। ई सब फेरफार का जानों, जौन कुछ भूल-चूक हो गई होय माफ कीन जाय।

प्रेमशंकर–नहीं-नहीं, तुमने कोई अनुचित बात नहीं कही। मेरे लिए इस स्पष्ट कथन की आवश्यकता थी। तुमने अच्छी शिक्षा दे दी। कोई संदेह नहीं कि शिक्षित जनों में भी विरोध और वैमनस्य का उतना ही प्रकोप है जितना अशिक्षित लोगों में है और मैं स्वयं इस विषय में दोषी हूं। मुझे किसी को समझाने का अधिकार नहीं।

मित्रगण कुछ देर तक और बैठे रहे, लेकिन प्रेमशंकर कुछ ऐसे दब गए कि फिर जबान ही न खुली। अंत में सब एक-एक करके चले गए।

सूर्यास्त हो रहा था। प्रेमशंकर घोर चिंता की दशा में अपने झोंपड़े के सामने टहल रहे थे। उनके सामने अब यह समस्या थी कि ज्ञानशंकर से कैसे मेल हो। वह जितना ही विचार करते थे, उतना ही अपने को दोषी पाते थे। यह सब मेरी ही करनी है। जब असामियों से उनकी लड़ाई ठनी हुई थी तो मुझे उचित नहीं था कि असामियों का पक्ष ग्रहण करता। माना कि ज्ञानशंकर का अत्याचार था। ऐसी दशा में मुझे अलग रहना चाहिए था या उन्हें भ्रातृवत् समझाना चाहिए था। यह तो मुझसे न हुआ। उल्टे उन्हीं से लड़ बैठा। माना कि उनके और मेरे सिद्धांतों में घोर अंतर है। लेकिन सिद्धांत-विरोध परस्पर भ्रातृ-प्रेम को क्यों दूषित करे? यह भी माना कि जब से मैं आया हूं उन्होंने मेरी अवहेलना ही की है, यहां तक कि मुझे पत्नी-प्रेम से भी वंचित कर दिया। पर मैंने भी तो कभी उनसे मिले रहने की, उनके कटु व्यवहार को भूल जाने की, उनकी अप्रिय बातों को सह लेने की चेष्टा नहीं की। वह मुझसे एक अंगुल खिसके तो मैं उनसे हाथ भर हट गया। सिद्धांतप्रियता का यह आशय नहीं है कि आत्मीयजनों से विरोध कर लिया जाय। सिद्धांतों को मनुष्यों से अधिक मान्य समझना अक्षम्य है। उनके हृदय को अपनी तरफ से साफ करने का यह अच्छा अवसर है।

संध्या हो गई थी। ज्ञानशंकर अपने सुरम्य बंगले के सामने मौलवी ईजाद हुसेन के साथ बैठे बातें कर रहे थे। मौलवी साहब ने सरकारी नौकरी में मनोनुकूल सफलता न देख इस्तीफा दे दिया था और कुछ दिनों से जाति-सेवा में लीन हो गए थे। उन्होंने 'अंजुमन इत्तहाद' नाम की एक संस्था खोल ली थी, जिसका उद्देश्य हिन्दू-मुसलमानों में परस्पर प्रेम और मैत्री बढ़ाना था। यह संस्था चंदे से चलती थी और इसी हेतु से सैयद साहब यहां पधारे थे।

ज्ञानशंकर ने कहा—मुझे दिन-दिन तजरबा हो रहा है कि जमींदारी करने के लिए बड़ी सख्ती की जरूरत है। जमींदार नजर-नजराना, हरी-बेगार, डांड़-बांध सब कुछ छोड़ सकता है, लेकिन लगान तो नहीं छोड़ सकता है। वह भी अब बगैर अदालती कार्रवाई के नहीं वसूल होता।

ईजाद हुसेन—जनाब बजा फरमाते हैं, लेकिन गुलाम ने ऐसे रईसों को भी देखा है जो कभी अदालत के दरवाजे तक न गए। जहां किसी आदमी ने सरकशी की, उसकी मरम्मत कर दी और लुत्फ यह कि कभी डंडे या हंटर से काम नहीं लिया। गर्मी में झुलसती हुई धूप और जाड़े में बर्फ का-सा ठंडा पानी। बस, इसी लटके से उनकी सारी मालगुजारी वसूल हो जाती है। मई और जून की धूप जरा देर सिर पर लगी और असामी ने कमर ढीली की।

ज्ञानशंकर—मालूम नहीं ऐसे असामी कहां हैं। यहां तो ऐसे बदमाशों से पाला पड़ा है जो बात-बात पर अदालत का रास्ता लेते हैं। मेरे ही मौजे को देखिए, कैसा तूफान उठ गया और महज चरावर को रोक देने के पीछे।

इतने में डाक्टर इर्फान अली बार-एट-ला की मोटर आ पहुंची। ज्ञानशंकर ने उनका स्वागत किया।

डाक्टर—अबकी आपने बड़ा इंतजार कराया। मैं तो आपसे मिलने के लिए गोरखपुर आने वाला था।

ज्ञानशंकर—रियासत का काम इतना फैला हुआ है कि कितना ही समेटूं नहीं सिमटता।

डाक्टर—आपको मालूम तो होगा यहां यूनिवर्सिटी में इकनोमिक्स की जगह खाली है।

अब तो आप सिंडिकेट में आ गए हैं।

ज्ञान–जी हां, सिंडिकेट में तो लोगों ने जबर्दस्ती धर घसीटा, लेकिन यहां रियासत के कामों से फुर्सत कहां कि इधर तवज्जह करूं? कुछ कागजात गए थे, लेकिन मुझे उनके देखने का मौका ही न मिला।

डाक्टर–डाक्टर दास के चले जाने से यह जगह खाली हो गई है और मैं इसका उम्मीदवार हूं।

ज्ञानशंकर ने आश्चर्य से कहा–आप !

डाक्टर–जी हां, अब मैंने यही फैसला किया है। मेरी तबीयत रोज-ब-रोज वकालत से बेजार होती जाती है।

ज्ञान–आखिर क्यों? आपकी वकालत तो तीन-चार हजार से कम की नहीं। हुक्काम की खुशामद तो नहीं खलती? या कांसेंस (आत्मा) का खयाल है?

डाक्टर–जी नहीं, सिर्फ इसलिए कि इस पेशे में इंसान की तबीयत बेजा जरपरस्ती की तरफ मायल हो जाती है। कोई वकील कितना ही हकशिनास क्यों न हो, उसे हमदर्दी और इंसानियत से वह खुशी नहीं होती जो एक शरीफ आदमी को होनी चाहिए। इसके खिलाफ आपस की लड़ाइयों और दगाबाजियों से एक खास दिलचस्पी हो जाती है, जो लतीफ जजबात से खाली है। मैं महीनों से इसी कशमकश में पड़ा हुआ हूं और अब यही इरादा है कि जितनी जल्द मुमकिन हो इस पेशे को सलाम करूं।

यही बातें हो रही थीं कि फैजू और कर्तारसिंह ने सामने आकर सलाम किया।

ज्ञानशंकर ने पूछा–कहो खैरियत तो है?

फैजू–हुजूर, खैरियत क्या कहें ! रात को किसी ने खां साहब को मार डाला। ईजाद हुसेन और इर्फान अली चौंक पड़े, लेकिन ज्ञानशंकर लेश-मात्र भी विचलित न हुए, मानो उन्हें यह बात पहले ही मालूम थी। बोले–तुम लोग कहां थे? कहीं सैर-सपाटे करने चल दिए थे या अफीम की पिनक में पड़े हुए थे?

फैजू–हुजूर, थे तो चौपाल में ही, पर किसी को क्या खबर कि यह वारदात होगी?

ज्ञान–क्यों, खबर क्यों न थी? जो आदमी सांप को पैरों से कुचल रहा हो उसे यह मालूम होना चाहिए कि सांप के दांत जहरीले होते हैं। जमींदारी करना सांप को नचाना है। वह संपेरा अनाड़ी है जो सांप को काटने का मौका दे । खैर, कातिल का कुछ पता चला?

फैजू–जी हां, वही मनोहर अहीर है। उसने सबेरे ही थाने में जाकर एकबाल कर दिया। दोपहर को थानेदार साहब आ गए और तहकीकात कर रहे हैं। खां साहब का तार हुजूर को मिल गया था। जिस दिन खां साहब ने चरावर को रोकने का हुक्म दिया। उसी दिन गांव वालों में एका हो गया। खां साहब ने घबड़ाकर हुजूर को तार दिया। मैं तीन बजे तारघर से लौटा तो गांव में मुकदमा लड़ने के लिए चंदे का गुट्ट हो रहा था। रात को यह वारदात हो गई।

अकस्मात् प्रेमशंकर लाला प्रभाशंकर के साथ आ गए। ज्ञानशंकर को देखते ही प्रेमशंकर टूटकर उनसे गले मिले और पूछा–कब आए? सब कुशल है न?

ज्ञानशंकर ने रुखाई से उत्तर दिया–कुशल का हाल इन आदमियों से पूछिए जो अभी लखनपुर से आए हैं। गांव वालों ने गौस खां का काम तमाम कर दिया।

प्रेमशंकर स्तंभित हो गए। मुंह से निकला–अरे ! यह कब?

ज्ञान—आज ही रात को।

प्रेम—बात क्या थी?

ज्ञान—गांव वालों की बदमाशी और सरकशी के सिवा और क्या बात हो सकती है। मैंने चरावर को रोकने का हुक्म दिया था। वहां एक बाग लगाने का विचार था। बस, इतना बहाना पाकर सब खून-खच्चर पर उद्यत हो गए।

प्रेम—कातिल का कुछ पता चला?

ज्ञान—अभी तो मनोहर ने थाने में जाकर इकबाल किया है।

प्रेम—मनोहर तो बड़ा सीधा, गंभीर पुरुष है।

ज्ञान—(व्यंग से) जी हां, देवता था।

डाक्टर साहब ने मार्मिक भाव से देखकर कहा—यह किसी एक आदमी का फेल हरगिज नहीं है।

ज्ञान—यही मेरा भी खयाल है। मनोहर की इतनी मजाल नहीं है कि वह अकेला यह काम कर सके। निस्संदेह सारा गांव मिला हुआ है। मनोहर को सबने तबेले का बंदर बना रखा है। देखिए थानेदार की तहकीकात का क्या नतीजा होता है। कुछ भी हो, अब मैं इस मौजे को बीरान करके ही छोड़ूंगा। क्यों फैजू, तुम्हारा क्या खयाल है? मनोहर अकेले यह काम कर सकता है?

फैजू—नहीं हुजूर, साठ बरस का बुड्ढा भला क्या खाकर हिम्मत करता ! और कोई चाहे उसका मददगार न हो, लेकिन उसका लड़का तो जरूर ही साथ रहा होगा।

कर्तार—वह बुड्ढा है तो क्या, बड़े जीवट का आदमी है। उसके सिवा गांव में किसी का इतना कलेजा नहीं है।

ज्ञान—तुम गंवार आदमी हो, इन बातों को क्या समझो। तुम्हें तो भंग का गोला चाहिए। डाक्टर साहब, मुआमले में मुद्दई तो सरकार होगी, लेकिन आप भी मेरी तरफ से पैरवी कीजिएगा। मैंने फैसला कर लिया है कि गांव के किसी बालिग आदमी को बेदाग न छोड़ूंगा।

प्रभाशंकर ने दबी जबान से कहा—अगर तुम्हें विश्वास हो कि यह एक आदमी का काम है तो सारे गांव को समेटना उचित नहीं। ऐसा न हो कि गेंहू के साथ घुन भी पिस जाए।

ज्ञानशंकर क्रुद्ध होकर बोले—बहुत अच्छा हो अगर आप इस विषय में अपने सत्य और न्याय के नियमों का स्वांग न रचें। यह इन्हीं की बरकत है कि आज इन दुष्टों को इतना साहस हुआ है। आप मुझे साफ-साफ कहने पर मजबूर कर रहे हैं। ये सब आपके ही बल पर कूद रहे हैं। आपने प्रत्येक अवसर पर मेरे विपक्ष में उनकी सहायता की है, उनसे भाईचारा किया है। और उनके सिर पर हाथ रखने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। आपके इसी भ्रातृ-भाव ने उनके सिर फिरा दिए। मेरा भय उनके दिल से जाता रहा। आपके सिद्धांतों और विचारों का मैं आदर करता हूं, लेकिन आप कड़वी नीम को दूध से सींच रहे हैं और आशा करते हैं कि मीठे फल लगेंगे। ऐसे कुपात्रों के साथ ऊंचे नियमों का व्यवहार करना दीवाने के हाथ में मशाल दे देना है।

प्रेमशंकर ने फिर जबान न खोली और न सिर उठाया। लाला प्रभाशंकर को ये बातें ऐसी बुरी लगीं कि वह तुरंत उठकर चले गए। लेकिन प्रेमशंकर आत्म-परीक्षा में मौन मूर्तिवत् बैठे

रहे। दीन देहातियों के साथ साधारण सज्जनता का बर्ताव करने का परिणाम ऐसा भयंकर होगा यह एक बिलकुल नया अनुभव था। केवल एक आदमी की जान ही नहीं गई, वरन् और भी कितने ही प्राणों के बलिदान होने की आशंका थी। भगवान् उन गरीबों पर दया करो। मैंने सच्चे हृदय से उनकी सेवा नहीं की। द्वेष का भाव मुझे प्रेरित करता रहा। मैं ज्ञानशंकर को नीचा दिखाना चाहता था। यह समस्या उसी द्वेष भाव का दंड है। क्या एक लखनपुर ही अपने जमींदार के अत्याचार से पीड़ित था? ऐसा कौन-सा इलाका है जो जमींदार के हाथों रक्त के आंसू न बहा रहा हो। तो लखनपुर वालों के ही प्रति मेरी सहानुभूति क्यों इतनी प्रचंड हो गई और फिर ऐसे अत्याचार क्या इससे पहले न होते थे? यह तो आए दिन ही होता रहा था लेकिन कभी असामियों को चूं करने की हिम्मत न पड़ती थी। इस बार वह मार-काट पर उद्यत हो गए। इन शंकाओं का उन्हें एक ही उत्तर मिलता था और वही उस उत्तरदायित्व के भार को और गुरुत्तर बना देता था। हाय ! मैंने कितने प्राणों को अपनी ईर्ष्याग्नि के कुंड में झोंक दिया। अब मेरा कर्त्तव्य क्या है? क्या यह आग लगाकर दूर से खड़ा तमाशा देखूं? यह सर्वथा निंद्य है। अब तो इन अभागों की यथा-योग्य सहायता करनी पड़ेगी, चाहे ज्ञानशंकर को कितना ही बुरा लगे। इसके सिवा मेरे लिए कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

प्रेमशंकर इन्हीं विचारों में डूबे हुए थे कि मायाशंकर ने आकर कहा-चाचाजी, अम्मां कहती हैं अब तो बहुत देर हो गई, हाजीपुर कैसे जाइएगा? यहीं भोजन कर लीजिए और आज यहीं रह जाइए।

प्रेमशंकर शोकमय विचारों की तरंग में भूल गए कि अभी मुझे हाजीपुर लौटना है। माया को प्यार करके बोले-नहीं बेटा, मैं चला जाऊंगा, अभी ज्यादा रात नहीं गई है। यहां रह जाऊं, तो वहां बड़ा हर्ज होगा।

यह कहकर वह उठ खड़े हुए। ज्ञानशंकर की ओर करुण-नेत्रों से देखा और बिना कुछ कहे ही चले गए। ज्ञानशंकर ने उनकी तरफ ताका भी नहीं।

उनके जाने के बाद डाक्टर महोदय बोले-मैं तो इनकी बड़ी तारीफ सुना करता था, पर पहली ही मुलाकात में तबीयत आसूदा हो गई! कुछ क्रुद्ध से मालूम होते हैं।

ज्ञान-बड़े भई हैं, उनकी शान में क्या कहूं, कुछ दिनों अमेरिका क्या रह आए हैं गोया हक और इंसाफ का ठेका ले लिया है। हालांकि अभी तक अमेरिका में भी यह खयालात अमल के मैदान से कोसों दूर हैं। दुनिया में इन खयालों के चर्चे हमेशा रहे हैं और हमेशा रहेंगे। देखना सिर्फ यह है कि यह कहां तक अमल में लाए जा सकते हैं। मैं खुद इन वसूलों का कायल हूं, पर मेरे खयाल में अभी बहुत दिनों तक इस जमीन में यह बीज सरसब्ज नहीं हो सकता।

इसके बाद कुछ देर तक इस दुर्घटना के संबंध में बातचीत होती रही। जब डाक्टर साहब और ईजाद हुसेन चले गए तब ज्ञानशंकर घर में जाकर बोले-देखा, भाई साहब ने लखनपुर में क्या गुल खिलाया? अभी खबर आई है कि गौस खां को लोगों ने मार डाला। दोनों स्त्रियां हक्की-बक्की होकर एक-दूसरे का मुंह ताकने लगीं।

ज्ञानशंकर ने फिर कहा-यह वर्षों से वहां जा-जाकर असामियों से जाने क्या कहते थे, न जाने क्या सिखाते थे, जिसका यह नतीजा निकला है। मैंने इनसे विनय की थी कि आप गंवारों को अधिक्ऱ सिर न चढ़ाएं। उन्होंने मुझे भी वचन दिया कि उनसे कोई संबंध न रखूंगा। लेकिन

अपने आगे किसी को समझते ही नहीं। मुझे भय है कि कहीं इस मामले में वह भी न फंस जाएं। पुलिस वाले एक ही कट्टर होते हैं। वह किसी न किसी मोटे असामी को जरूर फांसेंगे। गांव वालों पर जरा सख्ती की कि सब-के-सब खुल पड़ेंगे और सारा अपराध भाई साहब के सिर डाल देंगे।

श्रद्धा ने ज्ञानशंकर की ओर कातर नेत्रों से देखा और सिर झुका लिया। अपने मन के भावों को प्रकट न कर सकी। विद्या ने कहा–तुम थानेदार के पास क्यों नहीं चले जाते? जैसे बने, उन्हें राजी कर लो।

ज्ञान–हां, कुछ-न-कुछ तो करना ही पड़ेगा, लेकिन एक छोटे आदमी की खुशामद करना, उसके नखरे उठाना कितने अपमान की बात है ! भाई साहब को ऐसा न समझता था।

श्रद्धा ने सिर झुकाए हुए सरोष स्वर से कहा–पुलिस वाले उन पर जो अपराध लगाएं, वह ऐसे आदमी नहीं हैं कि गांव वालों को बहकाते फिरें, बल्कि अगर गांव वालों की नीयत पहले मालूम हो जाती तो यह नौबत ही न आती। तुम्हें थानेदार की खुशामद करने की जरूरत नहीं। वह अपनी रक्षा आप कर सकते हैं।

विद्या–मैं तुम्हें बराबर समझाती आती थी कि देहातियों से रार न बढ़ाओ। बिल्ली भी भागने की राह नहीं पाती तो शेर हो जाती है। लेकिन तुमने कभी कान ही न दिए।

ज्ञान–कैसी बेसिर-पैर की बातें करती हो? मैं इन टुकड़गंदे किसानों से दबता फिरूं? जमींदार न हुआ कोई चरकटा हुआ। उनकी मजाल थी कि मेरे मुकाबले में खड़े होते? हां, जब अपने घर में आग लगाने वाले मौजूद हों तो जो कुछ हो जाए थोड़ा है। मैं एक नहीं, सौ बार कहूंगा कि अगर भाई साहब ने इन्हें सिर न चढ़ाया होता तो आज इनके हौसले इतने न बढ़ते।

विद्या–(दबी जबान से) सारा शहर जिसकी पूजा करता है उसे तुम घर में आग लगाने वाला कहते हो?

ज्ञान–यही लोक-सम्मान तो इन सारे उपद्रवों का कारण है।

श्रद्धा और ज्यादा न सुन सकी। उठकर अपने कमरे में चली गई। तब ज्ञानशंकर ने कहा–मुझे तो इनके फंसने में जरा भी संदेह नहीं है।

विद्या–तुम अपनी ओर से उनके बचाने में कोई बात उठा न रखना, यह तुम्हारा धर्म है। आगे विधाता ने जो लिखा है वह तो होगा ही।

ज्ञान–भाभी की तबीयत का कुछ और ही रंग दिखाई देता है।

विद्या–तुम उनका स्वभाव जानते नहीं। वह चाहे दादाजी के साए से भी भागें पर उनके नाम पर जान देती हैं, हृदय से उनकी पूजा करती हैं।

ज्ञान–इधर भी चलती हैं, उधर भी।

विद्या–इधर लोक-लाज से चलती हैं, हृदय उधर ही है।

ज्ञान–तो फिर मुझे कोई और ही उपाय सोचना पड़ेगा।

विद्या–ईश्वर के लिए ऐसी बातें मुझसे न किया करो।

उनतीस

श्रद्धा की बातों से पहले तो ज्ञानशंकर को शंका हुई, लेकिन विचार करने पर यह शंका निवृत्त हो गई, क्योंकि इस मामले में प्रेमशंकर का अभियुक्त हो जाना अवश्यंभावी था। ऐसी अवस्था में श्रद्धा के निर्बल क्रोध से ज्ञानशंकर की कोई हानि न हो सकती थी।

ज्ञानशंकर ने निश्चय किया कि इस विषय में मुझे हाथ-पैर हिलाने की कोई जरूरत नहीं है। सारी व्यवस्था मेरे इच्छानुकूल है। थानेदार स्वार्थवश इस मामले को बढ़ाएगा, सारे गांव को फंसाने की चेष्टा करेगा और उसका सफल होना असंदिग्ध है। गांव में कितना ही एका हो, पर कोई-न-कोई मुखबिर निकल ही आएगा। थानेदार ने लखनपुर के जमींदारी दफ्तर की जांच-पड़ताल अवश्य ही की होगी। वहां मेरे ऐसे दो-चार पत्र अवश्य ही निकल आएंगे जिनसे गांव वालों के साथ भाई साहब की सहानुभूति और सदिच्छा सिद्ध हो सके। मैंने अपने कई पत्रों में गौस खां को लिखा है कि भाई साहब का यह व्यवहार मुझे पसंद नहीं। हां, एक बात हो सकती है। संभव है कि गांव वाले रिश्वत देकर अपना गला छुड़ा लें और थानेदार अकेले मनोहर का चालान करे। लेकिन ऐसे संगीन मामले में थानेदार को इतना साहस नहीं हो सकता। वह यथासाध्य इस घटना को महत्त्वपूर्ण सिद्ध करेगा। भाई साहब से अधिकारी वर्ग उनके निर्भय लोकवाद के कारण पहले से ही बदगुमान हो रहे हैं। सब-इंस्पेक्टर उन्हें इस षड्यंत्र का प्रेरक साबित करके अपना रंग जरूर जमायेगा। अभियोग सफल हो गया तो उसकी तरक्की भी होगी, पारितोषिक भी मिलेगा। गांव वाले कोई बड़ी रकम देने की सामर्थ्य नहीं रखते और थानेदार छोटी रकम के लिए अपनी आशाओं को मिट्टी में न मिलाएगा। बन्धु-विरोध का विचार मिथ्या है। संसार में सब अपने ही लिए जीते और मरते हैं, भावुकता के फेर में पड़कर अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारना हास्यजनक है।

ज्ञानशंकर का अनुमान अक्षरशः सत्य निकला। लखनपुर के प्रायः सभी बालिग आदमियों का चालान हुआ। बिसेसर साह को टैक्स की धमकी ने भेदिया बना दिया। जमींदारी दफ्तर का भी निरीक्षण हुआ। एक सप्ताह पीछे हाजीपुर में प्रेमशंकर की खाना-तलाशी हुई और वह हिरासत में ले लिए गए।

संध्या का समय था। ज्ञानशंकर मुन्नू को साथ लिए हवा खाने जा रहे थे कि डॉक्टर इर्फान अली ने आकर यह समाचार कहा। ज्ञानशंकर के रोएं खड़े हो गए और आंखों में आंसू भर आए। एक क्षण के लिए बंधु-प्रेम ने क्षुद्र भावों को दबा दिया। लेकिन ज्योंही जमानत का प्रश्न सामने आया, यह आवेग शांत हो गया। घर में खबर हुई तो कुहराम मच गया। श्रद्धा मूर्छित हो गई, बड़ी बहू तसल्ली देने आईं। मुन्नू भी भीतर चला गया और मां की गोद में सिर रख फूट-फूटकर रोने लगा।

प्रेमशंकर शहर से कुछ ऐसे अलग रहते थे कि उनका शहर के बड़े लोगों से बहुत कम परिचय था। वह रईसों से बहुत कम मिलते-जुलते थे। कुछ विद्वज्जनों ने पत्रों में उनके कृषि-संबंधी लेख अवश्य देखे थे और उनकी योग्यता के कायल थे, किंतु उन्हें झक्की समझते थे। उनके सच्चे शुभचिंतकों में अधिक्रांश कॉलेज के नवयुवक, दफ्तरों के कर्मचारी या देहातों के लोग थे। उनके हिरासत में आने की खबर पाते ही हजारों आदमी एकत्र हो गए और प्रेमशंकर के पीछे-पीछे पुलिस-स्टेशन तक गए, लेकिन उनमें कोई भी ऐसा न था, जो

जमानत देने का प्रयत्न कर सकता।

लाला प्रभाशंकर ने सुना तो उन्मत्त की भांति दौड़ते ज्ञानशंकर के पास जाकर बोले—बेटा, तुमने सुना ही होगा। कुल-मर्यादा मिट्टी में मिल गई। (रोकर) भैया की आत्मा को इस समय कितना दुःख हो रहा होगा। जिस मान-प्रतिष्ठा के लिए हमने जायदादें बर्बाद कर दीं वह आज नष्ट हो गई। हाय ! भैया जीवनपर्यंत कभी अदालत के द्वार पर नहीं गए। घर में चोरियां हुईं, लेकिन कभी थाने में इत्तिला तक न की कि तहकीकात होगी और पुलिस दरवाजे पर आएगी। आज उन्हीं का प्रिय पुत्र....। क्यों बेटा, जमानत न होगी?

ज्ञानशंकर इस कातर अधीरता पर रुष्ट होकर बोले—मालूम नहीं, हाकिमों की मर्जी पर है।

प्रभा—तो जाकर हाकिमों से मिलते क्यों नहीं? कुछ तुम्हें भी अपनी इज्जत की फ़िक्र है या नहीं?

ज्ञान—कहना बहुत आसान है, करना कठिन है।

प्रभा—भैया, कैसी बातें करते हो? यहां के हाकिमों में तुम्हारा कितना मान है? बड़े साहब तक तुम्हारी कितनी खातिर करते हैं? यह लोग किस दिन काम आएंगे? क्या इसके लिए कोई दूसरा अवसर आएगा?

ज्ञान—अगर आपका यह आशय है कि मैं जाकर हाकिमों की खुशामद करूं, उनसे रिआयत की याचना करूं तो यह मुझसे नहीं हो सकता। मैं उनके खोदे हुए गढ़े में नहीं गिरना चाहता। मैं किस दावे पर उनकी जमानत कर सकता हूं, जब मैं जानता हूं कि वह अपनी टेक नहीं छोड़ेंगे और मुझे भी अपने साथ ले डूबेंगे।

प्रभाशंकर ने लंबी सांस भरकर कहा—हे भगवान् ! यह भाई-भाइयों का हाल है। मुझे मालूम न था कि तुम्हारा हृदय इतना कठोर है। तुम्हारा सगा भाई आफत में पड़ा है और तुम्हारा कलेजा भी नहीं पसीजता। खैर, कोई चिंता नहीं। अगर मेरी सामर्थ्य से बाहर नहीं है तो मेरे भाई का प्यारा पुत्र मेरे सामने यों अपमानित न होने पाएगा।

ज्ञानशंकर को अपने चचा की दयार्द्रता पर क्रोध आ रहा था। वह समझते थे कि केवल मेरी अवहेलना करने कि लिए यह इतने प्रगल्भ हो रहे हैं। इनकी इच्छा है कि मुझे भी अधिकारियों की दृष्टि में गिरा दें। लेकिन प्रभाशंकर बनावटी भावों के मनुष्य न थे। वह कुल-प्रतिष्ठा पर अपने प्राण तक समर्पण कर सकते थे। उनमें वह गौरव-प्रेम था जो स्वयं उपवास करके आतिथ्य-सत्कार को अपना सौभाग्य समझता था, और जो अब, हा शोक ! इस देश से लुप्त हो गया है। धन उनके विचार में केवल मान-मर्यादा की रक्षा के लिए था, भोग-विलास और इंद्रिय-सेवा के लिए नहीं। उन्होंने तुरंत जाकर कपड़े पहने, चोगा पहना, अमामा बांधा और एक पुराने रईस के वेश में मैजिस्ट्रेट के पास जा पहुंचे। रात के आठ बज चुके थे, इसकी जरा भी परवाह न की। साहब के सामने उन्होंने जितनी दीनता प्रकट की, जितने विनीत शब्दों में अपनी संकट-कथा सुनाई, जितनी नीच खुशामद की, जिस भक्ति से हाथ बांधकर खड़े हो गए, अमामा उतारकर साहब के पैरों पर रख दिया और रोने लगे, अपने कुल-मर्यादा की जो गाथा गाई और उसकी राज-भक्ति के जो प्रमाण दिए उसे एक नवशिक्षित युवक अत्यंत लज्जाजनक ही नहीं; बल्कि हास्यास्पद समझता । लेकिन साहब पसीज गए। जमानत ले लेने का वादा किया, पर रात हो जाने के कारण उस वक्त कोई कार्रवाई न हो सकी। प्रभाशंकर यहां

से निराश लौटे। उनकी यह इच्छा कि प्रेमशंकर हिरासत में रात को न रहें, पूरी न हो सकी। रात-भर चिंता में पड़े हुए करवटें बदलते रहे। भैया की आत्मा को कितना कष्ट हो रहा होगा? कई बार उन्हें ऐसा धोखा हुआ कि भैया द्वार पर खड़े रो रहे हैं। हाय ! बेचारे प्रेमशंकर पर क्या बीत रही होगी। तंग, अंधेरी, दुर्गंधयुक्त कोठरी में पड़ा होगा, आंखों से आंसू न थमते होंगे। इस वक्त उससे कुछ न खाया गया होगा। वहां के सिपाही और चौकीदार उसे दिक कर रहे होंगे। मालूम नहीं, पुलिस वाले उसके साथ कैसा बर्ताव कर रहे हैं? न जाने उससे क्या कहलाना चाहते हों? इस विभाग में जाकर आदमी पशु हो जाता है। मेरा दयाशंकर पहले कैसा सुशील लड़का था, जब से पुलिस में गया है मिजाज ही और हो गया। अपनी स्त्री तक की बात नहीं पूछता। अगर मुझ पर कोई मामला आ पड़े तो मुझसे बिना रिश्वत लिए न रहे। प्रेमशंकर पुलिस वालों की बातों में न आता होगा और वह सब-के-सब उसे और भी कष्ट दे रहे होंगे। भैया इस पर जान देते थे, कितना प्यार करते थे, और आज इसकी यह दशा?

प्रात:काल प्रभाशंकर फिर मैजिस्ट्रेट के बंगले पर गए। मालूम हुआ कि साहब शिकार खेलने चले गए हैं। वहां से पुलिस के सुपरिंटेंडेंट के पास गए। यह महाशय अभी निद्रा में मग्न थे। उनसे दस बजे के पहले भेंट होने की संभावना न थी। बेचारे यहां से भी निराश हुए और तीसरे पहर तक बे-दाना, बे-पानी, हैरान-परेशान, इधर-उधर दौड़ते रहे। कभी इस दफ्तर में जाते, कभी उस दफ्तर में। उन्हें आश्चर्य होता था कि दफ्तरों के छोटे कर्मचारी क्यों इतने बेमुरौवत और निर्दय होते हैं। सीधी बात करनी तो दूर रही, खरी-खोटी सुनाने में भी संकोच नहीं करते। अंत में चार बजे मैजिस्ट्रेट ने जमानत मंजूर की, लेकिन हजार-दो हजार की नहीं, पूरे दस हजार की, और वह भी नकद। प्रभाशंकर का दिल बैठ गया ! एक बड़ी सांस लेकर वहां से उठे और धीरे-धीरे घर चले, मानो शरीर निर्जीव हो गया है। घर आकर वह चारपाई पर गिर पड़े और सोचने लगे, दस हजार का प्रबंध कैसे करूं? इतने रुपये मुझे विश्वास पर कौन देगा? तो क्या जायदाद रेहन रख दूं? हां, इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है। मगर घर वाले किसी तरह राजी न होंगे, घर में लड़ाई ठन जाएगी। बहुत देर तक इसी हैस-बैस में पड़े रहे। भोजन का समय आ पहुंचा। बड़ी बहू बुलाने आईं। प्रभाशंकर न उनकी ओर विनीत भाव से देखकर कहा—मुझे बिल्कुल भूख नहीं है।

बड़ी बहू—कैसी भूख है जो लगती ही नहीं? कल रात नहीं खाया, दिन को नहीं खाया, क्या इस चिंता में प्राण दे दोगे? जिन्हें चिंता होनी चाहिए, जो उनका हिस्सा उड़ाते हैं, उनके माथे पर तो बल तक नहीं है और तुम दाना-पानी छोड़े बैठे हो ! अपने साथ घर के प्राणियों को भी भूखों मार रहे हो। प्रभाशंकर ने सजल नेत्र होकर कहा, क्या करूं मेरी तो भूख-प्यास बंद-सी हो गई है ! कैसा सुशील, कितना कोमल प्रकृति, कितना शांत-चित्त लड़का है। उसकी सूरत मेरी आंखों के सामने फिर रही है। भोजन कैसे करूं? विदेश में था तो भूल गए थे, उसे खो बैठे थे, पर खोए रत्न को पाने के बाद उसे चोरों के हाथ में देखकर सब्र नहीं होता।

बड़ी बहू—लड़का तो ऐसा है कि भगवान् सबको दें। बिल्कुल वही लड़कपन का स्वभाव है, वही भोलापन, वही मीठी बातें, वही प्रेम। देखकर छाती फूल उठती है। घमंड तो छू तक नहीं गया। पर दाना-पानी छोड़ने से तो काम न चलेगा, चलो, कुछ थोड़ा-सा खा लो !

प्रभाशंकर—दस हजार नकद जमानत मांगी गई है।

बड़ी बहू—ज्ञानू से कहते क्यों नहीं कि मीठा-मीठा गप्प, कड़वा-कड़वा थू। प्रेमू का

आधा नफा क्या श्रद्धा के भोजन-वस्त्रों में ही खर्च हो जाता है?

प्रभाशंकर–उससे क्या कहूं, सुने भी? वह पश्छिमी सभ्यता का मारा हुआ है, जो लड़के को बालिग होते ही माता-पिता से अलग कर देती है। उसने वह शिक्षा पाई है जिसका मूलतत्त्व स्वार्थ है। उसमें अब दया, विनय, सौजन्य कुछ भी नहीं रहा। वह अब केवल अपनी इच्छाओं का, इंद्रियों का दास है।

बड़ी बहू–तो तुम इतने रुपयों का क्या बंदोबस्त करोगे?

प्रभाशंकर–क्या कहूं, किसी से ऋण लेना पड़ेगा।

बड़ी बहू–ऐसा जान पड़ता है कि थोड़ा-सा हिस्सा जो बचा हुआ है उसे भी अपने सामने ही ठिकाने लगा दोगे। यह तो कभी नहीं देखा कि जो रुपये एक बार लिए गए वह फिर दिए गए हों। बस, जमीन के ही माथे जाती है।

प्रभाशंकर–जमीन मेरी गुलाम है, मैं जमीन का गुलाम नहीं हूं।

बड़ी बहू–मैं कर्ज नहीं लेने दूंगी। जाने कैसा पड़े, कैसा न पड़े। अंत में सब बोझ तो हमारे ही सिर पड़ेगा। लड़कों को कहीं बैठने का ठांव भी न रहेगा।

प्रभाशंकर ने पत्नी की ओर कठोर दृष्टि से देखकर कहा–मैं तुमसे सलाह नहीं लेता हूं और न तुमको इसका अधिकारी समझता हूं। तुम उपकार को भूल जाओ, मैं नहीं भूल सकता, मेरा खून सफेद नहीं है। लड़कों की तकदीर में आराम लिखा होगा, आराम करेंगे, तकलीफ लिखी होगी, तकलीफ भोगेंगे। मैं उनकी तकदीर नहीं हूं। आज दयाशंकर पर कोई बात आ पड़े, तो गहने बेच डालने में भी किसी को इंकार न होगा। मैं प्रेमू को दयाशंकर से जौ भर भी कम नहीं समझता।

बड़ी बहू ने फिर भोजन करने के लिए अनुरोध किया और प्रभाशंकर फिर नहीं-नहीं करने लगे। अंत में उसने कहा–आज कद्दू के कबाब बने हैं। मैं जानती कि तुम न खाओगे तो क्यों बनवाती?

प्रभाशंकर की उदासीनता लुप्त हो गई। उत्सुक होकर बोले–किसने बनाए हैं।

बड़ी बहू–बहू ने।

प्रभा–अच्छा तो थाली परसाओ। भूख तो नहीं है, पर दो-चार कौर खा ही लूंगा।

भोजन के पश्चात् प्रभाशंकर फिर उसी चिंता में मग्न हुए। रुपये कहां से आएं? बेचारे प्रेमशंकर को आज फिर हिरासत में रात काटनी पड़ी। बड़ी बहू ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि मैं कर्ज न लेने दूंगी और यहां कर्ज के सिवा और कोई तदवीर ही न थी। आज लाला जी फिर सारी रात जागते रहे। उन्होंने निश्चय कर लिया कि घर वाले चाहे जितना विरोध करें, पर मैं अपना कर्त्तव्य अवश्य पूरा करूंगा। भोर होते ही वह सेठ दीनानाथ के पास जा पहुंचे और अपनी विपत्ति-कथा कह सुनाई। सेठजी से उनका पुराना व्यवहार था। उन्हीं की बदौलत सेठजी जमींदार हो गए थे। मामला करने पर राजी हो गए। लिखा-पढ़ी हुई और दस बजते-बजते प्रभाशंकर के हाथों में दस हजार की थैली आ गई। वह ऐसे प्रसन्न थे मानो कहीं गड़ा हुआ धन मिल गया हो। गद्‌गद होकर बोले–सेठजी, किन शब्दों में आपको धन्यवाद दूं, आपने मेरे कुल की मर्यादा रख ली। भैया की आत्मा स्वर्ग में आपका यश गाएगी।

यहां से वह सीधे कचहरी गए और जमानत के रुपये दाखिल कर दिए। इस समय उनका हृदय ऐसा प्रफुल्लित था जैसे कोई बालक मेला देखने जा रहा हो। इस कल्पना से उनका कलेजा

उछल पड़ता था, कि भैया मेरी भक्ति पर कितने मुग्ध हो रहे होंगे !

ग्यारह बजे का समय था। मजिस्ट्रेट के इजलास पर लखनपुर के अभियुक्त हाथों में हथकड़ियां पहने खड़े थे। शहर के सहस्रों मनुष्य इन विचित्र जीवधारियों को देखने के लिए एकत्र हो गए थे। सभी मनोहर को एक निगाह देखने के लिए उत्सुक हो रहे थे। कोई उसे धिक्कारता था, कोई कहता था, अच्छा किया। अत्याचारियों के साथ ऐसा ही करना चाहिए। सामने एक वृक्ष के नीचे बिलासी मन मारे बैठी हुई थी। बलराज के चेहरे पर निर्भयता झलक रही थी। डपटसिंह और दुखरन भगत चिंतित दीख पड़ते थे। कादिर खां धैर्य की मूर्ति बने हुए थे। लेकिन मनोहर लज्जा और पश्चात्ताप से उद्विग्न हो रहा था। वह अपने साथियों से आंख न मिला सकता था। मेरी ही बदौलत गांव पर यह आफत आई है, यह खयाल उसके चित्त से एक क्षण के लिए भी न उतरता था। अभियुक्तों से जरा हटकर बिसेसर साह खड़े थे–ग्लानि की सजीव मूर्ति बने। पुलिस के कर्मचारी उन्हें इस प्रकार घेरे थे, जैसे किसी मदारी को बालक-वृंद घेरे रहते हैं। सबसे पीछे प्रेमशंकर थे, शांत, गंभीर और अदम्य। मैजिस्ट्रेट ने सूचना दी–प्रेमशंकर जमानत पर रिहा किये गए।

प्रेमशंकर ने सामने आकर कहा–मैं इस दया-दृष्टि के लिए आपका अनुगृहीत हूं, लेकिन जब मेरे ये निरपराध भाई बेड़ियां पहने खड़े हैं तो मैं उनका साथ छोड़ना उचित नहीं समझता।

अदालत में हजारों ही आदमी खड़े थे। सब लोग प्रेमशंकर को विस्मित होकर देखने लगे। प्रभाशंकर करुणा से गद्‌गद होकर बोले–बेटा, मुझ पर दया करो। कुछ मेरी दौड़-धूप, कुछ अपनी कुल-मर्यादा और कुछ अपने संबंधियों के शोक-विलाप का ध्यान करो। तुम्हारे इस निश्चय से मेरा हृदय फटा जाता है।

प्रेमशंकर ने आंखों में आंसू भरे हुए कहा–चाचाजी, मैं आपके पितृवत्-प्रेम और सदिच्छा का हृदय से अनुगृहीत हूं। मुझे आज ज्ञात हुआ कि मानव-हृदय कितना पवित्र, कितना उदार, कितना वात्सल्यमय हो सकता है। पर मेरा हाथ छूटने से इन बेचारों की हिम्मत टूट जाएगी, ये सब हताश हो जाएंगे। इसलिए मेरा इनके साथ रहना परमावश्यक है। मुझे यहां कोई कष्ट नहीं है। मैं परमात्मा को धन्यवाद देता हूं कि उसने मुझे इन दीनों को तस्कीन और तसल्ली देने का अवसर प्रदान किया। मेरी आपसे एक और विनती है। मेरे लिए वकील की जरूरत नहीं है। मैं अपनी निर्दोषता स्वयं सिद्ध कर सकता हूं। हां, यदि हो सके तो आप इन बेजबानों के लिए कोई वकील ठीक कर लीजिएगा, नहीं तो संभव है कि इनके ऊपर अन्याय हो जाए।

लाला प्रभाशंकर हतोत्साह होकर इजलास के कमरे से बाहर निकल आए।

तीस

इस मुकदमे ने सारे शहर में हलचल मचा दी। जहां देखिए, यही चर्चा थी। सभी लोग प्रेमशंकर के आत्म-बलिदान की प्रशंसा सौ-सौ मुंह से कर रहे थे।

यद्यपि प्रेमशंकर ने स्पष्ट कह दिया था कि मेरे लिए किसी वकील की जरूरत नहीं है, पर लाला प्रभाशंकर का जी न माना। उन्हें भय था कि वकील के बिना काम बिगड़ जाएगा।

नहीं, यह कदापि नहीं हो सकता। कहीं मामला बिगड़ गया तो लोग यही कहेंगे कि लोभ के मारे वकील नहीं किया, उसी का फल है। अपने मन में भी यही पछतावा होगा। अतएव वह सारे शहर के नामी वकीलों के पास गए। लेकिन कोई भी इस मुकदमे की पैरवी करने पर तैयार न हुआ। किसी ने कहा—मुझे अवकाश नहीं है, किसी ने कोई और बहाना करके टाल दिया। सबको विश्वास था कि अधिकारी वर्ग प्रेमशंकर से कुपित हो रहे हैं, उनकी वकालत करना स्वार्थ-नीति के विरुद्ध है। प्रभाशंकर का यह प्रयास सफल न हुआ तो उन्होंने अन्य अभियुक्तों के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया। उनकी सहानुभूति अपने परिवार तक ही सीमित थी।

अभियोग तैयार हो गया और मैजिस्ट्रेट के इजलास में पेशियां होने लगीं। थानेदार का बयान हुआ, फैजू का बयान हुआ, तहसीलदार, चपरासियों और चौकीदारों के इजहार लिए गए। आठवें दिन ज्ञानशंकर इजलास के सामने आकर खड़े हुए। प्रभाशंकर को ऐसा दुःख हुआ कि वह कमरे के बाहर चले गए और एक वृक्ष के नीचे बैठकर रोने लगे। सगे भाइयों में यह वैमनस्य! पुलिस का पक्ष सिद्ध करने के लिए एक भाई दूसरे भाई के विरुद्ध साक्षी बने! दर्शकों को भी कौतूहल हो रहा था कि देखें इनका क्या बयान होता है। सब टकटकी लगाए उनकी ओर ताक रहे थे। पुलिस को विश्वास था कि इनका बयान प्रेमशंकर के लिए ब्रह्मफांस बन जाएगा, लेकिन उनको और उनसे अधिक दर्शकों को कितना विस्मय हुआ जब ज्ञानशंकर ने लखनपुर वालों पर अपने दिल का बुखार निकाला, प्रेमशंकर का नाम तक न लिया।

सरकारी वकील ने पूछा—आपको मालूम है कि प्रेमशंकर उस गांव में अक्सर आया-जाया करते थे?

ज्ञान—उनका उस गांव में आधा हिस्सा है।

वकील—आप जानते हैं कि जब इंस्पेक्टर जनरल पुलिस का दौरा हुआ था तब प्रेमशंकर ने लखनपुर वालों की बेगार बंद करने की कोशिश की थी और तहसीलदार से लड़ने पर आमदा हो गए थे?

ज्ञान—मुझे इसकी खबर नहीं।

वकील—आप यह तो जानते ही हैं कि जब आपने बेशी लगान का दावा किया था तब प्रेमशंकर ने गांव वालों को पांच सौ रुपये मुकदमे की पैरवी करने के लिए दिए थे?

ज्ञान—मुझे इस विषय में कुछ नहीं मालूम है।

ज्ञानशंकर की गवाही हो गई। सरकारी वकील का मुंह लटक गया। लेकिन दर्शकगण एक स्वर से कहने लगे—भाई फिर भी भाई ही है, चाहे एक दूसरे के खून का प्यासा ही क्यों न हो।

इसके बाद मिस्टर ज्वालासिंह इजलास पर आए। उन्होंने कहा—मैं यहां कई साल तक हाकिम बना रहा। लखनपुर मेरे ही इलाके में था। कई बार वहां दौरा करने गया। याद नहीं आता कि वहां गांव वालों से रसद या बेगार के बारे में उससे ज्यादा झंझट हुआ हो जितना दूसरे गांव में होता है। मेरे इजलास में एक बार बाबू ज्ञानशंकर ने इजाफा लगान का दावा किया था, लेकिन मैंने उसे खारिज कर दिया था।

सरकारी वकील—आपको मालूम है कि उस मामले की पैरवी के लिए प्रेमशंकर ने लखनपुर वालों को पांच सौ रुपये दिए थे।

ज्वालासिंह—मालूम है। लेकिन जहां तक मैं समझता था, उनको यह रुपये किसी दूसरे आदमी ने गांव वालों की मदद के लिए दिए थे।

वकील—आपको यह तो मालूम ही होगा कि प्रेमशंकर की उस गांव में बहुत आमदरफ्त रहती थी?

ज्वाला—हां, वह ताऊन या दूसरी बीमारियों अवसर के पर अक्सर वहां जाते थे।

यह गवाही भी पूरी हो गई। सरकारी वकील के सभी प्रश्न व्यर्थ सिद्ध हुए।

तब बिसेसर साह इजलास पर आए। उनका बयान बहुत विस्तृत, क्रमबद्ध और सारगर्भित था, मानो किसी उपन्यासकार ने इस परिस्थिति की कल्पनापूर्ण रचना की हो। सबको आश्चर्य हो रहा था कि अपढ़ गंवार में इतना वाक्-चातुर्य कहां से आ गया? उसके घटना-प्रकाश में इतनी वास्तविकता का रंग था कि उस पर विश्वास न करना कठिन था। गौस खां के साथ गांव वालों का शत्रुभाव, बेगार के अवसरों पर उनसे हुज्जत और तकरार, चरावर को रोक देने पर गांव वालों का उत्तेजित हो जाना, रात को सब आदमियों का मिलकर गौस खां का वध करने की तदवीरें सोचना, इन सब बातों की अत्यंत विशद विवेचना की गई थी। मुख्यत: षड्यंत्र-रचना का वर्णन ऐसा मूर्तिमान और मार्मिक था कि उस पर चाणक्य भी मुग्ध हो जाता। रात को नौ बजे मनोहर ने आकर कादिर खां से कहा—बैठे क्या हो? चरावर रोक दी गई, चुप लगाने से काम न चलेगा, इसका कुछ उपाय करो। कादिर खां चौकी पर बैठे नमाज पढ़ने के लिए वजू कर रहे थे, बोले—बैठ जाओ, अकेले हम-तुम क्या बना लेंगे? जब मुसल्लम गांव की सय हो तभी कुछ हो सकता है, नहीं तो इसी तरह कारिंदा हमको दबाता जाएगा। एक दिन खेत से भी बेदखल कर देगा, जाके दुखरन भगत को बुला लाओ। मनोहर दुखरन के घर गए। मैं भी मनोहर के साथ गया। दुखरन ने कहा—मेरे पैर में कांटा लग गया है, मैं चल नहीं सकता। खां साहब को यहीं बुला लाओ। मैं जाकर कादिर खां को बुला लाया। मनोहर, डपटसिंह और कल्लू को बुला लाए। कादिर खां ने कहा—हम लोग गंवार हैं, अपने मन से कोई बातें करेंगे तो न जाने चित्त पड़े या पट, चलकर बाबू प्रेमशंकर से सलाह लो। डपटसिंह बोले, उनके पास जाने की क्या जरूरत है? मैं जाकर उन्हें बुला लाऊंगा। दूसरे दिन सांझ को बाबू प्रेमशंकर इक्के पर सवार होकर आए। मैं दुकान बढ़ा रहा था। मनोहर ने आकर कहा—चलो, बाबू साहब आए हैं। मैं मनोहर के साथ कादिर के घर गया। प्रेमशंकर ने कहा—ज्ञान बाबू मेरे भाई हैं तो क्या, ऐसे भाई की गर्दन काट लेनी चाहिए। कादिर ने कहा—हमारी उनसे कोई दुश्मनी नहीं है, हमारा बैर तो गौस खां से है। इस हत्यारे ने इस गांव में हम लोगों का रहना मुश्किल कर दिया है। अब आप बताइए, हम क्या करें? मनोहर ने कहा, यह बेइज्जती नहीं सही जाती। प्रेमशंकर बोले—मर्द होकर के इतना अपमान क्यों सहते हो? एक हाथ में तो काम तमाम होता है। कादिर खां ने कहा—कर तो डालें, पर सारा गांव बंध जाएगा। प्रेमशंकर बोले—ऐसी नादानी क्यों करो? सब मिलकर नाम किसी एक आदमी का ले लो। अकेले आदमी का यह काम भी नहीं है। तीन-तीन प्यादे हैं। गौस खां खुद बलवान आदमी है। कादिर खां बोले—जो कहीं सारा गांव फंस जाए तो? प्रेमशंकर ने कहा—ऐसा क्या अंधेर है? वकील लोग किस मरज की दवा हैं? इसी बीच में मैं खाने घर चला आया। प्रेमशंकर भी रात को ही इक्के पर लौट गए। रात को बारह-एक बजे मुझे कुछ खटका हुआ। घर के चारों ओर घूनमे लगा कि इतने में कई आदमी जाते दिखाई दिए। मैं समझ गया कि हमारे ही साथी हैं। कादिर का नाम लेकर पुकारा। कादिर ने कहा—सामने से हट जाओ, टोंक मत मारो, चुपके से जाकर पड़ रहो। कादिर खां से अब न रहा गया। बिसेसर साह की ओर कठोर नेत्रों से देखकर कहा—बिसेसर, ऊपर अल्लाह है, कुछ उसका भी डर है?

सरकारी वकील ने कहा—चुप रहो, नहीं तो गवाह पर बेजा दबाव डालने का दूसरा दफा लग जाएगा।

संध्या समय ये लोग हिरासत में बैठे हुए इधर-उधर की बातें कर रहे थे। मनोहर अलग एक कोठरी में रखा गया था। कादिर ने प्रेमशंकर से कहा—मालिक, आप तो हक-नाहक इस आफत में फंसे। हम लोग ऐसे अभागे हैं कि जो हमारी मदद करता है उस पर भी आंच आ जाती है। इतनी उमिर गुजर गई, सैकड़ों पढ़े-लिखे आदमियों को देखा, पर आपके सिवा और कोई ऐसा न मिला, जिसने हमारी गर्दन पर छुरी न चलाई हो। विद्या की सारी दुनिया बड़ाई करती है। हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि विद्या पढ़कर आदमी और भी छली-कपटी हो जाता है। वह गरीबों का गला रेतना सिखा देती है। आपको अल्लाह ने सच्ची विद्या दी थी। उसके पीछे लोग आपके भी दुश्मन हो गए।

दुखरन—यह सब मनोहर की करनी है। गांव भर को डुबा दिया।

बलराज—न जाने उनके सिर कौन-सा भूत सवार हो गया? गुस्सा हमें भी आया था, लेकिन उनको तो जैसे नशा चढ़ जाय।

डपट—चरावर की बिसात ही क्या थी ! उसके पीछे यह तूफान !

कादिर—यारो ! ऐसी बातें न करो। बेचारे ने तुम लोगों के लिए, तुम्हारे हक की रक्षा करने के लिए यह सब कुछ किया। उसकी हिम्मत और जीवट की तारीफ तो नहीं करते और उसकी बुराई करते हो। हम सब-के-सब कायर हैं, वही एक मर्द है।

कल्लू—बिसेसर की मति ही उल्टी हो गई।

दुखरन—बयान क्या देता है जैसे कोई तोता पढ़ रहा है।

डपट—क्या जाने किसके लिए इतना डरता है? कोई आगे-पीछे भी तो नहीं है।

कल्लू—अगर यहां से छूटा तो बच्चू के मुंह में कालिख लगा के गांव भर में घुमाऊंगा।

डपट—ऐसा कंजूस है कि भिखमंगे को देखता है तो छछूंदर की तरह घर में जाकर दुबक जाता है।

कल्लू—सहुआइन उसकी भी नानी है। बिसेसर तो चाहे एक कौड़ी फेंक भी दे, वह अकेली दुकान पर रहती है तो गालियां छोड़ और कुछ नहीं देती। पैसे का सौदा लेने जाओ तो धेले का देती है । ऐसी डांड़ी मारती है कि कोई परख ही नहीं सकता।

बलराज—क्यों कादिर दादा, काले पानी जाकर लोग खेती-बारी करते हैं न?

कादिर—सुना है वहां ऊख बहुत होती है।

बलराज—तब तो चांदी है। खूब ऊख बोएंगे।

कल्लू—लेकिन दादा, तुम चौदह वर्ष थोड़े ही जियोगे? तुम्हारी कबर काले पानी में ही बनेगी।

कादिर—हम तो लौट आना चाहते हैं, जिसमें अपनी हड़ावर यहीं दफन हो। वहां तुम लोग न जाने मिट्टी की क्या गत करो?

दुखरन—भाई, मरने-जीने की बात मत करो। मनाओ कि भगवान् सबको जीता-जागता फिर अपने बाल-बच्चों में ले आए।

बलराज—कहते हैं वहां पानी बहुत लगता है।

दुखर—यह सब तुम्हारे बाप की करनी है। मारा, गांव-भर का सत्यानाश कर दिया।

अकस्मात् कमरे का द्वार खुला और जेल के दारोगा ने आकर कहा—बाबू प्रेमशंकर, आपके ऊपर से सरकार ने मुकदमा उठा लिया। आप बरी हो गए। आपके घर वाले बाहर खड़े हैं।

प्रेमशंकर को ग्रामीणों की सरल वार्तालाप में बड़ा आनंद आ रहा था। चौंक पड़े। ज्ञानशंकर और ज्वालासिंह के बयान उनके अनुकूल हुए थे, लेकिन यह आशय न था कि वह इस आधार पर निर्दोष ठहराए जाएंगे। वह तुरंत ताड़ गए कि वह चचा साहब की करामात है, और वास्तव में था भी यही। प्रभाशंकर को जब वकीलों से कोई आशा न रही तो उन्होंने कौशल से काम लिया और दो-ढाई हजार रुपयों का बलिदान करके यह वरदान पाया था। रिश्वत, खुशामद, मिष्टालाप यह सभी उनकी दृष्टि में हिरासत से बचने के लिए क्षम्य था।

प्रेमशंकर ने जेलर से कहा—यदि नियमों के विरुद्ध न हो तो कम-से-कम मुझे रात-भर और यहां रहने की आज्ञा दीजिए। जेलर ने विस्मित होकर कहा—यह आप क्या कहते हैं? आपका स्वागत करने के लिए सैकड़ों आदमी बाहर खड़े हैं।

प्रेमशंकर ने विचार किया, इन गरीबों को मेरे यहां रहने से कितना ढाढ़स था। कदाचित् उन्हें आशा थी कि इनके साथ हम लोग भी बरी हो जाएंगे। मेरे चले जाने से ये सब निराश हो जाएंगे। उन्हें तसल्ली देते हुए बोले—भाइयो, मुझे विवश होकर तुम्हारा साथ छोड़ना पड़ रहा है, पर मेरा हृदय आपके ही साथ रहेगा। संभव है, बाहर जाकर मैं आपकी कुछ सेवा कर सकू। मैं प्रतिदिन आपसे मिलता रहूंगा।

साथियों से विदा होकर ज्योंही वह फाटक पर पहुंचे कि लाला प्रभाशंकर ने दौड़ कर उन्हें छाती से लगा लिया। जेल के चपरासियों ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया और इनाम मांगने लगे। प्रभाशंकर ने हर एक को दो-दो रुपये दिये। बग्घी चलने ही वाली थी कि बाबू ज्वालासिंह अपनी मोटर साइकिल पर आ पहुंचे और प्रेमशंकर के गले लिपट गए। प्रभाशंकर चाहते थे कि दोनों मित्रों को अपने घर ले जाएं और उनकी दावत करें, किंतु प्रेमशंकर ने पहले हाजीपुर जाकर फिर लौटने का निश्चय किया। ज्योंही बग्घी बगीचे में पहुंची, हलवाहे और माली सब दौड़े और प्रेमशंकर के चारों ओर खड़े हो गए।

प्रेम—क्यों जी दमड़ी, जुताई हो रही है न?

दमड़ी ने लज्जित होकर कहा—मालिक, औरों की तो नहीं कहता, पर मेरा मन काम करने में जरा भी नहीं लगता था। यही चिंता लगी रहती थी कि आप न जाने कैसे होंगे? (निकट आकर) भोला कल एक टोकरी अमरूद तोड़कर बेच लाया है।

भोला—दमड़ी, तुमने सरकार के कान में कुछ कहा तो ठीक न होगा। मुझे जानते हो कि नहीं? यहां जेहल से नहीं डरते। जो कुछ कहना हो मुंह पर बुरा-भला कहो।

दमड़ी—तुम तो नाहक जामे से बाहर हो गए। तुम्हें कोई कुछ थोड़े ही कहता है।

भोला—तुमने कानाफूसी की क्यों? मेरी बात न कही होगी, किसी और की कही होगी। तुम कौन होते हो किसी की चुगली खाने वाले?

मस्ता कोरी ने समझाया—भोला, तुम खामखाह झगड़ा करने लगते हो। तुमसे क्या मतलब? जिसके जी में जो आता है मालिक से कहता है। तुम्हें क्यों बुरा लगता है?

भोला—चुगली खाने चले हैं, कुछ काम करें न धंधा, सारे दिन नशा खाए पड़े रहते हैं, इनका मुंह है कि दूसरों की शिकायत करें।

इतने में भवानीसिंह भी आ पहुंचे, जो मुखिया थे। यह विवाद सुना तो बोले—क्यों लड़े

मरते हो यारो क्या फिर दिन न मिलेगा? मालिक से कुशल-क्षेम पूछना तो दूर रहा, कुछ सेवा-टहल तो हो न सकी, लगे आपस में तकरार करने।

इस सामयिक चेतावनी ने सबको शांत कर दिया। कोई दौड़कर झोंपड़े में झाडू लगाने लगा, किसी ने पलंग डाल दिया, कोई मोढ़े निकाल लाया, कोई दौड़कर पानी लाया, कोई लालटेन जलाने लगा। भवानीसिंह अपने घर से दूध लाए। जब तीनों सज्जन जलपान करके आराम से बैठे तो ज्वालासिंह ने कहा—इन आदमियों से आप क्योंकर काम लेते हैं? मुझे तो सभी निकम्मे जान पड़ते हैं।

प्रेमशंकर—जी नहीं, यह सब लड़ते हैं तो क्या, खूब मन लगाकर काम करते हैं। दिन भर के लिए जितना काम बता देता हूं उतना दोपहर तक ही कर डालते हैं।

लाला प्रभाशंकर जी में डर रहे थे कि कहीं प्रेमशंकर अपने बरी हो जाने के विषय में कुछ पूछ न बैठें। वह इस रहस्य को गुप्त ही रखना चाहते थे। इसलिए वह ज्वालासिंह से बातें करने लगे। जब से इनकी बदली हो गई थी, इन्हें शांति नसीब न हुई थी। ऊपर वाले नाराज, नीचे वाले नाराज, जमींदार नाराज। बात-बात पर जवाब तलब होते थे। एक बार मुअत्तल भी होना पड़ा था। कितना ही चाहा कि वहां से कहीं और भेज दिया जाऊं, पर सफल न हुए। नौकरी से तंग आ गए थे अब इस्तीफा देने का विचार कर रहे थे। प्रभाशंकर ने कहा—भूलकर भी इस्तीफा देने का इरादा न करना, यह कोई मामूली ओहदा नहीं है। इसी ओहदे के लिए बड़े-बड़े रईसों और अमीरों के माथे घिसे जाते हैं, और फिर भी कामना पूरी नहीं होती। यह सम्मान और अधिकार आपको और कहां प्राप्त हो सकता है?

ज्वाला—लेकिन इस सम्मान और अधिकार के लिए अपनी आत्मा का कितना हनन करना पड़ता है? अगर निःस्पृह भाव से अपना काम कीजिए तो बड़े-बड़े लोग पीछे पड़ जाते हैं। अपने सिद्धांतों का स्वाधीनता से पालन कीजिए तो हाकिम लोग त्यौरियां बदलते हैं। यहां उसी की सफलता होती है जो खुशामदी और चलता हुआ है, जिसे सिद्धांतों की परवाह नहीं। मैंने तो आज तक किसी सहृदय पुरुष को फलते-फूलते नहीं देखा। बस, शतरंजबाजों की चांदी है। मैंने अच्छी तरह आजमा कर देख लिया। यहां मेरा निर्वाह नहीं है। अब तो यही विचार है कि इस्तीफा देकर इसी बगीचे में आ बसूं और बाबू प्रेमशंकर के साथ जीवन व्यतीत करूं, अगर इन्हें कोई आपत्ति न हो।

प्रेमशंकर—आप शौक से आइए, लेकिन खूब दृढ़ होकर आइएगा।

ज्वालासिंह—अगर कुछ कोर-कसर होगी तो यहां पूरी हो जाएगी।

प्रेमशंकर ने अपने आदमियों से खेती-बारी के संबंध में कुछ बातें कीं और आठ बजते-बजते लाला प्रभाशंकर के घर चले।

इकतीस

रात के दस बजे थे। ज्वालासिंह तो भोजन करके प्रभाशंकर के दीवानखाने में ही लेटे, लेकिन प्रेमशंकर को मच्छरों ने इतना तंग किया कि नींद न आई। कुछ देर तक तो वह पंखा झलते

रहे, अंत को जब भीतर न रहा गया तो व्याकुल हो बाहर आकर सहन में टहलने लगे। सहन की दूसरी ओर ज्ञानशंकर का द्वार था। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। नीरवता ने प्रेमशंकर की विचार-ध्वनि को गुंजित कर दिया। सोचने लगे, मेरा जीवन कितना विचित्र है! श्रद्धा जैसी देवी को पाकर भी मैं दांपत्य सुख से वंचित हूं। सामने श्रद्धा का शयनगृह है, पर मैं उधर ताकने का साहस नहीं कर सकता। वह इस समय कोई धर्म-ग्रंथ पढ़ रही होगी, पर मुझे उसकी कोमल वाणी सुनने का अधिकार नहीं।

अकस्मात् उन्हें ज्ञानशंकर के द्वार से कोई स्त्री निकलती हुई दिखाई दी। उन्होंने समझा मजूरनी होगी, काम-धंधे से छुट्टी पा अपने घर जाती होगी। लेकिन नहीं, वह सिर से पैर तक चादर ओढ़े हुए है। महरियां इतनी लज्जाशील नहीं होतीं। फिर यह कौन है? चाल तो श्रद्धा की-सी है, कद भी वही है। पर इतनी रात गए, इस अंधकार में श्रद्धा कहां जाएगी? नहीं, कोई और होगी। मुझे भ्रम हो रहा है। इस रहस्य को खोलना चाहिए। यद्यपि प्रेमशंकर को एक अपरिचित और अकेली स्त्री के पीछे-पीछे भेदिया बनकर चलना सर्वथा अनुचित जान पड़ता था, पर इस गांठ को खोलने की इच्छा इतनी प्रबल थी कि वह उसे रोक न सके।

कुछ दूर तक गली में चलने के बाद वह स्त्री सड़क पर आ पहुंची और दशाश्वमेध घाट की ओर चली। सड़क पर लालटेनें जल रही थीं। रास्ता बंद न था, पर बहुत कम लोग चलते दिखाई देते थे। प्रेमशंकर को उस स्त्री की चाल से अब पूरा विश्वास हो गया कि वह श्रद्धा है। उनके आश्चर्य की कोई सीमा न रही। यह इतनी रात गए इस तरफ कहां जाती है? उन्हें उस पर कोई संदेह न हुआ। वे उसके पातिव्रत्य को अखण्ड और अविचल समझते थे। पर इस विश्वास ने उनकी प्रश्नात्मक शंका को और भी उत्तेजित कर दिया। उसके पीछे-पीछे चलते रहे; यहां तक कि गंगातट की ऊंची-ऊंची अट्टालिकाएं आ पहुंची। गली में अंधेरा था, पर कहीं-कहीं खिड़कियों से प्रकाश-ज्योति आ रही थी, मानो कोई सोता हुआ आदमी स्वप्न देख रहा हो। पग-पग पर सांड़ों का सामना होता था। कहीं-कहीं कुत्ते भूमि पर पड़ी हुई पत्तलों को चाट रहे थे। श्रद्धा सीढ़ियों से उतरकर गंगातट पर जा पहुंची। अब प्रेमशंकर को भय हुआ, कहीं इसने अपने मन में कुछ और तो नहीं ठानी है? उनका हृदय कांपने लगा। वह लपककर सीढ़ियों से उतरे और श्रद्धा से केवल इतनी दूर खड़े हो गए कि तनिक खटका होते ही एक छलांग में उसके पास जा पहुंचे। गंगा निद्रा में मग्न थीं। कहीं-कहीं जल-जन्तुओं के छपकने की आवाज आ जाती थी। सीढ़ियों पर कितने ही भिक्षुक पड़े सो रहे थे। प्रेमशंकर को इस समय असह्य ग्लानि-वेदना हो रही थी। यह मेरी क्रूरता-मेरी हृदय-शून्यता का फल है! मैंने अपने सिद्धांत-प्रेम और आत्म-गौरव के घमण्ड में इसके विचारों की अवहेलना की, इसके मनोभावों को पैरों से कुचला, इसकी धर्मनिष्ठा को तुच्छ समझा। जब सारी बिरादरी मुझे दूध की मक्खी, समझ रही है, जब मेरे विषय में नाना प्रकार के अपवाद फैले हुए हैं, जब मैं विधर्मी, नास्तिक और जातिच्युत समझा जा रहा हूं, तब एक धार्मिक वृत्ति की महिला का मुझसे विमुख हो जाना सर्वथा स्वाभाविक था। न जाने कितनी हृदय-वेदना, कितने आत्मिक कष्ट और मानसिक उत्ताप के बाद आज इस अबला ने ऐसा भयंकर संकल्प किया है।

श्रद्धा कई मिनट जल-तट पर चुपचाप खड़ी रही। तब वह धीरे-धीरे पानी में उतरी। प्रेमशंकर ने देखा अब विलम्ब करने का अवसर नहीं है। उन्होंने एक छलांग मारी और अंतिम सीढ़ी पर खड़े होकर श्रद्धा को जोर से पकड़ लिया। श्रद्धा चौंक पड़ी, सशंक होकर बोली-कौन

है, दूर हट!

प्रेमशंकर ने सदोष नेत्रों से देखकर कहा–मैं हूं अभागा प्रेमशंकर! श्रद्धा ने पति की ओर ध्यान से देखा और भयभीत होकर बोली–आप....यहां?

प्रेमशंकर–हां, आज अदालत ने मुझे बरी कर दिया। चचा साहब के यहां दावत थी। भोजन करके निकला तो तुम्हें इधर आते देखा। साथ हो लिया। अब ईश्वर के लिए पानी से निकलो। मुझ पर दया करो।

श्रद्धा पानी से निकलकर जीने पर आई और कर जोड़कर गंगा को देखती हुई बोली–माता, तुमने मेरी विनती सुन ली, किस मुंह से तुम्हारा यश गाऊं। इस अभागिनी को तुमने तार दिया।

प्रेम–तुम अंधेरे में इतनी दूर कैसे चली आई? डर नहीं लगा?

श्रद्धा–मैं तो यहां कई दिनों से आती हूं, डर किस बात का?

प्रेम–क्या यहां के बदमाशों का हाल नहीं जानतीं?

श्रद्धा ने कमर से छुरा निकाल लिया और बोली–मेरी रक्षा के लिए यह काफी है। संसार में जब दूसरा कोई सहारा नहीं होता, तो आदमी निर्भय हो जाता है।

प्रेम–घर के लोग तुम्हें यों आते देखकर अपने मन में क्या कहते होंगे?

श्रद्धा–जो चाहे समझें, किसी के मन पर मेरा क्या बस है? पहले लोक-लाज का भय था। अब वह भय नहीं रहा, उसका मर्म जान गई। वह रेशम का जाल है, देखने में सुंदर, किंतु कितना जटिल! वह बहुधा धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म बना देता है।

प्रेमशंकर का हृदय उछलने लगा, बोले–ईश्वर, क्या मेरा भाग्य-चन्द्र फिर उदित होगा? श्रद्धा, मैं तुमसे सत्य कहता हूं। मेरी कितनी ही बार इच्छा हुई कि फिर अमेरिका लौट जाऊं, किंतु आशा का एक अत्यंत सूक्ष्म, काल्पनिक बन्धन पैरों में बेड़ियों का काम करता रहा। मैं सदैव अपने चारों ओर तुम्हारे प्रेम और सत्य व्रत को फैला हुआ देखता हूं। मेरे आत्मिक अंधकार में यही ज्योति दीपक का काम देती है। मैं तुम्हारी सदिच्छाओं को किसी सघन वृक्ष की भांति अपने ऊपर छाया डालते हुए अनुभव करता हूं। मुझे तुम्हारी अकृपा में दया, तुम्हारी निष्ठुरता में हार्दिक स्नेह, तुम्हारी भक्ति में अनुराग छिपा हुआ दीखता है। अब मुझे ज्ञात हुआ कि मेरे ही उद्धार के लिए तुम यह अनुष्ठान कर रही हो। यदि मेरा प्रेम निष्काम होता, तो मैं इस आत्मिक संयोग पर ही संतोष करता, किंतु मैं रूप और रस का दास हूं, इच्छाओं और वासनाओं का गुलाम। मुझे इस आत्मानुराग से संतोष नहीं होता।

श्रद्धा–मेरे मन से वह शंका कभी दूर नहीं होती कि आपसे मेरा मिलना अधर्म है और अधर्म से मेरा हृदय कांप उठता है।

प्रेम–यह शंका कैसे शांत होगी?

श्रद्धा–आप जानकर मुझसे क्यों पूछते हैं?

प्रेम–तुम्हारे मुंह से सुनना चाहता हूं।

श्रद्धा–प्रायश्चित से।

प्रेम–वही प्रायश्चित जिसका विधान स्मृतियों में है?

श्रद्धा–हां, वही।

प्रेम–क्या तुम्हें विश्वास है कि कई नदियों में नहाने से, कई लकड़ियों के जलाने से,

घृणित वस्तुओं के खाने से, ब्राह्मणों को खिलाने से मेरी अपवित्रता जाती रहेगी? खेद है कि तुम इतनी विवेकशील होकर इतनी मिथ्यावादिनी हो?

श्रद्धा का एक हाथ प्रेमशंकर के हाथ में था। यह कथन सुनते ही उसने हाथ खींच लिया और दोनों अंगूठों से दोनों कान बंद करते हुए बोली—ईश्वर के लिए मेरे सामने शास्त्रों की निन्दा मत करो। हमारे ऋषि-मुनियों ने शास्त्रों में जो कुछ लिख दिया है, वह हमें मानना चाहिए। उनमें मीन-मेख निकालना हमारे लिए उचित नहीं। हममें इतनी बुद्धि कहां है कि शास्त्रों के सभी आदेशों को समझ सकें? उनको मानने में ही हमारा कल्याण है।

प्रेम—मुझसे वह काम करने को कहती हो जो मेरे सिद्धांत और विश्वास के सर्वथा विरुद्ध है। मेरा मन इसे कदापि स्वीकार नहीं करता कि विदेश-यात्रा कोई पाप है। ऐसी दशा में प्रायश्चित की शर्त लगाकर तुम मुझ पर बड़ा अन्याय कर रही हो।

श्रद्धा ने लम्बी सांस खींचकर कहा—आपके चित्त से अभी अहंकार नहीं मिटा। जब तक इसे न मिटाइयेगा, ऋषियों की बातें आपकी समझ में न आएंगी।

यह कहकर वह सीढ़ियों पर चढ़ने लगी। प्रेमशंकर कुछ न बोल सके। उसे रोकने का भी साहस न हुआ। श्रद्धा देखते-देखते सामने गली में घुसी और अन्धकार में विलुप्त हो गई।

प्रेमशंकर कई मिनट तक वहीं चुपचाप खड़े रहे, तब वह सहसा इसी अर्द्ध चैतन्यावस्था से जागे, जैसे कोई रोगी देर तक मूर्च्छित रहने के बाद चौंक पड़े। अपनी अवस्था का ज्ञान हुआ। हा ! अवसर हाथ से निकल गया। मैंने विचार को मनुष्य से उत्तम समझा। सिद्धांत मनुष्य के लिए है, मनुष्य सिद्धांतों के लिए नहीं है। मैं इतना भी न समझ सका ! माना, प्रायश्चित पर मेरा विश्वास नहीं है, पर उससे दो प्राणियों का जीवन सुखमय हो सकता था। इस सिद्धांत-प्रेम ने दोनों का ही सर्वनाश कर दिया। क्यों न चलकर श्रद्धा से कह दूं कि मुझे प्रायश्चित करना अंगीकार है। अभी बहुत दूर नहीं गई होगी। उसका विश्वास मिथ्या ही सही, पर कितना दृढ़ है। कितनी निःस्वार्थ पति-भक्ति है, कितनी अविचल धर्मनिष्ठा ! प्रेमशंकर इन्हीं विचारों में डूबे हुए थे कि यकायक उन्होंने दो आदमियों को ऊपर से उतरते देखा। गहरे विचार के बाद मस्तिष्क को विश्राम की इच्छा होती है। वह उन दोनों मनुष्यों की ओर ध्यान से देखने लगे। यह कौन हैं? इस समय यहां क्या करने आए हैं? शनैः-शनैः वे दोनों नीचे आए और प्रेमशंकर से कुछ दूर खड़े हो गए। प्रेमशंकर ने उन दोनों की बातें सुनीं, आवाज पहचान गए। ये दोनों पद्मशंकर और तेजशंकर थे।

तेजशंकर ने कहा—तुम्हारी बुरी आदत है कि जिससे होता है उसी से इन बातों की चर्चा करने लगते हो। यह सब बातें गुप्त रखने की हैं। खोल देने से उनका असर जाता रहता है।

पद्म—मैंने तो किसी से नहीं कहा।

तेज—क्यों? आज ही बाबू ज्वालासिंह से कहने लगे कि हम लोग साधु हो जाएंगे। कई दिन हुए अम्मां से यही बात कही थी। इस तरह बकते फिरने से क्या फायदा? हम लोग साधु होंगे अवश्य, पर अभी नहीं। अभी इस 'बीसा' को सिद्ध कर लो, घर में लाख-दो-लाख रुपये रख दो, बस निश्चिन्त होकर निकल खड़े हो। भैया घर की कुछ खोज-खबर लेते ही नहीं। हम लोग भी निकल जाएं तो लालाजी इतने प्राणियों का पालन-पोषण कैसे करेंगे? इम्तहान तो मेरे दिए न दिया जाएगा, कौन भूगोल-इतिहास रटता फिरे और मैट्रिक हो ही गए तो कौन राजा हो जाएंगे? बहुत होगा कहीं पंद्रह-बीस के नौकर हो जाएंगे। तीन साल से फेल हो रहे हैं। अबकी तो यों ही कहीं पढ़ने को जगह न मिलेगी।

पद्म—अच्छा, अब किसी से कुछ न कहूंगा। यह मंत्र सिद्ध हो जाए तो चचा साहब मुकदमा जीत जाएंगे न?

तेज—अभी देखा नहीं क्या? लालाजी बीस हजार जमानत देते थे, पर मजिस्ट्रेट न लेता था। तीन दिन यहां आसन जमाया और आज वह बिल्कुल बरी हो गए। एक कौड़ी भी जमानत न देनी पड़ी।

पद्म—चचा साहब बड़े अच्छे आदमी हैं। मुझे उनकी बहुत मुहब्बत लगती है। छोटे चचा की ओर तो ताकते हुए डर मालूम होता है।

तेज—उन्होंने बड़े चचा को फंसाया है। डरता हूं, नहीं तो एक सप्ताह-भर भी आसन लगाऊं तो उनकी जान ही लेकर छोड़ूं।

पद्म—मुझसे तो कभी बोलते ही नहीं। छोटी चची का अदब करता हूं, नहीं तो एक दिन माया को खूब पीटता।

तेज—अबकी तो माया भी गोरखपुर जा रहा है। वहीं पढ़ेगा।

पद्म—जब से मोटर आया है, माया का मिजाज ही नहीं मिलता। यहां कोई मोटर का भूखा नहीं है।

यों बातें करते हुए दोनों सीढ़ी पर बैठ गए। प्रेमशंकर उठकर उनके पास आये और कुछ कहना चाहते थे कि पद्मशंकर ने चौंककर जोर से चीख मारी और तेजशंकर खड़ा होकर कुछ बुदबुदाने और छू-छू करने लगा। प्रेमशंकर बोले—डरो मत, मैं हूं।

तेज—चचा साहब ! आप यहां इस वक्त कैसे आये?

पद्म—मुझे तो ऐसी शंका हुई कि कोई प्रेत आ गया।

प्रेम—तुम लोग इस पाखंड में पड़कर अपना समय व्यर्थ गंवा रहे हो। यह बड़े जोखिम का काम है और तत्त्व कुछ नहीं। इन मन्त्रों को जगाकर तुम जीवन में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। चित्त लगाकर पढ़ो, उद्योग करो, सच्चरित्र बनो। धन और कीर्ति का यही महामन्त्र है। यहां से उठो।

तीनों आदमी घर की ओर चले। रास्ते-भर प्रेमशंकर दोनों किशोरों को समझाते रहे। घर पहुंचकर वे फिर निद्रा देवी की आराधना करने लगे, मच्छरों की जगह अब उनके सामने एक और बाधा आ खड़ी हुई। यह श्रद्धा का अन्तिम वाक्य था, 'तुम्हारे चित्त से अभी अंहकार नहीं मिटा।' प्रेमशंकर बड़ी निर्दयता से अपने कृत्यों का समीक्षण कर रहे थे। अपने अंत:करण के एक-एक पर्दे को खोलकर देख रहे थे और प्रतिक्षण उन्हें विश्वास होता जाता था कि मैं वास्तव में अहंकार का पुतला हूं। वह अपने किसी काम को, किसी संकल्प को अहंकार-रहित न पाते थे। उनकी दया और दीन-भक्ति में भी अहंकार छिपा हुआ जान पड़ता था। उन्हें शंका हो रही थी, क्या सिद्धांत-प्रेम अहंकार का दूसरा स्वरूप है? इसके विपरीत श्रद्धा की धर्मपरायणता में अहंकार की गन्ध तक न थी।

इतने में ज्वालासिंह ने आकर कहा—क्या सोते ही रहिएगा? सबेरा हो गया।

प्रेमशंकर ने चौंककर द्वार की ओर देखा तो वास्तव में दिन निकल आया था। बोले—मुझे तो मच्छरों के मारे नींद ही नहीं आई। आंखें तक न झपकीं।

ज्वाला—और यहां एक ही करवट में भोर हो गया।

प्रेमशंकर उठकर हाथ-मुंह धोने लगे। आज उन्हें बहुत काम करना था। ज्वालासिंह भी

स्नानादि से निवृत्त हुए। अभी दोनों आदमी कपड़े पहन ही रहे थे कि तेजशंकर जलपान के लिए ताजा हलुआ, सेब का मुरब्बा, तले हुए पिस्ते और बादाम तथा गर्म दूध लाया। ज्वालासिंह ने कहा—आपके चचा साहब बड़े मेहमाननवाज आदमी हैं। ऐसा जान पड़ता है कि आतिथ्य-सत्कार में उन्हें हार्दिक आनंद आता है और एक हम हैं कि मेहमान की सूरत देखते ही मानो दब जाते है, उनका जो कुछ सत्कार करते हैं, वह केवल प्रथा-पालन के लिए, मन से यही चाहते हैं कि किसी तरह यह व्याधि सिर से टले।

प्रेम—वे पवित्र आत्माएं अब संसार से उठती जाती हैं। अब तो जिधर देखिए उधर स्वार्थ-सेवा का आधिपत्य है। चचा साहब जैसा भोजन करते हैं, वैसा अच्छे-अच्छे रईसों को भी मयस्सर नहीं होता। वह स्वयं पाक-शास्त्र में निपुण हैं। लेकिन खाने का इतना शौक नहीं है, जितना खिलाने का। मेरा तो जी चाहता है कि अवकाश मिले तो यह विद्या उनसे सीखूं।

दोनों मित्रों ने जलपान किया और लाला प्रभाशंकर से विदा होकर घर से निकले। ज्वालासिंह ने कहा—कोई वकील ठीक करना चाहिए।

प्रेम—हां, यही सबसे जरूरी काम है। देखें, कोई महाशय मिलते हैं या नहीं। चचा साहब को तो लोगों ने साफ जवाब दे दिया था।

ज्वाला—डाक्टर इर्फान अली से मेरा खूब परिचय है। आइए, पहले वहां चलें।

प्रेम—वह तो शायद ही राजी हों। ज्ञानशंकर से उनकी बातचीत पहले ही हो चुकी है।

ज्वाला—अभी वकालतनामा तो दाखिल नहीं हुआ। ज्ञानशंकर ऐसे नादान नहीं हैं कि ख्वामख्वाह हजारों रुपयों का खर्च उठाएं। उनकी जो इच्छा थी वह पुलिस के हाथों पूरी हुई जाती है। सारा लखनपुर चक्कर में फंस गया। अब उन्हें वकील रखकर क्या करना है !

डाक्टर महोदय अपने बाग में टहल रहे थे। दोनों सज्जनों को देखते ही बढ़कर हाथ मिलाया और बंगले में ले गए।

डाक्टर—(ज्वालासिंह से) आपसे तो एक मुद्दत के बाद मुलाकात हुई है। आजकल तो आप हरदोई में हैं न? आपके बयान ने तो पुलिस वालों की बोलती ही बंद कर दी। मगर याद रखिए, इसका परिणाम आपको उठाना पड़ेगा।

ज्वाला—उसकी नौबत ही न आएगी। इन दोरंगी चालों से नफरत हो गई। इस्तीफा देने का फैसला कर चुका हूं।

डाक्टर—हालत ही ऐसी है कि कोई खुद्दार आदमी उसे गवारा नहीं कर सकता। बस यहां उन लोगों की चांदी है जिनके कांशंस मुर्दा हो गए हैं। मेरे ही पेशे को लीजिए, कहा जाता है कि यह आजाद पेशा है। लेकिन लाला प्रभाशंकर को सारे शहर में (प्रेमशंकर की तरफ देखकर) आपकी पैरवी करने के लिए कोई वकील न मिला। मालूम नहीं, वह मेरे यहां तशरीफ क्यों नहीं लाए।

ज्वाला—उस गलती की तलाफी? (प्रायश्चित) करने के लिए हम लोग हाजिर हुए हैं। गरीब किसानों पर आपको रहम करना पड़ेगा।

डाक्टर—मैं इस खिदमत के लिए हाजिर हूं। पुलिस से मेरी पुरानी दुश्मनी है। ऐसे मुकदमों की मुझे तलाश रहती है। बस, यही मेरा आखिरी मुकदमा होगा। मुझे भी वकालत से नफरत हो गई है। मैंने यूनिवर्सिटी में दरख्वास्त दी है। मंजूर हो गई तो बोरिया-बंधना समेटकर उधर की राह लूंगा।

बत्तीस

डाक्टर इर्फान अली की बातों से प्रेमशंकर को बड़ी तस्कीन हुई। मेहनताने के संबंध में उनसे कुछ रिआयत चाहते थे, लेकिन संकोचवश कुछ न कह सकते थे। इतने में हमारे पूर्व-परिचित सैयद ईजाद हुसेन ने कमरे में प्रवेश किया और ज्वालासिंह को देखते ही सलाम करके उनके सामने खड़े हो गए। उनके साथ एक हिन्दू युवक और भी था जो चाल-ढाल से धनाढ्य जान पड़ता था।

ज्वालासिंह बोले—आइये, आइये। मिजाज तो अच्छा है? आजकल किसकी पेशी में हैं?

ईजाद—जब से हुजूर तशरीफ ले गए, मैंने भी नौकरी को सलाम किया। जिन्दगी शिकमपर्वरी में गुजरी जाती थी। इरादा हुआ कुछ दिन कौम की खिदमत करूं। इसी गरज से 'अंजुमन इत्तहाद' खोल रखी है। उसका मकसद हिन्दू-मुसलमानों में मेल-जोल पैदा करना है। मैं इसे कौम को सबसे अहम् (महत्त्वपूर्ण) मामला समझता हूं। आप दोनों साहब अगर अंजुमन को अपने कदमों से मुमताज फरमायें तो मेरी खुशनसीबी ही है।

ज्वाला—आप वाकई कौम की सच्ची खिदमत कर रहे हैं।

ईजाद—शुक्र है, जनाव की जबान से यह कलाम निकला। यहां मुझे 'मियां इत्तहाद' कहकर मेरा मजाक उड़ाया जाता है। अंजुमन पर आवाजें कसी जाती हैं। मुझे खुदमतलब और खुदगरज कहा जाता है। यह सब जिल्लत उठाता हूं। दोनों कौमों के बाहमी निफ़ाक को देखता हूं तो जिगर के टुकड़े हो जाते हैं। यह मुहब्बत और एखलास जिन पर कौम की हस्ती कायम है, रोज-ब-रोज गायब होता जाता है। अगर एक हिन्दू इस्लाम पर यकीन लाता है तो शोर मच जाता है कि हिन्दू कौम तबाह हुई जाती है। अगर एक हिन्दू ऊंचा ओहदा पा जाता है तो मुसलमानों में 'हाय ! हाय !' की सदा उठने लगती है। कोई कहता है इस्लाम गारत हुआ, कोई कहता है इस्लाम की किश्ती भंवर में पड़ी। लाहौल विला कूवत। मजहब, रूहाना (आत्मा की) तस्कीन (संतुष्टि) और नजात (मुक्ति) का जरिया है न कि दुनिया के कमाने का ढकोसला। इस बाहमी (पारस्परिक) कुदूरत (मलिनता) को हमारे मुल्ला और पंडित और भी भड़काते हैं। मेरी आवाज नक्कारखाने में तूती की सदा है, पर कौमी दर्द, कौमी गैरत चुप नहीं बैठने देती। गला फाड़-फाड़ चिल्लाता हूं, कोई सुने या न सुने। अंजुमन में इस वक्त सौ मेंबर हैं। कोई सत्तर हिन्दू साहबान हैं और तीस मुसलमान। उसके इन्तजाम से एक कुतुबखाना और मदरसा चलता है। अंजुमन का इरादा है कि एक इत्तहादी इबादतगाह बनाया जाय, जिसके एक जानिब शिवाला हो और दूसरे जानिब मस्जिद। एक यतीमखाने की बुनियाद डाल दी गई है। दोनों कौमों के यतीमों को दाखिल किया जाता है। मगर अभी तक इमारतें नहीं बन सकीं। यह सब इरादे रुपये के मुहताज हैं। फकीर ने तो अपना सब कुछ निसार कर दिया। अब कौम को अख्तियार है, उसे चलाए या बंद कर दे। क्यों डाक्टर साहब, मेरा हिब्बानामा आपने तैयार फरमाया?

इर्फान अली—कोई तातील आये तो इत्मीनान से आपका काम करूं।

प्रेमशंकर ने श्रद्धाभाव से कहा—सैयद साहब की जात कौम के लिए बर्कत है। मैं अंजुमन के लिए सौ रुपये की हकीर रकम नजर करता हूं और यतीमखाने कि लिए पचास मन गेहूं, पांच मन शक्कर और बीस रुपये माहवार।

ईजाद हुसेन—खुदा आपको सवाब अता करे। अगर इजाज़त हो तो जनाब को नाम भी

ट्रस्टियों में दाखिल कर लिया जाए।

प्रेमशंकर—मैं इस इज्जत के लायक नहीं हूं।

ईजाद—नहीं जनाब, मेरी यह इल्तजा आपको कबूल करनी होगी। खुदा ने आपको एक दर्दमन्द दिल अता किया है। क्यों नहीं, आप लाला जटाशंकर मरहूम के खलक हैं, जिनकी गरीबपरवरी से सारा शहर मालामाल होता था। यतीम आपको दुआएं देंगे और अंजुमन हमेशा आपकी ममनून रहेगी।

इर्फान अली ने ज्वालासिंह से पूछा—आपका कयाम यहां कब तक रहेगा?

ज्वाला—कुछ अर्ज नहीं कर सकता। आया तो इस इरादे से हूं कि बाबू प्रेमशंकर की गुलामी में जिंदगी गुजार दूं। मुलाजमत से इस्तीफा देना तय कर चुका हूं।

इर्फान अली—वल्लाह ! आप दोनों साहब बड़े जिंदादिल हैं। दुआ कीजिए कि खुदा मुझे भी कनाअत (संतोष) की दौलत अता करे और मैं भी आप लोगों की सोहबत से फैज उठाऊं।

ज्वालासिंह ने मुस्कराकर कहा—हमारे मुलाजिमों को बरी करा दीजिए, तो हम शबोरोज आपके लिए दुआएं करेंगे।

इर्फान अली हंसकर बोले—शर्त तो टेढ़ी है, मगर मंजूर है। डाक्टर चोपड़ा का बयान अपने मुआफिक हो जाए तो बाजी अपनी है।

ईजाद—अब जरा इस गरीब की भी खबर लीजिए। मेरे मुहल्ले में रहते हैं। कपड़े की बड़ी दुकान है। इनके बड़े भाई इनसे बेरुखी से पेश आते हैं। इन्हें जेब खर्च के लिए कुछ नहीं देते। हिसाब भी नहीं दिखाते, सारा नफा खुद हजम कर जाते हैं। कल इन्हें बहुत सख्त सुस्त कहा। जब इनका आधा हिस्सा है, तो क्यों न अपने हिस्से का दावा करें। यह बालिग हैं, अपना फायदा-नुकसान समझते हैं, भाई की रोटियों पर नहीं रहना चाहते। बोलो, भाई मुथरादास, बारिस्टर साहब से कहो, क्या कहते हो?

मथुरादास ने जमीन की तरफ देखा और ईजाद हुसेन की ओर कनखियों से ताकते हुए बोले—मैं यही चाहता हूं कि भैया से आप मेरी राज़ी-ख़ुशी करा दें। कल मैंने उन्हें गाली दे दी थी। अब वह कहते हैं, तू ही घर संभाल, मुझसे कोई वास्ता नहीं। कुंजियां सब फेंक दी हैं और दुकान पर नहीं जाते।

ईजाद हुसेन ने मथुरादास की ओर वक्रदृष्टि से देखकर कहा—साफ-साफ अपना मतलब क्यों नहीं कहते? आप इनकी मंशा समझ गए होंगे। अभी नातजुर्बेकार आदमी हैं, बातचीत करने की तमीज नहीं है, जभी तो रोज धक्के खाते हैं। इनकी मंशा है कि आप दावा दायर करें, लेकिन यह मामले को तूल नहीं देना चाहते, सिर्फ अलहदा होना चाहते हैं। क्यों ठीक है?

मथुरादास—(सरल भाव से) जी हां, बस यही चाहता हूं कि उनसे मेरी राजी-खुशी हो जाए।

मुंशी रमजान अली मुहर्रिर थे। ईजाद हुसेन मथुरादास को उनके कमरे में ले गए। वहां खासा दफ्तर था। कई आदमी बैठे लिख रहे थे। रमजान अली ने पूछा—कितने का दावा होगा?

ईजाद—यही कोई एक लाख का।

रमजानअली ने वकालतनामा लिखा। कोर्ट फीस, तलबाना, मेहनताना, नजराना आदि वसूल किए, जो मथुरादास ने ईजाद हुसेन की ओर अविश्वास की दृष्टि से देखते हुए दिये, जैसे कोई किसान पछता-पछताकर दक्षिणा के पैसे निकालता है। और तब दोनों सज्जनों ने घर

की राह ली।

रास्ते में मथुरादास ने कहा—आपने जबर्दस्ती मुझे भैया से लड़ा दिया। सैकड़ों रुपये की चपत पड़ गई और अभी कोर्ट फीस बाकी ही है।

ईजाद हुसेन बोले—एहसान तो न मानोगे कि भाई की गुलामी से आजाद होने का इन्तजाम कर दिया। आधी दुकान के मालिक बनकर बैठोगे, उल्टे और शिकायत करते हो?

तैंतिस

डाक्टर प्रियनाथ चोपड़ा बहुत ही उदार, विचारशील और सहृदय सज्जन थे। चिकित्सा का अच्छा ज्ञान था और सबसे बड़ी बात यह कि उनका स्वभाव अत्यंत कोमल और नम्र था। अगर रोगियों के हिस्से की शाक-भाजी, दूध-मक्खन, उपले-ईंधन का एक भाग उनके घर में पहुंच जाता था तो यह केवल वहां की प्रथा थी। उनके पहले भी ऐसा ही व्यवहार होता था। उन्होंने इसमें हस्तक्षेप करने की जरूरत न समझी। इसलिए उन्हें कोई बदनाम न कर सकता था और न उन्हें स्वयं ही इसमें कुछ दूषण दिखाई देता था। वह कम वेतन वाले कर्मचारियों से केवल आधी फीस लिया करते थे और रात की फीस भी मामूली ही रखी थी। उनके यहां सरकारी चिकित्सालय से मुफ्त दवा मिल जाती थी, इसलिए उनकी अन्य डाक्टरों से अधिक चलती थी। इन कारणों से उनकी आमदनी बहुत अच्छी हो गई थी । तीन साल पहले वह यहां आये थे तो पैरगाड़ी पर चलते थे, अब एक फिटन थी। बच्चों को हवा खिलाने कि लिए छोटी-छोटी सेज गाड़ियां थीं। फर्नीचर और फर्शें आदि अस्पताल के ही थे। नौकरों का वेतन भी गांठ से न देना पड़ता था। पर इतनी मितव्ययिता पर वह भी अपनी अवस्था की तुलना जिले के सब-इंजीनियर या कतिपय वकीलों से करते थे तो उन्हें विशेष आनंद न होता था। यद्यपि उन्हें कभी-कभी ऐसे अवसर मिलते थे जो उनकी आर्थिक कामनाओं को सफल कर सकते थे, पर उनकी विचारशीलता भी उन्हें बहकने न देती थी। कॉलेज छोड़ने के बाद कई वर्ष तक उन्होंने निर्भीकता से अपने कर्त्तव्य का पालन किया था, लेकिन जब कई बार पुलिस के विरुद्ध गवाही देने पर मुंह की खानी पड़ी तो चेत गये। वह नित्य पुलिस का रुख देखकर अपनी नीति स्थिर किया करते थे। तिस पर भी अपने निदानों को पुलिस की इच्छा के अधीन रखने में उन्हें मानसिक कष्ट होता था। अतएव जब गौस खां की लाश उनके पास निरीक्षण के लिए भेजी गई तो वह बड़े असमंजस में पड़े। निदान कहता था कि यह एक व्यक्ति का काम है, एक ही बार में काम तमाम हुआ है, किंतु पुलिस की धारणा थी कि यह एक गुट का काम है। बेचारे बड़ी दुविधा में पड़े हुए थे। यह महत्त्वपूर्ण अभियोग था। पुलिस ने अपनी सफलता के लिए कोई बात उठा न रखी थी। उसका खंडन करना उससे बैर मोल लेना था और अनुभव से सिद्ध हो गया था कि यह बहुत महंगा सौदा है। गुनाह था मगर बेलज्जत। कई दिन तक इसी हैस-बैस में पड़े रहे, पर बुद्धि कुछ काम न करती थी। इसी बीच में एक दिन ज्ञानशंकर उनके पास रानी गायत्री देवी का एक पत्र और पांच सौ रुपये पारितोषिक लेकर पहुंचे। रानी महोदया ने उनकी कीर्ति सुनकर अपनी गुण-ग्राहकता का परिचय दिया था। उनसे शिशु-पालन पर एक पुस्तक

लिखवाना चाहती थीं। इसके अतिरिक्त उन्हें अपना गृह-चिकित्सक भी नियत किया था और प्रत्येक 'विजिट' के लिए सौ रुपये का वादा था। डाक्टर साहब फूले न समाए। ज्ञानशंकर की ओर अनुग्रहपूर्ण नेत्रों से देखकर बोले—श्रीमतीजी की इस उदार गुण-ग्राहकता का धन्यवाद देने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। आप मुझे अपना सेवक समझिए। यह सब आपकी कृपादृष्टि है, नहीं तो मेरे जैसे हजारों डाक्टर पड़े हुए हैं। ज्ञानशंकर ने इसका यथोचित उत्तर दिया। इसके बाद देश-काल संबंधी विषयों पर वार्तालाप होने लगा। डाक्टर साहब का दावा था कि मैं चिकित्सा में आई० एम० एस० वालों से कहीं कुशल हूं और ऐसे असाध्य रोगियों का उद्धार कर चुका हूं जिन्हें सर्वज्ञ आई० एम० एस० वालों ने जवाब दे दिया था। लेकिन फिर भी मुझे इस जीवन में इस पराधीनता से मुक्त होने की कोई आशा नहीं। मेरे भाग्य में विलायत के नवशिक्षित युवकों की मातहती लिखी हुई है।

ज्ञानशंकर ने इसके उत्तर में देश की राजनीतिक परिस्थिति का उल्लेख किया। चलते समय उनसे बड़े नि:स्वार्थ भाव से पूछा, लखनपुर के मामले में आपने क्या निश्चय किया? लाश तो आपके यहां आई होगी?

प्रियनाथ—जी हां, लाश आई थी। चिह्नों से तो यह पूर्णत: सिद्ध होता है कि यह केवल एक आदमी का काम है, किंतु पुलिस इसमें कई आदमियों को घसीटना चाहती है। आपसे क्या छिपाऊं, पुलिस को असंतुष्ट नहीं कर सकता, लेकिन यों निरपराधियों का फंसाते हुए आत्मा को घृणा होती है।

ज्ञानशंकर—संभव है आपने चिह्न से जो राय स्थिर की है वही मान्य हो, लेकिन वास्तव में यह हत्या कई आदमियों की साजिश से हुई है। लखनपुर मेरा ही गांव है।

प्रियनाथ—अच्छा, लखनपुर आपका ही गांव है। तो यह कारिंदा आपका नौकर था?

ज्ञान—जी हां, और बड़ा स्वामिभक्त,अपने काम में कुशल। गांव वालों को उससे केवल यही चिढ़ थी कि वह उनसे मिलता न था। प्रत्येक विषय में मेरे ही हानि-लाभ का विचार करता था। यह उसकी स्वामिभक्ति का दंड है। लेकिन मैं इस घटना को पुलिस की दृष्टि से नहीं देखता। हत्या हो गई, एक ने की या कई आदमियों ने मिलकर की। मेरे लिए यह समस्या इससे कहीं जटिल है। प्रश्न जमींदार और किसानों का है। अगर हत्याकारियों को उचित दंड न दिया गया तो इस तरह की दुर्घटनाएं आए दिन होने लगेंगी और जमींदारों को अपनी जान बचाना कठिन हो जाएगा।

प्रस्तुत प्रश्न को यह नया स्वरूप देकर ज्ञानशंकर विदा हुए। यद्यपि हत्या के संबंध में डाक्टर साहब की अब भी वही राय थी, लेकिन अब यह गुनाह बेलज्जत न था। पांच सौ रुपये का पारितोषिक, पांच सौ रुपये फीस, साल में हजार-दो हजार मिलते रहने की आशा, उस पर पुलिस की खुशनूदी अलग। अब आगे-पीछे की जरूरत न थी। हां, अब अगर भय था तो डाक्टर इर्फान अली की जिरहों का। डाक्टर साहब की जिरह प्रसिद्ध थी। अतएव प्रियनाथ ने इस विषय के कई ग्रन्थों का अवलोकन किया और अपने पक्ष में समर्थन के तत्त्व खोज निकाले। कितने ही बेगुनाहों की गर्दन पर छुरी फिर जाएगी, इसकी उन्हें एक क्षण के लिए भी चिंता न हुई। इस ओर उनका ध्यान ही न गया। ऐसे अवसरों पर हमारी दृष्टि कितनी संकीर्ण हो जाती है।

दिन के दस बजे थे। डाक्टर महोदय ग्रंथों की एक पोटली लेकर फिटन पर सवार हो

कचहरी चले। उनका दिल धड़क रहा था, जिरह से उखड़ जाने की शंका लगी हुई थी। वहां पहुंचते ही मैजिस्ट्रेट ने उन्हें तलब किया। जब वह कटघरे के सामने आकर खड़े हुए और अभियुक्तों को अपनी ओर दीन नेत्रों से ताकते देखा तो एक क्षण के लिए उनका चित्त अस्थिर हो गया। लेकिन यह एक क्षणिक आवेग था, आया और चला गया। उन्होंने बड़ी तात्विक गंभीरता और मर्मज्ञतापूर्ण भाव से इस हत्याकांड का विवेचन किया—चिह्नों से यह केवल एक आदमी का काम मालूम होता है। लेकिन हत्याकारियों ने बड़ी चालाकी से काम लिया है। इस विषय में वे बड़े सिद्धहस्त हैं। मृत्यु का कारण कुल्हाड़ी या गंडासे का आघात नहीं है, बल्कि गले का घोंटना है और कई आदमियों की सहायता के बिना गौस खां जैसे बलिष्ठ मनुष्य का गला घोंटना असम्भव है। प्राणान्त हो जाने पर एक वार से उसकी गर्दन काट ली गई है जिससे यह एक ही व्यक्ति का कृत्य समझा जाए।

इर्फान अली की जिरह शुरू हुई।

'आपने कौन-सा इम्तहान पास किया है?'

'मैं लाहौर का एल० एम० एस० और कलकत्ते का एम० बी० हूं?'

'आपकी उम्र क्या है?'

'चालीस वर्ष।'

'आपका मकान कहां है?'

'दिल्ली।'

'आपकी शादी हुई है? अगर हुई है तो औलाद है या नहीं?'

'मेरी शादी हो गई है और कई औलादें हैं।'

'उनकी परवरिश पर आपका माहवार कितना खर्च होता है?'

इर्फान अली यह प्रश्न ऐसे पांडित्यपूर्ण स्वाभिमान से पूछ रहे थे, मानो इन्हीं पर मुकदमे का दारमदार है। प्रत्येक प्रश्न पर ज्वालासिंह की ओर गर्व के साथ देखते मानो उनसे अपनी प्रखर नैयायिकता की प्रशंसा चाहते हैं। लेकिन इस अंतिम प्रश्न पर मैजिस्ट्रेट ने एतराज किया—इस प्रश्न से आपका क्या अभिप्राय है?

इर्फान अली ने गर्व से कहा—अभी मेरी मंशा जाहिर हुई जाती है?

यह कहकर उन्होंने प्रियनाथ से जिरह शुरू की। बेचारे प्रियनाथ मन में सहमे जाते थे। मालूम नहीं यह महाशय मुझे किस जाल में फांस रहे हैं।

इर्फान अली—आप मेरे आखिरी सवाल का जवाब दीजिए?

'मेरे पास उसका कोई हिसाब नहीं है।'

'आपके यहां माहवार कितना दूध आता है और उसकी क्या कीमत पड़ती है?'

'इसका हिसाब मेरे नौकर रखते हैं।'

'घी पर माहवार क्या खर्च होता है?'

'मैं अपने नौकरों से पूछे बगैर इन गृह-संबंधी प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता।'

इर्फान अली ने मैजिस्ट्रेट से कहा—मेरे सवालों के काबिल इत्मीनान जवाब मिलने चाहिए।

मैजिस्ट्रेट—मैं नहीं समझता कि इन सवालों से आपकी मंशा क्या है?

इर्फान अली—मेरी मंशा गवाह की एखलाकी हालत का पर्दाफाश करना है। इन सवालों

से मैं यह साबित कर देना चाहता हूं कि वह बहुत ऊंचे उसूलों का आदमी नहीं है।

मैजिस्ट्रेट–मैं इन प्रश्नों को दर्ज करने से इंकार करता हूं।

इर्फान अली–तो मैं भी जिरह करने से इंकार करता हूं।

यह कहकर बैरिस्टर साहब इजलास से बाहर निकल आए और ज्वालासिंह से बोले–आपने देखा, यह हजरत कितनी बेजा तरफदारी कर रहे हैं ! वल्लाह ! मैं डाक्टर साहब के लत्ते उड़ा देता । यहां ऐसी-वैसी जिरह न करते। मैं साफ साबित कर देता कि जो आदमी छोटी-छोटी रकमों पर गिरता है वह ऐसे बड़े मामले में बेलौस नहीं रह सकता ! कोई मुजायका नहीं। दीवानी में चलने दीजिए, वहां इनकी खबर लूंगा।

इसके एक घंटे पीछे मैजिस्ट्रेट ने फैसला सुना दिया–सब अभियुक्त सेशन सुपुर्द।

संध्या हो गई थी। वह विपत्ति के मारे फिर हवालात चले। सबों के मुख पर उदासी छाई हुई थी। प्रियनाथ के बयान ने उन्हें हताश कर दिया था। वह यह कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि ऐसा उच्च पदाधिकारी प्रलोभनों के फेर में पड़कर असत्य की ओर जा सकता है। सभी गर्दन झुकाये चले जाते थे। अकेला मनोहर रो रहा था।

इतने में प्रियनाथ की फिटन सड़क से निकली। अभियुक्तों ने उन्हें अवहेलनापूर्ण नेत्रों से देखा। मानो कह रहे थे, 'आपको हम दीन-दुखियों पर तनिक भी दया न आई !' डाक्टर साहब ने भी उन्हें देखा, आंखों में ग्लानि का भाव झलक रहा था।

चौंतीस

जब मुकदमा सेशन सुपुर्द हो गया और ज्ञानशंकर को विश्वास हो गया कि अब अभियुक्तों का बचना कठिन है तब उन्होंने गौस खां की जगह पर फैजुल्लाह को नियुक्त किया और खुद गोरखपुर चले आए। यहां से गायत्री की कई चिट्ठियां गई थीं। मायाशंकर को भी साथ लाए। विद्या ने बहुत कहा कि मेरा जी घबराएगा, पर उन्होंने न माना।

इस एक महीने में ज्ञानशंकर ने वह समस्या हल कर ली थी जिस पर वह कई सालों से विचार कर रहे थे। उन्होंने वह मार्ग निर्धारित कर लिया था जिससे गायत्री देवी के हृदय तक पहुंच सकें। इस मार्ग की दो शाखाएं थीं, एक विरोधात्मक और दूसरी विधानात्मक। ज्ञानशंकर ने यही दूसरा मार्ग ग्रहण करना निश्चय किया। गायत्री के धार्मिक भावों को हटाना, जो किसी गढ़ की दुर्भेद्य दीवारों की भांति उसको वासनाओं से बचाए हुए थे, दुस्तर था। ज्ञानशंकर एक बार इस प्रयत्न में असफल हो चुके थे और कोई कारण नहीं था कि उस साधन का आश्रय लेकर वह फिर असफल न हों। इसकी अपेक्षा दूसरा मार्ग सुगम और सुलभ था। उन धार्मिक भावों को हटाने के बदले उन्हें और दृढ़ क्यों न कर दूं। इमारत को विध्वंस करने के बदले उसी भित्ति पर क्यों न और रद्दे चढ़ा दूं? पानी के बहाव रुख पलटने की जगह धारा को और तेज क्यों न कर दूं। उसको अपना बनाने के बदले क्यों न आप ही उसका हो जाऊं?

ज्ञानशंकर ने गोरखपुर आकर पहले से भी अधिक उत्साह और अध्यवसाय से काम

करना शुरू किया। धर्मशाला का काम स्थगित हो गया। अबकी ठेकेदारों से काम न लेकर उन्होंने उसे अपनी ही निगरानी में बनावाना शुरू किया। उसके सामने ही एक ठाकुरद्वारे का शिलारोपण भी कर दिया। वह नित्यप्रति प्रात:काल मोटर पर सवार होकर घर से निकल जाते और इलाके का चक्कर लगाकर संध्या तक लौट आते। किसी कारिंदे या कर्मचारी की मजाल न थी कि एक कौड़ी तक खा सके। किसी शहना या चपरासी की ताब न थी कि असामियों पर किसी प्रकार की सख्ती कर सके और न किसी असामी का दिल था कि लगान चुकाने में एक दिन का भी विलम्ब कर सके। सहकारी बैंक का काम भी चल निकला। किसान महाजनों के जाल से मुक्त होने लगे और उनमें यह सामर्थ्य होने लगी कि खरीददारों के भाव पर जिंस न बेचकर अपने भाव पर बेच सकें। ज्ञानशंकर का यह सुप्रबंध और कार्यपटुता देखकर गायत्री की सदिच्छा श्रद्धा का रूप धारण करती जाती थी। वह विविध रूप से प्रत्युपकार की चेष्टा करती। विद्या के लिए तरह-तरह की सौगात भेजती और मायाशंकर पर तो जान ही देती थी। उसकी सवारी के लिए दो टांघन थे, पढ़ाने के लिए दो मास्टर। एक सुबह को आता था, दूसरा शाम को। उसकी टहल के लिए अलग दो नौकर थे। उसे अपने सामने बुलाकर नाश्ता कराती थी। आप अच्छी-अच्छी चीजें बनाकर उसे खिलाती, कहानियां सुनाती और उसकी कहानियां सुनती। उसे आए दिन इनाम देती रहती। मायाशंकर अपनी मां को भूल गया। वह ऐसा समझदार, ऐसा मिष्टभाषी, ऐसा विनयशील, ऐसा सरल बालक था कि थोड़े ही दिनों में गायत्री उसे हृदय से प्यार करने लगी।

ज्ञानशकंर के जीवन में भी एक विशेष परिवर्तन हुआ। अब वह नित्य संध्या समय भागवत की कथा सुना करते। दो-चार साधु-संत जमा हो जाते, मेल-जोल के दस-पांच सज्जन आ जाते, मुहल्ले के दो-चार श्रद्धालु पुरुष आ बैठते और एक छोटी-मोटी धार्मिक सभा हो जाती। यहां कृष्ण भगवान् की चर्चा होती, उनकी प्रेम-कथाएं सुनाई जातीं और कभी-कभी कीर्तन भी होता था। लोग प्रेम में मग्न होकर रोने लगते और सबसे अधिक अश्रुवर्षा ज्ञानशंकर की ही आंखों से होती थी। वह प्रेम के हाथों बिक गए थे।

एक दिन गायत्री ने कहा—अब तो आपके यहां नित्य कृष्ण-चर्चा होती है, पर्दे का प्रबंध हो जाए तो मैं भी आया करूं। ज्ञानशंकर ने श्रद्धानेत्रों से गायत्री को देखकर कहा—यह सब आप ही के सत्संग का फल है। आपने ही मुझे यह भक्ति-मार्ग दिखाया है और मैं आपको ही अपना गुरु मानता हूं। आज से कई मास पहले मैं मायामोह में फंसा हुआ, इच्छाओं का दास, वासनाओं का गुलाम और सांसारिक बंधनों में जकड़ा हुआ था। आपने मुझे बता दिया कि संसार में निर्लिप्त होकर क्योंकर रहना चाहिए। इतनी सम्पत्तिशालिनी होकर भी आप संन्यासिनी हैं। आपके जीवन ने मेरे लिए सदुपदेश का काम किया है।

गायत्री ज्ञानशंकर को विद्या और ज्ञान का अगाध सागर समझती थी। वह महान् पुरुष जिसकी लेखनी में यह सामर्थ्य हो कि मुझे रानी के पद से विभूषित करा दे, जिसकी वक्तृताओं को सुनकर बड़े-बड़े अंग्रेज उच्चाधिकारी दंग रह जाएं, जिसके सुप्रबंध की आज सारे जिले में धूम है, मेरा इतना भक्त हो, इस कल्पना से ही उसका गौरवशील हृदय विह्वल हो गया। ऐसे सम्मानों के अवसरों पर उसे अपने स्वामी की याद आ जाती थी। विनीत भाव से बोली—बाबूजी, यह सब भगवान् की दया है। उन्होंने आपको यह भक्ति प्रदान की है, नहीं तो लोग यावज्जीवन धर्मोपदेश सुनते रह जाते हैं और फिर भी उनके ज्ञानचक्षु नहीं खुलते। कहीं स्वामी से आपकी

भेंट हो गई होती तो आप उनके दर्शन-मात्र से ही मुग्ध हो जाते। वह धर्म और प्रेम के अवतार थे। मैं जो कुछ हूं उन्हीं की बनाई हुई हूं। यथासाध्य उन्हीं की शिक्षाओं का पालन करती हूं, नहीं तो मेरी इतनी गति कहां थी कि भक्तिरस का स्वाद पा सकती।

ज्ञानशंकर–मुझे भी यह खेद है कि उन महात्मा के दर्शनों से वंचित रह गया जिसके सदुपदेश में यह महान् शक्ति है, वह स्वयं कितना प्रतिभाशाली होगा ! मैं कभी-कभी स्वप्न में उनके दर्शन से कृतार्थ हो जाता हूं। कितनी सौम्य मूर्ति थी। मुखारविन्द से प्रेम की ज्योति-सी प्रसारित होती हुई जान पड़ती है। साक्षात् भगवान् के अवतार मालूम होते हैं।

दूसरे दिन से पर्दे की आयोजना हो गई और गायत्री नित्य प्रति इन सत्संगों में भाग लेने लगी। भक्तों की संख्या दिनों-दिन बढ़ने लगी। कीर्तन के समय लोग भावोन्मत्त होकर नाचने लगते। गायत्री के हृदय में भी यही प्रेम-तरंगें उठतीं, यहां तक कि ज्ञानशंकर भी स्थिर चित्त न रह सकते। कृष्ण के पवित्र प्रेम की लीलाएं उनके चित्त को भी एक क्षण के लिए प्रेम से आभासित कर देती थीं और इस प्रकाश में उन्हें अपनी कुटिलता और क्षुद्रता अत्यंत घृणोत्पादक दीख पड़ती। लेकिन सत्संग के समाप्त होते ही यह क्षणिक ज्योति फिर स्वार्थान्धकार में विलीन हो जाती थी। बालक कृष्ण की भोली-भाली क्रीड़ाएं उनकी वह मनोहर तोतली बातें, यशोदा का वह विलक्षण पुत्र-प्रेम, गोपियों की वह आत्म-विस्मृति, प्रीति के वह भावमय रहस्य, वह अनुराग के उद्‌गार, वह वंशी की मतवाली तान, वह यमुना-तट के विहार की कथाएं लोगों को अतीव आनंदप्रद और आत्मिक उल्लास का अनुभव देती थीं। भूतवादियों की दृष्टि में ये कथाएं कितनी ही लज्जास्पद क्यों न हों, पर उन भक्तों के अंत:करण इनके श्रवण-मात्र से ही गद्‌गद हो जाते थे। राधा और यशोदा का नाम आते ही आंखों से आंसू की झड़ी लग जाती थी। कृष्ण के नाम में क्या जादू है, इसका अनुभव हो जाता था।

एक बार वृन्दावन से रासलीला मण्डली आई और महीने-भर तक लीला करती रही। सारा शहर देखने को फट पड़ता था। ज्ञानशंकर प्रेम की मूर्ति बने हुए लोगों का आदर-सत्कार करते। छोटे-बड़े सबको खातिर से बैठाते। स्त्रियों के लिए विशेष प्रबंध कर दिया गया था। यहां गायत्री उनका स्वागत करती, उनके बाल-बच्चों को प्यार करती और मिठाई-मेवे बांटती। जिस दिन कृष्ण से मुथरा-गमन की लीला हुई, दर्शकों की इतनी भीड़ हुई कि सांस लेना मुश्किल था। यशोदा और नन्द की हृदय-विदारणी बातें सुनकर दर्शकों में कोहराम मच गया। रोते-रोते कितने ही भक्तों की घिग्घी बंध गई और गायत्री तो मूर्च्छित होकर गिर ही पड़ी। होश आने पर उसने अपने को अपने शयनगृह में पाया। कमरे में सन्नाटा छाया था, केवल ज्ञानशंकर उसे पंखा झल रहे थे ! गायत्री पर इस समय आलसता छाई हुई थी जब मनुष्य किसी थके हुए पथिक की भांति अधीर होकर छांह की ओर दौड़ता है, उसका हृदय निर्मल, विशुद्ध प्रेम से परिपूर्ण हो जाता है। उसने ज्ञानशंकर को बैठ जाने का संकेत किया और तब शैशवोचित सरलता से उनकी गोद में सिर रखकर आकांक्षापूर्ण भाव से बोली–मुझे वृन्दावन ले चलो।

तीसरे दिन रासलीला समाप्त हुई। उसी दिन ज्ञानशंकर गायत्री को संग ले बड़े समारोह के साथ वृन्दावन चले।

पैंतीस

सेशन जज के इजलास में एक महीने से मुकदमा चल रहा है। अभियुक्तों ने फिर सफाई दी। आज मनोहर का बयान था। इजलास में एक मेला-सा लगा हुआ था। मनोहर ने बड़ी निर्भीक दृढ़ता के साथ सारी घटना आदि से अंत तक बयान की और यदि जनता को अधिकार होता तो अन्य अभियुक्तों का बेदाग छूट जाना निश्चय था, किंतु अदालत जाब्ते और नियमों के बंधन में जकड़ी हुई भी। वह जानकर अनजान बनने पर बाध्य थी। मनोहर के अंतिम वाक्य बड़े मार्मिक थे–सरकार, माजरा यही है जो मैंने आपसे अरज किया। मैंने गौस खां को इसी कुल्हाड़ी से और इन्हीं हाथों से मारा। कोई मेरा साथी, सलाहकार, मेरा मददगार नहीं था। अब आपको अख्तियार है, चाहे सारे गांव को फांसी पर चढ़ा दें, चाहे काले-पानी भेज दें, चाहे छोड़ दें। फैजू, बिसेसर, ने जो कुछ कहा है सब झूठ है। दारोगाजी की बात तो मैं नहीं चलाता, पर सरकार, फैजू और बिसेसर को अपने घर पर बुलाएं और दिलासा दें कि पुलिस तुम्हारा कुछ न कर सकेगी तो मेरी सच-झूठ की परख हो जाय और मैं क्या कहूं। उन लोगों का काठ का कलेजा होगा जो इतने गरीबों को बेकसूर फांसी पर चढ़वाये देते हैं। भगवान् झूठ-सच सब देखते हैं। बिसेसर और फैजू की तो थोड़ी औकात है और दारोगाजी झूठ की रोटी खाते हैं, पर डाक्टर साहब इतने बड़े आदमी और ऐसे बड़े विद्वान कैसे झूठी गंगा में तैरने लगे, इसका मुझे अचरज है। इसके सिवा और क्या कहा जाए कि गरीबों का नसीब ही खोटा है कि बिना कसूर किए फांसी पाते हैं। अब सरकार से और पंचों से यही विनती है कि तुम इस घड़ी न्याय के आसन पर बैठे हो, अपने इंसाफ से दूध-का-दूध और पानी-का-पानी कर दो।

अदालत उठी। यह दुखियारे हवालात चले। और सभी ने तो मन को समझा लिया था कि भाग्य में जो कुछ बदा है वह होकर रहेगा, पर दुखरन भगत की छाती पर सांप लोटता रहता था। उसे रह-रहकर उत्तेजना होती थी कि अवसर पाऊं तो मनोहर को खूब आड़े हाथों लूं। किंतु मजबूर था, क्योंकि मनोहर सबसे अलग रखा जाता था। हां, वह बलराज को ताना दे-देकर अपने चित्त की दाह को शांत किया करता था। आज मनोहर का बयान सुनकर उसे और भी चिढ़ हुई। जब चिड़िया खेत चुग गई तो यह हांक लगाने चले हैं। उस घड़ी अकल कहां चली गई थी, जब जरा-सी बात पर कुल्हाड़ी बांधकर घर से चले थे। इस समय मार्ग में उसे मनोहर पर अपना क्रोध उतारने का मौका मिल गया। बोला–आज क्या झूठ-मूठ में बकवाद कर रहे थे। आदमी को तीर चलाने के पहले ही सोच लेना चाहिए कि यह किसको लगेगा, जब तीर कमान से निकल गया तो फिर पछताने से क्या होता है? तुम्हारे कारण सारा गांव चौपट हो गया। अनाथ लड़कों और औरतों की कौन सुध लेने वाला है? बेचारे रोटियों को तरसते होंगे। तुमने सारे गांव को मटियामेट कर दिया।

मनोहर को स्वयं आठों पहर यही शोक सताया करता था। गौस खां का वध करते समय भी उसे यही चिंता थी। इसलिए उसने खुद थाने में जाकर अपना अपराध स्वीकार कर लिया था। गांव को आफत से बचाने के लिए उसके किए जो कुछ हो सकता था, वह उसने किया और उसे दृढ़-विश्वास था कि चाहे मुझे दुष्कृत्य पर कितना ही पश्चात्ताप हो रहा हो, अन्य लोग मुझे क्षम्य ही न समझते होंगे, मुझसे सहानुभूति भी रखते होंगे। मुझे जलाने के लिए अंदर की आग क्या कम है कि ऊपर से भी तेल छिड़का जाए। वह दुखरन की ये कटु बातें सुनकर

बिलबिला उठा, जैसे पके हुए फोड़े में ठेस लग जाए। कुछ जवाब न दे सका।

आज अभियुक्तों के लिए प्रेमशंकर ने जेल के दारोगा की अनुमति से कुछ स्वादिष्ट भोजन बनवाकर भेजे थे। अपने उच्च सिद्धांतों के विरुद्ध वह जेलखाने के छोटे-छोटे कर्मचारियों की भी खातिर-खुशामद किया करते थे, जिसमें वे अभियुक्तों पर कृपा-दृष्टि रखें। जीवन के अनुभवों ने उन्हें बतला दिया था कि सिद्धांतों की अपेक्षा मुनष्य अधिक आदरणीय वस्तु है। औरों ने तो इच्छापूर्ण भोजन किया, लेकिन मनोहर इस समय हृदय के ताप से विकल था। उन पदार्थों की रुचि-वर्द्धक सुगन्धि भी उसकी क्षुधा को जाग्रत न कर सकी। आज वह शब्द उसके कानों में गूंज रहे थे जो अब तक केवल हृदय में ही सुनाई देते थे–तुम्हारे कारण सारा गांव मटियामेट हो गया, तुमने सारे गांव को चौपट कर दिया। हां, यह कलंक मेरे माथे पर सदा के लिए लग गया, अब यह दाग कभी नहीं छूटेगा ! जो अभी बालक हैं वह मुझे गालियां दे रहे होंगे। उनके बच्चे मुझे गांव का द्रोही समझेंगे। जब मरदों के यह विचार हैं, जो सब बातें जानते हैं, जिन्हें भली-भांति मालूम है कि मैंने गांव को बचाने कि लिए अपनी ओर से कोई बात उठा नहीं रक्खी और जो यह अंधेर हो रहा है वह समय का फेर है, तो भला स्त्रियां क्या कहती होंगी, जो बेसमझ होती हैं। बेचारी बिलासी गांव में किसी को मुंह न दिखा सकती होगी। उसका घर से निकलना मुश्किल हो गया होगा; और क्यों न कहें? उनके सिर पर बीत रही है तो कहेंगे क्यों न? अभी तो अगहनी घर में खाने को ही जाएगी, लेकिन खेत तो बोए न गए होंगे। चैत में जब एक दाना भी न उपजेगा, बाल-बच्चे-दाने को रोएंगे तब उनकी क्या दशा होगी? मालूम होता है इस कंबल में खटमल हो गए हैं, नोचे डालते हैं, और यह रोना साल-दो साल का नहीं हैं; कहीं सब काले-पानी भेज दिये गए, तो जन्म-भर का रोना है। कादिर मियां का लड़का तो घर संभाल लेगा, लेकिन और सभी तो मिट्टी में मिल जाएंगे और यह सब मेरी करनी का फल है।

सोचते-सोचते मनोहर को झपकी आ गई। उसने स्वप्न देखा कि एक चौड़े मैदान में हजारों आदमी जमा हैं। फांसी खड़ी है और मुझे फांसी पर चढ़ाया जा रहा है। हजारों आंखें मेरी ओर घृणा की दृष्टि से ताक रही हैं। चारों तरफ से यही ध्वनि आ रही है, इसी ने सारे गांव को चौपट किया। फिर उसे ऐसी भावना हुई कि मैं मर गया हूं और कितने ही भूत-पिशाच मुझे चारों ओर से घेरे हुए हैं और कह रहे हैं कि इसी ने हमें दाने-दाने को तरसाकर मार डाला, यही पापी है, इसे पकड़कर आग में झोंक दो। मनोहर के मुख से सहसा एक चीख निकल आई। आंखें खुल गईं। कमरा खूब अंधेरा था, लेकिन जागने पर भी वही पैशाचिक, भयंकर मूर्तियां उसके चारों तरफ मंडराती हुई जान पड़ती थीं। मनोहर की छाती बड़े वेग से धड़क रही थी। जी चाहता था, बाहर निकल भागे, किंतु द्वार बंद थे।

अकस्मात् मनोहर के मन में यह विचार अंकुरित हुआ–क्या मैं यही सब कौतुक देखने और सुनने के लिए जीऊं? सारा गांव, सारा देश मुझसे घृणा कर रहा है। बलराज भी मन में मुझे गालियां दे रहा होगा। उसने मुझे कितना समझाया, लेकिन मैंने एक न मानी। लोग कहते होंगे सारे गांव को बंधवाकर अब यह मुस्टंडा बना हुआ है। इसे तनिक भी लज्जा नहीं, सिर पटककर मर क्यों नहीं जाता ! बलराज पर भी चारों ओर से बौछारें पड़ती होंगी, सुन-सुनकर कलेजा फटता होगा। अरे ! भमवान्, यह कैसा उजाला है? नहीं, उजाला नहीं है। किसी पिशाच की लाल-लाल आंखें हैं, मेरी ही तरफ लपकी आ रही हैं ! या नारायण ! क्या करूं? मनोहर

की पिंडलियां कांपने लगीं। यह लाल आंखें प्रतिक्षण उसके समीप आती जाती थीं। वह न तो उधर देख ही सकता था और न उधर से आंख ही हटा सकता था, मानों किसी आसुरिक शक्ति ने उसके नेत्रों को बांध दिया हो। एक क्षण के बाद मनोहर को एक ही जगह कई आंखें दिखाई देने लगीं। नहीं, प्रज्ज्वलित, अग्निमय, रक्तयुक्त नेत्रों का एक समूह है ! धड़ नहीं, सिर नहीं, कोई अंग नहीं, केवल विदग्ध आंखें ही हैं, जो मेरी तरह टूटे हुए तारों की भांति सर्राटा भरती चली आती हैं। एक पल और हुआ, यह नेत्र-समूह शरीर-युक्त होने लगा और गौस खां के आहत स्वरूप में बदल गया। यकायक बाहर धड़ाके की आवाज हुई। मनोहर बदहवास होकर पीछे की दीवार की ओर भागा, लेकिन एक ही पग में दीवार से टकराकर गिर पड़ा, सिर में चोट आई। फिर उसे जान पड़ा कि कोई द्वार का ताला खोल रहा है। तब किसी ने पुकारा, 'मनोहर ! मनोहर !' मनोहर ने आवाज पहचानी। जेल का दारोगा था। उसकी जान-में-जान आई। कड़ककर बोला—हां साहब, जागता हूं। पैशाचिक जगत से निकलकर वह फिर चैतन्य संसार में आया। उसे अब नेत्र-समूह का रहस्य खुला। दारोगा की लालटेन की ज्योति थी, जो किवाड़ की दरारों से कोठरी में आ रही थी। इसी साधारण-सी बात ने उसे इतना सशंक कर दिया था। दारोगा आज गश्त करने निकला था।

दारोगा के चले जाने के बाद मनोहर कुछ सावधान हो गया। शंकोत्पादक कल्पनाएं शांत हुईं, लेकिन अपने तिरस्कार और अपमान की चिंताओं ने फिर आ घेरा। सोचने लगा, एक वह हैं जो उजड़े हुए गांवों को आबाद करते हैं और जिनका यश संसार गाता है। एक मैं हूं जिसने गांवों को उजाड़ दिया। अब कोई भोर के समय मेरा नाम न लेगा। ऐसा जान पड़ता है कि सभी डामिल जाएंगे, एक भी न बचेगा। अभी न जाने कितने दिन यह मामला चलेगा। महीने-भर लगे, दो महीने लग जाएं, इतने दिनों तक मैं सबकी आंखों में कांटे की तरह खटकता रहूंगा, सब मुझे कोसेंगे, गालियां दिया करेंगे। आज दुखरन ने कह ही सुनाया, कल कोई और ताना देगा। कादिर खां को भी यह ! कैद अखरती ही होगी। और तो और, कहीं बलराज भी न खुल पड़े। हा ! मुझे उसकी जवानी पर भी तरस न आया, मेरा लाल, मेरे ही हाथों....मैं अपने जवान बेटे को अपने ही हाथों....हा भगवान् ! अब यह दुःख नहीं सहा जाता। फांसी अभी न जाने कब होगी। कौन जाने कहीं सबके साथ मेरा भी डामिल हो जाए, तब तो मरते दम तक इन लोगों के जले-कटे वचन सुनने पड़ेंगे ! बलराज, तुझे कैसे बचाऊं? कौन जाने हाकिम यही फैसला करें कि यह जवान है, इसी ने कुल्हाड़ा मारा होगा। हा भगवान् ! तब क्या होगा? क्या अपनी ही आंखों से यह देखूंगा? नहीं, ऐसे जीने से मरना ही अच्छा है। नकटा जिये बुरे हवाल ! बस, एक ही उपाय है—हां !

छत्तीस

फैजुल्लाह खां का गौस खां के पद पर नियुक्त होना गांव के दुखियारों के घाव पर नमक छिड़कना था। पहले ही दिन से खींच-तान होने लगी और फैजू ने विरोधाग्नि को शांत करने की कोई जरूरत न समझी। अब वह मुसल्लम गांव के सत्ताधारी शासक थे। उनका हुक्म कानून के

तुल्य था। किसी को चूं करने की मजाल न थी। गांव का दूध, घी, उपले-लकड़ी, घास-पयाल, कद्दू-कुम्हड़े, हल-बैल सब उनके थे। जो अधिकार गौस खां को जीवन पर्यंत न प्राप्त हुए वह समय के उलट-फेर और सौभाग्य से फैजुल्लाह को पहले ही दिन से प्राप्त हो गए। अन्याय और स्वेच्छा के मैदान में अब उनके घोड़े को किसी ठोकर का भय न था। पहले कर्तारसिंह की ओर से कुछ शंका थी, किंतु उनकी नीति-कुशलता ने शीघ्र ही उसकी अभक्ति को परास्त कर दिया। वह अब उनका आज्ञाकारी सेवक, उनका परम शुभेच्छु था। वह अब गला फाड़-फाड़कर रामयण का पाठ करता। सारे गांव के ईंट-पत्थर जमा करके चौपाल के सामने ढेर लगा दिए और उन पर घड़ों पानी चढ़ाता। घंटों चंदन रगड़ता, घंटों भंग घोटता, कोई रोक-टोक करने वाला न था। फैजुल्ला खां नित्य प्रात:काल टांघन पर सवार होकर गांव का चक्कर लगाते, कर्तार और बिन्दा महाराज लट्ठ लिये उनके पीछे-पीछे चलते। जो कुछ नोचे-खसोटे मिल जाता वह लेकर लौट आते थे। यों तो समस्त गांव उनके अत्याचार से पीड़ित था, पर मनोहर के घर पर इन लोगों की विशेष कृपा थी। पूस में ही बिलासी पर बकाया लगान की नालिश हुई और उसके सब जानवर कुर्क हो गए। फैजू को पूरा विश्वास था कि अबकी चैत में मालगुजारी वसूल तो होगी नहीं, सभों पर बेदखली के दावे कर दूंगा और एक ही हल्ले में सबको समेट लूंगा। मुसल्लम गांव को बेदखल कर दूंगा, आमदनी चटपट दूनी हो जाएगी। पर इस दुष्कल्पना से उन्हें संतोष न होता था। डांट-फटकार, गाली-गलौज के बिना रोब जमाना कठिन था। अतएव नियमपूर्वक इस नीति का सदुपयोग किया जाने लगा। बिलासी मारे डर के घर में से निकलती न थी। उसकी रब्बी खेत में खड़ी सूख रही थी, पानी कौन दे? न बैल अपने थे और न किसी से मांगने का ही मुंह था।

एक दिन संध्या समय बिलासी अपने द्वार पर बैठी रो रही थी। यही उसका मामूल था। मनोहर की आत्म-हत्या की खबर उसे कई दिन पहले मिल चुकी थी। उसे अपने सर्वनाश का इतना शोक न था, जितना इस बात का कि कोई उसकी बात पूछने वाला न था। जिसे देखिए उसे जली-कटी सुनाता था। न कोई उसके घर आता, न जाता। यदि वह बैठे-बैठे उकता कर किसी के घर चली जाती, तो वहां भी उसका अपमान किया जाता। वह गांव की नागिन समझी जाती थी, जिसके विष ने समस्त गांव को काल का ग्रास बना दिया। और तो और उसकी बहू भी तो उसे ताने देती थी। सहसा उसने सुना, सुक्खू चौधरी अपने मंदिर में आकर बैठे हैं। वह तुरंत मंदिर की ओर चली। वह सहानुभूति की प्यासी थी। सुक्खू इन घटनाओं के विषय में क्या कहते हैं, यह जानने की उसे उत्कट इच्छा थी। उसे आशा थी कि सुक्खू अवश्य निष्पक्ष भाव से अपनी सम्मति प्रकट करेंगे। जब वह मंदिर के निकट पहुंची तो गांव की कितनी ही नारियों और बालिकाओं को वहां जमा पाया। सुक्खू की दाढ़ी बढ़ी हुई थी, सिर पर एक कन्टोप था और शरीर पर एक रामनामी चादर। बहुत उदास और दुखी जान पड़ते थे। नारियां उनसे गौस खां की हत्या की चर्चा कर रही थीं। मनोहर की खूब ले-दे हो रही थी। बिलासी मंदिर के निकट पहुंचकर ठिठक गई इतने में सुक्खू ने उसे देखा और बोले—आओ बिलासी, आओ बैठो। मैं तो तुम्हारे पास आप ही आने वाला था।

बिलासी—तुम तो कुशल से रहे?

सुक्खू—जीता हूं, बस यही कुशल है। जेल से छूटा तो बद्रीनाथ चला गया। वहां से जगन्नाथ होता हुआ चला आता हूं। बद्रीनाथ में एक महात्मा के दर्शन हो गए, उनसे गुरुमंत्र

भी ले लिया। अब मांगता-खाता फिरता हूं। गृहस्थी के जंजाल से छूट गया?

बिलासी ने डरते-डरते पूछा—यहां का हाल तो तुमने सुना ही होगा।

सुक्खू—हां, जब से आया हूं वही चर्चा हो रही है और उसे सुनकर मुझे तुम पर ऐसी श्रद्धा हो गई है कि तुम्हारी पूजा करने को जी चाहता है। तुम क्षत्राणी हो, अहीर की कन्या होकर भी क्षत्राणी हो। तुमने वही किया जो क्षत्राणियां किया करती हैं। मनोहर भी क्षत्री है, उसने वही किया जो क्षत्री करते हैं। वह वीर आत्मा था। इस मंदिर में अब उसकी समाधि बनेगी और उसकी पूजा होगी। इसमें अभी तक किसी देवता की स्थापना नहीं हुई है, अब उसी वीर मूर्ति की स्थापना होगी। उसने गांव की लाज रख ली, स्त्री की मर्जाद रख ली। यह सब क्षुद्र आत्माएं बैठी उसे बुरा-भला कह रही हैं। कहती हैं, उसने गांव का सर्वनाश कर दिया। इनमें लज्जा नहीं है, अपनी मर्जाद का कुछ गौरव नहीं है। उसने गांव का सर्वनाश नहीं किया, उसे वीर-गति दे दी, उसका उद्धार कर दिया। नारियों की रक्षा करना पुरुषों का धर्म है। मनोहर ने अपने धर्म का पालन किया। उसको बुरा वही कह सकता है जिसकी आत्मा मर गई है, जो बेहया हो गया है। गांव के दस-पांच पुरुष फांसी चढ़ जाएं तो कोई चिंता नहीं, यहां एक-एक स्त्री के पीछे लाखों सिर कट गए हैं। सीता के पीछे रावण का राज्य विध्वंस हो गया। द्रौपदी के पीछे अठारह लाख योधा मर मिटे। इज्जत के लिए दस-पांच जानें चली जाएं तो क्या बड़ी बात है। धन्य है मनोहर, तेरे साहस को, तेरे पराक्रम को, तेरे कलेजे को!

सुक्खू का एक-एक शब्द वीर रस में डूबा हुआ था। बिलासी के हृदय में वह गुदगुदी हो रही थी, जो अपनी सराहना सुनकर हो सकती है। जी चाहता था, सुक्खू के चरणों पर सिर रख दूं, किंतु अन्य स्त्रियां सुक्खू की ओर कौतूहल से ताक रही थीं कि यह क्या बकता है।

एक क्षण के बाद सुक्खू ने बिलासी से पूछा—खेती-बारी का क्या हाल है?

बिलासी के खेत सूख रहे थे, पर अपनी विपत्ति-कथा सुनाकर वह सुक्खू को दुखी नहीं करना चाहती थी। बोली—दादा, तुम्हारी दया से खेती अच्छी हो गई है, कोई चिंता नहीं है।

कई और साधु आ गए, जो सुक्खू के साथी जान पड़ते थे। उन्होंने धूनी जलायी और चरस के दम लगाना शुरू किये। गांव के लोग भी एक-एक करके वहां से चलने लगे। जब बिलासी जाने लगी तो सुक्खू ने कहा—बिलासी, मैं पहर रात रहे यहां से चला जाऊंगा, घूमता-घामता कई महीनों में आऊंगा। तब यहां मूर्ति की स्थापना होगी। हम उस यज्ञ के लिए भीख मांगकर रुपये जमा करते हैं। तुम्हें किसी बात की तकलीफ हो तो कहो!

बिलासी—नहीं दादा, तुम्हारी दया से कोई तकलीफ नहीं है।

सुक्खू तो प्रातःकाल चले गए, पर बिलासी पर उनकी भावनापूर्ण बातों का गहरा असर पड़ा। अब वह किसी दलित दीन की भांति गांव वालों के व्यंग्य और लांछन न सुनती और न किसी को उस पर उतनी निर्भयता से आक्षेप करने का साहस ही होता था। इतना ही नहीं, बिलासी की बातचीत, चाल-ढाल से अब आत्म-गौरव टपका पड़ता था। कभी-कभी वह बढ़कर बातें करने लगती पड़ोसियों से कहती—तुम अपनी लाज बेचकर अपनी चमड़ी बचाओ, यहां इज्जत के पीछे जान तक दे देते हैं। विधवा हो गई तो क्या, घर सत्यानाश हुआ तो क्या, किसी के सामने आंखें तो नीची नहीं हुईं! अपनी लाज तो रक्खी। पति की मृत्यु और पुत्र का वियोग अब उतना असह्य न था।

एक दिन उसने इतनी डींग मारी कि उसकी बहू से न रह गया। चिढ़कर बोली—अम्मां,

ऐसी बातें करके घाव पर नमक न छिड़को। तुम सब सुख-बिलास कर चुकी हो, अब विधवा ही हो गई तो क्या? उन दुखियारियों से पूछो जिनकी अभी पहाड़-सी उमर पड़ी है जिन्होंने अभी जिंदगी का कुछ सुख नहीं जाना है। अपनी मरजाद सबको प्यारी होती है, पर उसके लिए जन्म-भर का रंडापा सहना कठिन है। तुम्हें क्या, आज नहीं कल रांड़ होती ! तुम्हारे भी खेलने-खाने के दिन होते तो देखती कि अपनी लाज को कितनी प्यारी समझती हो।

बिलासी तिलमिला उठी। उस दिन से बहू से बोलना छोड़ दिया, यहां तक कि बलराज की भी चर्चा न करती; जिस पुत्र पर जान देती थी, उसके नाम से भी घृणा करने लगी। बहू के इन अरुचिकर शब्दों ने उसके मातृ-स्नेह का अंत कर दिया, जो पच्चीस साल से जीवन का अवलंब और आधार बना हुआ था। कुछ दिनों तक तो उसने मौन रूप से अपना कोप प्रकट किया, किंतु जब यह प्रयोग सफल होता न दीख पड़ा तो उसने बहू की निन्दा करनी शुरू की। गांव में कितनी ही ऐसी वृद्धा महिलाएं थीं जो अपनी बहुओं से जला करती थीं। उन्हें बिलासी से सहानुभूति हो गई। शनै-शनैः यह कैफियत हुई कि बिलासी के बरोठे में सासों की नित्य बैठक होती और बहुओं के खूब दुखड़े रोए जाते। उधर बहुओं ने भी अपनी आत्म-रक्षा के लिए एक सभा स्थापित की। इसकी बैठक नित्य दुखरन भगत के घर होती। बिलासी की बहू इस सभा की संचालिका थी। इस प्रकार दोनों में विरोध बढ़ने लगा। यहां की बातें किसी-न-किसी प्रकार वहां जा पहुंचती और वहां की बातें भी किन्हीं गुप्त दूतों द्वारा यहां आ जातीं। उनके उत्तर दिये जाते, उत्तरों के प्रत्युत्तर मिलते और नित्य यही कार्यक्रम चलता रहता था। इस प्रश्नोत्तर में जो आकर्षण था, वह अपनी विपत्ति और विडंबना पर आंसू बहाने में कहां था? इस व्यंग्य-संग्राम में एक सजीव आनंद था। द्वेष की कानाफूसी शायद मधुर गान से अधिक शोकहारी होती है।

यहां तो यह हाल था, उधर फसल खेतों में सूख रही थी। मियां फैजुल्लाह सूखे खेतों को देखकर खिल जाते थे। देखते-देखते चैत का महीना आ गया। मालगुजारी का तकाजा होने लगा। गांव के बचे हुए लोग अब चेते। वह भूल-से गए थे कि मालगुजारी भी देनी है। दरिद्रता में मनुष्य प्रायः भाग्य का आश्रित हो जाता है। फैजुल्लाह ने सख्ती करनी शुरू की। किसी को चौपाल के सामने धूप में खड़ा करते, किसी की मुश्कें कसकर पिटवाते। दीन नारियों के साथ और भी पाशविक व्यवहार किया जाता, किसी की चूड़ियां तोड़ी जातीं, किसी के जूड़े नोचे जाते ! इन अत्याचारों को रोकने वाला अब कौन था? सत्याग्रह में अन्याय को दमन करने की शक्ति है, यह सिद्धांत भ्रांतिपूर्ण सिद्ध हो गया। फैजू जानता था कि पत्थर दबाने से तेल न निकलेगा, लेकिन इन अत्याचारों से उसका उद्देश्य गांव वालों का मान-मर्दन करना था। इन दुष्कृत्यों से उसकी पशुवृति को असीम आनंद मिलता था।

धीरे-धीरे जेठ भी गुजरा, लेकिन लगान की एक कौड़ी न वसूल हुई। खेत में अनाज होता तो कोई-न-कोई महाजन खड़ा हो जाता, लेकिन सूखी खेती को कौन पूछता है? अंत में ज्ञानशंकर ने बेदखली दायर करने की ठान ली। इसी की देर थी, नालिश हो गई, किंतु गांव में रुपयों का बंदोबस्त न हो सका। उज्रदारी करने वाला भी कोई न निकला। सबको विश्वास था कि एकतरफा डिगरी होगी और सब-के-सब बेदखल हो जाएंगे। फैजू और कर्तार बगलें बजाते फिरते थे। अब मैदान मार लिया है ! खां साहब गए तो क्या, गांव साफ हो गया। कोई दाखिलकार-असामी रहेगा ही नहीं, जितनी चाहें जमीन की दर बढ़ा सकते हैं। हजार की जगह

दो हजार वसूल होंगे। इस मालगुजारी का सेहरा मेरे सिर बंधेगा। दूर-दूर तक मेरी धूम हो जाएगी। इन कल्पनाओं से फैजू मियां फूले न समाते।

निदान फैसले की तारीख आ गई। करतारसिंह ने मलमल का ढीला कुरता और गुलाबी पगड़ी निकाली, जूते में कड़वा तेल भरा, लाठी में तेल मला, बाल बनवाये और माथे पर भभूत लगाई। फैजुल्लाह खां ने चारजामे की मरम्मत कराई, अपनी काली अचकन और सफेद पगड़ी निकाली। बिन्दा महाराज ने भी धुली हुई गाढ़े की मिर्जई और गेरू में रंगी हुई धोती पहनी। बेगारों के सिरों पर कंबल, टाट आदि लादे और तीनों आदमी कचहरी चलने को तैयार हुए। केवल खां साहब की नमाज की देर थी।

किंतु गांव में जरा भी हलचल न थी। मर्दों में कादिर के छोटे लड़के के सिवा और सभी नीच जातियों के लोग थे, जिन्हें मान-अपमान का ज्ञान ही न था; और वह बेचारा कानूनी बातों से अनभिज्ञ था। झपट के दिल में हौल समाया हुआ था कि घर से बाहर ही न निकलते थे। रहीं स्त्रियां, वे दीन अबलाएं कानून का मर्म क्या जानें! आज भी नियमानुसार उनके दोनों अखाड़े जमे हुए थे। बूढ़ियां कहती थीं, खेत निकल जाएं, हमारी बला से, हमें क्या करना है? आज मरे, कल दूसरा दिन, रहे भी तो हमारे किस काम आएंगे? इन रानियों का घमंड तो चूर हो जाएगा! यहां तक कि बिलासी भी जो इस सारी विपत्ति-कथा की कैकेयी थी, आज निश्चिंत बैठी हुई थी। विपक्षी दल को आज संधि-प्रार्थना की इच्छा हो रही थी; लेकिन कुछ तो अभिमान और कुछ प्रार्थना की स्वीकृति की निराशा इच्छा को व्यक्त न होने देती थी।

आठ बजे खां साहब की नमाज पूरी हुई। इधर बिन्दा महाराज ने चबेना खाकर तंबाकू फांका और कर्तारसिंह ने घोड़े को लाने का हुक्म दिया कि इतने में सुक्खू चौधरी सामने से आते दिखाई दिए। वही पहले का वेश था, सिर पर कन्टोप, ललाट पर चंदन, गले में चादर, हाथ में एक चिमटा। आकर चौपाल में जमीन पर बैठ गए। गांव के लड़के जो उनके साथ दौड़ते आए थे बाहर ही रुक गए। फैजू ने पूछा—चौधरी कहो, खैरियत से तो रहे? तुम्हें जेल से निकले कितना अरसा हुआ?

चौधरी ने कर्तार से चिलम ली, एक लंबा दम लगाया और मुंह से धुएं को निकालते हुए बोले—आज बेदखली की तारीख है न?

कर्तार—कागद-पत्तर देखा जाए तो जान पड़े। यहां नित एक-न-एक मामला लगा ही रहता है। कहां तक कोई याद रखे।

चौधरी—बेचारों पर एक विपत्ति तो थी ही, यह एक और बला सवार हो गई।

फैजू—मैं मजबूर हो गया। क्या करता? जाब्ते और कानून से बंधा हुआ हूं। चैत, बैसाख, जेठ—तीन महीने तक तकाजे करता रहा, इससे ज्यादा मेरे वश में और क्या था?

यह कहकर उन्होंने चौधरी की ओर इस अंदाज से देखा, मानो वह शील और दया के पुतले हैं।

चौधरी—अगर आज सब रुपये वसूल हो जाएं तो मुकदमा खारिज हो जाएगा न?

फैजू ने विस्मित होकर चौधरी को देखा और बोले—खर्चे का सवाल है।

चौधरी—अच्छा, बतलाइए आपके कुल कितने रुपये होते हैं। खर्च भी जोड़ लीजिए।

यह कहकर चौधरी ने कमर से नोटों का पुलिन्दा निकाला। एक थैली में से कुछ रुपये भी निकाले और खां साहब की ओर प्रतीक्षा भाव से देखने लगे। फैजू के होश उड़ गए; कर्तार

के चेहरे का रंग उड़ गया, मानो घर से किसी के मरने की खबर आ गई हो। बिन्दा महाराज ने ध्यान से रुपयों को देखा। उन्हें सन्देह हो रहा था कि यह कोश इन्द्रजाल न हो। किसी के मुंह से बात न निकलतीं थी। जिस आशालता को बरसों से पाल और सींच रहे थे वह आंख के सामने एक पशु के विकराल मुख का ग्रास बनी जाती थी। इस सुअवसर के लिए लोगों ने कितनी आयोजनाएं की थीं, कितनी कूटनीति से काम लिया था, कितने अत्याचार किए थे! और जब वह शुभ घड़ी आई तो निर्दय भाग्य-विधाता उसे हाथों से छीन लेता था। गौस खां का खून रंग लाकर अब निष्फल हुआ जाता था। आखिर फैजू ने बड़े गंभीर भाव से कहा—इसका फैसला तो अब अदालत के हाथ है।

अदालत का नाम लेकर वह चौधरी को भयभीत करना चाहते थे।

चौधरी—अच्छी बात है तो वहीं चलो।

कर्तार ने नैतिक सर्वज्ञता के भाव से कहा—पहले ये लोग मोहलत की दर्खास्स दें, उस दर्खास्स पर हमारी तरफ से उजरदारी होगी, इस पर हाकिम जो कुछ तजबीज करेगा वह होगा। हम लोग रुपये कैसे ले सकते हैं? जाब्ते के खिलाफ है।

बिन्दा महाराज के सम्मुख एक दूसरी ही समस्या उपस्थित थी—इसे इतने रुपये कहां मिल गए। अभी जेल से छूटकर आया है। गांव वालों से फूटी कौड़ी भी न मिली होगी। इसके पास जो लेई-पूंजी थी वह तालाब और मंदिर बनवाने में खर्च हो गई। अवश्य उसे कोई ऐसी जड़ी-बूटी हाथ लग गई है, जिससे वह रुपये बना लेता है। साधुओं के हाथ में बड़े-बड़े कर्तब होते हैं।

फैजू समझ गए कि इस धांधली से काम न चलेगा। कहीं इसने अदालत के सामने जाकर सब रुपये गिन दिए तो अपना-सा मुंह लेकर रह जाना पड़ेगा। निराश होकर जूते उतार दिए और नालिश की पर्तें निकालकर हिसाब जोड़ने लगे, उस पर अदालत का खर्च, अमलों की रिश्वत, वकील का हिसाब, मेहनताना, जमींदार का नजराना आदि और बढ़ाया तब बोले—कुल सत्रह सौ पचास रुपये होते हैं।

चौधरी—फिर देख लीजिए, कोई रकम रह न गई हो। मगर यह समझ लेना कि हिसाब से एक कौड़ी भी बेसी ली तो तुम्हारा भला न होगा।

बिन्दा महाराज ने सशंक होकर कहा—खां साहब, जरा फिर से जोड़ लो।

कर्तार—सब जोड़ा-जोड़ाया है, रात-दिन तो यही किया करते हैं, लाओ निकालो सत्रह सौ पचास रुपये।

चौधरी—सत्रह सौ पचास रुपये लेना है तो अदालत में ही लेना, यहां तो मैं एक हजार रुपये से बेसी न दूंगा।

फैजू—और अदालत का खर्च?

सहसा चौधरी ने अपना चिमटा उठाया और इतने जोर से फैजुल्लाह के सिर पर मारा कि वह जमीन पर गिर पड़ा। तब बोले—यही अदालत का खर्च है, जी चाहे और ले लो। बेईमान, पापी कहीं का! कारिंदा बना फिरता है। कल का बनिया आज का सेठ! इतनी जल्दी आंखों में चरबी छा गई। तू भी तो किसी जमींदार का असामी है। तेरा घर देख आया हूं, तेरे मां-बाप, भाई-बन्दु सबका हाल देख आया हूं। वहां उन सबका बेगार भरते-भरते कचूमर निकल जाता है। तूने चार अक्षर पढ़ लिये तो जमीन पर पांव नहीं रखता। दीन-दुखियारों को लूटता फिरता

है। आठ सौ रुपये की नालिश है, सौ रुपये अदालत का खरचा है। मैं कचहरी जाकर पेशकार से पूछ आया। उसके तू सत्रह सौ पचास रुपये मांगता है। और क्यों रे ठाकुर, तू भी इस तुरुक के साथ पड़कर अपने को भूल गया? चिल्ला-चिल्लाकर रामायण पढ़ता है, भागवत की कथा कहता है, ईंट-पत्थर के देवता बनाकर पूजता है? क्या पत्थर पूजते-पूजते तेरा हृदय भी पत्थर हो गया? यह चन्दन क्यों लगाता है? तुझे इसका क्या अधिकार है? तू धन के पीछे धरम को भूल गया? तुझे धन चाहिए? तेरे भाग्य में धन लिखा है तो यह थैली उठा ले। (यह कहकर चौधरी ने रुपयों की थैली कर्तार की ओर फेंकी) देख तो तेरे भाग्य में धन है या नहीं? तेरा मन इतना पापी हो गया है कि तू सोना भी छुए तो मिट्टी हो जायगा। थैली छूकर देख ले, अभी ठीकरी हुई जाती है।

कर्तार ने पहले बड़ी धृष्ट अश्रद्धा से बातें करनी शुरू की थीं। वह यह दिखाना चाहता था, मैं साधुओं का भेष देखकर रोब में आने वाला आदमी नहीं हूं। ऐसे भोले-भाले काठ के उल्लू कहीं और होंगे। पर चौधरी की यह हिम्मत देखकर और यह कठोपदेश सुनकर उसकी अभक्ति लुप्त हो गई। उसे अब ज्ञान हुआ कि यह वह चौधरी नहीं है जो गौस खां की हां में हां मिलाया करता था, किंतु बिना परीक्षा किए वह अब भी भक्ति-सूत्र में न बंधना चाहता था, यहां तक कि वह उनकी सिद्धि का परदा खोलकर उनकी खबर लेने पर उतारू था। उसने थैली को ध्यान से देखा, रुपयों से भरी हुई थी। तब उसने डरते-डरते थैली उठाई, किंतु उसके छूते ही एक अत्यंत विस्मयकारी दृश्य दिखाई दिया। रुपये ठीकरे हो गए ! यह कोई मायालीला थी अथवा कोई जादू या सिद्धि, कौन कह सकता है। मदारी का खेल था या नजरबंदी का तमाशा, चौधरी ही जाने। रुपये की जगह साफ लाल-लाल ठीकरे झलक रहे थे। कर्तार के हाथ से थैली छूटकर गिर पड़ी। वह हाथ बांधकर बड़े भक्ति-भाव से चौधरी के पैरों पर गिर पड़ा और बोला—बाबा मेरा अपराध क्षमा कीजिए, मैं अधम, पापी, दुष्ट हूं, मेरा उद्धार कीजिए। मैं अब आपकी ही सेवा में रहूंगा, मुझे इस लोभ के गड्ढे से निकालिए।

चौधरी—दीनों पर दया करो और वही पुण्य तुम्हें इस गड्ढे से निकालेगा। दया ही सब मंत्रों का मूल है।

फैजू मियां गर्द झाड़कर उठ बैठे थे। वृद्ध दुर्बल चौधरी उस समय उनकी आंखों में एक देव-सा दीख पड़ता था। यह चमत्कार देखकर वह भी दंग रह गए। अपनी खता माफ कराने लगे—बाबाजी क्या करें ! जंजाल में फंसकर सभी कुछ करना पड़ता है। अहलकार, अमले, अफसर, अर्दली, चपरासी सभी की खातिर करनी पड़ती है। अगर यह चालें न चलें तो उनका पेट कैसे भरें। वहां एक दिन भी निर्बाह न हो। अब मुझे भी गुलामी में कबूल कीजिए।

कर्तार ने चिलम पर चरस रखकर चौधरी को दी। बिन्दा महाराज का संशय भी मिट चुका था। बोले—कुछ जलपान की इच्छा हो तो शर्बत बनाऊं। फैजुल्लाह ने उनके बैठने को अपना कालीन बिछा दिया। चौधरी प्रसन्न हो गए। अपनी झोली से एक जड़ी निकालकर दी और कहा—यह मिर्गी की आजमाई हुई दवा है। जनम की मिर्गी भी इससे जाती रहती है, इसे हिफाजत से रखना और देखो, आज ही मुकदमा उठा लेना। यह एक हजार के नोट हैं; गिन लो। सब असामियों को अलग-अलग बाकी की रसीद दे देना। अब मैं जाता हूं। कुछ दिनों में फिर आऊंगा।

सैंतीस

प्रात:काल ज्योंही मनोहर की आत्म-हत्या का समाचार विदित हुआ, जेल में हाहाकार मच गया। जेल के दारोगा, अमले, सिपाही, पहरेदार सबके हाथों के तोते उड़ गए। जरा देर में पुलिस को खबर मिली, तुरंत छोटे-बड़े अधिकारियों का दल आ पहुंचा। मौके की जांच होने लगी, जेल कर्मचारियों के बयान लिखे जाने लगे। एक घंटे में सिविल सर्जन और डाक्टर प्रियनाथ भी आ गए। फिर मैजिस्ट्रेट, कमिश्नर और सिटी मैजिस्ट्रेट का आगमन हुआ। दिन भर तहकीकात होती रही। दूसरे दिन भी यही जमघट रही और यही कार्यवाही होती रही, लेकिन सांप मर चुका था, उसकी बांबी को लाठी से पीटना व्यर्थ था। हां, जेल-कर्मचारियों पर बन आई, जेल दारोगा छ: महीने के लिए मुअत्तल कर दिए गए, रक्षकों पर कड़े जुर्माने हुए। जेल के नियमों में सुधार किया गया, खिड़कियों पर दोहरी छड़ें लगा दी गईं। शेष अभियुक्तों के हाथों में हथकड़ियां न डाली गई थीं, अब दोहरी हथकड़ियां डाल दी गईं। प्रेमशंकर यह खबर पाते ही दौड़े हुए जेल आए, पर अधिकारियों ने उन्हें फाटक के सामने से ही भगा दिया। अब तक जेल-कर्मचारियों ने उनके साथ सब प्रकार की रिआयत की थी। अभियुक्तों से उनकी मुलाकात करा देते थे, उनके यहां से आया हुआ भोजन अभियुक्तों को पहुंचा देते थे। पर आज उन सबका रुख बदला हुआ था। प्रेमशंकर जेल के सामने खड़े सोच रहे थे, अब क्या करूं कि पुलिस का प्रधान अफसर जेल से निकला और उन्हें देखकर बोला—यह तुम्हारे ही उपदेशों का फल है, तुम्हीं ने शेष अपराधियों को बचाने के लिए आत्महत्या कराई है। जेल के दारोगा ने भी उनसे इसी तरह की बात की। इन तिरस्कारों से प्रेमशंकर को बड़ा दु:ख हुआ। जीवन उन्हें नए-नए अनुभवों की पाठशाला-सा जान पड़ता था। वह पहला ही अवसर था कि उनकी दयार्द्रता और सदिच्छा की अवहेलना की गई। वह आध घंटे तक चिंता में डूबे वहीं खड़े रहे, तब अपने झोंपड़े की ओर चले, मानो अपने किसी प्रिय बंधु की दाह-क्रिया करके आ रहे हों।

घर पहुंचकर वह फिर उन्हीं विचारों में मग्न हुए। कुछ समझ में न आता था कि जीवन का क्या लक्ष्य बनाया जाए? क्षुद्र लौकिकता से चित्त को घृणा होती थी और उत्कृष्ट नियमों पर चलने के नतीजे उल्टे होते थे। उन्हें अपनी विवशता का ऐसा निराशाजनक अनुभव कभी नहीं हुआ था। मानव-बुद्धि कितनी भ्रमयुक्त है, उसकी दृष्टि कितनी संकीर्ण ! इसका ऐसा स्पष्ट प्रमाण कभी न मिला था। यद्यपि वह अहंकार को अपने पास न आने देते थे, पर वह किसी गुप्त मार्ग से उनके हृदयस्थल में पहुंच जाता था। अपने सत्कार्यों को सफल होते देखकर उनका चित्त उल्लसित हो जाता था और हृदय-कणों में किसी ओर से मंद स्वरों में सुनाई देता था—मैंने कितना अच्छा काम किया ! लेकिन ऐसे प्रत्येक अवसर पर एक ही क्षण के उपरांत उन्हें कोई ऐसी चेतावनी मिल जाती थी, जो उनके अहंकार को चूर-चूर कर देती थी। मूर्ख ! तुझे अपनी सिद्धांत-प्रियता का अभिमान है। देख वह कितने कच्चे हैं। तुझे अपनी बुद्धि और विद्या का घमंड है। देख, वह कितना भ्रांतिपूर्ण है। तुझे अपने मान और सदाचार का गरूर है। देख, वह कितनी अपूर्ण और भ्रष्ट है। क्या तुम्हें निश्चय है कि तुम्हारी ही उत्तेजनाएं गौस खां की हत्या का कारण नहीं हुई? तुम्हारे ही कटु उपदेशों ने मनोहर की जान नहीं ली? तुम्हारे ही वक्र नीतिपालन ने ज्ञानशंकर को, श्रद्धा को तुमसे विमुख नहीं किया?

यह सोचते-सोचते उनका ध्यान अपनी आर्थिक कठिनाइयों की ओर गया। अभी न जाने

यह मुकदमा कितने दिनों चलेगा। इर्फान अली कोई तीन हजार ले चुके और शायद अभी उनका इतना ही बाकी है। गन्ने तैयार हैं, लेकिन हजार रुपये से ज्यादा न ला सकेंगे। बेचारे गांव वालों को कहां तक दबाऊं? फलों से जो कुछ मिला वह सब खर्च हो गया। किसी को अभी तक हिसाब तक नहीं दिखाया। न जाने यह अपने मन में क्या समझते हों। लखनपुर की कुछ खबर न ले सका ! मालूम नहीं, उन दुखियों पर क्या बीत रही है।

अकस्मात् भोला की स्त्री बुधिया आकर बोली—बाबू, दो दिन से घर में चूल्हा नहीं जला और आपका हलवाहा मेरी जान खाए जाता है। बताइए, मैं क्या करूं। क्या चोरी करूं? दिन भर चक्की पीसती हूं और जो कुछ पाती हूं, वह सब इसी गृहस्थी में झोंक देती हूं, तिस पर भी भरपेट दाना नसीब नहीं होता। आप उसके हाथ में तलब न दिया करें। सब जुए में उड़ा देता है। आप उसे न डांटते हैं, न समझाते हैं। आप समझते हैं कि मजूरी बढ़ाते ही वह ठीक हो जाएगा। आप उसे हजार का महीना भी दें तो भी उसके लिए पूरे न पड़ेंगे। आज से आप तलब मेरे हाथ में दिया करें !

प्रेमशंकर—जुआ खेलना तो उसने छोड़ न दिया था?

बुधिया—वही दो-एक महीने नहीं खेला था। बीच-बीच में भी कभी छोड़ देता है, लेकिन उसकी तो लत पड़ गई है। आप तलब मुझे दे दिया करें, फिर देखूं कैसे जुआ खेलता है। आपका सीधा सुभाव है, जब मांगता है तभी निकालकर दे देते हैं।

प्रेम—मुझसे तो वह यही कहता है कि मैंने जुआ छोड़ दिया। जब कभी रुपये मांगता है, तो यही कहता है कि खाने को नहीं है। न दूं तो क्या करूं?

बुधिया—तभी तो उसके मिज़ाज नहीं मिलते। कुछ पेशगी तो नहीं ले गया है?

प्रेम—उसी से पूछो, ले गया होगा तो बताएगा न।

बुधिया—आपके यहां हिसाब-किताब नहीं है क्या?

प्रेम—मुझे कुछ याद नहीं है।

बुधिया—आपको याद नहीं है तो वह बता चुका। शराबियों-जुआरियों के भी कहीं ईमान होता है?

प्रेम—क्यों, क्या शराब से ईमान धुल जाता है?

बुधिया—धुल नहीं जाता तो और क्या? देखिए, बुला के आपके मुंह पर पूछती हूं। या नारायन, निगोड़ा तलब की तलब उड़ा देता है, उस पर पेशगी लेकर खेल डालता है। अब देखूं, कहां से भरता है?

यह कहकर वह झल्लाई हुई गई और जरा देर में भोला को साथ लिए आई। भोला की आंखें लाल थीं। लज्जा से सिर झुकाए खड़ा था। बुधिया ने पूछा—बताओ, तुमने बाबूजी से कितने रुपये पेशगी लिए हैं?

भोला ने स्त्री की ओर सरोष नेत्रों से देखकर कहा—तू कौन होती है पूछने वाली? बाबूजी जानते नहीं क्या?

बुधिया—बाबूजी ही तो पूछते हैं, नहीं तो मुझे क्या पड़ी थी?

भोला—इनके मेरे ऊपर लाख आते हैं और मैं इनका जन्म भर का गुलाम हूं।

बुधिया—देखा बाबूजी, कहती न थी, वह कुछ न बताएगा? जुआरी कभी ईमान के सच्चे हुए हैं कि यही होगा?

भोला–तू समझती है मैं बातें बना रहा हूं। बातें उनसे बनाई जाती हैं जो दिल के खोटे होते हैं, जो एक धेला देकर पैसे का काम कराना चाहते हैं। देवताओं से बातें नहीं बनाई जातीं। यह जान इनकी है, यह तन इनका है, इशारा भर मिल जाए।

बुधिया–अरे जा, जालिए कहीं के ! बाबूजी बीसों बार समझा के हार गए। तुझसे एक जुआ तो छोड़ा जाता नहीं, तू और क्या करेगा? जान पर खेलने वाले और होते हैं।

भोला–झूठी कहीं की, मैं कब जुआ खेलता हूं?

प्रेम–सच कहना भोला, क्या तुम अब भी जुआ खेलते हो? तुम मुझसे कई बार कह चुके हो कि मैंने बिल्कुल छोड़ दिया।

भोला का गला भर आया। नशे में हमारे मनोभाव अतिशयोक्तिपूर्ण हो जाते हैं, वह जोर से रोने लगा। जब ग्लानि का वेग कम हुआ तो सिसकियां लेता हुआ बोला–मालिक, यही आपका एक हुकुम है, जिसे मैंने टाला है। और कोई बात नहीं टाली। आप मुझे यहीं बैठाकर सिर पर सौ जूते गिनकर लगाएं, तब यह भूत उतरेगा। मैं रोज सोचता हूं कि अब कभी न खेलूंगा, पर सांझ होते ही मुझे जैसे कोई धकेलकर फड़ की ओर ले जाता है। हां ! मैंने आपसे झूठ बोला, आपसे कपट किया, भगवान् मेरी क्या गति करेंगे? यह कहकर वह फिर फूट-फूटकर रोने लगा।

लज्जा-भाव की यह पवित्रता देखकर प्रेमशंकर की आंखें भी भर आईं। वह शराबी और जुआरी भोला, जिसे वह नीच समझते थे, ऐसा पवित्रात्मा, ऐसा निर्मल-हृदय था ! उन्होंने उसे गले लगा लिया–तुम क्यों रोते हो? मैं तुम्हें कुछ कहता थोड़े ही हूं?

भोला–आपका कुछ न कहना ही तो मुझे मार डालता है। मुझे गालियां दीजिए, कोड़े से मारिए, तब यह नशा उतरेगा। हम लातों के देवता बातों से नहीं मानते।

प्रेम–तुम्हारी तलब बुधिया को दे दिया करूं?

भोला–जी हां, आज से मुझे एक कौड़ी भी न दिया करें।

प्रेम–(बुधिया से) लेकिन जो यह जुए से भी बुरी कोई आदत पकड़ ले तो?

बुधिया–जुए से बुरी चोरी है। जिस दिन इसे चोरी करते देखूंगी, जहर दे दूंगी। मुझे रांड़ बनना मंजूर है, चोरी की लुगाई नहीं बन सकती।

उसने भोला का हाथ पकड़कर घर चलने का इशारा किया और प्रेमशंकर के लिए एक जटिल समस्या छोड़ गई।

अड़तीस

डाक्टर इर्फान अली बैठे सोच रहे थे कि मनोहर की आत्म-हत्या का शेष अभियुक्तों पर क्या असर पड़ेगा? कानूनी ग्रंथों का ढेर सामने रखा हुआ था। बीच में विचार करने लगते थे, मैंने यह मुकदमा नाहक लिया। रोज सौ रुपये का नुकसान हो रहा है। और अभी मालूम नहीं कितने दिन लगेंगे। लाहौल ! फिर रुपये की तरफ ध्यान गया। कितना ही चाहता हूं कि दिल को इधर न आने दूं, मगर ख्याल आ ही जाता है। वकालत छोड़ते भी नहीं बनती। ज्ञानशंकर से प्रोफेसरी

के लिए कह तो आया हूं, लेकिन जो सचमुच यह जगह मिल गई तो टेढ़ी खीर होगी! मैं अब ज्यादा दिनों तक इस पेशे में रह नहीं सकता, और न सही तो सेहत के लिए जरूर ही छोड़ देना पड़ेगा। बस, यही चाहता हूं कि घर बैठे एक हजार रुपये माहवारी रकम मिल जाया करे। अगर प्रोफेसरी से एक हजार रुपये मिले तो काफी होगा। नहीं, अभी छोड़ने का वक्त नहीं आया। तीन साल तक सख्त मेहनत करने के बाद अलबत्ता छोड़ने का इरादा कर सकता हूं। लेकिन इन तीन बरसों तक मुझे चाहिए कि रिआयत और मुरौबत को बालायताक रख दूं। सबसे पूरा मेहनताना लूं, वरना आजकल की तरह फंसता रहा तो जिन्दगी भर छुटकारा न होगा।

हां, तो आज इस मुकदमे में बहस होगी। उफ्! अभी तैयार नहीं हो सका। गवाहों के बयानों पर निगाह डालने का भी मौका न मिला। खैर, कोई मुजायका नहीं। कुछ-न-कुछ बातें तो याद ही हैं। बहुत कुछ उधर के वकील की तकरीर से सूझ जाएंगी। जरा नमक-मिर्च और मिला दूंगा, खासी बहस हो जाएगी। यह तो रोज का ही काम है, इसकी क्या फिक्र....

इतने में अमौली के राजा साहब की मोटर आ पहुंची। डाक्टर साहब ने बाहर निकलकर राजा साहब का स्वागत किया। राजा साहब अंग्रेजी में कोरे, लेकिन अंग्रेजी रहन-सहन, रीति-नीति में पारंगत थे। उनके कपड़े विलायत से सिलकर आते थे। लड़कों को पढ़ाने के लिए लेडियां नौकर थीं और रियासत का मैनेजर भी अंग्रेज था। राजा साहब का अधिकांश समय अंग्रेजी दुकानों की सैर में कटता था। टिकट और सिक्के जमा करने का शौक था। थियेटर जाने में कभी नागा न करते थे। कुछ दिनों से उनके मैनेजर ने रियासत की आमदनी पर हाथ लपकाना शुरू किया था। इसलिए उन्हें हटाना चाहते थे, किंतु अंग्रेज अधिकारियों के भय से साहस न होता था। मैनेजर स्वयं राजा साहब को कुछ न समझता था, आमदनी का हिसाब देना तो दूर रहा। राजा साहब इस मामले को दीवानी में लाने का विचार कर रहे थे। लेकिन मैनेजर साहब की जज से गहरी मैत्री थी, इसलिए अदालत के और वकीलों ने इस मुकदमे को हाथ में लेने से इंकार कर दिया था। डाक्टर साहब देर तक उनकी बातें सुनते रहे। बीच-बीच में तस्कीन देते जाते थे। आप घबराएं नहीं। मैं मैनेजर साहब से एक-एक कौड़ी वसूल कर लूंगा। यहां के वकील दब्बू हैं, खुशामदी टट्टू-पेशे को बदनाम करने वाले। हमारा पेशा आजाद है। हक की हिमायत करना हमारा काम है, चाहे बादशाह से ही क्यों न मुकाबला करना पड़े। आप जरा भी तरद्दुद न करें। मैं सब बातें ऐसी खूबसूरती से तय कर दूंगा कि आप पर छींटा भी न आने पाएगा। अकस्मात् तार के चपरासी ने आकर डाक्टर साहब को एक तार का लिफाफा दिया। ज्ञानशंकर ने मुकदमे की पैरवी करने के लिए पांच सौ रुपये रोज पर बुलाया था।

डाक्टर महोदय ने राजा साहब से कहा—यह पेशा बड़ा मूजी है। कभी आराम से बैठना नसीब नहीं होता। रानी गायत्रीदेवी का तार है, गोरखपुर बुला रही हैं।

राजा—मैं अपने मुकदमे को मुलतवी नहीं कर सकता। मुमकिन है मैनेजर कोई और चाल खेल जाए।

डाक्टर—आप मुतलक अंदेशा न करें, मैंने मुकदमे को हाथ में ले लिया। अपने दीवान साहब को भेज दीजिएगा, वकालतनामा तैयार हो जाएगा। मैं कागजात देखकर फौरन दावा दायर कर दूंगा। गोरखपुर गया भी तो आपके कागजात लेता जाऊंगा।

घड़ी में दस बजे। खानसामा ने दस्तरखान बिछाया। भोजनालय इस दफ्तर के बगल ही में था। मसाले की सुगंध कमरे में फैल गई, लेकिन डाक्टर साहब शिकार फंसाने में तल्लीन

थे। भय होता था, मैं भोजन करने चला जाऊं और शिकार हाथ से निकल जाए। लगभग आध घंटे तक वह राजा साहब से मुकदमे के संबंध में बातें करते रहे। राजा साहब के जाने के बाद वह दस्तरखान पर बैठे। खाना ठंडा हो गया था। दो-चार ही कौर खाने पाए थे कि ग्यारह बज गए। दस्तरखान से उठ बैठे। जल्दी-जल्दी कपड़े पहने और कचहरी चले। रास्ते में पछताते जाते थे कि भरपेट खाने भी न पाया। आज पुलाव कैसा लजीज बना था। इस पेशे का बुरा हो, खाने की फुर्सत नहीं; हां रानी को क्या जवाब दूं? नीति तो यही है कि जब तक किसानों का मामला तय न हो जाए, कहीं न जाऊं। लेकिन यह पांच सौ रुपये रोज का नुकसान कैसे बर्दाश्त करूं? फिर एक बड़ी रियासत से ताल्लुक हो रहा है, साल में सैकड़ों मुकदमे होते होंगे, सैकड़ों अपीलें होती होंगी। वहां अपना रंग जरूर जमाना चाहिए। मुहर्रिर साहब सामने ही बैठे थे, पूछा-क्यों मुंशीजी, रानी साहब को क्या जवाब दूं? आपके ख्याल में इस वक्त वहां मेरा जाना मुनासिब है?

मुहर्रिर-हुजूर किसी के ताबेदार नहीं हैं। शौक से जाएं। सभी वकील यही करते हैं। ऐसे मौके को न छोड़ें।

डाक्टर-बदनामी होती है।

मुहर्रिर-जरा भी नहीं। जब यही आम रिवाज है तो कौन किसे बदनाम कर सकता है।

इन शब्दों ने इर्फान अली की दुविधाओं को दूर कर दिया। औंधते को ठेलने का बहाना मिल गया। ज्योंही मोटर पहुंची, प्रेमशंकर दौड़े हुए आए और बोले-मैं तो बड़ी चिंता में था। पेशी हो गई।

डाक्टर-अमौली के राजा साहब आ गए, इससे जरा देर हो गई, खाना भी नहीं नसीब हुआ। इस पेशे की न जाने क्यों लोग इतनी तारीफ करते हैं? असल में इससे बदतर कोई पेशा नहीं। थोड़े दिनों में आदमी कोल्हू का बैल बन जाता है।

प्रेमशंकर-आप उधर कहां तशरीफ लिए जाते हैं?

डाक्टर-जरा सब-जज के इजलास में एक बात पूछने। आप चलें, मैं अभी आता हूं।

प्रेम-सरकारी वकील ने बहस शुरू कर दी है।

डाक्टर-कोई मुजायका नहीं, करने दीजिए। मैं उसका जवाब पहले ही तैयार कर चुका हूं।

प्रेमशंकर उनके साथ सब-जज के इजलास तक गए। डाक्टर साहब लगभग एक घंटे तक दफ्तर वालों से बातें करते रहे। अंत में निकले तो बड़े संकोच भाव से बोले-आपको यहां खड़े-खड़े बेहद तकलीफ हुई, मुआफ फरमाइएगा। मुझे यह कहते हुए आपसे बहुत नादिम होना पड़ता है कि मैं तीन-चार दिन इस मुकदमे की पैरवी न कर सकूंगा।

प्रेम-यह तो आपने बुरी खबर सुनाई। आप खुद अंदाज कर सकते हैं कि ऐसे नाजुक मौके पर आपका न रहना कितना जुल्म है।

डाक्टर-मजबूर हूं, आपके भाई साहब ने तार से गोरखपुर बुलाया है।

प्रेम-इस खबर से मेरी तो रूह ही फ़ना हो गई। आप इन बेचारे किसानों को मंझधार में छोड़े देते हैं। ख्याल फरमाइए, इनकी क्या हालत होगी? यहां इतने तंग वक्त में कोई दूसरा वकील भी तो नहीं मिल सकता।

डाक्टर-मुझे खुद निहायत अफसोस है। मगर जब तक दुकान है तब तक खरीददारों

की खातिर करनी ही पड़ेगी। यह पेशा ऐसा मनहूस है कि इसमें आईन पर कायम रहना दुश्वार है। मुझे इन मुसीबतजदों का खुद खयाल है, लेकिन मिस्टर ज्ञानशंकर को नाराज भी तो नहीं कर सकता। और जनाब, साफ बात तो यह है कि जब काफिर हुए तो शराब से क्यों तोबा करें? जब वकालत का सियाह जामा पहना तो उस पर शराफत का सफेद दाग क्यों लगाएं? जब लूटने पर आए तो दोनों हाथों से क्यों न समेटें? दिल में दौलत का अरमान क्यों रह जायं? बनियों को लोग ख्वामख्वाह लालची कहते हैं। इस लकब (खिताव) का हक हमको है। दौलत हमारा दीन है, हमारा ईमान है। यह न समझिए कि इस पेशे में जो लोग चोटी पर पहुंच गए हैं, वे ज्यादा रोशन खयाल हैं। नहीं जनाब, वे बगुले भगत हैं। ऐसे खामोश बैठे रहते हैं, गोया दुनिया से कोई वास्ता ही नहीं, लेकिन शिकार नजर आते ही आप उनकी झपट और फुरती देखकर दंग हो जाएंगे। जिस तरह कसाई बकरे को सिर्फ उसके वजन के एतबार से देखता है उसी तरह हम इंसान को महज इस एतबार से देखते हैं कि वह कहां तक आंख का अंधा और गांठ का पूरा है। लोग इसे आजाद पेशा कहते हैं, मैं इसे इंतहा दरजे की गुलामी कहता हूं। अभी चंद महीने हुए मेरे भाई की शादी दरपेश थी। सादात के कस्बे में बारात गई थी। तीन दिन तक बारात वहां मुकीम (ठहरी) रही। मैं रोज सबेरे-सबेरे यहां चला आता था और रात की गाड़ी से लौट जाता था। सभी रस्में मेरी गैरहाजिरी में अदा हुईं। एक दिन भी कचहरी का नागा नहीं किया। मैं अपनी इस हवस को मकरूह (घृणित) समझता हूं और जिन्दगी भर उस आदमी का शुक्रगुजार रहूंगा जो मुझे इस मर्ज से नजात दे दे।

यह कहकर डाक्टर साहब मोटर पर आ बैठे और एक क्षण में घर पहुंच गए। एक बजे गाड़ी जाती थी। सफर का सामान तैयार होने लगा। दो चमड़े के संदूक, एक हैंड बैग, हैट रखने का संदूक, ऑफिस बक्स, भोजन सामग्रियों का संदूक आदि सामान मोटर पर लादा गया। प्रत्येक वस्तु पर डाक्टर साहब का नाम लिखा हुआ था। समय बहुत कम था, डाक्टर साहब घर में न गए। मोटर पर बैठना ही चाहते थे कि महरी ने आकर कहा—हुजूर, जरा अंदर चलें, बेगम साहबा बुला रही हैं। मुनीरा को कई दस्त और कै आए हैं।

डाक्टर साहब—तो जरा कपूर का अर्क क्यों नहीं पिला देतीं? खाने में कोई बदपरहेजी हुई होगी। चीखने-चिल्लाने की क्या जरूरत है?

महरी—हजूर, दवा तो पिलाई है। जरा आप चलकर देख लें। बेगम साहबा डाक्टर बुलाने को कहती हैं।

इर्फान अली झल्लाए हुए अंदर गए और बेगम से बोले—तुमने क्या जरा-सी बात का तूफान मचा रखा है?

बेगम—मुनीरा की हालत अच्छी नहीं मालूम होती। जरा चलकर देखो तो। उसके हाथ-पांव अकड़े जाते हैं। मुझे तो खौफ होता है, कालरा न हो।

इर्फान—यह सब तुम्हारा वहम है। सिर्फ खाने-पीने की बेएहतियाती है, और कुछ नहीं। अर्क-काफूर दो-दो घंटे बाद पिलाती रहो, शाम तक सारी शिकायत दूर हो जाएगी। घबड़ाने की जरूरत नहीं। इस ट्रेन से जरा गोरखपुर जा रहा हूं। तीन-चार दिन में वापस आऊंगा। रोजाना खैरियत की इत्तिला देती रहना। मैं रानी गायत्री के बंगले में ठहरूंगा।

बेगम ने उन्हें तिरस्कार भाव से देखकर कहा—लड़की की यह हालत है और आप इसे छोड़े चले जाते हैं। खुदा न करे, उसकी हालत ज्यादा खराब हुई तो?

इर्फान–तो मैं रहकर क्या करूंगा? उसकी तीमारदारी तो मुझसे होगी ही नहीं और न बीमारी से मेरी दोस्ती है कि मेरे साथ रियायत करे।

बेगम–लड़की की जान को खुदा के हवाले करते हो, लेकिन रुपये खुदा के हवाले नहीं किए जाते। लाहौल विला कूवत ! आदमी में इंसानियत न हो, औलाद की मुहब्बत तो हो ! दौलत की हवस औलाद के लिए होती है। जब औलाद ही न रही, तो रुपयों का क्या अलाव लगेगा?

इर्फान–तुम अहमक हो, तुमसे कौन सिर-मगजन करे?

यह कहकर वह बाहर चले आए, मोटर पर बैठे और स्टेशन की तरफ चल पड़े।

उनतालीस

सैयद ईजाद हुसेन का घर दारानगर की एक गली में था। बरामदे में दस-बारह वस्त्र-विहीन बालक एक फटे हुए बोरिए पर बैठे करीमा और खालिकबारी की रट लगाया करते थे। कभी-कभी जब वे उमंग में आकर उच्च स्वर से अपने पाठ याद करने लगते, तो कानों पड़ी आवाज न सुनाई देती। मालूम होता, बाजार लगा हुआ हो। इस हरबोंग में लौंडे गालियां बकते, एक-दूसरे को मुंह चिढ़ाते, चुटकियां काटते। यदि कोई लड़का शिकायत करता तो सब-के-सब मिलकर ऐसा कोलाहल मचाते कि उसकी आवाज ही दब जाती थी। बरामदे के मध्य में मौलवी साहब का तख्त था। उस पर एक दढ़ियल मौलवी लुंगी बांधे, एक मैला-कुचैला तकिया लगाए अपना मदरिया पिया करते और इस कलरव में भी शांतिपूर्वक झपकियां लेते रहते थे। उन्हें हुक्का पीने का रोग था। एक किनारे अंगीठी में उपले सुलगा करते थे और चिमटा पड़ा रहता था। चिलम भरना बालकों के मनोरंजन की मुख्य सामग्री थी। उनकी शिक्षोन्नति चाहे बहुत प्रशंसा योग्य न हो, लेकिन गुरु-सेवा में सब-के-सब निपुण थे। यही सैयद ईजाद हुसेन का 'इत्तहादी यतीमखाना' था।

किंतु बरामदे के ऊपर वाले कमरे में कुछ और ही दृश्य था। साफ-सुथरा फर्श बिछा हुआ था, कालीन और मसनद भी करीने से सजे हुए थे। पानदान, खासदान, उगलदान आदि मौके से रखे हुए थे। एक कोने में नमाज पढ़ने की दरी बिछी हुई थी। तस्वीह (माला) खूंटी पर लटक रही थी। छत में झालरदार छतगीर थी, जिसकी शोभा रंगीन हांड़ियों से और भी बढ़ गई थी ! दीवारें बड़ी-बड़ी तस्वीरों से अलंकृत थीं।

प्रात:काल था। मिर्जा साहब मसनद लगाए हारमोनियम बजा रहे थे। उनके सम्मुख तीन छोटी-छोटी सुंदर बालिकाएं बैठी हुई डाक्टर इकबाल की सुविख्यात रचना 'शिवाजी' के शेरों को मधुर स्वर में गा रही थीं। ईजाद हुसैन स्वयं उनके साथ गाकर ताल-स्वर बजाते जाते थे। यह 'इत्तहादी यतीमखाने' की लड़कियां बताई जाती थीं, किंतु वास्तव में एक उन्हीं की पुत्री और दो भांजियां थीं। 'इत्तहाद' के प्रचार में यह त्रिमूर्ति लोगों को वशीभूत कर लेती थी। एक घंटे के अभ्यास के बाद मिर्जा साहब ने प्रसन्न हो सगर्व नेत्रों से लड़कियों को देखा और उन्हें छुट्टी दी। इसके बाद लड़कों की बारी आई। किंतु यह मकतब वाले, दुर्बल, वस्त्रहीन बालक न थे। थे तो चार ही, पर चारों स्फूर्ति और सजीवता की मूर्ति थे। सुंदर सुकुमार, सुवस्त्रित, चहकते

हुए घर में से आए और फर्श पर बैठ गए। मिर्जा साहब ने फिर हारमोनियम के स्वर मिलाए और लड़कों ने हक्कानी में एक गजल गानी शुरू की, जो स्वयं मिर्जा साहब की सुरचना थी। इसमें हिन्दू-मुस्लिम एकता की एक सुन्दर वाटिका से उपमा दी गई थी और जनता से अत्यंत करुणा, और प्रभावयुक्त शब्दों में प्रेरणा की गई थी कि वह इस बाग को अपनाएं, उसकी रमणीयता का आनंद उठायें और द्वेष तथा वैमनस्य की कंटकमय झाड़ियों में न उलझें। लड़कों के सुकोमल, ललित स्वरों में यह गजब ढाती थी। भावों को व्यक्त करने में भी यह बहुत चतुर थे। यह 'इत्तहादी यतीमखाने' के लड़के बताए जाते थे, किंतु वास्तव में यह मिर्जा साहब की दोनों बहनों के पुत्र थे।

मिर्जा साहब अभी गानाभ्यास में मग्न थे कि इतने में एक आदमी नीचे से आया और सामने खड़ा होकर बोला—लाला गोपालदास ने भेजा है और कहा है आज हिसाब चुकता न हो गया तो कल नालिश कर दी जाएगी। कपड़े का व्यवहार महीने-दो महीने का है और आपको कपड़े लिए तीन साल से ज्यादा हो गए।

मिर्जा साहब ने ऐसा मुंह बनाया, मानो समस्त संसार का चिंता-भार उन्हीं के सिर पर लदा हुआ हो और बोले—नालिश क्यों करेंगे? कह दो थोड़ा-सा जहर भेज दें, खाकर मर जाऊं। किसी तरह दुनिया से नजात मिले ! उन्हें तो खुदा ने लाखों दिए हैं, घर में रुपयों के ढेर लगे हैं। उन्हें क्या खबर कि यहां जान पर क्या गुजर रही है? कुन्बा बड़ा, आमदनी का कोई जरिया नहीं, दुनिया चालाक हत्थे नहीं चढ़ती, क्या करूं ! मगर इंशा अल्लाह ! एक महीने के अंदर आकर सब नया-पुराना हिसाब साफ कर दूंगा। अबकी मुझे वह चाल सूझी है जो कभी पट ही नहीं पड़ सकती। इन लड़कों की ग़ज़लें सुनकर मजलिसें फड़क उठेंगी। जाकर सेठजी से कह दो, जहां इतने दिनों सब्र किया है, एक महीना और करें।

प्यादे ने हंसकर कहा—आप तो मिर्जा साहब ऐसे ही बातें करके टाल देते हैं और वहां मुझ पर लताड़ पड़ती है। मुनीमजी कहते हैं, तुम जाते ही न होगे या कुछ ले-दे के चले आते होगे !

मिर्जा साहब ने एक चवन्नी उसके भेंट की। उसके चले जाने के बाद उन्होंने मौलवी साहब को बुलाया और बोले—क्यों मियां अमजद, मैंने तुमसे ताकीद कर दी थी कि कोई आदमी ऊपर न आने पाए। इस प्यादे को क्यों आने दिया? मुंह में दही जमा हुआ था? इतना कहते न बनता था कि कहीं बाहर गए हुए हैं। अगर इस तरह तुम लोगों को आने दोगे तो सुबह से शाम तक तांता लगा रहेगा। आखिर तुम किस मरज की दवा हो?

अमजद—मैं तो उससे बार-बार कहता रहा कि मिर्जा साहब कहीं बाहर गए हुए हैं, लेकिन वह जबरदस्ती जीने पर चढ़ आया। क्या करता, उससे फौजदारी करता?

मिर्जा—बेशक उसे धक्का देकर हटा देना चाहिए था।

अमजद—तो जनाब रूखी रोटियों और पतली दाल में इतनी ताकत नहीं होती, उस पर दिमाग लौंडे चर जाते हैं। हाथा-पाई किस बूते पर करूं? कभी सालन तक तो नसीब नहीं होता। दरवाजे पर पड़ा-पड़ा मसाले और प्याज की खुशबू लिया करता हूं। सारा घर पुलाव और जरदे उड़ाता है, यहां खुश्क रोटियों पर ही बसर है। दस्तरखान पर खाने को तरस गया। रोज वही मिट्टी की प्याली सामने आ जाती है। मुझे भी तर माल खिलाइए। फिर देखूं, कौन घर में कदम रखता है।

मिर्जा—लाहौल विला कूवत, तुम हमेशा पेट का ही रोना रोते रहे ! अरे मियां, खुदा का

शुक्र करो कि बैठे-बैठे रोटियां तो तोड़ने को मिल जाती हैं, वर्ना इस वक्त कहीं फक-फक, फांय-फांय करते होते।

अमजद–आपसे दिल की बात कहता हूं तो आप गालियां देने लगते हैं। लीजिए जाता हूं, अब अगर सूरत दिखाऊं तो समझिएगा कोई कमीना था। खुदा ने मुंह दिया तो रोजी भी देगा। इस सुदेशी के जमाने में मैं भूखों न मरूंगा।

यह कह मियां अमजद सजल नेत्र हो उतरने लगे कि ईजाद हुसेन ने फिर बुलाया और नम्रता से बोले–आप तो बस जरा-सी बात पर बिगड़ जाते हैं। देखते नहीं हो यहां घर में कितना खर्च है? औलाद की कसरत खुदा की मार है, उस पर रिश्तेदारों का बटोर टिड्डियों का दल है जो आन की आन में दरख्त ठूंठ कर देता है। क्या करूं? औलाद की परिवरिश फर्ज ही है और रिश्तेदारों से बेमुरौवती करना अपनी आदत नहीं। इस जाल में फंसकर तरह-तरह की चालें चलता हूं, तरह-तरह के स्वांग भरता हूं, फिर भी चूल नहीं बैठती। अब ताकीद कर दूंगा कि जो कुछ पके वह आपको जरूर मिले। देखिए, अब कोई ऊपर न आने पाए।

अमजद–मैंने तो कसम खा ली है।

ईजाद–अरे मियां कैसी बातें करते हो? ऐसी कसमें दिन में सैकड़ों बार खाया करते हैं। जाइए देखिए, फिर कोई शैतान आया है।

मियां अमजद नीचे आए तो सचमुच एक शैतान खड़ा था। ठिगना कद, उठा हुआ शरीर, श्याम वर्ण, तंजेब का नीचा कुरता पहने हुए। अमजद को देखते ही बोला–मिर्जाजी से कह दो, वफाती आया है।

अमजद ने कड़ककर कहा–मिर्जा साहब कहीं बाहर तशरीफ ले गए हैं।

वफाती–मियां, क्यों झूठ बोलते हो? अभी गोपालदास का आदमी मिला था। कहता था ऊपर कमरे में बैठे हुए हैं। इतनी जल्द क्या उठकर चले गए?

अमजद–उसने तुम्हें झांसा दिया होगा। मिर्जा साहब कल से ही नहीं हैं।

वफाती–तो मैं जरा ऊपर जाकर देख ही न आऊं!

अमजद–ऊपर जाने का हुक्म नहीं है। बेगमात बैठी होंगी। यह कहकर वे जीने का द्वार रोककर खड़े हो गए। वफाती ने उनका हाथ पकड़कर अपनी ओर घसीट लिया और जीने पर चढ़ा। अमजद ने पीछे से उसको पकड़ लिया। वफाती ने झल्लाकर ऐसा झोंका दिया कि मियां अमजद गिरे और लुढ़कते हुए नीचे आ गए। लौंडों ने जोर से कहकहा मारा। वफाती ने ऊपर जाकर देखा तो मिर्जा साहब साक्षात् मसनद लगाए विराजमान हैं। बोला–वाह मिर्जाजी! वाह, आपका निराला हाल है कि घर में बैठे रहते हैं और नीचे मियां अमजद कहते हैं, बाहर गए हुए हैं। अब भी दाम दीजिएगा या हसर के दिन ही हिसाब होगा? दौड़ते-दौड़ते पैरों में छाले पड़ गए।

मिर्जा–वाह, इससे बेहतर क्या होगा! हसर के दिन तुम्हारा कौड़ी-कौड़ी चुका दूंगा, उस वक्त जिन्दगी-भर की कमाई पास रहेगी, कोई दिक्कत न होगी।

वफाती–लाइए-लाइए, आज दिलवाइए, बरसों हो गए। आप यतीमखाने के नाम पर चारों तरफ से हजारों रुपये लाते हैं, मेरा क्यों नहीं देते?

मिर्जा–मियां, कैसी बातें करते हो? दुनिया न ऐसी अंधी है, न ऐसी अहमक। अब लोगों के दिल पत्थर हो गए हैं। कोई पसीजता नहीं। अगर इस तरह रुपये बरसते तो तकाजों में ऐसा क्या मजा है जो उठाया करता? यह अपनी बेबसी है जो तुम लोगों से नादिम (लज्जित) कराती

है। खुदा के लिए एक माह और सब्र करो। दिसंबर का महीना आने दो। जिस तरह क्वार और कातिक हकीम के फस्ल के दिन होते हैं, उसी तरह दिसंबर में हमारी भी फस्ल तैयार होती है; हर एक शहर में जलसे होने लगते हैं। अबकी मैंने वह मंत्र जगाया है जो कभी खाली जा ही नहीं सकता।

वफाती–इस तरह हीला-हवाला करते तो आपको बरसों हो गए। आज कुछ-न-कुछ हिसाब तो दे दीजिए।

मिर्जा–आज तो अगर हलाल भी कर डालो तो लाश के सिवा और कुछ न पाओगे।

वफाती निराश होकर चला गया। मिर्जा साहब ने अबकी बार ज़ीने का द्वार भीतर से बंद कर दिया और फिर हारमोनियम संभाला कि अकस्मात् डाकिए ने पुकारा। मिर्जा साहब चिट्ठियों के लिए बहुत उत्सुक रहा करते थे। जाकर द्वार खोला और समाचार-पत्रों तथा चिट्ठियों का एक पुलिन्दा लिए प्रसन्न मुख ऊपर आए। पहला पत्र उनके पुत्र का था, जो प्रयाग में कानून पढ़ रहे थे। उन्होंने एक सूट और कानूनी पुस्तकों के लिए रुपये मांगे थे। मिर्जा ने झुंझलाकर पत्र को पटक दिया। जब देखो, रुपयों का तकाजा, गोया यहां रुपये फलते हैं! दूसरा पत्र एक अनाथ बालक का था। मिर्जाजी ने उसे संदूक में रखा। तीसरा पत्र एक सेवा-समिति का था। उसने 'इत्तहादी अनाथालय' के लिए बीस महीने की सहायता देने का निश्चय किया था। इस पत्र को पढ़कर वे उछल पड़े और उसे कई बार आंखों से लगाया। इसके बाद समाचार-पत्रों की बारी आई। लेकिन मिर्जाजी की निगाह लेखों या समाचारों पर न थी। वह केवल 'इत्तहादी अनाथालय' की प्रशंसा के इच्छुक थे। पर इस विषय में उन्हें बड़ी निराशा हुई। किसी पत्र में भी इसकी चर्चा न दीख पड़ी। सहसा उनकी निगाह ऐसी खबर पर पड़ी कि वह खुशी के मारे फड़क उठे। गोरखपुर में सनातन धर्म-सभा का अधिवेशन होने वाला था। ज्ञानशंकर प्रबंधक मंत्री थे। विद्वज्जनों से प्रार्थना की गई थी कि वह उत्सव में सम्मिलित होकर उसकी शोभा बढ़ाएं। मिर्जा साहब यात्रा की तैयारियां करने लगे।

चालीस

महाशय ज्ञानशंकर का धर्मानुराग इतना बढ़ा कि सांसारिक बातों से उन्हें अरुचि-सी होने लगी, दुनिया से जी उचाट हो गया। वह अब भी रियासत का प्रबंध उतने ही परिश्रम और उत्साह से करते थे, लेकिन अब सख्ती की जगह नरमी से काम लेते थे। निर्दिष्ट लगान के अतिरिक्त प्रत्येक असामी से ठाकुरद्वारे और धर्मशाले का चंदा भी लिया जाता था; पर इस रकम को वह इतनी नम्रता से वसूल करते थे कि किसी को शिकायत न होती थी। अब वह इखराज, इजाफा और बकाए के मुकदमे बहुत कम दायर करते। असामियों को बैंक से नाम-मात्र ब्याज लेकर रुपये देते और डेवढ़े की जगह केवल अष्टांश वसूल करते। इन कामों से जितना अवकाश मिलता उसका अधिकांश ठाकुरद्वारे और धर्मशाले की निगरानी में व्यय करते। दूर-दूर से कुशल कारीगर बुलाए गए थे जो पच्चीकारी, गुलकारी, चित्रांकण, कटाव और जड़ाव की कलाओं में निपुण थे। जयपुर से संगमरमर की गाड़ियां भरी चली आती थीं। चुनार, ग्वालियर आदि स्थानों

से तरह-तरह के पत्थर मंगाए जाते थे। ज्ञानशंकर की परम इच्छा थी कि यह दोनों इमारतें अद्वितीय हों और गायत्री तो यहां तक तैयार थी कि रियासत की सारी आमदनी निर्माण-कार्य के ही भेंट हो जाए तो चिंता नहीं। 'मैं केवल सीर की आमदनी पर निर्वाह कर लूंगी।' लेकिन ज्ञानशंकर आमदनी के ऐसे-ऐसे विधान ढूंढ निकालते थे कि इतना सब कुछ व्यय होने पर भी रियासत की वार्षिक आय में जरा भी कमी न होती थी। बड़े-बड़े ग्रामों में पांच-छह बाजार लगवा दिए। दो-तीन नालों पर पुल बनवा दिए। कई-कई जगह पानी को रोकने के लिए बांध बंधवा दिए। सिंचाई की कल मंगाकर किराए पर लगाने लगे। तेल निकालने का एक बड़ा कारखाना खोल दिया। इन आयोजनों से इलाके का नफा घटने के बदले कुछ और बढ़ गया। गायत्री तो उनकी कार्यपटुता की इतनी कायल हो गई थी कि किसी विषय में जबान न खोलती।

ज्ञानशंकर के आचार-व्यवहार, रंग-ढंग में भी अब विशेष अंतर दीख पड़ता था। सिर पर बड़े-बड़े केश थे, बूट की जगह प्रायः खड़ाऊं, कोट के बदले एक ढीला-ढाला घुटनियों से नीचे तक का गेरुवे रंग में रंगा हुआ कुर्ता पहनते थे। यह पहनावा उनके सौम्य रूप पर बहुत खिलता था। उनके मुखारविन्द पर अब एक दिव्य ज्योति आभासित होती थी और बातों में अनुपम माधुर्यपूर्ण सरलता थी। अब तर्क और न्याय में उन्हें रुचि न थी। इस तरह बातें करते मानो उन्हें दिव्य ज्ञान प्राप्त हो गया है। यदि कोई उनसे भक्ति या प्रेम के विषय में शंका करता तो वह उसका उत्तर एक मार्मिक मुस्कान से देते थे—जो हजारों दलीलों से अधिक प्रभावोत्पादक होती थी।

उनके दीवानखाने में अब कुर्सियों और मेजों के स्थान पर एक साफ-सुथरा फर्श था, जिस पर मसनद और गावतकिए लगे हुए थे। सामने एक चंदन के सुंदर रत्नजटित सिंहासन पर कृष्ण की बालमूर्ति विराजमान थी। कमरे में नित अगर की बत्तियां जला करती थीं। उसके अंदर जाते ही सुगंधि से चित्त प्रसन्न हो जाता था। उसकी स्वच्छता और सादगी हृदय को भक्ति-भाव से परिपूर्ण कर देती थी। वह श्रीवल्लभ संप्रदाय के अनुयायी थे। फूलों से, ललित गान से, सुरम्य दृश्यों से, काव्यमय भावों से उन्हें विशेष रुचि हो गई थी जो आध्यात्मिक विकास के लक्षण हैं। सौंदर्योपासना ही उनके धर्म का प्रधान तत्त्व था। इस समय वह एक सितारिये से सितार बजाना सीखते थे और सितार पर सूर के पदों को सुनकर मस्त हो जाते थे।

गायत्री पर इस प्रेम-भक्ति का रंग और भी गाढ़ा चढ़ गया था। वह मीराबाई के सदृश कृष्ण की मूर्ति को स्नान कराती, वस्त्राभूषणों से सजाती, उनके लिए नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोग बनाती और मूर्ति के सम्मुख अनुराग-मग्न होकर घंटों कीर्तन किया करती। आधी रात तक उनकी क्रीड़ाएं और लीलाएं सुनती और सुनाती। अब उसने पर्दा करना छोड़ दिया था। साधु-संतों के साथ बैठकर उनकी प्रेम और ज्ञान की बातें सुना करती। लेकिन इस सत्संग में शांति मिलने के बदले उसका हृदय सदैव एक तृष्णा, एक विरहमय कल्पना से विकल रहता था। उसकी हृदय-वीणा एक अज्ञात आकांक्षा से गूंजती रहती थी। वह स्वयं निश्चय न कर सकती थी कि मैं क्या चाहती हूं। वास्तव में वह राधा और कृष्ण के प्रेम तत्त्व को समझने में असमर्थ थी। उसकी भौतिक दृष्टि उस प्रेम के ऐन्द्रिक स्वरूप से आगे न बढ़ सकती थी और उसका हृदय इन प्रेम-सुख कल्पनाओं से तृप्त न होता था। वह उन भावों को अनुभव करना चाहती थी। विरह और वियोग, ताप और व्यथा, मान और मनावन, रास और विहार, आमोद और प्रमोद का प्रत्यक्ष स्वरूप देखना चाहती थी। पहले पति-प्रेम उसका सर्वस्व था। नदी अपने पेटे में ही हलकोरें लिया करती थी। अब उसे उस प्रेम का स्वरूप कुछ मिटा हुआ, फीका,

निकृत मालूम होता था। नदी उमड़ गई थी। पति-भक्ति का वह बांध जो कुल-मर्यादा और आत्मगौरव पर आरोपित था, इस प्रेम-भक्ति की बाढ़ से टूट गया। भक्ति लौकिक बंधनों को कब ध्यान में लाती है? वह अब उन भावनाओं और कल्पनाओं को बिना किसी आत्मिक संकोच के हृदय में स्थान देती थी। जिन्हें वह पहले अग्नि-ज्वाला समझा करती थी। उसे अब केवल कृष्ण-क्रीड़ा के दर्शन-मात्र से संतोष न होता था। वह स्वयं कोई-न-कोई रास रचना चाहती थी। वह उन मनोभावों को वाणी से, कर्म से, व्यवहार से व्यक्त करना चाहती थी, जो उसके हृदयस्थल में पक्षियों की भांति अबाध्य रूप से उड़ा करते थे और उसका कृष्ण कौन था? वह स्वयं उसे स्वीकार करने का साहस न कर सकती थी, पर उसका स्वरूप ज्ञानशंकर से बहुत मिलता था। वह अपने कृष्ण को इसी रूप में प्रकट देखती थी।

गायत्री का हृदय पहले भी उदार था। अब वह और भी दानशील हो गई थी। उसके यहां अब नित्य सदाव्रत चलता था और जितने साधु-संत आ जाएं सबको इच्छापूर्वक भोजन-वस्त्र दिया जाता था। वह देश की धार्मिक और पारमार्थिक संस्थाओं की भी यथासाध्य सहायता करती थी। अब उसे सनातन धर्म से विशेष अनुराग हो गया। अतएव अबकी जब सनातन-धर्ममंडल का वार्षिकोत्सव गोरखपुर में होना निश्चय किया गया तब सभासदों ने बहुमत से रानी गायत्री को सभापति नियुक्त किया। यह पहला अवसर था कि यह सम्मान एक विदुषी महिला को प्राप्त हुआ। गायत्री को रानी की पदवी मिलने से भी इतनी खुशी न हुई थी जितनी इस सम्मान पद से हुई। उसने ज्ञानशंकर को, जो सभा के मंत्री थे, बुलाया और अपने गहनों का संदूक देकर बोली, इसमें पचास हजार के गहने हैं, मैं इन्हें सनातन-धर्म सभा को समर्पण करती हूं।

समाचार-पत्रों में यह खबर छप गई। तैयारियां होने लगीं। मंत्रीजी का यह हाल था कि दिन को दिन और रात को रात न समझते। ऐसा विशाल सभा भवन कदाचित् ही पहले कभी बना हो। मेहमानों के आगत-स्वागत का ऐसा उत्तम प्रबंध कभी न किया गया था। उपदेशकों के लिए ऐसे बहुमूल्य उपहार न रखे गए थे और न जनता ने कभी सभा से इतना अनुराग ही प्रकट किया था। स्वयंसेवकों के दल-के-दल भड़कीली वर्दियां पहने चारों तरफ दौड़ते-फिरते थे। पंडाल के अहाते में सैकड़ों दुकानें सजी हुई नजर आती थीं। एक सरकस और दो नाटक समितियां बुलाई गई थीं। सारे शहर में चहल-पहल देख पड़ती थी। बाजारों में भी विशेष सजावट और रौनक थी। सड़कों पर दोनों तरफ बंदनवारें और पताकाएं शोभायमान थीं।

जलसे के एक दिन पहले उपदेशकगण आने लगे। उनके लिए स्टेशन पर मोटरें खड़ी रहती थीं। इनमें से कितने ही महानुभाव संन्यासी थे। वह तिलकधारी पंडितों को तुच्छ समझते थे और मोटर पर बैठने के लिए अग्रसर हो जाते थे। एक संन्यासी महात्मा, जो विद्यारत्न की पदवी से अलंकृत थे, मोटर न मिलने से इतने अप्रसन्न हुए कि बहुत आरजू-मिन्नत करने पर भी फिटन पर न बैठे। सभा भवन तक पैदल आए।

लेकिन जिस समारोह से सैयद ईजाद हुसेन का आगमन हुआ वह किसी को नसीब न हुआ। जिस समय वह पंडाल में पहुंचे, जलसा शुरू हो गया था और एक विद्वान् पंडितजी विधवा-विवाह पर भाषण कर रहे थे। ऐसे निंद्य बिषय पर गंभीरता से विचार करना अनुपयुक्त समझकर वह इसकी खूब हंसी उड़ा रहे थे और यथोचित हास्य और व्यंग्य, धिक्कार और तिरस्कार से काम लेते थे।

'सज्जनो, यह कोई कल्पित घटना नहीं, मेरी आंखों देखी बात है। मेरे पड़ोस में एक

बाबू साहब रहते हैं। एक दिन वह अपनी माता से विधवा-विवाह की प्रशंसा कर रहे थे। माताजी चुपचाप सुनती जाती थीं। जब बाबू साहब की वार्ता समाप्त हुई तो माता ने बड़े गंभीर भाव से कहा, 'बेटा–मेरी एक विनती है, उसे मानो। क्यों मेरा भी किसी से पाणिग्रहण नहीं करा देते? देश भर की विधवाएं सोहागिनी हो जाएंगी तो मुझसे क्योंकर रहा जाएगा?' श्रोताओं ने प्रसन्न होकर तालियां बजाईं, कहकहों से पंडाल गूंज उठा।

इतने में सैयद ईजाद हुसेन ने पंडाल में प्रवेश किया। आगे-आगे चार लड़के कतार में थे, दो हिन्दू, दो मुसलमान। हिन्दू बालकों की धोतियां और कुरते पीले थे, मुसलमान बालकों के कुरते और पाजामे हरे। इनके पीछे चार लड़कियों की पंक्ति थी–दो हिन्दू और दो मुसलमान। उनके पहनाव में भी वही अंतर था। सभी के हाथों में रंगीन झंडियां थीं, जिन पर उज्ज्वल अक्षरों में अंकित था–'इत्तहादी यतीमखाना'। इनके पीछे सैयद ईजाद हुसेन थे–गौर वर्ण, श्वेत केश, सिर पर हरा अमामा, काले अल्पाके का आबा, सफेद तंजेब की अचकन, सलेमशाही जूते, सौम्य और प्रतिभा की प्रत्यक्ष मूर्ति थे। उनके हाथ में भी वैसी ही झंडी थी। उनके सुपुत्र सैयद इर्शाद हुसेन थे–लंबा कद, नाक पर सुनहरी ऐनक, अल्बर्ट फैशन की दाढ़ी, तुर्की टोपी, नीची अचकन, सजीवता की प्रत्यक्ष मूर्ति मालूम होते थे। सबसे पीछे साजिन्दे थे। एक के हाथ में हारमोनियम था, दूसरे के हाथ में तबले, शेष दो आदमी करताल लिए हुए थे। इन सबों की वर्दी एक ही तरह की थी और उनकी टोपियों पर 'अंजुमन इत्तहाद' की मोहर लगी हुई थी। पंडाल में कई हजार आदमी जमा थे। सब-के-सब 'इत्तहाद' के प्रचारकों की ओर टकटकी बांधकर देखने लगे। पंडितजी का रोचक व्याख्यान फीका पड़ गया। उन्होंने बहुत उछल-कूद की, अपनी सम्पूर्ण हास्य-शक्ति व्यय कर दी, अश्लील कवित्त सुनाये, एक भद्दी-सी गजल भी बेसुरे राग से गायी, पर रंग न जमा। समस्त श्रोतागण 'इत्तहादियों' पर आसक्त हो रहे थे। ईजाद हुसेन एक शान के साथ मंच पर जा पहुंचे। वहां कई संन्यासी, महात्मा, उपदेशक चांदी की कुर्सियों पर बैठे हुए थे। सैयद साहब को सबने ईर्ष्यापूर्ण नेत्रों से देखा और जगह से न हटे। केवल भक्त ज्ञानशंकर ही एक व्यक्ति थे जिन्होंने उनका सहर्ष स्वागत किया और मंच पर उनके लिए एक कुर्सी रखवा दी। लड़के और साजिन्दे मंच के नीचे बैठे गए। उपदेशकगण मन-ही-मन ऐसे कुढ़ रहे थे, मानो हंस-समाज में कोई कौवा आ गया हो। दो-एक सहृदय महाशयों ने दबी जबान में फबतियां भी कसीं, पर ईजाद हुसेन के तेवर जरा भी मैले न हुए। वह इस अवहेलना के लिए तैयार थे। उनके चेहरे से वह शांतिपूर्ण दृढ़ता झलक रही थी, जो कठिनाइयों की परवाह नहीं करती और कांटों में भी राह निकाल लेती है।

पंडितजी ने अपना रंग जमते न देखा तो अपनी वक्तृता समाप्त कर दी और जगह पर आ बैठे। श्रोताओं ने समझा अब इत्तहादियों के राग सुनने में आएंगे। सबने कुर्सियां आगे खिसकायीं और सावधान हो बैठे, किंतु उपदेशक-समाज इसे कब पसंद कर सकता था कि कोई मुसलमान उनसे बाजी ले जाए? एक संन्यासी महात्मा ने चट अपना व्याख्यान शुरू कर दिया। यह महाशय वेदांत के पंडित और योगाभ्यासी थे। संस्कृत के उद्‌भट विद्वान थे। वह सदैव संस्कृत में ही बोलते थे। उनके विषय में किंवदंती थी कि संस्कृत ही उनकी मातृ-भाषा है। उनकी वक्तृता को लोग उसी शौक से सुनते थे, जैसे चंडूल का गाना सुनते हैं। किसी की भी समझ में कुछ न आता था, पर उनकी विद्वता और वाक्य प्रवाह का रोब लोगों पर छा जाता था। वह एक विचित्र जीव समझे जाते थे और यही उनकी बहुप्रियता का मंत्र था। श्रोतागण कितने ही ऊबे हुए हों उनके

मंच पर आते ही उठने वाले बैठ जाते थे। जाने वाले थम जाते थे। महफिल जम जाती थी। इसी घमंड पर इस वक्त उन्होंने अपना भाषण आरम्भ किया पर आज उनका जादू भी न चला। इत्तहादियों ने उनका रंग भी फीका कर दिया। उन्होंने संस्कृत की झड़ी लगा दी, खूब तड़पे, खूब गरजे, पर यह भादों की नहीं, चैत की वर्षा थी। अंत में वह भी थककर बैठ रहे और अब किसी अन्य उपदेशक को खड़े होने का साहस न हुआ। इत्तहादियों ने मैदान मार लिया।

ज्ञानशंकर ने खड़े होकर कहा—अब इत्तहाद संस्था के संचालक सैयद ईजाद हुसेन अपनी अमृतवाणी सुनाएंगे। आप लोग ध्यानपूर्वक श्रवण करें।

सभा भवन में सन्नाटा छा गया। लोग संभल बैठे। ईजाद हुसेन ने हारमोनियम उठाकर मेज पर रखा, साजिन्दों ने साज निकाले, अनाथ बालकवृन्द वृत्ताकार बैठे। सैयद इर्शाद हुसेन ने इत्तहाद सभा की नियमावली का पुलिन्दा निकाला। एक क्षण में ईश-वंदना के मधुर स्वर पंडाल में गूंजने लगे। बालकों की ध्वनि में एक खास लोच होता है। उनका परस्पर स्वर में स्वर मिलाकर गाना, उस पर साजों का मेल, एक समां छा गया—सारी सभा मुग्ध हो गई।

राग बंद हो गया और सैयद ईजाद हुसेन ने बोलना शुरू किया—प्यारे दोस्तो ! आपको यह हैरत होगी कि हंसों में यह कौवा क्यों कर आ घुसा, औलिया की जमघट में यह भांड़ कैसे पहुंचा? यह मेरी तकदीर की खूबी है। उलमा फरमाते हैं, जिस्म हादिस (अनित्य) है, रूह कदीम (नित्य) है। मेरा तजर्बा बिल्कुल बरअक्स (उल्टा) है। मेरे जाहिर में कोई तबदीली नहीं हुई। नाम वही है, लंबी दाढ़ी वही है, लिबास-पोशाक वही है, पर मेरे रूह की काया पलट गई। जाहिर से मुगालते में न आइए, दिल में बैठकर देखिए, वहां मोटे हरूफों में लिखा हुआ है—**'हिन्दी हैं हम, वतन है हिंदोस्तां हमारा'**।

लड़कों और साजिन्दों ने इकबाल का गजल अलापनी शुरू की। सभा लोट-पोट हो गई; लोगों की आंखों से गौरव की किरणें-सी निकलने लगीं, कोई मूंछों पर ताव देने लगा, किसी ने बेबसी की लंबी सांस खींची, किसी ने अपनी भुजाओं पर निगाह डाली और कितने ही सहृदय सज्जनों की आंखें भर आईं। विशेष करके इस मिसरे पर—**'हम बुलबुले हैं इसकी, यह गुलिस्तां हमारा'** तो सारी मजलिस तड़प उठी, लोगों ने कलेजे थाम लिए, 'वन्देमातरम्' से भवन गूंज उठा। गाना बन्द होते ही फिर व्याख्यान शुरू हुआ—

'भाइयो, मजहब दिल की तस्कीन के लिए है, दुनिया कमाने के लिए नहीं, मुल्की हकूक हासिल करने के लिए नहीं ! वह आदमी जो मजहब की आड़ में दौलत और इज्जत हासिल करना चाहता है अगर हिन्दू है तो मलिच्छ है, मुसलमान है तो काफिर है। हां, काफिर है, मरदूद है, रुसियाह है।'

करतल ध्वनि से पंडाल कांप उठा।

'हम सत्तर पुश्तों से इसी सरजमीन का दाना खा रहे हैं, इसी सरजमीन के आब व गिल (पानी और मिट्टी) से हमारी शिरशिरी हुई है। तुफ है उस मुसलमान पर जो हिजाज और इराक को अपना वतन कहता है !'

फिर तालियां बजीं। एक घंटे तक व्याख्यान हुआ। सैयद ने सारी सभा पर मानो मोहिनी डाल दी। उनकी गौरवयुक्त विनम्रता, उनकी निर्भीक यथार्थवादिता, उनकी मीठी चुटकियां उनकी जातीयता में डूबी हुई वाक्य-कुशलता, उनकी उत्तेजनापूर्ण आलोचना, उनके स्वदेशाभिमान, उस पर उनके शब्द-प्रवाह, भावोत्कर्ष और राष्ट्रीय गाने ने लोगों को उन्मत्त

कर दिया। हृदयों में जागृति की तरंगें उठने लगीं। कोई सोचता था, न हुए मेरे पास एक लाख रुपये, नहीं तो, इसी दम लुटा देता। कोई मन में कहता था, बाल-बच्चों की चिंता न होती तो गले में झोली लटका कर जाति के लिए भिक्षा मांगता।

इस तरह जातीय भावों को उभारकर, भूमि को पोली बनाकर, सैयद साहब मतलब पर आये, बीज डालना शुरू किया :

'दोस्तो, अब मजहबपरवरी का जमाना नहीं रहा। पुरानी बातों को भूल जाइए। एक जमाना था कि आरियों ने यहां के असली बाशिंदों पर सदियों तक हुकूमत की, आज वही शूद्र आरियों में घुले-मिले हुए हैं। दुश्मनों को अपने सलूक से दोस्त बना लेना आपके बुजुर्गों का जौहर था। वह जौहर आपमें मौजूद है। आप बारहा हमसे गले मिलने के लिए बढ़े, लेकिन हम पिदरम सुलतांबूद के जोश में हमेशा आपसे दूर भागते रहे। लेकिन दोस्तो, हमारी बदगुमानी से नाराज न हो। तुम जिन्दा कौम हो। तुम्हारे दिल में दर्द है, हिम्मत है, फैयाजी है। हमारी तंगदिली को भूल जाइए। उसी बेगाना कौम का एक फर्द यह हकीर आज आपकी खिदमत में इत्तहाद का पैगाम लेकर हाजिर हुआ है, उसकी अर्ज कबूल कीजिए। यह फकीर इत्तहाद का सौदाई है, इत्तहाद का दीवाना है, उसका हौसला बढ़ाइए। इत्तहाद का यह नन्हा-सा मुर्झाया हुआ पौधा आपकी तरफ भूखी-प्यासी आंखों से ताक रहा है। उसे अपनी दरियादिली के उबलते हुए चश्मों से सैराब कर दीजिये। तब आप देखेंगे कि वह पौधा कितनी जल्द तनावर दरख्त हो जाता है और उसके मीठे फलों से कितनों की जबानें तर होती हैं। हमारे दिल में बड़े-बड़े हौसले हैं, बड़े-बड़े मनसूबे हैं। हम इत्तहाद की सदा से इस पाक जमीन के एक-एक गोशे को भर देना चाहते हैं। अब तक जो कुछ किया है आप ही ने किया है, आइन्दा जो कुछ करेंगे आप ही करेंगे। चंदे की फिहरिस्त देखिये, वह आपके ही नामों से भरी हुई है और हक पूछिये तो आप ही उसके बानी हैं। रानी गायत्री कुंवर साहिबा की सखावत की इस वक्त सारी दुनिया में शोहरत है। भगत ज्ञानशंकर की कौमपरस्ती क्या पोशीदा है? वजीर ऐसा, बादशाह ऐसा ! ऐसी पाक रूहें जिस कौम में हों वह खुशनसीब है। आज मैंने इस शहर की पाक जमीन पर कदम रखा तो बाशिंदों के एखलाक और मुरौवत, मेहमानिवाजी और खातिरदारी ने मुझे हैरत में डाल दिया। तहकीक करने से मालूम हुआ कि यह इसी मजहबी जोश की बरकत है। यह प्रेम के औतार सिरी किरिश्न जी की भगती का असर है जिसने लोगों को इंसानियत के दर्जे से उठाकर फरिश्तों का हमसर बना दिया है। हजरात, मैं अर्ज नहीं कर सकता कि मेरे दिल में सिरो किरिश्नजी की कितनी इज्जत है। इससे चाहे मेरी मुसलमानी पर ताने ही क्यों न दिए जाएं, पर मैं बेखौफ कहता हूं कि यह रूहे पाक उलूहियत (ईश्वरत्व) के उस दर्जे पर पहुंची हुई थी जहां तक किसी नबी या पैगंबर को पहुंचना नसीब न हुआ। आज इस सभा में मैं सच्चे दिल से अंजुमन इतहाद को उसी रूहे पाक के नाम मानून (समर्पित) करता हूं। मुझे उम्मीद ही नहीं, यकीन है कि उनके भगतों के सामने मेरा सवाल खाली न जाएगा। इत्तहादी यतीमखाने के बच्चे और बच्चियां आप ही की तरफ बेकस निगाहों से देख रही हैं। यह कौमी भिखारी आपके दरवाजे पर खड़ा दोआएं दे रहा है। इस लंबी दाढ़ी पर निगाह डालिये, इन सुफेद बालों की लाज रखिये।'

फिर हारमोनियम बजा, तबले पर थाप पड़ी, करताल ने झंकार ली और ईजाद हुसेन की करुण-रस-पूर्ण गजल शुरू हुई। श्रोताओं के कलेजे मसोस उठे। चंदे की अपील हुई तो रानी गायत्री की ओर से एक हजार रुपये की सूचना हुई, भक्त ज्ञानशंकर ने यतीमखाने के लिए एक गाय भेंट की, चारों तरफ से लोग चंदा देने को लपके। इधर तो चंदे की सूची चक्कर लगा रही थी, उधर इर्शाद हुसेन ने अंजुमन के पम्फलेट और तमगे बेचने शुरू किए। तमगे अतीव सुन्दर

बने हुए थे। लोगों ने शौक से हाथों-हाथ लिये। एक क्षण में हजारों वक्षस्थलों पर यह तमगे चमकने लगे। हृदयों पर दोनों तरफ से इत्तहाद की छाप पड़ गई। कुल चंदे का योग पांच हजार रुपये हुआ। ईजाद हुसेन का चेहरा फूल की तरह खिल उठा। उन्होंने लोगों को धन्यवाद देते हुए एक गजल गाई और आज की कार्यवाही समाप्त हुई। रात के दस बजे थे।

जब ईजाद हुसेन भोजन करके लेटे और खमीरे का रस पान करने लगे तब उनके सुपुत्र ने पूछा—इतनी उम्मीद तो आपको भी न थी।

ईजाद—हर्गिज नहीं। मैंने ज्यादा-से-ज्यादा एक हजार रुपये का अंदाज किया था, मगर आज मालूम हुआ कि ये सब कितने अहमक होते हैं। इसी अपील पर किसी इस्लामी जलसे में मुश्किल से सौ रुपये मिलते। इन बछिया के ताउओं की खूब तारीफ कीजिए। हजोमलीह की हद तक हो तो मुजायका नहीं, फिर इनसे जितना चाहें वसूल कर लीजिए।

इरशाद—आपकी तकरीर लाजवाब थी।

ईजाद—उसी पर तो जिंदगी का दारमदार है। न किसी के नौकर, न गुलाम। बस, दुनिया में कामयाबी का नुस्खा है तो वह शतरंजबाजी है। आदमी जरा लस्सान (वाक्-चतुर) हो, जरा मर्दुमशनास (अच्छे-बुरे आदमी की परख करने वाला) हो और जरा गिरहबाज हो, बस उसकी चांदी है। दौलत उसके घर की लौंडी है।

इर्शाद—सच फरमाइएगा अब्बाजान, क्या आपका कभी यह ख्याल था कि यह सब दुनियासाजी है?

ईजाद—क्या मुझे मामूली आदमियों से भी गया-गुजरा समझते हो? यह दगाबाजी है, पर करूं क्या? औलाद और खानदान की मुहब्बत अपनी नजात की फिकर से ज्यादा है।

इकतालीस

जलसा बड़ी सुंदरता से समाप्त हुआ। रानी गायत्री के व्याख्यान पर समस्त देश में वाह-वाह मच गई। उसमें सनातन-धर्म संस्था का ऐतिहासिक दिग्दर्शन कराने के बाद उसकी उन्नति और पतन, उसके उद्धार और सुधार उसकी विरोधी तथा सहायक शक्तियों का बड़ी योग्यता से निरूपण किया गया था। संस्था की वर्तमान दशा और भावी लक्ष्य की बड़ी मार्मिक आलोचना की गई थी। पत्रों में उस वक्तृता को पढ़कर लोग चकित हो जाते थे और जिन्होंने उसे अपने कानों से सुना वे उसका स्वर्गीय आनंद कभी न भूलेंगे। क्या वाक्शैली थी, कितनी सरल, कितनी मधुर, कितनी प्रभावशाली, कितनी भावमयी। वक्तृता क्या थी—एक मनोहर गान था !

तीन दिन बीत चुके थे। ज्ञानशंकर अपने भव्य भवन में समाचार-पत्रों का एक दफ्तर सामने रखे बैठे हुए थे। आजकल उनका यही काम था कि पत्रों में जहां कहीं इस जलसे की आलोचना हुई तुरंत काटकर रख लेते। गायत्री अब ज्ञानशंकर को देवतुल्य समझती थी। उन्हीं की बदौलत आज समस्त देश में उसकी सुकीर्ति की धूम मची हुई थी। उनके इस अतुल उपकार का एक ही उपहार था और वह प्रेमपूर्ण श्रद्धा थी।

संध्या हो गई थी कि अकस्मात् ज्ञानशंकर पत्रों की एक पेटी लिये हुए अंदर गए और गायत्री से बोले—देखिये, रायसाहब ने नया शिगूफा छोड़ा।

गायत्री ने भौंहें चढ़ाकर कहा—मेरे सामने उनका नाम न लीजिये। मैंने उनकी कितनी चिरौरी की थी कि एक दिन के लिए जलसे में अवश्य आइए, पर उन्होंने जरा भी परवाह न की। पत्र का उत्तर तक न दिया। बाप हैं तो क्या, मैं उनके हाथों भी अपना अपमान नहीं सह सकती।

ज्ञान—मैंने तो समझा था, यह उनकी लापरवाही है, लेकिन इस पत्र से विदित होता है कि आजकल वह एक दूसरी ही धुन में हैं। शायद इसी कारण अवकाश न मिला हो।

गायत्री—क्या बात है, किसी अंग्रेज से लड़ तो नहीं बैठे।

ज्ञान—नहीं, आजकल एक संगीत-सभा की तैयारी कर रहे हैं।

गायत्री—उनके यहां तो बारहों मास संगीत-सभा होती रहती है।

ज्ञान—नहीं, यह उत्सव बड़ी धूम से होगा। देश के समस्त गवैयों के नाम निमंत्रण भेजे गए हैं। यूरोप से भी कोई जगद्विख्यात गायनाचार्य बुलाये जा रहे हैं। रईसों और अधिकारियों को दावत दी गई है। एक सप्ताह तक जलसा होगा। यहां के संगीत-शास्त्र और पद्धति में सुधार करना उनका उद्देश्य है !

गायत्री—हमारा संगीत-शास्त्र ऋषियों का रचा हुआ है। उसमें कोई क्या सुधार करेगा? इसी भैरव और ध्रुपद के शब्द यशोदानन्दन की वंशी से निकलते थे। पहले कोई गा तो ले; सुधारना तो छोटा मुंह बड़ी बात है।

ज्ञान—रायसाहब को कोई और चिंता तो है नहीं, एक-न-एक स्वांग रचते रहते हैं। कर्ज बढ़ता जाता है, रियासत बोझ से दबी जाती है, पर वह अपनी धुन में किसी की कब सुनते हैं ! मेरा अनुमान है कि इस समय उन पर कोई साढ़े तीन लाख देना है।

गायत्री—इतना धन कृष्ण भगवान् की सेवा में खर्च करते तो परलोक बन जाता। चिट्ठियां तो खोलिए, जरूर कोई पत्र होगा।

ज्ञान—हां, देखिए यह लिफाफा उन्हीं का मालूम होता है। हां, उन्हीं का है। मुझे बुला रहे हैं और आपको भी बुला रहे हैं।

गायत्री—मैं जा चुकी। जब वह यहां आने में अपनी हेटी समझते हैं, तो मुझे क्या पड़ी है कि उनके जलसों-तमाशों में जाऊं? हां, विद्या को चाहे पहुंचा दीजिए, मगर शर्त यह है कि आप दो दिन से ज्यादा वहां न ठहरें।

ज्ञान—इसके विषय में सोचकर निश्चय करूंगा। यह दो पत्र बरहाल और आमगांव के कारिंदों के हैं। दोनों लिखते हैं कि असामी सभा का चन्दा देने से इंकार करते हैं।

गायत्री की त्योरियां बदल गईं। प्रेम की देवी क्रोध की मूर्ति बन गई। बोली—क्या देहातों में भी वह हवा फैलने लगी? कारिंदों को लिख दीजिये कि इन पाजियों के घर में आग लगवा दें और उन्हें कोड़ों से पिटवाएं। उनका यह दिन कि मेरी आज्ञा का अनादर करें। देवकीनन्दन, तुम इन नर-पिशाचों को क्षमा करो ! आप आज ही वहां आदमी रवाना करें। मैं यह अवज्ञा नहीं सह सकती। यह सब-के-सब कृतघ्न हैं। किसी दूसरे राज में होते तो आटे-दाल का भाव खुलता। मैं उनके साथ इतनी रिआयत करती हूं, उनकी मदद के लिए तैयार रहती हूं, इनके लिए नुकसान उठाती हूं और उसका यह फल।

ज्ञान—यह मुंशी रामसनेही का पत्र है। लिखते हैं, ठाकुरद्वारे का काम तीन दिन से बंद है। बेगारों को कितनी ताकीद की जाती है, मगर काम पर नहीं आते।

गायत्री—उन्हें मजूरी दी जाती है न?

ज्ञान—जी हां, लेकिन जमींदारी की दर से दी जाती है। जमींदारी शरह दो आने है, आम शरह छ: आने है।

गायत्री—आप उचित समझें तो रामसनेही को लिख दीजिये कि चार आने के हिसाब से मजूरी दी जाय।

ज्ञान—लिख तो दूं, वास्तव में दो आने में एक पेट भी नहीं भरता, लेकिन इन मूर्ख, उजड्ड गंवारों पर दया भी की जाय तो वह समझते हैं कि दब गए। कल को छ: आने मांगने लगेंगे और फिर बात भी न सुनेंगे।

गायत्री—फिर लिख दीजिए कि बेगारों को जबर्दस्ती पकड़वा लें। अगर न आएं तो उन्हें गांव से निकाल दीजिए। हम स्वयं दयाभाव से उनके साथ जो सलूक करें, मगर यह कदापि नहीं हो सकता कि कोई असामी मेरे सामने हेकड़ी जताए। अपना रोब और भय बनाए रखना चाहिए।

ज्ञान—यह पत्र अमेलिया के बाजार से आया है। ठेकेदार लिखता है कि लोग गोले के भीतर गाड़ियां नहीं लाते। बाहर ही पेड़ों के नीचे अपना सौदा बेचते हैं। कहते हैं, हमारा जहां जी चाहेगा, बैठेंगे। ऐसी दशा में ठीका रद्द कर दिया जाय, अन्यथा मुझे बड़ी हानि होगी।

गायत्री—बाजार के बाहर भी तो मेरी ही जमीन है, वहां किसी को दुकान रखने का क्या अधिकार है?

ज्ञान—कुछ नहीं, बदमाशी है। बाजारों में रुपये पीछे एक पैसा बयाई देनी पड़ती है, तौल ठीक-ठीक होती है, कुछ धर्मार्थ कटौती देनी पड़ती है, बाहर मनमाना राज है।

गायत्री—यह क्या बात है कि जो काम जनता के सुभीते और आराम के लिए किये जाते हैं, उनका भी लोग विरोध करते हैं?

ज्ञान—कुछ नहीं, यह मानव-प्रकृति है। मनुष्य को स्वभावत: दबाव से, रोकथाम से, चाहे वह उसी के उपकार के लिए क्यों न हो, चिढ़ होती है। किसान अपने मूर्ख पुरोहित के पैर धो-धो पीयेगा। लेकिन कारिंदा को, चाहे वह विद्वान् ब्राह्मण ही क्यों न हो, सलाम करने में भी उसे संकोच होता है। यों चाहे वह दिन-भर धूप में खड़ा रहे लेकिन कारिंदा या चपरासी को देखकर चारपाई से उठना उसे असह्य होता है। वह आठों पहर अपनी दीनता और विवशता के भार से दबा रहना नहीं चाहता। अपनी खुशी से नीम की पत्तियां चबाएगा, लेकिन जबर्दस्ती दूध और शर्बत भी न पीएगा। यह जानते हुए भी हम उन पर सख्ती करने के लिए बाध्य हैं।

इतने में मायाशंकर एक पीतांबर ओढ़े हुए ऊपर से उतरा। अभी उसकी उम्र चौदह वर्ष से अधिक न थी, किंतु मुख पर एक विलक्षण गंभीरता और विचारशीलता झलक रही थी जो इस अवस्था में बहुत कम देखने में आती है। ज्ञानशंकर ने पूछा—कहां चले, मुन्नू?

माया ने तीव्र नेत्रों से देखते हुए कहा—घाट की तरफ संध्या करने जाता है।

ज्ञान—आज सर्दी बहुत है। यहीं बाग में क्यों नहीं कर लेते?

माया—वहां एकांत में चित्त खूब एकाग्र हो जाता है।

वह चला गया तो ज्ञानशंकर ने कहा—इस लड़के का स्वभाव विचित्र है। समझ में नहीं आता। सवारियां सब तैयार हैं, पर पैदल ही जायगा। किसी को साथ भी नहीं लेता।

गायत्री—महरियां कहती हैं, अपना बिछावन तक किसी को नहीं छूने देते। वह बेचारियां इनका मुंह जोहा करती हैं कि कोई काम करने को कहें, पर इन्हें किसी से कुछ मतलब ही नहीं।

ज्ञान—इस उम्र में कभी-कभी यह सनक सवार हो जाया करती है। संसार का कुछ ज्ञान तो होता नहीं। पुस्तकों में जिन नियमों की सराहना की गई है, उनके पालन करने को प्रस्तुत हो जाता है। लेकिन मुझे तो यह कुछ मंद बुद्धि-सा जान पड़ता है। इतना बड़ा हुआ, पैसे की कदर ही नहीं जानता। अभी सौ रुपये दे दीजिये तो शाम तक पास कौड़ी न रहेगी। न जाने कहां उड़ा देता है, किंतु इसके साथ ही मांगता कभी नहीं। जब तक खुद न दीजिए, अपनी जबान से कभी न कहेगा।

गायत्री—मेरी समझ में तो यह पूर्वजन्म में कोई संन्यासी रहे होंगे।

ज्ञानशंकर ने आज की गाड़ी से बनारस जाकर विद्या को साथ लेते हुए लखनऊ जाने का निश्चय किया। गायत्री बहुत कहने-सुनने पर भी राजी न हुई।

बयालीस

राय कमलानन्द को देखे हुए हमें लगभग सात वर्ष हो गए, पर इस कालक्षेप का उन पर कोई चिह्न नहीं दिखाई देता। बल-पौरुष, रंग-ढंग सब कुछ वही है। यथापूर्व उनका समय सैर और शिकार, पोलो और टेनिस, राग और रंग में व्यतीत होता है। योगाभ्यास भी करने जाते हैं। धन पर वह कभी लोलुप नहीं हुए और अब भी उसका आदर नहीं करते। जिस काम की धुन हुई उसे करके छोड़ते हैं। इसकी जरा भी चिंता नहीं करते कि रुपये कहां से आएंगे। वह अब भी सलाहकारी सभा के मेंबर हैं। इस बीच में दो बार चुनाव हुआ और दोनों बार वही बहुमत से चुने गए। यद्यपि किसानों और मध्य-श्रेणी के मनुष्यों को भी वोट देने का अधिकार मिल गया था, तथापि रायसाहब के मुकाबले में कौन जीत सकता था? किसानों के वोट उनके और उनके अन्य भाइयों के हाथों में थे और मध्य श्रेणी के लोगों को जातीय संस्थाओं में चन्दे देकर वशीभूत कर लेना कठिन न था।

रायसाहब इतने दिनों तक मेंबर बने रहे, पर उन्हें इस बात का अभिमान था कि मैंने अपनी ओर से कौंसिल में कभी कोई प्रस्ताव न किया। वह कहते, मुझे खुशामदी टट्टू कहने में अगर किसी को आनंद मिला है तो कहे, मुझे देश और जाति का द्रोही कहने से अगर किसी का पेट भरता है तो मुझे कोई शिकायत नहीं है, पर मैं अपने स्वभाव को नहीं बदल सकता। अगर रस्सी तुड़ाकर मैं जंगल में अबाध्य फिर सकूं तो मैं आज ही खूंटा उखाड़ फेंकूं। लेकिन जब जानता हूं कि रस्सी तुड़ाने पर भी मैं बाड़े से बाहर नहीं जा सकता, बल्कि ऊपर से और डंडे पड़ेंगे तो फिर खूंटे पर चुपचाप खड़ा क्यों न रहूं? और कुछ नहीं तो मालिक की कृपा-दृष्टि तो रहेगी। जब राज-सत्ता अधिकारियों के हाथों में है, हमारे असहयोग और असम्मति से उसमें को परिवर्तन नहीं हो सकता तो इसकी क्या जरूरत है कि हम व्यर्थ अधिकारियों पर टीका-टि करने बैठें और उनकी आंखों में खटकें? हम काठ के पुतले हैं, तमाशे दिखाने के लि किये गए हैं, इसलिए हमें डोरी के इशारे पर नाचना चाहिए। यह हमारी खामखि

हम अपने को राष्ट्र का प्रतिनिधि समझते हैं। जाति हम जैसों को, जिसका अस्तित्व ही उसके रक्त पर अवलंबित है, कभी अपना प्रतिनिधि न बनाएगी! जिस दिन जाति में अपना हानि-लाभ समझने की शक्ति होगी, हम और आप खेतों में कुदाली चलाते नजर आएंगे। हमारा प्रतिनिधित्व संपूर्णत: हमारी स्वार्थपरता और सम्मान-लिप्सा पर निर्भर है। हम जाति के हितैषी नहीं हैं, हम उसे केवल स्वार्थ-सिद्धि का यंत्र बनाए हुए हैं। हम लोग अपने वेतन की तुलना अंग्रेजों से करते हैं। क्यों? हमें तो यह सोचना चाहिए कि ये रुपये हमारी मुट्ठी में न आकर यदि जाति की उन्नति और उपकार में खर्च हों तो अच्छा है। अंग्रेज अगर दोनों हाथों से धन बटोरते हैं तो बटोरने दीजिए। वह इसी उद्देश्य से इस देश में आए हैं। उन्हें हमारे जाति-प्रेम का दावा नहीं है। हम तो जाति-भक्ति की हांक चलाते हुए भी देश का गला घोंट देते हैं। हम अपने जातीय व्यवसाय के अध: पतन का रोना रोते हैं। मैं कहता हूं आपके हाथों यह दशा और भी असाध्य हो जाएगी। हम अगणित मिलें खोलेंगे, बड़ी संख्या में कारखाने कायम करेंगे, परिणाम क्या होगा? हमारे देहात वीरान हो जायंगे, हमारे कृषक कारखानों के मजदूर बन जाएंगे, राष्ट्र का सत्यानाश हो जायगा। आप इसको जातीय उन्नति की चरम सीमा समझते हैं, मेरी समझ में यह जातीयता का घोर अध:पतन है। जाति की जो कुछ दुर्गति हुई है हमारे हाथों हुई है। हम जमींदार हैं, साहूकार हैं, वकील हैं, सौदागर हैं, डॉक्टर हैं, पदाधिकारी हैं। इनमें कौन जाति की सच्ची वकालत करने का दावा कर सकता है? आप जाति के साथ बड़ी भलाई करते हैं, तो कौंसिल में अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव पास करा देते हैं। अगर आप जाति के सच्चे नेता होते, तो यह निरंकुशता कभी न करते। कोई अपनी इच्छा के विरुद्ध स्वर्ग भी नहीं चाहता। हममें तो कितने ही महोदयों ने बड़ी-बड़ी उपाधियां प्राप्त की हैं। पर इस उच्च शिक्षा ने हममें सिवा विलास-लालसा और सम्मान-प्रेम, स्वार्थ-सिद्धि और अहम्मन्यता के और कौन-सा सुधार कर दिया। हम अपने घमंड में अपने को जाति का अत्यावश्यक अंग समझते हैं, पर वस्तुत: हम कीट-पतंग से भी गए बीते हैं। जाति-सेवा करने के लिए दो हजार मासिक, मोटर, बिजली-पंखे, फिटन, नौकर या चाकर की क्या जरूरत है? आप रूखी रोटियां खाकर जाति की सेवा इससे कहीं उत्तम रीति से कर सकते हैं। आप कहेंगे-वाह, हमने परिश्रम से विद्योपार्जन किया है, क्या इसीलिए? तो जब आपने कायिक सुखभोग के लिए इतना अध्यवसाय किया है, तब जाति पर इसका क्या एहसान? आप किस मुंह से जाति के नेतृत्व का दावा करते हैं। आप मिलें खोलते हैं, तो समझते हैं, हमने जाति की बड़ी सेवा की, पर यथार्थ में आपने दस-बीस हजार आदमियों को वनवास दे दिया। आपने उनके नैतिक और सामाजिक पतन का सामान पैदा कर दिया। हां, आपने और आपके साझेदारों ने पैंतालीस रुपये प्रति सैकड़े लाभ अवश्य उठाया। तो भाई, जब तक यह धींगा-धींगी चलती है, चलने दो। न तुम मुझे बुरा कहो, न मैं तुम्हें बुरा कहूं। हम और आप, नरम और गरम दोनों ही जाति के शत्रु हैं। अंतर यह है कि मैं अपने को शत्रु समझता हूं और आप अहंकार के मद में अपने को उसका मित्र समझते हैं।

इन तर्कों को सुनकर लोग उन्हें बक्की और झक्की कहते थे। अवस्था के साथ रायसाहब का संगीत-प्रेम और भी बढ़ता जाता था। अधिकारियों से मुलाकात का उन्हें अब इतना व्यसन नहीं था। जहां कहीं किसी उस्ताद की खबर पाते, तुरंत बुलाते और यथायोग्य सम्मान करते। संगीत की वर्तमान अभिरुचि को देखकर उन्हें भय होता था कि अगर कुछ दिनों यही दशा रही तो इसका स्वरूप ही मिट जाएगा, देश और भैरव की तमीज भी किसी को न होगी। वह संगीत-कला को जाति की सर्वश्रेष्ठ संपत्ति समझते थे। उसकी अवनति उनकी समझ में जातीय पतन का निकृष्टतम स्वरूप था। व्यय का अनुमान चार लाख किया गया था। रायसाहब ने किसी

से सहायता मांगना उचित न समझा था, लेकिन कई रईसों ने स्वयं दो-दो लाख के वचन दिये थे। तब भी रायसाहब पर दो-ढ़ाई लाख का भार पड़ना सिद्ध था। यूरोप से छः नामी संगीतज्ञ आ गए थे—दो जर्मनी से, दो इटली से, एक फ्रांस और एक इंगलिस्तान से। मैसूर, ग्वालियर, ढाका, जयपुर, काश्मीर के उस्तादों को निमंत्रण-पत्र भेज दिये गए थे। रायसाहब का प्राइवेट सेक्रेटरी सारे दिन पत्र-व्यवहार में व्यस्त रहता था, जिस पर चिट्ठियों की इतनी कसरत हो जाती थी कि बहुधा रायसाहब को स्वयं जवाब लिखने पड़ते थे। इसी काम को निबटाने के लिए उन्होंने ज्ञानशंकर को बुलाया और वह आज ही विद्या के साथ आ गए थे। रायसाहब ने गायत्री के न आने पर बहुत खेद प्रकट किया और बोले—वह इसीलिए नहीं आई है कि मैं सनातन धर्म सभा के उत्सव में न आ सका था। अब रानी हो गई है ! क्या इतना गर्व भी न होगा? यहां तो मरने को भी छुट्टी न थी, जाता क्यों कर?

ज्ञानशंकर रात-भर के जागे थे, भोजन करके लेटे तो तीसरे पहर उठे। रायसाहब दीवानखाने में बैठे हुए चिट्ठियां पढ़ रहे थे। ज्ञानशंकर को देखकर बोले—आइए, भगतजी आइए। तुमने तो काया ही पलट दी। बड़े भाग्यवान हो कि इतनी अवस्था में ज्ञान प्राप्त कर लिया। यहां तो मरने के किनारे आये, पर अभी माया-मोह से मुक्त न हुआ। यह देखो, पूना के प्रोफेसर माधोल्कर ने यह पत्र भेजा है। उन्हें न जाने कैसे यह शंका हो गई है कि मैं इस देश में विदेशी संगीत का प्रचार करना चाहता हूं। इस पर आपने मुझे खूब आड़े हाथों लिया है।

ज्ञानशंकर मतलब की बात छेड़ने को अधीर हो रहे थे, अवसर मिल गया, बोले—आपने यूरोप से लोगों को नाहक बुलाया। इसी से जनता को ऐसी शंकाए हो रही हैं। उन लोगों की फीस तय हो गई है?

रायसाहब—हां, यह तो पहली बात थी। दो सज्जनों की फीस तो रोजाना दो-दो हजार है। सफर का खर्च अलग। जर्मनी के दोनों महाशय डेढ़-डेढ़ हजार रोजाना लेंगे। केवल इटली के दोनों आदमियों ने निःस्वार्थ भाव से शरीक होना स्वीकार किया है।

ज्ञान—अगर यह चारों महाशय यहां पन्द्रह दिन भी रहें तो एक लाख रुपये तो उन्हीं को चाहिए?

राय—हां, इससे क्या कम होगा।

ज्ञान—तो कुल खर्च चाहे पांच-साढ़े पांच लाख तक जा पहुंचे।

राय—तखमीना तो चार लाख का किया गया था, लेकिन शायद इससे कुछ ज्यादा ही पड़ जाय।

ज्ञान—यहां के रईसों ने भी कुछ हिम्मत दिखाई?

राय—हां, कई सज्जनों ने वचन दिये हैं। संभव है दो लाख मिल जाएं।

ज्ञान—अगर वह अपने वचन पूरे भी कर दें तो आपको ढाई-तीन लाख की जेरबारी होगी।

रायसाहब ने व्यंग्यपूर्ण हास्य के साथ कहा—मैं तो उसे जेरबारी नहीं समझता। धन सुख-भोग के लिए है। उसका और कोई उद्देश्य नहीं है। मैं धन को अपनी इच्छाओं का गुलाम समझता हूं, उसका गुलाम बनना नहीं चाहता।

ज्ञान—लेकिन वारिसों को भी तो सुख-भोग का कुछ-न-कुछ अधिकार है?

राय—संसार में सब प्राणी अपनी कर्मानुसार सुख-दुख भोगते हैं। मैं किसी के भाग्य का विधाता नहीं हूं?

ज्ञान—क्षमा कीजिएगा, यह शब्द ऐसे पुरुष के मुंह से शोभा नहीं देते जो अपने जीवन का अधिकांश बिता चुका हो।

रायसाहब ने कठोर स्वर से कहा—तुम्हें मुझे उपदेश करने का कोई अधिकर नहीं है। मैं अपनी संपत्ति का स्वामी हूं। उसे अपनी इच्छा और रुचि के अनुसार खर्च करूंगा। यदि इससे तुम्हारे सुख-स्वप्न नष्ट होते हैं, तो हों, मैं इसकी परवाह नहीं करता। यह मुमकिन नहीं कि सारे संसार में इस कांफ्रेंस की सूचना देने के बाद अब मैं उसे स्थगित कर दूं। मेरी सारी जायदाद बिक जाए तो भी मैंने जो काम उठाया है, उसे अंत तक पहुंचा कर छोड़ूंगा। मेरी समझ में नहीं आता कि तुम कृष्ण के ऐसे भक्त और त्याग तथा वैराग्य के ऐसे साधक होकर माया-मोह में इतने लिप्त क्यों हो? जिसने कृष्ण का दामन पकड़ा, प्रेम का आश्रय लिया, भक्ति की शरण गहीं, उसके लिए सांसारिक वैभव क्या चीज है ! तुम्हारी बातें सुनकर और तुम्हारे चित्त की यह वृत्ति देखकर मुझे संशय होता है कि तुमने यह बहुरूप धरा है और प्रेम-भक्ति का स्वाद नहीं पाया। कृष्ण का अनुरागी कभी इतना संकीर्ण हृदय नहीं हो सकता। मुझे अब शंका हो रही है कि तुमने यह जाल कहीं सरल-हृदय गायत्री कि लिए न फैलाया हो।

यह कहकर रायसाहब ने ज्ञानशंकर को तीव्र नेत्रों से देखा। उनके संदेह का निशाना इतना ठीक बैठा था कि ज्ञानशंकर का हृदय कांप उठा। इस भ्रम का मूलोच्छेद करना परमावश्यक था। रायसाहब के मन में इसका जगह पाना अत्यंत भयंकर था। इतना ही नहीं, इस भ्रम को दूर करने के लिए निर्भीकता की आवश्यकता थी। शिष्टाचार का समय न था। बोले—आपके मुख से स्वांग और बहुरूप की लांछना सुनकर एक मसल याद आती है, लेकिन आप पर उसे घटित करना नहीं चाहता। जो प्राणी धर्म के नाम पर विषय-वासना और विष-पान को स्तुत्य समझता हो वह यदि दूसरों की धार्मिक वृत्ति को पाखंड समझे तो क्षम्य है।

रायसाहब ने ज्ञानशंकर को फिर चुभती हुई दृष्टि से देखा और कड़ी आवाज में बोले—तुम्हें सच कहना होगा !

ज्ञानशंकर को ऐसा अनुभव हुआ मानो उनके हृदय पर से कोई पर्दा-सा उठा जा रहा है। उन पर एक अर्द्धविस्मृति की दशा छा गई। दीन भाव से बोले—जी हां, सच कहूंगा।

राय—तुमने यह जाल किसके लिए फैलाया है?

ज्ञान—गायत्री के लिए।

राय—तुम उससे क्या चाहते हो?

ज्ञान—उसकी संपत्ति और उसका प्रेम।

रायसाहब खिलखिलाकर हंसे। ज्ञानशंकर को जान पड़ा, मैं कोई स्वप्न देखते-देखते जाग उठा। उनके मुंह से जो बातें निकली थीं, वह उन्हें याद थीं। उनका कृत्रिम क्रोध शांत हो गया। उसकी जगह उस लज्जा और दीनता ने ले ली थी, जो किसी अपराधी के चेहरे पर नजर आती है। वह समझ गए कि रायसाहब ने मुझे अपने आत्मबल से वशीभूत करके मेरी दुष्कल्पनाओं को स्वीकार करा लिया। इस समय वह उन्हें अत्यंत भयावह रूप में दीख पड़ते थे। उनके मन में अत्याचार का प्रत्याघात करने की घातक चेष्टा लहरें मार रही थी। पर इसके साथ ही उन पर एक विचित्र भय आच्छादित हो गया था वह इस शैतान के सामने अपने को सर्वथा निर्बल और अशक्त पाते थे। परिस्थितियों से वह ऐसा उद्विग्न हो रहे थे कि जी चाहता था आत्म-हत्या कर लूं। जिस भवन को वह छ:-सात वर्षों से एक-एक ईंट जोड़कर बना रहे

थे, इस समय वह हिल रहा था और निकट था कि गिर पड़े। उसे संभालना उनकी शक्ति के बाहर था। शोक ! मेरे मनसूबे मिट्टी में मिले जाते हैं। उधर से भी गया, इधर से भी गया। यकायक रायसाहब बोले–बेटा, तुम व्यर्थ मुझ पर इतना कोप कर रहे हो। मैं इतना क्षुद्र-हृदय नहीं हूं कि तुम्हें गायत्री की दृष्टि में गिराऊं। उसकी जायदाद तुम्हारे हाथ लग जाय तो मेरे लिए इससे ज्यादा हर्ष की बात और क्या होगी? लेकिन तुम्हारी चेष्टा उसकी जायदाद तक ही रहती तो मुझे को आपत्ति न होती। आखिर वह जायदाद किसी-न-किसी को तो मिलेगी ही और जिन्हें मिलेगी वह मुझे तुमसे ज्यादे प्यारे नहीं हो सकते। किंतु मैं उसके सतीत्व को उसकी जायदाद से कहीं ज्यादा बहुमूल्य समझता हूं और उस पर किसी की लोलुप दृष्टि का पड़ना सहन नहीं कर सकता। तुम्हारी सच्चरित्रता की मैं सराहना किया करता था, तुम्हारी योग्यता और कार्यपटुता का मैं कायल था, लेकिन मुझे इसका गुमान भी न था कि तुम इतने स्वार्थ-भक्त हो। तुम मुझे पाखंडी और विषयी समझते हो, मुझे इसका जरा भी दुःख नहीं है। अनात्मवादियों को ऐसी शंका होनी स्वाभाविक है। किंतु मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि मैंने कभी सौंदर्य को वासना की दृष्टि से नहीं देखा। मैं सौंदर्य की उपासना करता हूं, उसे अपने आत्म-निग्रह का साधन समझता हूं, उससे आत्म-बल संग्रह करता हूं, उसे अपनी चेष्टाओं की सामग्री नहीं बनाता। और मान लो, मैं विषयी ही सही। बहुत दिन बीत गए हैं, थोड़े दिन और बाकी हैं, जैसा अब तक रहा वैसा ही आगे भी रहूंगा। अब मेरा सुधार नहीं हो सकता। लेकिन तुम्हारे सामने अभी सारी उम्र पड़ी हुई है, इसलिए मैं तुमसे अनुरोध करता हूं और प्रार्थना करता हूं कि इच्छाओं के, कुवासनाओं के गुलाम मत बनो। तुम इस भ्रम में पड़े हुए हो कि मनुष्य अपने भाग्य का विधाता है। यह सर्वथा मिथ्या है। हम तकदीर के खिलौने हैं, विधाता नहीं। वह हमें अपने इच्छानुसार नचाया करती है। तुम्हें क्या मालूम है कि जिसके लिए तुम सत्यासत्य में विवेक नहीं करते, पुण्य और पाप को समान समझते हो, उस शुभ-मुहूर्त तक सभी विघ्न-बाधाओं से सुरक्षित रहेगा? संभव है कि ठीक उस समय जब जायदाद पर उसका नाम चढ़ाया जा रहा हो एक फुंसी उसका काम तमाम कर दे। यह न समझो कि मैं तुम्हारा बुरा चेत रहा हूं। तुम्हें आशाओं की असारता का केवल एक स्वरूप दिखाना चाहता हूं। मैंने तकदीर की कितनी ही लीलाएं देखी हैं और स्वयं उसका सताया हुआ हूं। उसे अपनी शुभ कल्पनाओं के सांचे में ढालना हमारी सामर्थ्य से बाहर है। मैं नहीं कहता कि तुम अपने और अपनी संतान के हित की चिंता मत करो, धनोपार्जन न करो। नहीं, खूब धन कमाओ और खूब समृद्धि प्राप्त करो, किंतु अपनी आत्मा और ईमान को उस पर बलिदान न करो। धूर्तता और पाखंड, छल और कपट से बचते रहो। मेरी जायदाद बीस लाख से कम की मालियत नहीं है। अगर दो-चार लाख कर्ज ही हो जाए तो तुम्हें घबड़ाना नहीं चाहिए। क्या इतनी संपत्ति मायाशंकर के लिए काफी नहीं है? तुम्हारी पैतृक संपत्ति भी दो लाख से कम की नहीं है। अगर इसे काफी नहीं समझते तो गायत्री की जायदाद पर भी निगाह रखो, इसे मैं बुरा नहीं कहता। अपने सुप्रबंध से, कार्य-कुशलता से, किफायत से, हितेच्छा से, उसके कृपा-पात्र बन जाओ, न कि उसके भोलेपन, उसकी सरलता और मिथ्या भक्ति को अपनी कूटनीति का लक्ष्य बनाओ और प्रेम का स्वांग भर कर उसके जीवन-रत्न पर हाथ बढ़ाओ।

इतने में प्राइवेट सेक्रेटरी साहब आये। रायसाहब उनकी ओर आकृष्ट हो गए। ज्ञानशंकर रो रहे थे। भेद खुल जाने का शोक था, चिरसंचित अभिलाषाओं के विनष्ट हो जाने का दुःख, कुछ ग्लानि, कुछ अपनी दुर्जनता का खेद, कुछ निर्बल क्रोध। तर्कनाशक्ति इतने आघातों का प्रतिरोध न कर सकती थी।

ज्ञानशंकर उठकर बाग में एक बेंच पर जा बैठे। माघ का महीना था और संध्या का समय।

लेकिन उन्हें इस समय जरा भी सरदी न लगती थी। समस्त शरीर अंतरस्थ चिंतादाह से खौल रहा था। रायसाहब का उपदेश सम्पूर्णत: विस्मृत हो गया था। केवल यह चिंता थी कि गिरती हुई दीवार को क्योंकर थामें, मरती हुई अभिलाषाओं को क्योंकर संभालें? यह महाशय कहते हैं कि मैं गायत्री से कुछ न कहूंगा, लकिन इनका एतबार ही क्या? इन्होंने जहां उसके कान भरे, वह मेरी सूरत से घृणा करने लगेगी। गौरवशील स्त्री है, उसे अपने सतीत्व पर घमंड है। यद्यपि उसे मुझसे प्रेम है किंतु अभी तक उसका आधार धर्म पर है, मनोवेगों पर नहीं। उसकी स्थिति का क्या भरोसा? दुष्ट अपनी जायदाद का सर्वनाश तो किए ही डालता है, उधर का द्वार भी बंद किए देता है कि मुझे कहीं निकलने का मार्ग ही न मिले ! मैं इतनी निराशाओं का भार नहीं सह सकता। इस जीवन में अब कोई आनंद नहीं रहा। जब अभिलाषाओं का ही अंत हुआ जाता है तब जीकर ही क्या करना है? हा ! क्या सोचता था और क्या हो रहा है?

रायसाहब तो शाम को क्लब चले गए और ज्ञानशंकर उसी निर्जन-स्थान पर बैठे जीवन और मृत्यु का निर्णय करते रहे। उनकी दशा उस व्यापारी की-सी थी जिसका सब कुछ जलमग्न हो गया हो, या उस विद्यार्थी की-सी थी जो वर्षों के कठिन श्रम के बाद परीक्षा में गिर गया हो। जब बाग में खूब ओस पड़ने लगी तो वह उठकर कमरे में चले गए। फिर उन्हीं चिंताओं ने आ घेरा। जीवन में अब निराशा और अपमान के सिवा और कुछ नहीं रहा। ठोकरें खाता रहूंगा। जीवन का अंत ही अब मेरे डूबते हुए बेड़े को पार लगा सकता है। रायसाहब इतने नीच नहीं हैं कि मरने पर भी मुझे बदनाम करें। उन्होंने बहुत सच कहा था कि मनुष्य अपने भाग्य का खिलौना है। मैं इस दशा में हूं कि मृत्यु ही मेरे सारे दुखों का एकमात्र उपाय है। सामान्यत: लोग यही समझेंगे कि मैंने संसार से विरक्त होकर प्राण त्याग दिये, माया-मोह के बन्धन से मुक्त हो गया। ऐसी मुक्त आत्मा के लिए यह अंधकारमय जगत अनुकूल न था। विद्या की निगाह में मेरा आदर कई गुना बढ़ जायगा और गायत्री तो मुझे कृष्ण का अवतार समझने लगेगी। बहुत संभव है मेरी आत्मा को प्रसन्न करने के लिए वह माया को गोद ले ले। चाचा और भाई दोनों मुझ पर कुपित हैं। मौत उनको भी नर्म कर देगी। और मुश्किल हो क्या है? कल गोमती स्नान करने जाऊं। एक सीढ़ी भी नीचे उतर गया तो काम तमाम है। बीस हजार जो मैं नगद छोड़े जाता हूं, विद्या के निर्वाह के लिए काफी है। लखनपुर की आमदनी अलग।

यह सोचते-सोचते ज्ञानशंकर इतने शोकातुर हुए कि जोर-जोर से सिसकियां भर कर रोने लगे। यही जीवन का फल है ! इसीलिए दुनिया भर के मंसूबे बांधे थे? यह दुष्ट कमलानन्द मेरी गर्दन पर छुरी फेर रहा है। यही निर्दयी मेरी जान का गाहक हो रहा है।

इतने में विद्यावती आ गई और बोली—आज दादाजी और तुमसे कुछ तकरार हो गई क्या? मुख्तार साहब कहते थे कि रायसाहब बड़े क्रोध में थे। तुम नाहक उनके बीच में बोला करते हो। वह जो कुछ करें, करने दो। अम्मां समझाते-समझाते मर गईं, इन्होंने कभी रत्ती भर परवाह न की। अपने सामने किसी को कुछ समझते ही नहीं।

ज्ञान—मैंने तो केवल इतना कहा कि आपका व्यर्थ दो-तीन लाख रुपया फूंक देना उचित नहीं है। बस, इतनी-सी बात पर बिगड़ गए।

विद्या—यह तो उनका स्वभाव ही है। जहां उनकी बात किसी ने काटी और वह आग हुए। बुरा मुझे भी लग रहा है, पर मुंह खोलते कांपती हूं।

ज्ञान—मुझे इनकी जायदाद की परवाह नहीं है। मैंने वृन्दावनबिहारी का आश्रय लिया है,

अब किसी बात की अभिलाषा नहीं, लेकिन यह अनर्थ नहीं देखा जाता।

विद्या चली गई। थोड़ी देर में महाराज ने भोजन की थाली लाकर रख दी। लेकिन ज्ञानशंकर को कुछ खाने की इच्छा न हुई। थोड़ा-सा दूध पी लिया और फिर विचारों में मग्न हुए—स्त्रियों के विचार कितने संकुचित होते हैं। तभी तो इन्हें संतोष हो जाता है। वह समझती हैं, आदमी को चैन से भोजन-वस्त्र मिल जाएं, गहने-जेवर बनते जाएं, संतानें होती जाएं, बस और क्या चाहिए। मानो मानव-जीवन भी अन्य जीवधारियों की भांति केवल स्वाभाविक आवश्यकताएं पूरी करने के लिए हैं। विद्या को कितना संतोष है। लोग स्त्रियों के इस गुण की बड़ी प्रशंसा करते हैं। मेरा विचार तो यह है कि धैर्य और संतोष उनकी बुद्धिहीनता का प्रमाण है। उनमें इतना बुद्धिसामर्थ्य ही नहीं होता कि अवस्था और स्थिति का यथार्थ अनुमान कर सकें। रायसाहब की फूंक-ताप विद्या को अखरती है, लेकिन कुछ बोलती नहीं, जरा भी चिंतित नहीं है। यह नहीं समझती कि वह सरासर अपनी ही हानि, अपना ही सर्वनाश है। दशा ने कैसा पलटा खाया है। अगर मेरे मंसूबे सफल हो जाते तो दो-चार वर्ष में मैं तीन लाख रुपये वार्षिक का आदमी होता। दस-पंद्रह वर्षों में अतुल संपत्ति का स्वामी होता...लेकिन मन की मिठाई खाने से क्या होता है?

ज्ञानशंकर बड़ी गंभीर प्रकृति के मनुष्य थे। उनमें शुद्धि संकल्प की भी कमी न थी। झोकों में उनके पैर न उखड़ते थे, कठिनाइयों में उनकी हिम्मत न छूटती थी। गोरखपुर में उन पर चारों ओर से दांव-पेंच होते रहे लेकिन उन्होंने कभी परवाह न की। लेकिन उनकी अविचलता वह न थी जो परिस्थिति-ज्ञान-शून्यता की हद तक जा पड़ती है। वह उन जुआरियों में न थे, जो अपना सब कुछ एक दांव पर हारकर अकड़ते हुए चलते हैं। छोटी-छोटी हारों का, छोटी-छोटी असफलताओं का असर उन पर न होता था, लेकिन उन मंतव्यों का नष्ट-भ्रष्ट हो जाना, जिन पर जीवन उत्सर्ग कर दिया गया हो, धैर्य को भी विचलित, अस्थिर कर देता है, और फिर यहां केवल नैराश्य और शोक न था। मेरे छल-कपट का पर्दा खुल गया। मेरी भक्ति और धर्मनिष्ठा की, मेरे वैराग्य और त्याग की, मेरे उच्चादर्शों की, मेरे पवित्र आचरण की कलई खुल गई। संसार अब मुझे यथार्थ रूप में देखेगा। अब तक मैंने अपनी तर्कनाओं से, अपनी प्रगल्भता से, अपनी कलुषता को छिपाया। अब वह बात कहां?

ज्ञानशंकर को नींद न आई। जरा आंखें झपक जातीं तो भयावह स्वप्न दिखाई देने लगते। कभी देखते, मैं गोमती में डूब गया हूं और मेरा शव चिता पर जलाया जा रहा है। कभी नजर आता, मेरा विशाल भवन विध्वंस हो गया है और मायाशंकर उसके भग्नावेष पर बैठा हुआ रो रहा है। एक बार ऐसा जान पड़ा कि गायत्री मेरी ओर कोप-दृष्टि से देखकर कह रही है, तुम मक्कार हो, आंखों से दूर हो जाओ।

प्रात:काल ज्ञानशंकर उठे तो चित्त बहुत खिन्न था। ऐसे अलसाए हुए थे, मानो कोई मंजिल तय करके आए हों। उन्होंने किसी से कुछ बातचीत न की। धोती उठाई और पैदल गोमती की ओर चले। अभी सूर्योदय नहीं हुआ था, लेकिन तमाखू वालों की दुकानें खुल गई थीं। ज्ञानशंकर ने सोचा, क्या तमाखू ही जीवन की मुख्य वस्तु है कि सबसे पहले इसकी दुकान खुलती है? जरा देर में 'मलाई-मक्खन' की ध्वनि कानों में आई। दुष्ट कितना जीभ ऐंठ कर बोलता है। समझता होगा कि यह कर्णकटु शब्द रुचिवर्द्धक होंगे। भला गाता तो एक बात भी थी। अच्छा, 'चाय-गरम' भी आ पहुंची। गर्म तो अवश्य ही होगी, बिना फूंके पियो तो जीभ जल जाय, मगर

स्वाद वही गर्म पानी का। यह कौन महाशय घोड़ा दौड़ाए चले आते हैं कोई फौजी अफसर हैं। घोड़ा जरा ठोकर ले तो साहब बहादुर की हड्डियां चूर हो जाएं।

वह गोमती के तट पर पहुंचे तो भक्तजनों की भीड़ देखी। श्यामल जलधारा पर श्यामल कुहिर छटा छाई हुई थी। सूर्य की सुनहरी किरणें इस श्याम घटा में प्रविष्ट होने के लिए उत्सुक थीं। दो-चार नौकाएं पानी में खड़ी कांप रही थीं।

ज्ञानशंकर ने धोती चौकी पर रख दी और पानी में घुसे तो सहसा उनकी आंखें सजल हो गईं। कमर तक पानी में गए, आगे बढ़ने का साहस न हुआ। अपमान और नैराश्य के जिन भावों ने उनकी प्रेरणाओं को उत्तेजित कर रखा था वह अकस्मात् शिथिल पड़ गए। कितने रण-मद के मतवाले रणक्षेत्र में आकर पीठ फेर लेते हैं। मृत्यु दूर से इतनी विकराल नहीं दीख पड़ती, जितनी सम्मुख आकर। सिंह कितना भयंकर जीव है, इसका अनुमान उसे सामने देखकर ही हो सकता है। पहाड़ों को दूर से देखो तो ऊंची मेड़ के सदृश देख पड़ते हैं, उन पर चढ़ना आसान मालूम होता है, किंतु समीप जाइए तो उनकी गगन-स्पर्शी चोटियों को देखकर चित्त कैसा भयभीत हो जाता है। ज्ञानशंकर ने मरने को जितना सहज समझा था उससे कहीं कठिन ज्ञात हुआ। उन्हें विचार हुआ, मैं कैसा मंदबुद्धि हूं कि एक जरा-सी बात के लिए प्राण देने पर तत्पर हो रहा हूं। माना, मैं रायसाहब की नजरों में गिर गया, माना गायत्री भी मुझे मुंह न लगाएगी और विद्या भी मुझसे घृणा करने लगेगी, तब भी क्या मैं जीवनकाल में कुछ काम नहीं कर सकता? अपना जीवन सफल नहीं बना सकता? संसार का कर्मक्षेत्र इतना तंग नहीं है। मैं इस समय आज से छः-सात वर्ष पूर्व की अपेक्षा कहीं अच्छी दशा में हूं। मेरे बीस हजार रुपये बैंक में जमा हैं, दो सौ रुपये मासिक की आमदनी गांव से है, बंगला है, मोटर है, मकान किराए पर उठा दूं तो पचास-साठ रुपये माहवार और मिलने लगें। अगर किसी की चाकरी न करूं तो भी एक भले आदमी की भांति जीवन व्यतीत कर सकता हूं। रायसाहब यदि मेरी कलई खोल दें तो क्या मैं उनकी खबर नहीं ले सकता? उन्हें अपने कलम के जोर से इतना बिगाड़ सकता हूं कि वह किसी को मुंह दिखाने योग्य न रहेंगे। गायत्री भी मेरे पंजों में है, मेरी तरफ से जरा भी निगाह मोटी करे तो आन-की-आन में उसे इस उच्चासन से गिरा सकता हूं। उसे मैंने ही इतना नेकनाम बनाया है और बदनाम भी कर सकता हूं। मेरी बुद्धि न जाने कहां चली गई थी। कूटनीति की रंगभूमि क्या इतनी संकीर्ण है? अब तक मुझे जो कुछ सफलता हुई है इसी की बदौलत हुई है, तो अब मैं उसका दामन क्यों छोडूं? उससे निराश क्यों हो जाऊं? अगर इस टूटी हुई नौका में बैठकर मैनें आधी नदी पार कर ली है तो अब उस पर से जल में क्यों कूद पडूं?

ज्ञानशंकर स्नान करके जल से निकल आए। उनका चेहरा विजय-ज्योति से चमक रहा था।

लेकिन जिस प्रकार विजयी सेना शत्रुदल को मैदान से हटा कर और भी उत्साहित हो जाती है और शत्रु को इतना निर्बल और अपंग बना देती है कि फिर उसके मैदान में आने की संभावना ही न रहे, उसी प्रकार ज्ञानशंकर के हौसले भी बढ़े। सोचा, इसकी नौबत ही क्यों आने दूं कि मुझ पर चारों ओर से आक्षेप होने लगें और मैं अपनी सफाई देता फिरूं? मैं मरकर नेकनाम बनना चाहता था, क्यों न मारकर वही उद्देश्य पूरा करूं? इस समय यही पुरुषोचित कर्त्तव्य है। मरने से मारना कहीं सुगम है। भाग्य-विधाता ! तुम्हारी लीला कितनी विचित्र है ! तुमने मुझको मृत्यु के मुख से निकाल लिया। बाल-बाल बचा ! मैं अब भी अपने मंसूबों को पूरा कर सकता

हूं। विभव, यश, सुकीर्ति सब कुछ मेरे अधीन है, केवल थोड़ी-सी हिम्मत चाहिए। ईश्वर का कोई भय नहीं, वह सर्वज्ञ है। पर्दा तो केवल मनुष्यों की आंखों पर डालना है, और मैं इस काम में सिद्धहस्त हूं।

ज्ञानशंकर एक किराए के तांगे पर बैठकर घर आए। रास्ते भर वह इन्हीं विचारों में लीन रहे। उनकी ऋद्धि-प्राप्ति के मार्ग में रायसाहब ही बाधक हो रहे थे। इस बाधा को हटाना आवश्यक था। पहले ज्ञानशंकर ने निराश होकर इस मार्ग से लौट जाने का निश्चय किया था। अपने प्राण देकर इस संकट से निवृत्त होना चाहते थे। अब उन्होंने रायसाहब को ही अपनी आकांक्षाओं की वेदी पर बलिदान करने की ठानी। संसार इसे हिंसा कहेगा, उनकी दृष्टि में यह घोर पाप है--सर्वथा अक्षम्य, अमानुषीय। लेकिन दार्शनिक दृष्टि से देखिए तो इसमें पाप का संपर्क तक नहीं है। रायसाहब के मरने से किसी को क्या हानि होगी? उनके बाल-बच्चे नहीं हैं जो अनाथ हो जाएंगे। वह कोई ऐसा महान कार्य नहीं कर रहे हैं जो उनके मर जाने से अधूरा रह जाएगा, उनकी जायदाद का भी ह्रास नहीं होगा, बल्कि एक ऐसी व्यवस्था का आरोपण हुआ जाता है जिससे वह सुरक्षित रहेगी। समाज और अर्थशास्त्र के सिद्धांतों के अनुसार तो इसे हत्या कह ही नहीं सकते। नैतिक दृष्टि से भी इस पर कोई आपत्ति नहीं हो सकती। केवल धार्मिक दृष्टि से इसे पाप कहा जा सकता है। और लौकिक नीति के अनुसार तो यह काम केवल सराहनीय ही नहीं, परमावश्यक है। यह जीवन-संग्राम है। इस क्षेत्र में विवेक, धर्म और नीति का गुजर नहीं। यह कोई धर्मयुद्ध नहीं है ! यहां कपट, दगा, फरेब सब कुछ उपयुक्त है, अगर उससे अपना स्वार्थ सिद्ध होता है। यहां छापा मारना, आड़ से शस्त्र चलाना विजय प्राप्ति के साधन हैं। यहां औचित्य-अनौचित्य का निर्णय हमारी सफलता के अधीन है। अगर जीत गए तो सारे धोखे और मुगालते सुअवसर के नाम से पुकारे जाते हैं, हमारी कार्य-कुशलता की प्रशंसा होती है। हारे तो उन्हें पाप कहा जाता है। बस, इस पत्थर को मार्ग से हटा दूं और मेरा रास्ता साफ है।

ज्ञानशंकर ने नाना प्रकार के तर्कों से इन मनोगत विचारों को उसी तरह प्रोत्साहित किया, जैसे कोई कबूतरबाज बहके हुए कबूतरों को दाने बिखेर-बिखेर कर अपनी छतरी पर बुलाता है। अंत में उनकी हिंसात्मक प्रेरणा दृढ़ हो गई। जगत हिंसा के नाम से कांपता है, हिंसक पर बिना समझे-बूझे चारों ओर से वार होने लगते हैं। वह दुरात्मा है, दंडनीय है, उसका मुंह देखना भी पाप है। लेकिन यह अनंत संसार केवल मूर्खों की बस्ती है। इसके विचारों का, इसके भावों का सम्मान करना कांटों पर चलना है। यहां कोई नियम नहीं, कोई सिद्धांत नहीं, कोई न्याय नहीं। इसकी जबान बंद करने का बस एक ही उपाय है। इसकी आंखों पर परदा डाल दो और वह तुमसे जरा भी एतराज न करेगी। इतना ही नहीं, तुम समाज के सम्मान के अधिकारी हो जाओगे।

घर पहुंचकर ज्ञानशंकर तुरंत रायसाहब के पुस्तकालय में गए और अंग्रेजी का वृहत् रसायन-कोश निकालकर विषाक्त पदार्थों के गुण और प्रभाव का अन्वेषण करने लगे।

तेंतालीस

दो दिन हो गए और ज्ञानशंकर ने रायसाहब से मुलाकात न की। रायसाहब उन निर्दय पुरुषों में न थे जो घाव लगाकर उस पर नमक छिड़कते हैं। वह जब किसी पर नाराज होते तो यह मानी हुई बात थी कि उसका नक्षत्र बलवान है, सौभाग्यचंद्र उसके दाहिने हैं, क्योंकि क्रोध शांत होते ही वह अपने कटु व्यवहारों का बड़ी उदारता के साथ प्रायश्चित किया करते थे। एक बार एक टहलुवे को इसलिए पीटा था कि उसने फर्श पर पानी गिरा दिया था। दूसरे ही दिन पांच बीघे जमीन उसे मुआफी दे दी। एक कारिन्दे से गबन के मामले में बहुत बिगड़े और अपने हाथों से हंटर लगाए, किंतु थोड़े ही दिन पीछे उसका वेतन बढ़ा दिया। हां, यह आवश्यक था कि चुपचाप धैर्य के साथ उनकी बातें सुन ली जाएं, उनसे बात-बढ़ाव न किया जाय। ज्ञानशंकर को धिक्कारने के एक ही क्षण पीछे उन्हें पश्चात्ताप होने लगा। भय हुआ कि कहीं वह रूठकर चल न दें। संसार में ऐसा कौन प्राणी है जो स्वार्थ के लिए अपनी आत्मा का हनन न करता हो। मैं खुद भी तो निःस्पृह नहीं हूं। जब संसार की यही प्रथा है तो मुझे उनका इतना तिरस्कार करना उचित न था। कम-से-कम मुझे उनके आचरण को कलंकित न करना चाहिए था। विचारशील पुरुष हैं, उनके लिए इशारा काफी है। लेकिन मैंने गुस्से में आकर खुली-खुली गालियां दीं। अतएव आज वह भोजन करने बैठे तो महाराज से कहा—बाबूजी को भी यहां बुला लो और उनकी थाली भी यहां लाओ। न आएं तो कहना आप न चलेंगे तो वह भी भोजन न करेंगे। ज्ञानशंकर राजी न होते थे, पर विद्या ने समझाया, चले क्यों नहीं जाते ! जब वह बड़े होकर बुलाते हैं तो न जाने से उन्हें दुःख होगा। उनकी आदत है कि गुस्से में जो कुछ मुंह में आया बक जाते हैं, लेकिन पीछे से लज्जित होते हैं। ज्ञानशंकर अब कोई हीला न कर सके। रोनी सूरत बनाए हुए आए और रायसाहब से जरा हटकर आसन पर बैठ गए। रायसाहब ने कहा—इतनी दूर क्यों बैठे हो? मेरे पास आ जाओ। देखो, आज मैंने तुम्हारे लिए कई अंग्रेजी चीजें बनवाई हैं। लाओ महाराज, यहीं थाली रखो।

ज्ञानशंकर ने दबी जबान में कहा—मुझे तो इस समय जरा भी इच्छा नहीं है, क्षमा कीजिए।

रायसाहब—इच्छा तो सुगंध से हो जाएगी, थाली तो सामने आने दो। महाराज को मैंने इनाम देने का वादा किया है। उसने अपनी सारी अक्ल खर्च कर दी होगी।

महाराज ने थाली लाकर ज्ञानशंकर के सामने रख दी। ज्ञानशंकर के चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं। एक रंग आता था, एक रंग जाता था। छाती बड़े वेग से धड़क रही थी। भय ने आशा को दबा दिया था। वह किसी प्रकार यहां से भागना चाहते थे। यह दृश्य उनके लिए असह्य था। उनके शरीर का एक-एक अंग थर-थर कांप रहा था, यहां तक कि स्वर भी भंग हो रहा था। उन्हें इस समय अनुभव हो रहा था कि जान लेना देने से कहीं दुस्तर है।

रायसाहब ने चार-ही-पांच कौर खाए थे कि सहसा उन्होंने थाली से हाथ खींच लिया और ज्ञानशंकर की ओर तीव्र और मर्मभेदी दृष्टि से देखा। ज्ञानशंकर के प्राण सूख गए। रायसाहब ने यदि गोली चलाई होती तो भी उन्हें इतनी चोट न लगती। संज्ञा शून्य-से हो गए। ऐसा जान पड़ता था मानो कोई आकर्षण शक्ति प्राणों को खींच रही है। अपनी नाव को भंवर में डूबते पाकर भी कोई इतना भयभीत, इतना असावधान न होता होगा। रायसाहब की तीव्र दृष्टि ने सिद्ध कर दिया कि रहस्य खुल गया, सारे यत्न, सारी योजनाएं निष्फल हो गईं ! हा हतभाग ! कहीं का न रहा ! क्या जानता था कि यह महाशय ऐसे आत्मदर्शी हैं।

इतने में रायसाहब ने अपमानसूचक भाव से मुस्कराकर कहा--मैंने एक बार तुमसे कह दिया कि धन-संपत्ति तुम्हारे भाग्य में नहीं है, तुम जो चालें चलोगे वह सब उल्टी पड़ेंगी। केवल लज्जा और ग्लानि हाथ रहेगी।

ज्ञानशंकर ने अज्ञान भाव से कहा--मैंने आपका आशय नहीं समझा।

रायसाहब--बिल्कुल झूठ है। तुम मेरा आशय खूब समझ रहे हो। इससे ज्यादा कुछ कहूंगा तो उसका परिणाम अच्छा न होगा। मैं चाहूं तो सारी राम कहानी तुम्हारी जबान से कहवा लूं, लेकिन इसकी जरूरत नहीं। तुम्हें बड़ा भ्रम हुआ। मैं तुम्हें बड़ा चतुर समझता था, लेकिन अब विदित हुआ कि तुम्हारी निगाह बहुत मोटी है। तुम्हारा इतने दिनों तक मुझसे संपर्क रहा, लेकिन अभी तक तुम मुझे पहचान न सके। तुम सिंह का शिकार बांस की तीलियों से करना चाहते हो, इसलिए अगर उसके दबोच में आ जाओ तो वह तुम्हारा अपना दोष है। मुझे मनुष्य मत समझो, मैं सिंह हूं। अगर अभी अपने दांत और पंजे दिखा दूं तो तुम कांप उठोगे। यद्यपि यह थाल बीस-पच्चीस आदमियों को खिलाने के लिए काफी है, शायद एक कौर खाने के बाद उन्हें दूसरे कौर की नौबत न आएगी, लेकिन मैं पूरा थाल हजम कर सकता हूं और तुम्हें मेरे माथे पर बल भी न दिखाई देगा। मैं शक्ति का उपासक हूं, ऐसी वस्तुएं मेरे लिए दूध और पानी हैं।

यह कहते-कहते रायसाहब ने थाल से कई कौर उठाकर जल्द-जल्द खाए। अकस्मात् ज्ञानशंकर तेजी से लपके, थाल उठाकर भूमि पर पटक दिया और रायसाहब के पैरों पर गिरकर बिलख-बिलख रोने लगे। रायसाहब की योगसिद्धि ने आज उन्हें परास्त कर दिया। उन्हें आज ज्ञात हुआ कि यह चूहे और सिंह की लड़ाई है।

रायसाहब ने उन्हें उठाकर बिठा दिया और बोले--लाला, मैं इतना कोमल हृदय नहीं हूं कि इन आंसुओं से पिघल जाऊं। आज मुझे तुम्हारा यथार्थ रूप दिखाई दिया। तुम अधम स्वार्थ के पंजे में दबे हुए हो। यह तुम्हारा दोष नहीं, तुम्हारी धर्म-विहीन शिक्षा का दोष है। तुम्हें आदि से ही भौतिक शिक्षा मिली। हृदय के भाव दब गए। तुम्हारे गुरुजन स्वयं स्वार्थ के पुतले थे। उन्होंने कभी सरल-संतोषमय जीवन का आदर्श तुम्हारे सामने नहीं रखा। तुम अपने घर में, स्कूल में, जगत् में नित्य देखते थे कि बुद्धि-बल का कितना मान है। तुमने सदैव इनाम और पदक पाए, कक्षा में तुम्हारी प्रशंसा होती रही, प्रत्येक अवसर पर तुम्हें आदर्श बनाकर दूसरों को दिखाया जाता था। तुम्हारे आत्मिक विकास की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया, तुम्हारे मनोगत भावों को, तुम्हारे उद्गारों को सन्मार्ग पर ले जाने की चेष्टा नहीं की गई। तुमने धर्म और भक्ति का प्रकाश कभी नहीं देखा, जो मन पर छाए हुए तिमिर को नष्ट करने का एक ही साधन है। तुम जो कुछ हो, अपनी शिक्षा-प्रणाली के बनाए हुए हो। पूर्व के संस्कारों ने जो अंकुर जमाया था, उसे शिक्षा ने सघन वृक्ष बना दिया। तुम्हारा कोई दोष नहीं, काल और देश का दोष है। मैं क्षमा करता हूं और ईश्वर से विनती करता हूं कि वह तुम्हें सद्बुद्धि दे।

रायसाहब के होंठ नीले पड़ गए, मुख कांतिहीन हो गया, आंखें पथराने लगीं। माथे पर स्वेद-बिंदु चमकने लगा, पसीने से सारा शरीर तर हो गया, सांस बड़े वेग से चलने लगीं। ज्ञानशंकर उनकी यह दशा देखकर विकल हो गए। कांपते हुए हाथों से पंखा झलने लगे ! लेकिन रायसाहब ने इशारा किया कि यहां से चले जाओ, मुझे अकेला रहने दो और तुरंत भीतर से द्वार बंद कर दिया। ज्ञानशंकर मूर्तिवत् द्वार पर खड़े थे, मानो किसी ने उनके पैरों को गाड़ दिया हो।

इस समय उन्हें अपने कुकृत्य पर इतना अनुताप हो रहा था कि जी चाहता था कि उसी थाल का एक कौर खाकर इस जीवन का अंत कर लूं। पहले रायसाहब की अभिमानपूर्ण बातें सुनकर उन्हें आशा हो गई थी कि विष का इन पर कुछ असर न होगा। लेकिन अब यह आशा की जगह भय हो रहा था कि उन्होंने अपनी योग-शक्ति का भ्रमात्मक अनुमान किया था। क्या करूं? किसी डॉक्टर को बुलाऊं? उस धन-लिप्सा का सत्यानाश हो जिसने मेरे मन में यह विषम प्रेरणा उत्पन्न की, जिसने मुझसे यह हत्या कराई ! हा कुटिल स्वार्थ ! तूने मुझे नरपिशाच बना दिया। मैं क्यों इनका शत्रु हो रहा हूं? इसी जायदाद के लिए, इसी रियासत के लिए, इसी संपत्ति के लिए ! क्या वह संपत्ति मेरे हाथों में आकर दूसरों को मेरा शत्रु न बना देगी? कौन कह सकता है कि मेरा भी यही अंत न होगा?

ज्ञानशंकर ने द्वार पर कान लगाकर सुना। ऐसा जान पड़ा कि रायसाहब हाथ-पैर पटक रहे हैं। मारे भय के ज्ञानशंकर को रोमांच हो गया। उन्हें अपनी अधम नीचता, अपनी घोरतम पैशाचिक प्रवृत्तियों पर ऐसा शोकमय पश्चात्ताप कभी न हुआ था। उन्हें इस समय परिणाम की चिंता न थी, न यह शंका थी, कि मेरा क्या हाल होगा। बस, यही धड़का लग हुआ था कि रायसाहब की न जाने क्या गति हो रही है। कोई जबरदस्ती भी करता तो वह वहां से न हटते। मालूम नहीं, एक क्षण में क्या हो जाए।

इतने में महाराज थाली में कुछ और पदार्थ लाया। उसे देखते ही ज्ञानशंकर का रक्त सूख गया। समझ गए कि अब प्राण न बचेंगे। यह दुष्ट अभी यहां का हाल देखकर शोर मचा देगा। खोज-पूछ होने लगेगी, गिरफ्तार हो जाऊंगा। वह इस समय उन्हें काल-स्वरूप दीख पड़ता था। उन्होंने उसे समीप न आने दिया, दूर से ही कहा—हम लोग भोजन कर चुके, अब और कुछ न लाओ।

महाराज ने बंद किवाड़ों को कौतूहल से देखा और आगे बढ़ने की चेष्टा की कि अकस्मात् ज्ञानशंकर बाज की तरह झपटे और उसे जोर से धक्का देकर कहा—तुमसे कहता हूं कि यहां किसी चीज की जरूरत नहीं है, बात क्यों नहीं सुनते? महाराज हक्का-बक्का होकर ज्ञानशंकर का मुंह ताकने लगा। ज्ञानशंकर इस समय उस सशंक दशा में थे, जबकि मनुष्य पत्ते का खुड़का सुनकर लाठी संभाल लेता है। उन्हें अब रायसाहब की चिंता न थी। उनके विचार में वह चिंता की उद्घाटक शक्ति से बाहर हो गए थे। वह अब अपनी जान की खैर मना रहे थे। संपूर्ण इच्छाशक्ति इस रहस्य को गुप्त रखने में व्यस्त हो रही थी।

यकायक भीतर से द्वार खुला और रायसाहब बाहर निकले। उनका मुखड़ा रक्तवर्ण हो रहा था। आंखें भी लाल थीं। पसीने से तर थे, मानो कोई लोहार भट्ठी के सामने से उठकर आया हो। दोनों थाल समेटकर एक जगह रख दिए गए थे। कटोरे भी साफ थे। सब भोजन एक अंगीठी में जल रहा था। अग्नि उन पदार्थों का रसास्वादन कर रही थी।

क्षण मात्र में ज्ञानशंकर के विचारों ने पलटा खाया। जब तक उन्हें शंका थी कि रायसाहब दम तोड़ रहे थे तब तक वह उनकी प्राण-रक्षा के लिए ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे। जब बाहर खड़े-खड़े निश्चय हो गया कि रायसाहब का प्राणांत हो गए तब वह अपनी जान की खैर मनाने लगे। अब उन्हें सामने देखकर क्रोध आ रहा था कि यह मर क्यों न गए ! इतना तिरस्कार, इतना मानसिक कष्ट व्यर्थ सहना पड़ा। उनकी दशा इस समय उस थके-मांदे हलवाहे की-सी हो रही थी जिसके बैल खेत से द्वार पर आकर बिदक गए हों, दिन भर के कठिन परिश्रम के बाद

सारी रात अंधेरे में बैलों के पीछे दौड़ने की संभावना उसकी हिम्मत को तोड़े डालती हो।

रायसाहब ने बाहर निकलकर कई बार जोर से सांस ली मानो दम घुट रहा हो, तब कांपते हुए स्वर से बोले—मरा नहीं, लेकिन मरने से बदतर हो गया। यद्यपि मैंने विष को योग-क्रियाओं से निकाल दिया, लेकिन ऐसा मालूम हो रहा है कि मेरी धमनियों में रक्त की जगह कोई पिघली हुई धातु दौड़ रही है। यह दाह मुझे कुछ दिनों में भस्म कर देगी। अब मुझे फिर पोलो और टेनिस खेलना नसीब न होगा। मेरे जीवन की अनंत शोभा का अंत हो गया। अब जीवन में वह आनंद कहां जो शोक और चिंता को तुच्छ समझता था। मैंने वाणी से तो तुम्हें क्षमा कर दिया, लेकिन मेरी आत्मा तुम्हें क्षमा न करेगी। तुम मेरे लड़के हो, मैं तुम्हारे पिता के तुल्य हूं, लेकिन हम अब एक-दूसरे का मुंह न देखेंगे। मैं जानता हूं कि इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है, यह हमारे वर्तमान लोक-व्यवहार का दोष है। किंतु यह जानकर भी हृदय को संतोष नहीं होता। यह सारी विडंबना इसी जायदाद का फल है। इसी जायदाद के कारण हम और तुम एक-दूसरे के खून के प्यासे हो रहे हैं। संसार में जिधर देखो, ईर्ष्या और द्वेष, आघात और प्रत्याघात का साम्राज्य है। भाई-भाई का बैरी, बाप-बेटे का बैरी, पुरुष-स्त्री का बैरी, इसी जायदाद के लिए, इसी धन के लिए। इसके हाथों जितना अनर्थ हुआ, हो रहा है और होगा उसके देखते कहीं अच्छा है कि अधिकार की प्रथा ही मिटा दी जाती। यही वह खेत है जहां छल और कपट के पौधे लहराते हैं, जिसके कारण संसार रणक्षेत्र बना हुआ है। इसी ने मानव जाति को पशुओं से भी नीचे गिरा दिया है।

यह कहते-कहते रायसाहब की आंखें बंद हो गईं। वह दीवार का सहारा लिए हुए दीवानखाने में आए और फर्श पर गिर पड़े। ज्ञानशंकर भी पीछे-पीछे थे, मगर इतनी हिम्मत न पड़ती थी कि उन्हें संभाल लें। नौकरों ने यह हालत देखी तो दौड़े और उन्हें उठाकर कोच पर लिटा दिया। गुलाब और केवड़े का जल छिड़कने लगे। कोई पंखा झलने लगा, कोई डॉक्टर के लिए दौड़ा। सारे घर में खलबली मच गई। दीवानखाने में एक मेला-सा लग गया। दस मिनट के बाद रायसाहब ने आंखें खोलीं और सबको हट जाने का इशारा किया। लेकिन जब ज्ञानशंकर भी औरों के साथ जाने लगे तो रायसाहब ने उन्हें बैठने का संकेत किया और बोले—यह जायदाद नहीं है। इसे रियासत कहना भूल है। यह निरी दलाली है। इस भूमि पर मेरा क्या अधिकार है? मैंने इसे बाहुबल से नहीं लिया। नवाबों के जमाने में किसी सूबेदार ने इस इलाके की आमदनी वसूल करने के लिए मेरे दादा को नियुक्त किया था। मेरे पिता पर भी नवाबों की कृपा-दृष्टि बनी रही। इसके बाद अंग्रेजों का जमाना आया और यह अधिकार पिताजी के हाथ से निकल गया। लेकिन राज-विद्रोह के समय पिताजी ने तन-मन से अंग्रेजों की सहायता की। शांति स्थापित होने पर हमें वही पुराना अधिकार फिर मिल गया। यही इस रियासत की हकीकत है। हम केवल लगान वसूल करने के लिए रखे गए हैं। इसी दलाली के लिए हम एक-दूसरे के खून से अपने हाथ रंगते हैं। इसी दीन-हत्या को हम रोब कहते हैं, इसी कारिन्दगिरी पर हम फूले नहीं समाते। सरकार अपना मतलब निकालने के लिए हमें इस इलाके का मालिक कहती है, लेकिन जब साल में दो बार हमसे मालगुजारी वसूल की जाती है तब हम मालिक कहां रहे? यह सब धोखे की टट्टी है। तुम कहोगे, यह सब कोरी बकवाद है, रियासत इतनी बुरी चीज है तो उसे छोड़ क्यों नहीं देते? हां, यही तो रोना है कि इस रियासत ने हमें विलासी, आलसी और अपाहिज बना दिया। हम अब किसी काम के नहीं रहे। हम पालतू चिड़ियां हैं, हमारे पंख शक्तिहीन हो गए हैं। हममें अब उड़ने की सामर्थ्य नहीं है। हमारी दृष्टि सदैव अपने पिंजरे के

कुल्हिये और प्याली पर रहती है। हमने अपनी स्वाधीनता को मीठे टुकड़े पर बेच दिया है।

रायसाहब के चेहरे पर एक दुस्सह आंतरिक वेदना के चिह्न दिखाई देने लगे थे। लेटे थे, कराहकर उठ बैठे। मुखाकृति विकृत हो गई। पीड़ा से विकल हृदय-स्थल पर हाथ रखे हुए बोले—आह ! बेटा, तुमने वह हलाहल खिला दिया कि कलेजे के टुकड़े-टुकड़े हुए जाते हैं ! अब प्राण न बचेंगे। अगर एक मरणासन्न पुरुष के शाप में कुछ शक्ति है तो तुम्हें इस रियासत का सुख भोगना नसीब न होगा ! आंखों के सामने से हट जाओ। संभव है, मैं इस क्रोधावस्था में तुम्हें दोनों हाथों में दबाकर मसल डालूं। मैं अपने आपे में नहीं हूं। मेरी दशा मतवाले सर्प की-सी हो रही है। जाओ, मेरी आंखों से दूर हो जाओ और फिर कभी मुंह मत दिखाना। मेरे मर जाने पर तुम्हें आने का अख्तियार है। और याद रखो कि अगर तुम फिर गोरखपुर गए या गायत्री से कोई संबंध रक्खा तो तुम्हारे हक में बुरा होगा। मेरे दूत परछाईं की भांति तुम्हारे साथ लगे रहेंगे। तुमने इस चेतावनी का जरा भी उल्लंघन किया तो जीते न बचोगे। हाय ! शरीर फुंका जाता है। पापी, दुष्ट, अभी गया नहीं। शेख खां...कोई...है?...मेरी पिस्तौल लाओ, (चिल्लाकर) मेरी पिस्तौल लाओ...क्या सब मर गए?

ज्ञानशंकर तुरंत उठकर वहां से भागे। अपने कमरे में आकर द्वार बंद कर लिया। जल्दी से कपड़े पहने, मोटर साइकिल निकलवाई और सीधे रेलवे स्टेशन की ओर चले। विद्या से मिलने का भी अवसर न मिला।

चवालीस

संध्या का समय था। बनारस के सेशन जज के इजलास में हजारों आदमी जमा थे। लखनपुर के मामले से जनता को अब एक विशेष अनुराग हो गया था। मनोहर की आत्महत्या ने उसकी चर्चा सारे शहर में फैला दी थी। प्रत्येक पेशी के दिन नगर की जनता अदालत में आ जाती थी। जनता को अभियुक्तों की निर्दोषिता का पूरा विश्वास हो गया था। मनोहर के आत्मघात की विविध प्रकार से मीमांसा की जाती थी और सभी का तत्त्व यही निकलता था कि वही कातिल था। और लोग तो केवल अदावत के कारण फंसा दिए गए हैं। डॉक्टर प्रियनाथ और इर्फान अली की स्वार्थपरता पर खुली-खुली चोटें की जाती थीं। प्रेमशंकर की निष्काम सेवा की सभी सराहना करते थे। इस मुकदमे ने उन्हें बहुजनप्रिय बना दिया था।

आज फैसला सुनाया जाने वाला था, इसलिए जमाव भी और दिनों से अधिक था। लखनपुर के लोग तो आए ही थे, आस-पास के देहातों से लोग बड़ी संख्या में आ पहुंचे थे। ठीक चार बजे जज ने तजवीज सुनाई—बिसेसर साह रिहा हो गए, बलराज और कादिर खां को कालापानी हुआ, शेष अभियुक्तों को सात-सात वर्ष का सपरिश्रम कारावास दिया गया। बलराज ने बिसेसर को सरोष नेत्रों से देखा जो कह रहे थे कि अगर क्षण भर के लिए भी छूट जाऊं तो खून पी लूं। कादिर खां बहुत दुखी थे और उदास थे। यह तजबीज सुनी तो आंसू की कई बूंदें मूंछों पर गिर पड़ीं। जीवन का अंत ही हो गया। कब्र में पैर लटकाए बैठे थे, सजा मिली कालेपानी की ! चारों ओर कुहराम मच गया। दर्शकगण अभियुक्तों की ओर लपके, पर रक्षकों ने किसी

को उनसे कुछ कहने-सुनने की आज्ञा न दी। मोटर तैयार खड़ी थी। सातों आदमी उसमें बिठाए गए, खिड़कियां बंद कर दी गईं और मोटर जेल की तरफ चली।

प्रेमशंकर चिंता और शोक की मूर्ति बने एक वृक्ष के नीचे खड़े करुण नेत्रों से मोटर की ओर ताक रहे थे, जैसे गांव की स्त्रियां सीवान पर खड़ी सजल नेत्रों से ससुराल जाने वाली लड़की की पालकी को देखती हैं। मोटर दूर निकल गई तो दर्शकों ने उन्हें घेर लिया और तरह-तरह के प्रश्न करने लगे। प्रेमशंकर उनकी ओर मर्माहत भाव से देखते थे, पर कुछ उत्तर न देते थे। सहसा उन्हें कोई बात याद आ गई। जेल की ओर चले। जनता का दल भी उनके साथ-साथ चला। सबको आशा थी कि शायद अभियुक्तों को देखने का, उनकी बातें सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो जाए। अभी यह लोग कचहरी के अहाते से निकले ही थे कि डॉक्टर इर्फान अली अपनी मोटर पर दिखाई दिए। आज ही गोरखपुर से लौटे थे। हवा खाने जा रहे थे। प्रेमशंकर को देखते ही मोटर रोक ली और पूछा—कहिए, आज तजवीज सुना दी गई?

प्रेमशंकर ने रुखाई से उत्तर दिया—जी हां।

इतने में सैकड़ों आदमियों ने चारों ओर से मोटर को घेर लिया और एक तगड़े आदमी ने सामने आकर कहा—इन्हीं की गरदन पर इन बेगुनाहों का खून है।

सैकड़ों स्वरों से निकला—मोटर से खींच लो, जरा इसकी खिदमत तो कर दी जाय। इसने जितने रुपये लिए हैं, सब इसके पेट से निकाल लो।

उसी वृहद्काय पुरुष ने इर्फान अली का पहुंचा पकड़कर इतने जोर से झटका दिया कि वह बेचारे गाड़ी से बाहर निकल पड़े। जब तक मोटर में थे क्रोध से चेहरा लाल हो रहा था। बाहर आकर धक्के खाए तो प्राण सूख गए। दयाप्रार्थी नेत्रों से प्रेमशंकर को देखा। वह हैरान थे कि क्या करूं? उन्हें पहले कभी ऐसी समस्या हल नहीं करनी पड़ी थी और न उस श्रद्धा का ही कुछ ज्ञान था जो लोगों की उनमें थी। हां, वह सेवाभाव जो दीन-जनों की रक्षा के लिए उद्यत रहता था, सजग हो गया। उन्होंने इर्फान अली का दूसरा हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा और क्रोधोन्मत्त होकर बोले—यह क्या करते हो, हाथ छोड़ दो।

एक बलवान युवक बोला—इनकी गर्दन पर गांव-भर का खून सवार है।

प्रेमशंकर—खून इनकी गर्दन पर नहीं, इनके पेशे की गर्दन पर सवार है।

युवक—इनसे कहिए, इस पेशे को छोड़ दें।

कई कंठों से आवाज आई—बिना कुछ जलपान किए इनकी अकल ठिकाने न आएगी।

सैकड़ों आवाजें आईं—हां-हां, लगे ! बेभाव की पड़े।

प्रेमशंकर ने गरजकर कहा—खबरदार, जो एक हाथ भी उठा, नहीं तो तुम्हें यहां मेरी लाश दिखाई पड़ेगी। जब तक मुझमें खड़े होने की शक्ति है, तुम इनका बाल भी बांका नहीं कर सकते।

इस वीरोचित ललकार ने तत्क्षण असर किया। लोग डॉक्टर साहब के पास से हट गए, हां, उनकी सेवा-सत्कार के ऐसे सुंदर अवसर के हाथ से निकल जाने पर आपस में कानाफूसी करते रहे। डॉक्टर साहब ने ज्योंही मैदान साफ पाया, कृतज्ञ नेत्रों से प्रेमशंकर को देखा और मोटर पर बैठकर हवा हो गए। हजारों आदमियों ने तालियां बजाईं—भागा ! भागा !!

प्रेमशंकर बड़े संकट में पड़े थे। प्रतिक्षण शंका होती थी कि ये लोग न जाने क्या ऊधम मचाएं। किसी बग्घी या फिटन को आते देखकर उनका दिल धड़कने लगता कि ये लोग उसे रोक न लें। वह किसी तरह उनसे पीछा छुड़ाना चाहते थे, पर इसका कोई उपाय न सूझता

था। हजारों झल्लाए हुए आदमियों को काबू में लाना कठिन था। सोचते थे, अबकी तो मेरी धमकी ने काम किया, कौन कह सकता है कि दूसरी बार भी वह उपयुक्त होगी? कहीं पुलिस आ गई तो अनर्थ ही हो जायगा। अवश्य दो-चार आदमियों की जान पर आ बनेगी। वह इन्हीं चिंताओं में डूबे हुए आगे बढ़े। रास्ते में ही डॉक्टर प्रियनाथ का बंगला था। वह इस वक्त बरामदे में टहल रहे थे। टेनिस का रैकेट हाथ में था। शायद गाड़ी की राह देख रहे थे। यह भीड़-भाड़ देखी तो अपने फाटक पर आकर खड़े हो गए।

सहसा किसी ने कहा—जरा इनकी भी खबर लेते चलो। सच पूछो तो इन्हीं महाशय ने बेचारों की गर्दन काटी है।

कई आदमियों ने इसका अनुमोदन किया—हां-हां, पकड़ लो, जाने न पाये।

जब तक प्रेमशंकर डॉक्टर साहब के पास पहुंचे-पहुंचे तब तक सैकड़ों आदमियों नै उन्हें घेर लिया। उसी बलिष्ठ युवक ने आगे बढ़कर डॉक्टर साहब के हाथ से रैकेट छीन लिया और कहा—बताइए साहब, लखनपुर के मामले में कितनी रिश्वत खाई है?

कई आदमियों ने कहा—बोलते क्यों नहीं, कितने रुपये उड़ाये थे?

डॉक्टर महोदय ने चिल्ला-चिल्लाकर नौकरों को पुकारना शुरू किया, किंतु नौकरों ने आना उचित न समझा।

एक आदमी बोला—यह बिना समझावन-बुझावन के न बताएंगे।

प्रियनाथ—मैं सबको जेल भिजवा दूंगा, रैकल्स !

डॉक्टर साहब ने भय दिखलाकर काम निकालना चाहा, पर यह न समझे कि साधारणत: जो लोग आंख के इशारे पर कांप उठते हैं वे विद्रोह के समय गोलियों की भी परवाह नहीं करते। उनके मुंह से इतना निकला था कि लोगों के तेवर बदल गए। शोर मचा, जाने न पाये, मार कर गिरा दो, देखा जाएगा।

इतने में प्रेमशंकर डॉक्टर साहब के पास जाकर खड़े हो गए। सैकड़ों लाठियां, छतरियां और छड़ियां उठ चुकी थीं। प्रेमशंकर को सम्मुख देखकर सब-की-सब हवा में रह गईं, केवल एक लाठी न रुक सकी, वह प्रेमशंकर के कंधे में जोर से लगी।

उसी बलिष्ठ युवक ने डॉक्टर साहब को धिक्कार कर कहा—उनके पीछे क्या चोरों की तरह छिपे खड़े हो ! सामने आ जाओ तो मजा चखा दूं ! खूब रिश्वतें ले-लेकर खफीफ को शदीद और शदीद को खफीफ बनाया।

अभी यह वाक्य पूरा न होने पाया था कि लोगों ने प्रेमशंकर को लड़खड़ाकर जमीन पर गिरते देखा। किसी ने किसी से कुछ कहा नहीं, पर सबको किसी अनिष्ट की सूचना हो गई। चारों तरफ सन्नाटा छा गया। लोगों की उद्दंडता शंका में परिवर्तित हो गई। लोग पूछने लगे—यह किसकी लाठी थी, यह किसने मारा? उसके हाथ तोड़ दो, पकड़कर गर्दन मरोड़ दो। किसकी लाठी थी? सामने क्यों नहीं आता? क्या ज्यादा चोट आई?

सहसा डॉक्टर प्रियनाथ ने उच्च स्वर से कहा—अधमरा ही क्यों छोड़ दिया? एक लाठी और क्यों न जड़ दी कि काम तमाम हो जाता? मूर्खो ! तुम्हारा अपराधी तो मैं था, इन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था?

यह कहकर वह प्रेमशंकर के पास घुटनों के बल बैठ गए और घाव को भली-भांति देखा। कंधे की हड्डी टूट गई थी। तुरंत रूमाल निकालकर कंधे में पट्टी बांधी। तब अस्पताल जाकर

एक चारपाई लिवा लाए और प्रेमशंकर को उठाकर ले गए। हजारों आदमी अस्पताल के सामने चिंता में डूबे खड़े थे। सबको यही भय हो रहा था कि कहीं चोट ज्यादा न आ गई हो। लेकिन जब डॉक्टर साहब ने मरहम पट्टी के बाद आकर कहा—चोट तो बहुत ज्यादा आई है, कंधे की हड्डी टूट गई है, लेकिन आशा है कि बहुत जल्द अच्छे हो जाएंगे तब लोगों के चित्त शांत हुए। एक-एक करके सभी वहां से चले गए।

लाला प्रभाशंकर को ज्योंही यह शोक-संवाद मिला वह बदहवास दौड़े हुए आये और प्रेमशंकर के पास बैठकर देर तक रोते रहे। प्रेमशंकर सचेत हो गए थे। हां, विषम पीड़ा से विकल थे। डॉक्टर ने बोलने या हिलने को मना कर दिया था, इसलिए चुपचाप पड़े हुए थे ! लेकिन जब प्रभाशंकर को बहुत अधीर देखा तो धीरे-से बोले—आप घबड़ाएं नहीं, मैं जल्द अच्छा हो जाऊंगा। कंधों में दर्द हो रहा है। इसके सिवा मुझे और कोई कष्ट नहीं है। ये बातें सुनकर प्रभाशंकर को तस्कीन हुई। चलते समय उन्होंने डॉक्टर साहब के पास जाकर बड़े विनीत भाव से कहा—बाबू जी, यह लड़का मेरे कुल का दीपक है। आप इस पर कृपा-दृष्टि रखिएगा। इसके प्राण बच गए तो यथाशक्ति आपकी सेवा करने में कोई बात उठा न रखूंगा। यद्यपि मैं किसी लायक नहीं हूं तथापि अपने से जो कुछ हो सकेगा वह अवश्य आपको भेंट करूंगा।

प्रियनाथ ने कहा—लालाजी, आप यह क्या कहते हैं? अगर मैं इनकी सेवा-सुश्रूषा में तन-मन से न लगूं तो मुझसे ज्यादा कृतघ्न प्राणी संसार में न होगा। मेरे ही कारण इन्हें यह चोट आई है। अगर यह वहां न होते तो मेरी हड्डियों का भी पता न मिलता। इन्होंने जान पर खेलकर मेरी प्राण-रक्षा की। इनका एहसान कभी मेरे सिर से नहीं उतर सकता।

तीन-चार दिन में प्रेमशंकर इतने स्वस्थ हो गए कि तकिये के सहारे बैठ सके। लकड़ी लेकर औषधालय के बरामदे में टहलने भी लगे। उनका कुशल समाचार पूछने के लिए प्रतिदिन शहर से सैकड़ों आदमी प्रतिदिन आते रहते थे। प्रेमशंकर सबसे डॉक्टर साहब की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते। प्रियनाथ के सेवा-भाव ने उन्हें मोहित कर दिया था। वह दिन में कई बार उन्हें देखने आते। कभी-कभी समाचार-पत्र पढ़कर सुनाते, उनके लिए अपने घर में विशेष रीति से भोजन बनवाते। प्रेमशंकर मन में बहुत लज्जित थे कि ऐसे सज्जन, ऐसे देवतुल्य पुरुष के विषय में मैंने क्यों अनुचित संदेह किए। वह अपनी विमल श्रद्धा से उस अभक्ति की पूर्ति कर रहे थे।

एक सप्ताह बीत चुका था। प्रेमशंकर उदास बैठे हुए सोच रहे थे कि उन दीन अभियुक्तों का अब क्या हाल होगा? मैं यहां पड़ा हूं। अपीलों का अभी तक कुछ निश्चय न हो सका और अपील होगी कैसे? इतने रुपये कहां से आयेंगे? आजकल तो न्याय गरीबों के लिए एक अलभ्य वस्तु हो गया है। पग-पग पर रुपये का खर्च। और यह क्या मालूम कि अपील का नतीजा हमारे अनुकूल होगा। कहीं ये ही सजाएं बहाल रह गईं तो अपील करना निष्फल हो जाएगा, लेकिन कुछ भी हो अपील करनी चाहिए। रुपये का कोई न कोई उपाय निकल ही आएगा। और कुछ न होगा तो दुकान-दुकान और घर-घर घूमकर चंदा मांगूंगा। दीनों से स्वभावत: लोगों की सहानुभूति होती है। संभव है काफी धन हाथ आ जाय। ज्ञानशंकर को बुरा लगेगा लगे, इसमें मेरा कुछ बस नहीं। क्या उन्हें इस दुर्घटना की खबर न मिली होगी? आना तो दूर रहा, एक पत्र भी न लिखा कि मुझे तस्कीन होती।

वह इन्हीं विचारों में मगन थे कि प्रियनाथ आ गए और बोले—आप इस समय बहुत चिंतित

मालूम होते हैं। थोड़ी-सी चाय पी लीजिए, चित्त प्रसन्न हो जाय।

प्रेमशंकर—जी नहीं, बिल्कुल इच्छा नहीं है। आप मुझे यहां से कब तक विदा करेंगे?

प्रियनाथ—अभी शायद आपको यहां एक सप्ताह और नजरबंद रहना पड़ेगा, अभी हड्डी के जुड़ने में थोड़ी-सी कसर है और फिर ऐसी जल्दी क्या है? यह भी तो आपका ही घर है।

प्रेमशंकर—आप मेरे सिर पर उपकारों का इतना बोझ रखते जाते हैं कि मैं शायद हिल भी न सकूं। यह आपकी कृपा, स्नेह और शालीनता का फल है कि मुझे पीड़ा का कष्ट कभी जान ही न पड़ा। मुझे याद नहीं आता कि इतनी शांति कहीं और मिली हो। आपकी हार्दिक संवेदना ने मुझे दिखा दिया कि संसार में भी देवताओं का वास हो सकता है। सभ्य जगत पर से मेरा विश्वास उठ गया था। आपने उसे फिर से जीवित कर दिया।

प्रेमशंकर की नम्रता और सरलता डॉक्टर महोदय के हृदय को दिनोंदिन मोहित करती जाती थी। ऐसे शुद्धात्मा, साधु और निस्पृह पुरुष का श्रद्धा-पात्र बनकर उनकी क्षुद्रताएं और मलिनताएं आप ही आप मिटती जाती थीं। वह ज्योति दीपक की भांति उनके अंत:करण के अंधेरे को विच्छिन्न किए देती थी। इस श्रद्धा-रत्न को पाकर वह ऐसे मुग्ध थे जैसे कोई दरिद्र पुरुष अनायास कोई संपत्ति पा जाय। उन्हें सदैव यही चिंता रहती थी कि कहीं यह रत्न मेरे हाथ से निकल न जाय। उन्हें कई दिनों से यह इच्छा हो रही थी कि लखनपुर के मुकदमे के विषय में प्रेमशंकर से अपनी स्थिति स्पष्ट रूप से प्रकट कर दें, पर इसका कोई अवसर न पाते थे। इस समय अवसर पाकर बोले—आप मुझे बहुत लज्जित कर रहे हैं। किसी दूसरे सज्जन के मुंह से ये बातें सुनकर मैं अवश्य समझता कि वह मुझे बना रहा है। आप मुझे उससे कहीं ज्यादा विवेक-परायण और सच्चरित्र समझ रहे हैं, जितना मैं हूं। साधारण मनुष्यों की भांति लोभ से ग्रसित, इच्छाओं का दास और इन्द्रियों का भक्त हूं। मैंने अपने जीवन में घोर पाप किये हैं। यदि वह आपसे बयान करूं तो आप चाहे कितने ही उदार क्यों न हों, मुझे तुरंत नजरों से गिरा देंगे। मैं स्वयं अपने कुकृत्यों का परदा बना हुआ हूं, इन्हें बाह्य आडम्बरों से ढांके हुए हूं, लेकिन इस मुकदमे के संबंध में जनता ने मुझे जितना बदनाम कर रखा है, उसका मैं भागी नहीं हूं। मैं आपसे सत्य कहता हूं कि मुझ पर जो आक्षेप किये गए हैं वे सर्वथा निर्मूल हैं। संभव है हत्या निरूपण में मुझे भ्रम हुआ हो और अवश्य हुआ है, लेकिन मैं इतना निर्दय और विवेकहीन नहीं हूं कि अपने स्वार्थ के लिए इतने निरपराधियों का गला काटता। यह मेरी दासवृत्ति है जिसने मेरे माथे पर अपयश का टीका लगा दिया।

प्रेमशंकर ने ग्लानिमय भाव से कहा—भाई साहब, आपकी इस बदनामी का सारा दोष मेरे सिर है। मैं ही आपका अपराधी हूं। मैंने ही दूसरों के कहने में आकर आप पर अनुचित सन्देह किया। इसका मुझे जितना दु:ख और खेद है वह आपसे कह नहीं सकता। आप जैसे साधु पुरुष पर ऐसा घोर अन्याय करने के लिए परमात्मा मुझे न जाने क्या दंड देंगे? पर आपसे मेरी प्रार्थना है कि मेरी अल्पज्ञता पर विचार कर मुझे क्षमा कीजिए।

प्रियनाथ के हृदय पर से एक बोझ-सा उतर गया। प्रेमशंकर इसके दो-चार दिन बाद हाजीपुर लौट आये, पर डॉक्टर साहब रोज संध्या समय उनसे मिलने आया करते। अब वह पहले से कहीं ज्यादा कर्तव्यपरायण हो गए थे। दस बजे के पहले प्रात:काल चिकित्सा भवन में आ बैठते, रोगियों की दशा ध्यान से देखते, उन्हें सांत्वना देते। इतना ही नहीं, पहले वह पूरी फीस लिये बिना अपनी जगह से हिलते न थे, अब बहुधा गरीबों को देखने, बिना फीस लिये

ही चले जाते। छोटे-छोटे कर्मचारियों से आधी ही फीस लेते। नगर की सफाई का नियमानुसार निरीक्षण करते। जिस गली या सड़क से निकल जाते, लोग बड़े आदर से उन्हें सलाम करते। चन्द ही महीनों में सारे नगर में उनका बखान होने लगा। काशी का प्रसिद्ध समाचार-पत्र 'गौरव' उनका पुराना शत्रु था। पहले उन पर खूब चोटें किया करता था। अब वह भी उनका भक्त हो गया। उसने अपने एक लेख में यह आलोचना की, 'काशी के लिए यह परम सौभाग्य की बात है कि बहुत दिनों के बाद उसे ऐसा प्रजावत्सल, ऐसा सहृदय, ऐसा कर्त्तव्यपरायण डॉक्टर मिला। चिकित्सा का लक्ष्य धनोपार्जन नहीं, यशोपार्जन होना चाहिए और महाशय प्रियनाथ ने अपने व्यवहार से सिद्ध कर दिया है कि वह इस उच्चादर्श का पालन करना अपना ध्येय समझते हैं।' डॉक्टर साहब को सुकीर्ति का स्वाद मिल गया। अब दीनों की सेवा में उनका चित्त जितना उल्लसित होता था उतना पहले संचित धन की बढ़ती हुई संख्याओं से भी न हुआ था। यद्यपि धन की तृष्णा से वह अभी मुक्त नहीं हुए थे, पर कीर्ति-लाभ की सदिच्छा ने धनलिप्सा को परास्त कर दिया था। प्रेमशंकर के सम्मुख जाते ही उनका हृदय ओस बिंदुओं से धुले हुए फूलों के सदृश निर्मल हो जाता, निखर उठता। उस सरल, संतोषमय, कामनारहित जीवन के सामने उन्हें अपनी धन-लालसा तुच्छ मालूम होने लगती थी। संतान की चिंता का बोझ कुछ हल्का हो जाता था। जब इस दशा में भी हम संतुष्ट और प्रसन्न रह सकते हैं, यशस्वी बन सकते हैं, दूसरों की सहायता कर सकते हैं, प्रेम और श्रद्धा के पात्र बन सकते हैं तो फिर धन पर जान देना व्यर्थ है। उन्हें ज्ञात होता था कि सफल जीवन के लिए धन कोई अनिवार्य साधन नहीं है। उन्हें खेद होता था कि मेरी आवश्यकताएं क्यों इतनी बढ़ी हुई हैं, मैं डॉक्टर होकर रसना का दास क्यों बना हूं, सुंदर वस्त्रों पर क्यों मरता हूं। इन्हीं के कारण तो मैं सारे नगर में बदनाम था, लोभी, स्वार्थी, निर्दय बना हुआ था और अब भी हूं। लोगों को शंका होती थी कि कहीं यह रोग को बढ़ा न दे, इसलिए जल्दी कोई मुझे बुलाता न था। इन विचारों का डॉक्टर साहब के रहन-सहन पर प्रभाव पड़ने लगा।

एक दिन डॉक्टर साहब किसी मरीज को देखकर लौटते हुए प्रेमशंकर की कृषिशाला के सामने से निकले। दस बज गए थे। धूप तेज थी। सूर्य की प्रखर किरणें आकाश मंडल को बाणों से छेदती हुई जान पड़ती थीं। डॉक्टर साहब के जी में आया, देखता चलूं। क्या कर रहे हैं? अंदर पहुंचे तो देखा कि वह अपने झोंपड़े के सामने वृक्ष के नीचे खड़े गेहूं के पोले बिखेर रहे थे। कई मजूर लौनो कर रहे थे। प्रियनाथ को देखते ही प्रेमशंकर झोंपड़े में आ गए और बोले धूप तेज है।

प्रियनाथ—लेकिन आप तो इस तरह काम में लगे हुए हैं मानो धूप है ही नहीं।

प्रेम—उन मजूरों को देखिए। धूप की कुछ परवाह नहीं करते।

प्रियनाथ—वे मजूर हैं, इसके आदी हैं।

प्रियनाथ—हमें इस कृत्रिम जीवन ने चौपट कर दिया, नहीं तो हम भी ऐसे ही आदमी होते और श्रम को बुरा न समझते।

प्रेमशंकर कुछ और कहना चाहते थे कि इतने में दो वृद्धाएं सिर पर लकड़ी के गट्ठे रखे आईं और पूछने लगीं—सरकार, लकड़ी ले लो। इन स्त्रियों के पीछे-पीछे लड़के भी लकड़ी के बोझ लिये हुए थे। सबों के कपड़े तर-बतर हो रहे थे। छाती और पसली की हड्डियां निकली हुई थीं, होंठ सूखे हुए, देह पर मैल जमी हुई, उस पर सूखे हुए पसीने की धारियां-सी बन गई

थीं। प्रेमशंकर ने लकड़ी के दाम पूछे, सबके गट्ठे उतरवा लिये, लेकिन देखा सन्दूक में पैसे न थे। गुमाश्ता को रुपया भुनाने को दिया। दोनों वृद्धाएं वृक्ष के नीचे छांह में बैठ गईं और लड़के बिखरे हुए दाने चुन-चुन खाने लगे। प्रेमशंकर को उन पर दया आ गई। थोड़े-थोड़े मटर सब लड़कों को दिये। दोनों स्त्रियां आशीष देती हुई बोलीं–बाबूजी, नारायण तुम्हें सदा सुखी रखें। इन बेचारों ने अभी कलेवा नहीं किया है।

प्रेम–तुम्हारा घर कहां है?

एक बुढ़िया–सरकार ने, लखनपुर का नाम सुना होगा?

प्रियनाथ–आपने गट्ठे देखे नहीं, सबों ने खूब कैंची लगाई है।

प्रेम–दरिद्रता सब कुछ करा देती है। (वृद्धा से) तुम लोग इतनी दूर लकड़ी बेचने आ जाती हो?

वृद्धा–क्या करें मालिक, बीच में और कोई बस्ती नहीं है। घड़ी रात के चले हैं; दुपहरी हो गई, किसी पेड़ के नीचे पड़े रहेंगे, दिन ढलेगा तो सांझ तक घर पहुंचेंगे। करम का लिखा भोग है ! जो कभी न करना पड़ा था, वह मरते समय करना पड़ा।

प्रेम–आजकल गांव का क्या हाल है?

वृद्धा–क्या हाल बताएं सरकार, जमींदार की निगाह टेढ़ी हो गई, सारा गांव बंध गया, कोई डामिल गया, कोई कैद हो गया। उनके बाल-बच्चे अब दाने-दाने को तरस रहे हैं। मेरे दो बेटे थे। दो हल की खेती होती थी। एक तो डामिल गया, दूसरे की साल भर से कुछ टोह नहीं मिली। बैल थे, वे चारे बिना टूट गए। खेती-बारी कौन करे? बहुएं हैं, वे बाहर आ-जा नहीं सकतीं। मैं ही उपले बेचकर ले जाती हूं तो सबके मुंह में दाना पड़ता है। पोते थे, उन्हें भगवान् ने पहले ही ले लिया। बुढ़ापे में यही भोगना लिखा था।

प्रेम–तुम डपटसिंह की मां तो नहीं हो?

वृद्धा–हां सरकार, आप कैसे जानते हो?

प्रेम–ताऊन के दिनों में जब तुम्हारे पोते बीमार थे, तब मैं वहीं था। कई बेर और हो आया हूं। तुमने मुझे पहचाना नहीं? मेरा नाम प्रेमशंकर है।

वृद्धा ने थोड़ा-सा घूंघट निकाल लिया। दीनता की जगह लज्जा का एक हल्का-सा रंग चेहरे पर आ गया। बोली–हां बेटा, अब मैंने पहचाना। आंखों से अच्छी तरह सूझता नहीं। भैया, तुम जुग-जुग जियो। आज सारा गांव तुम्हारा यश गा रहा है। तुमने अपनी वाली कर दी, पर भाग में जो कुछ लिखा था वह कैसे टलता? बेटा ! सारे गांव में हाहाकार मचा हुआ है। दुखरन भगत को तो जानते ही होगे? यह बुढ़िया उन्हीं की घरवाली है। पुराना खाती थी, नया रखती थी। अब घर में कुछ नहीं रहा। यह दोनों लड़के बंधू के हैं, एक रंगी का लड़का है और ये दोनों कादिर मियां के पोते हैं। न जाने क्या हो गया कि घर से मर्दों के जाते ही जैसे बरक्कत ही उठ गई। सुनती थी कि क़ादिर मियां के पास बड़ा धन है, पर इतने ही दिनों में यह हाल हो गया कि लड़के मजदूरी न करें, तो मुंह में मक्खी आयं-जायं। भगवान् इस कलमुंहे फैजू का सत्यानाश करे, इसने और भी अंधेरा मचा रखा है। अब तक तो उसने गांव भर को बेदखल कर दिया होता, पर नारायण सुक्खू चौधरी का भला करे कि उन्होंने सारी बाकी कौड़ी पाई-पाई चुका दी। पर अबकी उन्होंने भी खबर न ली और फिर अकेला आदमी सारे गांव भर को कहां तक संभाले? साल-दो-साल की बात हो तो निबाह दे, यहां तो उम्र भर का रोना है। कारिंदा, चपरासी अभी

से धमका रहे हैं कि अबकी बेदखल करके तभी दम लेंगे। अबकी साल तो कुछ आधे-साझे में खेती हो गई थी। खेत निकल जाएंगे तो क्या जाने क्या गति होगी?

यह कहते-कहते बुढ़िया रोने लगी। प्रेमशंकर की आंखें भी भर गईं, पूछा–बिसेसर साह का क्या हाल है?

बुढ़िया–क्या जानूं भैया, मैंने तो साल भर से उसके द्वार पर झांका भी नहीं। अब कोई उधर नहीं जाता, ऐसे आदमी का मुंह देखना पाप है। लोग दूसरे गांव से नोन तेल लाते हैं। वह भी अब घर से बाहर नहीं निकलता। दुकान उठा दी है। घर में बैठा न जाने क्या-क्या करता है? जो दूसरे के लिए गड्ढा खोदेगा, उसके लिए कुआं तैयार है। देखा तो नहीं, पर सुनती हूं, जब से मामला उठा है उसके घर में किसी को चैन नहीं है। एक-न-एक परानी के सिर भूत आया ही रहता है। ओझे-सयाने रात-दिन जमा रहते हैं। पूजा-पाठ, जप-तप हुआ करता है। एक दिन बिलासी से रास्ते में मिल गया था। रोने लगा। बहुत पछताता था कि मैंने दूसरों की बातों में आकर यह कुकर्म किया। मनोहर उसके गले पड़ा हुआ है। मारे डर के सांझ से केवाड़ बंद हो जाता है। रात को बाहर नहीं निकलता। मनोहर रात-दिन उसके द्वार पर खड़ा रहता है, जिसको पाता है, उसी को चपेट लेता है। सुनती हूं, अब गांव छोड़कर किसी दूसरे गांव में बसने वाला है।

प्रेमशंकर यह बातें सुनकर गहरे सोच में डूब गए। मैं कितना बे-परवाह हूं। इन बेचारों को सजा पाए हुए साल-भर होने आते हैं और मैंने उनके बाल-बच्चों की सुधि तक न ली। वह सब अपने मन में क्या कहते होंगे? ज्ञानशंकर से बात हार चुका हूं। लेकिन अब वहां जाना पड़ेगा। अपने वचन के पीछे इतने दुखियारों को मरने दूं? यह नहीं हो सकता। इनका जीवन मेरे वचन से कहीं ज्यादा मूल्यवान है। अकस्मात् बुढ़िया ने कहा–कहो भैया, अब कुछ नहीं हो सकता? लोग कहते हैं कि अभी किसी और बड़े हाकिम के यहां फरियाद लग सकती है।

प्रेमशंकर ने इसका कुछ उत्तर न दिया। धन का प्रबंध तो कठिन न था, लेकिन उन्हें अपील से उपकार होने की बहुत कम आशा थी। वकीलों की भी यही राय थी। इसलिए इस प्रश्न को टालते आते थे। डॉक्टर साहब से भी उन्होंने अपील की चर्चा कभी न की थी। प्रियनाथ उनके मुख की ओर ध्यान से देख रहे थे। उनके मन के भावों को भांप गए। उनके असमंजस को दूर करने के लिए बोले–बूढ़ी, हां, फरियाद लग सकती है, उसका बंदोबस्त हो रहा है, धीरज रक्खो, जल्दी ही अपील दायर कर दी जाएगी।

वृद्धा–बेटा, दूधो नहाओं, पूतों फलो। सुनती हूं कोई बड़ा डॉक्टर था, उसी ने जमींदार से कुछ ले-देकर इन गरीबों को फंसा दिया। न हो, तुम दोनों उसी डॉक्टर के पास जाकर हाथ-पैर जोड़ो, कौन जाने तुम्हारी बात मान जाए। उसके आगे भी तो बाल-बच्चे होंगे? क्यों हम गरीबों को बेकसूर मारता है? किसी की हाय बटोरना अच्छा नहीं होता।

प्रेमशंकर जमीन में गड़े जा रहे थे। डॉक्टर साहब को कितना दुःख हो रहा होगा, अपने मन में कितने लज्जित हो रहे होंगे। कहीं बुढ़िया गाली न देने लगे, इसे कैसे चुप कर दूं? इन विचारों से वह बहुत विकल हो रहे थे, किंतु प्रियनाथ के चेहरे पर उदारता झलक रही थी, नेत्रों से वात्सल्य-भाव प्रस्फुटित हो रहा था। मुस्कराते हुए बोले–हम लोग उस डॉक्टर के पास गए थे। उसे खूब समझाया। है तो लालची, पर कहने-सुनने से राह पर आ गया है, अब सच्ची गवाही देगा।

इतने में मस्ता पैसे लेकर आ गया। प्रेमशंकर ने लकड़ी के दाम दिए। बुढ़िया लकड़ी के साथ आशीर्वाद देकर चली गई। द्वार पर पहुंचकर उसने फिर कहा—भैया, भूल मत जाना, धरम का काम है, तुम्हें बड़ा जस होगा।

उनके जाने के बाद कुछ देर तक प्रेमशंकर और प्रियनाथ दोनों मौन बैठे रहे। प्रेमशंकर का मुंह संकोच ने बंद कर दिया था, डॉक्टर का लज्जा ने।

सहसा प्रियनाथ खड़े हुए और निश्चयात्मक भाव से बोले—भाई साहब, अवश्य अपील कीजिए। आप आज ही इलाहाबाद चले जाइए। आज के दृश्य ने मेरे हृदय को हिला दिया ! ईश्वर ने चाहा तो अबकी सत्य की विजय होगी।

पैंतालीस

डॉक्टर इर्फान अली उस घटना के बाद हवा खाने न जा सके। सीधे घर की ओर चले। रास्ते भर उन्हें संशय हो रहा था कि कहीं उन उपद्रवियों से फिर मुठभेड़ न हो जाए नहीं तो अबकी जान के लाले पड़ जाएंगे। आज बड़ी खैरियत हुई कि प्रेमशंकर मौजूद थे, नहीं तो इन बदमाशों के हाथों मेरी न जाने क्या दुर्गति होती ! जब वह अपने घर पर सकुशल पहुंच गए और बरामदे में आराम-कुर्सी पर लेटे तो इस समस्या पर आलोचना करने लगे। अब तक वह न्याय और सत्य के निर्भीक समर्थक समझे जाते थे। पुलिस के विरुद्ध सदैव उनकी तलवार निकली ही रहती थी। यही उनकी सफलता का तत्त्व था। वह बहुत अध्ययनशील, तत्त्वान्वेषी, तार्किक वकील न थे, लेकिन निर्भीकता इन सारी त्रुटियों पर परदा डाल दिया करती थी। पर इस लखनपुर वाले मुकदमे में पहली बार उनकी स्वार्थपरता की कलई खुली। पहले वह प्राय: पुलिस से हारकर भी जीत में रहते थे, जनता का विश्वास उनके ऊपर जमा रहता था, बल्कि और बढ़ जाता था। आज पहली बार उनकी सच्ची हार हुई। जनता का विश्वास उन पर से उठ गया। लोकमत ने उनका तिरस्कार कर दिया। उनके कानों में उपद्रवियों के ये शब्द गूंज रहे थे, 'इन दीनों का खून इन्हीं की गर्दन पर है।' इर्फान अली उन मनुष्यों में न थे जिनकी आत्मा ऋद्धि-लालसा के नीचे दबकर निर्जीव हो जाती है। वह सदैव अपने इष्ट-मित्रों से कठिनाइयों का रोना रोया करते थे और ये निस्संदेह आंसू उनके हृदय से निकलते थे। वह बार-बार इरादा करते थे कि इस पेशे को छोड़ दें, लेकिन जुआरियों की प्रतिज्ञा की भांति उनका निश्चय भी दृढ़ न होता था, बल्कि दिनों-दिन वह लोभ में और भी डूबते उनकी दशा उस पथिक की-सी थी जो संध्या होने के पहले ठिकाने पर पहुंचने के लिए कदम तेजी से बढ़ाता है। इर्फान अली वकालत छोड़ने से पहले इतना धन कमा लेना चाहते थे कि जीवन सुख से व्यतीत हो। अतएव वह लोभमार्ग में और भी तीव्र गति से चल रहे थे।

लेकिन आज की घटना ने उन्हें मर्माहत कर दिया। अब तक उनकी दशा उन रईसों की-सी थी जो वहम की दवा किया करते हैं। कभी कोई स्वादिष्ट अवलेह बनवा लिया, कभी कोई सुगंधित अर्क खिंचवा लिया और रुचि के अनुसार उसका सेवन करते रहे। किंतु आज उन्हें ज्ञात हुआ कि मैं एक जीर्ण रोग से ग्रसित हूं, अब अर्क और अवलेह से काम न चलेगा। इस

रोग का निवारण तेज नश्तरों और तीक्ष्ण औषधियों से होगा। मैं सत्य का सेवक बनता था। वास्तव में अपनी इच्छाओं का दास हूं। प्रेमशंकर ने मुझे नाहक बचा लिया। जरा दो-चार चोटें पड़ जातीं तो मेरी आंखें और खुल जातीं।

मुआजल्लाह! मैं कितना स्वार्थी हूं? अपने स्वार्थ के सामने दूसरों की जान की भी परवाह नहीं करता। मैंने इस मुआमले में आदि से अंत तक कपट व्यवहार से काम लिया। कभी मिसलों को गौर से नहीं पढ़ा, कभी जिरह के प्रश्नों पर विचार नहीं किया, यहां तक कि गवाहों की के बयान भी आद्योपान्त न सुने, कभी दूसरे मुकदमे में चला जाता था, कभी मित्रों से बातें करने लगता था। मैंने थोड़ा-सा अध्ययन किया होता तो प्रियनाथ को चुटकियों पर उड़ा देता। मुख़बिर को दो-चार जिरहों में उखाड़ सकता था। थानेदार का बयान भी कुछ ऐसा प्रामाणिक न था, लेकिन मैंने तो अपने कर्त्तव्य पर कभी विचार ही नहीं किया। अदालत में इस तरह जा बैठता था जैसे कोई मित्रों की सभा में जा बैठता हो। मैं इस पेशे को बुरा कहता हूं, यह मेरी मक्कारी है। हमारी अनीति है, जिसने इस पेशे को बदनाम कर रक्खा है। उचित तो यह है कि हमारी दृष्टि सत्य पर हो, पर इसके बदले हमारी निगाह सदैव रुपये पर रहती है। खुदा ने चाहा तो आइन्दा से अब वही करूंगा जो मुझे करना चाहिए। हां, अब से ऐसा ही होगा। अब मैं भी प्रेमशंकर के जीवन को अपना आदर्श बनाऊंगा, संतोष और सेवा के सन्मार्ग पर चलूंगा।

जब तक प्रेमशंकर औषधालय में रहे, इर्फान अली प्राय: नित्य उनका समाचार पूछने जाया करते थे। उनके धैर्य और साहस पर डॉक्टर साहब को आश्चर्य होता था। प्रेमशंकर के प्रति उनकी श्रद्धा दिनों-दिन बढ़ती जाती थी अपने मुवक्किलों के साथ उनका व्यवहार अब अधिक विनयपूर्ण होता था। वह उनके मुआमले ध्यान से देखते, एक समय एक से अधिक मुकदमा न लेते और एक मुकदमे को इजलास पर छोड़कर दूसरे मुकदमे की पैरवी न करने की तो उन्होंने मानो शपथ ही खा ली। वह अपील करने के लिए बार-बार प्रेमशंकर को प्रेरित करना चाहते थे, पर अपनी असज्जनता को याद करके सकुच जाते थे। अंत में उन्होंने सीतापुर जाकर बाबू ज्वालासिंह से इस विषय में परामर्श करने का निश्चय किया, किंतु वह महाशय अभी तक दुविधा में पड़े हुए थे। वह प्रेमशंकर को लिख चुके थे कि त्याग-पत्र देकर शीघ्र ही आपकी सेवा में आता हूं। लेकिन फिर कोई-न-कोई ऐसी बात याद आ जाती थी कि उन्हें अपने इरादे को स्थगित करने पर विवश होना पड़ता था। बात यह थी कि शीलमणि उनके इस्तीफा देने पर राजी न होती थी। वह कहती—बला से तुम्हारे अफसर तुमसे अप्रसन्न हैं, तरक्की नहीं होती है, न सही। तुम्हारे हाथों में न्याय करने का अधिकार तो है। अगर तुम्हारे विधातागण तुम्हारे व्यवहार से असंतुष्ट होकर तुम्हें पदच्युत कर दें तो तुम्हें अपील करनी चाहिए और चोटी के हाकिमों से लड़ना चाहिए। यह नहीं कि अफसरों ने जरा तेवर बदला और तुमने भयभीत होकर त्याग-पत्र देने की ठान ली। तुम्हारी इस अकर्मण्यता से तुम्हारे कितने ही न्यायशील और आत्माभिमानी सहवर्गियों की हिम्मत टूट जाएगी और वह भाग निकलने का उपाय करने लगेंगे। यह विभाग सज्जनों से खाली हो जाएगा और वही खुशामदी टट्टू, हाकिमों के इशारे पर नाचने वाले बाकी रह जाएंगे। ज्वालासिंह इस दलील का कोई जवाब न दे सकते थे। जब डॉक्टर इर्फान अली सिर पर जा पहुंचे, तो वह अपनी शिथिलता और अधिकार-प्रेम का दोष शीलमणि पर रखकर अपने को मुक्त न कर सके।

शीलमणि समझ गई कि अब इन्हें रोकना कठिन है, मेरी एक न सुनेंगे। ज्योंही अवसर

मिला उसने ज्वालासिंह से पूछा—डॉक्टर साहब को क्या जवाब दिया?

ज्वालसिंह—जवाब क्या देना है, इस्तीफा दिए देता हूं। अब हीला-हवाला करने से काम न चलेगा। जब तक मैं न जाऊंगा, बाबू प्रेमशंकर कुछ न कर सकेंगे। दुर्भाग्य से वह मुझ पर उससे कहीं ज्यादा विश्वास करते हैं, जिसके योग्य मैं हूं। अपील की अवधि बीत जाएगी तो फिर कुछ बनाए न बनेगी। अपील के सफल होने की बहुत कुछ आशा है और यदि मेरे सदुद्योग से कई निरपराधों की जानें बच जाएं तो मुझे अब एक क्षण भी विलम्ब न करना चाहिए।

शीलमणि—तो अधिक दिनों की छुट्टी क्यों नहीं ले लेते?

ज्वालासिंह—तुम तो जानबूझ कर अनजान बनती हो। वहां मुझे कितनी ही ऐसी बातें करनी पड़ेंगी जो दासत्व की बेड़ियां पहने हुए नहीं कर सकता। रुपये के लिए चंदे मांगना, वकीलों से मिलना-जुलना, लखनपुर वालों के कष्ट निवारण की आयोजना करना, यह सभी काम करने पड़ेंगे। पुलिस वालों की निगाह पर चढ़ जाऊंगा, अधिकारी वर्ग तन जाएंगे, तो इस बेड़ी को काट ही क्यों न दूं? मुझे पूरा विश्वास है कि मैं स्वाधीन होकर जितनी जाति-सेवा कर सकता हूं, उतनी इस दशा में कभी न कर सकूंगा।

शीलमणि बहुत देर तक उनसे तर्क-वितर्क करती रही, अंत में क्रुद्ध होकर बोली—ऊंह, जो इच्छा हो करो! मुझे क्या करना है? जैसा सूखा सावन वैसा भरा भादों। आप ही पछताओगे। यह सब आदर-सम्मान तभी तक है, जब तक हाकिम हो। जब जाति-सेवकों में जा मिलोगे तो कोई बात भी न पूछेगा। क्या वहां सब-के-सब सज्जन ही भरे हैं? अच्छे-बुरे सभी जगह होते हैं। प्रेमशंकर की तो मैं नहीं कहती, वह देवता हैं लेकिन जाति-सेवकों में तुम्हें सैंकड़ों आदमी ऐसे मिलेंगे जो स्वार्थ के पुतले हैं और सेवा भेष बनाकर गुलछर्रे उड़ाते हैं। वह निःस्पृह, पवित्र आत्माओं को फूटी आंख नहीं देख सकते। तुम्हें उनके बीच में रहना दूभर हो जाएगा। उनका अन्याय, कपट-व्यवहार और संकीर्णता देखकर तुम कुढ़ोगे, पर उनसे कुछ कह न सकोगे। इसलिए जो कुछ करो, सोच-समझकर करो।

ये वही बातें थीं, जो ज्वालासिंह ने स्वयं शीलमणि से कही थीं। कदाचित् यही बातें सुन-सुनकर वह इस्तीफे के विपक्ष में हो गई थी। पर इस समय वह यह निराशाजनक बातें न सुन सके, उठकर बाहर चले आए और उसी आवेश में आकर त्यागपत्र लिखना शुरू किया।

छियालीस

कई महीने बीत चुके, लेकिन प्रेमशंकर अपील दायर करने का निश्चय न कर सके। जिस काम में उन्हें किसी दूसरे से मदद मिलने की आशा न होती थी, उसे वह बड़ी तत्परता के साथ करते थे, लेकिन जब कोई उन्हें सहारा देने के लिए हाथ बढ़ा देता था, तब उन पर एक विचित्र शिथिलता-सी छा जाती थी। इसके सिवा धनाभाव भी अपील का बाधक था। दीवानी के खर्च ने उन्हें इतना जेरबार कर दिया था कि हाईकोर्ट जाने की हिम्मत न पड़ती थी। यद्यपि कितने ही आदमियों को उनसे श्रद्धा थी और वह इस पुण्य-कार्य के लिए पर्याप्त धन एकत्र कर सकते थे, पर उनकी स्वाभाविक सरलता और कातरता इस आधार को उनकी कल्पना में भी न आने देती थी।

एक दिन संध्या समय प्रेमशंकर बैठे हुए समाचार-पत्र देख रहे थे। गोरखपुर के सनातन धर्म महोत्सव का समाचार मोटे अक्षरों में छपा हुआ दिखाई दिया। गौर से पढ़ने लगे। ज्ञानशंकर को उन्होंने मन में धूर्त और स्वार्थ-परायणता का पुतला समझ रखा था। अब उनकी इस सत्य-निष्ठा और धर्म-परायणता का वृत्तांत पढ़कर उन्हें अपनी संकीर्णता पर अत्यंत खेद हुआ। मैं कितना निर्बुद्धि हूं। ऐसी दिव्य और विमल आत्मा पर अनुचित संदेह करने लगा। ज्ञानशंकर के प्रति उनके हृदय में भक्ति की तरंगें-सी उठने लगीं। उनकी सराहना करने की ऐसी उत्कट इच्छा हुई कि उन्होंने मस्ता और भोला को कई बार पुकारा। जब उनमें से किसी ने जवाब न दिया तो वह मस्ता की झोंपड़ी की ओर चले कि अकस्मात् दुर्गा, मस्ता और कृषिशाला के कई और नौकर एक मनुष्य को खींचकर लाते हुए दिखाई दिए। सब-के-सब उसे गालियां दे रहे थे और मस्ता रह-रहकर एक धौल जमा देता था। प्रेमशंकर ने आगे बढ़कर तीव्र स्वर में कहा—क्या है भोला, क्यों इसे मार रहे हो?

मस्ता—भैया, यह न जाने कौन आदमी है। फाटक से चिपटा खड़ा था। अभी मैं फाटक बंद करने गया तो देखा। मुझे देखते ही और दबक गया। बस, मैंने चुपके से आकर सबको साथ लिया और बच्चू को पकड़ लिया। जरूर-से-जरूर कोई चोर है।

प्रेम—चोर सही, तुम्हारा कुछ चुराया तो नहीं? फिर क्यों मारते हो?

यह कहते हुए अपने बरामदे में आकर बैठ गए। चोर को भी लोगों ने वहीं लाकर खड़ा किया। ज्योंही लालटेन के प्रकाश में उसकी सूरत दिखाई दी, प्रेमशंकर के मुंह से एक चीख-सी निकल गई, अरे यह तो बिसेसर साह हैं !

बिसेसर ने आंसू पोंछते हुए कहा—हां सरकार, मैं बिसेसर ही हूं।

प्रेमशंकर ने अपने नौकरों से कठोर स्वर में कहा—तुम लोग निरे गंवार और मूर्ख हो। न जाने तुम्हें कभी समझ आएगी भी या नहीं?

मस्ता—भैया, हम तो बार-बार पूछते रहे कि तुम कौन हो? वह कुछ बोले ही नहीं, तो मैं क्या करता?

प्रेम—बस, चुप रह गंवार कहीं का !

नौकरों ने देखा कि हमसे भूल हो गई तो चुपके से एक-एक करके सरक गए। प्रेमशंकर को क्रोध में देखकर सब-के-सब थर-थर कांपने लगते थे। यद्यपि प्रेमशंकर उन सबसे भाई-चारे का बर्ताव करते थे, पर वह सब उनका बड़ा अदब करते थे। उनके सामने चिलम तक न पीते। उनके चले जाने के बाद प्रेमशंकर ने बिसेसर साह को खाट पर बैठाया और अत्यंत लज्जित होकर बोले—साह जी, मुझे बड़ा दु:ख है कि मेरे आदमियों ने आपके साथ अनुचित व्यवहार किया। सब-के-सब उजड्ड और मूर्ख हैं।

बिसेसर ने ठंडी सांस लेकर कहा—नहीं भैया, इन्होंने कोई बुरा सलूक नहीं किया। मैं इसी लायक हूं। आप मुझे खम्भे में बांधकर कोड़े लगवायें तब भी बुरा न मानूंगा। मैं विश्वासघाती हूं। मुझे जो सजा मिले वह थोड़ी है। मैंने अपनी जान के डर से सारे गांव को मटियामेट कर दिया। न जाने मेरी बुद्धि कहां चली गई थी। पुलिस वालों की भभकी में आ गया। वह सब ऐसी-ऐसी बातें करते हैं, इतना डराते और धमकाते हैं कि सीधा-सादा आदमी बिल्कुल उनकी मुट्ठी में आ जाता है। उन्हें जरूर-से-जरूर किसी देवता का इष्ट है कि जो कुछ वह कहलाते हैं, वही मुंह से निकलता है। भगवान् जानते हैं जो गौस खां के बारे में मेरी किसी से कुछ बात हुई हो।

मुझे तो उनके कतल का हाल दिन चढ़े मालूम हुआ, जब मैं पूजा-पाठ करके दुकान पर आया। पर जब दारोगाजी थाने में ले जाकर मेरी सांसत करने लगे तब मुझ पर जैसे कोई जादू हो गया। उनकी एक-एक बात दुहराने लगा। जब मैं अदालत में बयान दे रहा था तब सरम के मारे मेरी आंखें ऊपर न उठती थीं। मेरे जैसा कुकर्मी संसार में न होगा। जिन आदमियों के साथ रात-दिन का रहना-सहना, उठना-बैठना था, जो मेरे दु:ख-दर्द में शरीक होते थे, उन्हीं की गर्दन पर मैंने छुरी चलाई। जब कादिर ने मेरा बयान सुनकर कहा, 'बिसेसर भगवान् से डरो।' उस घड़ी मेरा ऐसा जी चाहता था कि धरती फट जाए और मैं उसमें समा जाऊं। मन होता था कि साफ-साफ कह दूं 'यह सब सिखाई-पढ़ाई बातें हैं' पर दारोगाजी की ओर ज्योंही आंख उठती थी, मेरा हियाव छूट जाता था। जिस दिन से मनोहर ने अपने गले में फांसी लगाई है उस दिन से मेरी नींद हराम हो गई। रात को सोते-सोते चौंक पड़ता हूं, जैसे मनोहर सिरहाने खड़ा हो। सांझ होते ही घर के किवाड़ बंद करा लेता हूं। बाहर निकलता हूं तो जान पड़ता है, मनोहर सामने आ रहा है। घरवाली उसी दिन से बीमार पड़ी हुई है। घर की तो यह दुर्दशा है, उधर गांव में अंधेर मचा हुआ है। सबके बाल-बच्चे भूखों मर रहे हैं। फैजू और कर्तार नित नए तूफान रचते रहते हैं। भगवान् सूक्खू चौधरी का भला करे, उनके हृदय में दया आई, दो साल की मालगुजारी अदा कर दी, नहीं तो अब तक सारा गांव बेदखल हो गया होता। इस पर फैजू जला जाता है। जब सुक्खू आ जाते हैं तो भीगी बिल्ली बन जाता है, लेकिन ज्योंही वह चले जाते हैं फिर वही उपद्रव करने लगता है। इन गरीबों का कष्ट मुझसे नहीं देखा जाता। जिसे चाहता है, मारता है, डांड़ लेता है। एक दिन कादिर मियां के घर में आग लगवा दी। और तो और अब गांव की बहू-बेटियों की इज्जत-हुरमत भी बचती नहीं दिखाई देती। मनोहर के घर सास-बहू में रार मची हुई है। दोनों अलग-अलग रहती हैं। परसों रात की बात है, फैजू और कर्तार दोनों बहू के घर में घुस गए। उस बेचारी ने चिल्लाना शुरू किया। सास पहुंच गई, और लोग भी पहुंच गए। दोनों निकल कर भागे। सबेरा होते ही इसकी कसर निकली। कर्तार ने मनोहर की दुलहिन को इतना मारा कि बेचारी पड़ी हल्दी पी रही है। यह सब पाप मेरे सिवा और किसके सिर पड़ता होगा? मैं ही इस सारी विपद् लीला की जड़ हूं। भगवान् मेरी न जाने क्या दुर्गत करेंगे। काहे भैया, क्या अब कुछ नहीं हो सकता? सुनते हैं तुम अपील करने वाले हो, तो जल्दी कर क्यों नहीं देते? ऐसा न हो कि मियाद गुजर जाए। तुम मुझे तलब करा देना। मुझ पर दरोगा-हल्फी का इल्जाम आएगा तो क्या। पर मैं अबकी सब कुछ सच-सच कह दूंगा। यही न होगा, मेरी सजा हो जायगी, गांव का तो भला हो जाएगा। मैं हजार-पांच सौ से मदद भी कर सकता हूं।

प्रेमशंकर—हाईकोर्ट में तो मिसल देखकर फैसला होता है, किसी के बयान नहीं लिये जाते।

बिसेसर—भैया, कुछ देने-लेने से काम चले तो दे दो, हजार-पांच सौ का मुंह मत देखो। मुझसे जो कुछ फरमाओ उसके लिए हाजिर हूं। यह बात मेरे मन में महीनों से समाई हुई है, पर आपको मुंह दिखाने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। आज कुछ सौदा लेने चला तो चौपाल के सामने फैजू मिल गए। कहने लगे—जाते हो तो यह रुपये लेते जाओ, मालिकों के घर भेजवा देना। मैंने रुपये लिए और डेवढ़ी पर जाकर छोटी बहू के पास रुपये भेज दिए। जब चलने लगा तो बड़ी बहू ने दीवानखाने में मुझे बुलाया। उनको देखकर ऐसा जान पड़ा मानो साक्षात् देवी के दर्शन हो गए। उन्होंने मुझे ऐसा-ऐसा उपदेश किया कि आपसे क्या कहूं। मेरी आंखें खुल

गईं। मन में ठानकर चला कि आप से अपील दायर करने को कहूं जिससे मेरा भी उद्धार हो जाए। लेकिन दो-तीन बार आ-आकर लौट गया। आपको मुंह दिखाते लाज आती थी। सूरज डूबते वक्त फिर आया, पर यहीं फाटक के पास दुविधा में खड़ा सोच रहा था कि क्या करूं? इतने में आपके आदमियों ने देख लिया और आपकी शरण में ले आए। मुझ जैसे झूठे दगाबाज आदमी का इतबार ही क्या? पर अब मैं सौगन्ध खाकर कहता हूं कि फिर जो मेरा बयान लिया जाएगा तो मैं एक-एक बात खोलकर कह दूंगा। चाहे उल्टी पड़े या सीधी। आप जरूर अपील कीजिये।

प्रेमशंकर बिसेसर साह को महानीच, कपटी, अधम मनुष्य समझते थे। उनके विचार में वह मनुष्य कहलाने के योग्य भी न था। लेकिन उसकी इन ग्लानि-सूचक बातों ने उसे पिशाच श्रेणी से उठाकर देवासन पर बैठा दिया। भगवन्! जिसे मैं इतना दुरात्मा समझता था, उसके हृदय में आत्मग्लानि का यह पवित्र भाव! यह आत्मोत्कर्ष, यह ईश्वरभीरुता, यह सदोद्गार! मैं कितने भ्रम में पड़ा हुआ था? दुनिया के लोग अनायास ही बदनाम करते हैं, पर मैंने तो हर एक बुरे को अच्छा ही पाया। इसे अपने सौभाग्य के सिवा और क्या कहूं? ईश्वर! मुझे इस अविश्वास के लिए क्षमा करना। यह सोचकर उनकी आंखों ने आंसू भर आए। बोले–साह जी, तुम्हारी बातें सुनकर मुझे वही आनंद हुआ जो किसी सच्चे साधु के उपदेश से होता! मैं बहुत जल्द अपील करने वाला हूं। अड़चन यही है कि गवाहों के बयान कैसे बदले जाएं। संभव है, हाईकोर्ट मुकदमे पर नजरसानी करने की आज्ञा दे दे और फिर इसी अदालत में मामला पेश हो। लेकिन बयान बदलने से तुम और डॉक्टर प्रियनाथ दोनों ही फंस जाओगे। प्रियनाथ ने तो अपने बचाव की युक्ति सोच ली, लेकिन तुम्हारा बचाव कठिन है। इसे अच्छी तरह सोच लो।

बिसेसर–खूब सोच लिया है।

प्रेमशंकर–ईश्वर ने चाहा तो तुम भी बच जाओगे। मैं कल वकीलों से इस विषय में सलाह लूंगा।

यह कहकर वह बिसेसर के खाने-पीने का प्रबंध करने चले गए।

सैंतालीस

ज्ञानशंकर लखनऊ से सीधे बनारस पहुंचे, किंतु उदास और खिन्न रहते। न हवा खाने जाते, न किसी से मिलते-जुलते। उनकी दशा इस समय उस पक्षी की-सी थी जिसके दोनों पंख कट गए हों, या उस स्त्री की-सी जो किसी दैवी प्रकोप से पति-पुत्र विहीन हो गई हो। उनके जीवन की सारी आकांक्षाएं मिट्टी में मिलती हुई जान पड़ती थीं। अभी एक सप्ताह पहले उनकी आशा-लता सुखद समीरण-से लहरा रही थी। उस स्थान पर अब केवल झुलसी हुई पत्तियों का ढेर था। उन्हें पूरा विश्वास था कि रायसाहब ने सारा वृत्तांत गायत्री को लिख दिया होगा। पूरी के लिए लपके थे, आधी भी हाथ से गई। उन्हें सबसे विषमवेदना यह थी कि मेरे मनोभावों की कलई खुल गई। अगर धैर्य का कोई आधार था तो यही दार्शनिक विचार था कि इन अवस्थाओं में मेरे लिए अपने लक्ष्य पर पहुंचने का और कोई मार्ग न था। उन्हें अपने कृत्यों पर लेशमात्र भी ग्लानि या लज्जा न थी। बस, यही खेद था कि मेरे सारे षड्यंत्र निष्फल हो गए।

लखनऊ से उन्होंने गायत्री को कई पत्र लिखे थे, पर बनारस से उसे पत्र लिखने की हिम्मत न पड़ती थी। उसके पास से आई हुई चिट्ठियों को भी वे बहुत डरते-डरते खोलते थे। समाचार-पत्रों को खोलते हुए उनके हाथ कांपने लगते थे। विद्या के पत्र रोज आते थे। उन्हें पढ़ना ज्ञानशंकर के लिए अपनी भाग्य रेखा पढ़ने से कम रोमांचकारी न था। वह एक-एक वाक्य को इस तरह डर-डरकर पढ़ते, मानो किसी अंधेरी गुफा में कदम रखते हों। भय लगा रहता था कि कहीं उस दुर्घटना का जिक्र न आ जाए। बहुधा साधारण वाक्यों पर विचार करने लगते कि कहीं इसमें कोई गूढ़ाशय, कोई रहस्य, कोई उक्ति तो नहीं है। दसवें दिन गायत्री के यहां से एक बहुत लंबा पत्र आया। ज्ञानशंकर ने उसे हाथ में लिया तो उनकी छाती बल्लियों उछलने लगी। बड़ी मुश्किल से पत्र खोला और जैसे हम कड़वी दवा को एक ही घूंट में पी जाते हैं, उन्होंने एक ही सरसरी निगाह में सारा पत्र पढ़ लिया। चित्त शांत हुआ! रायसाहब की कोई चर्चा न थी। तब उन्होंने निश्चिंत होकर पत्र को दुबारा पढ़ा। गायत्री ने उनके पत्र न भेजने पर मर्मस्पर्शी शब्दों में अपनी विकलता प्रकट की थी और उन्हें शीघ्र ही गोरखपुर आने के लिए बड़े विनीत भाव से आग्रह किया था। ज्ञानशंकर ने सावधान होकर सांस ली। गायत्री ने अपने चित्त की दशा को छिपाने का बहुत प्रयत्न किया था, पर उसका एक-एक शब्द ज्ञानशंकर की मरणासन्न आशाओं के लिए सुधा के तुल्य था। आशा बंधी, संतोष हुआ कि अभी बात नहीं बिगड़ी, मैं अब भी जरूरत पड़ने पर शायद उसकी दृष्टि में निर्दोष बन सकूं, शायद रायसाहब के लांछनों को मिथ्या सिद्ध कर सकूं। शायद सत्य को असत्य कर सकूं। संभव है, मेरे सजल नेत्र अब भी मेरी निर्दोषिता का विश्वास दिला सकें। इसी आवेश में आकर उन्होंने गायत्री को पत्र लिखा, जिसका अधिकांश विरह-व्यथा को भेंट करने के बाद उन्होंने रायसाहब के मिथ्याक्षेप की ओर भी संकेत किया। उनके अंतिम शब्द थे–'आप मेरे स्वभाव और मनोविचारों से भली-भांति परिचित हैं। मुझे अगर जीवन में कोई अभिलाषा है तो यही कि मुरली की ध्वनि सुनते हुए इस असार संसार से प्रस्थान कर जाऊं। मरने लगूं तो उसी मुरली वाले की सूरत आंखों के सामने हो, और यह सिर राधा की गोद में हो। इसके अतिरिक्त मुझे कोई इच्छा और कोई लालसा नहीं है। राधिका की एक तिरछी चितवन, एक मृदुल मुस्कान, एक मीठी चुटकी, एक अनोखी छटा पर मैं समस्त संसार की संपदा को न्योछावर कर सकता हूं। पर जब तक मैं संसार में हूं, संसार की कालिमा से क्योंकर बच सकता? मैंने रायसाहब से संगीत-परिषद् के विषय में कुछ स्पष्ट भाषण किया था। उसका फल यह हुआ कि अब वे मेरी जान के दुश्मन हो गए हैं। आपसे अपनी विपत्ति-कथा क्या कहूं, आपको सुनकर दुःख होगा। उन्होंने मुझे मारने के लिए पिस्तौल हाथ में ले लिया था। अगर भाग न आता तो यह पत्र लिखने के लिए जीवित न रहता। मुझे हुक्म हुआ है कि अब फिर उन्हें मुंह न दिखलाऊं। इतना ही नहीं, मुझे आपसे भी पृथक् रहने की आज्ञा मिली है। इस आज्ञा को भंग करने का ऐसा कठोर दंड निर्वाचित किया गया है कि उसका उल्लेख करके मैं आपके कोमल हृदय को दुखाना नहीं चाहता। मेरे मौनव्रत का यही कारण है। संभव है, आपके पास भी इस आशय का कोई पत्र पहुंचा हो और आपको भी मुझे दूध की मक्खी समझने का उपदेश किया गया हो। ऐसी दशा में आप जो उचित समझें, करें। पिता की आज्ञा के सामने सिर झुकाना आपका कर्त्तव्य है। उसका आप पालन करें। मैं आपसे दूर रहकर भी आपके निकट हूं, संसार की कोई शक्ति मुझे आपसे अलग नहीं कर सकती। आध्यात्मिक बंधन को कौन तोड़ सकता है? यह कृष्ण का प्रेमी निरंतर राधा की याद में संलग्न रहेगा। आपसे केवल यही भिक्षा मांगता हूं कि मेरी ओर से मनमुटाव न करें और अपने उदार हृदय के एक कोने में मेरी स्मृति बनाये रखें।

ज्ञानशंकर के जाने के बाद गायत्री को एक-एक क्षण काटना दुस्तर हो गया था। उसे अब ज्ञात

हुआ कि मैं कितने गहरे पानी में आ गई हूं! जब तक ज्ञानशंकर के हाथों का सहारा था उस गहराई का अंदाज न होता था। उस सहारे के टूटते ही उसके पैर फिसलने लगे। वह संभलना चाहती थी, पर तरंगों का वेग संभलने न देता था। अबकी ज्ञानशंकर पूरे साल-भर के बाद गोरखपुर से निकले थे। वह नित्य उन्हें देखती थी, नित्य उनसे बातें करती थी और यद्यपि यह अवसर दिन में एक या दो बार से अधिक न मिलता था, पर उन्हें अपने समीप देखकर उसका हृदय संतुष्ट रहता था। अब पिंजरे को खाली देखकर उसे पक्षी की बार-बार याद आती थी। वह सरल और गौरवशील थी, लेकिन उसके हृदय-स्थल में प्रेम का एक उबलता हुआ सोता छिपा हुआ था। वह अब तक अभिमान के मोटे कत्तल से दबा हुआ प्रवाह का कोई मार्ग न पाकर सुषुप्तावस्था में पड़ा हुआ था। यही सुषुप्ति उसका सतीत्व थी ! पर भक्ति और अनुराग ने उस अभिमान के कत्तल को हटा दिया था और उबलता हुआ सोता प्रबल वेग से द्रवित हो रहा था। वह आत्मविस्मृति की दशा में मग्न हो गई थी। वह अचेत-सी हो गई थी। उसे लेशमात्र भी अनुमान न होता था कि यह भक्ति मुझे वासना की ओर खींचे लिये जाती है। वह इस प्रेम के नशे में कितनी ही ऐसी बातें करती थी और कितनी ही ऐसी बातें सुनती थी जिन्हें सुनकर वह पहले कानों पर हाथ रख लेती, जो पहले मन में आतीं तो आत्मघात कर लेती; परंतु अब वह गोपिका थी, वह सदनुराग की साक्षात् प्रतिमा थी। इस आध्यात्मिक उद्गार में वासना का लगाव कहां? ऐन्द्रिक तृष्णाओं का मिश्रण कहां? कृष्ण का नाम, कृष्ण की भक्ति, कृष्ण की रट ने उसके हृदय और आत्मा को पवित्र प्रेम से परिपूरित कर दिया था। गायत्री जब ज्ञानशंकर की ओर चंचल चितवनों से ताकती या उनके सतृष्ण लोचनों को अपनी मृदुल मुस्कान सुधा से प्लावित करती तो वह अपने को गोपिका समझती, जो कृष्ण से ठिठोली या रहस्य कर रही हो। उसकी इस चितवन और इस मुस्कान में सच्चा प्रेमानुराग झलकता था। ज्ञानशंकर अब उसे प्रेमोन्मत्त नेत्रों से देखते या उसकी निष्ठुरता और अकृपा का गिला करते तो उसे इसमें भी उन्हीं पवित्र भावों की झलक दिखाई देती थी। इस प्रेम-रहस्य और आमोद-विनोद का चस्का दिनों-दिन बढ़ता जाता था। उन प्रेम कल्पनाओं के बिना चित्त उचटा रहता था। गायत्री इसी विकलता की दशा में, कभी ज्ञानशंकर के दीवानखाने की ओर जाती, कभी ऊपर, कभी नीचे, कभी बाग में, पर कहीं जी न लगता। वह गोपिकाओं की विरह-व्यथा की अपने वियोग-दुःख से तुलना करती। सूरदास के उन पदों को गाती जिनमें गोपिकाओं का विरह-वर्णन किया गया है। उसके बाग में एक कदम का पेड़ था। उसकी छांह में हरी घास पर लेटी हुई वह कभी गाती, रोती, कभी-कभी उद्विग्न होकर टहलने लगती। कभी सोचती, लखनऊ चलूं, कभी ज्ञानशंकर को तार देकर बुलाने का इरादा करती, कभी निश्चय करती, अब उन्हें कभी बाहर न जाने दूंगी। उनकी सूरत उसकी आंखों में फिरा करती, उनकी बातें कानों में गूंजा करतीं। कितना मनोहर स्वरूप है, कितनी रसीली बातें ! साक्षात् कृष्ण रूप हैं ! उसे आश्चर्य होता कि मैंने उन्हें अकेले क्यों जाने दिया? क्या मैं उनके साथ न जा सकती थी? वह ज्ञानशंकर को पत्र लिखती तो उनकी निर्दयता और हृदय-शून्यता का खूब रोना रोती। उनके पत्र आते तो बार-बार पढ़ती। उसके प्रेम-कथन में अब संकोच या लज्जा बाधक न होती थी। गोपियों की विरह-कथा में उसे अब एक करुण वेदनामय आनंद मिलता था। प्रेमसागर की दो-चार चौपाइयां भी न पढ़ने पाती कि आंखों से आंसू की झड़ी लग जाती।

लेकिन जब ज्ञानशंकर बनारस चले गए और उनकी चिट्ठियों का आना बिल्कुल बंद हो गया तब गायत्री को ऐसा अनुभव होने लगा मानो मैं इस संसार में हूं ही नहीं। यह कोई दूसरा निर्जन, नीरव अचेतन संसार है। उसे ज्ञानशंकर के बनारस आने का समाचार ज्ञात न था। वह लखनऊ के पते से नित्यप्रति पत्र भेजती रही, लेकिन जब लगातार कई पत्रों का जवाब न आया

तब उसे अपने ऊपर झुंझलाहट होने लगी। वह गोपियों की भांति अपना ही तिरस्कार करती कि मैं क्यों ऐसे निर्दय, निष्ठुर, कठोर मनुष्य के पीछे अपनी जान खपा रही हूं! क्या उनकी तरह मैं भी निष्ठुर नहीं बन सकती? वह मुझे भूल सकते हैं तो मैं उन्हें नहीं भूल सकती? किंतु एक ही क्षण में उसका यह मान लुप्त हो जाता और वह फिर खोई हुई-सी इधर-उधर फिरने लगती।

किंतु जब दसवें दिन ज्ञानशंकर का विवशता-सूचक पत्र पहुंचा तो पढ़ते ही गायत्री का चंचल हृदय अधीर हो उठा। वह उस विवशकारी आवेश के साथ उनकी ओर लपकी। यह उसकी प्रीति की पहली परीक्षा थी। अब तक उसका प्रेम-मार्ग कांटों से साफ था। यह पहला कांटा था जो उसके पैरों में चुभा। क्या यह पहली ही बाधा मुझे प्रेम-मार्ग से विचलित कर देगी? मेरे ही कारण तो ज्ञानशंकर पर मुसीबतें आई हैं। मैं ही तो उनकी इन विडम्बनाओं की जड़ हूं? पिताजी उनसे नाराज हैं तो हुआ करें, मुझे इसकी चिंता नहीं। मैं क्यों प्रेम-नीति से मुंह मोड़ूं? प्रेम का संबंध केवल दो हृदयों से है, किसी तीसरे प्राणी को उसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं! आखिर पिताजी ने उन्हें क्यों मुझसे पृथक् रहने का आदेश दिया? वे मुझे क्या समझते हैं? उनका सारा जीवन भोग-विलास में गुजरा है। वह प्रेम के गूढ़ाशय क्या जानें? उन्हें इस पवित्र मनोवृत्ति का क्या ज्ञान? परमात्मा ने उन्हें ज्ञान-ज्योति प्रदान की होती तो वह ज्ञानशंकर के आत्मोत्कर्ष को जानते, उनकी आत्मा का महत्त्व पहचानते! तब उन्हें विदित होता कि मैंने ऐसी पवित्रात्मा पर दोषारोपण करके कितना घोर अन्याय किया है। पिता की आज्ञा मानना मेरा धर्म अवश्य है, किंतु प्रेम के सामने पिता की आज्ञा की क्या हस्ती है! यह ताप अनादि ज्योति की एक आभा है, यह दाह अनंत शांति का एक मंत्र है। इस ताप को कौन मिटा सकता है?

दूसरे दिन गायत्री ने ज्ञानशंकर को तार दिया, 'मैं आ रही हूं' और शाम की गाड़ी से मायाशंकर को साथ लेकर बनारस चली।

अड़तालीस

ज्ञानशंकर को बनारस आए दो सप्ताह से अधिक बीत चुके थे। संगीत-परिषद् समाप्त हो चुकी थी और अभी सामयिक पत्रों में उस पर वाद-विवाद हो रहा था। यद्यपि अस्वस्थ होने के कारण रायसाहब उसमें उत्साह के साथ भाग न ले सके, पर उनके प्रबंध-कौशल ने परिषद् की सफलता में कोई बाधा न होने दी। संध्या हो गई थी। विद्यावती अन्दर बैठी हुई एक पुराना शाल रफू कर रही थी। रायसाहब ने उसके सैर करने के लिए एक बहुत अच्छी सेजगाड़ी दे दी थी और कोचवान को ताकीद की थी कि जब विद्या का हुक्म मिले, तुरंत सवारी तैयार करके उसके पास ले जाए; लेकिन इतने दिनों से विद्या एक दिन भी कहीं सैर करने न गई। उसका मन घर के धंधों में अधिक लगता था। उसे न थियेटर का शौक था, न सैर करने का, न गाने-बजाने का। इनकी अपेक्षा उसे भोजन बनाने या सीने-पिरोने में ज्यादा आनंद मिलता था। इस एकांत-सेवन के कारण उसका मुखकमल मुर्झाया-सा रहता था। बहुधा सिर-पीड़ा से ग्रसित रहती थी। वह परम सुन्दरी, कोमलांगी रमणी थी, पर उसमें अभिमान का लेश भी न था। उसे मांग-चोटी, आईने-कंघी से अरुचि थी। उसे आश्चर्य होता था कि गायत्री क्योंकर अपना अधिकांश समय

बनाव-संवार में व्यतीत करती है। कमरे में अंधेरा हो रहा था, पर वह अपने काम में इतनी रत थी कि उसे बिजली के बटन दबाने का भी ध्यान न था। इतने में रायसाहब उसके द्वार पर आकर खड़े हो गए और बोले—ईश्वर से बड़ी भूल हो गई कि उसने तुम्हें दर्जिन न बना दिया। अंधेरा हो गया, आंखों से सूझता नहीं, लेकिन तुम्हें अपने सुई-तागे से छुट्टी नहीं।

विद्या ने शाल समेट दिया और लज्जित होकर बोली—थोड़ा-सा बाकी रह गया था, मैंने सोचा इसे पूरा कर लूं तो उठूं।

रायसाहब पलंग पर बैठ गए और कुछ कहना चाहते थे कि जोर से खांसी आई और थोड़ा-सा खून मुंह से निकल पड़ा, आंखें निस्तेज हो गईं और हृदय में विषम पीड़ा होने लगी। मुखाकार विकृत हो गया। विद्या ने घबराकर पूछा—पानी लाऊं? यह मरज तो आपको न था। किसी डॉक्टर को बुला भेजूं?

रायसाहब—नहीं, कोई जरूरत नहीं। अभी अच्छा हो जाऊंगा। यह सब मेरे सुयोग्य विद्वान् और सर्वगुणसम्पन्न पुत्र बाबू ज्ञानशंकर की कृपा का फल है।

विद्या ने प्रश्नसूचक विस्मय से रायसाहब की ओर देखा और कातर भाव से जमीन की ओर ताकने लगी। रायसाहब संभलकर बैठ गए और एक बार पीड़ा से कराह कर बोले—जी तो नहीं चाहता कि मुझ पर जो कुछ बीती है वह मेरे और ज्ञानशंकर के सिवा किसी दूसरे व्यक्ति के कानों तक पहुंचे, किंतु तुमसे पर्दा रखना अनुचित ही नहीं अक्षम्य है ! तुम्हें सुनकर दु:ख होगा, लेकिन संभव है इस समय का शोक और खेद तुम्हें आने वाली मुसीबतों से बचाए, जिनका सामान प्रारब्ध के हाथों हो रहा है। शायद तुम अपनी चतुराई से उन विपत्तियों का निवारण कर सको।

विद्या के चित्त में भांति-भांति की शंकाएं आंदोलित होने लगीं। वह एक पक्षी की भांति डालियों-डालियों में उड़ने लगी। मायाशंकर का ध्यान आया, कहीं वह बीमार तो नहीं हो गया? ज्ञानशंकर तो किसी बला में नहीं फंस गए ! उसने सशंक और सजल लोचनों से रायसाहब की तरफ देखा।

रायसाहब बोले—मैं आज तक ज्ञानशंकर को एक धर्मपरायण, सच्चरित्र और सत्य-निष्ठ युवक समझता था। मैं उनकी योग्यता पर गर्व करता था और अपने मित्रों से उनकी प्रशंसा करते कभी न थकता था। पर अबकी मुझे ज्ञात हुआ कि देवता के स्वरूप में भी पिशाच का वास हो सकता है।

विद्या की तेवरियों पर बल पड़ गए। उसने कठोर दृष्टि से रायसाहब को देखा, पर मुंह से कुछ न बोली। ऐसा जान पड़ता था कि वह इन बातों को नहीं सुनना चाहती।

रायसाहब ने उठकर बिजली का बटन दबाया और प्रकाश में विद्या की अनिच्छा स्पष्ट दिखाई दी, पर उन्होंने इसकी कुछ परवाह न करके कहा—यह मेरा बहत्तरवां साल है। हजारों आदमियों से मेरा व्यवहार रहा, किंतु मेरे चरित्रज्ञान ने मुझे कभी धोखा नहीं दिया। इतना बड़ा धोखा खाने का मुझे जीवन में यह पहला ही अवसर है। मैंने ऐसा स्वार्थी आदमी कभी नहीं देखा।

विद्या अधीर हो गई, पर मुंह से कुछ न बोली। उसकी समझ में ही न आता था कि रायसाहब यह क्या भूमिका बांध रहे हैं, क्यों ऐसे अपशब्दों का प्रयोग कर रहे हैं?

रायसाहब—मेरा इस मनुष्य के चरित्र मर अटल विश्वास था। मेरी ही प्रेरणा से गायत्री ने इसे अपनी रियासत का मैनेजर बनाया। मैं जरा भी सचेत होता तो गायत्री पर इसकी छाया

भी न पड़ने देता। ज्ञान और व्यवहार में इतना घोर विरोध हो सकता है, इसका मुझे अनुमान भी न था। जिसकी कलम में इतनी प्रतिभा हो, जिसके मुख में स्वच्छ, निर्मल भावों की धार बहती हो, उसका अंतःकरण ऐसा कलुषित, इतना मलिन होगा यह मैं बिल्कुल न जानता था।

विद्या से न रहा गया। यद्यपि, वह ज्ञानशंकर की स्वार्थ-भक्ति से भली-भांति परिचित थी, जिसका प्रमाण उसे कई बार मिल चुका था, पर उसका आत्म-सम्मान उनका अपमान सह न सकता था। उनकी निंदा का एक शब्द भी वह अपने कानों से न सुनना चाहती थी। उसकी धर्मनीति में यह घोर पातक था। तीव्र स्वर से बोली—आप मेरे सामने उनकी बुराई न कीजिए। यह कहते-कहते उसका गला रुंध गया और वह भाव जो व्यक्त न हो सके थे, आंखों से बह निकले।

रायसाहब ने संकोचपूर्ण शब्दों में कहा—बुराई नहीं करता, यथार्थ कहता हूं। मुझे अब मालूम हुआ कि उसने महात्माओं का स्वरूप क्यों बनाया है, और धार्मिक कार्यों में क्यों इतना प्रवृत्त हो गया है। मैंने उसके मुंह से सब कुछ निकलवा लिया। यह रंगीन जाल उसने भोली-भाली गायत्री के लिए बिछाया है और वह कदाचित् इसमें फंस भी चुकी है।

विद्या की भौंहें तन गईं, मुखराशि रक्तवर्ण हो गई। गौरवयुक्त भाव से बोली—पिताजी, मैंने सदैव आपका अदब किया है और आपकी अवज्ञा करते हुए मुझे जितना दुःख हो रहा है वह वर्णन नहीं कर सकती; पर यह असंभव है कि उनके विषय में यह लांछन अपने कानों से सुनूं। मुझे उनकी सेवा में आज सत्रह वर्ष बीत गए, पर मैंने उन्हें कभी कुवासनाओं की ओर झुकते नहीं देखा। जो पुरुष अपने यौवन-काल में भी संयम से रहा हो उसके प्रति ऐसे अनुचित संदेह करके आप उसके साथ नहीं, गायत्री बहन के साथ भी घोर अत्याचार कर रहे हैं। इससे आपकी आत्मा को पाप लगता है।

रायसाहब—तुम मेरी आत्मा की चिंता मत करो। उस दुष्ट को समझाओ नहीं तो उसकी कुशल नहीं है। मैं गायत्री को उसकी काम-चेष्टा का शिकार न बनने दूंगा। मैं तुमको वैधव्य रूप में देख सकता हूं, पर अपने कुल-गौरव को यों मिट्टी में मिलते नहीं देख सकता। मैंने चलते-चलते उससे ताकीद कर दी थी, गायत्री से कोई सरोकार न रखे, लेकिन गायत्री के पत्र नित्य चले आ रहे हैं, जिनसे विदित होता है कि वह उसके फंदों में कैसी जकड़ी हुई है। यदि तुम उसे बचा सकती हो तो बचाओ, अन्यथा यही हाथ जिन्होंने एक दिन उसके पैरों पर फूल और हार चढ़ाए थे, उसे कुल-गौरव की वेदी पर बलिदान कर देंगे।

विद्या रोती हुई बोली—आप मुझे अपने घर बुलाकर इतना अपमान कर रहे हैं, यह आपको शोभा नहीं देता। आपका हृदय इतना कठोर हो गया है। जब आपके मन में ऐसे-ऐसे भाव उठ रहे हैं तब मैं यहां एक क्षण भी नहीं रहना चाहती। मैं जिस पुरुष की स्त्री हूं उस पर संदेह करके अपना परलोक नहीं बिगाड़ सकती। वह आपके कथनानुसार कुचरित्र सही, दुरात्मा सही, कुमार्गी सही, परंतु मेरे लिए पूज्य और देवतुल्य हैं। यदि मैं जानती कि आप मेरा इतना अपमान करेंगे तो भूलकर भी न आती। अगर आपका विचार है कि मैं रियासत के लोभ से यहां आती हूं और आपको फंदे में फंसाना चाहती हूं तो आप बड़ी भूल करते हैं। मुझे रियासत की जरा भी परवाह नहीं। मैं ईश्वर को साक्षी देकर कहती हूं कि मैं अपनी स्थिति से संतुष्ट हूं और मुझे पूरा विश्वास है कि मायाशंकर भी संतोषी बालक है। उसे आपके चित्त की यह वृत्ति मालूम हो गई तो वह इस रियासत की ओर आंख उठाकर भी न देखेगा। आपको इस विषय में आदि से अंत तक धोखा हुआ है।

इस तिरस्कार से रायसाहब कुछ धीमे पड़ गए। लज्जित होकर बोले–हां, संभव है, इसलिए कि अब मैं बूढ़ा हुआ। कुछ-का-कुछ देखता हूं, कुछ-का-कुछ सुनता हूं। अधिक लोभी, अधिक शक्की हो गया हूं। मैं नहीं चाहता था कि तुम्हारी आंखों में तुम्हारे पति को उससे ज्यादा गिराऊं जितना कि उसकी प्राण-रक्षा के लिए आवश्यक है, पर तुम्हारी मिथ्या पति-भक्ति मुझे मजबूर कर रही है मैं उसके कुकृत्यों को सविस्तार बयान करूं। तुमने मुझे पहले भी देखा था, क्या मेरी यह दशा थी? मैं ऐसा ही दुर्बल, रुग्ण और जर्जर था? क्या इसी तरह मुझे एक पग चलना भी कठिन था? मैं इसी तरह रुधिर थूकता था? यह सब उसी का किया हुआ है। उसने मुझे भोजन के साथ इतना विष खिला दिया कि यदि उसे बीस आदमी खाते तो एक की भी जान न बचती। यह केवल भ्रम नहीं है। मैं उसका सदेह प्रमाण बना बैठा हूं। उसने स्वयं इस पापाचार को स्वीकार किया। पहला ग्रास खाते ही मुझ पर सारा रहस्य खुल गया। पर मैंने केवल यह दिखलाने के लिए कि मुझे मारना इतना सुलभ नहीं है, जितना उसने समझा था, पूरी थाली साफ कर दी। मुझे विश्वास था कि मैं योग-क्रियाओं द्वारा विष को शरीर से निकाल डालूंगा; पर क्षण-मात्र में विष रोम-रोम में घुस गया, मैं उसे निकाल न सका। मैंने अपनी स्वास्थ्य-रक्षा और दीर्घ जीवन के लिए वह सब कुछ किया जो मनुष्य कर सकता है और जिसका फल यह था कि मैं बहत्तर साल का बुड्ढा होकर एक पच्चीस वर्ष के युवक से अधिक बलवान और साहसी था। मैं अपने जीवन को चरम सीमा तक ले जाना चाहता था। इसके लिए मैंने कितना संयम किया, कितनी योग-क्रियाएं कीं, साधु-संतों की कितनी सेवा की, जड़ी-बूटियों की खोज में कहां-कहां मारा-मारा फिरा, तिब्बत और काश्मीर की खाक छानता फिरा, पर इस नराधम ने मेरी सारी आयोजनाओं पर पानी फेर दिया। मैंने अपनी सारी संपत्ति कार्यसिद्धि पर अर्पण कर दी थी, योग और तंत्र का अभ्यास इसी हेतु से किया था कि अक्षय यौवन तेज का आनंद उठाता रहूं। विलास-भोग ही मेरे जीवन का एकमात्र उद्देश्य था। चिंता को मैं सदैव काला नाग समझता रहा। मेरे नौकर-चाकर प्रजा पर नाना प्रकार के अत्याचार करते, पर मैंने उनकी फरियाद को कभी अपने सुख-भोग में बाधक नहीं होने दिया। अगर अपने इलाके में जाता भी था तो प्रजा का कष्ट निवारण करने के लिए नहीं, बल्कि केवल सैर और शिकार के लिए, किंतु इस निर्दयी पिशाच की बदौलत सारे गुनाह बेलज्जत हो गए। अब मैं केवल एक अस्थिपंजर हूं–प्राण-शून्य, शक्तिहीन।

यह कहते-कहते रायसाहब विषम पीड़ा से कराह उठे। जोर से खांसी आई और खून के लोथड़े मुंह से निकल आए। कई मिनट तक वह मूर्छावस्था में पड़े रहे। सहसा लपककर उठे और बोले–तुम प्रातःकाल बनारस चली जाओ और हो सके तो अपने पति को अग्निकुंड में गिरने से बचाओ। तुम्हारी पति-भक्ति ने मुझे शांत कर दिया। मैं उसे प्राण-दान देता हूं। लेकिन सरल-हृदया गायत्री की रक्षा का भार तुम्हारे ही ऊपर है। अगर उसके सतीत्व पर जरा भी धब्बा लगा तो तुम्हारे कुल का सर्वनाश हो जाएगा। यही मेरी अंतिम चेतावनी है। इस पाप का निवारण गायत्री की सतीत्व-रक्षा से ही होगा। तुम्हारे कल्याण की और कोई युक्ति नहीं है।

यह कहकर रायसाहब धीरे से उठे और चले गए। तब विद्या ग्लानि, लज्जा और नैराश्य से मर्माहत होकर पलंग पर लेट गई और बिलख-बिलख कर रोने लगी। रायसाहब के पहले आक्षेप का उसने प्रतिवाद किया था, पर इस दूसरे अपराध के विषय में वह अविश्वास का सहारा न ले सकी। अपने पति की स्वार्थ-नीति से वह खूब परिचित थी, पर उनकी वक्रता इतनी घोर घातक हो सकती है, इसका उसे अनुमान भी न था। अब तक उनकी कुवृत्तियों का पर्दा ढंका

हुआ था। जो कुछ दु:ख और सन्ताप होता था वह उसी तक रहता था, पर यहां आकर पर्दा खुल गया। वह अपने पिता की निगाह में गिर गई, उसके मुंह में कालिख लग गई। रायसाहब का यह समझना स्वाभाविक था कि इस दुष्कर्म में विद्या का भी कुछ-न-कुछ भाग अवश्य होगा। कदाचित् यही समझ कर वह उससे यह वृत्तांत कहने आए थे। वह सारा दोष पति के सिर मढ़कर अपने को क्योंकर मुक्त कर सकती? इस उधेड़बुन में विद्या का ध्यान जब पाप-परिणाम की ओर गया तो वह कांप उठी। भगवान्! मैं दुखिया हूं, अभागिनी हूं, मुझ पर दया करो, तुम्हारी शरण हूं। भांति-भांति की शंकाएं उसके चित्त को विचलित करने लगीं। मायाशंकर की सूरत आंखों में फिरने लगी। ऐसा जी चाहता था कि पैरों में पर लग जाएं और उड़कर उसके पास जा पहुंचे। रह-रहकर हृदय में एक हूक-सी उठती थी और अनिष्ट कल्पना से चित्त विकल हो जाता था।

एक क्षण में इन ग्लानि और शंकाओं ने उग्र रूप धारण किया। आग की बिखरी हुई चिनगारियां एक प्रचंड ज्वाला के रूप में ज्ञानशंकर की ओर लपकीं। तुम इतने नीच, इतने क्रूर, इतने दुर्बल हो! तुमने कहीं का न रक्खा! तुम्हारे कारण मेरी यह दुर्दशा हो रही है और अभी न जाने क्या-क्या होगी? तुम धूर्त हो! न जाने पूर्वजन्म में ऐसा क्या पाप किया था कि तुम्हारे पल्ले पड़ी! उसने ज्ञानशंकर को उसी दम एक पत्र लिखने का निश्चय किया और सोचने लगी, उसकी शैली क्या हो? इसी सोच में पड़े-पड़े उसे नींद आ गई। वह बहुत देर तक पड़ी रही। जब सर्दी लगी तो चौंकी, कमरे में सन्नाटा था, सारे घर में निस्तब्धता छाई थी। महरियां भी सो गई थीं। उसके ब्यालू का थाल सामने मेज पर रखा हुआ था और एक पालतू बिल्ली उसके निकट उन चूहों की ताक में बैठी हुई थी जो भोज्य पदार्थों का रसास्वादन करने के लिए आल्मारी के कोने से निकलकर आते थे और अज्ञात भय के कारण आधे रास्ते से लौट जाते थे। विद्या कई मिनट तक इस दृश्य में मग्न रही। निद्रा ने उसके चित्त को शांत कर दिया था। उसे चूहे पर दया आई जो एक क्षण में बिल्ली के मुंह का ग्रास बन जाएगा। इसके साथ ही उसकी कल्पना, चूहे से ज्ञानशंकर की अवस्था की तुलना करने लगी। क्या उनकी दशा भी इसी चूहे की-सी नहीं है? उन पर क्रोध क्यों करूं? वह दया के योग्य हैं। वह इसी चूहे की भांति स्वाद के वश होकर काल के मुंह में दौड़े जा रहे हैं, और माया-लोभ के हाथों में काठ की पुतली बने हुए नाच रहे हैं। मैं जाकर उन्हें समझाऊंगी, उनसे विनय करूंगी कि मुझे ऐसी संपत्ति की लालसा नहीं है, जिस पर आत्मा और विवेक का बलिदान किया गया हो। ऐसी जायदाद को मेरी तिलांजलि है। मेरा लड़का गरीब रहेगा, अपने पसीने की कमाई खायेगा, लेकिन जब तक मेरा वश चलेगा मैं उसे इस जायदाद की हवा भी न लगने दूंगी!

उनचास

गायत्री बनारस पहुंचकर ऐसी प्रसन्न हुई जैसे कोई बालू पर तड़पती हुई मछली पानी में जा पहुंचे। ज्ञानशंकर पर रायसाहब की धमकियों का ऐसा भय छाया हुआ था कि गायत्री के आने पर वह और भी सशंक हो गए। लेकिन गायत्री की सांत्वनाओं ने शनैः-शनैः उन्हें सावधान कर दिया! उसने स्पष्ट कह दिया कि मेरा प्रेम पिता की आज्ञा के अधीन नहीं हो सकता। वह ज्ञानशंकर को

अन्याय-पीड़ित समझती थी और अपनी स्नेहमयी बातों से उनका क्लेश दूर करना चाहती थी। ज्ञानशंकर जब गायत्री की ओर से निश्चिंत हो गए तो उसे बनारस के घाटों और मंदिरों की सैर कराने लगे ! प्रातःकाल उसे लेकर गंगा-स्नान करने जाते, संध्या समय बजरे पर या नौका पर बैठाकर घाटों की बहार दिखाते। उनके द्वार पर पंडों की भीड़ लगी रहती। गायत्री की दानशीलता की सारे नगर में धूम मच गई। एक दिन वह हिन्दू विश्वविद्यालय देखने गई और बीस हजार दे आई। दूसरे दिन 'इत्तहादी यतीमखाने' का मुआइना किया और दो हजार रुपये बिल्डिंग फंड को प्रदान किए। सनातन-धर्म के नेतागण गुरुकुल आश्रम के लिए चंदा मांगने आए। चार हजार उनके नजर किए। एक दिन गोपाल मंदिर में पूजा करने गई और महंतजी को दो हजार रुपये भेंट कर आई। आधी रात को कीर्तन का आनंद उठाती रही। उसका मन कीर्तन में सम्मिलित होने के लिए लालायित हो रहा था, पर ज्ञानशंकर को यह अनुचित जान पड़ता था। ऐसा कीर्तन उसने कभी न सुना था।

इसी भांति एक सप्ताह बीत गया। संध्या हो गई थी। गायत्री बैठी हुई बनारसी साड़ियों का निरीक्षण कर रही थी। वह उनमें से एक साड़ी लेना चाहती थी, पर रंग का निश्चय न कर सकती थी। एक-एक साड़ी को सिर पर ओढ़कर आईने में देखती और उसे तह करके रख देती। कौन रंग सबसे अधिक खिलता है, इसका फैसला न होता था। इतने में श्रद्धा आकर खड़ी हो गई। गायत्री ने कहा—बहिन, भली आई। बताओ, इनमें से कौन साड़ी लूं? मुझे तो सब एक-सी लगती हैं।

श्रद्धा ने मुस्कराकर कहा—मैं गंवारिन इन बातों को क्या समझूं?

गायत्री—चलो, बातें न बनाओ। मैं इसका फैसला तुम्हारे ही ऊपर छोड़ती हूं। एक अपने लिए चुनो और एक मेरे लिए।

श्रद्धा—आप ले लीजिए, मुझे जरूरत नहीं है। यह फिरोजी साड़ी आप पर खूब खिलेगी।

गायत्री—मेरी खातिर से एक साड़ी ले लो।

श्रद्धा—लेकर क्या करूंगी? धरे-धरे कीड़े खा जाएंगे।

श्रद्धा ने यह बात कुछ ऐसे करुण भाव से कही कि गायत्री के हृदय पर चोट-सी लग गई। बोली—कब तक यह जोग साधोगी। बाबू प्रेमशंकर को मना क्यों नहीं लेती?

श्रद्धा ने सजल नेत्रों से मुस्कराकर कहा—क्या करूं, मुझे मनाना नहीं आता।

गायत्री—मैं मना दूं?

श्रद्धा—इससे बड़ा और कौन उपकार होगा, पर मुझे आपके सफल होने की आशा नहीं है। उन्हें अपनी टेक है और मैं धर्म-शास्त्र से टल नहीं सकती। फिर भला मेल क्योंकर होगा?

गायत्री—प्रेम से ।

श्रद्धा—मुझे उनसे जितना प्रेम है वह प्रकट नहीं कर सकती, अगर उनका जरा भी इशारा पाऊं तो आग में कूद पड़ूं। और मुझे विश्वास है कि उन्हें भी मुझसे इतना ही प्रेम है, लेकिन प्रेम केवल हृदयों को मिलता है, देह पर उसका बस नहीं है।

इतने में ज्ञानशंकर आ गए और गायत्री से बोले—मैं जरा गोपाल मन्दिर की ओर चला गया था। वहां कुछ भक्तों का विचार है कि आपके शुभागमन के उत्सव में कृष्णलीला करें। मैंने उनसे कह दिया है कि इसी बंगले के सामने वाले सहन में नाट्यशाला बनायी जाय। गायत्री का मुख-कमल खिल उठा। बोली—यह जगह काफी होगी?

ज्ञान—हां, बहुत जगह है। उन लोगों की यह भी इच्छा है कि आप भी कोई पार्ट लें।

गायत्री—(मुस्कराकर) आप लेंगे तो मैं भी लूंगी।

ज्ञानशंकर दूसरे ही दिन से रंगभूमि के बनाने में दत्तचित्त हो गए। एक विशाल मंडप बनाया गया। कई दिनों तक उसकी सजावट होती रही। फर्श, कुर्सियां, शीशे के सामान, फूलों के गमले, अच्छी-अच्छी तस्वीरें सभी यथास्थान शोभा देने लगीं। बाहर विज्ञापन बांटे गए। रईसों के पास छपे हुए निमंत्रण-पत्र भेजे गए। चार दिन तक ज्ञानशंकर को बैठने का अवकाश न मिला। एक पैर दीवानखाने में रहता था, जहां अभिनेतागण अपने-अपने पार्ट का अभ्यास किया करते थे, दूसरा पैर शामियाने में रहता था, जहां सैकड़ों मजूर, बढ़ई, चित्रकार अपने-अपने काम कर रहे थे। स्टेज की छटा अनुपम थी। जिधर देखिए हरियाली की बहार थी। पर्दा उठते ही बनारस में ही वृन्दावन का दृश्य आंखों के सामने आ जाता था। यमुना तट के कुंज, उनकी छाया में विश्राम करती हुई गाएं, हिरनों के झुंड, कदम की डालियों पर बैठे हुए मोर और पपीहे—संपूर्ण दृश्य काव्य रस में डूबा हुआ था।

रात के आठ बजे थे। बिजली की बत्तियों से सारा मंडप ज्योतिर्मय हो रहा था। सदर फाटक पर बिजली का एक सूर्य बना हुआ था, जिसके प्रकाश में जमीन पर रेंगने वाली चीटियां भी दिखाई देती थीं। सात ही बजे से दर्शकों का समरोह होने लगा। लाला प्रभाशंकर अपना काला चोगा पहने, एक केसरिया पाग बांधे, मेहमानों का स्वागत कर रहे थे। महिलाओं के लिए दूसरी ओर पर्दे डाल दिए गए थे। यद्यपि श्रद्धा का इन लीलाओं से विशेष प्रेम न था तथापि गायत्री के अनुरोध से उसने महिलाओं के आदर-सत्कार का भार अपने सिर ले लिया था। आठ बजते-बजते पंडाल दर्शकों से भर गया, जैसे मेलों में रेलगाड़ियां ठस जाती हैं। मायाशंकर ने सबके आग्रह करने पर भी कोई पार्ट न लिया था। मंडप के द्वार पर खड़ा लोगों के जूतों की रखवाली कर रहा था। इस वक्त तक शामियाने में बाजार-सा लगा हुआ था, कोई हंसता था, कोई अपने सामने वालों को धक्के देता था, कुछ लोग राजनीतिक प्रश्नों पर वाद-विवाद कर रहे थे, कहीं जगह के लिए लोगों में हाथापाई हो रही थी। बाहर सर्दी से हाथ-पांव अकड़े जाते थे, पर मंडप में खासी गर्मी थी।

ठीक नौ बजे पर्दा उठा। राधिका हाथ में वीणा लिये, कदंब के नीचे खड़ी सूरदास का एक पद गा रही थी। यद्यपि राधिका का पार्ट उस पर फबता न था, उसकी गौरवशीलता, उसकी प्रौढ़ता, उसकी प्रतिभा एक चंचल ग्वाल-कन्या के स्वाभावानुकूल न थी, किंतु जगमगाहट ने सबकी समालोचक शक्तियों को वशीभूत कर लिया था। सारी सभा विस्मय और अनुराग में डूबी हुई थी, यह तो कोई स्वर्ग की अप्सरा है। उसकी मृदुल वाणी, उसका कोमल गान, उसके अलंकार और भूषण, उसके हाव-भाव, उसके स्वर-लालित्य, किस-किसकी प्रशंसा की जाय। वह एक थी, अद्वितीय थी, कोई उसका सानी, उसका जवाब न था।

राधा के पीछे तीन सखियां और आईं—ललिता, चन्द्रावली और श्यामा। सब अपनी-अपनी विरह-कथा सुनाने लगीं। कृष्ण की निष्ठुरता और कपट की चर्चा होने लगी। उस पर घरवालों की रोक-थाम, डांट-डपट भी मारे डालती थी। एक बोली—मुझे तो पनघट पर जाने की रोक हो गई है, दूसरी बोली—मैं तो द्वार पर खड़ी होकर झांकने भी नहीं पाती, तीसरी बोली—जब दही बेचने जाती हूं तब बुढ़िया साथ हो लेती है। राधिका ने सजल नेत्र होकर कहा—मैं तो बदनाम हो गई, अब किसी से उनकी बात नहीं हो सकती। ललिता बोली—वह आप ही निर्दयी हैं, नहीं

तो क्या मिलने का कोई उपाय ही न था?

चन्द्रावली–उन्हें हमको जलाने और तड़पाने में आनंद मिलता है।

श्यामा–यह बात नहीं, वह हमारे घरवालों से डरते हैं।

राधा–चल, तू उनका यों ही पक्ष लिया करती है। बड़े चतुर तो बनते हैं? क्या इन बुद्धुओं को भी धता नहीं बता सकते? बात यह है कि उन्हें हमारी सुध ही नहीं है।

ललिता–चलो, आज हम सब उनको परखें।

इस पर सब सहमत हो गईं। इधर-उधर चौकन्नी आंखों से ताक-ताक कर हाथों से बता-बताकर, भौंहें नचा-नचाकर आपस में सलाह होने लगी। परीक्षा में क्या रूप होगा, इसका निश्चय हो गया। चारों प्रसन्न होकर एक गीत गाती हुई स्टेज से चली गईं। पर्दा गिर गया।

फिर पर्दा उठा। वृक्षों के समूह में एक छोटा-सा गांव दिखाई दिया। फूस के कई झोंपड़े थे, साफ-सुथरे फूल-पत्तियों से सजे हुए। उनमें कहीं-कहीं गाएं बंधी हुई थीं, कहीं बछड़े किलोलें करते थे, कहीं दूध बिलोया जाता था। बड़ा सुरम्य दृश्य था। एक मकान में चंद्रावली पलंग पर पड़ी कराह रही थी। उसके सिरहाने कई आदमी बैठे पंखा झल रहे थे, कई स्त्रियां पैर की ओर खड़ी थीं। 'बैद ! बैद !!' की पुकार हो रही थी। दूसरी झोंपड़ी में ललिता पड़ी थी। उसके पास भी कई स्त्रियां बैठी टोना-टोटका कर रही थीं, कोई कहती थी, आसव है, कोई चुड़ैल का फेर बतलाती थीं। ओझाजी को बुलाने की बातचीत हो रही थी। एक युवक खड़ा कह रहा था–यह सब तुम्हारा ढकोसला है, इसे कोई हृदयरोग है, किसी चतुर वैद्य को बुलाना चाहिए। तीसरे झोंपड़े में श्यामा की खटोली थी, वहां भी यही बैद-बैद की पुकार थी। चौथा मकान बहुत बड़ा था। द्वार पर बड़ी-बड़ी गाएं थीं। एक ओर अनाज के ढेर लगे हुए थे, दूसरी ओर मटकों में दूध भरा रखा था। चारों तरफ सफाई थी। इसमें राधिका रुग्णावस्था में बेचैन पड़ी थी। उसके समीप एक पंडितजी आसन पर बैठे हुए पाठ कर रहे थे। द्वार पर भिक्षुओं को अन्नदान दिया जा रहा था। घर के लोग राधिका को चिंतित नेत्रों से देखते थे और 'बैद ! बैद !!' पुकारते थे।

सहसा दूर से आवाज आई–बैद ! बैद !! सब रोगों का बैद, काम का बैद, क्रोध का बैद, मोह का बैद, लोभ का बैद, धर्म का बैद, कर्म का बैद, मोक्ष का बैद ! मन का मैल निकाले, अज्ञान का मैल निकाले, ज्ञान की सींगी लगाए, हृदय की पीर मिटाए। बैद ! बैद !! लोगों ने बाहर निकलकर वैद्यजी को बुलाया। उनके कांधे पर झोली थी, सिर पर एक लाल पगड़ी, देह पर एक हरी बनात की गोटेदार चपकन थी। आंखों में सुरमा, अधरों पर पान की लाली, चेहरे पर मुस्कराहट थी। चाल-ढाल से बांकापन बरसता था। स्टेज पर आते ही उन्होंने झोली उतारकर रख दी और बांसुरी बजा-बजाकर गाने लगे–

मैं तो हरत विरह की पीर।
प्रेम-दाह को शीतल करता जैसे अग्नि को नीर।
मैं तो हरत.....
निर्मल ज्ञान की बूटी देकर देत हृदय को धीर–
मैं तो हरत.....

राधा के घरवाले उन्हें हाथों-हाथ अंदर ले गए। राधिका ने उन्हें देखते ही मुस्कराकर मुंह छिपा लिया। वैद्यजी ने उसकी नाड़ी देखने के बहाने से उसकी गोरी-गोरी कलाई पकड़कर धीरे से दबा दी। राधा ने झिझककर हाथ छुड़ा लिया, तब प्रेमनीति की भाषा में बातें होने लगीं।

राधा—नदी में अथाह जल है।

वैद्य—जिसके पास नौका है उसे जल का क्या भय?

राधा—आंधी है, भयानक लहरें हैं और बड़े-बड़े भयंकर जल-जंतु हैं।

वैद्य—मल्लाह चतुर है।

राधा—सूर्य भगवान् निकल आए, पर तारे क्यों जगमगा रहे हैं?

वैद्य—प्रकाश फैलेगा तो वह स्वयं लुप्त हो जाएंगे।

वैद्यजी ने घरवालों को आंखों के इशारे से हटा दिया। जब एकांत हो गया तब राधा ने मुस्कराकर कहा—प्रेम का धागा कितना दृढ़ है?

ज्ञानशंकर ने इसका कुछ उत्तर न दिया।

गायत्री फिर बोली—आग लकड़ी को जलाती है, पर लकड़ी जल जाती है तो आग भी बुझ जाती है।

ज्ञानशंकर ने इसका भी कुछ जवाब न दिया।

गायत्री ने उनके मुख की ओर विस्मय से देखा, यह मौन क्यों? अपना पार्ट भूल तो नहीं गए? तब तो बड़ी हंसी होगी।

ज्ञानशंकर के होंठ बंद ही थे, सांस बड़े वेग से चल रही थी। पांव कांप रहे थे, नेत्रों में विषम प्रेरणा झलक रही थी और मुख से एक भयंकर संकल्प प्रकट होता था, मानो कोई हिंसक पशु अपने शिकार पर टूटने के लिए अपनी शक्तियों को एकाग्र कर रहा हो। वास्तव में ज्ञानशंकर ने छलांग मारने का निश्चय कर लिया था! इसी एक छलांग में वह सौभाग्य के शिखर पर पहुंचना चाहते थे, इसके लिए महीनों से तैयार हो रहे थे, इसीलिए उन्होंने यह ड्रामा खेला था, इसीलिए उन्होंने यह स्वांग भरा था। छलांग मारने का यही अवसर था। इस वक्त चूकना पाप था। उन्होंने तोते को दाना खिलाकर परचा लिया था, निःशंक होकर उनके आंगन में दाना चुगता फिरता था। उन्हें विश्वास था कि दाने की चाट उसे पिंजरे में खींच ले जाएगी। उन्होंने पिंजरे का द्वार खोल दिया था। तोते ने पिंजरे को खुले देखते ही चौंककर पर खोले और उड़कर मुंडेर पर जा बैठा। दाने की चाट उसकी स्वेच्छा-वृत्ति का सर्वनाश न कर सकी थी। गायत्री की भी यही दशा थी। ज्ञानशंकर की यह अव्यक्त प्रेरणा देखकर झिझकी। यह उसका इच्छित कर्म न था। वह प्रेम का रस-पान कर चुकी थी, उसकी शीतल दाह और सुखद पीड़ा का स्वाद चख चुकी थी, वशीभूत हो चुकी थी, पर सतीत्व-रक्षा की आंतरिक प्रेरणा अभी शिथिल न हुई थी। वह झिझकी और उसी भांति उठ खड़ी हुई जैसे किसी आकस्मिक आघात को रोकने के लिए हमारे हाथ स्वयं अनिच्छित रूप से उठ जाते हैं। वह घबराकर उठी और वेग से स्टेज के पीछे की ओर निकल गई। वहां पर चारपाई पड़ी हुई थी, वह उस पर जाकर गिर पड़ी। वह संज्ञा-शून्य-सी हो रही थी, जैसे रात के सन्नाटे में कोई गीदड़ बादल की आवाज सुने और चिल्लाकर गिर पड़े। उसे कुछ ज्ञान था तो केवल भय का!

लेकिन उसमें तोते की-सी स्वाभाविक शंका थी, तो उसी तोते का-सा अल्प आत्म-सम्मान भी था। जैसे तोता एक ही क्षण में फिर दाने पर गिरता है और अंत में पिंजर-बद्ध हो जाता है उसी भांति गायत्री भी एक ही क्षण में अपनी झिझक पर लज्जित हुई। उसकी मानसिक पवित्रता कब की विनष्ट हो चुकी थी। अब वह अनिच्छित प्रतिकार की शक्ति भी विलुप्त हो गई। उसके मनोभाव का क्षेत्र अब बहुत विस्तृत हो गया था। पति-प्रेम उसके एक कोने में पैर

फैलाकर बैठ सकता था, अब हृद्देश पर उसका आधिपत्य न था। एक क्षण में वह फिर स्टेज पर आई, शरमा रही थी कि ज्ञानशंकर मन में क्या कहते होंगे? हा ! मैं भक्ति के वेग में भी अपने को न भूल सकी। यहां भी अहंकार को न मिटा सकी। दर्शक-वृंद मन में न जाने क्या विचार कर रहे होंगे। वह स्टेज पर पहुंची तो ज्ञानशंकर एक पद गाकर लोगों का मनोरंजन कर रहे थे। उसके स्टेज पर आते ही पर्दा गिर गया।

आध घंटे के बाद तीसरी बार पर्दा उठा। फिर वही कदम का वृक्ष था, वही सघन कुंज। चारों सखियां बैठी हुई कृष्ण का वैद्य रूप धारण की चर्चा कर रही थीं, वह कितने प्रेमी, कितने भक्तवत्सल हैं ! वह स्वयं भक्तों के भक्त हैं !

इस वार्तालाप के उपरांत एक पद्य-बद्ध संभाषण होने लगा जिसमें ज्ञान और भक्ति की तुलना की गई और अंत में भक्ति-पक्ष को ही सिद्ध किया गया। चारों सखियों ने आरती गाई और अभिनय समाप्त हुआ। पर्दा गिर गया। गायत्री के भाव-चित्रण, स्वर-लालित्य और अभिनय-कौशल की सभी प्रशंसा कर रहे थे। कितने ही सरल हृदय भक्तजनों को तो विश्वास हो गया कि गायत्री को राधिका का इष्ट है। सभ्य समाज इतना प्रगल्भ तो न था, फिर भी गायत्री की प्रतिभा, उसके तेजमय सौंदर्य, उसके विशाल गांभीर्य, उसकी अलौकिक मृदुलता का जादू सभी पर छाया हुआ था। ज्ञानशंकर के अभिनय-कौशल की भी सराहना हो रही थी। यद्यपि उनका गाना किसी को पसंद न आया, उनकी आवाज में लोच का नाम भी न था, फिर भी उनकी वैद्य-लीला निर्दोष बताई जाती थी।

गायत्री अपने कमरे में आकर कोच पर बैठी तो एक बज गया। वह आनंद से फूली न समाती थी, चारों तरफ उसकी वाह-वाह हो रही थी। शहर के कई रसिक सज्जनों ने चलते समय आकर उसके मानव चरित्र-ज्ञान की प्रशंसा की थी, यहां तक कि श्रद्धा भी उसके अभिनय-नैपुण्य पर विस्मित हो रही थी। उसका गौरवशील हृदय इस विचार से उन्मत्त हो रहा था कि आज सारे नगर में मेरी ही चर्चा, मेरी ही धूम है। और यह सब किसके सत्संग का, किसकी सत्प्रेरणा का फल था? गायत्री के रोम-रोम से ज्ञानशंकर के प्रति श्रद्धा-ध्वनि निकलने लगी। उसने ज्ञानशंकर पर अनुचित संदेह करने के लिए अपने को तिरस्कृत किया। मुझे उनसे क्षमा मांगनी चाहिए, उनके पैरों पर गिरकर उनके हृदय से इस दु:ख को मिटाना चाहिए। मैं उनकी पदरज हूं। उन्होंने मुझे धरती से उठाकर आकाश पर पहुंचाया है। मैंने उन पर संदेह किया। मुझसे बड़ा कृतघ्न और कौन होगा? वह इन्हीं विचारों में मग्न थी कि ज्ञानशंकर आकर खड़े हो गए और बोले—आज आपने मजलिस पर जादू कर दिया।

गायत्री—यह जादू आपका ही सिखाया हुआ है।

ज्ञानशंकर—सुना करता था मनुष्य का जैसा नाम होता है वैसे ही गुण भी उसमें आ जाते हैं, पर विश्वास न आता था। अब विदित हो रहा है कि यह कथन सर्वथा निस्सार नहीं है। मुझे दो बार से अनुभव हो रहा है कि जब अपना पार्ट खेलने लगता हूं तब किसी दूसरे ही जगत् में पहुंच जाता हूं। चित्त पर एक विचित्र आनंद छा जाता है, ऐसा भ्रम होने लगता है कि मैं वास्तव में कृष्ण हूं।

गायत्री—मैं भी यही कहने वाली थी। मैं तो अपने को बिल्कुल भूल ही जाती हूं।

ज्ञान—संभव है उस आत्म-विस्मृति की दशा में मुझसे कोई अपराध हो गया हो तो उसे क्षमा कीजिएगा।

गायत्री सकुचाती हुई बोली—प्रेमोद्‌गार में अंत:करण निर्मल हो जाता है, वासनाओं का लेश भी नहीं रहता।

ज्ञानशंकर एक मिनट तक खड़े इन शब्दों के आशय पर विचार करते रहे और तब बाहर चले गए।

दूसरे दिन विद्यावती बनारस पहुंची। उसने अपने आने की सूचना न दी थी, केवल एक भरोसे के नौकर के साथ चली आई थी। ज्योंही द्वार पर पहुंची उसे वृहत पंडाल दिखाई दिया। अंदर गई तो श्रद्धा दौड़कर उससे गले मिली। महरियां दौड़ी आईं। वह सब-की-सब विद्या को करुणा-सूचक नेत्रों से देख रही थीं। गायत्री गंगा-स्नान करने गई थी। विद्या के कमरे में गायत्री का राज्य था। उसके संदूक और अन्य सामान चारों ओर भरे हुए थे। विद्या को ऐसा क्रोध आया कि गायत्री का सब सामान उठाकर बाहर फेंक दे, पर कुछ सोचकर रह गई। गायत्री के साथ कई महरियां भी आई थीं। वे वहां की महरियों पर रोब जमाती थीं। विद्या को देखकर सब इधर-उधर हट गईं, कोई कुशल-समाचार पूछने भी न आईं। विद्या इन परिस्थितियों को उसी दृष्टि से देख रही थी जैसे कोई पुलिस का अफसर किसी घटना के प्रमाणों को देखता है! उसके मन में जो शंका आरोपित हुई थी उसकी पग-पग पर पुष्टि होती जाती थी। ज्योंही एकांत हुआ, विद्या ने श्रद्धा से पूछा—यह शामियाना कैसा तना हुआ है?

श्रद्धा—रात को वहां कृष्णलीला हुई थी!

विद्या—बहिन ने भी कोई पार्ट लिया?

श्रद्धा—वह राधिका बनी थीं और बाबूजी ने कृष्ण का पार्ट लिया था।

विद्या—बहिन से खेलते तो न बना होगा?

श्रद्धा—वाह! वह इस कला में निपुण हैं। सारी सभा लट्टू हो गई। आती होंगी, आप ही कहेंगी।

विद्या—क्या नित्य गंगा-स्नान करने जाती हैं?

श्रद्धा—हां, प्रात:काल गंगा-स्नान होता है, संध्या को कीर्तन सुनने जाती हैं। इतने में मायाशंकर ने आकर माता के चरण स्पर्श किए। विद्या ने उसे छाती से लगाया और बोली—बेटा, आराम से तो रहे?

माया—जी हां, खूब आराम से था।

विद्या—बहिन, देखो इतने ही दिनों में इसकी आवाज कितनी बदल गई है। बिल्कुल नहीं पहचानी जाती। मौसीजी के क्या रंग-ढंग हैं? खूब प्यार करती हैं न?

माया—हां, मुझे बहुत चाहती हैं, बहुत अच्छा मिजाज है।

विद्या—वहां भी कृष्णलीला होती थी कि नहीं?

माया—हां, वहां तो रोज ही होती रहती थी। कीर्तन नित्य होता था। मथुरा-वृंदावन से रास वाले बुलाए जाते थे। बाबूजी भी कृष्ण का पार्ट खेलते हैं। उनके केश खूब बढ़ गए हैं। सूरत से महंत मालूम होते हैं। तुमने तो देखा होगा?

विद्या—हां, देखा क्यों नहीं। बहिन अब भी उदास रहती हैं?

माया—मैंने तो उन्हें कभी उदास नहीं देखा। हमारे घर में तो ऐसा प्रसन्नचित्त कोई है ही नहीं।

विद्या यह प्रश्न यों पूछ रही थी जैसे कोई वकील गवाह से जिरह कर रहा हो। प्रत्येक

उत्तर उसके संदेह को सुदृढ़ करता था। दस बजे द्वार पर मोटर की आवाज सुनाई दी। सारे घर में हलचल मच गई। कोई महरी गायत्री का पलंग बिछाने लगी, कोई उसके स्लीपरों को पोंछने लगी, किसी ने फर्श झाड़ना शुरू किया, कोई उसके जलपान की सामग्रियां निकालकर तश्तरी में रखने लगी और एक ने लोटा-गिलास मांजकर रख दिया। इतने में गायत्री ऊपर आ पहुंची। पीछे-पीछे ज्ञानशंकर भी थे। विद्या अपने कमरे से न निकली, लेकिन गायत्री लपककर उसके गले से लिपट गई और बोली–तुम कब आई? पहले से खत भी न लिखा?

विद्या गला छुड़ाकर अलग खड़ी हो गई और रुखाई से बोली–खत लिखकर क्या करती? यहां किसे फुरसत थी कि मुझे लेने जाता? दामोदर महाराज के साथ चली आई।

ज्ञानशंकर ने विद्या के चेहरे की ओर प्रश्नात्मक दृष्टि से देखा। उत्तर मोटे अक्षरों में स्पष्ट लिखा हुआ था। विद्या भावों को छिपाने में कच्ची थी। सारी कथा उसके चेहरे पर अंकित थी। उसने ज्ञानशंकर की ओर आंख उठाकर भी न देखा, कुशल-समाचार पूछने की बात ही क्या? नंगी तलवार बनी हुई थी। उसके तेवर साफ कह रहे थे कि वह भरी बैठी है और अवसर पाते ही उबल पड़ेगी। ज्ञानशंकर का चित्त उद्विग्न हो गया। वे शंकाएं, वह परिणाम-चिंता जो गायत्री के आने से दब गई थी, फिर जाग उठीं और उनके हृदय में कांटों के समान चुभने लगीं। उन्हें निश्चय हो गया कि विद्या सब कुछ जान गई, अब वह मौका पाते ही ईर्ष्यावेग में गायत्री से सब कुछ कह सुनाएगी। मैं उसे किसी भांति नहीं रोक सकता। समझाना, डराना, धमकाना, बिनती और चिरौरी करना सब निष्फल होगा। बस अगर अब प्राण-रक्षा का कोई उपाय है तो यही कि उसे गायत्री से बातचीत करने का अवसर ही न मिले। या तो आज ही शाम की गाड़ी से गायत्री को लेकर गोरखपुर चला जाऊं या दोनों बहिनों में ऐसा मन-मुटाव करा दूं कि एक, दूसरी से खुलकर मिल ही न सकें स्त्रियों को लड़ा देना कौन-सा कठिन काम है ! एक इशारे में उनके तेवर बदलते हैं। ज्ञानशंकर को अभी तक यह ध्यान भी न था कि विद्या मेरी भक्ति और प्रेम के मर्म तक पहुंची हुई है। वह केवल अभी तक रायसाहब वाली दुर्घटनाओं को इस मनोमालिन्य का कारण समझ रहे थे।

विद्या ने गायत्री से अलग हटकर उसके नख-शिख को चुभती हुई दृष्टि से देखा। उसने उसे छः साल पहले देखा था। तब उसका मुख-कमल मुर्झाया हुआ था, वह संध्या काल के सदृश उदास, मलिन, निश्चेष्ट थी। पर इस समय उसके मुख पर खिले हुए कमल की शोभा थी। वह ऊषा की भांति विकसित, तेजोमय, सचेष्ट, स्फूर्ति से भरी हुई दीख पड़ती थी। विद्या इस विद्युत-प्रकाश के सम्मुख दीपक के समान ज्योतिहीन मालूम होती थी।

गायत्री ने पूछा–संगीत सभा का तो खूब आनंद उठाया होगा?

ज्ञानशंकर का हृदय धकधक करने लगा। उन्होंने विद्या की ओर बड़ी दीन दृष्टि से देखा, पर उसकी आंखें जमीन की तरफ थीं, बोली–मैं तो कभी संगीत के जलसे में गई ही नहीं। हां, इतना जानती हूं कि जलसा कुछ फीका रहा। लालाजी बहुत बीमार हो गए और एक दिन भी जलसे में शरीक न हो सके।

गायत्री–मेरे न जाने से नाराज तो अवश्य ही हुए होंगे?

विद्या–तुम्हें उनके नाराज होने की क्या चिंता है? वह नाराज होकर तुम्हारा क्या बिगाड़ सकते हैं?

यद्यपि यह उत्तर काफी तौर पर द्वेषमूलक था, पर गायत्री अपनी कृष्णलीला की चर्चा

करने के लिए इतनी उतावली हो रही थी कि उसने इस पर कुछ ध्यान न दिया। बोली—क्या कहूं तुम कल न आ गईं, नहीं तो यहां कृष्णलीला का आनंद उठातीं। भगवान् की कुछ ऐसी दया हो गई कि सारे शहर में इस लीला की वाह-वाह मच गई। किसी प्रकार की त्रुटि न रही। रंगभूमि तो तुमको अभी दिखाऊंगी, पर उसकी सजावट ऐसी मनोहर थी कि तुमसे क्या कहूं! केवल पर्दों के बनवाने में हजारों रुपये खर्च हो गए। बिजली के प्रकाश में सारा मंडप ऐसा जगमगा रहा था कि उसकी शोभा देखते ही बनती थी। मैं इतनी बड़ी सभा के सामने आते डरती थी, पर कृष्ण भगवान् ने ऐसी कृपा की कि मेरा पार्ट सबसे बढ़कर रहा। पूछो बाबूजी से, शहर में उसकी कैसी चर्चा हो रही है? लोगों ने मुझसे एक-एक पद कई-कई बार गवाया।

विद्या ने व्यंग्य भाव से कहा—मेरा अभाग्य था कि कल न आ गई।

गायत्री—एक बार फिर वही लीला करने का विचार है। अबकी तुम्हें भी कोई-न-कोई पार्ट दूंगी।

विद्या—नहीं, मुझे क्षमा करना। नाटक खेलकर स्वर्ग में जाने की मुझे आशा नहीं है।

गायत्री विस्मित होकर विद्या का मुंह ताकने लगी। लेकिन ज्ञानशंकर मन में मुग्ध हुए जाते थे। दोनों बहिनों में वह जो भेदभाव डालना चाहते थे वह आप-ही-आप आरोपित हो रहा था। ये शुभ लक्षण थे। गायत्री से बोले—मेरे विचार में यहां अब आपको कष्ट होगा। क्यों न बंगले में एक कमरा आपके लिए खाली करा दूं? वहां आप ज्यादा आराम से रह सकेंगी।

गायत्री ने विद्या की तरफ देखते हुए कहा—क्यों विद्या, बंगले में चली जाऊं? बुरा तो न मानोगी? मेरे यहां रहने से तुम्हारे आराम में विघ्न पड़ेगा। मैं बहुधा भजन गाया करती हूं।

विद्या—तुम मेरे आराम की चिंता मत करो, मैं इतनी नाजुक दिमाग नहीं हूं। हां, अगर तुम्हें यहां कोई असमंजस हो तो शौक से बंगले में चली जाओ।

ज्ञानशंकर ने गायत्री का असबाब उठाकर बंगले में रखवा दिया। गायत्री ने भी विद्या से कुछ न कहा। उसे मालूम हो गया कि यह इस समय ईर्ष्या के मारे मरी जाती है। और ऐसा कौन प्राणी होगा, जो ईर्ष्या की क्रीड़ा का आनंद न उठाना चाहे? उसने एक बार विद्या को सगर्व नेत्रों से देखा और जीने की तरफ चली गई।

पचास

रात के नौ बजे थे। गायत्री वीणा पर गा रही थी कि ज्ञानशंकर ने कमरे में प्रवेश किया। उन्होंने आज देवी से वरदान मांगने का निश्चय कर लिया था। लोहा लाल हो रहा था, अब आगा-पीछा करने का अवसर न था, ताबड़तोड़ चोटों की जरूरत थी। एक दिन की देर भी वर्षों के अविरल उद्योग पर पानी फेर सकती थी, जीवन की समस्त आशाओं को मिट्टी में मिला सकती थी। विद्या की एक अनुचित बात सारी बाजी को पलट सकती थी, उसका एक द्वेषमूलक संकेत उनके सारे हवाई किलों का विध्वंस कर सकता था। कदाचित् किसी सेनापति को रणक्षेत्र में भी इतना महत्त्वपूर्ण और निश्चयकारी अवसर न प्रतीत होगा, जितना इस समय ज्ञानशंकर को मालूम हो रहा था। उनकी अवस्था उस सिपाही की-सी थी जो कुछ दूर पर खड़ा शस्त्रशाला में आग

की चिनगारी पड़ते देखे और उसको बुझाने के लिए बेतहाशा दौड़े। उसका द्रुतवेग कितना महत्त्वपूर्ण, कितना मूल्यवान है ! एक क्षण का विलंब सेना के सर्वनाश, दुर्ग के दमन, राज्य के विक्षेप और जाति के पद-दलित होने का कारण हो सकता है ! ज्ञानशंकर आज दोपहर से इसी समस्या के हल करने में व्यस्त थे। क्योंकर विषय को छेड़ूं? ऐसा अंदाज होना चाहिए कि मेरी निष्कामवृत्ति का पर्दा न खुलने पाए। उन्होंने अपने मन में विषय-प्रवेश का ऐसा क्रम बांधा था कि मायाशंकर को गोद लेने का प्रस्ताव गायत्री की ओर से हो और मैं उसके गुण-दोषों की निःस्वार्थ भाव से व्याख्या करूं। मेरी हैसियत एक तीसरे आदमी की रहे, एक शब्द से भी पक्षपात न प्रकट हो। उन्होंने अपनी बुद्धि, विचार, दूरदर्शिता और पूर्व-चिंता से कभी इतना काम न लिया था। सफलता में जो बाधाएं उपस्थित होने की कल्पना हो सकती थी उन सबों की उन्होंने योजना कर ली थी। अपने मन में एक-एक शब्द, एक-एक इशारे, एक-एक भाव का निश्चय कर लिया था। वह एक केसरिया रंग की रेशमी चादर ओढ़े थे, लंबे केश चादर पर बिखरे पड़े थे। आंखों से भक्ति का आनंद टपक रहा था और मुखारविंद प्रेम की दिव्यज्योति से आलोकित था।

उन्होंने गायत्री को अनुरागमय दृष्टि से देखकर कहा—आपके पदों में गजब का जादू है ! हृदय में प्रेम की तरंगें उठने लगती हैं, चित्त भक्ति से उन्मत्त हो जाता है।

गायत्री ने मुस्कराकर कहा—यह जादू मेरे पदों में नहीं है, आपके कोमल हृदय में है। बाहर की फीकी नीरस ध्वनि भी अंदर जाकर सुरीली और रसमयी हो जाती है। साधारण दीपक भी मोटे शीशे के अंदर बिजली का लैंप बन जाता है।

ज्ञानशंकर—मेरे चित्त की आजकल एक विचित्र दशा हो गई है। मुझे अब विश्वास होता जाता है कि मनुष्य में एक ही साथ दो भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों का समावेश नहीं हो सकता, एक आत्मा दो रूप धारण नहीं कर सकती।

गायत्री ने उनकी ओर जिज्ञासा-भाव से देखा और वीणा को मेज पर रखकर उनका मुंह देखने लगी !

ज्ञानशंकर ने कहा—हम जो रूप धारण करते हैं उसका हमारी बातचीत और आचार-व्यवहार पर इतना असर पड़ता है कि हमारी वास्तविक स्थिति लुप्त-सी हो जाती है। अब मुझे अनुभव हो रहा है कि लोग क्यों लड़कों को नाटकों में स्त्रियों का रूप धरने, नाचने और भाव बताने पर आपत्ति करते है ! एक दयालु प्रकृति का मनुष्य सेना में रहकर कितना उद्दंड और कठोर हो जाता है। परिस्थितियां उसकी दयालुता का नाश कर देती हैं। मेरे कानों में अब नित्य वंशी की मधुर-ध्वनि गूंजा करती है और आंखों के सामने गोकुल और बरसाने की छटा फिरा करती है। मेरी सत्ता कृष्ण में विलीन होती जाती है, राधा अब एक क्षण के लिए भी मेरे ध्यान से नहीं उतरती। कुछ समझ में नहीं आता कि मेरा मन मुझे किधर लिए जाता है?

यह कहते-कहते ज्ञानशंकर की आंखों से ज्योति-सी निकलने लगी, मुखमंडल पर अनुराग छा गया और वाणी माधुर्य रस में डूब गई। बोले—गायत्रीदेवी, चाहे यह छोटा मुंह और बड़ी बात हो, पर सच्ची बात यह है कि इस आत्मोत्सर्ग की दशा में तुम्हारा उच्च पद, तुम्हारा धन-वैभव, तुम्हारा नाता सब मेरी आंखों से लुप्त हो जाता है और तुम मुझे वही राधा, वही वृंदावन की अलबेली, तिरछी चितवन वाली, मीठी मुस्कान वाली, मृदुल भावों वाली, चंचल-चपल राधा मालूम होती हो। मैं इन भावनाओं को हृदय से मिटा देना चाहता हूं, लाखों यत्न करता

हूं, पर वह मेरी नहीं मानता। मैं चाहता हूं कि तुम्हें रानी गायत्री समझूं, जिसका मैं एक तुच्छ सेवक हूं, पर बार-बार भूल जाता हूं। तुम्हारी एक आवाज, तुम्हारी एक झलक, तुम्हारे पैरों की आहट, यहां तक कि केवल तुम्हारी याद मुझे इस बाह्य जगत् से उठाकर किसी दूसरे जगत् में पहुंचा देती है। मैं अपने को बिल्कुल भूल जाता हूं। अब तक इस चित्तवृत्ति को तुमसे गुप्त रखा था, लेकिन जैसे मिजराव की चोट से सितार ध्वनित हो जाता है उसी भांति प्रेम की चोट से हृदय स्वरयुक्त हो जाता है। मैंने अपने चित्त की दशा कह सुनाई, संतोष हो गया। इस प्रीति का अंत क्या होगा? इसे उसके सिवा और कौन जानता है, जिसने हृदय में यह ज्वाला प्रदीप्त की है !

जिस प्रकार प्यास से तड़पता हुआ मनुष्य ठंडा पानी पीकर तृप्त हो जाता है, एक-एक घूंट उसकी आंखों में प्रकाश और चेहरे पर विकास उत्पन्न कर देता है, उसी प्रकार यह प्रेम वृत्तांत सुनकर गायत्री का मुखचंद्र उज्ज्वल हो गया, उसकी आंखें उन्मत्त हो गईं, उसे अपने जीवन में एक नई स्फूर्ति का अनुभव होने लगा। उसके विचार में यह आध्यात्मिक प्रेम था, इसमें वासना का लेश भी न था। इसके प्रेरक कृष्ण थे। वही ज्ञानशंकर के दिल में बैठे हुए उनके कंठ से यह प्रेम-स्वर अलाप रहे थे। उसके मन में भी ऐसे भाव पैदा होते थे, लेकिन लज्जावश उन्हें प्रकट न कर सकती थी। राधा का पार्ट खेल चुकने के बाद वह फिर गायत्री हो जाती थी, किंतु इस समय ये बातें सुनकर उस पर एक नशा-सा छा गया। उसे ज्ञात हुआ कि राधा मेरे हृदय-स्थल में विराज रही है, उसकी वाणी लज्जा के बंधन से मुक्त हो गई। इस आध्यात्मिक रत्न के सामने समग्र संसार, यहां तक कि अपना जीवन भी तुच्छ प्रतीत होने लगा। आत्म-गौरव से आंखें चमकने लगीं। बोली--प्रियतम, मेरी भी यही दशा है। मैं भी इसी ताप से फुंक रही हूं। यह तन और मन अब तुम्हारी भेंट है। तुम्हारे प्रेम जैसा रत्न पाकर अब मुझे कोई आकांक्षा, कोई लालसा नहीं रही ! इस आत्म-ज्योति ने माया और मोह के अंधकार को मिटा दिया; सांसारिक पदार्थों से जी भर गया। अब यही अभिलाषा है कि यह मस्तक तुम्हारे चरणों पर हो और तुम्हारे कीर्ति-गान में जीवन समाप्त हो जाय। मैं रानी नहीं हूं, गायत्री नहीं हूं, मैं तुम्हारे प्रेम की भिखारिनी, तुम्हारे प्रेम की मतवाली, तुम्हारी चेरी राधा हूं! तुम मेरे स्वामी, मेरे प्राणाध ार, मेरे इष्टदेव हो ! मैं तुम्हारे साथ बरसाने की गलियों में विचरूंगी, यमुना के तट पर तुम्हारे प्रेम-राग गाऊंगी। मैं जानती हूं कि मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूं, अभी मेरा चित्त भोग-विलास का दास है। अभी मैं धर्म और समाज के बंधनों को तोड़ नहीं सकी हूं, पर जैसी कुछ हूं अब तुम मेरी सेवाओं को स्वीकार करो। तुम्हारे ही सत्संग ने मुझे इस स्वर्गीय सुख का रस चखाया है, क्या वह मन के विकारों को शांत न कर देगा?

यह कहते-कहते गायत्री के लोचन सजल हो गए। वह भक्ति के आवेग में ज्ञानशंकर के पैरों पर गिर पड़ी। ज्ञानशंकर ने उसे तुरंत उठाकर छाती से लगा लिया। अकस्मात् कमरे का द्वार धीरे से खुला और विद्या ने अंदर कदम रखा। ज्ञानशंकर और गायत्री दोनों ने चौंककर द्वार की ओर देखा और झिझककर अलग खड़े हो गए। दोनों की आंखें झुक गईं, चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं, ज्ञानशंकर तो सामने की आल्मारी में से एक पुस्तक निकालकर पढ़ने लगे, किंतु गायत्री ज्यों-की-त्यों अवाक् और अचल, पाषाण की मूर्ति के सदृश खड़ी थी। माथे पर पसीना आ गया। जी चाहता था, धरती फट जाय और मैं उसमें समा जाऊं। वह कोई बहाना, कोई हीला न कर सकी। आत्मग्लानि ने दुस्साहस का स्थान ही न छोड़ा था। उसे फर्श पर मोटे अक्षरों में

यह शब्द लिखे हुए दीखते थे, 'अब तू कहीं की न रही, तेरे मुंह में कालिख पुत गई।' यही विचार उसके हृदय को आंदोलित कर रहा था, यही ध्वनि उसके कानों में आ रही थी। वह बिलख-बिलखकर रोने लगी। अभी एक क्षण पहले उसकी आंखों से आत्माभिमान बरस रहा था, पर इस वक्त उससे दीन, उससे दलित प्राणी कोई संसार में न था। क्षण मात्र में उसकी भक्ति और अनुराग, उसके प्रेम और ज्ञान का पर्दा खुल गया। उसे ज्ञात हुआ कि मेरी भक्ति के स्वच्छ जल के नीचे कीचड़ था, मेरे प्रेम के सुरम्य पर्वत शिखर के नीचे निर्मल अंधकारमय गुफा थी। मैं स्वच्छ जल में पैर रखते ही कीचड़ में आ फंसी, शिखर पर चढ़ते ही अंधेरी गुफा में आ गिरी। हा ! इस उज्ज्वल, कंचनमय, लहराते हुए जल ने मुझे धोखा दिया, इन मनोरम शुभ्र शिखरों ने मुझे ललचाया और अब मैं कहीं की न रही। अपनी दुर्बलता और क्षुद्रता पर उसे इतना खेद हुआ, लज्जा और तिरस्कार के भावों ने उसे इतना मर्माहत किया कि वह चीख मारकर रोने लगी। हा ! विद्या मुझे अपने मन में कितना कुटिल समझ रही होगी ! वह मेरा कितना आदर करती थी ! कितना लिहाज करती थी, अब मैं उसकी दृष्टि में छिछोरी हूं, कुलकंलकिनी हूं ! उसके सामने सत्य और व्रत की कैसी डींगें मारती थी, सेवा और सत्कर्म की कितनी सराहना करती थी। मैं उसके सामने साध्वी, सती बनती थी, अपने पातिव्रत्य पर घमंड करती थी, पर अब उसे मुंह दिखाने योग्य नहीं हूं। हाय ! वह मुझे अपनी सौत समझ रही होगी, मुझे आंखों की किरकिरी, अपने हृदय का कांटा ख्याल करती होगी ! मैं उसकी गृह-विनाशिनी अग्नि, उसकी हांड़ी में मुंह डालने वाली कुतिया हूं। भगवान् ! मैं कैसी अंधी हो गई थी। यह मेरी छोटी बहिन है, मेरी कन्या के समान है। इस विचार ने गायत्री के हृदय को इतने जोर से मसोसा कि वह कलेजा थामकर बैठ गई। सहसा वह रोती हुई उठी और विद्या के पैरों पर गिर पड़ी।

विद्यावती इस वक्त केवल संयोग से यहां आ गई थी। वह ऊपर अपने कमरे में बैठी सोच रही थीं कि गायत्री बहिन को क्या हो गया है? उसे क्योंकर समझाऊं कि यह महापुरुष (ज्ञानशंकर) तुझे प्रेम और भक्ति के सब्जबाग दिखा रहे हैं। यह सारा स्वांग तेरी जायदाद के लिए भरा जा रहा है। न जाने वे क्यों धन-संपत्ति के पीछे इतने अंधे हो रहे हैं कि धर्म और विवेक को पैरों तले कुचले डालते हैं। हृदय का कितना काला, कितना धूर्त, कितना लोभी, कितना स्वार्थान्ध मनुष्य है कि अपनी स्वार्थ-सिद्धि क लिए किसी की जान, किसी की आबरू की भी परवा नहीं करता। बातें तो ऐसी करता है मानो ज्ञान-चक्षु खुल गए हों, मानो ऐसा साधु-चरित्र, ऐसा विद्वान, परमार्थी पुरुष संसार में न होगा, पर अंतःकरण में कूट-कूटकर पशुता, कपट और कुकर्म भरा हुआ है। बस, इसे यही धुन है कि गायत्री किसी तरह माया को गोद ले ले, उसकी लिखा-पढ़ी हो जाए और इलाके पर मेरा प्रभुत्व जम जाए, उसका संपूर्ण अधिकार मेरे हाथों में आ जाए। इसीलिए इसने ज्ञान और भक्ति का वह जाल फैला रखा है, भगत बन गया है, बाल बढ़ा लिए हैं, नाचता है, गाता है, कन्हैया बनता है ! कितनी भंयकर धूर्त्तता है, कितना घृणित व्यवहार, कितनी आसुरी प्रवृत्ति !

वह इन्हीं विचारों में मग्न थी कि उसके कानों में गायत्री के गाने की आवाज आई। वह वीणा पर सूरदास का एक पद गा रही थी। राग इतना सुमधुर और भावमय था, ध्वनि में इतनी करुणा और आकांक्षा भरी हुई थी, स्वर में इतना लालित्य और लोच था कि विद्या का मन सुनने के लिए लोलुप हो गया, वह विवश हो गई, स्वर-लालित्य ने उसे मुग्ध कर दिया। उसने सोचा, सच्चे अनुराग और हार्दिक वेदना के बिना गाने में यह असर, यह अनुरक्ति असंभव है। इसकी

लगन सच्ची है, इसकी भक्ति सच्ची है। इस पर मंत्र डाल दिया गया है। मैं इस मंत्र को उतार दूं, हो सके तो उसे गार में गिरने से बचा लूं, उसे जता दूं। निःसन्देह यह महोदय मुझसे नाराज होंगे, मुझे बैरी समझेंगे, मेरे खून के प्यासे हो जाएंगे। कोई चिंता नहीं। इस काम में अगर मेरी जान भी जाय तो मुझे विलंब न करना चाहिए। जो पुरुष ऐसा खूनी, ऐसा घातक, ऐसा रंगा हुआ सियार हो उससे मेरा कोई नाता नहीं। उसका मुंह देखना, उसके घर में रहना, उसकी पत्नी कहलाना पाप है।

वह ऊपर से उतरी और धीरे-धीरे गायत्री के कमरे में आई; किंतु पहला ही पग अंदर रखा था कि ठिठक गई। सामने गायत्री और ज्ञानशंकर आलिंगन कर रहे थे। वह इस समय बड़ी शुभ इच्छाओं के साथ आई थी, निर्लज्जता का यह दृश्य देखकर उसका खून खौल उठा, आंखों में चिनगारियां-सी उड़ने लगीं, अपमान और तिरस्कार के शब्द मुंह से निकलने के लिए जोर मारने लगे। उसने आग्नेय नेत्रों से पति की ओर देखा। उसके शाप में यदि इतनी शक्ति होती कि वह उन्हें जलाकर भस्म कर देता, तो वह अवश्य शाप दे देती। उसके हाथ में यदि इतनी शक्ति होती कि वह एक ही वार में उनका काम तमाम कर दे, तो वह अवश्य वार करती। पर उसके वश में इसके सिवाय और कुछ न था कि वह वहां से टल जाय। इस उद्विग्न दशा में वह वहां ठहर न सकती थी। वह उल्टे पांव लौटना चाहती थी। खलिहान में आग लग चुकी थी, चिड़िया के गले पर छुरी चल चुकी थी, अब उसे बचाने का उद्योग करना व्यर्थ था। गायत्री से उसे एक क्षण पहले जो हमदर्दी हो गई थी, वह लुप्त हो गई, अब वह सहानुभूति की पात्र न थी। हम सफेद कपड़े को छींटों से बचाते हैं, लेकिन जब छींटे पड़ गए तो उसे दूर फेंक देते हैं, उसे छूने से घृणा होती है। उसके विचार में गायत्री अब इसी किये का फल भोगे। मैं इस भ्रम में थी कि इस दुरात्मा ने तुझे बहका दिया, तेरा अंतःकरण शुद्ध है, पर अब यह विश्वास जाता रहा। कृष्ण की भक्ति और प्रेम का नशा इतना गाढ़ा नहीं हो सकता कि सुकर्म और कुकर्म का विवेक न रहे। आत्म-पतन की दशा में ही इतनी बेहयाई हो सकती है। हा अभागिनी! आधी अवस्था बीत जाने पर तुझे यह सूझी! जिस पति को तू देवता समझती थी, जिसकी पवित्र स्मृति की तू उपासना करती थी, जिसका नाम लेते ही आत्मगौरव से तेरे मुख पर लाली छा जाती थी उसकी आत्मा को तूने यों भ्रष्ट किया, उसकी मिट्टी यों खराब की!

किंतु जब उसने गायत्री को सिर झुकाकर चीख-चीखकर रोते देखा तो उसका हृदय नम्र हो गया, और जब गायत्री आकर पैरों पर गिर पड़ी तब स्नेह और भक्ति के आवेश से आतुर होकर वह बैठ गई और गायत्री का सिर उठाकर अपने कंधे पर रख लिया। दोनों बहिनें रोने लगीं, एक ग्लानि से दूसरी प्रेमोद्रेक से।

अब तक ज्ञानशंकर दुविधा में खड़े थे, विद्या पर कुपित हो रहे थे, पर जबान से कुछ कहने का साहस न था। उन्हें शंका हो रही थी कि कहीं यह शिकार फंदा तोड़कर भाग न जाय। गायत्री के रोने-धोने पर उन्हें बड़ा क्रोध आ रहा था। जब तक गायत्री अपनी जगह पर खड़ी रोती रही तब तक उन्हें आशा थी कि इस चोट की दवा हो सकती है, लेकिन जब गायत्री जाकर विद्या के पैरों पर गिर पड़ी और दोनों बहिनें गले मिलकर रोने लगीं, तब वह अधीर हो गए। अब चुप रहना जीती-जितायी बाजी को हाथ से खोना, जाल में फंसे हुए शिकार को भगाना था। उन्होंने कर्कश-स्वर में विद्या से कहा—तुमको बिना आज्ञा किसी के कमरे में आने का क्या अधिकार है?

विद्या कुछ न बोली। गायत्री ने उसकी गर्दन और जोर से पकड़ ली मानो डूबने से बचने का यही एकमात्र सहारा है।

ज्ञानशंकर ने और सरोष होकर कहा–तुम्हारे यहां आने की कोई जरूरत नहीं और तुम्हारा कल्याण इसी में है कि तुम इसी दम यहां से चली जाओ, नहीं तो मैं तुम्हारा हाथ पकड़ कर बाहर निकाल देने पर मजबूर हो जाऊंगा। तुम कई बार मेरे मार्ग का कांटा बन चुकी हो, लेकिन अबकी बार मैं तुम्हें हमेशा के लिए रास्ते से हटा देना चाहता हूं।

विद्या ने तेवरियां बदलकर कहा–मैं अपनी बहिन के पास आई हूं, जब तक वह मुझे जाने को न कहेगी, मैं न जाऊंगी।

ज्ञानशंकर ने गरजकर कहा–चली जा, नहीं तो अच्छा नहीं होगा !

विद्या ने निर्भीकता से उत्तर दिया–कभी नहीं, तुम्हारे कहने से नहीं !

ज्ञानशंकर क्रोध से कांपते हुए तड़िद्वेग से विद्या के पास आये और चाहा कि झपटकर उसका हाथ पकड़ लूं कि गायत्री खड़ी हो गई और गर्व से बोली–मेरी समझ में नहीं आता कि आप इतने क्रुद्ध क्यों हो रहे हैं? मुझसे मिलने आई है और मैं अभी न जाने दूंगी।

गायत्री की आंखों में अब भी आंसू थे, गला अभी नक थरथरा रहा था, सिसकियां ले रही थी, पर यह विगत जलोद्वेग के लक्षण थे, सूर्य निकल आया था। वह फिर अपने आपे में आ चुकी थी, उसका स्वाभाविक अभिमान फिर जाग्रत हो गया !

ज्ञानशंकर ने कहा–गायत्री देवी, तुम अपने को बिल्कुल भूली जाती हो। मुझे अत्यंत खेद है कि बरसों की भक्ति और प्रेम की वेदी पर आत्म-समर्पण करके भी तुम ममत्व के बंधनों में जकड़ी हुई हो। याद करो, तुम कौन हो? सोचो, मैं कौन हूं? सोचो, मेरा और तुम्हारा क्या संबंध है? क्या तुम इस पवित्र संबंध को इतना जीर्ण समझ रही हो कि उसे वायु और प्रकाश से भी बचाया जाए? वह एक आध्यात्मिक संबंध है, अटल और अचल है। कोई पार्थिव शक्ति उसे तोड़ नहीं सकती। कितने शोक की बात है कि हमारे आत्मिक ऐक्य से भली-भांति परिचित होकर भी तुम मेरी इतनी अवेहलना कर रही हो। क्या में यह समझ लूं कि तुम इतने दिनों तक केवल गुड़ियों का खेल खेल रही थीं? अगर वास्तव में यही बात है तो तुमने मुझे कहीं का न रखा। मैं अपना तन और मन, धर्म और कर्म सब प्रेम की भेंट कर चुका हूं। मेरा विचार था कि तुमने भी सोच-समझकर प्रेम-पथ पर पग रखा है और उसकी कठिनाइयों को जानती हो। प्रेम का मार्ग कठिन है, दुर्गम है और अपार। यहां बदनामी है, कलंक है। यहां लोकनिन्दा और अपमान है, लांछन है–व्यंग्य है। यहां वही धाम पर पहुंचता है जो दुनिया से मुंह मोड़े, संसार से नाता तोड़े। इस मार्ग में सांसारिक संबंध पैरों की बेड़ी है, उसे तोड़े बिना एक पग भी रखना असंभव है। यदि तुमने परिणाम का विचार नहीं किया और केवल मनोविनोद के लिए चल खड़ी हुईं तो तुमने मेरे साथ घोर अन्याय किया। इसका अपराध तुम्हारी गर्दन पर होगा।

यद्यपि ज्ञानशंकर मनोभावों को गुप्त रखने में सिद्धहस्त थे, पर इस समय उनका खिसियाया हुआ चेहरा उनकी इस सारगर्भित प्रेम-व्याख्या का पर्दा खोल देता था। मुलम्मे की अंगूठी ताव खा चुकी थी।

इससे पहले ज्ञानशंकर के मुंह से ये बातें सुनकर, कदाचित गायत्री रोने लगती और ज्ञानशंकर के पैरों पर गिरकर क्षमा मांगती; नहीं, बल्कि ज्ञानशंकर की अभक्ति पर ये शब्द स्वयं उसके मुंह से निकलते। लेकिन वह नशा हिरन हो चुका था। उसने ज्ञानशंकर के मुंह की

खा। वहां भक्ति का रोगन न था। नट के लंबे केश और भड़कीले तरफ उड़[illegible] मुखश्री ! जिस पर दर्शकगण लट्टू हो जाते थे और जिसका रंगमंच वस्त्र उ[illegible] स्वागत किया जाता था, क्षीण हो गई थी। जिस प्रकार कोई सीधा-सादा पर क[illegible]ताश वालों के दल में आकर फिर उसके पास खड़ा भी नहीं होता कि कहीं दे[illegible] में न आ जाए, उसी प्रकार गायत्री भी यहां से दूर भागना चाहती थी। उसने [illegible] को कुछ उत्तर न दिया और विद्या का हाथ पकड़े हुए द्वार की ओर चली। ज्ञानशंकर [illegible]त हो गया कि मेरा मंत्र न चला। उन्हें क्रोध आया, मगर गायत्री पर नहीं, अपनी विफलता और दुर्भाग्य पर। शोक ! मेरी सात वर्षों की अविश्रांत तपस्याएं निष्फल हुई जाती हैं। जीवन की आशाएं सामने आकर रूठी जाती हैं–क्या करूं ? उन्हें क्योंकर मनाऊं? मैंने अपनी आत्मा पर कितना अत्याचार किया, कैसे-कैसे षड्यंत्र रचे? इसी एक अभिलाषा पर अपना दीन-ईमान न्यौछावर कर दिया। वह सब कुछ किया जो न करना चाहिए था। नाचना सीखा, नकलें कीं, स्वांग भरे, पर सारे प्रयत्न निष्फल हो गए। रायसाहब ने सच कहा था कि संपत्ति तेरे भाग्य में नहीं है। मेरा मनोरथ कभी पूरा न होगा। यह अभिलाषा चिता पर मेरे साथ जलेगी। गायत्री की निष्ठुरता भी कुछ कम हृदय-विदारक न थी। ज्ञानशंकर को गायत्री से सच्चा प्रेम न सही, पर वह उसके रूप-लावण्य पर मुग्ध थे। उसकी प्रतिभा, उदारता, स्नेहशीलता, बुद्धिमत्ता, सरलता उन्हें अपनी ओर खींचती थी। अगर एक ओर गायत्री होती और दूसरी ओर उसकी जायदाद और ज्ञानशंकर से कहा जाता तुम इन दोनों में से जो चाहो ले लो तो अवश्यंभावी था कि वह उसकी जायदाद पर ही लपकते; लेकिन उसकी जान से अलग होकर उसकी जायदाद लवणहीन भोजन के समान थी। वही गायत्री उनसे मुंह फेरकर चली जाती थी !

इन क्षोभयुक्त विचारों ने ज्ञानशंकर के हृदय को इतना मसोसा कि उनकी आंखें भर आईं। वह कुर्सी पर बैठ गए और दीवार की तरफ मुंह फेरकर रोने लगे। अपनी विवशता पर उन्हें इतना दु:ख कभी न हुआ था। वे अपनी याद में इतने शोकातुर कभी न हुए थे। अपनी स्वार्थपरता, अपनी इच्छा-लिप्सा अपनी क्षुद्रता पर इतनी ग्लानि कभी न हुई थी। जिस तरह बीमारी में मनुष्य को ईश्वर याद आता है उसी तरह अकृतकार्य होने पर उसे अपने दुस्साहसों पर पश्चात्ताप होता है। पराजय का आध्यात्मिक महत्त्व विजय से कहीं अधिक होता है।

गायत्री ने ज्ञानशंकर को रोते देखा, तो द्वार पर जाकर ठिठक गई। उसके पग बाहर न पड़ सके। स्त्रियों के आंसू पानी हैं, वे धैर्य और मनोबल के ह्रास के सूचक हैं। गायत्री को अपनी निष्ठुरता और अश्रद्धा पर खेद हुआ। आत्म-रक्षा की अग्नि जो एक क्षण पहले प्रदीप्त हुई थी इन आंसुओं से बुझ गई ! वे भावनाएं सजीव हो गईं जो सात बरसों से मन को लालायित कर रही थीं, वे सुखद वार्ताएं, वे मनोहर क्रीड़ाएं, वे आनंदमय कीर्तन, वे प्रीति की बातें, वे वियोग-कल्पनाएं नेत्रों के सामने फिरने लगीं। लज्जा और ग्लानि के बादल फट गए, प्रेम का चांद चमकने लगा। वह ज्ञानशंकर के पास आकर खड़ी हो गई और रूमाल से उनके आंसू पोंछने लगी। प्रेमानुराग से विह्वल होकर उसने उनका मस्तक अपनी गोद में रख लिया। उन अश्रुप्लावित नेत्रों में उसे प्रेम का अथाह सागर लहरें मारता हुआ नजर आया। यह मुख-कमल प्रेम-सूर्य की किरणों से विकसित हो रहा था। उसने उनकी तरफ सतृष्ण नेत्रों से देखा, उनमें क्षमा-प्रार्थना भरी हुई थी मानो वह कह रही थी, हा ! मैं कितनी दुर्बल, कितनी श्रद्धाहीन हूं ! कितनी जड़भक्त हूं कि रूप और गुण का निरूपण न कर सकी। मेरी अभक्ति ने इनके विशुद्ध और कोमल हृदय

को व्यथित किया होगा। तुमने मुझे धरती से आकाश पर पहुंचाया, तुमने मेरे हृदय में शक्ति का अंकुर जमाया, तुम्हारे ही सदुपदेशों से मुझे सत्प्रेम का स्वर्गीय आनंद प्राप्त हुआ। एकाएक मेरी आंखों पर पर्दा कैसे पड़ गया? मैं इतनी अंधी कैसे हो गई? निस्संदेह कृष्ण भगवान् मेरी परीक्षा ले रहे थे और मैं उसमें अनुत्तीर्ण हो गई। उन्होंने मुझे प्रेम-कसौटी पर कसा और मैं खोटी निकली। शोक ! मेरी सात वर्षों की तपस्या एक क्षण में भंग हो गई। मैंने उस पुरुष पर संदेह किया जिसके हृदय में कृष्ण का निवास है, जिसके कंठ में मुरली की ध्वनि है। राधा ! तुमने क्यों मेरे दिल पर से अपना जादू खींच लिया? मेरे हृदय में आकर बैठो और मुझे धर्म का अमृत पिलाओ।

यह सोचते-सोचते गायत्री की आंखें अनुरक्त हो गईं। वह कंपित स्वर से बोली—भगवन ! तुम्हारी चेरी तुम्हारे सामने हाथ बांधे खड़ी अपने अपराधों की क्षमा मांगती है।

ज्ञानशंकर ने चुभती हुई दृष्टि से देखा और समझ गए कि मेरे आंसू काम कर गए। इस तरह चौंक पड़े मानो नींद से जगे हों और बोले—राधा !

गायत्री—मुझे क्षमादान दीजिए।

ज्ञान—तुम मुझसे क्षमा-दान मांगती हो? यह तुम्हारा अन्याय है ! तुम प्रेम की देवी हो, वात्सल्य की मूर्ति, निर्दोष, निष्कंलक। यह मेरा दुर्भाग्य है कि तुम इतनी अस्थिरचित्त हो। प्रेमियों के जीवन में सुख कहां? तुम्हारी अस्थिरता ने मुझे संज्ञाहीन कर दिया है। मुझे अब भी भ्रम हो रहा है कि गायत्रीदेवी से बात कर रहा हूं या राधा रानी से। मैं अपने आपको भूल गया हूं। मेरे हृदय को ऐसा आघात पहुंचा है कि कह नहीं सकता यह घाव कभी भरेगा या नहीं? जिस प्रेम और भक्ति को मैं अटल समझा था, वह बालू की भीत से भी ज्यादा पोली निकली। उस पर मैंने जो आशालता आरोपित की थी, जो बाग लगाया था, वह सब जलमग्न हो गया। अहा ! मैं कैसे-कैसे मनोहर स्वप्न देख रहा था? सोचा था, यह प्रेम-वाटिका कभी फूलों से लहराएगी, हम और तुम सांसारिक मायाजाल को हटाकर वृंदावन के किसी शांतिकुंज में बैठे हुए भक्ति का आनंद उठाएंगे। अपनी प्रेम-ध्वनि से वृक्ष-कुंजों को गुंजित कर देंगे। हमारे प्रेम-गान से कालिन्दी की लहरें प्रतिध्वनित हो जाएंगी। मैं कृष्ण का चाकर बनूंगा, तुम उनके लिए पकवान बनाओगी। संसार से अलग, जीवन के अपवादों से दूर हम अपनी प्रेम-कुटी बनाएंगे और राधा-कृष्ण की अटल भक्ति में जीवन के बचे हुए दिन काट देंगे अथवा अपने ही कृष्ण मंदिर में राधाकृष्ण के चरणों से लगे हुए इस असार संसार से प्रस्थान कर जाएंगे। इसी सदुद्देश्य से मैंने आपकी रियासत की, और यहां की पूरी व्यवस्था की। पर अब ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वह सब शुभकामनाएं दिल में ही रहेंगी और मैं शीघ्र ही संसार से हताश और भग्न-हृदय विदा हूंगा।

गायत्री प्रेमोन्मत्त होकर बोली—भगवन्, ऐसी बातें मुंह से न निकालो। मैं दीन अबला हूं, अज्ञान के अंधकार में डूबी हुई, मिथ्या भ्रम में पड़ जाती हूं, पर मैंने तुम्हारा दामन पकड़ा है, तुम्हारी शरणागत हूं, तुम्हें मेरी क्षुद्रताएं, मेरी दुर्बलताएं सभी क्षमा करनी पड़ेंगी। मेरी भी यही अभिलाषा है कि तुम्हारे चरणों से लगी रहूं। मैं भी संसार से मुंह मोड़ लूंगी, सबसे नाता तोड़ लूंगी, तुम्हारे साथ बरसाने और वृन्दावन की गलियों में विचरूंगी। मुझे अगर कोई सांसारिक चिंता है तो वह यह है कि मेरे पीछे मेरे इलाके का प्रबंध सुयोग्य हाथों में रहे, मेरी प्रजा पर अत्याचार न हो और रियासत की आमदनी परमार्थ में लगे। मेरा और तुम्हारा निर्वाह दस-बारह

हजार रुपयों में हो जाएगा। मुझे और कुछ न चाहिए। हां, यह लालसा अवश्य है कि मेरी स्मृति बनी रहे, मेरा नाम अमर हो जाए, लोग मेरे यश और कीर्ति की चर्चा करते रहें। यही चिंता है जो अब तक मेरे पैरों में बेड़ी बनी हुई है। आप इस बेड़ी को काटिए। यह भार मैं आपके ही ऊपर रखती हूं। ज्योंही आप इन दोनों बातों की व्यवस्था कर देंगे, मैं निश्चिंत हो जाऊंगी और फिर यावज्जीवन हममें वियोग न होगा। मेरी तो यह राय है कि 'ट्रस्ट' कायम कर दीजिए। मेरे पतिदेव की भी यह इच्छा थी।

ज्ञानशंकर–ट्रस्ट कायम करना तो आसान है, पर मुझे आशा नहीं है कि उससे आपका उद्देश्य पूरा हो। मैं पहले भी दो-एक बार ट्रस्ट के विषय में अपने विचार प्रकट कर चुका हूं। आप अपने विचार में कितने ही निःस्पृह, सत्यवादी ट्रस्टियों को नियुक्त करें, लेकिन अवसर पाते ही वे अपने घर भरने पर उद्यत हो जाएंगे। मानव-स्वभाव बड़ा ही विचित्र है। आप किसी के विषय में विश्वस्त रीति से नहीं कह सकतीं कि उसकी नीयत कभी डांवाडोल न होगी, वह सन्मार्ग से कभी विचलित न होगा। हम तो वृन्दावन में बैठे रहेंगे, यहां प्रजा पर नाना प्रकार के अत्याचार होंगे। कौन उसकी फरियाद सुनेगा? सदाव्रत की रकम नाच-मुजरे में उड़ेगी, रामलीला की रकम गार्डन-पार्टियों में खर्च होगी, मन्दिर की सजावट के सामान ट्रस्टियों के दीवानखाने में नजर आएंगे, साधु-महात्माओं के सत्कार के बदले यारों की दावतें होंगी, आपको यश की जगह अपयश मिलेगा। यों तो कहिए आपकी आज्ञा का पालन कर दूं, लेकिन ट्रस्टियों पर मेरा जरा भी विश्वास नहीं है। आपका उद्देश्य उसी दशा में पूरा होगा जब रियासत किसी ऐसे व्यक्ति के हाथों में हो, जो आपको अपना पूज्य समझता हो, जिसे आपमें श्रद्धा हो, जो आपका उपकार माने, जो दिल से आपकी शुभेच्छाओं का आदर करता हो, जो स्वयं आपके ही रंग में रंगा हुआ हो, जिसके हृदय में दया और प्रेम हो; और यह सब गुण उसी मनुष्य में हो सकते हैं जिसे आपसे पुत्रवत् प्रेम हो, जो आपको अपनी माता समझता हो। अगर आपको ऐसा कोई लड़का नजर आए तो मैं सलाह दूंगा उसे गोद ले लीजिए। इससे उत्तम मुझे और कोई व्यवस्था नहीं सूझती। संभव है, कुछ दिनों तक हमको उसकी देख-रेख करनी पड़े, किंतु इसके बाद हम स्वच्छंद हो जाएंगे। तब हमारे आनंद और विहार के दिन होंगे। मैं अपनी प्यारी राधा के गले में प्रेम का हार डालूंगा, उसे प्रेम के राग सुनाऊंगा। दुनिया की कोई चिंता, कोई उलझन, कोई झोंका हमारी शांति में विघ्न न डाल सकेगा।

गायत्री पुलकित हो गई। उस आनंदमय जीवन का दृश्य उसकी कल्पना में सचित्र हो गया। उसकी तबीयत लहराने लगी। इस समय उसे अपने पति की वह वसीयत याद न रही जो उन्होंने जायदाद के प्रबंध के विषय में की थी और जिसका विरोध करने के लिए वह ज्ञानशंकर से कई बार गर्म हो पड़ी थी। वह ट्रस्ट के गुण-दोष पर स्वयं कुछ विचार न कर सकी। ज्ञानशंकर का कथन निश्चयवाचक था। ट्रस्ट पर से उसका विश्वास उठ गया। बोली–आपका कहना यथार्थ है। ट्रस्टियों का क्या विश्वास है? आदमी किसी के मन में तो पैठ नहीं सकता, अंदर का हाल कौन जाने?

वह दो-तीन मिनट तक विचार में मग्न रही। सोच रही थी कि ऐसा कौन लड़का है जिसे मैं गोद ले सकूं। मन-ही-मन अपने संबंधियों और कुटुम्बियों का दिग्दर्शन किया, लेकिन यह समस्या हल न हुई। लड़के थे, एक नहीं अनेक, लेकिन किसी-न-किसी कारण से वह गायत्री को न जंचते थे। सोचते-सोचते सहसा वह चौंक पड़ी और मायाशंकर का नाम उसकी जबान

पर आते-आते रह गया। ज्ञानशंकर ने अब तक अपनी मनोवांछा को ऐसे गुप्त रखा था, अपने आत्म-सम्मान की ऐसी धाक जमा रखी थी कि पहले तो मायाशंकर की ओर गायत्री का ध्यान ही न गया और जब गया, तो उसे अपना विचार प्रकट करते हुए भय होता था कि कहीं ज्ञानशंकर के मर्यादाशील हृदय को चोट न लगे। हालांकि ज्ञानशंकर का इशारा साफ था, पर गायत्री पर इस समय वह नशा था, जो शराब और पानी में भेद नहीं कर सकता। उसने कई बार हिम्मत की कि यह जिक्र छेड़ूं, किंतु ज्ञानशंकर के चेहरे से ऐसा निष्काम भाव झलक रहा था कि उसकी जबान न खुल सकी। मायाशंकर की विचारशीलता, सच्चरित्रता, बुद्धिमत्ता आदि अनेक गुण उसे याद आने लगे। उससे अच्छे उत्तराधिकारी की वह कल्पना भी न कर सकती थी। ज्ञानशंकर उसको असमंजस में देखकर बोले—आया कोई लड़का ध्यान में?

गायत्री सकुचाती हुई बोली—जी हां, आया तो, पर मालूम नहीं आप भी उसे पसंद करेंगे या नहीं? मैं इससे अच्छा चुनाव नहीं कर सकती।

ज्ञानशंकर—सुनूं तो कौन है?

गायत्री—वचन दीजिए कि आप उसे स्वीकार करेंगे।

ज्ञानशंकर के हृदय में गुदगुदी होने लगी। बोले—बिना जाने-बूझे मैं यह वचन कैसे दे सकता हूं?

गायत्री—मैं जानती हूं कि आपको उसमें आपत्ति होगी और विद्या तो किसी प्रकार राजी ही न होगी, लेकिन इस बालक के सिवा मेरी नजर और किसी पर पड़ती ही नहीं।

ज्ञानशंकर अपने मनोल्लास को छिपाए हुए बोले—सुनूं तो किसका भाग्य-सूर्य उदय हुआ है।

गायत्री—बता दूं? बुरा तो न मानिएगा न?

ज्ञान—जरा भी नहीं, कहिए।

गायत्री—मायाशंकर।

ज्ञानशंकर इस तरह चौंक पड़े, मानो कानों के पास कोई बंदूक छूट गई हो। विस्मित नेत्रों से देखा और इस भाव से बोले मानो उसने दिल्लगी की है—मायाशंकर !

गायत्री—हां, आप वचन दे चुके हैं, मानना पड़ेगा।

ज्ञानशंकर—मैंने कहा था कि नाम सुनकर राय दूंगा। अब नाम सुन लिया और विवशता से कहता हूं, मैं आपसे सहमत नहीं हो सकता।

गायत्री—मैं यह बात पहले से ही जानती थी, पर मुझमें और आपमें जो संबंध है उसे देखते हुए आपको आपत्ति न होनी चाहिए।

ज्ञानशंकर—मुझे स्वयं कोई आपत्ति नहीं। मैं अपना सर्वस्व आप पर समर्पण कर चुका हूं, लड़का भी आपकी भेंट है, लेकिन आपको मेरी कुल-मर्यादा का हाल मालूम है। काशी में इतना सम्मानित और कोई घराना नहीं है। सब तरह से पतन होने पर भी उसका गौरव अभी तक बचा हुआ है। मेरे चाचा और संबंधी इसे कभी मंजूर न करेंगे और विद्या तो सुनकर विष खाने को उतारू हो जाएगी। इसके अतिरिक्त मेरी बदनामी भी है। संभव है, लोग यह समझें कि मैंने आपकी सरलता और उदारता से अनुचित लाभ उठाया है और आपके कुटुंब के लोग तो मेरी जान के गाहक ही हो जाएंगे।

गायत्री—मेरे कुटुम्बियों की ओर से आप निश्चिंत रहिए, मैं उन्हें आपस में लड़ाकर

मारूंगी। बदनामी और लोक-निंदा आपको मेरी खातिर से सहनी पड़ेगी ! रही विद्या, उसे मैं मना लूंगी।

ज्ञान–नहीं, यह आशा न रखिए। आप उसे मनाना जितना सुगम समझ रही हैं उससे कहीं कठिन है ! आपने उसके तेवर नहीं देखे। वह इस समय सौतिया डाह से जल रही है। उसे अमृत भी दीजिए, तो विष समझेगी। जब तक लिखा-पढ़ी न हो जाय और प्रथानुसार सब संस्कार पूरे न हो जाएं, उसके कानों में इसकी भनक भी न पड़नी चाहिए। यह सब तो होगा, मगर उन लोगों की हाय किस पर पड़ेगी जो बरसों से रियासत पर दांत लगाए बैठे हैं? उनके घरों में तो कुहराम मच जाएगा। सब-के-सब मेरे खून के प्यासे हो जाएंगे। यद्यपि मुझे उनका भय नहीं है, लेकिन शत्रु को कभी तुच्छ न समझना चाहिए। हम जिससे धन और धरती छीन लें, उससे कभी निःशंक नहीं रह सकते।

गायत्री–आप इन दुष्टों का ध्यान ही न दीजिए। ये कुत्ते हैं, एक छीछड़े पर लड़ मरेंगे।

ज्ञानशंकर कुछ देर तक मौन रूप से जमीन की ओर ताकते रहे, जैसे कोई महान् त्याग कर रहे हों। फिर सजल नेत्रों से बोले, जैसी आपकी मर्जी, आपकी आज्ञा सिर पर है। परमात्मा से प्रार्थना है कि यह लड़का आपको मुबारक हो और उससे आपकी जो आशाएं हैं, वह पूरी हों। ईश्वर उसे सद्‌बुद्धि प्रदान करे कि वह आपके आदर्श को चरितार्थ करे। वह आज से मेरा लड़का नहीं, आपका है। तथापि अपने एकमात्र पुत्र को छाती से अलग करते हुए दिल पर जो कुछ बीत रही है वह मैं ही जानता हूं, लेकिन वृंदावन बिहारी ने आपके अंतःकरण में यह बात डालकर मानो हमारे लिए भक्ति-पथ का द्वार खोल दिया है। वह हमें अपने चरणों की ओर बुला रहे हैं। यह हमारा सौभाग्य है।

गायत्री ने ज्ञानशंकर का हाथ पकड़कर कहा–कल ही किसी पंडित से शुभ मुहूर्त पूछ लीजिए।

इकयावन

रात के आठ बजे थे। ज्ञानशंकर के दीवानखाने में शहर के कई प्रतिष्ठित सज्जन जमा थे। बीच में एक लोहे का हवनकुंड रखा हुआ था, उसमें हवन हो रहा था। हवनकुंड के एक तरफ गायत्री बैठी थी, दूसरी तरफ ज्ञानशंकर और माया। एक पण्डितजी वेद-मन्त्रों का पाठ कर रहे थे। गायत्री का चम्पई वर्ण अग्नि-ज्वाला से प्रतिबिंबित होकर कुंदन हो रहा था। फिरोजी रंग की साड़ी उस पर खूब खिल रही थी। सबकी आंखें उसी के मुख-दीपक की ओर लगी हुई थीं। यह माया को गोद लेने का संस्कार था; वह गायत्री का धर्मपुत्र बन रहा था। कुछ सज्जन आपस में कानाफूसी कर रहे थे, कैसा भाग्यवान् लड़का है ! लाखों की संपत्ति का स्वामी बनाया जाता है, यहां आज तक एक पैसा भी पड़ा हुआ न मिला। कुछ लोग कह रहे थे–ज्ञानशंकर एक ही बना हुआ आदमी है, ऐसा हत्थे पर चढ़ाया कि जायदाद लेकर ही छोड़ा। अब मालूम हुआ कि महाशय ने स्वांग किस लिए रचा था। यह जटाएं इसी दिन के लिए बढ़ाई थीं। कुछ सज्जनों का मत था कि ज्ञानशंकर इससे भी कहीं मलिन-हृदय है।

लाला प्रभाशंकर ने पहले यह प्रस्ताव सुना तो बहुत बिगड़े, लेकिन जब गायत्री ने बड़ी नम्रता से परिस्थिति प्रकट की तो वह भी नीमराजी-से हो गए। हवन के पश्चात् दावत शुरू हुई। इसका सारा प्रबंध उन्हीं के हाथों में था। उनकी अर्थ-स्वीकृति को पूर्ण बनाने का इससे उत्तम कोई अन्य उपाय न था। उन्हें पूरा अधिकार दे दिया गया था कि वह जितना चाहे खर्च करें, जो पदार्थ चाहें पकवायें। अतएव इस अवसर पर उन्होंने अपनी सम्पूर्ण पाककला प्रदर्शित कर दी थी। इस समय खुशी से उनकी बांछें खिली जाती थीं, लोगों के मुंह से भोजन की सराहना सुन-सुनकर फूले न समाते थे। इनमें कितने ही ऐसे सज्जन थे, जिन्हें भोजन से नितान्त अरुचि रहती थी। जो दावतों में शरीक होना अपने ऊपर अन्याय समझते थे। ऐसे लोग भी थे जो प्रत्येक वस्तु को गिनकर और तौलकर खाते थे। पर इन स्वादयुक्त पदार्थों ने तीव्र और मंद अग्नि में कोई भेद न रखा था। रुचि ने दुर्बल पाचनशक्ति को भी सबल बना दिया था।

दावत समाप्त हो गई तो गाना शुरू हुआ। अलहदीन एक सात वर्ष का बालक था, लेकिन गानशास्त्र का पूरा पण्डित और संगीता कला में अत्यंत निपुण। यह उसकी ईश्वरदत्त शक्ति थी। जलतरंग, ताऊस, सितार, सरोद, वीणा, पखावज, सारंगी–सभी यन्त्रों पर उसका विलक्षण आधिपत्य था। इतनी अल्पावस्था में उसकी यह अलौकिक सिद्धि देखकर लोग विस्मित हो जाते थे। जिन गायनाचार्यों ने एक-एक यन्त्र की सिद्धि में अपना जीवन बिता दिया, वह भी उसके हाथों की सफाई और कोमलता पर सिर धुनते थे। उसकी बहुज्ञता उनकी विशेषता को लज्जित किए देती थी। इस समय समस्त भारत में उसकी ख्याति थी, मानो उसने दिग्विजय कर लिया हो। ज्ञानशंकर ने उस उत्सव पर उसे कलकत्ते से बुलाया था। वह बहुत दुर्बल, कुत्सित, कुरूप बालक था, पर उसका गुण उसके रूप को भी चमत्कृत कर देता था। उसके स्वर में कोयल की कूक का-सा माधुर्य था। सारी सभा मुग्ध हो गई।

इधर तो यह राग-रंग था, उधर विद्या अपने कमरे में बैठी हुई भाग्य को रो रही थी। तबले की एक-एक थाप उसके हृदय पर हथौड़े की चोट के समान लगती थी। वह एक गर्वशीला, धर्मनिष्ठा, संतोष और त्याग के आदर्श का पालन करने वाली महिला थी। यद्यपि पति की स्वार्थभक्ति से उसे घृणा थी, पर इस भाव को वह अपनी पति-सेवा में बाधक न होने देती थी। पर जब से उसने रायसाहब के मुंह से ज्ञानशंकर के नैतिक अध:पतन का वृत्तांत सुना था, तब से उसकी पति-श्रद्धा क्षीण हो गई थी। रात का लज्जास्पद दृश्य देखकर बची-खुची श्रद्धा भी जाती रही। जब ज्ञानशंकर को देखकर गायत्री दीवानखाने के द्वार तक आकर फिर उनके पास चली गई तो विद्या वहां न ठहर सकी। वह उन्माद की दशा में तेजी से ऊपर आई और अपने कमरे में फर्श पर गिर पड़ी। यह ईर्ष्या का भाव न था जिसमें अहित चिंता होती है, यह प्रीति का भाव न था, जिसमें रक्त की तृष्णा होती है। यह अपने आपको जलाने वाली आग थी, यह वह विघातक क्रोध था जो अपना ही होंठ चबाता है, अपना ही चमड़ा नोंचता है, अपने ही अंगों को दांतों से काटता है। वह भूमि पर पड़ी सारी रात रोती रही। अब मैं किसकी होकर रहूं? मेरा पति मेरा नहीं, मेरा घर अब मेरा घर नहीं। मैं अब अनाथ हूं, कोई मेरा पूछने वाला नहीं। ईश्वर ! तूने किस पाप का मुझे दण्ड दिया? मैंने तो अपने जानते किसी का बुरा नहीं चेता। तुमने मेरा सर्वनाश क्यों किया? मेरा सुहाग क्यों लूट लिया? यही मेरे पास एक धन था, इसी का मुझे अभिमान था, इसी का मुझे बल था। तुमने मेरा अभिमान तोड़ दिया, मेरा बल हर लिया। जब आग ही नहीं तो राख किस काम की? यह सुहाग की पिटारी है, यह सुहाग की डिबिया है,

इन्हें लेकर क्या करूं? विद्या ने सुहाग की पिटारी ताक पर से उतार ली और उसी आत्म-वेदना और नैराश्य की दशा में उसकी एक-एक चीज खिड़की से नीचे बाग में फेंक दी। कितना करुणाजनक दृश्य था ! आंखों से अश्रु-धारा बह रही थी और वह अपनी चूड़ियां तोड़-तोड़कर जमीन पर फेंक रही थी। वह उसके निर्बल क्रोध की चरम सीमा थी। वह एक ऐश्वर्यशाली पिता की पुत्री थी, यहां उसे इतना आराम भी न था, जो उसके मैके की महरियों को था, लेकिन उसके स्वभाव में संतोष और धैर्य था। अपनी दशा से सन्तुष्ट थी। ज्ञानशंकर स्वार्थसेवी थे, लोभी थे, निष्ठुर थे, कर्त्तव्यहीन थे, इसका उसे शोक था, मगर अपने थे। उनको समझाने का, उनका तिरस्कार करने का उसे अधिकार था। उनकी दुष्टता, नीचता और भोग-विलास का हाल सुनकर उसके शरीर में आग-सी लग गई थी। वह लखनऊ से दामिनी बनी हुई आई। वह ज्ञानशंकर पर तड़पना और उनकी कुवृत्तियों को भस्मीभूत कर देना चाहती थी, वह उन्हें व्यंग्य-शरों से छेदना और कटु शब्दों से उनके हृदय को बेधना चाहती थी। इस वक्त तक उसे अपने सुहाग का अभिमान था। रात के आठ बजे तक वह ज्ञानशंकर को अपना समझती थी, अपने को, उन्हें कोसने की, उन्हें जलाने की अधिकारिणी समझती थी, उसे उनको लज्जित, अपमानित करने का हक था, क्योंकि वह अपने थे। हमसे अपने घर मे आग लगते नहीं देखी जाती। घर चाहे मिट्टी का ढेर ही क्यों न हो, खण्डहर ही क्यों न हो, हम उसे आग में जलते नहीं देख सकते। लेकिन जब किसी कारण से वह घर अपना न रहे, तो फिर चाहे अग्नि-शिखा आकाश तक जाए, हमको शोक नहीं होता। रात के निंद्य-घृणित दृश्य ने विद्या के दिल से इस अपनेपन को, इस ममत्व को मिटा दिया था। अब उसे दु:ख था तो अपने अभाग्य का, शोक था तो अपनी अवलम्ब-हीनता का। उसकी दशा उस पतंग-सी थी, जिसकी डोर टूट गई हो, अथवा उस वृक्ष-सी, जिसकी जड़ कट गई हो।

विद्या सारी रात इसी उद्विग्न दशा में पड़ी रही। कभी सोचती लखनऊ चली जाऊं और वहीं जीवनाक्षेप करूं, कभी सोचती, जीकर करना ही क्या है, ऐसे जीने से मरना क्या बुरा है? सारी रात आंखों में कट गई। दिन निकल आया, लेकिन उसका उठने का जी न चाहता था। इतने में श्रद्धा आकर खड़ी हो गई और उसके श्रीहीन मुख की ओर देखकर बोली—क्या आज सारी रात जागती रही? आंखें लाल हो रही हैं?

विद्या ने आंखें नीची करके कहा—हां, आज नींद नहीं आई।

श्रद्धा—गायत्रीदेवी से कुछ बातचीत नहीं हुई? मुझे तो ढंग ही निराले दीखते हैं। तुम तो इनकी बड़ी प्रशंसा किया करती थीं !

विद्या—क्यों, कोई नई बातें देखी क्या?

श्रद्धा—नित्य ही देखती हूं। लेकिन रात जो दृश्य देखा और जो बातें सुनीं वह कहते लज्जा आती है। कोई ग्यारह बजे होंगे। मुझे अपने कमरे में पड़े-पड़े नीचे किसी के बोलचाल की आहट मिली। डरी कि कहीं चोर न आए हों। धीरे-से उठकर नीचे गई। दीवानखाने में लैम्प जल रहा था। मैंने शीशे के अंदर झांका, तो मन में कटकर रह गई। अब तुमसे क्या कहूं, मैं गायत्री को इतनी चंचल न समझती थी। कहां तो कृष्ण की उपासना करती हैं, भगतिन बनती हैं, कहां यह छिछोरापन ! मैं तो उन्हें देखते ही मन में खटक गई थी, पर यह न जानती थी कि इतने गहरे पानी में हैं।

विद्या—मैंने भी तो कुछ ऐसा तमाशा देखा था। तुम मेरे आने के बहुत देर पीछे गई थी।

मुझे लखनऊ में ही सारी कथा मालूम हो गई थी। उसी भयंकर परिणाम को रोकने कि लिए मैं वहां से दौड़ी आई, किंतु यहां का रंग देखकर हताश हो गई। ये लोग अब मंझधार में पहुंच चुके हैं, इन्हें बचाना दुस्तर है। लेकिन फिर कहूंगी कि इसमें गायत्री बहिन का दोष नहीं, सारी करतूत इन्हीं महाशय की है जो जटा बढ़ाये, पीतम्बर पहने भगतजी बने फिरते हैं। गायत्री बेचारी सीधी-सादी, सरल स्वभाव की स्त्री है। धर्म की ओर उसकी विशेष रुचि है, इसीलिए यह महाशय भी भगत बन बैठे और यह भेष धारण करके उस पर अपना मंत्र चलाया। ऐसा पापात्मा संसार में न होगा। बहिन तुमसे दिल की बात कहती हूं, मुझे इनकी सूरत से घृणा हो गई। मुझ पर ऐसा आघात हुआ है कि मेरा बचना मुश्किल है। इस घोर पाप का दंड अवश्य मिलेगा। ईश्वर न करे मुझे इन आंखों से कुल का सर्वनाश देखना पड़े। वह सोने की घड़ी होगी, जब संसार से मेरा नाता टूटेगा।

श्रद्धा–किसी की बुराई करना अच्छा तो नहीं है और इसीलिए मैं अब तक सब कुछ देखती हुई भी अंधी बनी रही, लेकिन अब बिना बोले नहीं रहा जाता। मेरा वश चले तो ऐसी कुटिलाओं का सिर कटवा लूं। यह भोलापन नहीं है, बेहयाई है। दिखाने के लिए भोली बनी बैठी हुई हैं। पुरुष हजार रसिया हो, हजार चतुर हो, हजार घातिया हो, हजार डोरे डाले, किंतु सती स्त्रियों पर उसका एक मंत्र भी नहीं चल सकता। वह आंख ही क्या जो एक निगाह में पुरुष की चाल-ढाल को ताड़ न ले। जलाना आग का गुण है, पर हरी लकड़ी को भी किसी ने जलते देखा है? हया स्त्रियों की जान है, इसके बिना वह सूखी लकड़ी हैं, जिन्हें आग की एक चिनगारी जलाकर राख कर देती है। इसे अपने पतिदेव की आत्मा पर दया न आई। उसे कितना क्लेश हो रहा होगा! इसके आने से मेरा घर अपवित्र हो गया। रात को दोनों प्रेमियों की बातों की भनक जो कान में पड़ी, उससे ऐसा कुछ मालूम होता है कि गायत्री माया को गोद लेना चाहती है।

विद्या ने भयभीत होकर कहा–माया को?

श्रद्धा–हां, शायद आज ही उसकी तैयारी है। शहर में नेवते भेजे जा रहे हैं।

विद्या की आंखों में आंसू की बड़ी-बड़ी बूंदें दिखाई दीं जैसे मटर की फली में दाने होते हैं। बोली–बहिन, तब तो मेरी नाव डूब गई। जो कुछ होना था हो चुका। अब सारी स्थिति समझ में आ गई। इस धूर्त ने इसलिए यह जाल फैलाया था, इसीलिए इसने यह भेष रचा है, इसी नीयत से इसने गायत्री की गुलामी की थी। मैं पहले से ही डरती थी। कितना समझाया, कितना मना किया, पर इसने मेरी एक न सुनी। अब मालूम हुआ कि इसके मन में क्या ठनी थी। आज सात साल से यह इसी धुन में पड़ा हुआ है। अभी तक मैं यह समझती थी कि इसे गायत्री के रंग-रूप, बनाव-चुनाव, बातचीत ने मोहित कर लिया है। वह निंद्य कर्म होने पर भी घृणा के योग्य नहीं है। जो प्राणी प्रेम कर सकता है वह धर्म, दया, विनय आदि सद्‌गुणों से शून्य नहीं हो सकता, प्रेम की ज्योति उसके हृदय को प्रकाशित करती रहती है, लेकिन जो प्राणी प्रेम का स्वांग भरकर उससे अपना कुटिल अर्थ सिद्ध करता है, जो टट्टी की आड़ से शिकार खेलता है, उससे ज्यादा नीच-नराधम कोई हो ही नहीं सकता। वह उस डाकू से भी गया-बीता है जो धन के लिए लोगों के प्राण हर लेता है। वह प्रेम जैसी पवित्र वस्तु का अपमान करता है। उसका पाप अक्षम्य है। मैं बेचारी गायत्री को अब भी निर्दोष समझती हूं। बहिन, अब इस कुल का सर्वनाश होने में विलंब नहीं है। जहां इतना अधर्म, इतना पाप, इतना छल-कपट हो वहां कल्याण कैसे हो सकता है?

अब मुझे पिताजी की चेतावनी याद आ रही है। उन्होंने चलते समय मुझसे कहा था—अगर तूने *यह आग न बुझाई तो तेरे वंश का नाम मिट जाएगा। हाय ! मेरे रोएं खड़े हो रहे हैं।* बेचारे माया पर क्या बीतेगी? यह हराम का माल, यह हराम की जायदाद उसकी जान की गाहक हो जाएगी, सर्प बनकर उसे डंस लेगी ! बहिन, मेरा कलेजा फटा जाता है। मैं अपने माया को इस आग से क्योंकर बचाऊं? वह मेरी आंखों की पुतली है, वही मेरे प्राणों का आधार है। यह निर्दयी पिशाच, यह वधिक मेरे लाल की गर्दन पर छुरी चला रहा है। कैसे उसे गोद में छिपा लूं? कैसे उसे हृदय में बिठा लूं? बाप होकर उसको विष दे रहा है। पाप का अग्निकुंड जलाकर मेरे लाल को उसमें झोंक देता है। मैं अपनी आंखों यह सर्वनाश नहीं देख सकती? बहिन, तुमसे आज कहती हूं, मुन्नी के जन्म के बाद इस पापी ने मुझे न जाने क्या खिलाकर मेरी कोख हर ली, न जाने कौन-सा अनुष्ठान कर दिया? वही विष इसने पहले ही खिला दिया होता, वही अनुष्ठान पहले ही करा दिया होता तो आज यह दिन क्यों आता? बांझ रहना इससे कहीं अच्छा है कि संतान गोद से छिन जाय। हाय ! मेरे लाल को कौन बचाएगा? मैं अब उसे नहीं बचा सकती। आग की लहरें उसकी ओर दौड़ी चली आती हैं। बहिन, तुम जाकर उस निर्दयी को समझाओ। अगर अब भी हो सके, तो मेरे माया को बचा लो। नहीं, अब तुम्हारे बस की बात नहीं है, यह पिशाच अब किसी के समझाने से न मानेगा। उसने मन में ठान लिया है, तो आज ही सब कुछ कर डालेगा।

यह कहते-कहते वह उठी और खिड़की से नीचे देखा। दीवानखाने के सामने वाले सहन की सफाई हो रही थीं, दरियां झाड़ी जा रही थीं। उसकी आंखें माया को खोज रही थीं, वह माया को अपने हृदय से चिपटाना चाहती थी। माया न दिखाई दिया। एक क्षण में मोटर सहन में आई, गायत्री और ज्ञानशंकर उस पर बैठे। माया भी एक मिनट में दीवानखाने से निकला और मोटर पर आ बैठा। विद्या ने आतुरता से पुकारा—माया, माया ! यहां आओ ! लेकिन या तो माया ने सुना ही नहीं या सुनकर ध्यान ही नहीं दिया। वह खड़ी पुकारती ही रही और मोटर हवा हो गई। विद्या को ऐसा जान पड़ा मानो पानी में पैर फिसल गए। वह तुरंत पछाड़ खाकर गिर पड़ी ! लेकिन श्रद्धा ने संभाल लिया, चोट नहीं आई।

थोड़ी देर तक विद्या मूर्च्छित दशा में पड़ी रही। श्रद्धा उसका सिर गोद में लिए बैठी रोती रही। मैं अपने को अभागिन समझती थी। इस दुखिया की विपत्ति और भी दुस्सह है। किसी रीति से उन्हें (प्रेमशंकर को) यह खबरें होतीं, तो वह अवश्य गायत्री को समझाते। गायत्री उनका आदर करती है। शायद मान जाती, लेकिन इस महापुरुष के सामने उनकी भेंट भी तो गायत्री से नहीं हो सकती। इसी भय से तो घर के बाहर निकल गए हैं कि काम में कोई विघ्न-बाधा न पड़े। कुछ नहीं, यह सब इसी की भूल है। ज्योंही मैंने इससे गोद लेने की बात कही, इसे उसी क्षण बाहर जाकर दोनों को फटकारना और माया का हाथ पकड़कर खींच लाना चाहिए था। मजाल थी कि मेरे पुत्र को कोई मुझसे छीन ले जाता ! सहसा विद्या ने आंखें खोल दीं और क्षीण स्वर से बोली—बहिन, अब क्या होगा?

श्रद्धा—होने को अब भी सब कुछ हो सकता है। करने वाला चाहिए।

विद्या—अब कुछ नहीं हो सकता। सब तैयारियां हो रही हैं, चाचाजी न जाने कैसे राजी हो गए !

श्रद्धा—मैं जरा जाकर कहारों से पूछती हूं कि कब तक आने को कह गए हैं।

विद्या—शाम होने के पहले ये लोग कभी न लौटेंगे। माया को हटा देने के लिए ही यह चाल चली गई है। इन लोगों ने जो बात मन में ठान ली है वह होकर रहेगी। पिताजी का शाप मेरी आंखों के सामने है। यह अनर्थ होना है और होगा।

श्रद्धा—जब तुम्हारी यह दशा है, तो जो कुछ न हो जाय, वह थोड़ा है।

विद्या ने कौतूहल से देखकर कहा—भला मेरे बस की कौन-सी बात है?

श्रद्धा—बस की बात क्यों नहीं है? अभी शाम को जब यह लोग लौटें, तब नीचे चली जाओ। माया का हाथ पकड़कर खींच लाओ। वह न आए तो सारी बातें खोलकर उससे कह दो। समझदार लड़का है, तुरंत उधर से उसका मन फिर जाएगा।

विद्या—(सोचकर) और यदि समझाने से भी न आवे? इन लोगों ने उसे खूब सिखा-पढ़ा रखा होगा।

श्रद्धा—तो रात को जब शहर के लोग जमा हों, जाकर भरी सभा में कह दो, यह सब मेरी इच्छा के विरुद्ध है। मैं अपने पुत्र को गोद नहीं देना चाहती। लोगों की सब चालें पट पड़ जाएं। तुम्हारी जगह मैं होती तो वह महनामथ मचते कि इनके दांत खट्टे हो जाते। क्या करूं, मेरा कुछ अधिकार नहीं है, नहीं तो इन्हें तमाशा दिखा देती।

विद्या ने निराश भाव से कहा—बहिन, मुझसे यह न होगा। मुझमें न इतनी सामर्थ्य है, न साहस। अगर और कुछ न हो, माया ही मेरी बातों को दुलख दे, तो उसी क्षण मेरा कलेजा फट जाएगा। भरी सभा में जाना तो मेरे लिए असंभव है। उधर पैर ही न उठेंगे या उठे भी तो वहां जाकर जबान बंद हो जाएगी।

श्रद्धा—पता नहीं ये लोग किधर गए हैं। एक क्षण के लिए गायत्री एकांत में मिल जाती तो एक बार मैं भी समझा देखती।

बावन

दीवानखाने में आनंदोत्सव हो रहा था। मास्टर अलहउदीन का अलौकिक चमत्कार लोगों को मुग्ध कर रहा था। द्वारों पर दर्शकों की भीड़ लगी हुई थी। सहन में ठट-के-ठट कंगले जमा थे। मायाशंकर को दिन भर के बाद मां की याद आई। वह आज आनंद से फूला न समाता था। जमीन पर पांव न पड़ते थे। दौड़-दौड़कर काम कर रहा था। ज्ञानशंकर बार-बार कहते, तुम आराम से बैठो! इतने आदमी तो हैं ही, तुम्हारे हाथ लगाने की क्या जरूरत है? पर उससे बेकार नहीं बैठा जाता था। कभी लैंप साफ करने लगता, कभी खासदान उठा लेता। आज सारे दिन मोटर पर सैर करता रहा। लौटते ही पद्मशंकर और तेजशंकर से सैर का वृत्तांत सुनाने लगा, यहां गए, वहां गए, यह देखा, वह देखा। उसे अतिशयोक्ति में बड़ा मजा आ रहा था। यहां से छुट्टी मिली तो हवन पर जा बैठा। इसके बाद भोजन में सम्मिलित हो गया। जब गाना आरंभ हुआ तो उसका चंचल चित्त स्थिर हुआ। सब लोग गाना सुनने में तल्लीन हो रहे थे, उसकी बातें सुनने वाला कोई न था। अब उसे याद आया, अम्मां को प्रणाम करने तो गया ही नहीं। ओहो! अम्मां मुझे देखते ही दौड़कर छाती से लगा लेंगी। आशीर्वाद देंगी। मेरे इन रेशमी कपड़ों की खूब तारीफ

करेंगी। वह ख्याली पुलाव पकाता, मुस्कराता हुआ विद्या के कमरे में गया। वहां सन्नाटा छाया हुआ था, एक धुंधली-सी दीवालगीर जल रही थी। विद्या पलंग पर पड़ी हुई थी। महरियां नीचे गाना सुनने चली गई थीं। लाला प्रभाशंकर के घर की स्त्रियों को न बुलावा दिया गया था और न वे आई थीं। श्रद्धा अपने कमरे में बैठी हुई कुछ पढ़ रही थी। माया ने मां के समीप जाकर देखा–उसके बाल बिखरे हुए थे, आंखों में आंसू बह रहे थे, होंठ नीले पड़ गए थे, मुख निस्तेज हो रहा था। उसने घबराकर कहा–अम्मां, अम्मां ! विद्या ने आंखें खोलीं और एक मिनट तक उसकी ओर टकटकी बांधकर देखती रही, मानो अपनी आंखों पर विश्वास नहीं है। तब वह उठ बैठी। माया को छाती से लगाकर उसका सिर अंचल से ढंक लिया, मानो उसे किसी आघात से बचा रही हो और उखड़े हुए स्वर में बोली–आओ मेरे प्यारे लाल ! तुम्हें आंख भर कर देख लूं। तुम्हारे ऊपर बहुत देर से जी लगा हुआ था। तुम्हें लोग अग्निकुंड की ओर ढकेले लिए जाते थे। मेरी छाती धड़-धड़ करती थी। बार-बार पुकारती थी, लेकिन तुम सुनते ही न थे। भगवान् ने तुम्हें बचा लिया। वही दीनों के रक्षक हैं। अब मैं तुम्हें न जाने दूंगी। यहीं मेरी आंखों के सामने बैठो। मैं देखती रहूंगी–देखो, देखो ! वह तुम्हें पकड़ने के लिए दौड़ा आता है, मैं किवाड़ बंद किए देती हूं। तुम्हारा बाप है, लेकिन उसे तुम्हारे ऊपर जरा भी दया नहीं आती। मैं किवाड़ बंद कर देती हूं। तुम बैठे रहो।

यह कहते हुए वह द्वार की ओर चली, मगर पैर लड़खड़ाए और अचेत होकर फर्श पर गिर पड़ी। माया उसकी दशा देखकर और उसकी बहकी-बहकी बातें सुनकर थर्रा गया। मारे भय के वहां एक क्षण भी न ठहर सका। तीर के समान कमरे से निकला और दीवानखाने में आकर दम लिया। ज्ञानशंकर मेहमानों के आदर-सत्कार में व्यस्त थे। उनसे कुछ कहने का अवसर न था। गायत्री चिक की आड़ में बैठी हुई सोच रही थी, इस अलहदीन को कीर्तन के लिए नौकर रख लूं, तो अच्छा हो। मेरे मंदिर की सारे देश में धूम मच जाय। माया ने आकर कहा–मौसीजी, आप चलकर जरा अम्मां को देखिए। न जाने कैसी हुई जाती हैं। उन्हें डेलिरियम-सा हो गया है।

गायत्री का कलेजा सन्न-सा हो गया। वह विद्या के स्वभाव से परिचित थी। यह खबर सुनकर उससे कहीं ज्यादा शंका हुई, जितनी सामान्य दशा में होनी चाहिए थी। वह कल से विद्या के बदले हुए तेवर देख रही थी। रात की घटना भी उसे याद आई। वह जीने की ओर चली। माया भी पीछे-पीछे चला। इस कमरे में इस समय कितनी ही चीजें बिखरी पड़ी थीं। गायत्री ने कहा–तुम यहीं बैठो, नहीं तो इनमें से एक चीज का भी पता न चलेगा। मैं अभी आती हूं। घबराने की कोई बात नहीं है, शायद उसे बुखार आ गया है।

गायत्री विद्या के कमरे में पहुंची। उसका हृदय बांसों उछल रहा था। उसे वास्तविक अवस्था का कुछ गुप्त ज्ञान-सा हो रहा था। उसने बहुत धीरे-से कमरे में पैर रखा। धुंधली दीवालगीर अब भी जल रही थी और विद्या द्वार के पास फर्श पर बेखबर पड़ी हुई थी। चेहरे पर मुर्दनी छाई हुई थी, आंखें बंद थीं और जोर-जोर से सांस चल रही थी। यद्यपि खूब सर्दी पड़ रही थी, पर उसकी देह पसीने से तर थी। माथे पर स्वेद-बिंदु झलक रहे थे, जैसे मुरझाए हुए फूल पर ओस की बूंद झलकती है। गायत्री ने लैंप तेज करके विद्या को देखा। होंठ नीले पड़ गए थे और हाथ-पैर धीरे-धीरे कांप रहे थे। उसने उसका सिर अपनी गोद में रख लिया, अपना सुगंध से डूबा हुआ रूमाल निकाल लिया और उसके मुंह पर झलने लगी। प्रेममय शोक-

वेदना से उसका हृदय विकल हो उठा। गला भर आया, बोली—विद्या, कैसा जी है?

विद्या ने आंखें खोल दीं और गायत्री को देखकर बोली—बहिन ! इसके सिवा वह और कुछ न कह सकी। बोलने की बार-बार चेष्टा करती थी, पर मुंह से आवाज न निकलती थी। उसके मुख पर एक अतीव करुणाजनक दीनता छा गई। उसने विवश दृष्टि से फिर गायत्री को देखा। आंखें लाल थीं, लेकिन उनमें उन्मत्तता या उग्रता न थी। उनमें आत्मज्योति झलक रही थी। वह विनय, क्षमा और शांति से परिपूर्ण थीं। हमारी अंतिम चितवनें हमारे जीवन का सार होती हैं, निर्मल और स्वच्छ, ईर्ष्या और द्वेष जैसी मलिनताओं से रहित। विद्या की जबान बंद थी, लेकिन आंखें कह रही थीं—मेरा अपराध क्षमा करना। मैं थोड़ी देर की मेहमान हूं। मेरी ओर से तुम्हारे मन में जो मलाल हो वह निकाल डालना। मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं है, मेरे भाग्य में जो कुछ बदा था, वह हुआ। तुम्हारे भाग्य में जो कुछ बदा है, वह होगा। तुम्हें अपना सर्वस्व सौंप जाती हूं। उसकी रक्षा करना।

गायत्री ने रोते हुए कहा—विद्या, तुम कुछ बोलती क्यों नहीं? कैसा जी है, डॉक्टर को बुलाऊं?

विद्या ने निराश दृष्टि से देखा और दोनों हाथ जोड़ लिए। आंखें बंद हो गईं। गायत्री व्याकुल होकर नीचे दीवानखाने में गई और माया से बोली—बाबूजी को ऊपर ले जाओ, मैं जाती हूं, विद्या की दशा अच्छी नहीं है।

एक क्षण में ज्ञानशंकर और माया दोनों ऊपर आए। श्रद्धा भी हलचल सुनकर दौड़ी हुई आई। ज्ञानशंकर ने विद्या को दो-तीन बार पुकारा। पर उसने आंखें न खोलीं। तब उन्होंने आल्मारी से गुलाबजल की बोतल निकाली और उसके मुंह पर कई छींटे दिए। विद्या की आंखें खुल गईं, किंतु पति को देखते ही उसने जोर से चीख मारी। यद्यपि हाथ-पांव अकड़े हुए थे। पर ऐसा जान पड़ा कि उनमें कोई विद्युत-शक्ति दौड़ गई। वह तुरंत उठकर खड़ी हो गई। दोनों हाथों से आंखें बंद किए द्वार की ओर चली। गायत्री ने उसे संभाला और पूछा—विद्या, पहचानती नहीं, बाबू ज्ञानशंकर हैं। विद्या ने सशंक और भयभीत नेत्रों से ज्ञानशंकर को देखा और पीछे हटते हुई बोली—अरे, यह फिर आ गया। ईश्वर के लिए मुझे इससे बचाओ ! गायत्री—विद्या, तबीयत को जरा संभालो ! तुमने कुछ खा तो नहीं लिया है? डॉक्टर को बुलाऊं?

विद्या—मुझे इससे बचाओ, ईश्वर के लिए मुझे इससे बचाओ !

गायत्री—पहचानती नहीं हो, बाबूजी हैं।

विद्या—नहीं-नहीं, यह पिशाच है। इसके लंबे बाल हैं। वह देखो दांत निकाले मेरी ओर दौड़ा आता है। हाय ! हाय ! इसे भगाओ, मुझे खा जाएगा। देखो-देखो, मुझे पकड़े लेता है। इसके सींग हैं, बड़े-बड़े दांत हैं, बड़े-बड़े नख हैं। नहीं, मैं न जाऊंगी। छोड़ दे दुष्ट, मेरा हाथ छोड़ दे। हाय ! मुझे अग्निकुंड में झोंके देता है। अरे देखो, इसने माया को पकड़ लिया। कहता है, बलिदान दूंगा। दुष्ट, तेरे हृदय में जरा भी दया नहीं है? उसे छोड़ दे, मैं चलती हूं, मुझे कुंड में झोंक दे, पर ईश्वर के लिए उसे छोड़ दे ! यह कहते-कहते विद्या फिर मूर्छित होकर गिर पड़ी। ज्ञानशंकर ने लज्जायुक्त चिंता से कहा—जहर खा लिया है। मैं अभी डॉक्टर प्रियनाथ के यहां जाता हूं। शायद उनके यत्न से अब भी इसके प्राण बच जाएं। मुझे क्या मालूम था कि माया को तुम्हारी गोद में देने का इसे इतना दुःख होगा। मैंने इसे आज तक न समझा। यह पवित्र आत्मा थी, देवी थी, मेरे जैसे लोभी, स्वार्थी मनुष्य के योग्य न थी।

यह कहकर वह आंख में आंसू भरे चले गए। श्रद्धा ने विद्या को उठाकर गोद में ले लिया। गायत्री पंखा झलने लगी। माया खड़ा रो रहा था। कमरे में सन्नाटा छाया हुआ था, वह सन्नाटा जो मृत्यु-स्थान के सिवा और कहीं नहीं होता। सब-की-सब विद्या को होश में लाने का प्रयास कर रही थीं, पर मुंह से कोई कुछ न कहता था। सबके दिलों पर मृत्यु-भय छाया हुआ था।

आध घंटे के बाद विद्या की आंखें खुलीं। उसने चारों ओर सहमे हुए नेत्रों से देखकर इशारे से पानी मांगा।

श्रद्धा ने गुलाब-जल और पानी मिलाकर कटोरा उसके मुंह से लगाया। उसने पानी पीने को मुंह खोला, लेकिन होंठ खुले रह गए, अंगों पर इच्छा का अधिकार नहीं रहा। एक क्षण में आंखों की पुतलियां फिर गईं।

श्रद्धा समझ गई कि यही अंतिम क्षण है। बोली—बहिन, किसी से कुछ कहना चाहती हो? माया तुम्हारे सामने खड़ा है।

विद्या की बुझी हुई आंखें श्रद्धा की ओर फिरीं, आंसू की चंद बूंदे गिरीं, शरीर में कंपन हुआ और दीपक बुझ गया।

एक सप्ताह पीछे मुन्नी भी हुड़क-हुड़ककर बीमार पड़ गई। रात-दिन अम्मां-अम्मां की रट लगाया करती। न कुछ खाती, न कुछ पीती, यहां तक कि दवाएं पिलाने के समय मुंह ऐसा बंद कर लेती कि किसी तरह न खोलती। श्रद्धा गोद में लिए पुचकारती-फुसलाती, पर सफल न होती। बेचारा माया गोद में लिए उसके मुरझाए हुए मुंह की ओर देखता और रोता। ज्ञानशंकर को तो अवकाश न मिलता था, पर लाला प्रभाशंकर दिन में कई बार डॉक्टर के पास जाते, दवाएं लाते, लड़की का मन बहलाने के लिए तरह-तरह के खिलौने लाते, पर मुन्नी उनकी ओर आंख उठाकर भी न देखती। गायत्री से उसे न जाने क्या चिढ़ थी। उसकी सूरत देखते ही रोने लगती। एक बार गायत्री ने गोद में उठा लिया तो उसे दांतों से काट लिया। चौथे दिन उसे ज्वर हो आया और तीन दिन बीमार रहकर मातृ-प्रेम की भूखी बालिका चल बसी।

विद्या के मरने के पीछे विदित हुआ कि वह कितनी बहुप्रिय और सुशीला थी। मुहल्ले की स्त्रियां श्रद्धा के पास आकर चार आंसू बहा जातीं। दिन भर उनका तांता लगा रहता। बड़ी बहू और उनकी बहू भी सच्चे दिल से उसका मातम कर रही थीं। उस देवी ने अपने जीवन में किसी को 'रे' या 'तू' नहीं कहा, महरियों से भी हंस-हंस बातें करती। नसीब चाहे खोटा था, पर हृदय में दया थी। किसी का दु:ख न देख सकती थी। दयाशीला ऐसी थी कि किसी भूखे भिखारी, दुखियारे को द्वार पर से फिरने न देती थी, धेले की जगह पैसा और आध पाव की जगह पाव देने की नीयत रखती थी। गायत्री इन स्त्रियों से आंखें चुराया करती। अगर वह कभी आ पड़ती तो सब की सब चुप हो जातीं और उसकी अवहेलना करतीं। गायत्री उनकी श्रद्धापात्र बनने के लिए उनके बालकों को मिठाइयां और खिलौने देती, विद्या की रो-रोकर चर्चा करती, पर उसका मनोरथ पूरा न होता था। यद्यपि कोई स्त्री मुंह पर कुछ न कहती थी। लेकिन उनके कटाक्ष व्यंग्य से भी अधिक मर्मभेदी होते थे। एक दिन बड़ी बहू ने गायत्री के मुंह पर कहा—न जाने ऐसा कौन-सा कांटा था जिसने उसके हृदय में चुभकर जान ली। दूध-पूत सब भगवान् ने दिया था, पर इस कांटे की पीड़ा न सही गई। यह कांटा कौन था? इस विषय में महिलाओं की आंखें उनकी वाणी से कहीं सशब्द थीं। गायत्री मन में कटकर रह गई।

वास्तव में कुटुंब या मुहल्ले की स्त्रियों को विद्या के मरने का जितना शोक था, उससे

कहीं ज्यादा गायत्री को था। डॉक्टर प्रियनाथ ने स्पष्ट कह दिया कि इसने विष खाया है। लक्षणों से भी यही बात सिद्ध होती थी। गायत्री इस खून से अपना हाथ रंगा हुआ पाती थी। उसकी सगर्व आत्मा इस कल्पना से कांप उठती थी। वह अपनी निज की महरियों से भी विद्या की चर्चा करते झिझकती थी। मौत की रात का दृश्य कभी न भूलता था। विद्या की वह क्षमाप्रार्थी चितवनें सदैव उसकी आंखों में फिरा करतीं। हां, यदि मुझे पहले मालूम होता कि उसके मन में मेरी ओर से इतना मिथ्या भ्रम हो गया है तो यह नौबत न आती। लेकिन फिर जब वह उसके पहले वाली रात की घटनाओं पर विचार करती, तो उसका मन स्वयं कहता था कि विद्या का संदेह करना स्वाभाविक था। नहीं, अब उसे कितनी ही छोटी-छोटी बातें ऐसी भी याद आती थीं जो उसने विद्या का मनोमालिन्य देखकर केवल उसे जलाने और सुलगाने के लिए की थीं। यद्यपि उस समय उसने ये बातें अपने पवित्र प्रेम की तरंग में की थीं और विद्या के ही सामने नहीं, सारी दुनिया के सामने करने पर तैयार थी, पर इन खून के छीटों से वह नशा उतर गया था। उसका मन स्वयं स्वीकार करता था कि वह विशुद्ध प्रेम न था, अज्ञात रीति से उसमें वासना का लेश आ गया था। विद्या मुझे देखकर सदय हो गई थी, लेकिन ज्ञानशंकर की सूरत देखते ही झिझकना, चीखना, चिल्लाना साफ कह रहा था कि उसने हमारे ही ऊपर जान दी। यह उसकी परम उदारता थी कि उसने मुझे निर्दोष समझा। इतने भयंकर उत्तरदायित्व का भार उसकी आत्मा को कुचले देता था। शनैः-शनैः इस भाव का उस पर इतना प्राबल्य हुआ कि भक्ति और प्रेम से उसे अरुचि होने लगी। उसके विचार में यह दुर्घटना इस बात का प्रमाण थी कि हम भक्ति के ऊंचे आदर्श से गिर गए, प्रेम के निर्मल जल में तैरते हुए हम भोग के सेवारों में उलझ गए। मानो यह हमारी आत्मा को सजग करने के लिए दैव-प्रेरित चेतावनी थी। अब ज्ञानशंकर उसके पास आते, तो उनसे खुलकर न मिलती। ज्ञानशंकर ने विद्या की दाह-क्रिया आप न की थी, यहां तक कि चिता में आग भी न दी थी। एक ब्राह्मण से सब संस्कार कराए थे। गायत्री को यह असज्जनता और हृदय-शून्यता नागवार मालूम होती थी। उसकी इच्छा थी कि विद्या की अंत्येष्टि प्रथानुसार और यथोचित सम्मान के साथ की जाय। उसकी आत्मा की शांति का अब यही एक उपाय था। उसने ज्ञानशंकर से इसका इशारा भी किया, पर वह टाल गए। अतएव वह उन्हें देखते ही मुंह फेर लेती थी, उन्हें अपनी वाणी का मंत्र मारने का अवसर ही न देती थी। उसे भय था कि उनकी यह उच्छृंखलता मुझे और भी बदनाम कर देगी। वह कम-से-कम संसार की दृष्टि में इस हत्या के अपराध से मुक्त रहना चाहती थी।

गायत्री पर अब ज्ञानशंकर के चरित्र के जौहर भी खुलने लगे। उन्होंने उससे अपने कुटुंबियों की इतनी बुराइयां की थीं कि वह उन्हें धैर्य और सहनशीलता की मूर्ति समझती थी। पर यहां कुछ और ही बात दिखाई देती थी। उन्होंने प्रेमशंकर को शोक सूचना तक न दी। लेकिन उन्होंने ज्योंही खबर पाई, तुरंत दौड़े हुए आए और सोलह दिनों तक नित्य प्रति आकर यथायोग्य संस्कार में भाग लेते रहे। लाला प्रभाशंकर संस्कारों की व्यवस्था में, ब्रह्मभोज में, बिरादरी की दावत में ऐसे व्यस्त थे मानो आपस में कोई द्वेष ही नहीं। बड़ी बहू के व्यवहार से भी सच्ची संवेदना प्रकट होती थी। लेकिन ज्ञानशंकर के रंग-ढंग से साफ जाहिर होता था कि इन लोगों का शरीक होना उन्हें नागवार है। वह उनसे दूर-दूर रहते थे, उनसे बात करते तो रुखाई से, मानो सभी उनके शत्रु हैं और इसी बहाने उनका अहित करना चाहते हैं। ब्रह्मभोज के दिन उनकी लाला प्रभाशंकर से खासी झपट हो गई। प्रभाशंकर आग्रह कर रहे थे, मिठाइयां घर में बनवाई जाएं।

ज्ञानशंकर कहते थे कि यह अनुपयुक्त है। संभव है, घर की मिठाइयां अच्छी बनें, पर खर्च बहुत पड़ेगा। बाजार से मामूली मिठाइयां मगवाईं जाएं। प्रभाशंकर ने कहा–खिलाते हो तो ऐसे पदार्थ खिलाओ कि खाने वाले भी समझें कि दावत खाई थी। ज्ञानशंकर ने बिगड़कर कहा–मैं ऐसा अहमक नहीं हूं कि इस वाह-वाह के लिए अपना घर लुटा दूं। नतीजा यह हुआ कि बाजार से सस्ते मूल्य की मिठाइयां आईं, ब्राह्मणों ने डटकर खाया तो, लेकिन सारे शहर में निंदा की।

गायत्री को जो बात सबसे अप्रिय लगती थी, वह अपनी नजरबंदी थी। ज्ञानशंकर उसकी चिट्ठियां खोलकर पढ़ लेते, इस भय से कि कहीं रायसाहब का कोई पत्र न हो। अगर वह प्रेमशंकर या लाला प्रभाशंकर से कुछ बातें करती तो वह तुरंत आकर बैठ जाते और ऐसी असंगत बात करने लगते कि साधारण बातचीत भी विवाद का रूप धारण कर लेती थी। उनके व्यवहार से स्पष्ट विदित होता था कि गायत्री के पास किसी अन्य मनुष्य का उठना-बैठना उन्हें असह्य है। इतना ही नहीं, वह यथासाध्य गायत्री को स्त्रियों से मिलने-जुलने का भी अवसर न देते। आत्माभिमान धार्मिक विषयों में लोकमत को जितना तुच्छ समझता है, लौकिक विषयों में लोकमत का उतना ही आदर करता है। गायत्री को विद्या के हत्यापराध से मुक्त होने के लिए मुहल्ले की स्त्रियों की सहानुभूति आवश्यक जान पड़ती थी। वह अपने बर्ताव से, विद्या की सुकीर्ति के बखान से, यहां तक कि ज्ञानशंकर की निंदा से भी यह उद्देश्य पूरा करना चाहती थी। षोडशी और ब्रह्मभोज के बाद एक दिन उसने नगर की कई कन्या पाठशालाओं का निरीक्षण किया और प्रत्येक को विद्या के नाम पर पारितोषिक देने के लिए रुपये दे आई, और यह केवल दिखावा नहीं था, विद्या से उसे बहुत मुहब्बत थी, उसकी मृत्यु का शोक था। विद्या को याद करके वह बहुधा एकांत में रो पड़ती, उसकी सूरत उसकी आंखों से कभी न उतरती थी। जब श्रद्धा और बड़ी बहू आदि विद्या की चर्चा करने लगतीं तो वह अदबदाकर उनकी बातें सुनने के लिए जा बैठती। उनके कटाक्ष और संकेतों की ओर उसका ध्यान नहीं जाता। ऐसे अवसरों पर जब ज्ञानशंकर उसे रियासत के किसी काम के बहाने से बुलाते तो उसे बहुत नागवार मालूम होता। वह कभी-कभी झुंझलाकर कहती, जाकर कह दो मुझे फुरसत नहीं है। जरा-जरा सी बातों में मुझसे सलाह लेने की क्या जरूरत है? क्या इतनी बुद्धि भी ईश्वर ने नहीं दी? रियासत ! रियासत !! उन्हें किसी के मरने-जीने की परवा न हो, सबके हृदय तो एक-से नहीं हो सकते। कभी-कभी वह केवल ज्ञानशंकर को चिढ़ाने के लिए श्रद्धा के पास घंटों बैठी रहती। वह अब उसकी कठपुतली बनकर न रहना चाहती थी। उसकी गौरवशील प्रकृति स्वच्छंद होने के लिए तड़पती थी। वह इस बंधन से निकल भागना चाहती थी। एक दिन वह ज्ञानशंकर से कुछ कहे बिना ही प्रेमशंकर की कृषिशाला में पहुंची और सारे दिन वहीं रही। एक दिन उसने लाला प्रभाशंकर और प्रेमशंकर की दावत की और सारा जेवनार अपने हाथों से पकाया। लालाजी को भी उसके पाक-नैपुण्य को स्वीकार करना पड़ा।

दो महीने गुजर गए। धीरे-धीरे महिलाओं को गायत्री पर विश्वास होने लगा। द्वेष और मालिन्य के परदे हटने लगे। उसके सम्मुख ऐसी-ऐसी बातें होने लगीं जिनकी भनक भी पहले उसके कानों में न पड़ने पाती थी। यहां तक कि वह इस समाज का एक प्रधान अंग बन गई। यहां प्राय: नित्य ही ज्ञानशंकर की चरित्र-चर्चा होती और फलत: उनका आदर गायत्री के हृदय से उठता जाता था। बड़ी बहू और उनकी बहू दोनों ज्ञानशंकर की द्वेष-कथा कहने लगतीं तो उसका अंत ही न होता था। श्रद्धा यद्यपि इतनी प्रगल्भा न थी, पर यह अनुमान करने के लिए

बहुत सूक्ष्मदर्शिता की जरूरत न थी कि उसे भी ज्ञानशंकर से विशेष स्नेह न था। ज्ञानशंकर की संकीर्णता और स्वार्थपरता दिनों-दिन गायत्री को विदित होने लगी। अब उसे ज्ञान होने लगा कि पिताजी ने क्यों मुझे ज्ञानशंकर से बचते रहने की जो ताकीद की थी उसमें भी कुछ-न-कुछ रहस्य अवश्य था। ज्ञानशंकर के प्रेम और भक्ति पर से भी उसका विश्वास उठने लगा। उसे संदेह होने लगा कि उन्होंने केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए तो यह स्वांग नहीं रचा ! अब उसे कितनी ही ऐसी बातें याद आने लगीं, जो इस संदेह को पुष्ट करती थीं। ज्यों-ज्यों यह संदेह बढ़ता था ज्ञानशंकर की ओर से उसका चित्त फिरता जाता था। ज्ञानशंकर गायत्री के चित्त की यह वृत्ति देखकर बड़े असमंजस में पड़े रहते थे। उनके विचार में यह मनोमालिन्य शांत करने का सर्वोत्तम उपाय यही था कि गायत्री को किसी प्रकार गोरखपुर खींच ले चलूं। लेकिन उससे यह प्रस्ताव करते हुए वह डरते थे। अपनी गोटी लाल करने के लिए वह गायत्री का एकांत-सेवन परमावश्यक समझते थे। मायाशंकर को गोद लेने से ही कोई विशेष लाभ न था। गायत्री की आयु पैंतीस वर्ष से अधिक न थी और कोई कारण न था वह अभी पैंतालीस वर्ष और जीवित न रहे। यह लंबा इंतजार ज्ञानशंकर जैसे अधीर पुरुषों के लिए असह्य था। इसलिए वह श्रद्धा और भक्ति का वही वशीकरण मंत्र मारकर गायत्री को अपनी मुट्ठी में करना चाहते थे।

एक दिन वे एक पत्र लिए हुए गायत्री के पास आकर बोले—गोरखपुर से यह बहुत जरूरी खत आया है। मुख्तार साहब ने लिखा है कि ये फसल के दिन हैं। आप लोगों का आना जरूरी है, नहीं तो सीर की उपज हाथ न लगेगी, नौकर-चाकर खा जाएंगे।

गायत्री ने रुष्ट होकर कहा—इसका उत्तर तो मैं पीछे दूंगी, पहले यह बताइए कि आप मेरी चिट्ठियां क्यों खोल लिया करते हैं?

ज्ञानशंकर सन्नाटे में आ गए, समझ गए कि मैं इसकी आंखों में उससे कहीं ज्यादा गिर गया हूं, जितना मैं समझता हूं। बगलें झांकते हुए बोले—मेरा अनुमान था कि इतनी आत्मिक घनिष्ठता के बाद इस शिष्टाचार की जरूरत नहीं रही। लेकिन आपको नागवार लगता है तो आगे ऐसी भूल न होगी।

गायत्री ने लज्जित होकर कहा—मेरा आशय यह नहीं था। मैं केवल यह चाहती हूं कि मेरी निज की चिट्ठियां न खोली जाया करें।

ज्ञानशंकर—इस धृष्टता का कारण यह था कि मैं अपनी आत्मा को आपकी आत्मा में संयुक्त समझता था, लेकिन ऐसा जान पड़ता है कि इस घर के द्वेष-पोषण जलवायु ने हमारे बीच में भी अंतर डाल दिया। भविष्य में ऐसा दुस्साहस न होगा। मालूम होता है कि मेरे कुदिन आये हैं ! देखें क्या-क्या झेलना पड़ता है।

गायत्री ने बात का पहलू बदलकर कहा—मुख्तार साहब को लिख दीजिए कि अभी हम लोग न आ सकेंगे, तहसील-वसूल शुरू कर दें।

ज्ञानशंकर—मेरे विचार में हम लोगों का वहां रहना जरूरी है।

गायत्री—तो आप चले जाएं। मेरे जाने की क्या जरूरत है? मैं अभी यहां कुछ दिन और रहना चाहती हूं।

ज्ञानशंकर ने हताश होकर कहा—जैसी आपकी इच्छा। लेकिन आपके बिना वहां एक-एक क्षण मुझे एक-एक साल मालूम होगा। कृष्णमंदिर तैयार ही है। वहां भजन-कीर्तन में जो आनंद आएगा, वह दुर्लभ है। मेरी इच्छा थी कि अबकी बरसात वृन्दावन में कटती। इस आशा

पर पानी फिर गया। आप मेरे जीवन-पथ की दीपक हैं, आप ही मेरे प्रेम और भक्ति की केन्द्रस्थल हैं। आपके बिना मुझे अपने चारों ओर अंधेरा दिखाई देगा। संभव है कि पागल हो जाऊं।

दो महीने पहले ऐसी प्रेमरसपूर्ण बातें सुनकर गायत्री का हृदय गद्गद हो जाता, लेकिन इतने दिनों यहां रहकर उसे उनके चरित्र का पूरा परिचय मिल चुका था। वह साज जो बेसुरे अलाप को भी रसमय बना देता था, अब बंद था। वह मंत्र का प्रतिहार करना सीख गई थी। बोली–यहां मेरी दशा उससे भी दुस्सह होगी, खोयी-खोयी-सी फिरूंगी, लेकिन करूं क्या? यहां लोगों के हृदय को अपनी ओर से साफ करना आवश्यक है। यह वियोग-दु:ख इसलिए उठा रही हूं, नहीं तो आप जानते हैं यहां मन बहलाव की क्या सामग्री है? देह पर अपना वश है, उसे अपने साथ रखूंगी। रहा मन, मन एक क्षण के लिए भी अपने कृष्ण का दामन न छोड़ेगा। प्रेम-स्थल में हजारों कोस की दूरी भी कोई चीज नहीं है, वियोग में भी मिलाप का आनंद मिलता है। हां, पत्र नित्य प्रति लिखते रहिएगा, नहीं तो मेरी जान पर बन आयेगी।

ज्ञानशंकर ने गायत्री को भेद की दृष्टि से देखा। यह वह भोली-भाली सरला गायत्री न थी। वह अब त्रिया-चरित्र में निपुण हो गई थी, दगा का जवाब दगा से देना सीख गई थी। समझ गए कि अब यहां मेरी दाल न गलेगी। इस बाजार में अब खोटे सिक्के न चलेंगे। यह बाजी जीतने के लिए कोई नयी चाल चलनी पड़ेगी, नये किले बांधने पड़ेंगे। गायत्री को यहां छोड़कर जाना शिकार को हाथ से खोना था। किसी दूसरे अवसर पर यह जिक्र छेड़ने का निश्चय करके वह उठे। सहसा गायत्री ने पूछा, तो कब तक जाने का विचार है? मेरे विचार में आपका प्रात:काल की गाड़ी से चला जाना अच्छा होगा।

ज्ञानशंकर ने दीन भाव से भूमि की ओर ताकते हुए कहा–अच्छी बात है।

गायत्री–हां, जब जाना ही है तब देर न कीजिए। जब तक इस मायाजाल में फंसे हुए हैं तब तक तो यहां के राग अलापने ही पड़ेंगे।

ज्ञानशंकर–जैसी आज्ञा।

यह कहकर वह मर्माहत भाव से उठकर चले गए। उनके जाने के बाद गायत्री को वही खेद हुआ जो किसी मित्र को व्यर्थ कष्ट देने हमको पर होता है, पर उसने उन्हें रोका नहीं।

तिरपन

श्रद्धा और गायत्री में दिन-दिन मेल-जोल बढ़ने लगा। गायत्री को अब ज्ञात हुआ कि श्रद्धा में कितना त्याग, विनय, दया और सतीत्व है। मेल-जोल से उनमें आत्मीयता का विकास हुआ, एक दूसरी से अपने हृदय की बातें कहने लगीं, आपस में कोई पर्दा न रहा। दोनों आधी-आधी रात तक बैठी हुई अपनी बीती सुनाया करतीं। श्रद्धा की बीती प्रेम और वियोग की करुण कथा थी, जिसमें आदि से अंत तक कुछ छिपाने की जरूरत न थी। वह रो-रोकर अपनी विरह-व्यथा का वर्णन करती, प्रेमशंकर की निर्दयता और सिद्धांत-प्रेम का रोना रोती, अपनी टेक पर भी पछताती। कभी प्रेमशंकर के सद्‌गुणों की अभिमान के साथ चर्चा करती। अपनी कथा कहने में, अपने हृदय के भावों को प्रकट करने में, उसे शांतिमय आनंद मिलता था ! इसके विपरीत

गायत्री की कथा प्रेम से शुरू होकर आत्म-ग्लानि पर समाप्त होती थी। विश्वास के उद्‌गार में भी उसे सावधान रहना पड़ता था, वह कुछ-न-कुछ छिपाने और दबाने पर मजबूर हो जाती थी। उसके हृदय में कुछ ऐसे काले धब्बे थे जिन्हें दिखाने का उसे साहस न होता था, विशेषत: श्रद्धा को जिसका मन और वचन एक था। वह उसके सामने प्रेम और भक्ति का जिक्र करते हुए शरमाती थी। वह जब ज्ञानशंकर के उस दुस्साहस को याद करती जो उन्होंने रात को थियेटर से लौटते समय किया था, तब उसे मालूम होता था कि उस समय तक मेरा मन शुद्ध और उज्ज्वल था, यद्यपि वासनाएं अंकुरित हो चली थीं। उसके बाद जो कुछ हुआ वह सब ज्ञानशंकर की काम-तृष्णा और मेरी आत्म-दुर्बलता का नतीजा था, जिसे मैं भक्ति कहती थी। ज्ञानशंकर ने केवल अपनी दुष्कामना पूरी करने के लिए मेरे सामने भक्ति का यह रंगीन जाल फैलाया। मेरे विषय में उनका यह लेख लिखना, धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में मुझे आगे बढ़ाना, उनकी वह अविरल स्वामि-भक्ति, वह तत्परता, वह आत्म-समर्पण, सब उनकी अभीष्ट-सिद्धि के मन्त्र थे। मुझे मेरे अहंकार ने डुबाया, मैं अपने ख्याति-प्रेम के हाथों मारी गई। मेरा वह धर्मानुराग, मेरी वह विवेकहीन मिथ्या भक्ति, मेरे वह आमोद-प्रमोद, मेरी वह आवेशमयी कृतज्ञता जिस पर मुझे अपने संयम और व्रत को बलिदान करने में लेशमात्र भी संकोच न होता था, केवल मेरे अहंकार की क्रीड़ाएं थीं। इस व्याध ने मेरी प्रकृति के सबसे भेद्य स्थान पर निशाना मारा। उसने मेरे व्रत और नियम को धूल में मिला दिया, केवल अपने ऐश्वर्य-प्रेम के हेतु मेरा सर्वनाश कर दिया। स्त्री अपनी कुप्रवृत्ति का दोष सदैव पुरुष के सिर पर रखती है, अपने को वह दलित और आहत समझती है। गायत्री के हृदय में इस समय ज्ञानशंकर का प्रेमालाप, वह मृदुल व्यवहार, वह सतृष्ण चितवनें तीर की तरह लग रही थीं ! वह कभी-कभी शोक और क्रोध से इतनी उत्तेजित हो जाती कि उसका जी चाहता कि उसने जैसे मेरे जीवन को भ्रष्ट किया है, वैसे ही मैं भी उसका सर्वनाश कर दूं।

एक दिन वह इन्हीं उद्दण्ड विचारों में डूबी हुई थी कि श्रद्धा आकर बैठ गई और उसके मुख की ओर देखकर बोली—मुख क्यों लाल हो रहा है? आंखों में आंसू क्यों भरे हैं?

गायत्री—कुछ नहीं, मन ही तो है।

श्रद्धा—मुझसे कहने योग्य नहीं है?

गायत्री—तुमसे छिपा ही क्या है, जो तुम पूछती हो। मैंने अपनी तरफ से छिपाया है, लेकिन तुम सब कुछ जानती हो। यहां कौन नहीं जानता है? उन बातों को जब याद करती हूं तो ऐसी इच्छा होती है कि एक ही कटार से अपनी और उसकी गर्दन काट डालूं। खून खौलने लगता है। मुझे जरा भी भ्रम न था कि वह इतना बड़ा धूर्त्त और पाजी है। बहिन, अब चाहे जो कुछ हो, मैं उससे अपनी आत्म-हत्या का बदला अवश्य लूंगी। मर्यादा तो यही कहती है कि विद्या की भांति विष खाकर मर जाऊं, लेकिन यह तो उसके मन की बात होगी, वह अपने भाग्य को सराहेगा और दिल खोलकर विभव का भोग करेगा। नहीं, मैं यह मूर्खता न करूंगी। नहीं, मैं उसे घुला-घुलाकर और रटा-रटाकर मारूंगी। मैं उसका सिर इस तरह कुचलूंगी, जैसे सांप का सिर कुचला जाता है। हा ! मुझ जैसी अभागिन संसार में न होगी।

यह कहते-कहते गायत्री फूट-फूटकर रोने लगी। जरा दम लेकर फिर उसी प्रवाह में बोली—श्रद्धा, तुम्हें विश्वास न आएगा, यह मनुष्य पक्का जादूगर है। इसने मुझ पर ऐसा मंत्र मारा कि मैं अपने को बिल्कुल भूल गई। मैं तुमसे अपनी सफाई नहीं कह रही हूं। वायुमंडल

में नाना प्रकार के रोगाणु उड़ा करते हैं। उनका विष उन्हीं प्राणियों पर असर करता है, जिनमें उनके ग्रहण करने का विकार पहले से ही मौजूद रहता है। मच्छर के डंक से सबको ताप और जूड़ी नहीं आती। वह बाह्य उत्तेजना केवल भीतर के विचार को उभाड़ देती है। ऐसा न होता तो आज समस्त संसार में एक भी स्वस्थ प्राणी न दिखाई देता। मुझमें यह विकृत पदार्थ था। मुझे अपने आत्म-बल पर घमंड था। मैं ऐंद्रिक भोग को तुच्छ समझती थी। इस दुरात्मा ने उसी दीपक से, जिससे मेरे अंधेरे घर में उजाला था, घर में आग लगा दी, जो तलवार मेरी रक्षा करती थी, वही तलवार मेरी गर्दन पर चला दी। अब मैं वही तलवार उसकी गर्दन पर चलाऊंगी। वह समझता होगा कि मैं अबला हूं, निर्बल हूं, उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकती। लेकिन मैं दिखा दूंगी कि अबला पानी की भांति द्रव होकर भी पहाड़ों को छिन्न-भिन्न कर सकती है। मेरे पूज्य पिता आत्मदर्शी हैं। उन्हें उसकी बुरी नीयत मालूम हो गई थी, इसी कारण उन्होंने मुझे उससे दूर रहने की ताकीद की थी ! उन्होंने अवश्य विद्या से यह बात कही होगी। इसलिए विद्या यहां मुझे सचेत करने आई थी ! लेकिन शोक ! मैं नशे में ऐसी चूर थी कि पिताजी की चेतावनी की भी परवा न की। इस धूर्त ने मुझे उनकी नजरों में भी गिरा दिया। अब वह मेरा मुंह देखना भी न चाहेंगे।

गायत्री यह कहकर फिर शोकमग्न हो गई। श्रद्धा की समझ में न आता था कि इसे कैसे सांत्वना दूं। अकस्मात् गायत्री उठ खड़ी हुई। संदूक में से कलम, दावात, कागज निकाल लाई और बोली—बहिन, जो कुछ होना था हो चुका, इसके लिए जीवनपर्यंत रोना है। विद्या देवी थी, उसने अपमान से मर जाना अच्छा समझा। मैं पिशाचनी हूं, मौत से डरती हूं। लेकिन अब से यह जीवन, त्याग और पश्चात्ताप पर समर्पण होगा। मैं अपनी रियासत से इस्तीफा दे देती हूं, मेरा उस पर कोई अधिकार नहीं है। तीन साल से उस पर मेरा कोई हक नहीं है। मैं इतने दिनों तक बिना अधिकार ही उसका उपभोग करती रही। यह रियासत मेरे पतिव्रत-पालन का उपहार थी। यह ऐश्वर्य और संपत्ति मुझे इसलिए मिली थी कि कुल-मर्यादा की रक्षा करती रहूं, मेरी पतिभक्ति अचल रहे। वह मर्यादा कितने महत्त्व की वस्तु होगी जिसकी रक्षा के लिए करोड़ों की संपत्ति प्रदान की गई। लेकिन मैंने उस मर्यादा को भंग कर दिया, उस अमूल्य रत्न को अपनी विलासिता की भेंट कर दिया। अब मेरा उस रियासत पर कोई हक नहीं है। उस घर में पांव रखने का भी मुझे स्वत्व नहीं, वहां का एक-एक दाना मेरे लिए त्याज्य है। मैं इतने दिनों हराम के माल पर ऐश करती रही।

यह कहकर गायत्री कुछ लिखने लगी, लेकिन श्रद्धा ने कागज उठा लिया और बोली—खूब सोच-समझ लो, इतना उतावलापन अच्छा नहीं।

गायत्री—खूब सोच लिया है। मैं इसी क्षण ये मंगनी के वस्त्र फेंकूंगी और किसी ऐसे स्थान पर जा बैठूंगी, जहां कोई मेरी सूरत न देखे।

श्रद्धा—भला सोचो तो दुनिया क्या कहेगी? लोग भांति-भांति की मनमानी कल्पनाएं करेंगे। मान लिया तुमने इस्तीफा ही दे दिया तो यह क्या मालूम है कि जिनके हाथों में रियासत जाएगी, वे उसका सदुपयोग करेंगे। अब तो तुम्हारे लोक और परलोक की भलाई इसी में है कि शेष जीवन भगवत-भजन में काटो, तीर्थयात्रा करो, साधु-संतों की सेवा करो। संभव है कि कोई ऐसे महात्मा मिल जाएं, जिनके उपदेश से तुम्हारे चित्त को शांति हो। भगवान् ने तुम्हें धन दिया है, उससे अच्छे काम करो। अनाथों और विधवाओं को पालो, धर्मशालाएं बनवाओ, तालाब

और कुएं खुदवाओ, भक्ति को छोड़कर ज्ञान पर चलो। भक्ति का मार्ग सीधा है, लेकिन कांटों से भरा हुआ है। ज्ञान का मार्ग टेढ़ा है, लेकिन साफ है।

श्रद्धा का ज्ञानोपदेश अभी समाप्त न होने पाया था कि एक महरी ने आकर कहा—बहूजी, वह डिपटियाइन आई हैं, जो पहले यहीं रहती थीं। यहीं लिवा लाऊं?

श्रद्धा—शीलमणि तो नहीं हैं?

महरी—हां, हां वही हैं सांवली ! पहले तो गहनों से लदी रहती थीं, आज तो एक मुंदरी भी नहीं। बड़े आदमियों का मन गहने से भी फिर जाता है।

श्रद्धा—हां, यहीं लिवा लाओ।

एक क्षण में शीलमणि आकर खड़ी हो गई। केवल एक उजली साड़ी पहने हुए थीं। गहनों का तो कहना ही क्या, अधरों पर पान की लाली भी न थी। श्रद्धा उठकर उनके गले मिली और पूछा—सीतापुर से कब आईं?

शील—आज ही आई हूं, और इसीलिए आई हूं कि लाला ज्ञानशंकर से दो-दो बातें करूं। जब से बेचारी विद्या के विष खाकर जान देने का हाल सुना है, कलेजे में एक आग-सी सुलग रही है। यह सब उसकी उसी बहिन की करामात है जो रानी बनी फिरती है। उसी ने यह विष दिया होगा।

शीलमणि ने गायत्री की ओर देखा न था और देखा भी हो तो पहचानती न थी। श्रद्धा ने दांतों तले जीभ दबाई और छाती पर हाथ रखकर आंखों से गायत्री को इशारा किया। शीलमणि ने चौंककर बाईं तरफ देखा तो एक स्त्री सिर झुकाए बैठी हुई थी। उसकी प्रतिभा, सौंदर्य और वस्त्राभूषण देखकर वह समझ गई कि गायत्री यही है। उसकी छाती धक्-से हो गई, लेकिन उसके मुख से ऐसी बातें निकल गई थीं कि जिनको फेरना या संभालना मुश्किल था। वह जलता हुआ ग्रास मुंह में रख चुकी थी और उसे निगलने के सिवा दूसरा उपाय न था। यद्यपि उसका क्रोध न्याय-संगत था, पर शायद गायत्री के मुंह पर वह ऐसे कटु शब्द मुंह से न निकाल सकती। लेकिन अब तीर कमान से निकल चुका था इसलिए उसके क्रोध ने हेकड़ी का रूप धारण किया, लज्जित होने के बदले और उद्दंड हो गई। गायत्री की ओर मुंह करके बोली—अच्छा, रानी साहिबा तो यहीं विराजमान हैं। मैंने आपके विषय में जा कुछ कहा है वह आपको अवश्य अप्रिय लगा होगा, लेकिन उसके लिए मैं आपसे क्षमा नहीं मांग सकती। यही बातें मैं आपके मुंह पर कह सकती थी और एक मैं क्या, संसार यही कह रहा है। मुंह से चाहे कोई न कहे, किंतु सबके मन में यही बात है। लाला ज्ञानशंकर से जिसे एक बार भी पाला पड़ चुका है, वह उसे अग्राह्य नहीं कर सकता। मेरे बाबूजी इनके साथ के पढ़े हुए हैं और इन्हें खूब समझते हैं।

जब वह मैजिस्ट्रेट थे तो उन्होंने असामियों पर इजाफा लगान का दावा किया था। महीनों मेरी खुशामद करते रहे कि मैं बाबूजी से इनकी डिगरी करवा दूं। मैं क्या जानूं, इनके चकमे में आ गई। बाबूजी पहले तो बहुत आनाकानी करते रहे, लेकिन जब मैंने जिद्द की तो राजी हो गए थे। कुशल यही हुई कि इसी बीच में मुझे इनके अत्याचार का हाल मालूम हो गया और डिगरी न होने पाई, नहीं तो कितने दीन असामियों की जान पर बन आती। दावा डिसमिस हो गया। इस पर यह इतने रुष्ट हुए कि समाचार-पत्रों में लिख-लिखकर बाबूजी को बदनाम किया। वह अब पत्रों में इनके धर्मोत्साह की खबरें पढ़ते थे तो कहते थे, महाशय अब जरूर कोई-न-कोई स्वांग रच रहे हैं। गोरखपुर में सनातन-धर्म के उत्सव पर जो धूमधाम हुई और बनारस

में कृष्णलीला का जो नाटक खेला गया, उनका वृत्तांत पढ़कर बाबूजी ने खेद के साथ कहा था, यह महाशय रानी साहिबा को सब्जबाग दिखा रहे हैं। इसमें अवश्य कोई-न-कोई रहस्य है। लालाजी मुझे मिल जाते तो ऐसे आड़े हाथों लेती कि वह भी याद करते।

गायत्री खिड़की की ओर ताक रही थी, यहां तक कि उसकी दृष्टि से खिड़की भी लुप्त हो गई। उसके अंत:करण से पश्चात्ताप और ग्लानि की लहरें उठ-उठकर कंठ तक आती थीं और उसके नेत्र-रूपी नौका को झकोरे देकर लौट जाती थीं। वह संज्ञाहीन हो गई थी। सारी चैतन्य शक्तियां शिथिल हो गई थीं। श्रद्धा ने उसके मुख की ओर देखा, आंसू न रोक सकी। इस अभागिनी दुखिया पर उसे कभी इतनी दया न आई। वहां बैठना तक अन्याय था। वह और कुछ न कर सकी, शीलमणि को अपने साथ लेकर एक दूसरे कमरे में चली गई। वहां दोनों में देर तक बातचीत होती रही। श्रद्धा हत्या का सारा भार ज्ञानशंकर के सिर रखती थी। शीलमणि गायत्री को भी दोष का भागी समझती थी। दोनों ने अपने-अपने पक्ष को स्थिर किया। अंत में श्रद्धा का पल्ला भारी रहा। इसके बाद शीलमणि ने अपना वृत्तांत सुनाया। संतानोत्पत्ति के निमित्त कौन-कौन से यत्न किए, किन-किन दाइयों को दिखाया, किन-किन डॉक्टरों से दवा कराई? यहां तक कि वह श्रद्धा को अपने गर्भवती हो जाने का विश्वास दिलाने में सफल हो गई, किंतु महाशोक ! सातवें महीने में गर्भपात हो गया, सारी आशाएं धूल में मिल गईं। श्रद्धा ने सच्चे हृदय से संवेदना प्रकट की। फिर कुछ देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। श्रद्धा ने पूछा—अब डिप्टी साहब का क्या इरादा है?

शीलमणि—अब तो इस्तीफा देकर आए हैं और बाबू प्रेमशंकर के साथ रहना चाहते हैं। उन्हें इन पर असीम भक्ति है। पहले जब इस्तीफा देने की चर्चा करते, तो समझती थी काम से जी चुराते हैं, राजी न होती थी, लेकिन इन तीन वर्षों में मुझे अनुभव हो गया कि इस नौकरी के साथ आत्म-रक्षा नहीं हो सकती। जाति के नेतागण प्रजा के उपकार के लिए जो उपाय करते हैं, सरकार उसी में विघ्न डालती है, उसे दबाना चाहती है। उसे अब भय होता है कि कहीं यहां के लोग इतने उन्नत न हो जाएं कि उसका रोब न मानें। इसीलिए वह प्रजा के भावों को दबाने के लिए, उसका मुंह बंद करने को नए-नए कानून बनाती रहती है। नेताओं ने देश को दरिद्रता के चंगुल से छुड़ाने के लिए चरखों और करघों की व्यवस्था की। सरकार उसमें बाधा डाल रही है। स्वदेशी कपड़े का प्रचार करने के लिए दुकानदारों और ग्राहकों को समझाना अपराध ठहरा दिया गया है। नशे की चीजों का प्रचार कम करने के लिए नशेबाजों और ठेकेदारों से कुछ कहना-सुनना भी अपराध है। अभी पिछले सालों जब यूरोप में लड़ाई हुई थी तो सरकार ने प्रजा से कर्ज लिया। कहने को तो कर्ज था पर असल में जरूरी टैक्स था। अधिकारियों ने दीन-दरिद्र प्रजा पर नाना प्रकार के अत्याचार किए, तरह-तरह के दबाव डाले, यहां तक कि उन्हें अपने हल-बैल बेचकर सरकार को कर्ज देने पर मजबूर किया। जिसने इंकार किया उसे या तो पिटवाया या कोई झूठा इल्जाम लगाकर फंसा दिया। बाबूजी ने अपने इलाके में किसी के साथ सख्ती नहीं की। कह दिया, जिसका जी चाहे कर्ज दे, जिसका न जी चाहे न दे। नतीजा यह हुआ कि और इलाकों से तो लाखों रुपये वसूल हुए, इनके इलाके से बहुत कम मिला, इस पर जिले के हाकिम ने नाराज होकर इनकी शिकायत कर दी। इनसे यह ओहदा छीन लिया गया, दर्जा घटा दिया गया। जब मैंने यह हाल देखा तो आप ही जिद्द करके इस्तीफा दिलवा दिया। जब प्रजा की कमाई खाते हैं, तो प्रजा के फायदे का ही काम करना चाहिए। यह क्या कि जिसकी कमाई

खाएं, उसी का गला दबाएं! यह तो नमकहरामी है, घोर नीचता। यह तो वह करे जिसकी आत्मा मर गई हो, जिसे पेट पालने के सिवा लोक-परलोक की कुछ भी चिंता न हो। जिसके हृदय में जाति-प्रेम का लेशमात्र है, वह ऐसे अन्याय नहीं कर सकता। भला तो होता है सरकार का, रोब और बल तो उसका बढ़ता है, जेब तो अंग्रेज व्यापारियों के भरते हैं और पाप के भागी होते हैं यह पेट के बंदे नौकर, यह स्वार्थ के दास अधिकारी और फिर हमें नौकरी की परवा ही क्या है? घर में खाने को बहुत है। दो-चार को खिलाकर खा सकते हैं! अब तो पक्का इरादा करके आए हैं कि यहीं बाबू प्रेमशंकर के साथ रहें और अपने से जहां तक हो सके, प्रजा की भलाई करें। अब यह बताओ, तुम कब तक रूठी रहोगी? क्या इसी तरह रो-रोकर उम्र काटने की ठान ली है।

श्रद्धा--प्रारब्ध में जो कुछ है, उसे कौन मिटा सकता है?

शील--कुछ नहीं, यह तुम्हारी व्यर्थ की टेक है। मैं अबकी तुम्हें घसीट ले चलूंगी। उस उजाड़ में मुझसे अकेले न रहा जाएगा। हम और तुम दोनों रहेंगी तो सुख के दिन कटेंगे। अवसर पाते ही मैं उन महाशय की भी खबर लूंगी। संसार के लिए तो जान देते फिरते हैं और घर वालों की खबर ही नहीं लेते। जरा-सा प्रायश्चित करने में क्या शान घटी जाती है?

श्रद्धा--तुम अभी उन्हें जानती नहीं हो। वह सब कुछ करेंगे पर प्रायश्चित न करेंगे। वह अपने सिद्धांत को न तोड़ेंगे। तिस पर भी वह मेरी ओर से निश्चिंत नहीं हैं। ज्ञानशंकर जब से गोरखपुर रहने लगे तब से प्राय: रोज यहां एक बार आ जाते हैं। अगर काम पड़े तो यहां रहने में भी आपत्ति न होगी, लेकिन अपने नियम उन्हें प्राणों से भी प्रिय हैं।

शीलमणि ने आकाश की तरफ देखा तो बादल घिर आये थे। घबराकर बोली--कहीं पानी न बरसने लगे। अब चलूंगी। श्रद्धा ने उसे रोकने की बहुत चेष्टा की, लेकिन शीलमणि ने न माना। आखिर उसने कहा--जरा चलकर उनके आंसू तो पोंछ दो। बेचारी तभी से बैठी रो रही होंगी।

शीलमणि--रोना तो उनके नसीब में लिखा है। अभी क्या रोयी हैं! ऐसे आदमी की यही सजा है। नाराज होकर मेरा क्या बना लेंगी? रानी होंगी, तो अपने घर की होंगी।

शीलमणि को विदा करके श्रद्धा झेंपती हुई गायत्री के पास आई। वह डर रही थी कि कहीं गायत्री मुझ पर संदेह न करने लगी हो कि सारी करतूत इसी की है। उसने डरते-डरते अपराधी की भांति कमरे में कदम रखा। गायत्री ने प्रार्थी दृष्टि से उसे देखा, पर कुछ बोली नहीं। बैठी हुई कुछ लिख रही थी। मुख पर शोक के साथ दृढ़ संकल्प की झलक थी। कई मिनट तक वह लिखने में ऐसी मग्न थी, मानो श्रद्धा के आने का उसे ज्ञान ही न था। सहसा बोली--बहिन, अगर तुम्हें कष्ट न हो, तो जरा माया को बुला दो और मेरी महरियों को भी पुकार लेना।

श्रद्धा समझ गई कि इसके मन में कुछ और ठन गई! कुछ पूछने का साहस न हुआ। जाकर माया और महरियों को बुलाया। एक क्षण में माया आकर गायत्री के सामने खड़ा हो गया। महरियां बाग में झूल रही थीं। भादों का महीना था, घटा छायी थी, कजली बहुत सुहानी लगती थी।

गायत्री ने माया को सिर से पांव तक देखकर कहा--तुम जानते हो कि किसके लड़के हो?

माया ने कौतूहल से कहा--इतना भी नहीं जानता?

गायत्री—मैं तुम्हारे मुंह से सुनना चाहती हूं, जिससे मुझे मालूम हो जाए कि तुम मुझे क्या समझते हो?

माया पहले इस प्रश्न का आशय न समझा था। इतना इशारा पाकर सचेत हो गया। बोला—पहले लाला ज्ञानशंकर का लड़का था, अब आपका लड़का हूं।

गायत्री—इसलिए तुम्हें प्रत्येक विषय में ईश्वर के पीछे मेरी ही इच्छा को मान्य समझना चाहिए।

माया—निस्संदेह।

गायत्री—बाबू ज्ञानशंकर को तुम्हारे पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा से कोई संबंध नहीं है, यह मेरा अधिकार है।

माया—आपके ताकीद की जरूरत नहीं, मैं स्वयं उनसे दूर रहना चाहता हूं। जबसे मैंने अम्मां को अंतिम समय उनकी सूरत देखते ही चीखकर भागते देखा, तभी से उनका सम्मान मेरे हृदय से उठ गया।

गायत्री—तो तुम उससे कहीं ज्यादा चतुर हो, जितना मैं समझती थी। मैं आज बद्रीनाथ की यात्रा करने जा रही हूं। कुछ पता नहीं कब लौटूं। मैं चाहती हूं कि तुम्हें बाबू प्रेमशंकर की निगरानी में रखूं। यह मेरी आज्ञा है कि तुम उन्हें अपना पिता समझो और उनके अनुगामी बनो। मैंने उनके नाम यह पत्र लिखा दिया है? इसे लेकर तुम उनके पास जाओ। वह तुम्हारी शिक्षा की उचित व्यवस्था कर देंगे। तुम्हारी स्थिति के अनुसार तुम्हारे आराम और जरूरत की आयोजना भी करेंगे। तुमको थोड़े ही दिनों में ज्ञात हो जाएगा कि तुम अपने पिता से कहीं ज्यादा सुयोग्य हाथों में हो। संभव है कि लाला प्रेमशंकर को तुमसे इतना प्रेम न हो, जितना तुम्हारे पिता को है, लेकिन इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि तुम्हें अपने आने वाले कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए जितनी क्षमता उनके द्वारा प्राप्त हो सकती है, तुम्हारे आचार-विचार और चरित्र का जैसा उत्तम संगठन वह कर सकते हैं, कोई और नहीं कर सकता। मुझे आशा है कि वह इस भार को स्वीकार करेंगे। इसके लिए तुम और मैं दोनों ही उनके बाध्य होंगे। यह दूसरा पत्र मैंने बाबू ज्ञानशंकर को लिखा है। मेरे लौटने तक वह रियासत के मैनेजर होंगे। मैंने उन्हें ताकीद कर दी है कि बाबू प्रेमशंकर के पास प्रति मास दो हजार रुपये भेज दिया करें। यह पत्र डाकखाने भिजवा दो।

इतने में चारों महरियां आईं, गायत्री ने उनसे कहा—मैं आज बद्रीनाथ की यात्रा करने जा रही हूं। तुममें से कौन मेरे साथ चलती है?

महरियों ने एक स्वर से कहा—हम सब-की-सब चलेंगी।

'नहीं, मुझे केवल एक की जरूरत है। गुलाबो, तुम मेरे साथ चलोगी?'

'सरकार जैसा हुक्म दें। बाल-बच्चों को महीने से नहीं देखा है।'

'तो तुम घर जाओ। तुम चलोगी, केसरी?'

'कब तक लौटना होगा?'

'यह नहीं कह सकती।'

'मुझे चलने में कोई उजुर नहीं है, पर सुनती हूं वहां का पहाड़ी पानी बहुत लगता है।'

'तो तुम भी घर जाओ। तू चलेगी अनसूया?'

'सरकार, मेरे घर में कोई मर्द-मानुस नहीं हैं। घर चौपट हो रहा है। वहां चलूंगी तो छटांक

भर दाना भी न मिलेगा।'

'तो तुम भी घर जाओ। अब तो तुम्हीं रह गई, राधा, तुमसे भी पूछ लूं, चलोगी मेरे साथ?'

'हां, सरकार चलूंगी।'

'आज ही चलना होगा।'

'जब सरकार का जी चाहे, चलें।'

'तुम्हें बीस बीघे मुआफी मिलेगी।'

तीनों महरियों ने लज्जित होकर कहा—सरकार, चलने को हम सभी तैयार हैं। आपका दिया खाती हैं, तो साथ किसके रहेंगी?

'नहीं, तुम लोगों की जरूरत नहीं। मेरे साथ अकेली राधा रहेगी। तुम सब कृतघ्न हो, तुमसे अब मेरा कोई नाता नहीं।'

यह कहकर गायत्री यात्रा की तैयारी करने लगी। राधा खड़ी देख रही थी, पर कुछ बोलने का साहस न होता था। ऐसी दशा में आदमी अव्यवस्थित-सा हो जाता है। जरा-सी बात पर झुंझला पड़ता है और जरा-सी बात पर प्रसन्न हो जाता है।

चौवन

बाबू ज्ञानशंकर गोरखपुर आए, लेकिन इस तरह जैसे लड़की ससुराल जाती है। वह प्राय: शोक और चिंता में पड़े रहते। उन्हें गायत्री से सच्चा प्रेम न सही, लेकिन वह प्रेम अवश्य था जो शराबियों को शराब से होता है। उसके बिना उनका यहां जरा भी जी न लगता। सारे दिन अपने कमरे में पड़े कुछ-न-कुछ सोचते या पढ़ते रहते थे। न कहीं सैर करने जाते, न किसी से मिलते-जुलते। कृष्ण मंदिर की ओर भूलकर भी न जाते। उन्हें बार-बार यही पछतावा होता कि मैंने गायत्री को बनारस जाने से क्यों नहीं रोका? यह सब उसी भूल का फल है। श्रद्धा, प्रेमशंकर और बड़ी बहू ने यह सारा विष बोया है। उन्होंने गायत्री के कान भरे, मेरी ओर से मन मैला किया। कभी-कभी उद्भ्रांत वासनाओं पर क्रोध आता और वह इस नैराश्य में प्रारब्ध के कायल हो जाते थे। हरि-इच्छा भी अवश्य कोई प्रबल वस्तु है, नहीं तो क्या मेरे सारे खेल यों ही बिगड़ जाते? कोई चाल सीधी ही न पड़ती? धन-लालसा ने मुझसे क्या-क्या नहीं कराया? मैंने अपनी आत्मा की, कर्म की, नियमों की हत्या की, और एक सती-साध्वी स्त्री के खून से अपने हाथों को रंगा, पर प्रारब्ध पर विजय न पा सका। अभीष्ट का मार्ग अवश्य दिखाई दे रहा है, पर मालूम नहीं, वहां तक पहुंचना नसीब होगा या नहीं। इस क्षोभ और नैराश्य की दशा में उन्हें बार-बार गायत्री की याद आती, उसकी प्रतिभा-मूर्ति आंखों में फिरा करती, अनुराग में डूबी हुई उसकी बातें कानों में गूंजने लगतीं, हृदय से एक ठंडी आह निकल जाती।

ज्ञानशंकर को अब नित्य यह धड़का लगा रहता कि कहीं गायत्री मुझे अलग न कर दे। वह चिट्ठियां खोलते डरते कि कहीं गायत्री का कोई पत्र न निकल आए। उन्होंने उसको कई पत्र लिखे थे, पर एक का भी उत्तर न आया। इससे उन्हें और भी उलझन होती थी! मायाशंकर के पत्र अवश्य आते थे, पर इससे उन्हें शांति न मिलती थी। बनारस में क्या हो रहा है, यह जानने

के लिए वह व्यग्र रहते थे, पर ऐसा कोई न था जो वहां के समाचार विस्तारपूर्वक उनको लिखता। कभी-कभी वह स्वयं बनारस जाने का विचार करते, लेकिन डरते कि न जाने इसका क्या नतीजा हो। यहां तो उसकी आंखों से दूर पड़ा हूं, संभव है कि कुछ दिनों में उसका क्रोध शांत हो जाय। मुझे देखकर वह कहीं और भी अप्रसन्न न हो जाय, तो रही-सही आशा भी जाती रहे।

इस भांति तीन-चार महीने बीत गए। भादों का महीना था। जन्माष्टमी आ रही थी। शहर में उत्सव मनाने की तैयारी हो रही थी। कई वर्षों से गायत्री के यहां यह उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था। दूर-दूर से गवैये आते थे, रासलीला की मंडलियां बुलाई जाती थीं, रईसों और हाकिमों को दावत दी जाती थी। ज्ञानशंकर ने समझा, गायत्री को यहां बुलाने का यह बहुत ही अच्छा बहाना है। एक लंबा पत्र लिखा और बड़े आग्रह से उसे बुलाया। कृष्ण-मंदिर की सजावट होने लगी लेकिन तीसरे ही दिन जवाब आया, मेरे यहां जन्माष्टमी न होगी, कोई तैयारी न की जाय। यह शोक का साल है, मैं किसी प्रकार का आनंदोत्सव नहीं कर सकती, चाहे वह धार्मिक ही क्यों न हो ! ज्ञानशंकर के हृदय पर बिजली-सी गिर गई ! समझ गए कि यहां से विदा होने के दिन निकट आ गए। नैराश्य का रंग और भी गहरा हो गया। शंका ने ऐसा उग्र रूप धारण किया कि डाकिए की सूरत देखते ही उनकी छाती धड़-धड़ करने लगती थी। किसी बग्घी या मोटर की आवाज सुनकर सिर में चक्कर आ जाता था, कहीं गायत्री न हो। रात और दिन में बनारस से चार गाड़ियां आती थीं। यह ज्ञानशंकर के लिए कठिन परीक्षा की घड़ियां थीं। गाड़ियों के आने के समय उनकी नींद आप-ही-आप खुल जाती थी। चार दिन तक उनकी यह हालत रही। पांचवें दिन की डाक से गायत्री की रजिस्टरी चिट्ठी आई। सिरनामा देखते ही ज्ञानशंकर के पांव तले से जमीन सरक गई। निश्चय हो गया कि यह मुझे हटाने का परवाना है, नहीं तो रजिस्टरी चिट्ठी भेजने की क्या जरूरत थी ! कांपते हुए हाथों से पत्र खोला। लिखा था—मैं आज बद्रीनाथ जा रही हूं। आप सावधानी से रियासत का प्रबंध करते रहिएगा। मुझे आपके ऊपर पूरा भरोसा है। इसी भरोसे ने मुझे यह यात्रा करने पर उत्साहित किया है। इसके बाद यह आदेश था जिसका ऊपर जिक्र किया जा चुका है। ज्ञानशंकर का चित्त कुछ शांत हुआ। लिफाफा रख दिया और सोचने लगे, बात वही हुई जो वह चाहते थे। गायत्री सब कुछ उनके सिर छोड़कर चली गई। यात्रा कठिन है, रास्ता दुर्गम है, पानी खराब है, इन विचारों ने उन्हें जरा देर के लिए चिंता में डाल दिया। कौन जानता है, क्या हो। वह इतने व्याकुल हुए कि एक बार जी में आया, क्यों न मैं भी बद्रीनाथ चलूं? रास्ते में भेंट हो जाएगी। वहां तो उसके कोई कान भरने वाला न होगा। संभव है मैं अपना खोया हुआ विश्वास फिर जमा लूं, प्रेम के बुझे हुए दीपक को फिर जला दूं, इस संदिग्ध दशा का अंत हो जाए। गायत्री के बिना अब उन्हें सब कुछ सूना मालूम होता था। यह विपुल संपत्ति अगर सुख-सरिता थी, तो गायत्री उसकी नौका थी। नौका के बिना जलविहार का आनंद कहां? पर थोड़ी देर में उनका यह आवेग शांत हो गया। सोचा, अभी वह मुझसे भरी बैठी है, मुझे देखते ही जल जायगी। मेरी ओर से उसका चित्त कितना कठोर हो गया है ! माया को मुझसे छीन लेती है। अपने विचार में उसने मुझे कड़ा-से-कड़ा दंड दिया है। ऐसी दशा में मेरे लिए सबसे सुलभ यही है कि अपनी स्वामिभक्ति से, सुप्रबंध से, प्रजा-हित से, उसे प्रसन्न करूं। प्रेमशंकर ने अच्छा निशाना मारा। बगुला भगत है, बैठे-बैठे, दो हजार रुपये मासिक की जागीर बना ली। बेचारा माया कहीं का न रहा। प्रेमशंकर उसे कुशल कृषक बना देंगे; लेकिन चतुर इलाकेदार नहीं बना सकते ! उन्हें खबर ही नहीं कि रईसों की शिक्षा कैसी

होनी चाहिए। खैर, जो कुछ हो, मेरी स्थिति उतनी शोचनीय नहीं है, जितनी मैं समझता था।

ज्ञानशंकर ने अभी तक दूसरी चिट्ठियां न खोली थीं। अपने चित्त को यों समझाकर उन्होंने दूसरा लिफाफा उठाया, जो रायसाहब का पत्र था। उनके विषय में ज्ञानशंकर को केवल इतना ही मालूम था कि विद्या के देहांत के बाद वह अपनी दवा कराने के लिए मंसूरी चले गए हैं। पत्र खोलकर पढ़ने लगे–

बाबू ज्ञानशंकर, आशीर्वाद। दो-एक महीने पहले मेरे मुंह से तुम्हारे प्रति आशीर्वाद का शब्द न निकलता, किंतु अब मेरे मन की वह दशा नहीं है। ऋषियों का वचन है कि बुराई से भलाई पैदा होती है। मेरे हक में यह वचन अक्षरशः चरितार्थ हुआ। तुम मेरे शत्रु होकर परम मित्र निकले। तुम्हारी बदौलत मुझे आज यह सुअवसर मिला। मैं अपनी दवा कराने के लिए मंसूरी आया, लेकिन यहां मुझे वह वस्तु मिल गई जिस पर मैं ऐसे सैकड़ों जीवन न्यौछावर कर सकता हूं। मैं भोग-विलास का भक्त था। मेरी समस्त प्रवृत्तियां जीवन का सुख भोगने में लिप्त थीं। लोक-परलोक की चिंताओं को मैं अपने पास न आने देता था। यहां मुझे एक दिव्य आत्मा के सत्संग का सौभाग्य प्राप्त हो गया और अब मुझे ज्ञात हो रहा है कि मेरा सारा जीवन नष्ट हो गया। मैंने योग का अभ्यास किया, शिव और शक्ति की आराधना की, अपनी आकर्षण-शक्ति को बढ़ाया, यहां तक कि मेरी आत्मा विद्युत का भंडार हो गई, पर इन सारी क्रियाओं का उद्देश्य केवल वासनाओं की तृप्ति थी। कभी-कभी भोग के आनंद में मग्न होकर मैं समझता था यही आत्मिक शांति है, पर अब ज्ञात हो रहा है कि मैं भ्रम-जाल में फंसा हुआ था। उसी अज्ञान की दशा में अपने को आत्मज्ञानी समझता हुआ मैं संसार से प्रस्थान कर जाता, लेकिन तुमने वैद्य की तलाश में घर से बाहर निकाला और दैवयोग से शारीरिक रोग के वैद्य की जगह मुझे आत्मिक रोगों का वैद्य मिल गया। मेरे हृदय से तुम्हारे कल्याण की प्रार्थना निकलती है, लेकिन याद रखो, मेरी शुभकामनाओं से जितना तुम्हारा हित होगा उससे कहीं ज्यादा अहित गायत्री की ठंडी सांसों से होगा। विद्या के आत्मघात ने उसे सचेत कर दिया है। ऐसी दशा में अन्य स्त्रियां प्रसन्न होतीं, लेकिन गायत्री की आत्मा संपूर्णतः निर्जीव नहीं हुई थी। उसने तुम्हारे मंत्र को विफल कर दिया। तुम्हारा अंतःकरण अब गायत्री के लिए खुला हुआ पृष्ठ है। तुम उसकी शापाग्नि से किसी तरह बच नहीं सकते। तुम्हें जल्द अपनी तृष्णाओं को साथ लिए ही संसार से जाना पड़ेगा। अतएव मुनासिब है कि तुम अपने जीवन के गिने-गिनाए दिन आत्म-शुद्धि में व्यतीत करो। तुम्हारे कल्याण का यही मार्ग है। मैं अपनी कुल जायदाद मायाशंकर को देता हूं। वह होनहार बालक है और कुल को उज्ज्वल करेगा। उसके वयस्कत्व तक तुम रियासत का प्रबंध करते रहो। मुझे अब उससे कोई प्रयोजन नहीं है।

यह पत्र पढ़कर ज्ञानशंकर के मन में हर्ष की जगह एक अव्यक्त शंका उत्पन्न हुई। वह भविष्यवाणी के कायल न थे, लेकिन ऐसे पुरुष के मुंह से अनिष्ट की बातें सुनकर, जिसके त्याग ने उसके आत्मज्ञानी होने में कोई संदेह न रखा हो, उनका हृदय कातर हो गया। इस समय उनके जीवन की चिरसंचित अभिलाषा पूरी हुई थी। उन्हें स्वप्न में भी यह आशा न थी कि मैं इतनी जल्द रायसाहब की विपुल संपत्ति का स्वामी हो जाऊंगा। नहीं, वह उसकी ओर से निराश हो चुके थे। उन्हें विश्वास हो गया था कि रायसाहब उसे ट्रस्ट के हवाले कर जाएंगे। यह सब शंकाएं मिथ्या निकलीं। लेकिन तिस पर भी इस पत्र से उन्हें वही दुश्शंका हुई, जो किसी स्त्री को अपनी दाईं आंख फड़कने से होती है। उनकी दशा इस समय उस मनुष्य की-सी थी

जिसे डाकुओं की कैद में मिठाइयां खाने को मिलें। सूखे ठूंठ का कुसुमित होना किसे आशंकित नहीं कर देगा? वह एक घंटे तक चिंता में डूबे रहे। इसके बाद वह कृष्ण-मंदिर में गए और बड़े उत्साह से जन्माष्टमी के उत्सव की तैयारियां करने लगे।

ज्ञानशंकर के जीवनाभिनय में अब से एक नये दृश्य का सूत्रपात हुआ, पहले से कहीं ज्यादा शुभ्र, मंजु और सुखद। अभी दस मिनट पहले उनकी आशा-नौका मझधार में पड़ी चक्कर खा रही थी, पर देखते-देखते लहरें शांत हो गईं। वायु अनुकूल हो गई और नौका तट पर आ पहुंची, जहां दृष्टि की परम सीमा तक निधियों का भव्य विस्तृत उपवन लहरा रहा था।

पचपन

बाबू ज्वालासिंह को बनारस आए आज दूसरा दिन था। कल तो वह थकान के मारे दिन भर पड़े रहे, पर प्रातःकाल ही उन्होंने लखनपुर वालों की अपील का प्रश्न छेड़ दिया ! प्रेमशंकर ने कहा—मैं तो आप ही की बाट जोह रहा था। पहले मुझे प्रत्येक काम में अपने ऊपर विश्वास होता था, पर आप-सा सहायक पाकर मुझे पग-पग पर आपके सहारे की इच्छा होती है। अपने ऊपर से विश्वास ही उठ गया। आपके विचार में अपील करने के लिए कितने रुपये चाहिए?

ज्वालासिंह—ज्यादा नहीं तो चार-पांच हजार तो अवश्य ही लग जाएंगे।

प्रेम—मेरे पास चार-पांच सौ भी नहीं हैं।

ज्वाला—इसकी कोई चिंता नहीं। आपके नाम पर दस-बीस हजार मिल सकते हैं !

प्रेम—मैं ऐसा कौन-सी जाति का नेता हूं, जिस पर लोगों को इतनी श्रद्धा होगी?

ज्वाला—जनता आपको आपसे अधिक समझती है। मैं आज ही चंदा वसूल करना शुरू कर दूंगा।

प्रेम—मुझे आशा नहीं कि आपको इसमें सफलता होगी। संभव है दो-चार सौ रुपये मिल जाएं, लेकिन लोग यही समझेंगे कि इन्होंने भी कमाने का यह ढंग निकाला। चंदे के साथ ही लोगों को संदेह होने लगता है। आप तो देखते ही हैं, चंदों ने हमारे कितने ही श्रद्धेय नेताओं को बदनाम कर दिया। ऐसा बिरला ही कोई मनुष्य होगा जो चंदों के भंवर में पड़कर बेदाग निकल गया हो। मेरे पास श्रद्धा के कुछ गहने अभी बचे हुए हैं। अगर वह सब बेच दिया जाए, तो शायद हजार रुपये मिल जाएं।

इतने में शीलमणि इन लोगों के लिए नाश्ता लाई। यह बात उसके कानों में पड़ी। बोली—कभी उनकी सुधि भी लेते हैं या गहनों पर हाथ साफ करना ही जानते हैं? अगर ऐसी ही जरूरत है, तो मेरे गहने ले जाइए।

ज्वाला—क्यों न हो, आप ऐसी ही दानी तो हैं। एक-एक गहने के लिए तो आप महीनों रूठती हैं, उन्हें लेकर कौन अपनी जान गाढ़े में डाले?

शील—जिस आग से आदमी हाथ सेंकता है, क्या काम पड़ने पर उससे अपने चने नहीं भून लेता? स्त्रियां गहने पर प्राण देती हैं, लेकिन अवसर पड़ने पर उतार भी फेंकती हैं।

मायाशंकर एक तरफ अपनी किताब खोले बैठा हुआ था, पर उसका ध्यान इन्हीं बातों

की ओर था। एक कल्पना बार-बार उसके मन में उठ रही थी, पर संकोचवश उसे प्रकट न कर सकता था। कई बार इरादा किया कि कहूं, पर प्रेमशंकर की ओर देखते ही जैसे कोई मुंह बंद कर देता था। आंखें नीची हो जाती थीं। शीलमणि की बात सुनकर वह अधीर हो गया। ज्वालासिंह की तरफ कातर नेत्रों से देखता हुआ बोला—आज्ञा हो तो मैं भी कुछ कहूं।

ज्वाला—हां-हां, शौक से कहो !

माया—इस महीने की मेरी पूरी वृत्ति अपील में खर्च कर दीजिए। मुझे रुपयों की कोई विशेष जरूरत नहीं है।

शीलमणि और ज्वालासिंह दोनों ने इस प्रस्ताव को बालोचित आवेश समझकर प्रेमशंकर की तरफ मुस्कराते हुए देखा। माया ने उनका यह भाव देखकर समझा, मुझसे धृष्टता हो गई ! ऐसे महत्त्व के विषय में मुझे बोलने का कोई अधिकार न था। चचाजी मेरे दुस्साहस पर अवश्य नाराज़ होंगे। लज्जा से आंखें भर आईं और मुंह से एक सिसकी निकल गई। प्रेमशंकर ने चौंककर उसकी तरफ देखा, हृदगत भावों को समझ गए। उसे प्रेमपूर्वक छाती से लगाकर आश्वासन देते हुए बोले—तुम रोते क्यों हो बेटा? तुम्हारी यह उदारता देखकर मेरा चित्त जितना प्रसन्न हुआ है, वह प्रकट नहीं कर सकता। तुम मेरे पुत्र-तुल्य हो, लेकिन मेरा जी चाहता है कि तुम्हारे पैरों पर सिर रख दूं। तुम्हारे हृदय में दया और विवेक है और मुझे विश्वास है कि तुम्हारा जीवन परोपकारी होगा, लेकिन मैंने तुम्हारी शिक्षा के लिए जो व्यवस्थाएं की हैं उनका व्यय तुम्हारी वृत्ति से कुछ अधिक ही है।

माया को अब कुछ साहस हुआ। बोला—मेरी शिक्षा पर इतने रुपये खर्च करने की क्या जरूरत है?

प्रेम—क्यों, आखिर तुम्हें घर पर पढ़ाने के लिए अध्यापक रहेंगे या नहीं? एक अंग्रेजी और हिसाब पढ़ायेगा, एक हिन्दी और संस्कृत, एक उर्दू और फारसी, एक फ्रेंच और जर्मन, पांचवां तुम्हें व्यायाम, घोड़े की सवारी, नाव चलाना, शिकार खेलना सिखाएगा। इतिहास और भूगोल मैं पढ़ाया करूंगा।

माया—मेरी कक्षा में जो लड़के सबसे अच्छे हैं, वे घर पर किसी मास्टर से नहीं पढ़ते। मैं उनको अपने से कम नहीं समझता।

प्रेम—तुम्हें हवा खाने के लिए की एक फिटन की जरूरत है। सवारी के अभ्यास के लिए दो घोड़े चाहिए।

माया—अपराध क्षमा कीजिएगा, मेरे लिए इतने मास्टरों की जरूरत नहीं है। फिटन, मोटर, शिकार, पोलो को भी मैं व्यर्थ समझता हूं। हां, एक घोड़ा गोरखपुर से मंगवा दीजिए, तो सवारी किया करूं। नाव चलाने के लिए मैं मल्लाहों की नाव पर जा बैठूंगा। उनके साथ पतवार घुमाने और डांड़ चलाने में जो आनंद मिलेगा, वह अकेले अध्यापक के साथ बैठने में नहीं आ सकता। अभी से लोग कहने लगे हैं कि इसका मिजाज नहीं मिलता। पद्मू कई बार ताने दे चुके हैं। मुझे नक्कू रईसों की भांति अपनी हंसी कराने की इच्छा नहीं है। लोग यही कहेंगे कि अभी कल तक तो एक मास्टर भी न था, आज दूसरों की संपत्ति पाकर इतना घमंड हो गया है।

प्रेम—प्रतिष्ठा का ध्यान रखना आवश्यक है।

माया—मैं तो देखता हूं आप इन चीजों के बिना ही सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं। सभी आपकी इज्जत करते हैं। मेरे स्कूल के लड़के भी आपका नाम आदर से लेते हैं, हालांकि

शहर के और बड़े रईसों की हंसी उड़ाते हैं। मेरे लिए किसी विशेष चीज की जरूरत क्यों हो?

माया के प्रत्येक उत्तर पर प्रेमशंकर का हृदय अभिमान से फूला पड़ता था। उन्हें आश्चर्य होता था कि इस लड़के में संतोष और त्याग का भाव क्योंकर उदित हुआ? इस उम्र में तो प्राय: लड़के टीमटाम पर जान देते हैं, सुन्दर वस्त्रों से उनका जी नहीं भरता, चमक-दमक की वस्तुओं पर लट्टू हो जाते हैं। यह पूर्व संस्कार है और कुछ नहीं। निरुत्तर होकर बोले—रानी गायत्री की यही इच्छा थी, नहीं तो इतने रुपये क्यों खर्च करतीं?

माया—यदि उनकी यह इच्छा होती, तो क्या वह मुझे ताल्लुकेदारों के स्कूल में नहीं भेज देतीं? मुझे आपकी सेवा में रखने से उनका उद्देश्य यही होगा कि मैं आपके ही पदचिह्नों पर चलूं।

प्रेम—तो यह रुपये खर्च क्यों कर होंगे?

माया—इसका फैसला रानी अम्मां ने आप पर ही छोड़ दिया है। मुझे आप उसी तरह रखिए जैसे आप अपने लड़कों को रखते हैं। मुझे ऐसी शिक्षा न दीजिए और ऐसे व्यसनों में न डालिए कि मैं अपनी दीन प्रजा के दु:ख-दर्द में शरीक न हो सकूं। आपके विचार में मेरी शिक्षा की यही सबसे उत्तम विधि है !

प्रेम—नहीं, मेरा विचार तो ऐसा नहीं, लेकिन दुनिया को दिखाने के लिए ऐसा ही करना पड़ेगा। नहीं तो लोग यही कहेंगे कि मैं तुम्हारी वृत्ति का दुरुपयोग कर रहा हूं।

माया—तो आप मुझे इस ढंग पर शिक्षा देना चाहते हैं जिसे आप स्वयं उपयोगी नहीं समझते। लोगों के दुराक्षेपों से बचने के ही लिए आपने यह व्यवस्थाएं की हैं।

प्रेमशंकर शरमाते हुए बोले—हां, बात तो कुछ ऐसी ही है।

माया—मैंने अपने वजीफे के खर्च करने की और ही विधि सोची है। आप बुरा न मानें तो कहूं।

प्रेम—हां-हां, शौक से कहो। तुम्हारी बातों से मेरी आत्मा प्रसन्न होती है। मैं तुम्हें इतना विचारशील न समझता था !

ज्वालासिंह—इस उम्र में मैंने किसी को इतना चैतन्य नहीं देखा।

शीलमणि प्रेमशंकर की ओर मुंह करके मुस्करायी और बोली—इस पर आपकी ही परछाईं पड़ी है।

माया—मैं चाहता हूं कि मेरा वजीफा गरीब लड़कों की सहायता में खर्च किया जाए। दस-दस रुपये की एक सौ निन्यानवे वृत्तियां दी जाएं, तो मेरे लिए दस रुपये बच रहेंगे। इतने में मेरा काम अच्छी तरह चल सकता है।

प्रेमशंकर पुलकित होकर बोले—बेटा, तुम्हारी उदारता धन्य है। तुम देवात्मा हो। कितना देवदुर्लभ त्याग है ! कितना संतोष ! ईश्वर तुम्हारे इन पवित्र भावों को सुदृढ़ करें, पर मैं तुम्हारे साथ इतना अन्याय नहीं कर सकता।

माया—तो दो-चार वृत्तियां कम कर दीजिए, लेकिन यह सहायता उन्हीं लड़कों को दी जाए जो यहां आकर खेती और बुनाई का काम सीखें।

ज्वाला—मैं इस प्रस्ताव का अनुमोदन करता हूं। मेरी राय में तुम्हें अपने लिए कम-से-कम पांच सौ रुपये रखने चाहिए। बाकी रुपये तुम्हारी इच्छा के अनुसार खर्च किये जाएं। पचहत्तर वृत्तियां बुनाई और पचहत्तर खेती के काम सिखाने के लिए दी जाएं। भाई साहब कृषि शास्त्र

और विज्ञान में निपुण हैं। बुनाई का काम मैं सिखाया करूंगा। मैंने इसका अच्छी तरह अभ्यास कर लिया है।

प्रेमशंकर ने ज्वालासिंह का खंडन करते हुए कहा—मैं इस विषय में रानी गायत्री की आज्ञा और इच्छा के बिना कुछ नहीं करना चाहता।

मायाशंकर ने निराश भाव से ज्वालासिंह को देखा और फिर अपनी किताब देखने लगा।

इसी समय डॉक्टर इर्फान अली के दीवानखाने में भी इसी विषय पर वार्त्तालाप हो रहा था। डॉक्टर साहब सदैव अपने पेशे की दिल खोलकर निन्दा किया करते थे। कभी-कभी न्याय और दर्शन के अध्यापक बन जाने का इरादा करते। लेकिन उनके विचार में स्थिरता न थी, न विचारों को व्यवहार में लाने के लिए आत्मबल ही था। नहीं, अनर्थ यह था कि वह जिन दोषों की निन्दा करते थे, उन्हें व्यवहार में लाते हुए जरा भी संकोच न करते थे, जैसे कोई जीर्ण रोगी पथ्यों से ऊबकर सभी प्रकार के कुपथ्य करने लगे। उन्हें इस पेशे की धन-लोलुपता से घृणा थी, पर आप मुवक्किलों को बड़ी निर्दयता से निचोड़ते थे ! वकीलों की अनीति का रोना रोते थे। पर आप दुर्नीति के परम भक्त थे। अपने हलवे-मांड़े से काम था, मुवक्किल चाहे मरे या जिये। इनकी स्वार्थ-परायणता और दुर्नीति के ही कारण लखनपुर का सर्वनाश हुआ था।

लेकिन जब से प्रेमशंकर ने उपद्रवकारियों के हाथों उनकी रक्षा की थी तभी से उनकी रीति-नीति और आचार-विचार में एक विशेष जागृति-सी दिखायी देती थी। उनकी धन-लिप्सा अब उतनी निर्दय न थी, मुवक्किलों से बड़ी नम्रता का व्यवहार करते, उनके वृत्तांत को विचारपूर्वक सुनते, मुकदमे को दिल लगाकर तैयार करते, इतना ही नहीं बहुधा गरीब मुवक्किलों से केवल शुकराना लेकर ही सन्तुष्ट हो जाते थे। इस सद्व्यवहार का कारण केवल यही नहीं था कि वह अपने खोये हुए सम्मान को फिर प्राप्त करना चाहते थे, बल्कि प्रेमशंकर का संतोषमय, निष्काम और निःस्पृह जीवन उनके चित्त की शान्ति और सहृदयता का मुख्य प्रेरक था। उन्हें जब अवसर मिलता, प्रेमशंकर से अवश्य मिलने जाते और हर बार उनके सरल और पवित्र जीवन से मुग्ध होकर लौटते थे। अब तक शहर में कोई साधु-सात्विक पुरुष न था जो उनपर अपनी छाप डाल सके। अपने सहवर्गियों में वह किसी को अपने से अधिक विवेकशील, नीतिपरायण और सहृदय न पाते थे। इस दशा में वह अपने को ही सर्वश्रेष्ठ समझते थे और वकालत की निंदा करके अपने को धन्य मानते थे ! उनकी स्वार्थ वृत्ति को उन्मत्त करने के लिए इतना ही काफी था, पर अब उनकी आंखों के सामने एक ऐसा पुरुष उपस्थित था जो उन्हीं का-सा विद्वान्, लेख और वाणी में उन्हीं का-सा कुशल था; पर कितना विनयी, कितना उदार, कितना दयालु, कितना शांतचित्त ! जो उनकी असाधुता से दुःखी होकर भी उनकी उपेक्षा न करता था। अतएव अब डॉक्टर साहब को अपने पिछले अपकारों का पश्चात्ताप होता था। वह प्रायश्चित करके अपयश और कलंक के दाग को मिटाना चाहते थे। उन्हें लज्जावश प्रेमशंकर से अपील के लिए अनुरोध करने का साहस न होता था, पर उन्होंने संकल्प कर लिया था कि अपील में अभियुक्तों को छुड़ाने के लिए दिल तोड़कर प्रयत्न करूंगा। वह अपील के खर्च का बोझ भी अपने ही सिर लेना चाहते थे। महीनों से अपील की तैयारी कर रहे थे, मुकदमे की मिस्लें विचारपूर्वक देख डाली थीं। जिरह से प्रश्न निश्चित कर लिए थे और अपना कथन भी लिख डाला था। उन्हें इतना मालूम हो गया था कि ज्वालासिंह के आने पर अपील होगी। उनके आने की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे।

प्रातःकाल का समय था। डॉक्टर साहब को ज्वालासिंह के आने की खबर मिल गई थी।

उनसे मिलने के लिए जा ही रहे थे कि सैयद हुसेन का आगमन हुआ। उनकी सौम्यमूर्ति पर काला चुगा बहुत खिलता था। सलाम-बंदगी के बाद सैयद साहब ने इर्फान अली की ओर संदेह की दृष्टि से देखकर कहा, आपने देखा इन दोनों भाइयों ने रानी गायत्री को कैसा शीशे में उतार लिया? एक साहब ने रियासत हाथ में कर ली और दूसरे साहब दो हजार रुपये के मौरूसी वसीकेदार बन गए। लौंडे की तालीम में ज्यादा-से-ज्यादा चार-पांच सौ खर्च हो जाएंगे, और क्या? दुनिया में कैसे-कैसे बगुला भगत छिपे हुए हैं।

ईजाद हुसेन को बदगुमानी का मर्ज था। जब से इन्हें यह बात मालूम हुई थी, उनकी छाती पर सांप लोट रहा था, मानो उन्हीं की जेब से रुपये निकाले जाते हैं। यह कितना अनर्थ था कि प्रेमशंकर को तो दो हजार रुपये महीने बिना हाथ-पैर हिलाये घर बैठे मिल जाएं और उस गरीब को इतना छल-प्रपंच करने पर भी रोटियों की चिंता लगी रहे!

डॉक्टर महाशय ने व्यंग्य भाव से कहा—इस मौके पर आप चूक गए। अगर आप रानी साहिबा की खिदमत में डेपुटेशन लेकर जाते तो इत्तहादी यतीमखाने के लिए एक हजार का वसीका जरूर बंध जाता।

ईजाद हुसेन—आप तो जनाब मजाक करते हैं। मैं ऐसा खुशनसीब नहीं हूं। मगर दुनिया में कैसे-कैसे लोग पड़े हुए हैं जो तर्क (त्याग) का नूरानी जाल फैलाकर सोने की चिड़िया फंसा लेते हैं।

डॉक्टर साहब ने तिरस्कार की दृष्टि से देखकर कहा—लाला ज्ञानशंकर की निस्बत आप जो चाहें ख्याल करें, लेकिन बाबू प्रेमशंकर जैसे नेकनीयत आदमी पर आपका शुबहा करना बिल्कुल बेजा है और जब वह आपके मददगारों में हैं, तो आपका उनसे बदगुमान होना सरासर बेइंसाफी है। मैं उन्हें अर्से से जानता हूं और दावे के साथ कह सकता हूं कि ऐसा बेलौस आदमी इस शहर में क्या इस मुल्क में मुश्किल से मिलेगा। वह अपने को मशहूर नहीं करते, लेकिन कौम की जो वह खिदमत कर रहे हैं, काश! और लोग भी करते तो यह मुल्क रश्के फिरदौस (स्वर्गतुल्य) हो जाता। जो आदमी दस रुपये माहवार पर जिंदगी बसर करे, अपने मजदूरों से मसावत (बराबरी) का बर्ताव करे, मजलूमों (अन्याय पीड़ित) की हिमायत करने में दिलोजान से तैयार रहे, अपने उसूलों (सिद्धांतों) पर अपनी जायदाद तक कुर्बान कर दे, उसकी निस्बत ऐसा शक करना शराफत के खिलाफ है। आप उनके मुलाजिमों को सौ रुपये माहवार पर भी रखना चाहें, तो न आएंगे। वह उनके नौकर नहीं है, बल्कि पैदावार में बराबर के हिस्सेदार हैं। गायत्री गजब की मर्दूमशनास (आदमियों को पहचानने वाली) औरत मालूम होती है।

ईजाद हुसेन ने चकित होकर कहा—वाकई वह दस रुपये माहवार पर बसर करते हैं? यह क्योंकर?

इर्फान—अपनी जरूरतों को घटाकर। हम और आप तकल्लुफ (विलास) की चीजों को जरूरियात में शामिल किए हुए हैं और रात-दिन उसी फिक्र में परेशान रहते हैं। यह नफ्स (इंद्रिय) की गुलामी है। उन्होंने उसे अपने काबू में कर लिया है। हम लोग अपनी फुर्सत का वक्त जमाने और तकदीर की शिकायत करने में सर्फ करते हैं। रात-दिन इसी उधेड़बुन में रहते हैं कि क्योंकर और मिले। औरत की हवस में हलाल और हराम का भी लिहाज नहीं करते। उन्हें मैंने कभी अपनी तकदीर के दुखड़े रोते हुए नहीं पाया। वह हमेशा खुश नजर आते हैं गोया कोई गम ही नहीं....

इतने में बाबू ज्वालासिंह आ पहुंचे। डॉक्टर साहब ने उठकर हाथ मिलाया। शिष्टाचार के बाद पूछा—अब तो आपका इरादा यहां मुस्तकिल तौर पर रहने का है न?

ज्वाला—जी हां, आया तो इसी इरादे से हूं।

इर्फान—फरमाइए, अपील कब होगी?

ज्वाला—इसका जिक्र पीछे करूंगा। इस वक्त तो मुझे सैयद से कुछ अर्ज करना है। हुजूर के दौलतखाने पर हाजिर हुआ था। मालूम हुआ आप यहां तशरीफ रखते हैं। मुझे बाबू प्रेमशंकर ने आपसे यह पूछने के लिए भेजा है कि आप मायाशंकर को उर्दू-फारसी पढ़ाना मंजूर करेंगे?

इर्फान—मंजूर क्यों न करेंगे, घर बैठे-बैठे क्या करते हैं? जलसे तो साल में दस-पांच ही होते हैं और रोटियों की फिक्र चौबीसों घंटे सिर पर सवार रहती है। तनख्वाह क्या तजवीज की है?

ज्वाला—अभी सौ रुपये माहवार मिलेंगे।

इर्फान—बहुत माकूल है। क्यों मिर्जा साहब, मंजूर है न? ऐसा मौका फिर आपको न मिलेगा !

ईजाद हुसेन ने कृतज्ञ भाव से कहा—दिलोजान से हाजिर हूं। मेरी जबान में ताकत नहीं है कि इस एहसान का शुक्रिया अदा कर सकूं। हैरत तो यह है कि मुझे उनसे एक ही बार नियाज हासिल हुआ और उन्हें मेरी परवरिश का इतना खयाल है।

ज्वाला—वह आदमी नहीं, फरिश्ते हैं। आपके यतीमखाने का कई बार जिक्र कर चुके हैं। शायद यतीमों के लिए कुछ वजीफे मुकर्रर करना चाहते हैं। इस वक्त सब कितने यतीम हैं?

उपकार ने ईजाद हुसेन के हृदय को पवित्र भावों से परिपूरित कर दिया था। अतिशयोक्ति से काम न ले सके । एक क्षण तक वह असमंजस में पड़े रहे, पर अंत में सद्भावों ने विजय पायी। बोले—जनाब, अगर आपने किसी दूसरे मौके पर यह सवाल किया होता तो मैं उसका कुछ और ही जवाब देता, पर आप लोगों की शराफत और हमदर्दी का मुझ जैसे दगाबाज आदमी पर भी असर पड़ ही गया। मेरे यहां दो किस्मों के यतीम हैं। एक मुस्तकिल और दूसरे फसली; जरूरत के वक्त इन दोनों की तादाद पचास से भी बढ़ जाती है, लेकिन फसली यतीमों को निकाल दीजिए, तो सिर्फ दस यतीम रह जाते हैं। मुमकिन है आप इनको यतीम न खयाल करें, लेकिन मैं समझता हूं, गरीब आदमी के अजीजों के लड़के सच्चे यतीम हैं।

इर्फान अली ने मुस्कराकर कहा—तो हजरत, आपने क्या यतीमखाने का स्वांग ही खड़ा कर रखा है? कम-से-कम मुझसे तो पर्दा न रखना चाहिए था। तभी आपने अपनी सारी जायदाद यतीमखाने के नाम लिख दी थी।

ईजाद हुसेन ने सिर झुकाकर कहा—किबला, जरूरत इंसान से सब कुछ करा लेती है। मैं वकील नहीं, बैरिस्टर नहीं, ताजिर नहीं, जागीरदार नहीं, एक मामूली लियाकत का आदमी हूं। मुझ बदनसीब के वालिद टोंक की रियासत में ऊंचे मंसबदार थे। हजारों की आमदनी थी, हजारों का खर्च। जब तक वह जिन्दा रहे, मैं आजाद घूमता रहा, कनकौवे और बटेरों से दिल बहलाता रहा। उनकी आंखें बंद होते ही खानदान की परवरिश का भार मुझ पर पड़ा और खानदान भी वह जो ऐश का आदी था। मेरी गैरत ने गवारा न किया कि जिन लोगों पर वालिद मरहूम ने अपना साया कर रखा था उनसे, मुंह मोड़ लूं। मुझमें लियाकत न हो, पर खानदानी गैरत मौजूद

थी। बुरी सोहबतों ने दगा और मक्र के फन में पुख्ता कर दिया। टोंक में गुजरान की कोई सूरत न देखी तो सरकारी मुलाजमत कर ली और कई जिलों की खाक छानता हुआ यहां आया। आमदनी कम थी, खर्च ज्यादा। थोड़े दिनों में घर की लेई-पूंजी गायब हो गई। अब सिवाय इसके और कोई सूरत न थी कि या तो फाके करूं या गुजारा की कोई राह निकालूं। सोचते-सोचते यही सूझी जो अब कर रहा हूं।

इर्फान अली—अंदाजन आपको सालाना कितने रुपये मिल जाते होंगे?

ईजाद—अब क्या कुछ भी पर्दा न रहने दीजिएगा?

इर्फान—अधूरी कहानी नहीं छोड़ी जाती।

ईजाद—तो जनाब, कोई बंधी हुई रकम है नहीं, और न मैं हिसाब लिखने का आदी हूं। जो कुछ मुकद्दर में है मिल जाता है। कभी-कभी, एक-एक महीने में हजारों की याफत हो जाती है, कभी महीनों रुयये की सूरत देखनी नसीब नहीं होती। मगर कम हो या ज्यादा, इस कमाई में बरकत नहीं है। हमेशा शैतान की फटकार रहती है। कितनी ही अच्छी गिजा खाइए, कितने ही कीमती कपड़े पहनिए, कितने ही शान से रहिए, पर वह दिली इत्मीनान नहीं हासिल होता जो हलाल की रूखी रोटियों और गजी-गाढ़ों में है। कभी-कभी तो इतना अफसोस होता है कि जी चाहता है जिंदगी का खात्मा हो जाए तो बेहतर। मेरे लिए सौ रुपये लाखों के बराबर हैं। इंशा अल्लाह, इर्शाद भी जल्द ही किसी-न-किसी काम में लग जाएगा, तो रोजी की फिक्र से निजात हो जाएगी। बाकी जिंदगी तोबा और इबादत में गुजरेगी। 'इत्तहाद' की खिदमत अब भी करता रहूंगा, लेकिन अब से यह सच्ची खिदमत होगी, खुदगर्जी से पाक। इसका सवाब खुदा प्रेमशंकर को अदा करेगा।

थोड़ी देर अपील के विषय में परामर्श करने के बाद ज्वालासिंह मिर्जासाहब को साथ लेकर हाजीपुर चले। डॉक्टर साहब भी साथ हो लिए।

छप्पन

ज्योंही दशहरे की छुट्टियों के बाद हाईकोर्ट खुला, अपील दायर हो गई और सामचार-पत्रों के कालम उसकी कार्यवाही से भरे जाने लगे। समस्या बड़ी जटिल थी। दंड-प्राप्तों ने उन साक्षियों को फिर पेश किए जाने की प्रार्थना की थी जिनके आधार पर उन्हें दंड दिए गए थे। सरकारी वकील ने इस प्रार्थना का घोर विरोध किया, किंतु इर्फान अली ने अपने दावे को ऐसी सबल युक्तियों से पुष्ट किया और दंड-भोगियों पर हुई निर्दयता को ऐसे करुण-भाव से व्यक्त किया कि जजों ने मुकदमे की दुबारा जांच किए जाने की अनुमति दे दी।

मातहत अदालतों ने विवश होकर शहादतों को तलब किया। बिसेसर साह, डॉक्टर प्रियनाथ, दारोगा खुर्शेद आलम, कर्तार सिंह, फैजू और तहसीलदार साहब कचहरी में हाजिर हुए। बिसेसर साह का बयान तीन दिन तक होता रहा। बयान क्या था, पुलिस के हथकंडों और कूटनीति का विशद और शिक्षाप्रद निरूपण था। अब वह दुर्बल, इनकम-टैक्स से डरने वाला, पुलिस के इशारों पर नाचने वाला बिसेसर साह न था। इन दो वर्षों की ग्लानि, पश्चात्ताप और

दैविक व्याधियों ने संपूर्णत: उसकी कायापलट दी थी। एक तो उसका बयान यों ही भंडाफोड़ था, दूसरे इर्फान अली की जिरहों ने रहा-सहा पर्दा भी खोल दिया। सरकारी वकील ने पहले तो बिसेसर को अपने पिछले बयान से फिर जाने पर धमकाया, जज ने भी डांट बतलाई, पर बिसेसर जरा भी न डगमगाया। इर्फान अली ने बड़ी नम्रता से कहा, गवाह का यों फिर जाना बेशक सजा के काबिल है, पर इस मुकदमे की हालत निराली है। यह तूफान पुलिस का खड़ा किया हुआ है। इतने बेगुनाहों की जिंदगी का ख्याल करके अदालत को शहादत के कानून की इतनी सख्ती से पाबंदी न करनी चाहिए। इन विनीत शब्दों ने जज साहब को शांत कर दिया। पुराना जज तबदील हो गया था, उसकी जगह नए साहब आए थे।

सरकारी वकील ने भी अपने पक्ष के अनुकूल खूब जिरह की, सिद्ध करना चाहा कि गांववालों की धमकी, प्रेमशंकर के आग्रह तथा इसी प्रकार के अन्य संभावित कारणों ने गवाहों को विचलित कर दिया, पर बिसेसर किसी तरह फंदे में न आया। अंग्रेजी और जातीय पत्रों ने इस घटना की आलोचना करनी शुरू की। अंग्रेजी पत्रों का अनुमान था कि गवाह का यह रूपांतर राष्ट्रवादियों के दुराग्रह का फल है। उन्होंने पुलिस को नीचा दिखाने के लिए यह चाल खेली है। अदालत ने इस बयान को स्वीकार करने में बड़ी भूल की है। मुखबिर को यथोचित दंड मिलना चाहिए। हिन्दुस्तानी पत्रों को पुलिस पर छींटे उड़ाने का अवसर मिला। अदालत में मुकदमा पेश ही था, मगर पत्रों ने आग्रह करना शुरू किया कि पुलिस के कर्मचारियों से जवाब-तलब करना चाहिए। एक मनचले पत्र ने लिखा, यह घटना इस बात का उज्ज्वल प्रमाण है कि हिन्दुस्तान की पुलिस प्रजा-रक्षण के लिए नहीं वरन् भक्षण के लिए स्थापित की गई है। अगर खोज की जाय तो पूर्णत: सिद्ध हो जाएगा कि यहां की सत्तासी सैकड़े दुर्घटनाओं का उत्तरदायित्व पुलिस के सिर है। बाज पत्रों को पुलिस की आड़ में जमींदारों के अत्याचार का भयंकर रूप दियाई देता था। उन्हें जमींदारों के न्याय पर जहर उगलने का अवसर मिला। कतिपय पत्रों ने जमींदारों की दुरवस्था पर आंसू बहाने शुरू किए। यह आंदोलन होने लगा कि सरकार की ओर से जमींदारों को ऐसे अधिकार मिलने चाहिए कि वह अपने असामियों को काबू में रख सकें, नहीं तो बहुत संभव है कि उच्छृंखलता का यह प्रचंड झोंका सामाजिक संगठन को जड़ से हिला दे।

बिसेसर साह के बाद डॉक्टर प्रियनाथ की शहादत हुई। पुलिस अधिकारियों को उन पर पूरा विश्वास था, पर जब उनका बयान सुना तो हाथों के तोते उड़ गए। उनके कौतूहल का पारावार न था, मानो किसी नए जगत की सृष्टि हो गई। वह पुरुष जो पुलिस का दाहिना हाथ बना हुआ था, जो पुलिस के हाथों की कठपुतली था, जिसने पुलिस की बदौलत हजारों कमाए, वह आज यों दगा दे जाए, नीति को इतनी निर्दयता से पैरों तले कुचले !

डॉक्टर साहब ने स्पष्ट कह दिया कि पिछला बयान शास्त्रोक्त न था, लाश के हृदय और यकृत की दशा देखकर मैंने जो धारणा की थी वह शास्त्रानुकूल नहीं थी। बयान देने के पहले मुझे पुस्तकों को देखने का अवसर न मिला था। इन स्थलों में खून का रहना सिद्ध करता है कि उनकी क्रिया आकस्मिक रीति पर बंद हो गयी। यंत्राघात के पहले गला घोंटने से यह क्रिया क्रम से बंद होती और इतनी मात्रा में रक्त का जमना संभव न था। अपनी युक्ति के समर्थन में उन्होंने कई प्रसिद्ध डॉक्टरों की सम्मति का उल्लेख किया। डॉक्टर इर्फान अली ने भी इस विषय पर कई प्रामाणिक ग्रंथों का अवलोकन किया था। उनकी जिरहों ने प्रियनाथ की धारणा को और भी पुष्ट कर दिया। तीसरे दिन सरकारी वकील की जिरह शुरू हुई। उन्होंने जब वैद्यक

प्रश्नों से प्रियनाथ को काबू में आते न देखा, तब उनकी नीयत पर आक्षेप करने लगे।

वकील–क्या यह सत्य है कि पहले जिस दिन इस अभियोग का फैसला सुनाया गया था, उस दिन उपद्रवकारियों ने आपके बंगले पर जाकर आपको घेर लिया था?

प्रिय–जी हां।

वकील–उस समय बाबू प्रेमशंकर ने आपको मार-पीट से बचाया था?

प्रिय–जी हां, वह न आते तो शायद मेरी जान न बचती।

वकील–यह भी सत्य है कि आपको बचाने में वह स्वयं जख्मी हो गए थे?

प्रिय–जी हां, उन्हें बहुत चोट आई थी। कंधे की हड्डी टूट गई थी।

वकील–आप यह भी स्वीकार करेंगे कि वह दयालु प्रकृति के मनुष्य हैं और अभियुक्तों से उन्हें सहानुभूति है?

प्रिय–जी हां, ऐसा ही है।

वकील–ऐसी दशा में यह स्वाभाविक है कि उन्होंने आपको अभियुक्तों की रक्षा करने पर प्रेरित किया हो?

प्रिय–मेरे और उनके बीच में इस विषय पर कभी बातचीत भी नहीं हुई।

वकील–क्या यह संभव नहीं है कि उनके एहसान ने आपको अज्ञात रूप से बाधित किया हो?

प्रिय–मैं अपने व्यक्तिगत भावों को अपने कर्त्तव्य से अलग रखता हूं। यदि ऐसा होता तो सबसे पहले बाबू प्रेमशंकर ही मेरी अवहेलना करते।

वकील साहब एक पहलू से दूसरे पहलू पर आते थे, पर प्रियनाथ चालाक मछली की तरह चारा कतर कर निकल जाते थे। दो दिन तक जिरह करने के बाद अंत में हार कर बैठ रहे।

दारोगा खुर्शेद आलम का बयान शुरू हुआ। यह उनके पहले बयान की पुनरावृत्ति थी, पर दूसरे दिन इर्फान अली की जिरहों ने उनको बिल्कुल उखाड़ दिया। बेचारे बहुत तड़फड़ाये, पर जिरह-जाल से न निकल सके।

इर्फान अली को अब अपनी सफलता का विश्वास हो गया। वह आज अदालत से निकले तो बांछें खिली जाती थीं। इसके पहले भी बड़े-बड़े मुकदमों की पैरवी कर चुके थे और दोनों जेब नोटों से भरे हुए घर चले थे, पर चित्त कभी इतना प्रफुल्लित न हुआ था। प्रेमशंकर तो ऐसे खुश थे मानो लड़के का विवाह हो रहा हो।

इसके बाद तहसीलदार साहब का बयान हुआ। वह घंटों तक लखनपुर वालों की उद्दण्डता और दुर्जनता का आल्हा गाते रहे, लेकिन इर्फान अली ने दस मिनट में उनका सारा ताना-बाना उधेड़कर रख दिया।

इर्फान–आप यह तसलीम करते हैं कि यह सब मुलजिम लखनपुर के खास आदमियों में हैं?

तहसीलदार–हो सकते हैं, लेकिन जात के अहीर, जुलाहे और कुर्मी हैं।

इर्फान–अगर कोई चमार लखपती हो जाय तो आप उससे अपनी जूती गंठवाने का काम लेते हुए हिचकेंगे या नहीं?

तहसीलदार–उन आदमियों में कोई लखपती नहीं है।

इर्फान–मगर सब काश्तकार हैं, मजदूर नहीं। उनसे आपको घास छिलवाने का क्या

मजाज था?

तहसीलदार—सरकारी जरूरत।

इर्फान—क्या यह सरकारी जरूरत मजदूरों को मजदूरी देकर काम कराने से पूरी न हो सकती थी।

तहसीलदार—मजदूरों की तायदाद उस गांव में ज्यादा नहीं है।

इर्फान—आपके चपरासियों में अहीर, कुर्मी या जुलाहे न थे? आपने उनसे यह काम क्यों न लिया?

तहसीलदार—उनका यह काम नहीं है।

इर्फान—और काश्तकारों का यह काम है?

तहसीलदार—जब जरूरत पड़ती है, तो उनसे भी यह काम लिये जाते हैं?

इर्फान—आप जानते हैं, जमीन लीपना किसका काम है।

तहसीलदार—यह किसी खास जात का काम नहीं है?

इर्फान—मगर आपको इससे तो इंकार नहीं हो सकता कि आम तौर पर अहीर और ठाकुर यह काम नहीं करते?

तहसीलदार—जरूरत पड़ने पर कर सकते हैं।

इर्फान—जरूरत पड़ने पर क्या आप अपने घोड़े के आगे घास नहीं डाल देते? क्या इस लिहाज से आप अपने को साईस कहलाना पसन्द करेंगे?

तहसीलदार—मेरी हालत का उन काश्तकारों से मुकाबला नहीं हो सकता।

इर्फान—बहरहाल, यह आपको मानना पड़ेगा कि जो लोग जिस काम के आदी नहीं हैं, वे उसे करना अपनी जिल्लत समझते हैं, उनसे यह काम लेना बेइंसाफी है। कोई बरहमन खुशी से आपके बर्तन न धोयेगा। अगर आप उससे जबरन यह काम लें, तो वह चाहे खौफ से करे पर उसका दिल जख्मी हो जाएगा। वह मौका पाएगा तो आपकी शिकायत करेगा।

तहसीलदार—हां, आपका यह फरमान न बजा है, लेकिन कभी-कभी अफसरों को मजबूर होकर सभी कुछ करना पड़ता है।

इर्फान—तो आपको ऐसी हालतों में नामुलायम बातें सुनने के लिए भी तैयार रहना चाहिए। फिर लखनपुर वालों पर क्यों इल्जाम रखते हैं, यह इंसानी फितरत (स्वभाव) का कसूर है। अब तो आप तस्लीम करेंगे कि इन काश्तकारों से जो बेअदबी हुई वह आपकी ज्यादती का नतीजा था?

तहसीलदार—अफसरों की आसाइश के लिए....

तहसीलदार साहब का आशय समझकर जज ने उन्हें रोक दिया।

इर्फान अली जब संध्या समय घर पहुंचे, तब उन्हें बाबू ज्ञानशंकर का अर्जेन्ट तार मिला। उन्होंने एक जरूरी मुकदमे की पैरवी के लिए बुलाया था। एक हजार रुपये रोजाना मेहनताना का वादा था। डॉक्टर साहब ने तार फाड़कर फेंक दिया और तत्क्षण तार से जवाब दिया—खेद है, मुझे फुर्सत नहीं है। मैं लखनपुर के मामले की पैरवी कर रहा हूं।

सत्तावन

गायत्री की दशा इस समय उस पथिक की-सी थी जो साधु भेषधारी डाकुओं के कौशल-जाल में पड़कर लुट गया हो। वह उस पथिक की भांति पछताती थी कि मैं कुसमय चली क्यों? मैंने चलती हुई सड़क क्यों छोड़ दी? मैंने भेष बदले हुए साधुओं पर विश्वास क्यों किया और उनको अपने रुपयों की थैली क्यों दिखायी? उसी पथिक की भांति अब वह प्रत्येक बटोही को आशंकित नेत्रों से देखती थी। यह विडम्बना उसके लिए सहस्त्रों उपदेशों से अधिक शिक्षापद्र और सजगकारी थी। अब उसे याद आता था कि एक साधु ने उसे प्रसाद खिलाया था। जरा दूर चलकर मुझे प्यास लगी, तो उसने मुझे शर्बत पिलाया, जो तृप्ति होने के कारण मैंने पेट भर पिया। अब उसे ज्ञात हो रहा था कि वह प्यास उसी प्रसाद का फल थी। ज्यों-ज्यों वह उस घटना पर विचार करती थी, उसके सभी रहस्य, कारण और कार्य के सूत्र में बंधे हुए मालूम होते थे। गायत्री ने अपने आभूषण तो बनारस में ही उतारकर श्रद्धा को सौंप दिये थे, अब उसने रंगीन कपड़े भी त्याग दिये। पान खाने का उसे शौक था, उसे भी छोड़ा। आईने और कंघी को त्रिवेणी में डाल दिया। रुचिकर भोजन को तिलांजलि दी। उसे अनुभव हो रहा था कि इन्हीं व्यसनों ने मेरे मन को चंचल बना दिया। मैं अपने सतीत्व के गर्व में विलास-प्रेम को निर्विकार समझती थी। मुझे यह न सूझता था कि वासना केवल इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके सन्तुष्ट नहीं होती, वह शनैः-शनैः मन को भी अपना आज्ञाकारी बना लेती है। अब वह केवल एक उजली साड़ी पहनती थी, नंगे पांव चलती थी और रूखा-सूखा भोजन करती थी। इच्छाओं का दमन कर रही थी, उन्हें कुचल डालना चाहती थी। शीशा ज्यों-ज्यों साफ होता है, उसके बाल स्पष्ट होते जाते हैं। गायत्री को अब अपने मन की कुप्रवृत्तियां साफ दिखायी दे रही थीं। कभी-कभी क्षोभ और ग्लानि के उद्वेग में उसका जी चाहता कि प्राणघात कर लूं। उसे अब स्वप्न में अक्सर अपने पति के दर्शन होते। उनकी मर्मभेदी बातें कलेजे के पार हो जातीं, उनकी तीव्र दृष्टि हृदय को छेद डालती।

बनारस से वह प्रयाग आई और कई दिनों तक झूंसी की एक धर्मशाला में ठहरी रही। यहां उसे कई महात्माओं के दर्शन हुए, लेकिन उसे उनके उपदेशों से शान्ति न मिली। वे सब दुनिया के बंदे थे। पहले त्तो उससे बात तक न की, पर ज्योंही मालूम हुआ कि यह रानी गायत्री हैं, त्योंही सब ज्ञान और वैराग्य के पुतले बन गए! गायत्री को विदित हो गया कि उनका त्याग केवल उद्योग-हीनता है और उनका भेष केवल सरल-हृदय भक्तों के लिए मायाजाल। वह निराश होकर चौथे दिन हरिद्वार जा पहुंची, पर यहां धर्म का आडंबर तो बहुत देखा, भाव कम। यात्रीगण दूर-दूर से आये हुए थे, पर तीर्थ करने के लिए नहीं, केवल विहार करने के लिए। आठों पहर गंगा तट पर विलास और आभूषण की बहार रहती थी। गायत्री खिन्न होकर तीसरे ही दिन यहां से हृषिकेश चली गई। वहां उसने किसी को अपना परिचय न दिया। नित्य पहर रात रहे उठती और गंगा-स्नान करके दो-तीन घंटे गीता का पाठ किया करती। शेष समय धर्म-ग्रन्थों के पढ़ने में काटती। संध्या को साधु-महात्माओं के ज्ञानोपदेश सुना करती। यद्यपि वहां दो-एक त्यागी आत्माओं के दर्शन हुए, पर कोई ऐसा तत्त्वज्ञानी न मिला, जो उसके चित्त को संसार से विरक्त कर दे। इतना संयम और इंद्रिय-निग्रह करने पर भी सांसारिक चिंताएं उसे सताया करती थीं। मालूम नहीं घर पर क्या हो रहा है? न जाने सदाव्रत चलता है या ज्ञानशंकर ने बंद कर दिया?

फर्श आदि की न जाने क्या दशा होगी? नौकर-चाकर चारों ओर लूट मचा रहे होंगे। मेरे दीवानखाने में मनों गर्द जम गई होगी। अब की अच्छी तरह मरम्मत न हुई होगी तो छतें कई जगह फट गई होंगी। मोटरें और बग्घियां रोज मांगी जाती होंगी। जो ही आकर दो-चार लल्लो-चप्पो की बातें करता होगा, लालाजी उसी को दे देते होंगे। समझते होंगे अब तो मैं मालिक हूं! बगीचा बिल्कुल जंगल हो गया होगा। ईश्वर जाने कोई चिड़ियों और जानवरों की सुधि लेता है या नहीं। बेचारे भूखों मर गए होंगे। दोनों पहाड़ी कितनी दौड़-धूप करने पर मिले थे । अब या तो मर गए होंगे या कोई मांग ले गया होगा। संदूकों की कुंजियां तो श्रद्धा को दे आई हूं, पर ज्ञानशंकर जैसे दुष्ट चरित्र आदमी से कोई बात बाहर नहीं। बहुधा धर्म-ग्रन्थों के पढ़ते या मंत्र जाप करते समय ये दुश्चिंताएं उसे आ घेरती थीं। जैसे टूटे हुए बर्तन में एक ओर से पानी भरो और दूसरी ओर से टपक जाता है उसी तरह गायत्री एक ओर तो आत्म-शुद्धि की क्रियाओं में तत्पर हो रही थी, पर दूसरी ओर चिता-व्याधि उसे घेरे रहती थी। वह शान्ति, वह एकाग्रता न प्राप्त होती थी जो आत्मोत्कर्ष का मूल मन्त्र है। आश्चर्य तो यह है कि वह विघ्न-बाधाओं का स्वागत करती थी और उन्हें प्यार से हृदयागार में बैठाती थी। वह बनारस से यह ठानकर चली थी कि अब संसार से कोई नाता न रखूंगी, लेकिन अब उसे ज्ञात होता था कि आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिए वैराग्य की जरूरत नहीं है। मैं अपने घर रहकर रियासत की देखरेख करते हुए क्या निर्लिप्त नहीं रह सकती? पर इस विचार से उसका जी झुंझला पड़ता था। वह अपने को समझाती, अब उसे रियासत से क्या प्रयोजन है? बहुत भोग कर चुकी। अब मुझे मोक्ष-मार्ग पर ही चलना चाहिए, यह जन्म तो बिगड़ ही गया, दूसरा जन्म क्यों बिगाड़ूं?

इसी तर्क-वितर्क में गायत्री बद्रीनाथ की यात्रा पर आरूढ़ न हो सकी। हृषिकेश में पड़े-पड़े तीन महीने गुजर गए और हेमन्त सिर पर आ पहुंचा, यात्रा दुस्साध्य हो गई।

पौष मास था, पहाड़ों पर बर्फ गिरने लगी थी। प्रातःकाल की सुनहरी किरणों में तुषार-मंडित पर्वत-श्रेणियों की शोभा अकथनीय थी। एक दिन गायत्री ने सुना कि चित्रकूट में कहीं से ऐसे महात्मा आये हैं जिनके दर्शन मात्र से ही आत्मा तृप्त हो जाती है। वह उपदेश बहुत कम करते हैं, लेकिन उनका दृष्टिपात उपदेशों से भी ज्यादा सुधावर्षी होता है। उनके मुखमंडल पर ऐसी कान्ति है मानो तपाया हुआ कुन्दन हो। दूध ही उनका आहार है और वह भी एक छटांक से अधिक नहीं, पर डीलडौल और तेजबल ऐसा है कि ऊंची से ऊंची पहाड़ियों पर खटाखट चढ़ते चले जाते हैं, न दम फूलता है, न पैर कांपते है, न पसीना आता है। उनका पराक्रम देखकर अच्छे-अच्छे योगी भी दंग रह जाते हैं। पसूनी के गलते हुए पानी में पहर रात ही से खड़े होकर दो-तीन घंटे तक तप किया करते हैं। उनकी आंखों में कुछ ऐसा आकर्षण है कि वन के जीवधारी भी उनके इशारों पर चलने लगते हैं। गायत्री ने उनकी सिद्धि का यह वृत्तांत सुना, तो उसे उनके दर्शनों की प्रबल उत्कंठा हुई। उसने दूसरे ही दिन चित्रकूट की राह ली और चौथे दिन पसूनी के तट पर एक धर्मशाला में बैठी हुई थी।

यहां जिसे देखिए वही स्वामीजी का कीर्तिगान कर रहा था। भक्त जन दूर-दूर से आये हुए थे। कोई कहता था यह त्रिकालदर्शी हैं, कोई उन्हें आत्मज्ञानी बतलाता था। गायत्री उनकी सिद्धि की कथाएं सुनकर इतनी विह्वल हुई थी कि इसी दम जाकर उनके चरणों पर सिर रख दे, लेकिन रात से मजबूर थी। वह सारी रात करवटें बदलती और सोचती रही कि मैं मुंह अंधेरे जाकर महात्माजी के पैरों पर गिर पड़ूंगी और कहूंगी कि महाराज, अभागिनी हूं, आप आत्मज्ञानी हैं,

आप सर्वज्ञ हैं, मेरा हाल आपसे छिपा हुआ नहीं है, मैं अथाह जल में डूबी जाती हूं, अब आप ही मुझे उबार सकते हैं। मुझे ऐसा उपदेश दीजिए और मेरी निर्बल आत्मा को इतनी शक्ति प्रदान कीजिए कि वह माया-मोह के बन्धनों से मुक्त हो जाय। मेरे हृदय-स्थल में अन्धकार छाया हुआ है, उसे आप अपनी व्यापक ज्योति से आलोकित कर दीजिए। इस दीन कल्पना से गद्गद होकर घंटों रोती रही। उसकी कल्पना इतनी सजग हो गई कि स्वामीजी के आश्वासन-शब्द भी उसके कानों में गूंजने लगे। ज्योंही मैं उनके चरणों पर गिरूंगी वह प्रेम से मेरे सिर पर हाथ रखकर कहेंगे, बेटी, तुझ पर बड़ी विपत्ति पड़ी है, ईश्वर तेरा कल्याण करेंगे। जाड़े की लम्बी रात किसी भाँति कटती ही न थी। वह बार-बार उठकर देखती तड़का तो नहीं हो गया है, लेकिन आकाश में जगमगाते हुए तारों को देखकर निराश हो जाती थी। पांचवी बार जब उठी तो पौ फट रही थी। तारागण किसी मधुर गान के अंतिम स्वरों की भाँति लुप्त होते जाते थे। आकाश एक पीतवस्त्रधारी योगी की भाँति था, जिसका मुखकमल आत्मोल्लास से खिला हुआ हो और पृथ्वी एक माया-रहस्य थी, ओस के नीले पर्दे में छिपी हुई। गायत्री ने तुरंत पसूनी में स्नान किया और स्वामी जी के दर्शन करने चली।

स्वामीजी की कुटी एक ऊंची पहाड़ी पर थी। वहां वह एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए थे। वहीं चट्टानों के फर्श पर भक्तजन आ-आकर बैठते जाते थे। चढ़ाई कठिन थी, पर श्रद्धा लोगों को ऊपर खींचे लिये जाती थी। अशक्तता और निर्बलता ने भी सदनुराग के सामने सिर झुका दिया था। नीचे से ऊपर तक आदमियों का तांता लगा हुआ था। गायत्री ने पहाड़ी पर चढ़ना शुरू किया। थोड़ी दूर चलकर उसका दम फूल गया। पैर मन-मन भर के हो गए, उठाए न उठते थे, लेकिन वह दम ले-लेकर हाथों और घुटनों के बल चट्टानों पर चढ़ती हुई ऊपर जा पहुंची। उसकी सारी देह पसीने से तर थी और आंखों के सामने अंधेरा छा रहा था, लेकिन ऊपर पहुंचते ही उसका चित्त ऐसा प्रफुल्लित हुआ जैसे किसी प्यासे को पानी मिल जाय। गायत्री की छाती में धड़कन-सी होने लगी। ग्लानि की, ऐसी भीषण पीड़ा उसे कभी न हुई थी। इस ज्ञान-ज्योति को कौन-सा मुंह दिखाऊं। उसे स्वामी जी की ओर ताकने का साहस न हुआ, जैसे कोई आदमी सराफ के हाथ में खोटा सिक्का देता हुआ डरे। वह इसी हैस-वैस में थी कि सहसा उसके कानों में आवाज आई—गायत्री, मैं बहुत देर से तेरी बाट जोह रहा हूं। यह राय कमलानन्द की आवाज थी, करुणा और स्नेह में डूबी हुई। गायत्री ने चौंककर सामने देखा, स्वामीजी उसकी ओर चले आ रहे थे। उनके तेजोमय मुखारविन्द पर करुणा झलक रही थी और आंखें प्रेमाश्रु से भरी हुई थीं। गायत्री की आंखें झुक गईं। ऐसा जान पड़ा मानो मैं तेज तरंगों में बही जाती हूं। हा ! मैं इस विशाल आत्मा की पुत्री ! ग्लानि ने कहा, हा पतिता ! लज्जा ने कहा, हा कुलकलंकिनी ! निराशा बोली, हा अभागिनी ! शोक ने कहा, तुझ पर धिक्कार ! तू इस योग्य नहीं कि संसार को अपना मुंह दिखाए। अधःपतन अब क्या शेष है जिसके लिए जीवन की अभिलाषा ! विधाता ने तेरे भाग्य में ज्ञान और वैराग्य नहीं लिखा। इन दुष्कल्पनाओं ने गायत्री को इतना मर्माहत किया कि पश्चात्ताप, आत्मोद्धार और परमार्थ की सारी सदिच्छाएं लुप्त हो गईं। उसने उन्मत्त नेत्रों से नीचे की ओर देखा और तब जैसे कोई चोट खाया हुआ पक्षी दोनों डैने फैलाकर वृक्ष से गिरता है वह दोनों हाथ फैलाये शिखर पर से गिर पड़ी। नीचे एक गहरा कुंड था। उसने उसकी अस्थियों को संसार के निर्दय कटाक्षों से बचाने के लिए अपने अंतस्तल के अपार अन्धकार में छिपा लिया।

अट्ठावन

लाला प्रभाशंकर ने भविष्य-चिंता का पाठ न पढ़ा था। 'कल' की चिंता उन्हें कभी न सताती थी। उनका समस्त जीवन विलास और कुल-मर्यादा की रक्षा में व्यतीत हुआ था। खिलाना, खाना और नाम के लिए मर जाना—यही उनके जीवन के ध्येय थे। उन्होंने सदैव इसी त्रिमूर्ति की आराधना की थी और अपनी वंशगत संपत्ति का अधिकांश बर्बाद कर चुकने पर भी वह अपने व्यावहारिक नियमों में संशोधन करने की जरूरत न समझते थे, या समझते थे तो अब किसी नए मार्ग पर चलना उनके लिए असाध्य था। वह एक उदार, गौरवशील पुरुष थे। संपत्ति उनकी दृष्टि में मर्यादा-पालन का एक साधन मात्र थी। इससे श्रीवृद्धि भी हो सकती है, धन से धन की उन्नति भी हो सकती है, यह उनके ध्यान में भी न आया था। चिंताओं को वह तुच्छ समझते थे, शायद इसलिए कि उनका निवारण करने के लिए ज्यादा-से-ज्यादा अपने महाजन के द्वार तक जाना पड़ता था। उनका जो समय और धन मेहमानों के आदर-सत्कार में लगता था उसी को वह श्रेयस्कर समझते थे। दान-दक्षिणा के शुभ अवसर आते तो उनकी हिम्मत आसमान पर जा पहुंचती थी। उस नशे में उन्हें इसकी सुध न रहती थी कि फिर क्या होगा, और काम कैसे चलेंगे? यह बड़ी बहू ही का काम था कि इस चढ़ी हुई नदी को थामे। वह रुपये को उनकी आंखों से इस तरह बचाती थी जैसे दीपक को हवा से बचाते हैं। वह बेधड़क कह देती थी, अब यहां कुछ नहीं है। लालाजी उसे धिक्कारने लगते, दुष्टा, अभागिनी, तुच्छहृदया, जो कुछ मुंह में आता कहते, पर वह टस-से-मस न होती थी। अगर वह सदैव इस नीति पर चल सकती तो अब तक जायदाद बची रहती, पर लाला साहब ऐसे अवसरों पर कौशल से काम लेते। वह विनय के महत्त्व से अनभिज्ञ नहीं थे। बड़ी बहू उनके कोप का सामना कर सकती थी, पर उनके मृदुवचनों से हार जाती।

प्रेमशंकर की जमानत के अवसर पर लाला प्रभाशंकर ने जो रुपये कर्ज लिए थे, उसका अधिकांश उनके पास बच रहा था। वह रुपये उन्होंने महाजन को लौटाकर न दिए। शायद ऋण-धन को वह अपनी कमाई समझते थे। धन-प्राप्ति का कोई अन्य उपाय उन्हें ज्ञात ही न था। बहुत दिनों के बाद इतने रुपये एकमुश्त उन्हें मिले थे—मानो भाग्य सूर्य उदय हो गया। आत्मीयजनों और मित्रों के यहां तोहफे और सौगात जाने लगे, मित्रों की दावतें होने लगीं। लालाजी पाक-कला में सिद्धहस्त थे। उनका निज रचित एक ग्रंथ था जिसमें नाना प्रकार के व्यंजनों के बनाने की विधि लिखी हुई थी। वह विद्या उन्होंने बहुत खर्च करके हलवाइयों और बावर्चियों से प्राप्त की थी। वह चिमकौड़ियों की ऐसी स्वादिष्ट खीर पका सकते थे कि बादाम का धोखा हो। लाल विषाक्त मिर्चा का ऐसा हलवा बना सकते थे कि मोहन-भोग का भ्रम हो। आम की गुठलियों का कबाब बना कर उन्होंने अपने कितने ही रसज्ञ मित्रों को धोखा दे दिया था। उनका लिसोढ़े का मुरब्बा अंगूर के मुरब्बे से भी बाजी मार ले जाता था। यद्यपि इन पदार्थों को तैयार करने में धन का अपव्यय होता था, सिरमगजन भी बहुत करना पड़ता था और नक्ल-नक्ल ही रहती थी, लेकिन लालाजी इस विषय में पूरे कवि थे जिनके लिए सुहृदजनों की प्रशंसा ही सबसे बड़ा पुरस्कार है। अबकी कई साल के बाद उन्होंने अपने बड़े भाई की जयंती हौसले के साथ की ! भोज और दावत की हफ्तों तक धूम रही। शहर में एक-से-एक गणमान्य सज्जन पड़े हुए थे, पर कोई उनसे टक्कर लेने का साहस न कर सकता था।

बड़ी बहू जानती थी कि जब तक घर में रुपये रहेंगे इनका हाथ न रुकेगा, साल-आध साल में सारी रकम खा-पीकर बराबर कर देंगे, इसलिए जब घर में आग ही लगाई है तो क्यों न हाथ सेंक लें। अवसर पाते ही उसने दोनों कन्याओं के विवाह की बातचीत छेड़ दी। यद्यपि लड़कियां अभी विवाह के योग्य न थीं, पर मसलहत यही थी कि चलते हाथ इस भार से उऋण हो जाएं। जिस दिन ज्वालासिंह अपील दायर करने चले उसी दिन लाला प्रभाशंकर ने फलदान चढ़ाए। दूसरे ही दिन से वह बरातियों के आदर-सत्कार की तैयारियों में व्यस्त हो गए। ऐसे सुभ कार्यों में वह किफायत को दूषित ही नहीं, अक्षम्य समझते थे। उनके इरादे तो बहुत बड़े थे, लेकिन कुशल यह थी कि आजकल प्रेमशंकर प्राय: नित्य उनकी मदद करने के लिए आते। प्रभाशंकर दिल से उनका आदर करते थे, इसलिए उनकी सलाहें सर्वथा निरर्थक न होतीं। विवाह की तिथि अगहन में पड़ती थी। डेढ़-दो महीने तैयारियों ही में कटे। प्रेमशंकर अक्सर संध्या को यहीं भोजन भी करते और कुछ देर तक गपशप करके हाजीपुर चले जाते। आश्चर्य यह था कि अब महाशय ज्ञानशंकर भी चचा से प्रसन्न मालूम होते थे। उन्होंने गोरखपुर से कई बोरे चावल, शक्कर और कई कुप्पे घी भेजे। विवाह के एक दिन पहले वह स्वयं आए और बड़े ठाट-बाट से आए। कई सशस्त्र सिपाही साथ थे। फर्श, कालीनें, दरियां तो इतनी लाए थे कि उनसे कई बरातें सज जातीं। दोनों वरों को सोने की एक-एक घड़ी और एक-एक मोहनमाला दी। बरातियों को भोजन करते समय एक-एक अशर्फी भेंट की। दोनों भतीजियों के लिए सोने के हार बनवा लाए थे और दोनों समधियों को एक-एक सजी हुई पालकी भेंट की। बरात के नौकरों, कँहारों और नाइयों को पांच-पांच रुपये विदाई दी। उनकी इस असाधारण उदारता पर सारा घर चकित हो रहा था और प्रभाशंकर तो उनके ऐसे भक्त हो गए, मानो वह कोई देवता थे। सारे शहर में वाह-वाह होने लगी। लोग कहते थे—मरा हाथी तो भी नौ लाख का ! बिगड़ गए लेकिन फिर भी हौसला और शान वही है। यह पुराने रईसों का ही गुर्दा है। दूसरे क्या खाकर इनकी बराबरी करेंगे? घर में लाखों भरे हों, कौन देखता है? यही हौसला अमीरी की पहचान है। लेकिन यह किसे मालूम था कि लाला साहब ने किन दामों यह नामवरी खरीदी है?

विवाह के बाद कुछ दिन तो बची-खुची सामग्रियों से लाला प्रभाशंकर की रसना तृप्त होती रही, लेकिन शनै: शनै: यह द्वार भी बंद हुआ और रूखे-फीके भोजन पर कटने लगी। उस वर्षा के बाद यह सूखा बहुत अखरता था। स्वादिष्ट पदार्थों के बिना उन्हें तृप्ति न होती थी। रूखा भोजन कंठ से नीचे उतरता ही न था। बहुधा चौके पर मुंह जूठा करके उठ आते, पर सारे दिन जी ललचाया करता। अपनी किताब खोलकर उसके पन्ने उलटते कि कौन-सी चीज आसानी से बन सकती है, पर वहां ऐसी कोई चीज न मिलती। बेचारे निराश होकर किताब बंद कर देते और मन को बहलाने के लिए बरामदे में टहलने लगते। बार-बार घर में जाते, आल्मारियों और ताखों की ओर उत्कंठित नेत्रों से देखते कि शायद कोई चीज निकल आए। अभी तक थोड़ी-सी नवरत्न चटनी बची हुई थी। कुछ और न मिलता तो सबकी नजर बचा उसमें से एक चम्मच निकालकर चाट जाते। विडंबना यह थी कि इस दु:ख में कोई उनका साथी, कोई हमदर्द न था। बड़ी बहू से अगर कभी-कभी डरते-डरते अच्छी चीजें बनाने को कहते, तो वह या तो टाल जाती या झुंझलाकर कह बैठती—तुम्हारी जीभ भी लड़कों की तरह चटोरी है, जब देखो खाने की ही फिक्र ! सारी जायदाद हलुवे और पुलाव की भेंट कर दी और अब तक तस्कीन न हुई। अब क्या रखा है? बेचारे लाला साहब यह झिड़कियां सुनकर लज्जित हो जाते। प्रेमियों को प्रेमिका

की चर्चा से शांति प्राप्त होती है, किंतु खेद यह था कि यहां कोई वह चर्चा सुनने वाला भी न था !

अंत को यहां तक नौबत पहुंची कि खोंचे वालों को बुलाते और उनसे चाट के दोने लेकर घर के किसी कोने में जा बैठते और चुपचाप मजे ले-लेकर खाते। पहले चाट की ओर आंख उठाकर ताकते भी न थे, पर अब वह शान न थी। डेढ़-दो महीने तक उनका यही ढंग रहा, पर टुटपुंजिए खोंचे वाले वादों पर कब तक रहते ! उनके तकाजे होने लगे। लालाजी जो उनकी विचित्र पुकार पर कान लगाए रहते थे। अब उनकी आवाज सुनते ही छिपने के लिए, बिल ढूंढने लगते। उनके वादे अब सुनिश्चित न होते थे, उनमें अविनय और अविश्वास की मात्रा अधिक होती थी। मालूम नहीं इन तकाजों से उन्हें कब तक मुंह छिपाना पड़ता, लेकिन संयोग से उनके पूरे करने की एक विधि उपस्थित हो गई। श्रद्धा ने एक दिन उन्हें बाजार से दो जोड़ी साड़ियां लाने के लिए दाम दिया। वह साड़ियां उधार लाए और रुपये खोंचे वालों को देकर गला छुड़ाया। बजाज की ओर से ऐसे दुराग्रहपूर्ण और निन्दास्पद तकाजों की आशंका न थी। उसे बरसों वादों पर टाला जा सकता था, मगर उस दिन से चाट वालों ने उनके द्वार पर आना ही छोड़ दिया।

लेकिन चाट बुरी लत है। अच्छे दिनों में वह गले की जंजीर है, किंतु बुरे दिनों में तो वह पैनी छुरी हो जाती है, जो आत्म-सम्मान और लज्जा का तसमा भी नहीं छोड़ती। माघ का महीना, सर्दी का यह हाल था कि नाड़ियों में रक्त तक जमा जाता था। लाला प्रभाशंकर नित्य वायु-सेवन के बहाने प्रेमशंकर के पास जा पहुंचते और देशकाल के समाचार सुनते। मौका पाते ही किसी-न-किसी स्वादिष्ट पदार्थ की चर्चा छेड़ देते, उस समय की कथा कहने लगते जब वह चीज खाई, मित्रों ने उस पर क्या-क्या टिप्पणियां की थीं। प्रेमशंकर उनका इशारा समझ जाते और शीलमणि से वह पदार्थ बनवाकर लाते, लेकिन प्रभाशंकर की स्वाद-लिप्सा कितनी दारुण थी, इसका उन्हें ज्ञान न था। अतएव कभी-कभी लालाजी का मनोरथ वहां भी पूरा न होता। तब घर आते समय वह सीधी राह से न आते। स्वाद-तृष्णा उन्हें नानवाइयों के मुहल्ले में ले जाती। प्याज और मसालों की सुगंध से उनकी लोलुप आत्मा तृप्त होती थी। कितना करुणाजनक दृश्य था ! सत्तर साल का बूढ़ा, उच्चकुल मर्यादा पर जान देने वाला पुरुष, गंध से रस का आनंद उठाने के लिए घंटों नानवाइयों की गली में चक्कर लगाया करता, लज्जा से मुंह छिपाए हुए कि कोई देख न ले ! ताजे कबाब की सुगंध से उनके मुंह में पानी भर आता, यहां तक कि खाद्याखाद्य का विचार भी न रहता। उस समय केवल एक अव्यक्त शंका, एक मिथ्या संकोच उनके फिसलते हुए पैरों को संभाल दिया करता था।

एक दिन लाला जी प्रेमशंकर के पास गए तो उन्होंने अपील का फैसला सुनाया। प्रभाशंकर प्रसन्न होकर बोले–यह बहुत अच्छा हुआ। ईश्वर ने तुम्हारा उद्योग सफल किया। बेचारे निरपराध किसान जेल में पड़े सड़ रहे थे। ईश्वर बड़ा दयालु है। इस आनंदोत्सव में एक दावत होनी चाहिए।

माया बोला–जी हां, यही तो अभी मैं कह रहा था। मैं तो अपने स्कूल के सब लड़कों को नेवता दूंगा।

प्रेमशंकर–पहले बेचारे आ तो जाएं। अभी तो उनके आने में महीनों की देर है, कोई किसी जेल में है, कोई किसी में। जज ने तो पुलिस का पक्ष करना चाहा था, पर डॉक्टर इर्फान अली ने उनकी एक न चलने दी।

प्रभा–इन जजों का यही हाल है। उनका अभीष्ट सरकार का रोब जमाना होता है, न्याय

करना नहीं। इस मुकदमे में तुमने इतनी दौड़-धूप न की होती तो उन बेचारों की कौन सुनता? ऐसे कितने निरपराधी केवल पुलिस के कौशल तथा वकीलों की दुर्जनता के कारण दंड भोगा करते हैं। मैं तो जब वकीलों को बहस करते देखता हूं तो ऐसा मालूम होता है मानो भाट कवित्त पढ़ रहे हैं। न्याय पर किसी पक्ष की दृष्टि नहीं होती। दोनों मौखिक बल से एक-दूसरे को परास्त करना चाहते हैं। जो वाक्-चतुर है उसी की जीत होती है। आदमियों के जीवन-मरण का निर्णय सत्य और न्याय के बल पर नहीं, न्याय को धोखा देने के बल पर होता है।

प्रेम—जब तक मुद्दई और मुद्दालेह अपने-अपने वकील अदालत में लाएंगे तब तक इस दशा में कोई सुधार नहीं हो सकता, क्योंकि वकील तो अपने मुवक्किल का मुख-पात्र होता है। उसे सत्यासत्य निर्णय से कोई प्रयोजन नहीं, उसका कर्त्तव्य केवल अपने मुवक्किल के दावे को सिद्ध करना है। सच्चे न्याय की आशा तो तभी हो सकती है जब वकीलों को अदालत स्वयं नियुक्त करे और अदालत भी राजनीतिक भावों और अन्य दुस्संस्कारों से मुक्त हो। मेरे विचार में गवर्नमेंट को पुलिस में सुयोग्य और सच्चरित्र आदमी छांट-छांटकर रखने चाहिए। अभी तक इस विभाग में सच्चरित्रता पर जरा भी ध्यान नहीं दिया गया। वही लोग भर्ती किए जाते हैं जो जनता को दबा सकें, उन पर रोब जमा सकें। न्याय का विचार नहीं किया जाता।

प्रभा—जरा फैसला तो सुनाओ, देखूं क्या लिखा है?

प्रेम—हां सुनिए, मैं अनुवाद करता जाता हूं। देखिए, पुलिस की कैसी तीव्र आलोचना की है। यह अभियोग पुलिस के कार्यक्रम का एक उज्ज्वल उदाहरण है। किसी विषय का सत्यासत्य निर्णय करने के लिए आवश्यक है, साक्षियों पर निष्पक्ष भाव से विचार किया जाए और उनके आधार पर कोई धारणा स्थिर की जाय, लेकिन पुलिस के अधिकारी वर्ग ठीक उल्टे चलते हैं, ये पहले एक धारणा स्थिर कर लेते हैं और तब उसको सिद्ध करने के लिए साक्षियों और प्रमाण की तलाश करते हैं। स्पष्ट है कि ऐसी दशा में वह कार्य से कारण की ओर चलते हैं और अपनी मनोनीत धारणा में कोई संशोधन करने के बदले प्रमाणों को ही तोड़-मरोड़कर अपनी कल्पनाओं के सांचे में ढाल देते हैं। यह उल्टी चाल क्यों चली जाती है? इसका अनुमान करना कठिन है, पर प्रस्तुत अभियोग में कठिन नहीं। एक समूह जितना भार संभाल सकता है उतना एक व्यक्ति के लिए असाध्य है।

प्रभाशंकर ने चिंता भाव से कहा—यह तो खुला आक्षेप है। पुलिस से जवाब तो न तलब होगा?

प्रेम—इन आक्षेपों को कौन पूछता है? इन पर कुछ ध्यान दिया जाता तो पुलिस कबकी सुधर गई होती।

इतने में ज्वालासिंह आते हुए दिखाई दिए। प्रेमशंकर ने कहा—चचा साहब कहते हैं कि विजय का उत्सव करना चाहिए।

ज्वाला—मेरी भी इच्छा है।

उनसठ

बाल्यावस्था के पश्चात् ऐसा समय आता है जब उद्दंडता की धुन सिर पर सवार हो जाती है। इसमें युवाकाल की सुनिश्चित इच्छा नहीं होती, उसकी जगह एक विशाल आशावादिता है जो दुर्लभ को सरल और असाध्य को मुंह का कौर समझती है। भांति-भांति की मृदु-कल्पनाएं चित्त को आंदोलित करती रहती हैं। सैलानीपन का भूत-सा चढ़ा रहता है। कभी जी में आता है कि रेलगाड़ी में बैठकर देखूं कि कहां तक जाती है। अर्थी को देखकर उसके साथ श्मशान तक जाते हैं कि वहां क्या होता है। मदारी का खेल देखकर जी में उत्कंठा होती है कि हम भी गले में झोली लटकाए देश-विदेश घूमते और ऐसे ही तमाशे दिखाते। अपनी क्षमता पर ऐसा विश्वास होता है कि बाधाएं ध्यान में भी नहीं आतीं। ऐसी सरलता जो अलाउद्दीन के चिराग को ढूंढ निकालना चाहती है। इस काल में अपनी योग्यता की सीमाएं अपरिमित होती हैं। विद्याक्षेत्र में हम तिलक को पीछे हटा देते हैं, रणक्षेत्र में नेपोलियन से आगे बढ़ जाते हैं। कभी जटाधारी योगी बनते हैं, कभी टाटा से भी धनवान हो जाते हैं। हमें इस अवस्था में फकीरों और साधुओं पर ऐसी श्रद्धा होती है जो उनकी विभूति को कामधेनु समझती है। तेजशंकर और पद्मशंकर दोनों ही सैलानी थे। घर पर कोई देखभाल करने वाला न था, जो उन्हें उत्तेजनाओं से दूर रखता, उनकी सजीवता को, उनकी अबाध्य कल्पनाओं को सुविचार की ओर कर सकता। लाला प्रभाशंकर उन्हें पाठशाला में भर्ती करके ज्यादा देखभाल अनावश्यक समझते थे। दोनों लड़के घर से स्कूल को चलते, लेकिन रास्ते में नदी के तट पर घूमते, बैंड सुनते या सेना की कवायद देखने की इच्छा उन्हें रोक लिया करती। किताबों में दोनों की अरुचि थी और दोनों एक ही श्रेणी में कई-कई साल फेल हो जाने के कारण हताश हो गए थे। उन्हें ऐसा मालूम होता था कि हमें विद्या आ ही नहीं सकती। एक बार लालाजी की आल्मारी में इंद्रजाल की एक पुस्तक मिल गई थी। दोनों ने उसे बड़े चाव से पढ़ा और उसके मंत्रों को जगाने की चेष्टा करने लगे। दोनों अक्सर नदी की ओर चले जाते और साधु-संतों की बातें सुनते। सिद्धियों की नई-नई कथाएं सुनकर उनके मन में भी कोई सिद्धि प्राप्त करने की प्रबल इच्छा होती। इस कल्पना से उन्हें एक गर्वयुक्त आनंद मिलता था कि इन सिद्धियों के बल से हम सब कुछ कर सकते हैं, गड़ा हुआ धन निकाल सकते हैं, शत्रुओं पर विजय पा सकते हैं, पिशाचों को वश में कर सकते हैं। उन्होंने दो-एक लटकों का अभ्यास किया था और यद्यपि अभी तक उनकी परीक्षा करने का अवसर न मिला था, पर अपनी कृतकार्यता पर उन्हें अटल विश्वास था।

लेकिन जब से गायत्री ने मायाशंकर को गोद लिया था, ईर्ष्या और स्वार्थ से दोनों जल रहे थे। यह दाह एक क्षण के लिए भी न शांत होती। जो लड़का अभी कल तक उनके साथ का खिलाड़ी था, वह सहसा इतने ऊंचे पद पर पहुंच जाए। दोनों यही सोचा करते कि कोई ऐसी सिद्धि करनी चाहिए कि जिसके सामने धन और वैभव की कोई हस्ती न रहे, जिसके प्रभाव से वे मायाशंकर को नीचा दिखा सकें। अंत में बहुत सोच-विचार के पश्चात् उन्होंने भैरव-मंत्र जगाने का निश्चय किया। एक तंत्र-ग्रंथ ढूंढ निकाला जिसमें इस क्रिया की विधियां विस्तार से लिखी हुई थीं। दोनों ने कई दिन तक मंत्र को कंठस्थ किया। उसके मुखाग्र हो जाने पर यह सलाह होने लगी, इसे जगाने का आरंभ कब से किया जाए? तेजशंकर ने कहा—चलो आज से ही श्रीगणेश कर दें।

पद्म—जब कहो तब। बस, अस्सी घाट की ओर चलें।

तेज—चालीसा किसी तरह पूरा हो जाए तो हम अमर हो जाएंगे। तलवार, तोप का हम पर कुछ असर ही न होगा।

पद्म—यार, बड़ा मजा आएगा। सैकड़ों बरस तक जीते रहेंगे।

तेज—सैकड़ों ! अभी हजारों क्यों नहीं कहते? हिमालय की गुफाओं में ऐसे-ऐसे साधु पड़े हैं जिनकी अवस्थाएं चार-चार सौ साल से अधिक हैं। उन्होंने भी यही मंत्र जगाया होगा। मौत का उन पर कोई वश नहीं चलता।

पद्म—माया बड़ी शेखी मारा करता है। बच्चा, एक दिन मर जाएंगे, सब यहीं रखा रह जाएगा। यहां कौन चिंता है? तोप से भी न डरेंगे।

तेज—लेकिन मंत्र जगाना सहज नहीं है। डरे और काम-तमाम हुआ, जरा चौंके और वहीं ढेर हो गए। तुमने तो किताब में पढ़ा ही है, कैसी-कैसी भयंकर सूरतें दिखाई देती हैं। कैसी-कैसी डरावनी आवाजें सुनाई देती हैं। भूत-प्रेत-पिशाच नंगी तलवार लिए मारने दौड़ते हैं। उस वक्त जरा भी शंका न करनी चाहिए।

पद्म—मैं जरा भी न डरूंगा, वह कोई सचमुच के भूत-प्रेत थोड़े ही होंगे। देवता लोग परीक्षा के लिए डराते होंगे?

तेज—हां, और क्या ! सब भ्रम है। अपना कलेजा मजबूत किए रहना।

पद्म—और जो कहीं तुम डर जाओ?

तेजशंकर ने गर्व से हंसकर कहा—मैंने डर को भूनकर खा लिया है। वह मेरे पास नहीं फटक सकता। मैं तो सचमुच के प्रेतों से न डरूं, शंकाओं की कौन चलाए !

पद्म—तो हम लोग अमर हो जाएंगे।

तेज—अवश्य, इसमें भी कुछ संदेह है?

दोनों ने इस भांति निश्चय करके मंत्र जगाना शुरू किया। जब घर के सब लोग सो जाते तो दोनों चुपके से निकल जाते और अस्सी घाट पर गंगा के किनारे बैठकर मंत्र-जाप करते। इस प्रकार उनतालीस दिनों तक दोनों ने अभ्यास किया। इस विकट परीक्षा में वे कैसे पूरे उतरे इसकी व्याख्या करने के लिए एक पोथी अलग चाहिए। उन्हें वह सब विकराल सूरतें दिखाई दीं, वे सब रोमांचकारी शब्द सुनाई दिए, जिनका उस पुस्तक में जिक्र था। कभी मालूम होता था आकाश फटा पड़ता है, कभी आग की एक लहर सामने आती हुई नजर आती, कहीं कोई भयंकर राक्षस मुंह से अग्नि की ज्वाला निकालता हुआ उन्हें निगलने को लपकता, लेकिन भय की पराकाष्ठा का नाम साहस है। दोनों लड़के आंखें बंद किए, नीरव, निश्चल, निस्तब्ध, मूर्ति के समान बैठे रहते। जाप का तो केवल नाम था, सारी मानसिक शक्तियां इन शंकाओं को दूर रखने में ही केंद्रीभूत हो जाती थीं। यह भय कि जरा भी चौंके, झिझके या विचलित हुए तो तत्क्षण प्राणांत हो जाएगा, उन्हें अपनी जगह पर बांधे रहता था। मेरा भाई समीप ही बैठा है, यह विश्वास उनकी दृढ़ता का एक मुख्य कारण था, हालांकि इस विश्वास से तेजशंकर को उतना ढाढ़स न होता था जितना पद्मशंकर को। उसे पद्म पर वह भरोसा न था जो पद्म को उस पर था। अतएव तेजशंकर के लिए यह परीक्षा ज्यादा दुस्साध्य थी, पर यह भय कि मैं जरा भी हिला तो पद्म की जान पर बन जाएगी, उस अविश्वास की थोड़ी-सी कसर पूरी कर देता था। इन दिनों दोनों दुर्बल हो गए थे, मुख पीले, आंखें चंचल, होंठ सूखे हुए। दोनों सारे दिन संज्ञा-हीन

से पड़े रहते, सैर सपाटे, आमोद-विनोद से उन्हें जरा भी रुचि न थी, आठों पहर मन उचटा रहता था, यहां तक कि भोजन भी अच्छा न लगता। इस तरह उनतालीस दिन बीत गए और चालीसवां दिन आ पहुंचा। आज भोर से ही उनके चित्त उद्विग्न होने लगे। शंकाओं ने उग्र रूप धारण किया, आशाएं भी प्रबल हुईं। दोनों आशा और भय की दशा में बैठे हुए कभी अमरत्व की कल्पना से प्रफुल्लित हो जाते, कभी आज की कठिनतम परीक्षाओं के भय से कांपते, पर आशाएं भय से ऊपर थीं। सारे शहर में हलचल मच जाएगी, हम लोग जलती हुई आग में कूद पड़ेंगे, और बेदाग निकल जाएंगे, आंच तक न आएगी। उस मुंडेर पर से निश्शंक नीचे कूद पड़ेंगे, जरा भी चोट न लगेगी। लोग देखकर दंग हो जाएंगे। दिन-भर दोनों ने कुछ नहीं खाया। कभी नीचे जाते, कभी ऊपर जाते, कभी हंसते, कभी रोते, कभी नाचते। कोई दूसरा आदमी उनकी यह दशा देखकर समझता कि पागल हो गए हैं।

जब अंधेरा हुआ तो तेजशंकर घर में से एक तलवार निकाल लाया जिसे लालाजी ने हाल ही में जयपुर से मंगवाया था। दोनों ने कमरे का द्वार बंद कर, उसे मिट्टी के तेल से खूब साफ किया, तब उसे पत्थर पर रगड़ा, यहां तक कि उसमें से चिंगारियां निकलने लगीं। तब उसे बिछावन के नीचे छिपाकर दोनों बाजार की सैर करने निकल गए। लौटे तो नौ बज गए थे। बड़ी बहू के बहुत अनुरोध करने पर दोनों ने कुछ सूक्ष्म भोजन किया और तब अपने कमरे में लोगों के निद्रामग्न हो जाने का इंतजार करने लगे। ज्यों-ज्यों समय निकट आता था उनका आशा-दीपक भय-तिमिर में विलुप्त होता जाता था। इस समय उनकी दशा कुछ उस अपराधी की-सी थी जिसकी फांसी का समय प्रतिक्षण निकट आता जाता हो। भांति-भांति की शंकाएं और दुष्कल्पनाएं उठ रही थीं, किंतु इस आंधी और तूफान में भी एक नौका का स्पष्ट चिह्न दूर से दिखाई देता था जिससे उनकी हिम्मत बंध जाती थी। तेजशंकर चिंतित और गंभीर था और पद्मशंकर की सरल, आशामय बातों का जवाब तक न देता था।

निश्चिंत समय आ पहुंचा तो दोनों घर से निकले। माघ का महीना, तुषारवेष्टित वायु हड्डियों में चुभती थी। हाथ-पांव अकड़े जाते थे। तेजशंकर ने तलवार को अपनी चादर के नीचे छिपा लिया और दोनों चले, जैसे कोई मंदबुद्धि बालक परीक्षा भवन की ओर चले ! पग-पग पर वे शंका-विह्वल होकर ठिठक जाते, कलेजा मजबूत करके आगे बढ़ते। यहां तक कि कई बार उन्होंने लौटने का इरादा किया, लेकिन उनतालीस दिन की तपस्या के बाद वरदान मिलने के दिन हिम्मत हार जाना अक्षम्य दुर्बलता और भीरुता थी। अब तो चाहे जो हो, यह अंतिम परीक्षा अनिवार्य थी। इस तरह डरते-हिचकते दोनों घाट पर पहुंच गए। रास्ते में किसी के मुंह से एक शब्द भी न निकला।

अमावस की रात थी। आंखों का होना न होना बराबर था। तारागण भी बादलों में मुंह छिपाए हुए थे। अंधकार ने जल और बालू, पृथ्वी और आकाश को समान कर दिया था। केवल जल की मधुर ध्वनि गंगा का पता देती थी। ऐसा सन्नाटा छाया हुआ था कि जल-नाद भी उसमें निमग्न हो जाता था। ऐसा जान पड़ता था कि पृथ्वी अभी शून्य के गर्भ में पड़ी हुई है। अनंत जीवन के दोनों आराधक पग-पग पर ठोकरें खाते, शंका-रचित बाधाओं से पग-पग पर चौंकते नदी के किनारे पहुंचे और नग्न होकर जल में उतरे। पानी बर्फ हो रहा था। उनके सारे अंग शिथिल हो गए। स्नान करके दोनों रेत पर बैठ गए और मंत्र का जाप करने लगे। लेकिन आश्चर्य यह था कि आज उन्हें कोई ऐसा दृश्य न दिखाई दिया जिसे वे देख न चुके हों, न कोई ऐसी आवाजें

सुनाई दीं जो वे सुन न चुके हों। कोई असाधारण घटना न हुई। सर्दी ने शंकाओं को भी शांत कर दिया था। विषम कल्पनाएं निर्जीव हो गई थीं। दोनों डर रहे थे कि आज न जाने कैसी-कैसी विकराल मूर्तियां दिखाई देंगी, प्रेतगण न जाने किन मंत्रों से आघात करेंगे! न जाने प्राण बचेंगे या जाएंगे? लेकिन आज और दिनों से सस्ते छूट गए।

जब रात समाप्त हो गई और दोनों साधकों ने आंखें खोलीं तब आकाश पर ऊषा की लालिमा दिखाई दी। पृथ्वी शनैः-शनैः तिमिर-पट से निकलने लगी। उस पार के वृक्ष और रेत व्यक्त हो गए जैसे किसी मूर्छित रोगी के मुख पर चैतन्य का विकास हो रहा हो। श्यामल जल वेग से बह रहा था, मानो अंधकार को अपने साथ बहाए लिए जाता हो। उस पार के वृक्ष इस तरह सिर झुकाए खड़े थे मानो शोक समाज किसी की दाह-क्रिया करके शोक से सिर झुकाए चला जाता है।

सहसा तेजशंकर उठ खड़ा हुआ और बोला-जय भैरव की।

पद्मशंकर ने भी कड़ककर कहा-जय भैरव की।

दोनों के नेत्रों में एक अलौकिक प्रकाश था, दोनों के मुखों पर एक अद्‌भुत प्रतिभा झलक रही थी।

तेजशंकर-तलवार हाथ में लो, मैं सिर झुकाए हुए हूं।

पद्म-नहीं, पहले तुम चलाओ, मैं सिर झुकाता हूं।

तेज-क्या अब भी डरते हो? हमने मौत को कुचल दिया, काल को जीत लिया। अब हम अमर हैं।

पद्म-नहीं, पहले तुम ही श्रीगणेश करो। ऐसा हाथ चलाना कि एक ही वार में गर्दन अलग जा गिरे। मगर यह तो बताओ दर्द तो न होगा।

तेज-कैसा दर्द? ऐसा जान पड़ेगा जैसे किसी ने फूल से मारा हो। इसी से तो कहता हूं कि पहले तुम शुरू करो।

पद्म-नहीं, पहले मैं सिर झुकाता हूं।

तेजशंकर ने तलवार हाथ में ली, उसे तौला, दो-तीन बार पैंतरे बदले और तब 'जय भैरव की' कहकर पद्मशंकर की गर्दन पर तलवार चलाई। हाथ भरपूर पड़ा, तलवार तेज थी, सिर धड़ से अलग जा गिरा, रक्त का फौवारा छूटने लगा। तेजशंकर खड़ा मुस्करा रहा था, मानो कोई फुलझड़ी छूट रही हो। उसके चेहरे पर तेजोमय शांति छाई हुई थी। कोई शिकारी भी पक्षी को भूमि पर तड़पते देखकर इतना अविचलित न रहता होगा। कोई अभ्यस्त वधिक भी पशु की गर्दन पर तलवार चलाकर इतना स्थिर-चित्त न रह सकता होगा। वह ऐसे सुदृढ़ विश्वास से खड़ा था जैसे कोई कबूतरबाज अपने कबूतर को उड़ाकर उसके लौट आने की राह देख रहा हो।

लाश कुछ देर तक तड़पती रही, इसके बाद शिथिल हो गई। खून के छींटे बंद हो गए, केवल एक-एक बूंद टपक रही थी जैसे पानी बरसने के बाद ओरी टपकती है; किंतु पुनरुज्जीवन के संचार का कोई लक्षण न दिखाई दिया। एक मिनट और गुजरा। तेजशंकर को कुछ भ्रम हुआ, पर विश्वास ने उसे शांत कर दिया। उसने गंगाजल चुल्लू में लेकर भैरव मंत्र पढ़ा और उस पर एक फूंक मारकर उसे लाश पर छिड़क दिया, किंतु यह क्रिया भी असफल हुई। उस कटे हुए सिर में कोई गति न हुई, उस मृत देह में स्फूर्ति का कोई चिह्न न दिखाई दिया। मंत्र की जीवन-

संचारिणी शक्ति का कुछ असर न हुआ।

अब तेजशंकर को शंका होने लगी, विश्वास की नींव हिलने लगी। उस पुस्तक में स्पष्ट लिखा था कि सिर गर्दन से अलग होते ही तुरंत उसमें चिमट जाता है और यदि इस क्रिया में कुछ विलंब हो, तो भैरव मंत्र से फूंके हुए पानी का एक चुल्लू काफी है। यहां इतनी देर हो गई और अभी तक कुछ भी असर न हुआ। यह बात क्या है? मगर यह असंभव है कि मंत्र निष्फल हो। कितने लोगों ने इस मंत्र को सिद्ध किया है। नहीं, घबराने की कोई बात नहीं, अभी जान आई जाती है।

उसने तीन-चार मिनट तक और इंतजार किया, पर लाश ज्यों-की-त्यों शांत, शिथिल पड़ी हुई थी। तब उसने फिर गंगाजल छिड़का, फिर मंत्र पढ़ा, किंतु लाश न उठी। उसने चिल्लाकर कहा–हा ईश्वर ! अब क्या करूं? विश्वास का दीपक बुझ गया। उसने निराश भाव से नदी की ओर देखा। लहरें दाढ़ें मार-मारकर रोती हुई जान पड़ीं। वृक्ष शोक से सिर धुनते हुए मालूम हुए। उसके कंठ से बलात् क्रंदन-ध्वनि निकल गई, वह चीख मारकर रोने लगा। अब उसे ज्ञान हुआ कि मैंने कैसा घोर अनर्थ किया ! अनंत जीवन की सिद्धि कितनी उद्भ्रांत, कितनी मिथ्या थी। मैं कितना अंधा, कितना मंदबुद्धि, कितना उद्दंड हूं। हा ! प्राणों से प्यारे पद्म, मैंने मिथ्या भक्ति की धुन में अपने ही हाथों से, इन्हीं निर्दय हाथों से, तुम्हारी गर्दन पर तलवार चलाई। हा ! मैंने तुम्हारे प्राण लिए ! मुझ-सा पापी और अभागा कौन होगा? अब कौन-सा मुंह लेकर घर जाऊं? कौन-सा मुंह दुनिया को दिखाऊं? अब जीवन वृथा है ! तुम मुझे प्राणों से भी प्यारे थे। अब तुम्हें कैसे देखूंगा, तुम्हें कैसे पाऊंगा?

तेजशंकर कई मिनट तक इन्हीं शोकमय विचारों से विह्वल होकर खड़ा रोता रहा। अभी एक क्षण पहले उसके दिल में क्या-क्या इरादे थे, कैसी-कैसी अभिलाषाएं थीं? वह सब इरादे मिट्टी में मिल गए ! आह ! जिस धूर्त्त पापी ने यह किताब लिखी है उसे पाता तो इसी तलवार से उसकी गर्दन काट लेता। उसके भ्रम जाल में पड़कर मैंने अपना सर्वनाश किया।

हाय ! अभी तक लाश में जान नहीं आई। उसे उसकी ओर ताकते हुए अब भय होता था।

नैराश्य-व्यथा, शोकाघात, परिणाम-भय, प्रेमोद्गार, ग्लानि–इन सभी भावों ने उसके हृदय को कुचल दिया।

तिस पर भी अभी तक उसकी आशाओं का प्राणांत न हुआ था। उसने एक बार डरते-डरते कनखियों से लाश को देखा, पर अब भी उसमें प्राण-प्रवेश का चिह्न न दिखाई दिया तो आशाओं का अंतिम सूत्र भी टूट गया, धैर्य ने साथ छोड़ दिया।

उसने एक बार निराश होकर आकाश की ओर देखा। भाई की लाश पर अंतिम दृष्टि डाली तब, संभलकर बैठ गया और वही तलवार अपने गले पर फेर दी। रक्त की फुवारें छूटीं, शरीर तड़पने लगा, पुतलियां फैल गईं। बलिदान पूरा हो गया। मिथ्या विश्वास ने दो लहलहाते हुए जीव-पुष्पों को पैर से मसल डाला !

सूर्यदेव अपने आरक्त नेत्रों से यह विषम माया लीला देख रहे थे। उनकी नीरव, पीत किरणें उन दोनों मंत्राहत बालकों पर इस भांति पड़ रही थीं, मानो कोई शोक-विह्वल प्राणी उनके गले से लिपट कर रो रहा हो।

साठ

इस शोकाघात ने लाला प्रभाशंकर को संज्ञा-विहीन कर दिया। दो सप्ताह बीत चुके थे, पर अभी तक घर से बाहर न निकले थे। दिन के दिन चारपाई पर पड़े छत की ओर देखा करते, रातें करवटें बदलने में कट जातीं। उन्हें अपना जीवन अब शून्य-सा जान पड़ता था। आदमियों की सूरत से अरुचि थी, अगर कोई सांत्वना देने के लिए भी जाता, तो मुंह फेर लेते। केवल प्रेमशंकर ही ऐसे प्राणी थे जिनका आना उन्हें नागवार न मालूम होता था, इसलिए कि वह संवेदना का एक शब्द भी मुंह से न निकालते। सच्ची संवेदना मौन हुआ करती है।

एक दिन प्रेमशंकर आकर बैठे तो लालाजी को कपड़े पहनते देखा, द्वार पर एक्का भी खड़ा था जैसे कहीं जाने की तैयारी हो। पूछा—कहीं जाने का इरादा है क्या?

प्रभाशंकर ने दीवार की ओर मुंह फेरकर कहा—हां, जाता हूं उसी निर्दयी दयाशंकर के पास, उसी की चिरौरी-विनती करके घर लाऊंगा। कोई यहां रहने वाला भी तो चाहिए। मुझसे गृहस्थी का बोझ नहीं संभाला जाता। कमर टूट गई, बलहीन हो गया। प्रतिज्ञा तो की थी, कि जीते-जी उसका मुंह न देखूंगा, लेकिन परमात्मा को मेरी प्रतिज्ञा निबाहनी मंजूर न थी, उसके पैरों पर गिरना पड़ा। वंश का अंत हुआ जाता है। कोई नामलेवा तो रहे, मरने के बाद चुल्लू भर पानी को तो न रोना पड़े, मेरे बाद दीपक तो न बुझ जाए। अब दयाशंकर के सिवाय और दूसरा कौन है, उसी से अनुनय-विनय करूंगा, मनाऊंगा, आकर घर आबाद करे। लड़कों के बिना घर भूतों का डेरा हो रहा है।, दोनों लड़कियां ससुराल ही चली गईं, दोनों लड़के भैरव की भेंट हुए; अब किसका मुंह देखकर जी को समझाऊं? मैं तो चाहे कलेजे पर पत्थर की सिल रखकर बैठा भी रहता, पर तुम्हारी चाची को कैसे समझाऊं? आज दो हफ्ते से ऊपर हुए उन्होंने दाने की ओर ताका तक नहीं। रात-दिन रोया करती हैं। बेटा, सच पूछो तो मैं ही दोनों लड़कों का घातक हूं। वे जैसा चाहते थे रहते थे, जहां चाहते थे जाते थे। मैंने कभी उन्हें अच्छे रास्ते पर लगाने की चेष्टा न की। संतान का पालन कैसे करना चाहिए, इसकी मैंने कभी चिंता न की !

प्रेमशंकर ने करुणार्द्र होकर कहा—एक्के का सफर है, आपको कष्ट होगा। कहिए तो मैं चला जाऊं, कल तक आ जाऊंगा।

प्रभा—वह यों न आएगा, उसे खींचकर लाना होगा। वह कठोर नहीं, केवल लज्जा के मारे नहीं आता। वहां पड़ा रोता होगा। भाइयों को बहुत प्यार करता था।

प्रेम—मैं उन्हें जबरदस्ती खींच लाऊंगा।

प्रभाशंकर राजी हो गए। प्रेमशंकर उसी दम चल खड़े हुए। थाना यहां से बारह मील पर था। नौ बजते-बजते पहुंच गए। थाने में सन्नाटा था। केवल एक मुंशीजी फर्श पर बैठे लिख रहे थे। प्रेमशंकर ने उनसे कहा—आपको तकलीफ तो होगी, पर जरा दारोगाजी को इत्तला कर दीजिए कि एक आदमी आपसे मिलने आया है। मुंशीजी ने प्रेमशंकर को सिर से पांव तक देखा, तब लपककर उठे, उनके लिए एक कुर्सी निकालकर रख दी और पूछा—जनाब का नाम बाबू प्रेमशंकर तो नहीं है?

प्रेमशंकर—जी हां, मेरा ही नाम है !

मुंशी—आप खूब आए। दारोगाजी अभी आपका ही जिक्र कर रहे थे। आपका अक्सर जिक्र किया करते थे। चलिए, मैं आपके साथ चलता हूं। कानिस्टेबिल सब उन्हीं की खिदमत

में हाजिर हैं। कई दिन से बहुत बीमार हैं।

प्रेम—बीमार हैं? क्या शिकायत है?

मुंशी—जाहिर में तो बुखार है, पर अंदर का हाल कौन जाने? हालत बहुत बदतर हो रही है। जिस दिन से दोनों छोटे भाइयों की नावक्त मौत की खबर सुनी उसी दिन से बुखार आया। उस दिन से फिर थाने में नहीं आए। घर से बाहर निकलने की नौबत न आई। पहले भी थाने में बहुत कम आते थे, नशे में डूबे पड़े रहते थे, ज्यादा नहीं तो तीन-चार बोतल रोजाना जरूर पी जाते होंगे। लेकिन इन पंद्रह दिनों में एक घूंट भी नहीं पी। खाने की तरफ ताकते ही नहीं। या तो बुखार में बेहोश पड़े रहते हैं या तबीयत जरा हल्की हुई तो रोया करते हैं। ऐसा मालूम होता है कि फाजिल गिर गई है, करवट तक नहीं बदल सकते। डॉक्टरों का तांता लगा हुआ है, मगर कोई फायदा नहीं होता। सुना आप कुछ हिकमत करते हैं। देखिए, शायद आपकी दवा कारगार हो जाय। बड़ा अनमोल आदमी था। हम लोगों को तो ऐसा सदमा हो रहा है जैसे कोई अपना अजीज उठा जाता हो। पैसे की मुहब्बत छू तक नहीं गई थी। हजारों रुपये माहवार लाते थे और सब-का-सब अमलों के हाथों में रख देते थे। रोजाना शराब मिलती जाय बस, और कोई हवस न थी। किसी मातहत से गलती हो जाय, पर कभी शिकायत न करते थे, बल्कि सारा इल्जाम अपने सिर ले लेते थे। क्या मजाल कि कोई हाकिम उनके मातहतों को तिरछी निगाह से भी देख सके, सीना-सिपर हो जाते थे। मातहतों की शादी और गमी में इस तरह शरीक होते थे, जैसे कोई अपना अजीज हो। कई कानिस्टेबिलों की लड़कियों की शादियां अपने खर्च से करा दीं, उनके लड़कों की तालीम की फीस अपने पास से देते थे। अपनी सख्ती के लिए सारे इलाके में बदनाम थे, सारा इलाका उनका दुश्मन था, मगर थाने वाले चैन करते थे। हम गरीबों को ऐसा गरीब-परवर और हमदर्द अफसर न मिलेगा।

मुंशीजी ने ऐसे अनुरक्त भाव से यह यशगान किया कि प्रेमशंकर गद्‌गद हो गए। वह दयाशंकर को लोभी, कुटिल, स्वार्थी समझते थे, जिसके अत्याचारों से इलाके में हाहाकार मचा हुआ था। जो कुल का द्रोही, कुपुत्र और व्यभिचारी था, जिसने अपनी विलासिता और विषय-वासना की धुन में माता-पिता, भाई-बहन यहां तक कि अपनी पत्नी से मुंह फेर लिया था। उनकी दृष्टि में वह एक बेशर्म, पतित, हृदय-शून्य आदमी था! यह गुणानुगान सुनकर उन्हें अपनी संकीर्णता पर बहुत खेद हुआ। वह मन में अपना तिरस्कार करने लगे। उन्हें फिर आत्मिक यंत्रणा मिली—हा ! मुझमें कितना अहंकार है। मैं कितनी जल्दी भूल जाता हूं कि यह विराट जगत अनंत ज्योति से प्रकाशमय हो रहा है। इसका एक-एक परमाणु उसी ज्योति से आलोकित है। यहां किसी मनुष्य को नीचा या पतित समझना ऐसा पाप है जिसका प्रायश्चित नहीं। मुंशीजी से पूछा—डॉक्टरों ने कुछ तशखीस नहीं की?

मुंशीजी ने उपेक्षा भाव से कहा—डॉक्टरों की कुछ न पूछिए, कोई कुछ बताता है, कोई कुछ। या तो उन्हें खुद ही इल्म नहीं या गौर से देखते ही नहीं। उन्हें तो अपनी फीस से काम है। आइए, अंदर चले आइए, यही मकान है।

प्रेमशंकर अन्दर गए तो कानिस्टेबिलों की भीड़ लगी हुई थी। कोई रो रहा था, कोई उदास, कोई मलिन-मुख खड़ा था, कोई पंखा झलता था। कमरे में सन्नाटा था। प्रेमशंकर को देखते ही सभी ने सलाम किया और कातर नेत्रों से उनकी ओर देखने लगे। दयाशंकर चारपाई पर पड़े थे, चेहरा पीला हो गया था और शरीर सूखकर कांटा हो गया था। मानो किसी हरे-भरे खेत

को टिड्डियों ने चर लिया हो। आंखें बंद थीं, माथे पर पसीने की बूंदें पड़ी हुई थीं और श्वास-क्रिया में एक चिंताजनक शिथिलता थी। प्रेमशंकर यह शोकमय दृश्य देखकर तड़प उठे, चारपाई के निकट जाकर दयाशंकर के माथे पर हाथ रखा और बोले—भैया?

दयाशंकर ने आंखें खोलीं और प्रेमशंकर को गौर से देखा, मानो किसी भूली हुई सूरत को याद करने की चेष्टा कर रहे हैं, तब बड़े शांतिभाव से बोले—तुम हो, प्रेमशंकर? खूब आए। तुम्हें देखने की बड़ी इच्छा थी। कई बार तुमसे मिलने का इरादा किया, पर शर्म के मारे हिम्मत न पड़ी। लालाजी तो नहीं आए? उनसे भी एक बार भेंट हो जाती तो अच्छा होता, न जाने फिर दर्शन हो या न हो।

प्रेम—वह आने को तैयार थे, पर मैंने ही उन्हें रोक दिया। मुझे तुम्हारी हालत मालूम न थी।

दया—अच्छा किया, इतनी दूर एक्के पर आने में उन्हें कष्ट होता। वह मेरा मुंह न देखें यही अच्छा है। मुझे देखकर कौन उनकी छाती हुलसेगी?

यह कहकर वह चुप हो गए, ज्यादा बोलने की शक्ति न थी, दम लेकर बोले—क्यों प्रेम, संसार में मुझ-सा अभागा और भी कोई होगा? यह सब मेरे ही कर्मों का फल है। मैं ही वंश का द्रोही हूं। मैं क्या जानता था कि पापी के पापों का दंड इतना कड़ा होता है! मुझे अगर किसी की कुछ मुहब्बत थी तो दोनों लड़कों की। मेरे पापों ने भैरव बनकर उन...

उनकी आंखों से आंसू बहने लगे। मूर्छा-सी आ गई। आध घंटे तक इसी अचेत दशा में पड़े रहे। सांस प्रतिक्षण धीमी होती जाती थी। प्रेमशंकर पछता रहे थे, यह हाल मुझे पहले न मालूम हुआ, नहीं तो डॉक्टर प्रियनाथ को साथ लेता आता। यहां तार घर तो है! क्यों न उन्हें तार दे दूं? वह इसे मेरा काम समझकर फीस न लेंगे, यही अड़चन है। यही सही, पर उनको जरूर बुलाना चाहिए।

यह सोचकर उन्होंने तार लिखना शुरू किया कि सहसा डॉक्टर प्रियनाथ ने कमरे में कदम रखा। प्रेमशंकर ने चकित होकर एक बार उनकी ओर देखा और तब उनके गले से लिपट गए और कुंठित स्वर से बोले—आइए भाई साहब, अब मुझे पूरा विश्वास हो गया कि ईश्वर दीनों की विनय सुनता है। आपके पास यह तार भेज रहा था। इनकी जान बचाइए।

प्रियनाथ ने आश्वासन देते हुए कहा—आप घबड़ायें नहीं, मैं अभी देखता हूं। क्या करूं, मुझे पहले किसी ने खबर न दी। इस इलाके में बुखार का जोर है। मैं कई गांवों का चक्कर लगाता हुआ थाने के सामने से गुजरा तो मुंशीजी ने मुझे यह हाल बतलाया।

यह कहकर डॉक्टर साहब ने हैंडबेग से एक यंत्र निकालकर दयाशंकर की छाती में लगाया और खूब ध्यान से निरीक्षण करके बोले—फेफड़ों पर बलगम आ गया है, लेकिन चिंता की कोई बात नहीं। मैं दवा देता हूं। ईश्वर ने चाहा तो शाम तक जरूर असर होगा।

डॉक्टर साहब ने दवा पिलाई और वहीं कुर्सी पर बैठ गए। प्रेमशंकर ने कहा—मैं शाम तक आपको न छोड़ूंगा।

प्रियनाथ ने मुस्कराकर कहा—आप मुझे भगाएं भी तो न जाऊंगा। यह मेरे दोस्त हैं। इनकी बदौलत मैंने हजारों रुपये उड़ाए हैं।

एक वृद्ध चौकीदार ने कहा—हजूर, इनका अच्छा कर देव। और तो नहीं, मुदा हम सब जने आपन एक-एक तलब आपके नजर कर देहैं।

प्रियनाथ हंसकर बोले—मैं तुम लोगों को इतने सस्ते न छोड़ूंगा। तुम्हें वचन देना पड़ेगा कि अब किसी गरीब को न सताएंगे, किसी से जबरदस्ती बेगार न लेंगे और जिसका सौदा लेंगे उसको उचित दाम देंगे।

चौकीदार—भला सरकार, हमारा गुजर-बसर कैसे होगा? हमारे भी तो बाल-बच्चे हैं, दस-पंद्रह रुपयों में क्या होता है?

प्रिय—तो अपने हाकिमों से तरक्की करने के लिए क्यों नहीं कहते? सब लोग मिलकर जाओ और अर्ज-मारूज (प्रार्थना) करो। तुम लोग प्रजा की रक्षा के लिए नौकर हो, उन्हें सताने के लिए नहीं। अवकाश के समय कोई दूसरा काम किया करो, जिससे आमदनी बढ़े। रोज दो-तीन घंटे कोई काम कर लिया करो तो दस-बारह रुपये की मजदूरी हो सकती है।

चौकीदार—भला ऐसा कौन काम है, हजूर?

प्रिय—काम बहुत है, हां शर्म छोड़नी पड़ेगी। इस भाव को दिल से निकाल देना पड़ेगा कि हम कॉनिस्टेबिल हैं तो अपने हाथों से मेहनत कैसे करें? सच्ची मेहनत की कमाई में अन्याय और जुल्म की कमाई से कहीं ज्यादा बरकत होती है।

मुंशीजी बोले—हजूर, इस बारे में सरकारी कायदे बड़े सख्त हैं। पुलिस के मुलाजिम को कोई दूसरा काम करने का मजाल नहीं है। अगर हम लोग कोई काम करने लगें तो निकाल दिए जाएं?

प्रिय—यह आपकी गलती है। आपको फुर्सत के वक्त कपड़े बुनने या सूत कातने या कपड़े सीने से कोई नहीं रोक सकता। हां, सरकारी काम में हर्ज न होना चाहिए। आप लोगों को अपनी हालत हाकिमों से कहनी चाहिए।

मुंशी—हजूर, कोई सुनने वाला भी तो हो? हमारा रिआया को लूटना हुक्काम की निगाह में इतना बड़ा जुर्म नहीं है, जितना कुछ अर्ज-मारूज करना। फौरन साजिश और गरोह-बंदी का इल्जाम लग जाय।

प्रिय—इससे तो यह कहीं अच्छा होता कि आप लोग कोई हुनर सीखकर आजादी से रोजी कमाते। मामूली कारीगर भी आप लोगों से ज्यादा कमा लेते हैं।

मुंशी—हजूर, यह तकदीर का मुआमला है। जिसके मुकद्दर में गुलामी लिखी हो, वह आजाद कैसे हो सकता है?

दोपहर हो गई थी, प्रियनाथ ने दूसरी खुराक की दवा दी। इतने में महाराज ने आकर कहा—सरकार, रसोई तैयार है, भोजन कर लीजिए। प्रेमशंकर वहां से उठना न चाहते थे, लेकिन प्रियनाथ ने उन्हें इत्मीनान दिलाकर कहा—चाहे अभी जाहिर न हो, पर पहली खुराक का कुछ न कुछ असर हुआ है। आप देख लीजिएगा शाम तक यह होश-हवास की बातें करने लगेंगे।

दोनों आदमी भोजन करने गए। महाराज ने खूब मसालेदार भोजन बनाया था। दयाशंकर चटपटे भोजन के आदी थे। सब चीजें इतनी कड़वी थीं कि प्रेमशंकर दो-चार कौर से अधिक न खा सके। आंख और नाक से पानी बहने लगा। प्रियनाथ ने हंसकर कहा—आपकी तो खूब दावत हो गई। महाराज ने तो मदरासियों को भी मात कर दिया। यह उत्तेजक मसाले पाचन-शक्ति को निर्बल कर देते हैं। देखो महाराज, जब तक दारोगाजी अच्छे न हो जाएं, ऐसी चीजें उन्हें न खिलाना, मसाले बिल्कुल न डालना!

महाराज—हुजूर, मैंने तो आज बहुत कम मसाले दिए हैं। दारोगाजी के सामने यह भोजन जाता तो कहते यह क्या फीकी-पीच पकाई है?

प्रेमशंकर ने रूखे चावल खाए, मगर प्रियनाथ ने मिरचों की परवाह नहीं की; दोनों आदमी भोजन करके फिर दयाशंकर के पास आ बैठे। तीन बजे प्रियनाथ ने अपने हाथों से उसकी छाती में एक अर्क की मालिश की और शाम तक दो बार और दवा दी। दयाशंकर अभी तक चुपचाप पड़े हुए थे, पर वह मूर्छा नहीं, नींद थी। उनकी श्वास-क्रिया स्वाभाविक होती जाती थी और मुख की विवर्णता मिटती जाती थी। जब अंधेरा हुआ तो प्रियनाथ ने कहा, अब मुझे आज्ञा दीजिए। ईश्वर ने चाहा तो रात भर में इनकी दशा बहुत अच्छी हो जाएगी। अब भय की कोई बात नहीं है। मैं कल आठ बजे तक फिर आऊंगा। सहसा दयाशंकर जागे, उनकी आंखों में अब वह चंचलता न थी। प्रियनाथ ने पूछा—अब कैसी तबीयत है?

दया—ऐसा जान पड़ता है कि किसी ने जलती हुई रेत से उठाकर वृक्ष की छांह में लिटा दिया हो।

प्रिय—कुछ भूख मालूम होती है?

दया—जी नहीं, प्यास लगी है।

प्रिय—तो आप थोड़ा-सा गर्म दूध पी लें। मैं इस वक्त जाता हूं। कल आठ बजे तक आ जाऊंगा।

दयाशंकर ने मुंशीजी की तरफ देखकर कहा—मेरा संदूक खोलिए और उसमें जो कुछ हो लाकर डॉक्टर साहब के पैरों पर रख दीजिए। बाबूजी, यह रकम कुछ नहीं है, पर आप इसे कबूल करें।

प्रिय—अभी आप चंगे तो हो जाएं, मेरा हिसाब फिर हो जायगा।

दया—मैं चंगा हो गया, मौत के मुंह से निकल आया। कल तक मरने का ही जी चाहता था, लेकिन अब जीने की इच्छा है। यह फीस नहीं है। मैं आपको फीस देने के लायक नहीं हूं। दैहिक रोग-निवृत्ति की फीस हो सकती है, लेकिन मुझे ज्ञात हो रहा है कि आपने मेरा आत्मिक-उद्धार कर दिया है। इसकी फीस वह एहसान है जो जीवनपर्यंत मेरे सिर पर रहेगा और ईश्वर ने चाहा तो आपको इस पापी जीवन को मौत के पंजे से बचा लेने का दु:ख न होगा।

प्रियनाथ ने फीस न ली, चले गए। प्रेमशंकर थोड़ी देर बैठे रहे। जब दयाशंकर दूध पीकर फिर सो गए तब वह बाहर निकलकर टहलने लगे। अकस्मात् उन्हें लाला प्रभाशंकर एक्के पर आते हुए दिखाई दिए। निकट आते ही एक एक्के से उतरे और कंपित स्वर से बोले—बेटा, बताओ दयाशंकर की क्या हालत है? तुम्हारे चले आने के बाद यहां से एक चौकीदार मेरे पास पहुंचा। उसने कुछ ऐसी बुरी खबर सुनाई कि होश उड़ गए, उसी वक्त चल खड़ा हुआ। घर में हाहाकार मचा हुआ है। सच-सच बताओ बेटा, क्या हाल है?

प्रेम—अब तो तबीयत बहुत कुछ संभल गई है, कोई चिंता की बात नहीं, पर जब मैं आया था तो वास्तव में हालत खराब थी। खैरियत यह हो गई कि डॉक्टर प्रियनाथ आ गए। उनकी दवा ने जादू का-सा असर किया। अब सो रहे हैं।

प्रभा—बेटा, चलो, जरा देख लूं, चित्त बहुत व्याकुल है !

प्रेम—आपको देखकर शायद वह रोने लगें।

प्रभाशंकर ने बड़ी नम्रता से कहा—बेटा, मैं जरा भी न बोलूंगा, बस एक आंख देखकर चला जाऊंगा। जी बहुत घबराया हुआ है।

प्रेम—आइये, मगर चित्त को शांत रखिएगा। अगर उन्हें जरा भी आहट मिल गई तो दिन

भर की मेहनत निष्फल हो जाएगी।

प्रभा–भैया, कसम खाता हूं, जरा भी न बोलूंगा। बस, दूर से एक आंख देखकर चला जाऊंगा।

प्रेमशंकर मजबूर हो गए। लालाजी को लिए हुए दयाशंकर के कमरे में गए। प्रभाशंकर ने चौखट से ही इस तरह डरते-डरते भीतर झांका, जैसे कोई बालक घटा की ओर देखता है कि कहीं बिजली न चमक जाय, पर दयाशंकर की दशा देखते ही प्रेमोद्‌गार से विवश होकर वह जोर से चिल्ला उठे और हाय बेटा ! कहकर उनकी छाती से चिपट गए।

प्रेमशंकर ने तुरंत उपेक्षा भाव से उनका हाथ पकड़ा और खींचकर कमरे के बाहर लाए।

दयाशंकर ने चौंककर पूछा–कौन था? दादाजी आए हैं क्या?

प्रेमशंकर–आप आराम से लेटें। इस वक्त बातचीत करने से बैचेनी बढ़ जाएगी।

दया–नहीं, मुझे एक क्षण के लिए उठाकर बिठा दो। मैं उनके चरणों पर सिर रखना चाहता हूं।

प्रेम–इस वक्त नहीं। कल इत्मीनान से मिलिएगा।

यह कहकर प्रेमशंकर बाहर चले आए। प्रभाशंकर बरामदे में खड़े रो रहे थे। बोले–बेटा, नाराज न हो, मैंने बहुत रोका, पर दिल काबू में न रहा। इस समय मेरी दशा उस टूटी नाव पर बैठे हुए मुसाफिर की-सी है जिसके लिए हवा का एक झोंका भी मौत के थप्पड़ के समान है। सच-सच बताओ, डॉक्टर साहब क्या कहते थे?

प्रेम–उनके विचार में अब कोई चिंता की बात नहीं है। लक्षणों से भी यही प्रकट होता है।

प्रभा–ईश्वर उनका कल्याण करें, पर मुझे तो तब ही इत्मीनान होगा जब यह उठ बैठेंगे। यह इनके ग्रह का साल है।

दोनों आदमी बाहर आकर सायबान में बैठे। दोनों अपने विचार में मग्न थे। थोड़ी देर के बाद प्रभाशंकर बोले–हमारा यह कितना बड़ा अन्याय है कि अपनी संतान में उन्हीं कुसंस्कारों को देखकर जो हममें स्वयं मौजूद हैं, उनके दुश्मन हो जाते हैं। दयाशंकर से मेरा केवल इसी बात पर मनमुटाव था कि वह घर की खबर क्यों नहीं लेता? दुर्व्यसनों में क्यों अपनी कमाई उड़ा देता है? मेरी मदद क्यों नहीं करता? किंतु मुझसे पूछो कि तुमने अपनी जिंदगी में क्या किया? मेरी इतनी उम्र भोग-विलास में ही गुजरी है। इसने अगर लुटाई तो अपनी कमाई लुटाई, बरबाद की तो अपनी कमाई बरबाद की। मैंने तो पुरखाओं की जायदाद का सफाया कर दिया। मुझे इससे बिगड़ने का कोई अधिकार न था।

थाने के कई अमले और चौकीदार आकर बैठ गए और दयाशंकर की सहृदयता और सज्जनता की सराहना करने लगे। प्रभाशंकर उनकी बातें सुनकर गर्व से फूले जाते थे।

आठ बजे प्रेमशंकर ने जाकर फिर दवा पिलाई और वहीं रातभर एक आरामकुर्सी पर लेटे रहे। पलक को झपकने भी न दिया।

सबेरे प्रियनाथ आए और दयाशंकर को देखा तो प्रसन्न होकर बोले–अब जरा भी चिंता नहीं है, इनकी हालत बहुत अच्छी है। एक सप्ताह में यह अपना काम करने लगेंगे। दवा से ज्यादा बाबू प्रेमशंकर की सुश्रुषा का असर है। शायद आप रात को बिल्कुल न सोये थे?

प्रेमशंकर–सोया क्यों नहीं? हां, घोड़े बेचकर नहीं सोया।

प्रभाशंकर–डॉक्टर साहब, मैं गवाही देता हूं कि रात भर इनकी आंखें नहीं झपकीं। मैं

कई बार झांकने आया तो इन्हें बैठे या कुछ पढ़ते पाया।

दयाशंकर ने श्रद्धामय भाव से कहा—जीता बचा तो बाकी उम्र इनकी खिदमत में काटूंगा। इनके साथ रहकर मेरा जीवन सुधर जायगा।

इस भांति एक हफ्ता गुजर गया। डॉक्टर प्रियनाथ रोजाना आते और घंटे भर ठहरकर देहातों की ओर चले जाते। प्रभाशंकर तो दूसरे ही दिन चले गए, लेकिन प्रेमशंकर एक दिन के लिए भी न हिले। आठवें दिन दयाशंकर पालकी में बैठकर घर जाने के योग्य हो गए। उनकी छुट्टी मंजूर हो गई थी।

प्रातःकाल था। दयाशंकर थाने से चले। यद्यपि वह केवल तीन महीने की छुट्टी पर जा रहे थे, पर थाने के कर्मचारियों को ऐसा मालूम हो रहा था कि अब इनसे सदा के लिए साथ छूट रहा है। सारा थाना मील भर तक पालकी के साथ दौड़ता हुआ उनके साथ आया। लोग किसी तरह लौटते ही न थे। अंत में प्रेमशंकर के बहुत दिलासा देने पर लोग विदा हुए। सब-के-सब फूट-फूटकर रो रहे थे।

प्रेमशंकर मन में पछता रहे थे कि ऐसे सर्वप्रिय श्रद्धेय मनुष्य से मैं इतने दिनों तक घृणा करता रहा। दुनिया में ऐसे सज्जन, ऐसे दयालु, ऐसे विनयशील पुरुष कितने हैं, जिनकी मुट्ठी में इतने आदमियों का हृदय हो, जिनके वियोग से लोगों को इतना दुःख हो।

इकसठ

होली का दिन था। शहर में चारों तरफ अबीर और गुलाल उड़ रही थी, फाग और चौताल की धूम थी, लेकिन लाला प्रभाशंकर के घर पर मातम छाया हुआ था। श्रद्धा अपने कमरे में बैठी हुई गायत्रीदेवी के गहने और कपड़े सहेज रही थी कि अबकी ज्ञानशंकर आएं तो यह अमानत सौंप दूं। विद्या के देहांत और गायत्री के चले जाने के बाद से उसकी तबीयत अकेले बहुत घबराया करती थी। अक्सर दिन-के-दिन बड़ी बहू के पास बैठी रहती, पर जब से दोनों लड़कों की मृत्यु हुई उसका जी भी उचटा रहता था। हां, कभी-कभी शीलमणि के आ जाने से जरा देर के लिए जी बहल जाता था। गायत्री के मरने की खबर यहां कल ही आई थी। श्रद्धा उसे याद करके सारी रात रोती रही। इस वक्त भी गायत्री उसकी आंखों में फिर रही थी, उसकी मृदु, सरल, निष्कपट बातें याद आ रही थीं। कितनी उदार, कितनी नम्र, कितनी प्रेममयी रमणी थी ! जरा भी अभिमान नहीं, पर हा शोक ! कितना भीषण अंत हुआ ! इसी शोकावस्था में दोनों लड़कों की ओर ध्यान जा पहुंचा। हा ! दोनों कैसे हंसमुख, कैसे होनहार, कैसे सुंदर बालक थे ! जिंदगी का कोई भरोसा नहीं, आदमी कैसे-कैसे इरादे करता है, कैसे-कैसे मंसूबे बांधता है, किंतु यमराज के आगे किसी की नहीं चलती। वह आन-की-आन में सारे मंसूबे को धूल में मिला देता है। तीन महीने के अंदर पांच प्राणी चल दिए। इसी तरह एक दिन मैं भी चल बसूंगी और मन-की-मन में रह जायगी। आठ साल से हम दोनों अपनी-अपनी टेक पर अड़े हैं, न वह झुकते हैं न मैं दबती हूं ! जब इतने दिनों तक उन्होंने प्रायश्चित नहीं किया तब अब कदापि न करेंगे। उनकी आत्मा अपने पुण्य कार्यों से संतुष्ट है, न इसकी जरूरत समझती है, न महत्त्व, अब मुझी को दबना

पड़ेगा। अब मैं ही किसी विद्वान् पंडित से पूछूं कि मेरे किसी अनुष्ठान से उनका प्रायश्चित हो सकता है या नहीं? क्या मेरी इतने दिनों की तपस्या, गंगा-स्नान, पूजा-पाठ, व्रत और नियम सब अकारथ हो जाएंगे? माना, उन्होंने विदेश में कितने ही काम अपने धर्म के विरुद्ध किए, लेकिन जब से यहां आए हैं तब से तो बराबर सत्कार्य ही कर रहे हैं। दीनों की सेवा और पतितों के उद्धार में दत्तचित्त रहते हैं। अपनी जान की भी परवाह नहीं करते। कोई बड़ा-से-बड़ा धर्मात्मा भी परोपकारिता में इतना व्यस्त न रहता होगा। उन्होंने अपने को बिल्कुल मिटा दिया है। धर्म के जितने लक्षण ग्रंथों में लिखे हुए हैं वे सब उनमें मौजूद हैं। जिस पुरुष ने अपने मन को, अपनी इंद्रियों को, अपनी वासना को ज्ञान-बल से जीत लिया हो क्या उसके लिए भी प्रायश्चित की जरूरत है? क्या कर्मयोग का मूल्य प्रायश्चित के बराबर नहीं? कोई पुस्तक नहीं मिलती जिसमें इस समस्या की साफ-साफ व्यवस्था की गई हो। कोई ऐसा विद्वान् नहीं दिखाई देता जो मेरी शंकाओं का समाधान करे। भगवान्! मैं क्या करूं? इन्हीं दुविधाओं में पड़ी एक दिन मर जाऊंगी और उनकी सेवा करने की अभिलाषा मन में रह जाएगी। उनके साथ रहकर मेरा जीवन सार्थक हो जाता, नहीं तो इस चहारदीवारी में पड़ी जीवन वृथा गंवा रही हूं।

श्रद्धा इन्हीं विचारों में मग्न थी कि अचानक उसे द्वार पर हलचल-सी सुनाई दी। खिड़की से झांका तो नीचे सैकड़ों आदमियों की भीड़ दिखाई दी। इतने में महरी ने आकर कहा—बहूजी, लखनपुर के जितने आदमी कैद हुए थे वह सब छूट आए हैं और द्वार पर खड़े बाबूजी को आशीर्वाद दे रहे हैं। जरा सुनो, वह बुड्ढा दाढ़ी वाला कह रहा है, अल्लाह! बाबू प्रेमशंकर को कयामत तक सलामत रख! इनके साथ एक बूढ़ा साधु भी है। सुखदास नाम है। वह बाजार से यहां तक रुपये-पैसे लुटाता आया है। जान पड़ता है कोई बड़ा धनी आदमी है।

इतने में मायाशंकर लपका हुआ आया और बोला—बड़ी अम्मां, लखनपुर के सब आदमी छूट आए हैं। बाजार में उनका जुलूस निकला था। डॉक्टर इर्फान अली, बाबू ज्वालासिंह, डॉक्टर प्रियनाथ, चाचा साहब, चाचा दयाशंकर और शहर के सैकड़ों छोटे-बड़े आदमी जुलूस के साथ थे। लाओ, दीवानखाने की कुंजी दे दो। कमरा खोलकर सबको बैठाऊं!

श्रद्धा ने कुंजी निकालकर दे दी और सोचने लगी, इन लोगों का क्या सत्कार करूं कि इतने में जय-जयकार का गगन-व्यापी नाद सुनाई दिया—बाबू प्रेमशंकर की जय! लाला दयाशंकर की जय! लाला प्रभाशंकर की जय!

मायाशंकर फिर दौड़ता हुआ आया और बोला—बड़ी अम्मां, जरा ढोल-मजीरा निकलवा दो, बाबा सुखदास भजन गाएंगे। वह देखो, वह दाढ़ी वाला बुड्ढा, वही कादिर खां है। वह जो लंबा-तगड़ा आदमी है, वही बलराज है। इसी के बाप ने गौस खां को मारा था।

श्रद्धा का चेहरा आत्मोल्लास से चमक रहा था। हृदय ऐसा पुलकित हो रहा था मानो द्वार पर बरात आई हो। मन में भांति-भांति की उमंगें उठ रही थीं। इन लोगों को आज यहीं ठहरा लूं, सबकी दावत करूं, खूब धूमधाम से सत्यनारायण की कथा हो। प्रेमशंकर के प्रति श्रद्धा का ऐसा प्रबल आवेग हो रहा था कि इसी दम जाकर उनके चरणों में लिपट जाऊं। तुरंत ढोल और मजीरे निकालकर मायाशंकर को दिए।

सुखदास ने ढोल गले में डाली, औरों ने मजीरे लिए, मंडल बांधकर खड़े हो गए और यह भजन गाने लगे—

'सद्गुरु ने सेरी गह लई बांह, नहीं रे मैं तो जात बहा।'

माया खुशी के मारे फूला न समाता था। आकर बोला—कादिर मियां खूब गाते हैं।

श्रद्धा—इन लोगों की कुछ आवभगत करनी चाहिए।

माया—मेरा तो जी चाहता है कि सबकी दावत हो। तुम अपनी तरफ से कहला दो। जो सामान चाहिए मुझे लिखवा दो। जाकर आदमियों को लाने के लिए भेज दूं। यह सब बेचारे इतने सीधे, गरीब हैं कि मुझे तो विश्वास नहीं आता कि इन्होंने गौस खां को मारा होगा। बलराज है तो पूरा पहलवान, लेकिन वह भी बहुत सीधा मालूम होता है।

श्रद्धा—दावत में बड़ी देर लगेगी। बाजार से चीजें आएंगी, बनाते-बनाते तीसरा पहर हो जाएगा। इस वक्त एक बीस रुपये की मिठाई मंगवाकर जलपान करा दो। रुपये हैं या दूं?

माया—रुपये बहुत हैं। क्या कहूं, मुझे पहले यह बात न सूझी।

दोपहर तक भजन होता रहा। शहर के हजारों आदमी इस आनंदोत्सव में शरीक थे। प्रेमशंकर ने सबको आदर से बिठाया। इतने में बाजार से मिठाइयां आ गईं, लोगों ने नाश्ता किया और प्रेमशंकर का यश-गान करते हुए विदा हुए, लेकिन लखनपुर वालों को छुट्टी न मिली। श्रद्धा ने कहला भेजा कि खा-पीकर शाम को जाना। यद्यपि सब-के-सब घर पहुंचने के लिए उत्सुक हो रहे थे, पर यह निमंत्रण कैसे अस्वीकार करते! लाला प्रभाशंकर भोजन बनवाने लगे। अब तक उन्होंने केवल बड़े आदमियों को ही अपनी व्यंजन कला से मुग्ध किया था। आज देहातियों को भी यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। लालाजी ऐसा स्वादयुक्त भोजन देना चाहते थे जो उन्हें तृप्त कर दे, जिसको वह सदैव याद करते रहें। भांति-भांति के पकवान बनने लगे। बहुत जल्दी की गई, फिर भी खाते-पीते आठ बज गए। प्रियनाथ और इर्फान अली ने अपनी सवारियां भेज दी थीं। उस पर बैठकर लोग लखनपुर चले। सबने मुक्त कण्ठ से आशीर्वाद दिये। अभी घरवाले बाकी थे, उनके खाने में दस बज गए। प्रेमशंकर हाजीपुर जाने को प्रस्तुत हुए तो महरी ने आकर धीरे से कहा—बहूजी कहती हैं कि आज यहीं सो रहिए, रात बहुत हो गई है। इस असाधारण कृपा दृष्टि ने प्रेमशंकर को चकित कर दिया। वह इसका मर्म न समझ सके।

ज्वालासिंह ने महरी से हंसी की—हम लोग भी रहें, या चले जाएं?

महरी सतर्क थी। बोली—नहीं सरकार, आप भी रहें, माया भैया भी रहें, यहां किस चीज की कमी है?

ज्वाला—चल, बातें बनाती है?

महरी चली गई तो वह प्रेमशंकर से बोले—आज मालूम होता है कि आपके नक्षत्र बलवान हैं। अभी और विजय प्राप्त होने वाली है।

प्रेमशंकर ने विरक्त भाव से कहा—कोई नया उपदेश सुनना पड़ेगा और क्या?

ज्वाला—जी नहीं, मेरा मन कहता है कि आज देवी आपको वरदान देंगी। आपकी तपस्या पूरी हो गई।

प्रेम—मेरी देवी इतनी भक्तवत्सला नहीं हैं।

ज्वाला—अच्छा, कल आप ही ज्ञात हो जाएगा। हमें आज्ञा दीजिए।

प्रेम—क्यों, यहीं न सो रहिए।

ज्वाला—मेरी देवी और भी जल्द रूठती हैं।

यह कहकर वह मायाशंकर के साथ चले गए।

महरी ने प्रेमशंकर के लिए पलंग बिछा दिया था। वह लेटे तो अनिवार्यतः मन में जिज्ञासा

होने लगी कि श्रद्धा आज क्यों मुझ पर इतनी सदय हुई है। कहीं यह महरी का कौशल तो नहीं है? नहीं, महरी ऐसी हंसोड़ तो नहीं जान पड़ती। कहीं वास्तव में उसने दिल्लगी की तो व्यर्थ लज्जित होना पड़े। श्रद्धा न जाने अपने मन में क्या सोचे? अंत में इन शंकाओं को शांत करने के लिए उन्होंने ज्ञानशंकर की आल्मारी में से एक पुस्तक निकाल ली और उसे पढ़ने लगे।

ज्वालासिंह की भविष्यवाणी सत्य निकली। आज वास्तव में उनकी तपस्या पूरी हो गई थी। उनकी सुकीर्ति ने श्रद्धा को वशीभूत कर लिया था। आज जब से उसने सैकड़ों आदमियों को द्वार पर खड़े प्रेमशंकर की जय-जयकार करते देखा था, तभी से उसके मन में यह समस्या उठ रही थी—क्या इतने अंतःकरणों से निकली हुई शुभेच्छाओं का महत्त्व प्रायश्चित से कम है? कदापि नहीं। परोपकार की महिमा प्रायश्चित से किसी तरह कम नहीं हो सकती, बल्कि सच्चा प्रायश्चित तो परोपकार ही है। इतनी आशीषें किसी महान् पापी का भी उद्धार कर सकती हैं। कोरे प्रायश्चित का इनके सामने क्या महत्त्व हो सकता है? और इन आशीषों का आज ही थोड़े ही अंत हो गया। जब यह सब घर पहुंचेंगे तो इनके घर वाले और भी आशीष देंगे। जब तक दम में दम रहेगा, उनके हृदय से नित्य यह सदिच्छाएं निकलती रहेंगी। ऐसे यशस्वी, ऐसे श्रद्धेय पुरुष को प्रायश्चित की कोई जरूरत नहीं। इस सुधा-वृष्टि ने उसे पवित्र कर दिया है।

ग्यारह बजे थे। श्रद्धा ऊपर से उतरी और सकुचाती हुई आकर दीवानखाने के द्वार पर खड़ी हो गई। लैंप जल रहा था, प्रेमशंकर किताब देख रहे थे। श्रद्धा को उनके मुखमंडल पर आत्म-गौरव की एक दिव्य-ज्योति झलकती हुई दिखाई दी। उसका हृदय बांसों उछल रहा था और आंखें आनंद के अश्रु-बिंदुओं से भरी हुई थीं। आज चौदह वर्ष के बाद उसे अपने प्राणपति की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अब विरहिणी श्रद्धा न थी जिसकी सारी आकांक्षाएं मिट चुकी हों। इस समय उसका हृदय अभिलाषाओं से आंदोलित हो रहा था, किंतु उसके नेत्रों में तृष्णा न थी, उसके अधरों पर मृदु मुस्कान न थी। वह इस तरह नहीं आई, जैसे कोई नववधू अपने पति के पास जाती है। वह इस तरह आई थी जैसे कोई उपासिका अपने इष्टदेव के सामने आती है, श्रद्धा और अनुराग में डूबी हुई।

वह क्षण भर द्वार पर खड़ी रही। तब जाकर प्रेमशंकर के चरणों पर गिर पड़ी।

बासठ

मानव-चरित्र न बिल्कुल श्यामल होता है न बिल्कुल श्वेत। उसमें दोनों ही रंगों का विचित्र सम्मिश्रण होता है। स्थिति अनुकूल हुई तो वह ऋषितुल्य हो जाता है, प्रतिकूल हुई तो नराधम। वह अपनी परिस्थितियों का खिलौना मात्र है। बाबू ज्ञानशंकर अगर अब तक स्वार्थी, लोभी और संकीर्ण-हृदय थे, तो वह परिस्थितियों का फल था। भूखा आदमी उस समय तक कुत्ते को कौर नहीं देता जब तक वह स्वयं संतुष्ट न हो जाए। असम्पन्नता ने उनकी श्यामलता को और भी उज्ज्वल कर दिया था। उन्होंने ऐसे घर में जन्म लिया था जिसने कुल-मर्यादा की रक्षा में अपनी श्री का अंत कर दिया था। ऐसी अवस्था में उन्हें संतोष से ही शांति मिल सकती थी, पर उनकी उच्च शिक्षा ने उन्हें जीवन को एक वृहत् संग्राम-क्षेत्र समझना सिखाया था।

उनके सामने जिन महान पुरुषों के आदर्श रखे गए थे उन्होंने भी संघर्ष-नीति का आश्रय लेकर सफलता प्राप्त की थी। इसमें संदेह नहीं कि इस शिक्षा ने उन्हें लेख और वाणी में प्रवीण, तर्क में कुशल, व्यवहार में चतुर बना दिया था, पर इसके साथ ही उन्हें स्वार्थ और स्वहित का दास बना दिया था। यह वह शिक्षा न थी जो अपने झोंपड़े का द्वार खुला रखने का अनुरोध करती है, जो दूसरों को खिलाकर आप खाने की नीति सिखाती है। ज्ञानशंकर किसी को आश्रय देने की कल्पना भी न कर सकते थे, जब तक अपना प्रासाद न बना लें, वह किसी को मुट्ठी भर अन्न भी न दे सकते थे, जब तक अपनी धान्यशाला को न भर लें।

सौभाग्य से उनका प्रासाद निर्मित हो चुका था। अब वह दूसरों को आश्रय देने पर तैयार थे, उनकी धान्यशाला परिपूर्ण हो चुकी थी। अब उन्हें भिक्षुकों से घृणा न थी। संपत्तिशाली होकर वह उदार, दयालु, दीनवत्सल और कर्त्तव्यपरायण हो गए थे। लाला प्रभाशंकर की पुत्रियों के विवाह में उन्होंने खासी मदद की थी और पुत्रों के मातम में शरीक होने के लिए भी गोरखपुर से आए थे। प्रेमशंकर के प्रति भ्रातृ-प्रेम जाग्रत हो गया था, यहां तक कि लखनपुर वालों के मुक्त हो जाने पर उन्हें बधाई दी। गायत्री की मृत्यु का शोक समाचार मिला तो उन्होंने उसका संस्कार बड़ी धूमधाम से किया और कई हजार रुपये खर्च किए। उसकी यादगार में एक पक्का तालाब खुदवा दिया। जब तक वह फूस के झोंपड़े में रहते थे, आग की चिनगारियों से डरते थे। अब उनका पक्का महल था, फुलझड़ियों का तमाशा सावधानी से देख सकते थे।

ज्ञानशंकर अब ख्याति और सुकीर्ति के लिए लालायित रहते थे। लखनऊ के मान्यगण उन्हें अनधिकारी समझकर उनसे कुछ खिंचे रहते थे। और यद्यपि गोरखपुर में पहले ही उन्होंने सम्मानपद प्राप्त कर लिया था, पर इस नई हैसियत में देखकर अक्सर लोग उनसे जलते थे। ज्ञानशंकर ने दोनों शहरों के रईसों से मेल-जोल बढ़ाना शुरू किया। पहले वह रायसाहब के अव्यवस्थित व्यय को घटाना परमावश्यक समझते थे। कई घोड़े, एक मोटर, कई सवारी गाड़ियां निकाल देना चाहते थे। लेकिन अब उन्हें अपनी सम्मान-रक्षा के लिए उस ठाट-बाट को निबाहना ही नहीं, उसे और बढ़ाना जरूरी मालूम होता था, जिसमें लोग उनकी हंसी न उड़ाएं। वह उन लोगों की बार-बार दावतें करते, छोटे-बड़े सबसे नम्रता और विनय का व्यवहार करते और सत्कार्यों के लिए दिल खोलकर चंदे देते। पत्र-संपादकों से उनका परिचय पहले से ही था, अब और भी घनिष्ठ हो गया। अखबारों में उनकी उदारता और सज्जनता की प्रशंसा होने लगी। यहां तक कि साल भी न बीतने पाया था कि वह लखनऊ के ताल्लुकेदार सभा में मंत्री चुन लिए गए। राज्याधिकारियों में भी उनका सम्मान होने लगा। वह वाणी के कुशल थे ही, प्रायः जातीय-सम्मेलनों में ओजस्विनी वक्तृता देते। पत्रों में वाह-वाह होने लगती। अतएव वह इधर तो जाति के नेताओं में गिने जाने लगे, उधर अधिकारियों में भी मान-प्रतिष्ठा होने लगी।

किंतु अपनी मूक, दीन प्रजा के साथ उनका बर्ताव इतना सदय न था। उन वृक्षों में कांटे न थे, इसलिए उनके फल तोड़ने में कोई बाधा न थी। असामियों पर अखराज, बकाया और इजाफे की नालिशें धूम से हो रही थीं, उनके पट्टे बदले जा रहे थे और नजराने बड़ी कठोरता से वसूल किए जा रहे थे। रायसाहब ने रियासत पर पांच लाख का ऋण छोड़ा था। उस पर लगभग पच्चीस हजार वार्षिक ब्याज होता था। ज्ञानशंकर ने इन प्रयत्नों से सूद की पूर्ति कर ली। इतने अत्याचार पर भी प्रजा उनसे असंतुष्ट न थी। वह कड़वी दवाएं मीठी करके पिलाते थे। गायत्री की बरसी में उन्होंने असामियों को एक हजार कंबल बांटे और ब्राह्मणों को भोज दिया। इसी

तरह रायसाहब के इलाके में होली के दिन जलसे कराए और भोले-भाले असामियों को भरपेट भंग पिलाकर मुग्ध कर दिया। कई जगह मंडियां लगवा दीं जिससे कृषकों को अपनी जिन्सें बेचने में सुविधा हो गई और रियासत को भी अच्छा लाभ होने लगा।

इस तरह दो साल गुजर गए। ज्ञानशंकर का सौभाग्य-सूर्य अब मध्याह्न पर था। रायसाहब के ऋण से वह अब बहुत कुछ मुक्त हो चुके थे। हाकिमों में मान था, रईसों में प्रतिष्ठा थी, विद्वज्जनों में आदर था, मर्मज्ञ लेखक थे, कुशल वक्ता थे। सुख-भोग की सब सामग्रियां प्राप्त थीं। जीवन की महत्वाकांक्षाएं पूरी हो गई थीं। वह जब कभी अवकाश के समय अपनी गत अवस्था पर विचार करते तब उन्हें अपनी सफलता पर आश्चर्य होता था। मैं क्या-से-क्या हो गया? अभी तीन साल पहले मैं एक हजार सालाना नफे के लिए सारे गांव को फांसी पर चढ़वा देना चाहता था तब मेरी दृष्टि कितनी संकीर्ण थी? एक तुच्छ बात के लिए चचा से अलग हो गया, यहां तक कि अपने सगे भाई का भी अहित सोचता था। उन्हें फंसाने में कोई बात उठा नहीं रखी। पर अब ऐसी कितनी रकमें दान कर देता हूं। कहां एक तागा रखने की सामर्थ्य न थी, कहा अब मोटरें मंगनी दिया करता हूं। निस्संदेह इस सफलता के लिए मुझे स्वांग भरने पड़े, हाथ रंगने पड़े, पाप, छल, कपट सब कुछ करने पड़े, किंतु अंधेरे खोह में, उतरे बिना अनमोल रत्न कहां मिलते हैं? लेकिन इसे अपने ही कृत्यों का फल समझना मेरी नितांत भूल है। ईश्वरीय व्यवस्था न होती तो मेरी चाल कभी सीधी न पड़ती। उस समय तो ऐसा जान पड़ता था कि पांसा पट पड़ा, वार खाली गया, लेकिन सौभाग्य से उन्हीं खाली वारों ने, उन्हीं उल्टी चालों ने बाजी जिता दी।

ज्ञानशंकर दूसरे-तीसरे महीने बनारस अवश्य जाते और प्रेमशंकर के पास रह कर सरल जीवन का आनंद उठाते। उन्होंने प्रेमशंकर से कितनी बार साग्रह कहा कि अब आपको इस उजाड़ में झोंपड़ी बनाकर रहने की क्या जरूरत है? चलकर घर पर रहिए और ईश्वर की दी हुई संपत्ति भोगिए। यह मंजूर न हो तो मेरे साथ चलिए। हजार-दो हजार बीघे चक दे दूं, वहां दिल खोलकर कृषक जीवन का आनंद उठाइए लेकिन प्रेमशंकर कहते, मेरे लिए इतना ही काफी है, ज्यादा की जरूरत नहीं। हां, इस अनुरोध का इतना फल अवश्य हुआ कि वह अपनी जोत को बढ़ाने पर राजी हो गए। उनके डांड़ से मिली हुई पचास बीघे जमीन एक दूसरे जमींदार की थी। उन्होंने उसका पट्टा लिखा लिया और फूस के झोंपड़े की जगह खपरैल के मकान बनवा लिए। ज्ञानशंकर उनसे यह प्रस्ताव करते थे, पर उनके संतोषमय, सरल, निर्विरोध जीवन के महत्त्व से अनभिज्ञ थे। नाना प्रकार की चिंताओं और बाधाओं से ग्रस्त रहने के बाद वहा के शांतिमय, निर्विघ्न विश्राम से उनका चित्त प्रफुल्लित हो जाता था। यहां से जाने को जी न चाहता था। यह स्थान अब पहले की तरह न था, जहां केवल एक आदमी साधुओं की भांति अपनी कुटी में पड़ा रहता हो। अब वह एक छोटी-सी गुलजार बस्ती थी, जहां नित्य राजनीतिक और सामाजिक विषयों पर सम्वाद होते और जीवन-मरण के गूढ़, जटिल प्रश्नों की मीमांसा की जाती थी। यह विद्वज्जनों की एक छोटी-सी संगत थी, विद्वानों के पक्षपात और अहंकार से मुक्त। वास्तव में यह सारल्य, संतोष और सुविचार की तपोभूमि थी। यहां न ईर्ष्या का संताप था, न लोभ का उन्माद, न तृष्णा का प्रकोप। यहां धन की पूजा न होती थी और न दीनता पैरों तले कुचली जाती थी। यहां न एक गद्दी लगाकर बैठता था और न दूसरा अपराधियों की भांति उनके सामने हाथ बांधकर खड़ा होता था। यहां स्वामी की घुड़कियां न थीं न सेवक की दीन ठकुर-सोहातियां। यहां सब एक-दूसरे के सेवक, एक-दूसरे के मित्र और हितैषी थे। एक तरफ डॉक्टर इर्फान अली का सुंदर बंगला था, फूलों और लताओं से सजा

हुआ ! डॉक्टर साहब अब केवल वही मुकदमे लेते थे जिनके सच्चे होने का उन्हें विश्वास होता था और उतना ही पारिश्रमिक लेते थे जितना रोजाना खर्च के लिए आवश्यक हो। संचय और संग्रह की चिंताओं से निवृत हो गए थे। शाम-सबेरे वह प्रेमशंकर के साथ बागवानी करते थे, जिसका उन्हें पहले से ही शौक था। पहले गमलों में लगे हुए पौधों को देखकर खुश होते थे, काम माली करता था। अब सारा काम अपने ही हाथों से करते थे। उनके बंगले से मिला हुआ डॉक्टर प्रियनाथ का मकान था। मकान के सामने एक औषधालय था। अब वे प्राय: देहातों में घूम-घूमकर रोगियों का कष्ट निवारण करते थे, नौकरी छोड़ दी थी। जीविका के लिए एक गौशाला खोल ली थी, जिसमें कई पछाही गायें-भैंसें थीं। दूध-मक्खन बिकने के लिए शहर चला जाता था। रोगियों से कुछ फीस न लेते थे। बाबू ज्वालासिंह और प्रेमशंकर एक ही मकान में रहते थे। श्रद्धा और शीलमणि में खूब बनती थी। घर के कामों से फुरसत पाते ही दोनों चरखे पर बैठ जाती थीं या मोजे बुनने लगती थीं। प्रेमशंकर नियमानुसार खेत में काम करते और ज्वालासिंह नए प्रकार के करघों पर आप कपड़े बुनते थे और हाजीपुर के कई युवकों को बुनना सिखाते थे। इस कला में वह बहुत निपुण हो गए थे। सैयद ईजाद हुसेन ने भी यहीं अड्डा जमाया। उनका परिवार अब भी शहर में ही रहता था, पर वह यतीमखाना यहीं उठ आया था। उसमें अब नकली नहीं, सच्चे यतीमों का पालन-पोषण होता था। सैयद साहब अपना 'इत्तहाद' अब भी निकालते थे और 'इत्तहाद' पर व्याख्यान देते थे, लेकिन चंदे न वसूल करते थे और न स्वांग भरते थे। वह अब हिन्दू-मुस्लिम एकता के सच्चे प्रचारक थे। यतीमखाने के समीप ही मायाशंकर का मित्र-भवन था। यह एक छोटा-सा छात्रालय था। इसमें इर्फान अली के दो लड़के, प्रियनाथ के तीनों लड़के, दुर्गा माली का एक लड़का और मस्ता का एक छोटा भाई साथ-साथ रहते थे। सब साथ-साथ पाठशाला जाते और साथ-साथ भोजन करते। उनका सब खर्च मायाशंकर अपने वजीफे से देता था। भोजन श्रद्धा पकाती थी। ज्ञानशंकर ने कई बार चाहा कि माया को ले जाकर लखनऊ के ताल्लुकेदार स्कूल में दाखिल करा दूं, लेकिन वह राजी न होता था।

एक बार ज्ञानशंकर लखनऊ से आए तो माया के वास्ते एक बहुत सुंदर रेशमी सूट सिला लाए, लेकिन माया ने उसको उस वक्त तक न पहना जब तक मित्र-भवन के और छात्रों के लिए वैसे ही सूट न तैयार हो गए। ज्ञानशंकर मन में बहुत लज्जित हुए और बहुत जब्त करने पर भी उनके मुंह से इतना निकल ही गया—भाई साहब, मैं इस साम्य-सिद्धांत पर आपसे सहमत नहीं हूं। यह एक अस्वाभाविक सिद्धांत है। सिद्धांत रूप से चाहे इसकी कितनी ही प्रशंसा करें, पर इसका व्यवहार में लाना असंभव है। मैं यूरोप के कितने ही साम्यवादियों को जानता हूं जो अमीरों की भांति रहते हैं, मोटरों की सैर करते हैं और साल में छह महीने इटली या फ्रांस में विहार करते हैं। जब वह अपने को साम्यवादी कह सकते हैं तो कोई कारण नहीं है कि हम इस अस्वाभाविक नीति पर जान दें !

प्रेमशंकर ने विनीत भाव से कहा—यहां साम्यवाद की तो कभी चर्चा नहीं हुई है।

ज्ञान—तो फिर यहां के जलवायु में कुछ असर होगा। यद्यपि मुझे इस विषय में आपसे कुछ कहने का अधिकार नहीं है पर पिता के नाते मैं इतना कहने की क्षमा चाहता हूं कि ऐसी शिक्षा का फल माया के लिए हितकर न होगा।

प्रेम—अगर तुम चाहो और माया की इच्छा हो तो उसे लखनऊ ले जाओ, मुझे कोई आपत्ति

नहीं है। यहां के जलवायु को बदलना मेरे वश की बात नहीं।

ज्ञान–यह तो आप जानते हैं कि माया और उसके साथियों की स्थिति में कितना अंतर है?

प्रेमशंकर ने गंभीरता से कहा–हां, खूब जानता हूं, पर यह नहीं जानता कि इस अंतर को प्रदर्शित क्यों किया जाए। मायाशंकर थोड़े दिनों में एक बड़ा इलाकेदार होगा, यह सब लड़कों को मालूम है। क्या यह बात उन्हें अपने दुर्भाग्य पर रुलाने के लिए काफी नहीं है कि इस विभिन्नता का स्वांग दिखाकर उन्हें और भी चोट पहुंचाई जाय? तुम्हें मालूम न होगा, पर मैं यह विश्वस्त रूप से कहता हूं कि तेजू और पद्मू का बलिदान माया के गोद लिए जाने के ही कारण हुआ। माया को अचानक इस रूप में देखकर उनको सिद्धि प्राप्त करने की प्रेरणा हुई। माया डींगें मार–मारकर उनकी लालसा को और भी उत्तेजित करता रहा और उसका यह भयंकर परिणाम हुआ....

इतने में माया आ गया और प्रेमशंकर को अपनी बात अधूरी ही छोड़नी पड़ी। ज्ञानशंकर भी अन्यमनस्क होकर वहां से उठ गए।

तिरसठ

गायत्री के आदेशानुसार ज्ञानशंकर दो हजार रुपये महीना मायाशंकर के खर्च के लिए देते जाते थे। प्रेमशंकर की इच्छा थी कि कई अध्यापक रखे जाएं, कई घोड़े लिए जाएं, सैर करने के लिए गाड़ियां रखी जाएं, कई नौकर सेवा–टहल के लिए लगाये जाएं, पर मायाशंकर अपने ऊपर इतना खर्च करने को राजी न हुआ। प्रेमशंकर को मजबूर होकर उसकी बात माननी पड़ी। केवल दो अध्यापक उसे पढ़ाने आते थे। फारसी पढ़ाने के लिए ईजाद हुसेन और संस्कृत पढ़ाने के लिए एक पंडित। सवारी के लिए एक घोड़ा भी था। अंग्रेजी प्रेमशंकर स्वयं पढ़ाते थे। गणित ज्वालासिंह के जिम्मे था, डॉक्टर प्रियनाथ सप्ताह में दो दिन गाने की शिक्षा देते थे, जिसमें वह निपुण थे और दो दिन आरोग्य–शास्त्र पढ़ाते थे। डॉक्टर इर्फान अली अर्थशास्त्र के ज्ञाता थे। सप्ताह में दो दिन कानून सिखाते और दो दिन अर्थशास्त्र की व्याख्या करते। कॉलेज के कई विद्यार्थी शहर से इन व्याख्यानों को सुनने के लिए आ जाते थे और प्रियनाथ का संगीत समाज तो सारे शहर में प्रसिद्ध था। इधर की बचत मित्र–भवन, इत्तहादी अनाथालय और प्रियनाथ के चिकित्सालय के संचालन में खर्च होती थी। विद्यावती के नाम से बीस–बीस रुपये की दस छात्रवृत्तियां भी दी जाती थीं। इतना सब खर्च करने पर भी महीने में खासी बचत हो जाती थी। इन तीन वर्षों में कोई पच्चीस हजार रुपये जमा हो गए थे। प्रेमशंकर चाहते थे कि ज्ञानशंकर की सम्मति लेकर माया को कुछ दिनों के लिए यूरोप, अमेरिका आदि देशों में भ्रमण करने के लिए भेज दिया जाय। इस धन का इससे अच्छा उपयोग न हो सकता था। पर मायाशंकर की कुछ और ही इच्छा थी। वह यात्रा करने के लिए तो उत्सुक था, पर एक हजार रुपये महीने से ज्यादा खर्च न करना चाहता था। इस धन के सदुपयोग की उसने दूसरी ही विधि सोची, पर प्रेमशंकर से यह प्रकट करते हुए सकुचाता था। संयोग से इसी बीच में उसे इसका अच्छा अवसर मिल गया।

लाला प्रभाशंकर ने प्रेमशंकर को लखनपुर के मुकदमे से बचाने के लिए जो रुपये

उधार लिये थे उसकी अवधि तीन साल थी। यह मियाद पूरी हो गई थी, पर रुपये का सूद तक अदा न हुआ था। पहले प्रेमशंकर को इस मामले की जरा भी खबर न थी, पर जब महाजन ने अदालत में नालिश की तो उन्हें खबर हुई। रुपये क्यों उधार लिये गए, यह बात शीघ्र ही मालूम हो गई। तब से वह घोर चिंता में पड़े हुए थे कि यह रुपये कैसे दिए जावें? यद्यपि मुकदमे में रुपये का एक ही भाग खर्च हुआ था, अधिकांश खाने-खिलाने, शादी-ब्याह में उड़ा था, पर यह हिसाब-किताब करने का समय न था। प्रेमशंकर ऋण का पूरा भार लेना चाहते थे। लेकिन रुपये कहां से आएं? वे कई दिन इसी चिंता में विकल रहे। कभी सोचते ज्ञानशंकर से मांगूं, कभी प्रियनाथ से मांगने का विचार करते, पर संकोचवश किसी से कहते न बनता था।

एक दिन वह इसी उधेड़-बुन में पड़े हुए थे कि भोला आकर खड़ा हो गया और उन्हें चिन्तित देख बोला—बाबूजी आजकल आप बहुत उदास रहते हैं, क्या बात है? हमारे लायक कोई काम हो तो बताइए, भरसक उसे पूरा करेंगे।

प्रेमशंकर को भोला से बहुत स्नेह था। इनके सत्संग से उसकी शराब और जुए की आदत छूट गई थी। वह इनको अपना मुक्तिदाता समझता था और इन पर असीम श्रद्धा रखता था। प्रेमशंकर भी उस पर विश्वास करते थे। बोले—कुछ ऐसी ही चिंता है, मगर तुम सुनकर क्या करोगे?

भोला—और तो क्या करूंगा? हां, जान लड़ा दूंगा।

प्रेम—जान लड़ाने से मेरी चिंता दूर न होगी, उसका कोई और ही उपाय करना पड़ेगा।

भोला—जो कहिए वह करने को तैयार हूं। जब तक आप न बताएंगे, पिंड न छोड़ूंगा।

अंत में विवश होकर प्रेमशंकर ने कहा—मुझे कुछ रुपयों की जरूरत है और समझ में नहीं आता कि कौन-सा उपाय करूं।

भोला—हजार-दो हजार से काम चले तो मेरे पास हैं, ले लीजिए। ज्यादा की जरूरत हो तो कोई और उपाय करूं।

प्रेम—हजार-दो हजार का तुम क्या प्रबंध करोगे? तुम्हारे पास तो हैं नहीं, किसी से लेने ही पड़ेंगे।

भोला—नहीं बाबूजी, आपकी दुआ से अब इतने फटेहाल नहीं हैं। हजार से कुछ ऊपर तो अपने ही हैं। एक हजार मस्ता ने रखने को दिये हैं। दुर्गा और दमड़ी भी कुछ रुपये रखने को देते थे, पर मैंने नहीं लिये। पराए रुपये घर में रखकर कौन जंजाल पाले? कहीं कुछ हो जाए तो लोग समझें इसने खा लिए होंगे।

प्रेम—तुम लोगों के पास इतने रुपये कहां से आ गए?

भोला—आप ही ने दिये हैं, और कहां से आए? जवानी की कसम खाकर कहता हूं कि इधर तीन साल से एक दिन कौड़ी हाथ से छुई हो, या दारू मुंह से लगायी हो। आप लोगों जैसे भले आदमियों के साथ रहकर ऐसे कुकर्म करता तो कौन मुंह दिखाता? मस्ता के बारे में भी कह सकता हूं कि इधर दो-ढाई साल से किसी के माल की तरफ आंख उठाकर नहीं देखा। अभी थोड़े दिनों की बात है, भवानीसिंह की अंटी से पांच गिन्नियां गिर गई थीं। मस्ता ने खेत में पड़ी पायीं, उसी दम जाकर उन्हें दे आया। पहले इसी बगीचे से फल-फलारी तोड़कर बेच लिया करता था, पर अब यह सारी आदतें छूट गईं। दुर्गा और दमड़ी गांजा-चरस तो पीते हैं, लेकिन बहुत कम और मैंने उन्हें कोई कुचाल चलते नहीं देखा। हम सभी रोटी, दाल-तरकारी खाकर दो-तीन सौ रुपये बचा लेते हैं। तो कहिए, जितने रुपये मेरे पास हैं, वह लाऊं?

प्रेम–यह सुनकर मुझे बड़ी खुशी हुई कि तुम लोग भी चार पैसे के आदमी हो गए। वह सब तुम्हारे सुविचार का फल है। लेकिन मेरा काम इतने रुपये में न चलेगा। मुझे पच्चीस हजार की जरूरत है।

सहसा मायाशंकर आकर खड़ा हो गया। उसकी आंखें डबडबाई हुई थीं और मुंह पर करुण उत्सुकता झलक रही थी। प्रेमशंकर ने भोला को आंखों के इशारे से हटा दिया और माया से बोले–आंखें क्यों भरी हुई हैं? बैठो !

माया–जी, कुछ नहीं। अभी तेजू और पद्मू की याद आ गई। दोनों अब तक होते तो उन्हें यहीं बुलाकर रखता। उस समय मैं बड़ा निर्दयी था। बेचारों को अपना ठाट-बाट दिखाकर जलाना चाहता था। मेरी शेखी की बातें सुन-सुन वे भी कहा करते थे, हम वह मन्त्र जगाएंगे कि कोई मार ही न सके। ऐसे-ऐसे मन्त्रों को अपने वश में कर लेंगे कि घर बैठे संसार की जो वस्तु चाहे मंगा लेंगे। उस वक्त मेरी समझ में वे बातें न आती थीं, दिल्लगी समझता था, पर अब तो उन बातों को याद करता हूं तो ऐसा मालूम होता है कि मैं ही उनका घातक हूं। चित्त व्याकुल हो जाता है और अपने ऊपर ऐसा क्रोध आता है कि क्या करूं। अभी बाबा से मिलने गया था। बहुत दु:खी थे। किसी महाजन ने उन पर नालिश भी कर दी है, इससे और भी चिन्तित थे। अगर यह मुसीबत न आती तो शायद वह इतने दु:खी न होते। विपत्ति में शोक और भी दुस्सह हो जाता है। शोक का घाव भरना तो असंभव है पर इस नयी विपत्ति का निवारण हो सकता है। आपसे कहते हुए संकोच होता है, पर इस समय मुझे क्षमा कीजिए। मैं चाहता हूं कि आप से जो कुछ बन पड़े उनकी सहायता कीजिए। चाचा दयाशंकर तो बाबा से कह रहे थे, हमें जमीन की परवाह नहीं है, निकल जाने दीजिए। आपको अब क्या करना है? मेरे सिर पर जो पड़ेगी, देख लूंगा, लेकिन बाबा की इच्छा यह थी कि महाजन से कुछ दिनों की मुहलत ली जाए। अगर आपकी आज्ञा हो तो मैं महाजन से जाकर बातचीत करूं। मुझसे वह कुछ दबेगा भी।

प्रेमशंकर–रुपयों की फिक्र तो मैं कर रहा हूं, पर मालूम नहीं उन्हें कितने रुपयों की जरूरत है। उन्होंने मुझसे कभी यह जिक्र नहीं किया।

माया–बातचीत से मालूम होता था कि पन्द्रह-बीस हजार का मुआमला है।

प्रेम–यही मेरा अनुमान है। दो-चार दिन में कुछ-न-कुछ उपाय निकल ही आएगा। या तो महाजन को समझा-बुझा दूंगा या दो-चार हजार रुपये देकर कुछ दिनों की मुहलत ले लूंगा।

माया–मैं चाहता हूं कि बाबा को मालूम भी न होने पाए और महाजन के सब रुपये पहुंच जाएं जिससे यह झंझट न रहे। जब हमारे पास रुपये हैं तो फिर महाजन की खुशामद क्यों की जाए?

प्रेम–वह रुपये अमानत के हैं। उन्हें छूने का अधिकार नहीं है। उन्हें मैंने तुम्हारी यूरोप-यात्रा के लिए अलग कर दिया है।

माया–मेरी यूरोप-यात्रा इतनी आवश्यक नहीं है कि घरवालों को संकट में छोड़कर चला जाऊं।

प्रेम–जिस काम के लिए वह रुपये दिये गए हैं, उसी काम में खर्च होने चाहिए।

माया मन में खिन्न होकर चला गया, पर श्रद्धा से वह ढीठ हो गया था। उसके पास जाकर बोला–अगर चाचा साहब बाबा को रुपये न देंगे तो मैं यूरोप कदापि न जाऊंगा। तीस हजार लेकर मैं वहां क्या करूंगा? मेरे लिए चलते समय पांच हजार काफी हैं। चाचा साहब से पच्चीस हजार दिला दो।

प्रेमशंकर ने श्रद्धा से भी वही बातें कहीं। श्रद्धा ने माया का पक्ष लिया। बहस होने लगी। कुछ निश्चय न हो सका। दूसरे दिन श्रद्धा ने फिर वही प्रश्न उठाया। आखिर जब उसने देखा कि यह दलीलों से हार जाने पर भी रुपये नहीं देना चाहते तो जरा गर्म होकर बोली—अगर तुमने दादाजी को रुपये न दिये तो माया कभी यूरोप न जाएगा।

प्रेम—वह मेरी बात को कभी नहीं टाल सकता।

श्रद्धा—और बातों को नहीं टाल सकता, पर इस बात को हर्गिज न मानेगा।

प्रेम—तुमने यह शिक्षा दी होगी।

श्रद्धा ने कुछ जवाब न दिया। यह बात उसे लग गई। एक क्षण तक चुपचाप बैठी रही। तब जाने के लिए उठी। प्रेमशंकर के मुंह से बात निकल गई थी, पर अपनी कठोरता पर लज्जित थे। बोले—अगर ज्ञानशंकर कुछ आपत्ति करें तो?

श्रद्धा ने तिनककर कहा—तो साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि ज्ञानशंकर के डर से रुपये नहीं देता। अधिकार, कर्त्तव्य और अमानत का आश्रय क्यों लेते हो?

प्रेमशंकर ने असमंजस में पड़कर कहा—डर की बात नहीं है। रुपयों के विषय में मुझे पूरा अधिकार है, लेकिन ज्ञानशंकर की अनुमति के बिना मैं उसे इस तरह खर्च नहीं करना चाहता।

श्रद्धा—तो एक चिट्ठी लिखकर पूछ लो। मुझे तो पूरा विश्वास है कि उन्हें कोई आपत्ति न होगी। अब वह ज्ञानशंकर नहीं हैं, जो पैसे-पैसे पर जान देते थे।

प्रेमशंकर बाहर आकर ज्ञानशंकर को पत्र लिखने बैठे। लेकिन फिर ख्याल आया कि उन्होंने अनुमति दे दी तो ! अनुमति देने में उनकी क्या हानि है? तब मुझे विवश होकर रुपये देने पड़ेंगे। यह रुपये न मेरे हैं, न माया के हैं और न ज्ञानशंकर के हैं। यह माया की शिक्षावृत्ति है। पत्र न लिखा। ज्वालासिंह के सामने यह समस्या पेश की। उन्होंने भी कुछ निश्चय न किया। डॉक्टर इर्फान अली से परामर्श लेने की ठहरी। डॉक्टर साहब ने फैसला किया कि यह रकम माया की शिक्षा के सिवा और किसी काम में नहीं खर्च की जा सकती।

मायाशंकर ने यह फैसला सुना तो झुंझला उठा। जी में आया कि चलकर डॉक्टर साहब से खूब बहस करूं, पर डरा कि कहीं वह इसे बेअदबी न समझें। क्यों न महाजन के पास जाकर वह सब रुपये मांग लूं? अभी नाबालिग हूं, शायद उसे कुछ आपत्ति हो, लेकिन एक के दो देने पर तैयार हो जाऊंगा तो मान जाएगा। लेकिन फिर शंका हुई कि चाचा साहब को मालूम हो गया तो मुंह से तो चाहे कुछ न कहें, पर मन में बहुत नाराज होंगे। बेचारा इन्हीं दुश्चिंताओं में डूबा हुआ मलीन, उदास जाकर लेट रहा। संध्या हो गई, पर कमरे से न निकला। डॉक्टर इर्फान अली ने पढ़ने के लिए बुलाया। कहला भेजा, मेरे सिर में दर्द है। भोजन का समय आया। मित्र-भवन के सब छात्र भोजन करने गए। माया ने कहला भेजा, मेरे सिर में दर्द है। श्रद्धा बुलाने आई। उसे देखते ही माया रो पड़ा।

श्रद्धा ने प्रेम से आंसू पोंछते हुए कहा—बेटा, चलकर थोड़ा-सा खाना खा लो। सबेरे मैं फिर उनसे कहूंगी। डॉक्टर इर्फान अली ने बात बिगाड़ दी, नहीं तो मैंने राजी कर लिया था।

माया—चाची, मेरी खाने की बिल्कुल इच्छा नहीं है। (रोकर) तेजू और पद्मू के प्राण मैंने लिये और अब मैं बाबा की कुछ भी मदद नहीं कर सकता। ऐसे जीने पर धिक्कार है !

श्रद्धा भी करुणावेग से विवश हो गई। अंचल से माया के आंसू पोंछती थी और स्वयं

रोती थी।

माया ने कहा—चाची, तुम नाहक हलकान होती हो, मैं अभागा हूं, मुझे रोने दो।

श्रद्धा—तुम चलकर कुछ खा लो। मैं आज ही रात को यह बात छेड़ूंगी।

माया का चित्त बहुत खिन्न था, पर श्रद्धा की बात न टाल सका। दो-चार कौर खाए, पर ऐसा मालूम होता था कि कौर मुंह से निकला पड़ता है। हाथ-मुंह धोकर फिर अपने कमरे में लेट रहा।

सारी रात श्रद्धा यही सोचती रही कि इन्हें कैसे समझाऊं। शीलमणि से भी सलाह ली, पर कोई युक्ति न सूझी।

प्रात:काल बुधिया किसी काम से आई। बातों-बातों में कहने लगी—बहू जी, पैसा सब कोई देखता है, मेहनत कोई नहीं देखता है। मर्द दिन भर में एक-दो रुपया कमा लाता है तो मिजाज ही नहीं मिलता, औरत बेचारी रात-दिन चूल्हे-चक्की में जुती रहे फिर भी वह निकम्मी ही समझी जाती है।

श्रद्धा सहसा उछल पड़ी। जैसे सुलगती हुई आग पाकर भभक उठती है। उसी भांति इन बातों ने उसे एक युक्ति सुझा दी। भटकते हुए पथिक को रास्ता मिल गया। कोई चीज जिसे घंटों से तलाश करते-करते थक गई थी, अचानक मिल गई। ज्योंही बुधिया गई वह प्रेमशंकर के पास आकर बोली—चाचाजी को रुपये देने के बारे में क्या निश्चय किया?

प्रेम—फिक्र में हूं। दो-चार दिन में कोई सूरत निकल ही आयेगी।

श्रद्धा—रुपये तो रखे ही हैं।

प्रेम—मुझे खर्च करने का अधिकार नहीं है।

श्रद्धा—वह किसके रुपये हैं?

प्रेम—(विस्मित होकर) माया के शिक्षार्थ दिये गए हैं।

श्रद्धा—तो क्या दो हजार रुपये महीने खर्च नहीं होते हैं?

प्रेम—क्या तुम जानती नहीं? लगभग आठ सौ रुपये खर्च होते हैं, बाकी बारह सौ रुपये बच रहते हैं।

श्रद्धा—यह क्यों बच रहते हैं? क्या वह तुम्हारी समझ में नहीं आता? डॉक्टर इर्फान अली को पढ़ाने के लिए कितना वेतन मिलना चाहिए? डॉक्टर प्रियनाथ और बाबू ज्वालासिंह को भी नौकर रखते तो कुछ न कुछ देना पड़ता। तुम्हारी मजूरी भी कुछ न कुछ होनी ही चाहिए। तुम्हारे विचार में इर्फान अली का वेतन कुछ होता ही नहीं? उनका एक दिन का मेहनताना पांच सौ रुपये न दोगे? प्रियनाथ की आमदनी सौ रुपये प्रतिदिन से कम नहीं थी। पहले तो वह किसी के घर पढ़ाने जाएं ही नहीं, जाएं तो पांच सौ रुपये महीने से कम न लें। बाबू ज्वालासिंह भी सौ रुपये पर मंहगे नहीं हैं। रहे तुम। तुम्हारा भतीजा है, उसे शौक से, प्रेम से पढ़ाते हो, पर दूसरों को क्या पड़ी है कि वह सेंत में अपनी सिरपच्ची करें? इन रुपयों को तुम बचत समझते हो, यह सर्वथा अन्याय है। इसे चाहे अपनी सज्जनता का पुरस्कार समझो या उनके एहसान का मूल्य, इस धन के खर्च करने का तुम्हें अधिकार है।

प्रेमशंकर ने संदिग्ध भाव से कहा—माया और तुम बिना रुपये दिलाए न मानोगे, जैसी तुम्हारी इच्छा। तुम्हारी युक्ति में न्याय है, इसे मैं मानता हूं, पर आत्मा सन्तुष्ट नहीं होती। मैं इस वक्त रुपये दिए देता हूं, पर इसे ऋण समझकर अदा करने की चेष्टा करता रहूंगा।

चौंसठ

लाला प्रभाशंकर को रुपये मिले तो वह रोए। गांव तो बच गया, पर उसे कौन बिलसेगा? दयाशंकर का चित्त फिर घर से उचाट हो चला था ! साधु-संतों के सत्संग के प्रेमी हो गए थे। दिन-दिन वैराग्य में रत होते जाते थे।

इधर मायाशंकर की यूरोप-यात्रा पर ज्ञानशंकर राजी न हुए। उनके विचार में अभी यात्रा से माया को यथेष्ट लाभ न पहुंच सकता था। उससे यह कहीं उत्तम था कि वह अपने इलाकों का दौरा करे। उसके बाद हिन्दुस्तान के मुख्य-मुख्य स्थानों को देखे, अतएव चैत के महीने में मायाशंकर गोरखपुर चला गया और दो महीने तक अपने इलाके की सैर करने के बाद लखनऊ जा पहुंचा। दो महीने तक वहां भी अपने गावों का दौरा करता रहा। प्रतिदिन जो कुछ देखता अपनी डायरी में लिख लेता। कृषकों की दशा का खूब अध्ययन किया। दोनों इलाकों के किसान उसके प्रजा-प्रेम, विनय और शिष्टता पर मुग्ध हो गए। उसने उनके दिलों में घर कर लिया। भय की जगह प्रेम का विकास हो गया। लोग उसे अपना सच्चा हितैषी समझने लगे। उसके पास आकर अपनी विपत्ति-कथा सुनाते। उसे उनकी वास्तविक दशा का ऐसा परिचय किसी अन्य रीति से न मिल सकता था। चारों तरफ तबाही छायी हुई थी। ऐसा बिरला ही कोई घर था, जिसमें धातु के बर्तन दिखाई देते हों। कितने घरों में लोहे के तवे तक न थे। मिट्टी के बर्तनों को छोड़कर झोंपड़े में और कुछ दिखाई न देता था। न ओढ़ना, न बिछौना, यहां तक कि बहुत से घरों में खाटें तक न थीं और वह घर ही क्या थे? एक-एक, दो-दो छोटी कोठरियां थीं। एक मनुष्यों के लिए, एक पशुओं के लिए। इसी एक कोठरी में खाना, सोना, उठना-बैठना-सब कुछ होता था। बस्तियां इतनी घनी थीं कि गांव की खुली हुई जगह दिखाई ही नहीं देती थी। किसी के द्वार पर सहन नहीं, हवा और प्रकाश का शहरों की घनी बस्तियों में भी इतना अभाव न होगा। जो किसान बहुत संपन्न समझे जाते थे, उनके बदन पर साबित कपड़े न थे, उन्हें भी एक जून चबेना पर ही काटना पड़ता था। वह भी ऋण के बोझ से दबे हुए थे। अच्छे जानवरों को देखने को आंखें तरस जाती थीं। जहां देखो छोटे-छोटे मरियल, दुर्बल बैल दिखाई देते थे और खेतों में रेंगते और चरनियों पर औंघते थे। कितने ही ऐसे गांव थे जहां दूध तक न मयस्सर होता था। इस व्यापक दरिद्रता और दीनता को देखकर माया का कोमल हृदय तड़प जाता था। वह स्वभाव से ही भावुक था-बहुत नम्र, उदार और सहृदय। शिक्षा और संगीत ने इन भावों को और भी चमका दिया था। प्रेमाश्रम में नित्य सेवा और प्रजा-हित की चर्चा रहती थी। माया का सरल हृदय उसी रंग में रंग गया था। वह इन दृश्यों से दुखित होकर प्रेमशंकर को बार-बार पत्र लिखता, अपनी अनुभूत घटनाओं का उल्लेख करता और इस कष्ट को निवारण करने का उपाय पूछता, किंतु प्रेमशंकर या तो उनका उत्तर ही न देते या किसानों की मूर्खता, आलस्य आदि दु:स्वभावों की गाथा ले बैठते।

माया तो अपने इलाकों की सैर कर रहा था, इधर स्थानीय राजसभा के सदस्यों का चुनाव होने लगा। ज्ञानशंकर इस सम्मान्य पद के पुराने अभिलाषी थे। बड़े उत्साह से मैदान में उतरे। यद्यपि वह ताल्लुकेदार सभा के मंत्री थे, पर ताल्लुकेदारों की सहायता पर उन्हें भरोसा न था। कई बड़े-बड़े ताल्लुकेदार अपने गांव के प्रतिनिधि बनने के लिए तत्पर थे। उनके सामने ज्ञानशंकर को अपनी सफलता की कोई आशा न थी। इसलिए उन्होंने गोरखपुर के किसानों की ओर से खड़े होने का निश्चय किया। वहां संग्राम इतना भीषण न था। उनके गोइंदे देहातों में

घूम-घूमकर उनका गुणगान करने लगे। बाबू साहब कितने दयालु, ईश्वरभक्त हैं, उन्हें चुनकर तुम कृतार्थ हो जाओगे। वह राजसभा में तुम्हारी उन्नति और उपकार के लिए जान लड़ा देंगे, लगान घटवाएंगे, प्रत्येक गांव में गोचर भूमि की व्यवस्था करेंगे, नजराने उठवा देंगे, इजाफा लगान का विरोध करेंगे और इखराज को समूल उखाड़ देंगे। सारे प्रांत में धूम मची हुई थी। जैसे सहालग के दिनों में ढोल और नगाड़ों का नाद गूंजने लगता है उसी भांति इस समय जिधर देखिए जाति-प्रेम की चर्चा सुनाई देती थी। डॉक्टर इर्फान अली बनारस महाविद्यालय की तरफ से खड़े हुए। बाबू प्रियनाथ ने बनारस म्युनिसपैल्टी का दामन पकड़ा। ज्वालासिंह इटावे के रईस थे, उन्होंने इटावे के कृषकों का आश्रय लिया। सैयद ईजाद हुसैन को भी जोश आया। वह मुसलिम स्वत्व की रक्षा के लिए उठ खड़े हुए। प्रेमशंकर इस क्षेत्र में न आना चाहते थे, पर भवानीसिंह, बलराज और कादिर खां ने बनारस के कृषकों पर उनका मंत्र चलाना शुरू किया। तीन-चार महीनों तक बाजार खूब गर्म रहा, छापेखाने को ट्रैक्टों के छापने से सिर उठाने का अवकाश न मिलता था। कहीं दावतें होती थीं, कहीं नाटक दिखाए जाते थे। प्रत्येक उम्मीदवार अपनी-अपनी ढोल पीट रहा था मानो संसार के कल्याण का उसी ने बीड़ा उठाया है।

अंत में चुनाव का दिन आ पहुंचा। उस दिन नेताओं का सदुत्साह, उनकी तत्परता, उनकी शीलता और विनय दर्शनीय थी और वोट देने वालों का तो मानो सौभाग्य-सूर्य उदय हो गया था। मोहनभोग तथा मेवे खाते थे और मोटरों पर सैर करते थे। सुबह से पहर रात तक रायों की चिट्ठियां पढ़ी जाती रहीं।

इसके बाद के सात दिन बड़ी बेचैनी के दिन थे। ज्यों-त्यों करके कटे। आठवें दिन राजपत्र में नतीजे निकल गए। आज कितने ही घरों में घी के चिराग जले, कितनों ने मातम मनाया। ज्ञानशंकर ने मैदान मार लिया, लेकिन प्रेमाश्रम निवासियों को जो सफलता प्राप्त हुई वह आश्चर्यजनक थी, इस अखाड़े के सभी योद्धा विजय-पताका फहराते हुए निकले! सबसे बड़ी फतह प्रेमशंकर की थी। वह बिना उद्योग और इच्छा के इस उच्चासन पर पहुंच गए थे। ज्ञानशंकर ने यह खबर सुनी तो उनका उत्साह भंग हो गया। राजसभा में बैठने का उतना शौक न रहा। बहुधा वृक्षपुंजों में संध्या के समय पक्षियों के कलरव से कान पड़ी आवाज नहीं सुनाई देती, लेकिन ज्योंही अंधेरा हो जाता है और चिड़ियां अपने-अपने घोंसलों में जा बैठती हैं वहां नीरवता छा जाती है, उसी भांति जाति के प्रतिनिधिगण राजसभा के सुसज्जित सुविशाल भवन में पहुंचकर शांति में मग्न हो गए थे। वे लंबे-चौड़े वादे, वे बड़ी-बड़ी बातें सब भूल गईं। कोई मुवक्किलों के सेवा-सत्कार में लिप्त हुआ, कोई अपने बही-खाते की देखभाल में, कोई अपने सैर और शिकार में। जाति-हित की वह उमंग शांत हो गई। लोग मनोविनोद की रीति से राजसभा में आते और कुछ निरर्थक प्रश्न पूछकर या अपने वाक्-नैपुण्य का परिचय देकर विदा हो जाते। वह कौन-सी प्रेरक शक्तियां थीं जिन्होंने लोगों को इस अधिकार पर आसक्त कर रखा था। इसका निर्णय करना कठिन है, पर उनमें सेवाभाव का जरा-सा भी लगाव न था-यह निर्भ्रान्त है। कारण और कार्य, साधन और फल दोनों उसी अधिकार में विलीन हो गए।

किंतु प्रेमाश्रम में वह शिथिलता न थी। यहां लोग पहले से ही सेवाधर्म के अनुगामी थे। अब उन्हें अपने कार्यक्षेत्र को और विस्तृत करने का सुअवसर मिला। ये लोग नए-नए सुधार के प्रस्ताव सोचते, राजकीय प्रस्तावों के गुण-दोष की मीमांसा करते, सरकारी रिपोर्टों का निरीक्षण करते। प्रश्नों द्वारा अधिकारियों के अत्याचारों का पता देते, जहां कहीं न्याय का खून

होते देखते, तुरंत सभा का ध्यान उसकी ओर आकर्षित करते और ये लोग केवल प्रश्नों से ही संतुष्ट न हो जाते थे, वरन् प्रस्तुत विषयों के मर्म तक पहुंचने की चेष्टा करते। विरोध के लिए विरोध न करते बल्कि शोध के लिए। इस सदुद्योग और कर्त्तव्यपरायणता ने शीघ्र ही राजसभा में इस मित्र-मंडल का सिक्का जमा दिया। उनकी शंकाएं, उनके प्रस्ताव, उनके प्रतिवाद आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। अधिकारी-वर्ग इनकी बातों को चुटकियों में न उड़ा सकते थे। यद्यपि डॉक्टर इर्फान अली इस मंडल के मुख पात्र थे, पर यह खुला हुआ भेद था कि प्रेमशंकर ही उसके कर्णधार हैं।

इस तरह दो साल बीत गए और यद्यपि मित्र-मंडल ने सभा को मुग्ध कर लिया था, पर अभी तक प्रेमशंकर को अपना वह प्रस्ताव सभा में पेश करने का साहस न हुआ जो बहुत दिनों से उनके मन में समाया हुआ था और जिसका उद्देश्य यह था कि जमींदारों से असामियों को बेदखल करने का अधिकार ले लिया जाय। वह स्वयं जमींदार घराने के थे, माया जिसे वह पुत्रवत् प्यार करते थे, एक बड़ा ताल्लुकेदार हो गया था। ज्वालासिंह भी जमींदार थे। लाला प्रभाशंकर, जिनको वह पितातुल्य समझते थे, अपने अधिकारों में जौ भर की कमी भी सह सकते थे, इन कारणों से वह प्रस्ताव को सभा के सम्मुख लाते हुए सकुचाते थे। यद्यपि सभा में भूपतियों की संख्या काफी थी और संख्या के देखते, दबाव और भी ज्यादा था, पर प्रेमशंकर को सभा का इतना भय न था जितना अपने संबंधियों का। इसके साथ ही अपने कर्त्तव्य-मार्ग से विचलित होते हुए उनकी आत्मा को दुःख होता था।

एक दिन वह इसी दुविधा में बैठे हुए थे कि मायाशंकर एक पत्र लिये हुए आया और बोला—देखिए, बाबू दीपकसिंह सभा में कितना घोर अनर्थ करने का प्रयत्न कर रहे हैं ! वह सभा में इस आशय का प्रस्ताव लाने वाले हैं कि जमींदारों को असामियों से लगान वसूल करने के लिए ऐसे अधिकार मिलने चाहिए कि वे अपनी इच्छा से जिस असामी को चाहें बेदखल कर दें। उनके विचार में जमींदारों को यह अधिकार मिलने से रुपये वसूल करने में बड़ी सुविधा हो जायगी। प्रेमशंकर मे उदासीन भाव से कहा—मैं यह पत्र देख चुका हूं।

माया—पर आपने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया?

प्रेमशंकर ने आकाश की ओर ताकते हुए कहा—अभी तो नहीं दिया।

माया—आप समझते हैं कि सभा में प्रस्ताव स्वीकृत हो जाएगा?

प्रेम—हां, संभव है।

माया—तब तो जमींदार लोग असामियों को कुचल ही डालेंगे।

प्रेम—हां, और क्या?

माया—अभी से इस आंदोलन की जड़ काट देनी चाहिए। आप इस पत्र का जवाब दे दें तो बाबू दीपकसिंह को अपना प्रस्ताव सभा में पेश करने का साहस न हो।

प्रेम—ज्ञानशंकर क्या कहेंगे?

माया—मैं जहां तक समझता हूं, वह इस प्रस्ताव का समर्थन न करेंगे।

प्रेम—हां, मुझे भी ऐसी ही आशा है।

मायाशंकर चाचा की बातों से उनकी चित्त-वृत्ति को ताड़ गया।

वह जबसे अपने इलाके का दौरा करके लौटा था, अक्सर कृषकों की सुदशा के उपाय सोचा करता। इस विषय में कई किताबें पढ़ी थीं और डॉक्टर इर्फान अली से भी जिज्ञासा करता रहता था। प्रेमशंकर को असमंजस में देखकर उसे बहुत खेद हुआ। वह उनसे तो और कुछ न

कह सका, पर उस पत्र का प्रतिवाद करने के लिए उसका मन अधीर हो गया। आज तक उसने कभी समाचार-पत्रों के लिए कोई लेख न लिखा था। डरता था, लिखते बने या न बने, संपादक छापें या न छापें। दो-तीन दिन वह इसी आगा-पीछा में पड़ा रहा। अंत में उसने उत्तर लिखा और कुछ सकुचाते, कुछ डरते डॉक्टर इर्फान अली को दिखाने ले गया। डॉक्टर महोदय ने लेख पढ़ा तो, चकित होकर पूछा—यह सब तुम्हीं ने लिखा है?

माया—जी हां, लिखा तो है, पर बना नहीं।

इर्फान—वाह ! इससे अच्छा तो मैं भी नहीं लिख सकता। यह सिफत तुम्हें बाबू ज्ञानशंकर से विरासत में मिली है।

माया—तो भेज दूं, छप जाएगा?

इर्फान—छपेगा क्यों नहीं? मैं खुद भेज देता हूं।

प्रेमशंकर रोज पत्रों को ध्यान से देखते कि दीपकसिंह के पत्र का किसी ने उत्तर दिया या नहीं, पर आठ-दस दिन बीत गए और आशा न पूरी हुई। कई बार उनकी इच्छा हुई कि कल्पित नाम से इस लेख का उत्तर दूं, लेकिन कुछ तो अवकाश न मिला, कुछ चित्त की दशा अनिश्चित रही, न लिख सके। बारहवें दिन उन्होंने पत्र खोला तो मायाशंकर का लेख नजर आया। आद्योपांत पढ़ गए। हृदय में एक गौरवपूर्ण उल्लास का आवेग हुआ। तुरंत श्रद्धा के पास गए और लेख पढ़ सुनाया। फिर इर्फान अली के पास गए। उन्होंने पूछा—कोई नई खबर है क्या?

प्रेम—आपने देखा नहीं, माया ने दीपकसिंह के पत्र का कैसा युक्तिपूर्ण उत्तर दिया है?

इर्फान—जी हां, देखा। मैं तो आपसे पूछने आ रहा था कि यह माया ने ही लिखा है या आपने कुछ मदद की है?

प्रेम—मुझे तो खबर भी नहीं, उसी ने लिखा होगा !

इर्फान—तो उसको मुबारकबाद देनी चाहिए, बुलाऊं?

प्रेम—जी नहीं ! उसके इस जोश को दबाने की जरूरत है। ज्ञानशंकर यह लेख देखकर रोएंगे। सारा इल्जाम मेरे ऊपर आएगा। कहेंगे कि आपने लड़के को बहका दिया। पर यकीन दिलाता हूं कि मैंने उसे यह पत्र लिखने के लिए इशारा तक नहीं किया। इसी बदनामी के डर से मैंने खुद नहीं लिखा।

इर्फान—आप यह इल्जाम मेरे सिर रख दीजिएगा। मैं बड़ी खुशी से इसे ले लूंगा।

प्रेम—कल उनका कोप-पत्र आ जायगा। माया ने मेरे साथ अच्छा सलूक नहीं किया !

इर्फान—भाभी साहिबा का क्या ख्याल है?

प्रेम—उनकी कुछ न पूछिए। वह तो इस खुशी में दावत करना चाहती हैं।

प्रेमशंकर का अनुमान अक्षरश: सत्य निकला। तीसरे दिन ज्ञानशंकर का कोप-पत्र आ पहुंचा। आशय भी यही था—मुझे आपसे ऐसी आशा न थी। साम्यवाद के पाठ को पढ़ाकर आपने सरल बालक पर घोर अत्याचार किया है। उसका अठारहवां वर्ष पूरा हो रहा है। उसे शीघ्र ही अपने इलाके का शासनाधिकार मिलने वाला है। मैं इस महीने के अंत तक इन्हीं तैयारियों के लिए आने वाला हूं। हिज एक्सलेंसी गवर्नर महोदय स्वयं राज्य-तिलक देने के लिए पधारने वाले हैं। उस मृदु संगीत को इस बेसुरे राग ने चौपट कर दिया। आपको अपने प्रजावाद का बीज किसी और खेत में बोना चाहिए था। आपने अपने शिक्षाधिकार का खेदजनक दुरुपयोग किया है। अब मुझ पर दया कर माया को मेरे पास भेज दीजिए। मैं नहीं चाहता कि अब वह एक क्षण

भी वहां और रहे। अभिषेक तक मैं उसे अपने साथ रखूंगा। मुझे भय है कि वहां रहकर वह कोई और उपद्रव न कर बैठे....अस्तु।

संध्या की गाड़ी से मायाशंकर ने लखनऊ को प्रस्थान किया।

पैंसठ

महाशय ज्ञानशंकर का भवन आज किसी कवि कल्पना की भांति अलंकृत हो रहा है। आज वह दिन आ गया है जिसके इंतजार में एक युग बीत गया। प्रभुत्व और ऐश्वर्य का मनोहर स्वप्न पूरा हो गया है। मायाशंकर के तिलकोत्सव का शुभ-मुहूर्त आ पहुंचा है। बंगले के सामने एक विशाल, प्रशस्त मंडप तना हुआ है। उसकी सजावट के लिए लखनऊ के चतुर फर्राश बुलाए गए हैं। मंच गंगा-जमुनी कुर्सियों से जगमगा रहा है। चारों तरफ अनुपम शोभा है। गोरखपुर, लखनऊ और बनारस के मान्य पुरुष उपस्थित हैं। दीवानखाना, मकान, बंगला सब मेहमानों से भरा हुआ है। एक ओर फौजी बाजा है, दूसरी ओर बनारस के कुशल शहनाई वाले बैठे हैं। एक दूसरे शामियाने में नाटक खेलने की तैयारियां हो रही हैं। मित्र-भवन के छात्र अपना अभिनय-कौशल दिखाएंगे। डॉक्टर प्रियनाथ का संगीत-समाज अपने जौहर दिखाएगा। लाला प्रभाशंकर मेहमानों के आदर-सत्कार में प्रवृत्त हैं। दोनों रियासतों के देहातों से सैकड़ों नंबरदार और मुखिया आए हुए हैं। लखनपुर ने भी अपने प्रतिनिधि भेजे हैं। ये सब ग्रामीण सज्जन प्रेमशंकर के मेहमान हैं। कादिर खां, दुखरन भगत, डपटसिंह सब आज केशरिया बाना धारण किए हुए हैं। वे आज अपने कारावास जीवन पर नकल करेंगे। सैयद ईजाद हुसेन ने एक जोरदार कसीदा लिखा है। इत्तहादी यतीमखाने के लड़के हरी-हरी झंडियां लिए मायाशंकर का स्वागत करने के लिए खड़े हैं। अंग्रेज मेहमानों का स्थान अलग है। वे भी एक-एक करके आते-जाते हैं। उनके सेवा-सत्कार का भार डॉक्टर इर्फान अली ने लिया है। उन लोगों के मनोरंजन के लिए प्रोफेसर रिचर्डसन कलकत्ते से बुलाए गए हैं, जिनका गान-विद्या में कोई सानी नहीं है। बाबू ज्ञानशंकर गवर्नर महोदय के स्वागत की तैयारियों में मग्न हैं।

संध्या का समय था। वसंत की शुभ्र, सुखदायी समीर चल रही थी। लोग गवर्नर का स्वागत करने के लिए स्टेशन की तरफ चले। ज्ञानशंकर का हाथी सबसे आगे था। पीछे-पीछे बैंड बजता जा रहा था। स्टेशन पर पहले से ही फूलों का ढेर लगा दिया गया था। ज्योंही गवर्नर की स्पेशल आई और वह गाड़ी से उतरे, उन पर फूलों की वर्षा हुई। उन्हें एक सुसज्जित फिटन पर बैठाया गया। जलूस चला। आगे-आगे हाथियों की माला थी। उसके पीछे राजपूतों की एक रेजीमेंट थी। फौज के बाद गवर्नर महोदय की फिटन थी, जिस पर कारचोबी का छत्र लगा हुआ था। फिटन के पीछे शहर के रईसों की सवारियां थीं। उनके बाद पुलिस के सवारों की एक टोली थी। सबके पीछे बाजे थे। यह जलूस नगर की मुख्य सड़कों पर होता हुआ, चिराग जलते-जलते ज्ञानशंकर के मकान पर आ पहुंचा। हिज एक्सेलेन्सी महाराज गुरुदत्तराय चौधरी फिटन से उतरे और मंच पर आकर अपनी निर्दिष्ट कुर्सी पर विराजमान हो गए। विद्युत के उज्ज्वल प्रकाश में उनकी विशाल प्रतिभासंपन्न मूर्ति, गंभीर, तेजमय ऐसी मालूम होती थी मानो स्वर्ग से कोई

दिव्य आत्मा उतर आई हो। केसरिया साफा और सादे श्वेतवस्त्र उनकी प्रतिभा को और भी चमकाते थे। रईस लोग कुर्सियों पर बैठे थे। देहाती मेहमानों के लिए एक तरफ उज्ज्वल फर्श बिछा हुआ था। प्रेमशंकर ने उन्हें वहां पहले से ही बिठा रखा था। सब लोगों के यथास्थान बैठ जाने के बाद मायाशंकर, रेशम और रत्नों से चमकता हुआ दीवानखाने से निकला और मित्र-भवन के छात्रों के साथ पंडाल में आया। बंदूकों की सलामी हुई, ब्राह्मण-समाज ने मंगलाचरण गान शुरू किया। सब लोगों ने खड़े होकर उसका अभिवादन किया। महाराज गुरुदत्तराय ने नीचे उतरकर उसे आलिंगन किया और उसे लाकर उसके सिंहासन पर बैठा दिया। मायाशंकर के मुख-मंडल पर इस समय हर्ष या उल्लास का कोई चिह्न न था। वह चिंता और विचार में डूबा हुआ नजर आता था। विवाह के समय मंडप के नीचे वर की जो दशा होती है वही दशा इस समय उसकी थी। उसके ऊपर कितना उत्तरदायित्व का भार रखा जाता था! आज से उसे कितने प्राणियों के पालन का, कल्याण का, रक्षा का कर्त्तव्य-पालन करना पड़ेगा, सोते-जागते, उठते-बैठते न्याय और धर्म पर निगाह रखनी पड़ेगी! उसके कर्मचारी प्रजा पर जो-जो अत्याचार करेंगे, उन सबका दोष उसके सिर पर होगा! दीन की हाय और दुर्बलों के आंसुओं से उसे कितना सशंक रहना पड़ेगा! इन आंतरिक भावों के अतिरिक्त ऐसी भद्र-मंडली के सामने खड़े होने और हजारों नेत्रों के केंद्र बनने का संकोच कुछ कम अशांतिकारक न था।

कार्यवाही आरंभ हुई। मंगलगान के बाद पंडित श्रीनिवास वेदाचार्य ने ईश्वर प्रार्थना की। तब सैयद ईजाद हुसेन ने अपना जोरदार कसीदा पढ़ा जिसकी श्रोताओं ने खूब प्रशंसा की। उनके बैठते ही यतीमखाने के बालकों ने गवर्नर महोदय का गुणानुवाद गाया। उनके स्वर-लालित्य पर लोग मुग्ध हो गए। तब बाबू ज्ञानशंकर उठे और अपना प्रभावशाली अभिनंदन-पत्र पढ़ सुनाया। उसकी भाषा और भाव दोनों ही निर्दोष थे। डॉक्टर इर्फान अली ने हिन्दुस्तानी भाषा में उसका अनुवाद किया। तब महाराज साहब उसका उत्तर देने के लिए खड़े हुए। उन्होंने पहले ज्ञानशंकर और अन्य रईसों को धन्यवाद दिया, दो-चार मार्मिक वाक्यों में ज्ञानशंकर की कार्यपटुता और योग्यता की प्रशंसा की, राय कमलानंद और रानी गायत्री के सुयश और सुकीर्ति, प्रजारंजन और आत्मोत्सर्ग का उल्लेख किया। तब मायाशंकर को संबोधित करके उसके सौभाग्य पर हर्ष प्रकट किया। वक्तृता के शेष भाग में मायाशंकर को कर्त्तव्य और सुनीति का उपदेश दिया, अंत में आशा प्रकट की कि वह अपने देश, जाति और राज्य का भक्त और समाज का भूषण बनेगा।

तब मायाशंकर उत्तर देने के लिए उठा। उसके पैर कांप रहे थे और छाती में जोर की धड़कन हो रही थी। उसे भय होता था कि कहीं मैं घबराकर बैठ न जाऊं। उसका दिल बैठा जाता था। ज्ञानशंकर ने पहले से ही उसे तैयार कर रखा था। उत्तर लिखकर याद करा दिया था, पर मायाशंकर के मन में कुछ और ही भाव थे। उसने अपने विचारों का जो क्रम स्थिर कर रखा था वह छिन्न-भिन्न हो गया था। एक क्षण तक वह हतबुद्धि बना अपने विचारों को संभालता रहा, कैसे शुरू करूं, क्या कहूं? प्रेमशंकर सामने बैठे हुए उसके संकट पर अधीर हो रहे थे। सहसा मायाशंकर की निगाह उन पर पड़ गई। इस निगाह ने उस पर वही काम किया जो रुकी हुई गाड़ी पर ललकार करती है। उसकी वाणी जाग्रत हो गई। ईश्वर-प्रार्थना और उपस्थित महानुभावों को धन्यवाद देने के बाद बोला—

महाराज साहब, मैं उन अमूल्य उपदेशों के लिए अंतःकरण से आपका अनुगृहीत हूं। जो आपने मेरे आने वाले कर्त्तव्यों के विषय में प्रदान किए हैं। और आपको विश्वास दिलाता

हूं कि मैं यथासाध्य उन्हें कार्य में परिणत करूंगा। महोदय ने कहा है कि ताल्लुकेदार अपनी प्रजा का मित्र, गुरु और सहायक है। मैं बड़ी विनय के साथ निवेदन करूंगा कि वह इतना ही नहीं, कुछ और भी है। वह अपनी प्रजा का सेवक भी है। यही उसके अस्तित्व का उद्देश्य और हेतु है अन्यथा संसार में उसकी कोई जरूरत न थी, उसके बिना समाज के संगठन में कोई बाधा न पड़ती। वह इसलिए नहीं है कि प्रजा के पसीने की कमाई को विलास और विषय-भोग में उड़ाए, उनके टूटे-फूटे झोंपड़ों के सामने अपना ऊंचा महल खड़ा करे, उनकी नग्नता को अपने रत्नजटित वस्त्रों से अपमानित करे, उनकी संतोषमय सरलता को अपने पार्थिव वैभव से लज्जित करे, अपनी स्वाद-लिप्सा से उनकी क्षुधा-पीड़ा का उपहास करे। अपने स्वत्वों पर जान देता हो, पर अपने कर्त्तव्य से अनभिज्ञ हो। ऐसे निरंकुश प्राणियों से प्रजा की जितनी जल्द मुक्ति हो, उनका भार प्रजा के सिर से जितनी ही जल्द दूर हो, उतना ही अच्छा हो।

विज्ञ सज्जनो, मुझे यह मिथ्याभिमान नहीं है कि मैं इन इलाकों का मालिक हूं। पूर्व संस्कार और सौभाग्य ने मुझे ऐसी पवित्र, उन्नत, दिव्य आत्माओं की सत्संगति से उपकृत होने का अवसर दिया है कि अगर यह भ्रम, यह महत्त्व एक क्षण के लिए मेरे मन में आता तो मैं अपने को अधम और अक्षम्य समझता। भूमि या तो ईश्वर की है जिसने इसकी सृष्टि की या किसान की जो ईश्वरीय इच्छा के अनुसार इसका उपयोग करता है। राजा देश की रक्षा करता है इसलिए उसे किसानों से कर लेने का अधिकार है, चाहे प्रत्यक्ष रूप में ले या कोई इससे कम आपत्तिजनक व्यवस्था करे। अगर किसी अन्य वर्ग या श्रेणी को मीरास, मिल्कियत, जायदाद, अधिकार के नाम पर किसानों को अपना भोग्य- पदार्थ बनाने की स्वच्छंदता दी जाती है, तो इस प्रथा को वर्तमान समाज-व्यवस्था का कलंक-चिह्न समझना चाहिए।

ज्ञानशंकर के मुंह पर हवाइयां उड़ने लगीं। गवर्नर साहब ने भी अनिच्छा-भाव से पहलू बदला। रईसों में इशारे होने लगे। लोग चकित थे कि इन बातों का अभिप्राय क्या है? प्रेमशंकर तो मारे शर्म के गड़े जाते थे। हां, डॉक्टर इर्फान अली और ज्वालासिंह के चेहरे खिले पड़ते थे।

मायाशंकर ने जरा दम लेकर फिर कहा–

मुझे भय है कि मेरी बातें कहीं तो अनुपयुक्त और समय-विरुद्ध और कहीं क्रान्तिकारी और विद्रोहमय समझी जाएंगी लेकिन यह भय मुझे उन विचारों के प्रकट करने से रोक नहीं सकता जो मेरे अनुभव के फल हैं और जिन्हें कार्यरूप में लाने का मुझे अवसर मिला है। मेरी धारणा है कि मुझे किसानों की गर्दन पर अपना जुआ रखने का कोई अधिकार नहीं है। यह मेरी नैतिक दुर्बलता और भीरुता होगी, अगर मैं अपने सिद्धांत को भोग-लिप्सा पर बलिदान कर दूं। अपनी ही दृष्टि में पतित होकर कौन जीना पसंद करेगा? मैं आप सब सज्जनों के सम्मुख उन अधिकारों और स्वत्वों का त्याग करता हूं जो प्रथा, नियम और समाज-व्यवस्था ने मुझे दिए हैं। मैं अपनी प्रजा को अपने अधिकारों के बंधन से मुक्त करता हूं। वह न मेरे असामी हैं, न मैं उनका ताल्लुकेदार हूं। वह सब सज्जन मेरे मित्र हैं, मेरे भाई हैं, आज से वह अपनी जोत के स्वयं जमींदार हैं। अब उन्हें मेरे कारिंदों के अन्याय और मेरी स्वार्थ-भक्ति की यंत्रणाएं न सहनी पड़ेंगी। इस दलाली की बदौलत मुझे अपनी आत्मा पर कितने अन्याय करने पड़ते, इसका मुझे कुछ थोड़ा-सा अनुभव हो चुका है। मैं ईश्वर को धन्यवाद देता हूं कि उसने मुझे इस आत्म-पतन से बचा लिया। मेरा अपने समस्त भाइयों से निवेदन है कि वह एक महीने के अंदर मेरे मुख्तार के पास जाकर अपने-अपने हिस्से का सरकारी लगान पूछ लें और वह रकम खजाने

में जमा कर दें। मैं श्रद्धेय डॉक्टर इर्फान अली से प्रार्थना करता हूं कि वह इस विषय में मेरी सहायता करें और जाब्ते और कानून की जटिल समस्याओं को तै करने की व्यवस्था करें। मुझे आशा है कि मेरे समस्त भ्रातृ-वर्ग आपस में प्रेम से रहेंगे और जरा-जरा-सी बातों के लिए अदालत की शरण न लेंगे। परमात्मा आपके हृदय में सहिष्णुता, सद्भाव और सुविचार उत्पन्न करे और आपको अपने नए कर्त्तव्यों का पालन करने की क्षमता प्रदान करे। हां, यह जता देना चाहता हूं कि आप अपनी जमीन असामियों को नफे पर न उठा सकेंगे। यदि आप ऐसा करेंगे तो मेरे साथ घोर अन्याय होगा, क्योंकि जिन बुराइयों को मिटाना चाहता हूं, आप उन्हीं का प्रचार करेंगे। आपको प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी कि आप किसी दशा में भी इस व्यवहार से लाभ न उठाएंगे, असामियों से नफा लेना हराम समझेंगे।

मायाशंकर ज्योंही अपना कथन समाप्त करके अपनी जगह बैठा कि हजारों आदमी चारों तरफ से आ-आकर उसके इर्द-गिर्द जमा हो गए। कोई उसके पैरों पर गिर पड़ता था, कोई रोता था, कोई दुआएं देता था, कोई आनंद से विह्वल होकर उछल रहा था। आज उन्हें वह अमूल्य वस्तु मिल गई थी जिसकी वह स्वप्न में भी कल्पना न कर सकते थे। दीन किसान को जमीदार बनने का हौसला कहां? सैकड़ों आदमी गर्वनर महोदय के पैरों पर गिर पड़े, कितने ही लोग बाबू ज्ञानशंकर के पैरों से लिपट गए ! शामियाने में हलचल मच गई। लोग आपस में एक-दूसरे से गले मिलते थे और अपने भाग्य को सराहते थे। प्रेमशंकर सिर झुकाए चुपचाप खड़े थे, मानो किसी गहरे विचार में डूबे हुए हों, लेकिन उनके अन्य मित्र खुशी से फूले न समाते थे। उनकी सगर्व आंखें कह रही थीं कि यह हमारी संगति और शिक्षा का फल है, हमको भी इसका कुछ श्रेय मिलना चाहिए। रईसों के प्राण संकट में पड़े हुए थे। आश्चर्य से एक-दूसरे का मुंह ताकते थे, मानो अपने कानों और आंखों पर विश्वास न आता हो। कई विद्वान् इस प्रश्न पर अपने विचार प्रकट करने के लिए आतुर हो रहे थे, पर यहां उसका अवसर न था।

गर्वनर महोदय बड़े असमंजस में पड़े हुए थे कि इस कथन का किन शब्दों में उत्तर दूं? वह दिल में मायाशंकर के महान त्याग की प्रशंसा कर रहे थे, पर उसे प्रकट करते हुए उन्हें भय होता था कि अन्य ताल्लुकेदारों और रईसों को बुरा न लगे। इसके साथ ही चुप रहना मायाशंकर के इस महान यज्ञ का अपमान करना था। उन्हें मायाशंकर से वह प्रेममय श्रद्धा हो गई थी, जो पुनीत आत्माओं का भाग है। खड़े होकर मृदु स्वर में बोले–

बाबू मायाशंकर ! यद्यपि हममें से अधिकांश सज्जन उन सिद्धांतों के कायल न होंगे जिनसे प्रेरित होकर आपने यह अलौकिक संतोष-व्रत धारण किया है, पर जो पुरुष सर्वथा हृदय-शून्य नहीं है, वह अवश्य आपको देवतुल्य समझेगा। संभव है कि जीवनपर्यन्त सुख भोगने के बाद किसी को वैराग्य हो जाए, किंतु जिस युवक ने अभी प्रभुत्व और वैभव के मनोहर, सुखद उपवन में प्रवेश किया उसका यह त्याग आश्चर्यजनक है। पर यदि बाबू साहब को बुरा न लगे तो मैं कहूंगा कि समाज की कोई व्यवस्था केवल सिद्धांतों के आधार पर निर्दोष नहीं हो सकती, चाहे वे सिद्धांत कितने ही उच्च और पवित्र हों। उनकी उन्नति मानव-चरित्र के अधीन है। एकाधिपतियों में देवता हो गए हैं। और प्रजावादियों में भयंकर राक्षस। आप जैसे उदार, विवेकशील, दयालु स्वामी की जात से प्रजा का कितना उपकार हो सकता था, आप उनके पथप्रदर्शक बन सकते थे। अब वह प्रजा आपके प्रजा-हित-साधनों से वंचित हो जायगी, लेकिन मैं इन कुत्सित विचारों से आपको भ्रम में नहीं डालना चाहता। शुभ कार्य सदैव ईश्वर की ओर से होते हैं। यह भी ईश्वरीय इच्छा है और हमें आशा करनी चाहिए

कि इसका फल अनुकूल होगा। मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि वह इन नए जमींदारों का कल्याण करे और आपकी कीर्ति अमर हो।

इधर तो मित्र-भवन की मंडली नाटक खेल रही थी, मस्तानों की तानें और प्रियनाथ की सरोद-ध्वनि रंग-भवन में गूंज रही थी। उधर बाबू ज्ञानशंकर नैराश्य के उन्मत्त आवेश में गंगातट की ओर लपके चले जाते थे जैसे कोई टूटी हुई नौका जल-तरंगों में बहती चली जाती हो। आज प्रारब्ध ने उन्हें परास्त कर दिया। अब तक उन्होंने सदैव प्रारब्ध पर विजय पाई थी। आज पासा पलट गया और ऐसा पलटा कि संभलने की कोई आशा न थी। अभी एक क्षण पहले उनका भाग्य-भवन जगमगाते हुए दीपकों से प्रदीप्त हो रहा था, पर वायु के एक प्रचंड झोंके ने उन दीपकों को बुझा दिया। अब उनके चारों तरफ गहरा, घना, भयावह अंधेरा था जहां कुछ न सूझता था।

वह सोचते चले जाते थे, क्या इसी उद्देश्य के लिए मैंने अपना जीवन समर्पण किया? क्या अपनी नाव इसीलिए बोझी थी कि वह जलमग्न हो जाय?

हा वैभव-लालसा ! तेरी बलि-वेदी पर मैंने क्या नहीं चढ़ाया? अपना धर्म, अपनी आत्मा तक भेंट कर दी। हा ! तेरे भाड़ में मैंने क्या नहीं झोंका? अपना मन, वचन, कर्म सब कुछ आहुति कर दी। क्या इसीलिए कि कालिमा के सिवा और कुछ हाथ न लगे?

मायाशंकर का कसूर नहीं, प्रेमशंकर का दोष नहीं, यह सब मेरे प्रारब्ध की कूटलीला है। मैं समझता था, मैं स्वयं अपना विधाता हूं। विद्वानों ने भी ऐसा ही कहा है, पर आज मालूम हुआ कि मैं उसके हाथों का खिलौना था। उसके इशारों पर नाचने वाली कठपुतली था। जैसे बिल्ली चूहे को खेलाती है, जैसे मछुआ मछली को खेलाता है उसी भांति इसने मुझे अभी तक खेलाया। कभी पंजे में धीरे से पकड़ लेता था, कभी छोड़ देता था। जरा देर के लिए उसके पंजे से छूटकर मैं सोचता था, उस पर विजय पाई, पर आज उस खेल का अंत हो गया, बिल्ली ने गर्दन दबा दी, मछुए ने बंसी खींच ली। मनुष्य कितना दीन, कितना परवश है ! भावी कितनी प्रबल, कितनी कठोर !

जो तिमंजिला भवन मैंने एक युग में अविश्रांत उद्योग से खड़ा किया, वह क्षण-मात्र में इस भांति भूमिस्थ हो गया मानो उसका अस्तित्व न था, उसका चिह्न तक नहीं दिखाई देता। क्या वह विशाल अट्टालिका भावी की केवल माया रचना थी?

हा ! जीवन कितना निरर्थक सिद्ध हुआ। विषय-लिप्सा, तूने मुझे कहीं का न रखा। मैं आंख तेज करके तेरे पीछे-पीछे चला और तूने मुझे इस घातक भंवर में डाल दिया।

मैं अब किसी को मुंह दिखाने योग्य नहीं रहा। संपत्ति, मान, अधिकार किसी का शौक नहीं। इसके बिना भी आदमी सुखी रह सकता है, बल्कि सच पूछो तो सुख इनसे मुक्त रहने में ही है। शोक यह है कि मैं अल्पांश में भी इस यश का भागी नहीं बन सकता। लोग इसे मेरे विषय-प्रेम की यंत्रणा समझेंगे। कहेंगे कि बेटे ने बाप का कैसा मान-मर्दन किया, कैसी फटकार बताई। यह व्यंग्य, यह अपमान कौन सहेगा? हा ! मुझे पहले से इस अंत का ज्ञान हो जाता तो आज मैं पूज्य समझा जाता, त्यागी पुत्र का धर्मज्ञ पिता कहलाने का गौरव प्राप्त करता। प्रारब्ध ने कैसा गुप्ताघात किया। !अब क्यों जिंदा रहूं? इसीलिए कि तू मेरी दुर्गति और उपहास पर खुश हो, मेरे प्राण-पीड़ा पर तालियां बजाए। नहीं, अभी इतना लज्जाहीन, इतना बेहया नहीं हूं।

हा ! विद्या ! मैंने तेरे साथ कितना अत्याचार किया? तू सती थी, मैंने तुझे पैरों तले रौंदा।

मेरी बुद्धि कितनी भ्रष्ट हो गई थी। देवी, इस पतित आत्मा पर दया कर !

इन्हीं दु:खमय भावों में डूबे हुए ज्ञानशंकर नदी के किनारे आ पहुंचे। घाटों पर इधर-उधर सांड़ बैठे हुए थे। नदी का मलिन, मध्यम स्वर नीरवता को और भी नीरव बना रहा था।

ज्ञानशंकर ने नदी को कातर नेत्रों से देखा। उनका शरीर कांप उठा, वह रोने लगे। उनका दु:ख नदी से कहीं अपार था।

जीवन की घटनाएं सिनेमा चित्रों के सदृश्य उनके सामने मूर्तिमान हो गईं। उनकी कुटिलताएं आकाश के तारागण से भी उज्ज्वल थीं। उनके मन ने प्रश्न किया, क्या मरने के सिवा और कोई उपाय नहीं है?

नैराश्य ने कहा, नहीं, कोई उपाय नहीं ! वह घाट के एक पील पाए पर जाकर खड़े हो गए। दोनों हाथ तौले, जैसे चिड़िया पर तौलती है, पर पैर न उठे !

मन ने कहा, तुम भी प्रेमाश्रम में क्यों नहीं चले जाते? ग्लानि ने जवाब दिया, कौन मुंह लेकर जाऊं? मरना तो नहीं चाहता, पर जीऊं कैसे? हाय ! मैं जबरन मारा जा रहा हूं। यह सोचकर ज्ञानशंकर जोर से रो उठे। आंसू की झड़ी लग गई। शोक और भी अथाह हो गया। चित्त की समस्त वृत्तियां इस अथाह शोक में निमग्न हो गईं। धरती और आकाश, जल और थल सब इसी शोक-सागर में समा गए।

वह एक अचेत, शून्य दशा में उठे और गंगा में कूद पड़े। शीतल जल ने हृदय को शांत कर दिया।

उपसंहार

दो साल हो गए हैं ! संध्या का समय है। बाबू मायाशंकर घोड़े पर सवार लखनपुर में दाखिल हुए। उन्हें वहां बड़ी रौनक और सफाई दिखाई दी। प्राय: सभी द्वारों पर सायबान थे। उनमें बड़े-बड़े तख्ते बिछे हुए थे। अधिकांश घरों पर सफेदी हो गई थी। फूस के झोंपड़े गायब हो गए थे। अब सब घरों पर खपरैल थे। द्वारों पर बैलों के लिए पक्की चरनियां बनी हुई थीं और कई द्वारों पर घोड़े बंधे हुए नजर आते थे। पुराने चौपाल में पाठशाला थी और उसके सामने एक पक्का कुआं और धर्मशाला थी। मायाशंकर को देखते ही लोग अपने-अपने काम छोड़कर दौड़े और एक क्षण में सैकड़ों आदमी जमा हो गए। मायाशंकर सुक्खू चौधरी के मंदिर पर रुके। वहां इस वक्त बड़ी बहार थी। मंदिर के सामने सहन में भांति-भांति के फूल खिले हुए थे। चबूतरे पर चौधरी बैठे हुए रामायण पढ़ रहे थे और कई स्त्रियां बैठी हुई सुन रही थीं। मायाशंकर घोड़े से उतरकर चबूतरे पर जा बैठे।

सुखदास हकबकाकर खड़े हो गए और पूछा—सब कुशल है न? क्या अभी चले आ रहे हैं?

माया—हां, मैंने कहा चलूं, तुम लोगों से भेंट-भांट करता आऊं।

सुख—बड़ी कृपा की ! हमारे धन्य भाग कि घर बैठे स्वामी के दर्शन होते हैं। यह कहकर वह लपके हुए घर गए, एक ऊनी कालीन लाकर बिछा दी, कल्से में पानी खींचा और शरबत घोलने लगे। मायाशंकर ने हाथ-मुंह धोया, शरबत पीया, घोड़े की लगाम उतार रहे थे कि कादिर

खां ने आकर सलाम किया। माया ने कहा—कहिए खां साहब, मिजाज तो अच्छा है?

कादिर—सब अल्लाताला का फजल है। तुम्हारे जान-माल की खैर मनाया करते हैं। आज तो रहना होगा न?

माया—यही इरादा करके चला हूं।

थोड़ी देर में वहां गांव के सब छोटे-बड़े आ पहुंचे। इधर-उधर की बातें होने लगीं। कादिर ने पूछा—बेटा, आजकल कौंसिल में क्या हो रहा है? असामियों पर कुछ निगाह होने की आशा है या नहीं?

माया—हां, है ! चचा साहब और उनके मित्र लोग बड़ा जोर लगा रहे हैं। आशा है कि जल्दी ही कुछ-न-कुछ नतीजा निकलेगा।

कादिर—अल्लाह उनकी मेहनत सुफल करे। और क्या दुआ दें? रोएं-रोएं से तो दुआ निकल रही है। काश्तकारों की दशा बहुत कुछ सुधरी है। बेटा, मुझी को देखो। पहले बीस बीघे का काश्तकार था, सौ रुपया लगान देना पड़ता था। दस-बीस रुपये साल नजराने में निकल जाते थे। अब जुमला बीस रुपये लगान है और नजराना नहीं लगता। पहले अनाज खलिहान से घर तक न आता था। आपके चपरासी-कारिंदे वहीं गला दबाकर तुलवा लेते थे। अब अनाज घर में भरते हैं और सुभीते से बेचते हैं। दो साल में कुछ नहीं तो तीन-चार सौ बचे होंगे। डेढ़ सौ का एक जोड़ा बैल लाए, घर की मरम्मत कराई, सायबान डाला, हांड़ियों की जगह तांबे और पीतल के बर्तन लिए और सबसे बड़ी बात यह है कि अब किसी की धौंस नहीं। मालगुजारी दाखिल करके चुपके घर चले आते हैं। नहीं तो हर दम जान सूली पर चढ़ी रहती थी। अब अल्लाह की इबादत में भी जी लगता है, नहीं तो नमाज भी बोझ मालूम होती थी।

माया—तुम्हारा क्या हाल है दुखरन भगत?

दुखरन—भैया, अब तुम्हारे अकबाल से सब कुशल है। अब जान पड़ता है कि हम भी आदमी हैं, नहीं तो पहले बैलों से भी गए बीते थे। बैल तो हर से आता है, तो आराम से भोजन करके सो जाता है। यहां हर से आकर बैल की फिकिर करनी पड़ती थी। उससे छुट्टी मिली, तो कारिंदे साहब की खुशामद करने जाते। वहां से दस-ग्यारह बजे लौटते, तो भोजन मिलता। पंद्रह बीघे का काश्तकार था। दस बीघे मौरूसी थे। उनके पचास रुपये लगान देता था। पांच बीघे सिकमी जोतते थे। उनके साठ रुपये देने पड़ते थे। अब पन्द्रह बीघे के कुल तीस रुपये देने पड़ते हैं। हारी-बेगारी, नजर-नियाज सबसे गला छूटा। दो साल में तीर-चार सौ रुपये हाथ में हो गए। सौ रुपये की पछाही भैंस लाया हूं। कुछ करजा था, वह चुका दिया।

सुखदास—और तबला व हारमोनियम लिया है, वह क्यों नहीं कहते? एक पक्का कुआं बनवाया है, उसे क्यों छिपाते हो? भैया, यह पहले ठाकुरजी के बड़े भगत थे। एक बार बेगार में पकड़े गए तो आकर ठाकुरजी पर क्रोध उतारा। उनकी प्रतिमा को तोड़-ताड़कर फेंक दिया। अब फिर ठाकुरजी के चरणों में इनकी श्रद्धा हुई है। भजन-कीर्तन का सब सामान इन्होंने मंगाया है।

दुखरन—छिपाऊं क्यों? मालिक से कौन परदा? यह सब उन्हीं का अकबाल तो है।

माया—यह बातें चचाजी सुनते, तो फूले न समाते।

कुल्लू—भैया, जो सच पूछो, तो चांदी मेरी है। रंक से राजा हो गया। पहले छः बीघे का असामी था, सब सिकमी, बहत्तर रुपये लगान के देने पड़ते थे, उस पर हरदम गौस मियां की चिरौरी किया करता था कि कहीं खेत न छीन लें। पचास रुपये खाली नजराना लगता था। पियादों

की पूजा अलग करनी पड़ती थी। अब कुल नौ रुपये लगान देता हूं। दो साल में आदमी बन गया। फूस के झोंपड़े में रहता था, अबकी मकान बनवा लिया है। पहले हरदम धड़का लगा रहता था कि कोई कारिन्दे से मेरी चुगली न कर आया हो। अब आनंद से मीठी नींद सोता हूं और तुम्हारा जस गाता हूं!

माया—(सुक्खु चौधरी से) तुम्हारी खेती तो सब मजदूरों से ही होती होगी? तुम्हें भजन-भाव से कहां छुट्टी?

सुक्खू—(हंसकर) भैया, मुझे अब खेती-बारी करके क्या करना है। अब तो यही अभिलाषा है कि भगवत-भजन करते-करते यहां से सिधार जाऊं। मैंने अपने चालीसों बीघे उन बेचारों को दे दिए हैं जिनके हिस्से में कुछ न पड़ा था। इस तरह सात-आठ घर जो पहले मजूरी करते थे और बेगार के मारे मजूरी भी न करने पाते थे, अब भले आदमी हो गए। मेरा अपना निर्वाह भिक्षा से हो जाता है। हां, इच्छापूर्ण भिक्षा यहीं मिल जाती है, किसी दूसरे गांव में पेट के लिए नहीं जाना पड़ता। दो-चार साधु-संत नित्य ही आते रहते हैं। उसी भिक्षा में उनका सत्कार भी हो जाता है।

माया—आज बिसेसर साह नहीं दिखाई देते?

सुक्खू—किसी काम से गए होंगे। वह भी अब पहले से मजे में हैं। दुकान बहुत बढ़ा दी है, लेन-देन कम करते हैं। पहले रुपये में आने से कम ब्याज न लेते थे और करते क्या? कितने ही असामियों से कौड़ी वसूल न होती थी। रुपये मारे जाते थे। उसकी कसर ब्याज से निकालते थे। अब रुपये सैकड़े ब्याज लेते हैं। किसी के यहां रुपये डूबने का डर नहीं है। दुकान भी अच्छी चलती है। लस्करों में पहले दिवाला निकल जाता था। अब तो गांव का बल है, कोई रोब नहीं जमा सकता और जो कुछ थोड़ा-बहुत घाटा हुआ भी, तो गांव वाले पूरा कर देते हैं।

इतने में बलराज रेशमी साफा बांधे, मिर्जई पहने, घोड़े पर सवार आता दिखाई दिया। मायाशंकर को देखते ही बेधड़क घोड़े पर से कूद पड़ा और उनके चरण स्पर्श किए। वह अब जिला-सभा का सदस्य था। उसी के जलसे से लौटा आ रहा था।

माया ने मुस्कराकर पूछा—कहिए मेंबर साहब, क्या खबर है?

बलराज—हजूर की दुआ से अच्छी तरह हूं। आप तो मजे में हैं? बोर्ड के जलसे में गया था। बहस छिड़ गई, वहीं चिराग जल गया।

माया—आज बोर्ड में क्या था?

बलराज—यही बेगार का प्रश्न छिड़ा हुआ था। खूब गर्मागर्म बहस हुई। मेरा प्रस्ताव था कि जिले का कोई हाकिम देहात में जाकर गांव वालों से किसी तरह की खिदमत का काम न लें, जैसे पानी भरना, घास छीलना, झाड़ू लगाना। जो रसद दरकार हो वह गांव के मुखिया से कह दी जाय और बाजार भाव से उसी दम दाम चुका दिया जाय। इस पर दोनों तहसीलदार और कई हुक्काम बहुत भन्नाए। कहने लगे, इससे सरकारी काम में बड़ा हर्ज होगा। मैंने भी जी खोलकर जो कुछ कहते बना, कहा। सरकारी काम प्रजा को कष्ट देकर और उनका अपमान करके नहीं होना चाहिए। हर्ज होता है तो हो। दिल्लगी यह है कि कई जमींदार भी हुक्काम के पक्ष में थे। मैंने उन लोगों की खूब खबर ली। अंत में मेरा प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। देखें जिलाधीश क्या फैसला करते हैं। मेरा एक प्रस्ताव यह भी था कि निर्खनामा लिखने के लिए एक सब-कमेटी बनाई जाय जिसमें अधिकांश व्यापारी लोग हों। यह नहीं कि तहसीलदार ने कलम उठाया

और मनमाना निर्ख लिखकर चलता किया। यह प्रस्ताव भी मंजूर हुआ।

माया—मैं इन सफलताओं पर तुम्हें बधाई देता हूं।

बलराज—यह सब आपका अकबाल है। यहां पहले कोई अखबार का नाम भी न जानता था। अब कई अच्छे-अच्छे पत्र भी आते हैं। सबेरे आपको अपना वाचनालय दिखाऊंगा। गांव के लोग यथायोग्य एक रुपये, दो रुपये मासिक चंदा देते हैं, नहीं तो पहले हम लोग मिलकर पत्र मंगाते थे, तो सारा गांव बिदकता था। जब कोई अफसर दौरे पर आता, कारिंदा साहब चट उससे मेरी शिकायत करते। अब आपकी दया से गांव में रामराज है। आपको किसी दूसरे गांव में पूसा और मुजफ्फरपुर का गेहूं न दिखाई देगा। हम लोगों ने अबकी मिलकर दोनों कोनों से बीज मंगवाए और डेवढ़ी पैदावार होने की पूरी आशा है। पहले यहां डर के मारे कोई कपास बोता ही न था। मैंने अबकी मालवा और नागपुर से बीज मंगवाए और गांव में बांट दिए। खूब कपास हुई। यह सब काम गरीब असामियों के मान के नहीं हैं, जिनको पेट भर भोजन तक नहीं मिलता, सारी पैदावार लगान और महाजन के भेंट हो जाती है।

यही बातें करते-करते भोजन का समय आ पहुंचा। लोग भोजन करने गए। मायाशंकर ने भी पूरियां दूध में मलकर खाईं, दूध पिया और फिर लेटे। थोड़ी देर में लोग खा-पीकर आ गए। गाने-बजाने की ठहरी। कल्लू ने गाया। कादिर खां ने दो-तीन पद सुनाए। रामायण का पाठ हुआ। सुखदास ने कबीरपंथी भजन सुनाए। कल्लू ने एक नकल की। दो-तीन घंटे खूब चहल-पहल रही। माया को बड़ा आनंद आया। उसने भी कई अच्छी चीजें सुनाईं। लोग उसके स्वर माधुर्य पर मुग्ध हो गए।

सहसा बलराज ने कहा—बाबूजी, आपने सुना नहीं? मियां फैजुल्लाह पर जो मुकदमा चल रहा था, उसका आज फैसला सुना दिया गया। अपनी पड़ोसिन बुढ़िया के घर में घुसकर चोरी की थी। तीन साल की सजा हो गई।

डपटसिंह ने कहा—बहुत अच्छा ! सौ बेंत पड़ जाते तो और भी अच्छा होता। यह हम लोगों की आह पड़ी है।

माया—बिन्दा महाराज और करतारसिंह का भी कहीं पता है?

बलराज—जी हां, बिन्दा महाराज तो यहीं रहते हैं। उनके निर्वाह के लिए हम लोगों ने उन्हें यहां का बय बना दिया है। कर्तार पुलिस में भरती हो गए।

दस बजते-बजते लोग विदा हुए। मायाशंकर ऐसे प्रसन्न थे, मानो स्वर्ग में बैठे हुए हैं।

स्वार्थ-सेवी, माया के फंदों में फंसे हुए मनुष्यों को यह शांति, यह सुख, यह आनंद, यह आत्मोल्लास कहां नसीब?

• • •